आवरण-पृष्ठ पर चित्रित वनस्पतियां

आवरण पृष्ठ पर ३२ वनस्पतियों को चित्रित किया गया है, उन प्रत्येक पर क्रम-संख्या अंकित है, क्रम-संख्यानुसार उन वनस्पतियों के लैटिन एवं हिन्दी नाम यहां दिए जाते है।

—सम्पादक।

1 Papaver Somniferum — अफीम
2 Aconitum Napellus. — वच्छनाग
3. Nymphaea Alba. — कुमुद
4 Acorus Calamus. — वच
5 Viola Odorata — बनफ्सा
6 Astragalus Alpinus — कतीरा-वृक्ष
7 Polygonum Bistorta — अजुबार
8 Artemisia Maritima — अजवायन किरमाणी
9 Hypochoeris Maculata. — डेडलू
10 Sisymbrium Irio — खूबकला
11 Convolvulus Sepium — हिरनपदी
12. Limnanthemum Nympaeoides Link — कुरु
13 Atropa Belladonna — अंगूरशेफा
14 Verbascum Thapsus. — गीदड़ तम्बाकू
15 Viscum Album — बादा
16 Carum Carvi — स्याह जीरा
17. Trifolium Repens — अस्पर्क
18 Digitalis Purpurea. — डिजिटेलिस (तिलपुष्पी)
19 Cichorium Intybus — कासनी
20 Allium Ampeloprasum. — गन्दना
21 Equisetum Sylvaticum — मात्ती
22 Pyrus Communis. — नासपाती
23. Rosa Eglanteria. — गुलसेवती
24 Oxalis Acetosella — तिनपतिया
25 Hyoscyamus Niger — खुरासानी अजवायन
26 Drosera Rotundifolia. — चित्रा
27 Ranunculus Hederaceus. — लदूकर्रा
28 Mentha Longifolia Huds — पोदीना
29 Doronicum Pardalianches. — दरूनज अकरबी
30 Polygonum Dumetorum — अजुबार रूमी
31 Ranunculus Ficaria — कबिराज
32 Datura Stramonium — काला धतूरा

विष्णु प्रभाकर

वनौषधि-विशेषाङ्क के चित्र-प्रवन्धक

वैद्याचार्य पं० उदयलाल जी महात्मा H M D S

रस एवं वनौषधि अन्वेषक

[illegible] चिकित्सालय देवगढ़ (राजस्थान)

१. धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाकर। धन्वन्तरि की ग्राहक-सख्या जितनी अधिक होती जायगी हम 'धन्वन्तरि' भी उतना ही विशाल तथा उपयोगी बनाने का प्रयत्न कर सकेंगे।

२ विद्वान् एव अनुभवी चिकित्सको को अपने सफल अनुभव धन्वन्तरि मे प्रकाशनार्थ भेजने के लिए प्रेरित कीजियेगा।

३. आप भी अपने सुझाव दे कि 'धन्वन्तरि' मे क्या नवीन स्तम्भ सम्मिलित करे तथा क्या परिवर्तन करे जिससे कि वह अधिक उपयोगी बन सके।

४, यदि आपने किसी कष्टसाध्य रोगी की चिकित्सा सफलतापूर्वक की है। तो उसका विवरण प्रकाश-नार्थ अवश्य भेजे जिससे कि आपके सहयोगी भी आपके अनुभव से लाभ उठा सके।

आशा है हमारे सभी ग्राहक धन्वन्तरि को अपना ही पत्र समझते हुए इसके प्रचार-प्रसार मे हमारी सहायता करेंगे।

आगामी वर्ष का विशेषाक श्री गगाप्रसाद जी गौड "नाहर" के विशेष सम्पादकत्व मे "प्राकृतिक-चिकित्साक" प्रकाशित किया जायगा। इसका लेखन-कार्य प्रारम्भ हो गया है तथा आवश्यक चित्रादि बनना शीघ्र प्रारम्भ किया जायगा। यह विशेषाक चिकित्सको तथा सभी पठित व्यक्तियो के लिए महान उपयोगी तथा अलभ्य ग्रन्थ प्रमाणित होगा इसमे सन्देह नही।

इस वर्ष का लघु विशेषाक श्री पद्मदेवनारायणसिंह M. B B S के सम्पादकत्व मे "विधि-विधानाक" प्रकाशित किया जा रहा है। इसके लिए उपयोगी सामग्री प्राप्त करने के लिए विशेष सम्पादक द्वारा पत्र-व्यवहार प्रारम्भ कर दिया गया है। इन विशेष सम्पादको के पते निम्नाकित है जो सज्जन इनको अपना सहयोग देना चाहे वे कृपया विशेष सम्पादक से सीधा पत्र-व्यवहार करे प्राकृतिक-चिकित्साक के विशेष सम्पादक—

—श्री डा० गगाप्रसाद गौड 'नाहर N D
रंजना निवास, आइना बीबी बाग, उदयगज
लखनऊ-१

विधिविधानाक के विशेष सम्पादक—

—श्री० डा० पद्मदेवनारायणसिंह M B B S
R K I २१० पो० सिंदरी (धनबाद)

अभी तक विजयगढ मे बिजली नही थी तथा प्रेस की मशीने एजिन से चलाई जाती थी, जिनमे बडी परेशानी रहती थी तथा समय अधिक लगता था। हमको यह सूचित करते हुए प्रसन्नता है कि अब यहा बिजली आगई है तथा प्रेस की मशीनें बिजली-मोटर से चालू हो गई हे। इसका शुभ परिणाम यह हुआ कि विशेषाक पूर्वापेक्षा शीघ्र प्रकाशित कर सके हैं। तथा आगामी अङ्क भी समय पर प्रकाशित कर सकेंगे ऐसी आशा है।

एक बार पुन. पाठको से निवेदन करते हैं कि वे शीघ्र ही धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाकर हमारी सहायता करने का प्रयत्न करे।

भवदीय
वैद्य देवीशरण गर्ग।

वनौषधि विशेषांक (तृतीय भाग) की

विषयानुक्रमणिका

वनौषधि विशेषांक (तृतीय भाग)
की

चित्र-सूची

२८ **कौमारभृत्य (नव्य बालरोग सहित)**—आचार्य रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी । संशोधित द्वितीय संस्करण ८–००

२९ **क्लिनिकल पैथौलोजी**—(बृहत् मल-मूत्र-कफ-रक्तादि परीक्षा)। डा० शिवनाथ खन्ना १०–००

३० **क्वाथमणिमाला**—आयुर्वेद के विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध समस्त क्वाथों का संग्रह । हिन्दी टीकासहित १–५०

३१ **गर्भरक्षा तथा शिशुपरिपालन**—डा० मुकुन्द स्वरूप वर्मा । गर्भरक्षा का उपाय, गर्भवती स्त्री की दिन-चर्या, गर्भकाल में उत्पन्न होने वाले रोगों से बचने के उपाय तथा नवजात शिशु के पोषण पालन आदि का विवेचन वैज्ञानिक ढंग से किया गया है ४–५०

३२ **गूलरगुणविकासः**—श्री चन्द्रशेखरधरमिश्र । गूलर के विविध गुणों के वर्णन चिकित्सा सहित १–००

३३ **चक्रदत्त**—नवीन वैज्ञानिक भावार्थसन्दीपनी भाषाटीका, विविध परिशिष्ट सहित । तृतीय साधारण संस्करण १०–००
सजिल्द संस्करण १२–००

३४ **चरकसंहिता**—भागीरथी टिप्पणी सहित । चिकित्सादि समाप्ति पर्यन्त द्वितीय भाग ३–००

३५ **चरकसंहिता**—'विद्योतिनी' हिन्दी व्याख्या, विशेष विमर्श परिशिष्ट सहित । सम्पादकमंडल : चरकाचार्य राजेश्वरदत्त शास्त्री, वैद्य यदुनन्दन उपाध्याय, डा० गंगासहाय पाण्डेय प्रभृति । भूमिका लेखक : कविराज श्री सत्यनारायण शास्त्री पद्मभूषण । इन्द्रिय स्थान पर्यन्त प्रथम भाग १६–००
चिकित्सादि समाप्ति पर्यन्त द्वितीय भाग २०–००, सम्पूर्ण ग्रन्थ १–२ भाग ३६–००

३६ **चरकसंहिता का निर्माण काल**—श्री रघुवीरशरण शर्मा । अग्निवेश, जतूकर्ण आदि के जीवनकाल के निर्णय के द्वारा चरकसंहिता तथा काश्यपसंहिता का निर्माणकाल प्रस्तुत करने से यह ग्रन्थ आयुर्वेद का संक्षिप्त इतिहास बन गया है २–००

३७ **चिकित्साशब्दकोश**—(Chowkhamba Medical Dictionary) प्रेस में

३८ **चिकित्सादर्श**—वैद्य राजेश्वरदत्तशास्त्री । औषधव्यवस्था लेखन या नुसखानवीसी का अनुपम ग्रन्थ
१–३ भाग १७–५०

३९ **जीवाणु विज्ञान**—डा० घाणेकर । इस पुस्तक में तृणाणु (Bacteria) कीटाणु (Protozoa) विषाणु (Virus) इत्यादि जीवाणुओं की विभिन्न श्रेणियों का विवरण उनके प्रकार उनसे उत्पन्न होने वाले रोग और उनकी सम्प्राप्ति तथा चिकित्सा इत्यादि विषयों का समावेश किया गया है प्रेस में

४० **तापमापन (थर्मामीटर)**—डा० राजकुमार द्विवेदी । ०–२५

४१ **तुलसीविज्ञान**—विविध रोगों पर तुलसी के ३४३ सफल सुलभ प्रयोगों का संग्रह ०–७५

४२ **दोषकारणत्वमीमांसा**—आचार्य प्रियव्रत शर्मा १–००

४३ **द्रव्यगुण मंजूषा**—आचार्य शिवदत्त शुक्ल । प्रथम भाग २–००

४४ **द्रव्यगुणविज्ञान**—आचार्य प्रियव्रत शर्मा । १–३ भाग । प्रथम भाग में द्रव्यखण्ड, कर्मखण्ड एवं कल्पखण्ड के विषयों का एवं द्वितीय भाग में औद्भिद तथा जंगम द्रव्यों का और तृतीय भाग में पार्थिव द्रव्यों का सुविस्तृत विवेचन किया गया है १८–००

४५ **नव परिभाषा**—कविराज श्री उपेन्द्रनाथदास कृत हिन्दी टीका सहित १–७५

४६ **नव्य-चिकित्सा-विज्ञान**—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा । इस ग्रन्थ के प्रथम भाग में संक्रामक रोगों एवं द्वितीय भाग में पाचनतंत्र के रोगों के कारण, तज्जन्य विकृति लक्षण, परीक्षा करने पर मिलने वाले चिह्नों, आवश्यक प्रायोगिक परीक्षाओं तथा चिकित्सा का विशद विवेचन किया गया है ।
प्रथम भाग ८–०० द्वितीय भाग ८–०० १–२ भाग १६–००

४७ **नव्यरोगनिदानम् (माधवनिदानपरिशिष्टम्)** ०–७५

४८ **नाड़ीपरीक्षा**—श्री ब्रह्मशंकरमिश्र कृत वैद्यप्रिया हिन्दी टीका सहित ०–३५

४९ **नाड़ीविज्ञानम्**—आचार्य प्रयागदत्त जोशी कृत विबोधिनी विस्तृत हिन्दी टीका सहित ०–३५

५० **नेत्ररोग विज्ञान**—(सचित्र) श्रीविश्वनाथ द्विवेदी । इण्डियन मेडिसिन बोर्ड द्वारा पाठ्य स्वीकृत १०–००

५१ **पञ्चभूत विज्ञान**—कविराज उपेन्द्रनाथदास कृत हिन्दी टीका सहित ४–००

५२ **पञ्चविध कषाय कल्पना विज्ञान**—डा० अवधविहारी अग्निहोत्री १–५०

५३ **पदार्थ विज्ञान**—डा० वागीश्वरदत्त शुक्ल । इस ग्रन्थ में पदार्थ-विज्ञान जैसे जटिल विषय का अत्यन्त सरल हिन्दी में विवेचन किया गया है तथा हिन्दी विवेचन का प्रामाणिक स्रोत संस्कृत उद्धरण भी फुटनोट में उपन्यस्त किया गया है १०–००

८४ योगरत्नाकर—मूल। गुटका संस्करण [illegible]

८५ योगरत्नाकर—विद्योतिनी हिन्दी टीका सहित। कायचिकित्सा में भिन्न-भिन्न [illegible]
है उन विषयों की आश्रय विधि इस ग्रन्थ में भरी पड़ी है १८-००

८६ रतिमञ्जरी—गद्य-पद्यात्मक हिन्दी अनुवाद सहित ०-३०

८७ रक्त के रोग—डा० घाणेकर। नवीन आवृत्ति १०-००

८८ रसचिकित्सा—कविराज प्रभाकर चट्टोपाध्याय। इस ग्रन्थ में पारद [illegible],
हरितालभस्म, स्वर्णघटित मकरध्वज निर्माण प्रकार, शोधन-मारणादि [illegible]
रोगों की चिकित्सा विधि भी लिखी गई है ६-००

८९ रसरत्नसमुच्चयः—अम्बिकादत्त शास्त्री कृत सुरत्नोज्ज्वला हिन्दी टीका सहित। [illegible] १०-००

९० रसरत्नसमुच्चयः—मूल। टिप्पणी सहित। सुलभ संस्करण ३-०० [illegible] ३-७५

९१ रसादि परिज्ञान—पं० जगन्नाथप्रसाद शुक्ल। षट् रसों के सम्बन्ध में [illegible] २-५०

९२ रसाध्यायः—संस्कृत टीका सहित। यह रसशास्त्र का अतिप्राचीन छोटा किन्तु उपयोगी [illegible] १-००

९३ रसायनखण्डम् (रसरत्नाकर का चतुर्थ खण्ड)—रसायन तथा [illegible] ०-७५

९४ रसार्णवं नाम रसतन्त्रम्—भागीरथी बृहद् टिप्पणी एवं विशेष विवरण से युक्त ६-००

९५ रसेन्द्रसारसंग्रहः—बालबोधिनी–भागीरथी टिप्पणी सहित प्रेस में

९६ रसेन्द्रसारसंग्रहः—(सचित्र) नवीन वैज्ञानिक रसचन्द्रिका हिन्दी टीका विमर्श परिशिष्ट सहित ८-००

९७ रसेन्द्रसारसंग्रहः—(सचित्र) गूढार्थसंदीपिका संस्कृत व्याख्या सहित। [illegible] ५-००

९८ राजकीय ओषधियोग संग्रह—आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी ए. एम. एस. ७-००

९९ राष्ट्रियचिकित्सासिद्धयोगसंग्रहः—आचार्य श्री रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी। इसमें [illegible], [illegible], चूर्ण, तैल,
घृत, अवलेह, गुटिका, रस आदि के गुण, अनुपान और निर्माण का पूर्ण विवरण है १-५०

१०० रोगनामावली कोष—वैद्य दलजीतसिंह। आयुर्वेदीय, यूनानी, डाक्टरी रोगों के नाम और परिचय सहित ३-५०

१०१ रोगनिवारण—(Treatment) डा० शिवनाथ खन्ना १५-००

१०२ रोग परिचय (Clinical Medicine)—डा० शिवनाथ खन्ना। इसमें रोगों की व्याख्या, वर्णन,
कारक, मरक-विज्ञान, निदान, चिकित्सा आदि का वर्णन किया गया है। परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण १२-७५

१०३ रोगि-परीक्षा विधि—(सचित्र)। आचार्य प्रियव्रत शर्मा ६-००

१०४ रोगी परीक्षा (Physical Examinations)—डा० शिवनाथ खन्ना। पुस्तक में नवीन वैज्ञानिक-
पद्धति के आधार पर रोगीपरीक्षा की विधियों का चित्रों तथा तालिकाओं द्वारा वर्णन है ८-००

१०५ रोगी-रोगविमर्श—डा० रमानाथ द्विवेदी। रोगी और रोग की परीक्षा किन-किन विधियों का अनुसरण
करते हुए की जाय यही इस ग्रंथ का मुख्य विषय है २-००

१०६ वनौषधि चन्द्रोदय—इस विशाल निघण्टु ग्रंथ में भारतवर्ष में पैदा होने वाली समस्त वनस्पतियों,
खनिज-द्रव्यों, विष-उपविषों के गुण-धर्मों का सर्वाङ्गीण विवेचन है। प्रत्येक वस्तु के भिन्न-भिन्न भाषाओं
में नाम, उत्पत्तिस्थान, आयुर्वेद, यूनानी और आधुनिक चिकित्साविज्ञान की दृष्टि से उनके गुण-धर्मों
का वर्णन, भिन्न-भिन्न रोगों पर उसके उपयोग, उस वस्तु के मेल से बनने वाले सिद्ध प्रयोगों का
विवेचन बहुत ही सुन्दर तथा विस्तार से किया गया है। अपने विषय का अद्वितीय ग्रंथ है।
पृथक्-पृथक् प्रत्येक भाग का मूल्य ५-०० तथा संपूर्ण ग्रंथ १–१० भाग का मूल्य ४०-००

१०७ वनौषधि दर्शिका—प्रो० बलवन्त सिंह। लगभग ३०० वनौषधियों का विवरण दिया गया है २-५०

१०८ विषविज्ञान और अगदतन्त्र—डा० युगलकिशोर गुप्त एवं डा० रमानाथ द्विवेदी। इनमें उन विषैले
द्रव्यों का वर्णन है जिनका आत्महत्या या परहत्या के लिए व्यवहार किया जाता है १-७५

१०९ वैद्यक परिभाषाप्रदीप—आयुर्वेदाचार्य प्रयागदत्त जोशी कृत प्रदीपिका हिन्दी टीका सहित। द्वितीय संस्करण १-५०

पदार्थविज्ञान

श्री वागीश्वर शुक्ल

इस ग्रन्थ में पदार्थविज्ञान जैसे जटिल विषय का अत्यन्त सरल हिन्दी भाषा मे विवेचन किया गया है तथा हिन्दी विवेचन का प्रामाणिक स्रोत संस्कृत विवेचन भी ससन्दर्भ टिप्पणी में उपन्यस्त है। आयुर्वेद के छात्रों व अनुसन्धित्सुओं के लिए सर्वोत्कृष्ट एवं प्रामाणिक यह सर्वप्रथम ग्रन्थ है। मूल्य १०-००

एलोपैथिक पाकेट प्रेस्क्राइवर

डा० शिवनाथ खन्ना

इसमें एलोपैथिक के अनुभूत योगों के वर्णन के अतिरिक्त एलोपैथिक की आधुनिक औषधियों से रोगों की किस प्रकार चिकित्सा करनी चाहिये इसका भी वर्णन किया गया है। स्त्री-रोग तथा बाल-रोगों में प्रयोग की जानेवाली औषधियों का अलग से वर्णन किया गया है। प्रत्येक प्रकार के उत्तम इन्जेक्शन, गोली, मिक्सचर, पाउडर, एनिमा आदि के नुस्खे, तथा प्रतिशत (%) घोल बनाने की मात्रायें आदि का वर्णन भी किया गया है। एलोपैथिक के चिकित्सकों को अपने रोगियों की चिकित्सा करने मे इस पुस्तक से बड़ी सहायता मिलेगी। इस पुस्तक में रोज काम में आने वाले प्राय. २०० से अधिक नुस्खे और इतने ही रोगों की चिकित्सा का वर्णन है। मूल्य ५-००

काय-चिकित्सा

आचार्य रामरक्ष पाठक

इस ग्रन्थ में अष्टाग आयुर्वेद के कायचिकित्सा का सांगोपांग विवेचन, चिकित्सा-सवन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन, चिकित्सा का क्रियात्मक एवं कर्मोपयोगी स्वरूप, ज्वरों का वर्णन और क्रमशः आभ्यन्तरात्मक मार्गाश्रित, वहिर्मार्गाश्रित, मर्मसन्ध्याश्रित व्याधियों का विशद वर्णन किया गया है। मूल्य १२-५०

सुश्रुतसंहिता—सम्पूर्ण

डा० कविराज अम्बिकादत्त शास्त्री कृत

सविमर्श 'आयुर्वेदतत्त्वसंदीपिका' हिन्दीव्याख्या

इस अभिनव व्याख्या मे प्रत्येक गूढ सूत्र पर वैज्ञानिक शब्दावली द्वारा सुश्रुत का महाभाष्य ही प्रस्तुत किया गया है। विमर्श में प्राचीन एवं नवीन विज्ञान की सप्रमाण तुलना एक ही स्थल पर की गई है जिससे दोनों विषयों की जानकारी हो जाती है। मूल्य २४-००

स्त्री-रोग-विज्ञान (सचित्र)

(Diseases of Women)

डा० रमानाथ द्विवेदी

इसमे अन्नव्यापद, रजोव्यापद, योनिव्यापद, उपसर्गव्यापद, अर्बुदव्यापद तथा शस्त्रकर्म आदि अनेक विषय हैं। सर्वोपरि विशेषता समन्वयात्मक पद्धति का लेखन है जिसमें अत्यन्त प्राचीनकाल के आयुर्वेद के सिद्धान्तों और सूत्रों के उल्लेख से प्रारम्भ करके आधुनिक युग के नवीनतम आविष्कारों से प्रकाशित रोग विज्ञान तथा चिकित्सा का सङ्कलन हो गया है। मूल्य ३-५०

पेटेण्टप्रेस्क्राइवर या पेटेण्ट मेडिसिन्स

डा० रमानाथ द्विवेदी

(संशोधित परिवर्धित नवीन संस्करण)

इस विशाल ग्रंथ में ४०० से अधिक रोगों पर हजारों पेटेण्ट दवाओं का प्रयोग बताया गया है। रोग का नाम, उस पर विविध कंपनियों के योग, कपनियों के नाम, प्रयोगविधि और मात्रा लिखी गई है। ८-००

क्लिनिकल पैथौलोजी (सचित्र)

(बृहत मल-मूत्र-कफ-रक्तादि-परीक्षा)

डा० शिवनाथ खन्ना

प्रत्येक परीक्षाविधि सरल हिन्दी मे विशद रूप से वर्णित है। पुस्तक के ३ खण्डों मे से प्रथम खण्ड मे विभिन्न परीक्षाओं का, द्वितीय खण्ड में विभिन्न कृमियों का तथा तृतीय खण्ड में जीवाणुओं का वर्णन है। लगभग ७८ चित्र भी हैं। मूल्य १०-००

आयुर्वेद-प्रदीप

(आयुर्वेदिक–एलोपैथिक गाइड)

(संशोधित, परिवर्धित, नवीन सस्करण)

डा० राजकुमार द्विवेदी, डा० गंगासहाय पाण्डेय

पृ० सं० लगभग ९००, उत्तम कागज, नया टाइप, मनोरम आवरण। परिष्कृत नवीन संस्करण मूल्य १२-००

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्राच्य तथा पाश्चात्य विषयों का समन्वय, इतिहास, प्रसार अंग तथा धातूपधातुओं की रचना एवं कार्य, विभिन्न परीक्षाएँ, विटामिन, नाना प्रकार के पथ्य एलोपैथिक-आयुर्वेदिक सम्पूर्ण औषधों के निर्माण प्रयोग एवं गुणधर्म-विज्ञान, हिन्दी-अंगरेजी नामावली, रोगों की उभयविध चिकित्सा आदि अनेक विषय वर्णित हैं।

सख्या अत्यधिक है। आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा-पद्धति बडी महगी है। आपने आयुर्वेदिक-पद्धति से जड़ी बूटियो के सहारे शिशुरोगो के शमनार्थ अनेक उपाय इस अङ्क मे दिये है। कम मूल्य मे उपयोगी वृहदाकार अङ्क देकर आप भारतीय-समाज एव आयुर्वेद की अभूतपूर्व सेवाकर रहे है। बधाई। शेष भगवत्कृपा।

(२) श्री वैद्य मणिराम शर्मा भिषगाचार्य, आयुर्वेदाचार्य प्रिन्सीपल-आयु० विश्वभारती, सरदारशहर

आपके द्वारा भेजा हुआ शिशु रोगाक प्राप्त हुआ एतदर्थ धन्यवाद। मने इसके कई स्थल देखे। इसमे दन्तोद्भेद क्रम प्रकरण, बालशोष, कृमिरोग, बाल यकृत एव बाल पक्षाघातादि रोगो पर विद्वान वैद्यो के दिये हुये लेख अतीव महत्वपूर्ण है। ये व्याधिया बालको के लिए अतीव दुखदायी समझी जाती हैं। इस अङ्क मे लिखित प्रयोगो द्वारा उन व्याधियो का निराकरण होगा।

(३) कविराज श्री पं० दीनदयाल सीसरि एच पी. ए (जामनगर), भिषगाचार्य (आनर्स) प्रभाकर अनुसधान स० (चिकित्सा) शिक्षा मन्त्रालय, दिल्ली—६

आपका भेजा हुआ 'धन्वन्तरि' का शिशुरोगाक प्राप्त हुआ। पहले तो उसकी जिल्द को देखकर ही अति प्रसन्नता हुई। जब खोल कर देख पढे तो पाया कि वास्तव मे पहले विशेषाको के समान ही इस अङ्क ने शिशुओ के रोग-निदान व चिकित्सा के क्षेत्र मे समयानुकूल साहित्य की पूर्ति की है। हिन्दी की अभिवृद्धि मे निरत मेरे जैसे चिकित्सको को तो इस साहित्य से अपने कार्य के पूरक व सहायक होने से प्रसन्नता है ही, किन्तु आयुर्वेद के विद्यार्थियो के लिए भी यह लाभप्रद सिद्ध होगा।

मूल्य—८ ५० रु०

वनौषधि विशेषांक प्रथम व द्वितीय भाग

आचार्य श्री कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी द्वारा लिखित एवं सपादित यह विशेषाक वानस्पतिक विवेचन का [illegible] है। इसके प्रथम भाग मे 'अ' से 'क' तक की [illegible] वनस्पतियो का सचित्र वर्णन किया गया है। [illegible] लिखित होने [illegible] आयुर्वेद [illegible] [illegible] है। [illegible] सदिग्ध [illegible] करने के कारण यह सर्वथा सराहनीय है। जो वैद्य एकौषधि-चिकित्सा के द्वारा रोग-निवारण की रीति प्रशसनीय बताते है उनके लिये तो यह ग्रन्थ सोने मे सुगन्ध ही है। रोग-विशेष नामोल्लेखन-पूर्वक वानस्पतिक चिकित्सा पूर्णरूपेण जैसी इस विशेषांक मे लिखी है। वैसी अन्यत्र किसी ग्रन्थ मे नही लिखी, यह कहने का साहस पाठक गण स्वय पढकर ही कर सकेंगे। प्रथम भाग समाप्त होगया है, पुन छप रहा है। मूल्य १० रु.

इसके द्वितीय भाग मे 'क' वर्ग की समस्त वनस्पतियो का सचित्र वर्णन सन्निहित है। विशेषांक सम्पादक श्री प. कृष्णप्रसाद जी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य ने अपने महान अनुभवो के आधार पर इस विशेषाक मे वर्णित औषधियो की शास्त्रसम्मत विवेचना की है सदिग्ध औषधियो का विशद विवेचन पाठको को सतुष्ट किये बिना न रहेगा। रोगानुसार वनस्पतियो के प्रयोग चिकित्सा-जगत मे सर्वत्र ख्याति प्रदान कर वनस्पति शास्त्र की उपयोगिता सिद्ध करते है। यह तो निर्विवाद सिद्ध ही है कि एकमात्र वनौषधि-चिकित्सा प्राचीन भारत की विभूति रही हैं। आज भी वनस्पतियो के सफल उपायो के परीक्षण-हेतु वनस्पति-चिकित्सा का प्रचार सुविज्ञजनो द्वारा करणीय है। अतएव ऐसे वानस्पतिक विवेचन पूर्ण विशेषाक का समादर सभी का आवश्यक कर्तव्य है। अनेक विद्वानो ने इसकी मुक्तकठ से प्रशसा कर हमे आभारी किया है। मू० ८ ५० रु.

संक्रामक रोगांक

श्री कविराज मदनगोपाल जी द्वारा सम्पादित यह विशेषाङ्क सक्रमण जनित रोग-विषयक एक पूर्ण साहित्य है। सक्रमण से होने वाले प्राय सभी रोगो का पूर्णरूपेण वर्णन कर उनसे बचने के सरल उपाय विज्ञान की दृष्टि से समझाये गये है। उपदश, फिरग, अभिष्यन्द, विसूचिका, कुष्ठ, ज्वर, शोथ और प्लेग आदि विविध विषय इस विशेषाक के विवेच्य अङ्ग है। जो चिकित्सको एव आयुर्वेद प्रेमियो के लिये अवश्य पठनीय विषय है। सक्रमण का काल, सक्रमण की मर्यादा एवं सक्रमित दशा मे उपयोज्य विषयों के यथाक्रम प्रतिपादन के द्वारा सम्मान्य लेखको ने उसमे गागर मे सागर भर दिया है आधुनिक चिकित्सक की दर्श रोगो का कारण कीटाणुसंक्रमण ही सिद्ध करता है तथा प्राचीनवैद्य भी इसको स्वीकार करने मे सदेहपूर्ण नही

विज्ञान-समन्वित होने के साथ ही साथ आयुर्वेद की प्रशसा से भी परिपूर्ण है। देश के विभिन्न विद्वानो ने इसकी प्रशसा करने मे कोई कसर बाकी नही रखी है। मू ८ ५०

माधव निदानांक

श्री आचार्य दौलतराम सोनी आयुर्वेदरत्न द्वारा सम्पादित यह माधव निदानाक रोगो के परिगणन वर्णन की परिपूर्णता के लिये परम प्रसिद्ध है। माधव-निदानान्तर्गत सभी रोगो के निदान, पूर्वरूप, रूपोपशयादि जो वर्णन किये है उनका विस्तृत वैज्ञानिक रूपेण वर्णन विद्वान सम्पादक ने करके इसमे चार चाद लगा दिये है। प० सीताराम मिश्र जी द्वारा लिखित ग्रहो से रोगनिदान ज्ञानज्योतिप से सम्बन्धित अपने विपय का सवाग पूर्ण लेख है। कायिक रोगो के अतिरिक्त शल्य व शाल्याक्य से सम्बन्धित रोगो का विवेचन भी शास्त्र दृष्ट्या करके इस विशेपाक को भी आधुनिक रूप दे दिया गया है। योग्यतम वैद्यो से सर्वथा सराहनीय होने के कारण यह विशेषांक परम प्रशस्त सिद्ध हो चुका है। मूल्य ८ ५०

यूनानी चिकित्सांक

श्री वैद्यराज हकीम दलजीतसिंह जी आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद वृहस्पति द्वारा सुसम्पादित यह चिकित्साक यूनानी चिकित्सा का एक अनुपम अङ्क है। यूनानी चिकित्सा सदा से ही भारतीयो द्वारा समादृत रही है और आज भी उसके चमत्कार न्यूनता को प्राप्त नही है। ऐसी सुखद और श्रेष्ठ चिकित्सा का ज्ञान आयुर्वेदज्ञो के लिये एक अनिवार्य विपय है। इसी ध्येय से धन्वन्तरि के व्यवस्थापको ने प्रचुर धन एव परिश्रम के द्वारा इस अङ्क के प्रकाशित होने की योजना बनाकर उसे कार्यरूप मे परिणत किया। एकमात्र उसके पढने से ही यूनानी चिकित्सा मे पूर्ण रूपेण प्रवेश पाया जाना सभव है। विविध यूनानी चिकित्सा-सुविज्ञता मे निष्णात लेखको के लेखो द्वारा इसकी कमनीय काया परिपुष्ट की गई है। परिशिष्ट मे यूनानी औषधियो के चित्र दिये गये है तथा रोगो के नाम भी यूनानी के अनुसार देकर इसे और भी सुन्दर कर दिया गया है। विशेपाक सभी दृष्टि से सग्रहणीय है। ऐसे सुन्दर सुबोधगम्य इस अङ्क का मूल्य ८ ५० रु० है।

चिकित्सा समन्वयांक

आयुर्वेदाचार्य श्री प० ताराशकर जी मिश्र वैद्य द्वारा सम्पादित यह समन्वय-प्रणाली का अनोखा अङ्क है। प्रस्तुत अङ्क मे आयुर्वेद की ही शाखाओ एलोपैथी होमियोपैथी आदि को आयुर्वेद का ही एक प्रमुख अङ्ग मानकर उन सभी का समयानुसार आश्रय लेते हुए चिकित्सा-प्रणाली को श्रेष्ठ बताकर उनका विशद रूपेण वर्णन किया गया है। फिरङ्ग, नपुसकता, कुष्ठ व अन्य दुसाध्य रोगो के विवेचन पाठकगण पढकर ही उनके श्रेष्ठत्व का मूल्याकन कर सकेंगे। आयुर्वेद के अतिरहस्यमय विवेचन 'प्रज्ञापराध' का विस्तृत वर्णन सुयोग्य लेखक श्री वैद्यनाथशर्मा द्वारा लिखा हुआ सभी के पढने योग्य है। तदन्तर्गत वेरी-वेरी (वातवलात्मक) रोग का विपय भी किसी भी दशा मे पाठको को सतोषप्रदान करने मे कमी नही रख सकता। इस सग्रहणीय अङ्क का मूल्य प्रथम भाग ४.०० रु तथा द्वितीय भाग २ ००

लघु-विशेषांक

निम्न लघु विशेपाक भी अति महत्वपूर्ण है। इनमे विभिन्न अनेक विद्वानो के विवेचनात्मक एवं अनुभवपूर्ण लेख, सफल चिकित्साविधि तथा अनेक सफल प्रमाणित प्रयोगो का वर्णन है।

पचकर्म विज्ञानाक	१ ००	पायरियारोगाङ्क	१ ००
सूखा रोगाङ्क	१ ००	कासरोगाङ्क	१.००
श्वास अक	१ ००	शूल-रोगाक	१ ००
श्वास अङ्क (थीसिस)	१ ५०		

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ (अलीगढ़)

भाषाओं में तार भेजिये

अपना संदेश
देवनागरी लिपि में
लिखकर
आप किसी भी
भारतीय भाषा में तार
भेज सकते हैं।

अग्रेजी मे भेजे जाने वाले तारो को मिलने वाली सुविधाए देवनागरी लिपि मे भेजे जाने वाले तारो के लिए भी मिलती है, जैसे बधाई तार (बधाई वाक्यो की सूची हिन्दी में उपलब्ध है), डिलक्स तार, प्रेस तार, मानव जीवन अग्रता तार, फोनोग्राम तथा तार के सक्षिप्त पतो की रजिस्ट्री।

यह सुविधा
१००० तारघरों में उपलब्ध है

डाक-तार विभाग

डीए ६३/४७५

FERULA GALBANIFLUA BOISS

विवरण पृष्ठ २१२ पर देखें ।

धीवेना बागुयारा (आमगुल)
ELAEAGNUS LATIFOLIA LINN

विवरण वनौषधि-विशेषांक (प्रथम भाग) में
पृष्ठ २६६ पर देखें ।

FERULA GALBANIFLUA BOISS

विवरण पृष्ठ २१२ पर देखें ।

धीवेना बागुयारा (आम्रगुल)

ELAEAGNUS LATIFOLIA LINN

पत्र
शाख
फल
पुष्पकाट

विवरण वनौषधि-विशेषांक (प्रथम भाग) में पृष्ठ २६६ पर देखें ।

लेखक का—

विनम्र निवेदन

वनौषधि-रत्नाकर जो अब सुप्रसिद्ध धन्वन्तरि के विशेषांक के रूप मे संशोधित हो प्रकाशित हो रहा है उसका यह तीसरा भाग आपकी सेवा मे समर्पित है। मुझे खेद है कि चाहते हुए भी, वृद्धावस्था तथा शरीर के बहुत कुछ जर्जर होने के कारण मैं अब लगातार लिखने मे असमर्थ होगया हूँ। फिर वनौषधियों के विषय मे बहुत कुछ छान बीन करने मे बहुत समय व्यतीत हो जाता है। इसीलिये प्रतिवर्ष इसके भाग नहीं प्रकाशित हो पाते।

मै चाहता था कि इस भाग मे च और ट वर्ग के साथ त वर्ग—की भी (त से न तक के वर्गों से प्रारम्भ होने वाली) समस्त बूटियों का साङ्गोपाग वर्णन दिया जाय, किन्तु उन सबका वर्णन इसमें नहीं आ सकता। जितना कुछ इसमें समावेश हो सका उतना आपके समक्ष प्रस्तुत है। संभव है कि इस वर्ग की आगे की बूटियो का वर्णन इसके चतुर्थ भाग मे आजाय।

मेरे साग्रह निवेदन पर ध्यान देकर कई महानुभावो ने अपने अपने अनुभव प्रकाशनार्थ प्रेषित कर मुझे अनुगृहीत किया है। विस्तार भय से उनका केवल आवश्यक साराश ही इसमें दिया जा सका है। उनके विस्तृत लेखों का अनावश्यक अंश निकाल देना पड़ा है। वे मेरी इस धृष्टता के लिए क्षमा करेंगे।

इस भाग मे हकीम मौलाना मुहम्मद अब्दुला साहब की लिखी हुई पुस्तकों से बहुत कुछ ग्राह्यांश लिया गया है। मैं उनका आभारी हू। आशा है, उदार भाव से ये भी मेरी इस धृष्टता को क्षमा करेंगे।

वनौषधि के विषय मे महत्वपूर्ण एव उपादेय विषयो का जितना उल्लेख आवश्यक है, उतना ही सक्षेप मे किया गया है। किंतु प्रत्येक बूटी के प्रयोग जिनके कुछ अनुभव मेरे समक्ष आये, तथा जो कुछ अन्य महानुभावो ने सूचित किए उन सबको उनके शुभ नाम सहित देने का भी प्रयत्न किया गया है अतएव कहीं कहीं अधिक विस्तार हो गया है। मेरा विशेष ध्यान बूटियो के महत्वपूर्ण प्रयोगो की ओर है। जितने कुछ सफल प्रयोग प्राप्त हो सके, उन्हें इस ग्रन्थ रूप विशेषांकों के द्वारा प्रकाश मे लाया हूँ। अत सुविज्ञ कृपालु पाठकों से पुन विशेष आग्रहपूर्वक प्रार्थना है कि वे आगे इसके भागों के लिए अपने अपने सफल प्रयोगों को भेज कर हमे कृतार्थ करेंगे। तथा साथ ही साथ जनता के कृपाभाजन बन, उनकी तथा आयुर्वेद की सेवा मे मेरा हाथ बटावेंगे प्रेषक महोदय के शुभ नामो सहित ही उनके प्रयोग प्रकाशित किए गये है।

अन्त मे निवेदन है कि इसमें जो त्रुटिया या दोष हो, (जो होना स्वाभाविक है) उन्हें कृपया सूचित करें जिससे आगे के लिए यथोचित संशोधन किया जासके।

दृष्टं किमपि लोकेऽस्मिन्न निर्दोषं न निर्गुणम्।
विवृणुध्वमतो दोषानानुगुण्ये गुणान्बुधा ॥

— सर्वदा कृपाभिलाष्यनुचर विनम्र निवेदक

कृष्णप्रसाद त्रिवेदी

हिं०—चकोतरा, बड़ा या कन्ना नींबू, चताची नींबू, सदाफल, नारंज, गलगल इ०।

म०—महा नींबू, गोड महालुंग, पोपनस इ०।
गु०—चकोतरु पपनस। बं०—बतावि लेबू।
अं०—पोमेलो (Pomelo)। ले०—साइट्रस डेक्युमाना।

रासायनिक संगठन—फल में—साइट्रिक एसिड, गंध काम्ल एवं शर्करा, तथा फल की छाल में—एक सुगन्धित उड़नशील तैल होता है।

प्रयोज्य अंग—फल, फल का छिलका, पत्र, फूल आदि।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, अत्यम्ल, विपाक में अम्ल, शीत-वीर्य (वस्तुतः यह उष्ण वीर्य है)—कफवात नाशक, पित्तवर्धक, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, भेदन, हृद्योत्तेजक, ग्राही, आमदोष हर, तथा अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विबन्ध, गुल्म, प्लीहा, रक्तपित्त, कास, श्वास, व्रण, यकृत-वृद्धि, हिक्का, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त्त, शोथ आदि नाशक है।

इसके रस में शक्कर मिलाकर लेने से पित्त-प्रकोप की हानि, रक्तोद्वेग में कमी, एवं मदात्यय की निवृत्ति होकर मन प्रसन्न होता है। नजला तथा कास पर—फल के अन्दर की फांकों से ऊपरी श्वेत छिलके को निकाल एवं बीजों को दूर कर, ऊपर थोड़ी खांड बुरक कर, आग पर सेंक कर खाते हैं। पित्तज या उष्णता जन्य उन्माद पर इसका रस नित्य प्रातः पिलाते हैं। उदरशूल, कटिशूल एवं अन्य वात-विकारों पर—इसके रस में जवाखार व मधु मिला सेवन कराते हैं।

नोट—ध्यान रहे, इसका रस शीघ्र ही बिगड़ जाता है। अतः ताजा ही काम में लाना चाहिये। इसे अधिक समय तक सुरक्षित रखना हो तो—रस को कुछ देर तक पड़ा रहने दें। तब ऊपर तैर जाने वाला हिस्सा पृथक् कर, रस को [illegible] में डालकर बोतल के गले तक भर [illegible] तेल डाल दें। अथवा बोतलों को [illegible] पानी में १५ मिनट तक रखकर फिर उनमें डाटें लगा [illegible] होगा। अथवा मन्दाग्नि पर [illegible] गाढ़ा कर लें। अथवा रस [illegible] जिससे उसका जलीयांश जल जाय तथा अर्क मात्र रह जाय। इस प्रकार गुण में यह पहले से भी बढ़ जाता है। (ग्रा० वि० कोष)

प्लीहा पर—फल की फांकों का अचार बनाकर खाते हैं। खुजली पर—इसके रस में बारूद मिलाकर लगाते हैं।

फलों का ऊपरी छिलका—दीपन, उदर-कृमि, उदर-शूल एवं वात नाशक और वेदना-स्थापन है।

आमाशय के विकारों पर—छिलकों के टुकड़े कर सिरके में अचार मुरब्बा बनाकर सेवन करने से आमाशय सबल होता है, व शूल आदि की निवृत्ति होती है। वातज शिर पीड़ा पर—छिलकों को पीस कर लेप करते हैं। आन्त्रकृमियों के उत्सर्गार्थ—छिलकों को महीन पीस कर उसमें जैतून का तैल मिला गरम जल से पिलाते हैं।

हृदयोद्वेष्टन (हृद्देश में—पीड़ा एवं जलन हो, तो)—छिलकों को गरम जल में पीस छानकर पिलाते हैं। यह हृल्लास एवं वमन पर भी उपयोगी है।

प्रतिश्याय तथा हृल्लास (मिचली) पर—छिलकों का शुष्क चूर्ण पानी के साथ थोड़ा-थोड़ा दिन में कई बार पिलाते हैं। छिलकों का शर्बत शांतिदायक है।

फूल—यन्त्र के द्वारा केवल फूलों का ही अर्क खींच लें। इसे अर्क बहार कहते हैं। अथवा—अर्क बहार की पूर्ण विधि इस प्रकार है—इसके पुष्प ५ सेर, गुलाब पुष्प १ सेर, सौंफ, मुनक्का बीज रहित और अंगूर १५-१५ तो०, ऊद, बहमन लाल, काकुल मिश्री १-१ तो० इन सबको २५ सेर पानी में २४ घंटे भिगोने के बाद, १२ सेर तक अर्क खींच लें। अर्क खींचते समय अम्बर १ माशा ६ रत्ती की पोटली, अर्क-नाली के अन्त में बांध देवें। मात्रा—६ तो० तक सेवन करें—यह उष्ण, रूक्ष, सौमनस्य जनन, मस्तिष्क-दौर्बल्य एवं हृद्रोग नाशक, क्षुधावर्धक, कामोद्दीपक, छाती की पीड़ा, वातजन्य उदरशूल, मूर्च्छा, तृषा आदि में अत्यन्त उपयोगी है। (यू० नि० सा०)

प्रतिश्याय में—फूलों को सूंघते रहने से लाभ होता है।
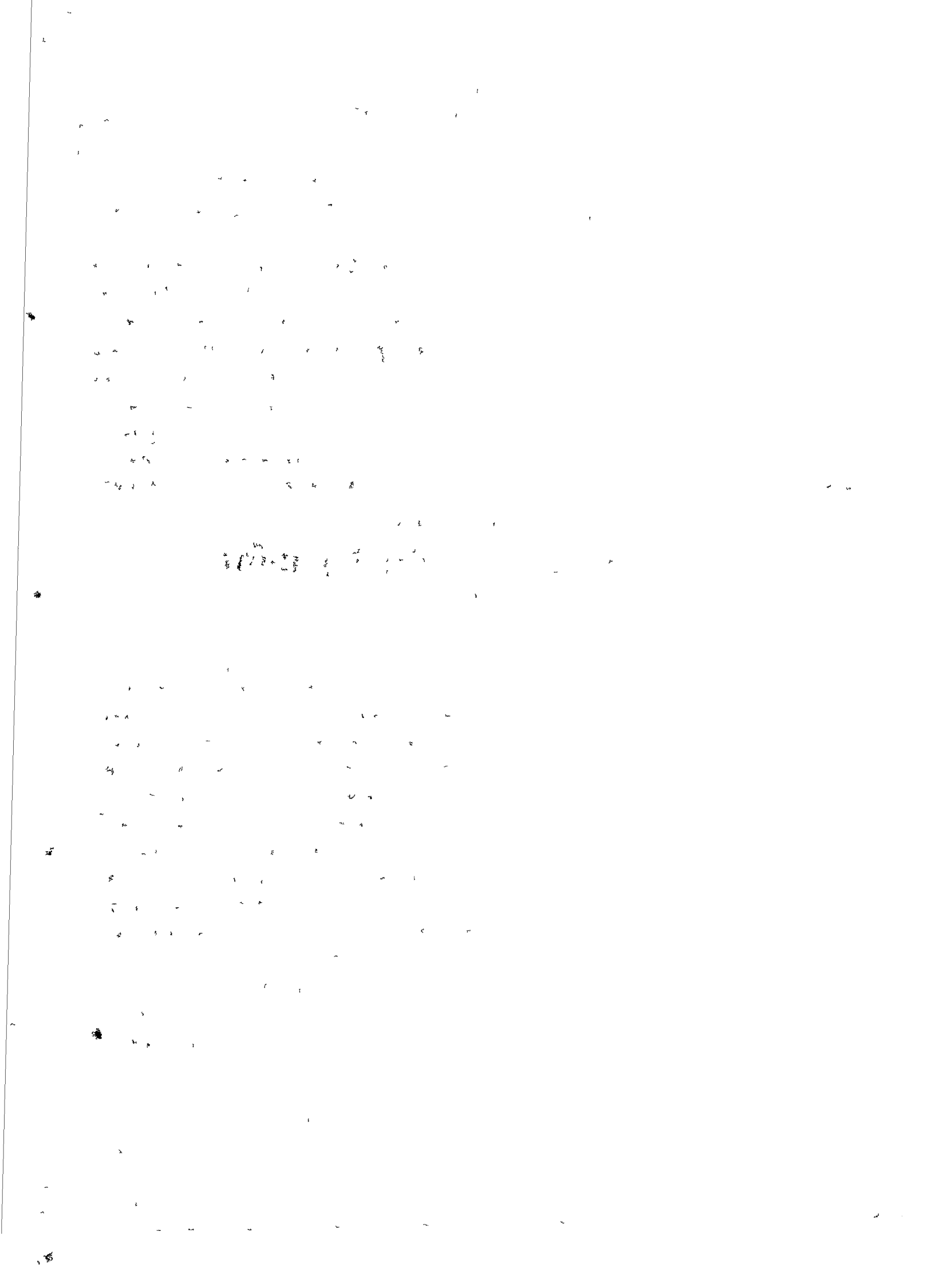
नोट-- यह मीठा और कड़वा (जगली) भेद से दो प्रकार का है। [प्रस्तुत प्रकरण में मीठे का वर्णन है। कड़वा या जगली चचेंडा आगे के प्रकरण में देखिये।

नाम--

सं०--चिचिण्ड, श्वेतराजि, सुदीर्घफल, गृहकूलक। हि०--चचेंडा, चिचिडा, गलरतोरी। म०--पडवल (गोड), ट्र काकडी। गु०--पंडोलु। व०--चिचिडा, होपा। अ०--स्नेक गोर्ड (Snake gourd) लै०--ट्रायकोसेंथिप कुकुमेरिना।

रासायनिक सघटन--इसमे जल ९५, खनिजपदार्थ ०.७, प्रोटीन ०.६, वसा १.३, कार्बोहाइड्रेट ४.४, कैल-शियम ०.०५, फासफोरस ०.०२, तथा प्र० श० ग्राम लोहा १.२ मिलीग्राम, विटामिन ए १६० इ० यू०, व विटामिन सी नाममात्र होता है।

गुणधर्म व प्रयोग--

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, विपाक मे मधुर, शीतवीर्य तथा--रोचन, दीपन, पाचन, हृद्य, अनुलोमन, वल्य, पथ्य, कफपित्तशामक, रक्तशोधक, ज्वर, अरुचि, अग्निमाद्य, आमदोष, विबन्ध, रक्तविकार, कास, कृमि, शोथ आदि नाशक है। क्षयरोग, ज्वर, कुष्ठ एव रक्तविकारो मे पथ्य रूप से यह सेवन कराया जाता है।

रेचनार्थ--इसके पके फल का प्रयोग तथा कृमि रोग पर इसके बीजो का प्रयोग किया जाता है।

मात्रा--स्वरस--१-२ तो० तथा बीज चूर्ण १-२ माशे तक। इसके पत्ते--पित्तशामक है। पचाङ्ग--कफघ्न, तथा मूल--रेचक है।

नोट--इसका सेवन अधिक प्रमाण मे करने से यह विशेषत शीत प्रकृति वालों के आमाशय को विकृत कर उदर, मस्तिष्क एव कामेन्द्रिय को निर्बल कर देता है।

चचेंड़ा (जंगली) [Trichosanthes Cucumerina]

गत प्रकरण के चचेंडा का ही यह एक जगली भेद है। इसकी लता भी उसी प्रकार की होती है, किंतु पत्ते कुछ छोटे, तथा फल बहुत ही छोटे १-२ इंच लम्बे परवल जैसे होते है। ये फल कडवे होने से ये कटु परवल कहलाते है। इसकी लता मे एक प्रकार की उग्र गन्ध आती है। फूल व फल-वर्षा से शीतकाल तक होते हैं। यह प्राय समस्त भारत के जगलो मे विशेषत दक्षिण के मलाबार प्रान्त मे तथा बगाल मे भी पाया जाता है।

नाम--

सं०--कटुपटोल। हि०--चचेंडा जंगली, कडुआ परवल, कडुआ परवल। म०--रान (कडु) पडवल। गु०--[illegible] पाडर, जंगली पटोल। व०--वनचिचिंगा, वन पटोल। लै०--ट्रायकोसेन्थिस क्युकुमेरिना।

गुण धर्म, प्रयोग

[illegible], [illegible], रक्तशोधक है। रक्त-विकार [illegible] मे तथा [illegible] या अजीर्ण मे--इसके फलो [illegible] मिलाकर देते हैं।

पत्र--स्वरस वामक है। बालो के झडने या गज रोग पर पत्र-स्वरस लगाया जाता है। पैत्तिक ज्वर मे--पत्र-चूर्ण व धनिया का क्वाथ बनाकर पिलाते हैं। यकृत्-विकार एव परावर्तित ज्वरो (विषम ज्वरो) मे पत्र रस का मर्दन यकृत स्थान पर व समस्त शरीर पर किया जाता है।

पञ्चाङ्ग--इसका पचांग हृद्य, पौष्टिक धातुपरिवर्तक एव ज्वरघ्न है।

हठी या प्रबल ज्वर मे--इसके पचाग चूर्ण तथा धनिया का शीत निर्यास, प्रात साय मधु के साथ पिलाया जाता है। अथवा-पचाग-चूर्ण के साथ सोठ, चिरा-यता मिला, क्वाथ सिद्ध कर मधु मिला सेवन कराते हैं।

बीज--कृमिघ्न, ज्वरहर, आमाशय विकृति नाशक है।

मूल--इसकी ताजी जड का स्वरस ५ तोला तक की मात्रा मे देने से आंतो मे ऐंठन सहित विरेचन होता है।

मात्रा--स्वरस ५ तोला तक, अधिक मात्रा मे देने से वमन होता है।

खटाई==मटर। मसरी==दारचीनी। पनगुर==हानो।

कर, वात प्रकोपक, मलावरोध, तृषावर्धक, बल्य, कांति-प्रद, तथा कफ, आम, शैत्य, स्वेद एवं थकावट को दूर करता है। त्वचारोग या रक्त विकार की दशा मे इसका अधिक सेवन हानिकर है, कुष्ठप्रकोपक है। किन्तु पानी मे पकाया हुआ अलोना चना या चने की रोटी कुष्ठादि रक्तविकार नाशक है। लोक कहावत मे कहा गया है कि–

"चना–चून को नून बिन, चौसठ दिन जो खाय। दाद, खाज अरु सेहुआ, जरा मूर से जाय।।" अर्थात्–चना के आटे की रोटी बिना नमक के ६४ दिन तक खाने से दाद, खाज सेहुआ जड से चला जाता है। (कुष्ठ रोग, उपदंश, फिरंगादिक रक्तदोष मे यह कल्प लाभदायक सिद्ध हुआ है (धन्वन्तरि–कल्प एवं पंचकर्म चिकित्साक) ध्यान रहे इस कल्प के सेवन के पूर्व साधारण विरेचनादि से शरीर-शुद्धि करा लेना विशेष आवश्यक लाभप्रद होता है। तभी यह कफ, पित्त एवं रक्तविकार नाशक होती है। इसके साथ थोडा घृत लेना भी आवश्यक है, अन्यथा यह रूखी गुरु,विष्टम्भकरी, तथा नेत्रो को अहित कर होगी।

प्रतिश्याय पर—ताजे भुने चने रात्रि मे सोते समय खाकर ऊपर से जल न पीवे। गर्म दूध पी सकते है। अथवा—

भुने हुए गरम चनो की पोटली बना गले को खूब सेके,पश्चात् उन्ही को खाये, अन्य कुछ न ले, पानी भी न पीवे। यह उपचार दिन भर उपवास करने के बाद रात्रि मे सोते समय करें। प्रात प्रतिश्याय दूर हो जायेगा। कफ प्रकृति वालो को यह रामबाण है।

–श्री ब्रह्मानन्द त्रिपाठी शास्त्री-वाराणसी।

ज्वरावस्था के अतिस्वेद पर–भुने चनो को महीन पिसवा अजवायन और वच का चूर्ण मिला मालिश करते है।

बहुमूत्र विकार मे भी भुने चनो का प्रयोग किया जाता है।

हृदय रोग पर–आयानी एस एन मेडिकल के डा के. एन माथुर ने जाहिर किया है कि रक्त मे कोलेस्टेरोल के प्रमाण की वृद्धि से जो हृदय रोग होता है वह चना के खाने से दूर होता है। तथा कोलेस्टेरोल का प्रमाणकम हो जाता है। बाजार मे इसकी जो पेटेंट औषधियां मिलती है वे बहुत मंहगी होती है। अत. चना खाना हृदय रोग के लिये हितावह है। (सुश्रुत मासिक)

पत्र––इसके कोमल पत्रो का शाक या भुजिया अम्ल रुचिकारक, दुर्जर, कफवातकर, मलावरोधक, पित्तशामक ज्वरहर तथा दंत-शोथ नाशक है। यह अश्मरी पर हित-कारी नही है।

अतिसार पर–कोमल पत्र १० तोला को गोघृत १ तोला, हींग १ रत्ती का छौंक देकर उसमे सेंधा नमक, छोटी पिप्पली ३-३ माशा, जायफल, कालीमिर्च व सोंठ १-१ माशा तथा धनिया व कतरी हुई अद्रक ६-६ माशे ये मसाला डाल, थोडा पानी भी डाल कर शाक पकाले। तैयार हो जाने पर उसमे खट्टे अनार का रस १ माशे डाल कर चावल के या चावल मूंग की खिचडी के साथ या ज्वार की रोटी से सेवन करे।

–अनुभूत योगमाला से

हिक्का पर–पत्तो का चूर्ण चिलम मे भर कर धूम्र-पान करने से आमाशय–विकृति एवं शीतजन्य हिक्का मे लाभ होता है। लू लगने पर एक कुल्हड में जरा डाल कर उसमे लगभग १० तोला शुष्क पत्र सायं भिगोकर प्रात छान कर जल पिलावे। पीसकर छाती पर लेप करें। और आम के पना का सेवन करावे।

मोच तथा संधि-भग पर पत्रो को पानी मे उबाल कर गरमागरम वफारा देकर पत्तो को बाधते हैं।

पंचांग–इसके ताजे क्षुप को कूट कर पानी मे उबाल कर वफारा देने से ज्वर तथा मासिकधर्म-विकृति मे लाभ होता है।

क्षार-चना––अम्ल, नमकीन, अति उष्ण वीर्य, दीपन, रुचिकर, तथा अजीर्ण,उदरशूल, आध्मान, मला-वरोध, पित्त-ज्वर, प्लीहावृद्धि, अम्लपित्त, अतितृषा, कंठशोष, लू लगना, दाह आदि नाशक है।

मात्रा––द्रव-क्षार ५-१० बूंद तथा शुष्क क्षार २-८ रत्ती, जल के साथ २-२ घंटे से २-३ बार, उदरशूल, आध्मान, विबन्ध आदि उदरविकारो पर दिया जाता है। अजीर्णजन्य श्वासावरोध या श्वास के दौरे पर या कष्टार्तव पर भी यह उपयोगी है। अश्मरी व मधुमेह मे इसका
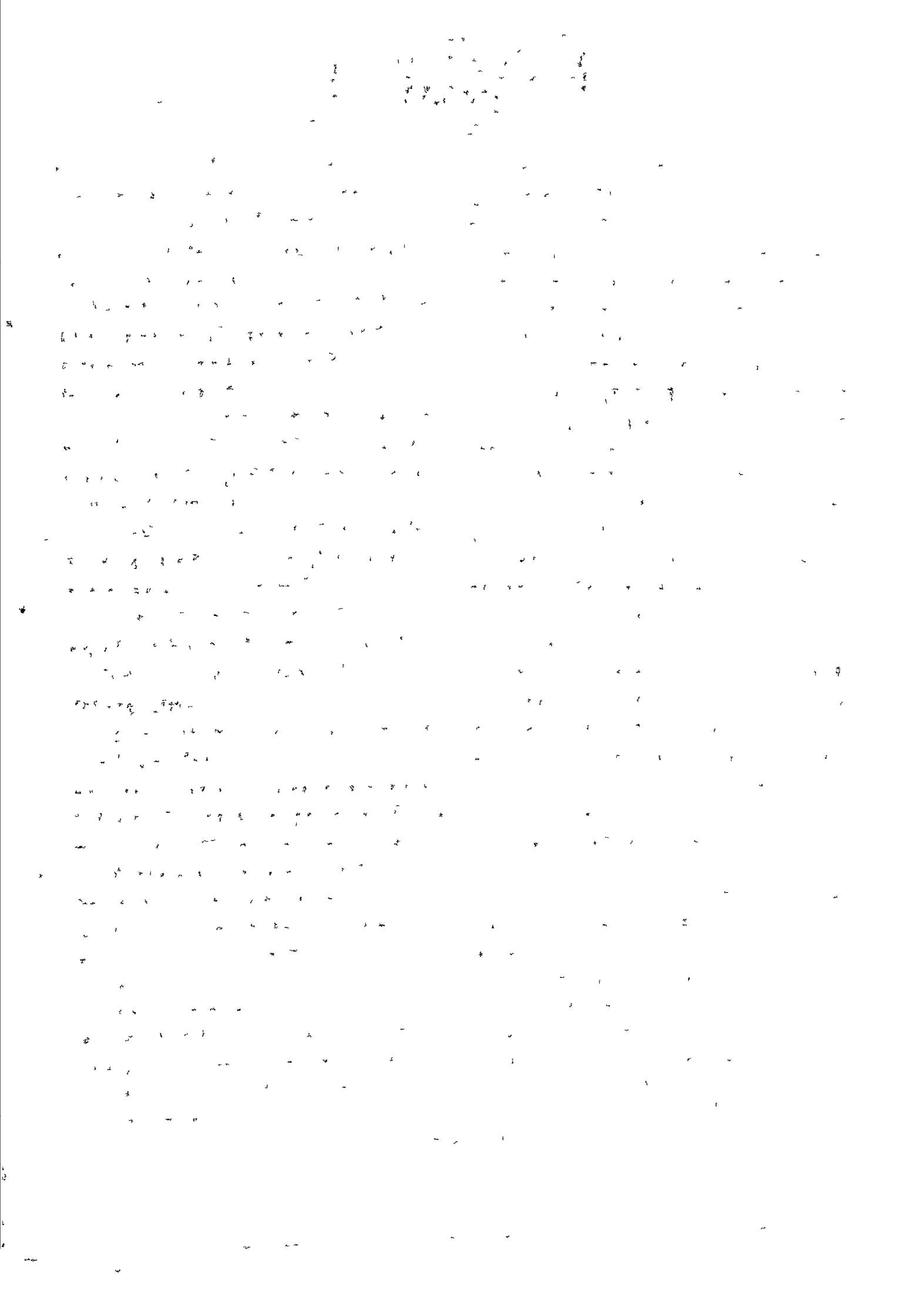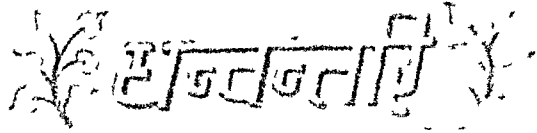
चन्दन (Santalum Album)

कर्पूरादि वर्ग एवं अपने चन्दन (Santalaceae) का यह प्रसिद्ध वृक्ष सदा हरा भरा २०-३० फुट ऊँचा होता है। छाल—बाहर से धूसर कृष्णाभ, लम्बे चीरों से युक्त एवं भीतर से रक्ताभ भंगुर, पत्र—विपरीत, नीमपत्र जैसे मुलायम, नुकीले १-३ इंच लम्बे, निर्गन्ध; पुष्प—गुच्छों में जामुनी रंग के कुछ पीताभ, निर्गन्ध, फल—मांसल, गोल ½ इंच व्यास के, कृष्णाभ बेंगनी रंग के होते हैं। वर्षा से शीतकाल तक पुष्प तथा बाद में फल लगते हैं। इसके वृक्ष प्राय २० वर्ष के बाद ही पक्व दशा में आते हैं। प्राय. ४०-६० वर्ष की आयु का यह वृक्ष उत्तम प्रकार से परिपक्व हो जाता है। तब ही इस के अन्दर के काष्ठ या सार-भाग में—उत्तम अति-सुगन्ध आती है, जब वह कडा एवं तैल युक्त हो जाता है, तब ही काटा जाता है। जबसे यह ज्ञात हुआ है कि इसकी जड में अधिक तैल होता है, तबसे इसे अच्छी तरह खोद कर जड मूल से बाहर निकाल कर अलग-अलग टुकडे करते हैं। परिपक्व व अपरिपक्व चंदन के काष्ठ, वर्ण, तैल तथा सुगंध में भी पार्थक्य होता है।

(१) श्वेत और पीत चंदन—भावप्रकाश के कथनानुसार पीत चंदन को लोक में कलम्बक तथा संस्कृत में कालीयक, पीताभ, हरिचंदन आदि कहते हैं। गुणधर्म में यह रक्तचन्दन के समान ही होता है, तथा विशेषत व्यंग (मुख की झाई) को यह दूर करता है।

आधुनिकों के शोधानुसार इस पीत चंदन का कोई स्वतन्त्र वृक्ष नहीं पाया गया है। किन्तु भावप्रकाश तथा धन्वन्तरि निघंटु में उत्तम श्वेत चन्दन (जिसका वर्णन प्रस्तुत प्रसंग में किया जा रहा है) के विषय में लिखा है कि घिसने इत्यादि पर जो पीत वर्ण का हो वह उत्तम श्वेत चन्दन है[1]। तथा श्वेत उत्तम चन्दन भी मलय पर्वत पर पाया गया है—'मलयोद्भवं पीत [illegible] हरिचन्दनम्' ध० नि०। इन दोनों [illegible] ध्यान तथा घिसने पर पीत वर्ण का दिखाई देना होता है किन्तु उत्तम श्वेत चन्दन [illegible] श्वेत वर्ण के काष्ठ-सार को श्वेत चन्दन और भीतर के पीतवर्ण के काष्ठ सार को पीत चन्दन मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है।

यहां भी गुणधर्म व प्रयोग की दृष्टि, जो चन्दन के प्रयोग के सम्बन्ध में [illegible] कहा है कि—उक्ते चन्दन शब्दे तु ग्राह्यं रक्त चन्दनम्। चूर्णे स्नेहासवालेहा [illegible] श्वेत चन्दनैः॥ कषाय लेपयोः प्रायो युज्यते रक्त चन्दनम्॥ अर्थात् योग में सामान्य चन्दन शब्द से रक्त चन्दन का ग्रहण करे। चूर्ण, स्नेह, आसवारिष्ट एवं लेह में श्वेत चन्दन लेवें। इस पीत चन्दन (श्वेत चन्दन के भीतर के काष्ठ सार) का प्रयोग भी रक्त चन्दन के जैसे हो सकता है। गुणधर्म में भी कोई विशेष भेद नहीं है। आगे रक्त चन्दन (चन्दन लाल) का प्रकरण देखिये।

(२) चरक के—दाह-प्रशमन, अंगमर्द-प्रशमन, तृष्णा-निग्रहण, वर्ण्य, कण्डूघ्न, एवं तिक्त स्कन्ध में; तथा सुश्रुत के सालसारादि, पटोलादि, सारिवादि, प्रियंग्वादि, गुडूच्यादि एवं पित्त-संशमन गणों में चन्दन लिया गया है।

सुश्रुत के सालसारादिगण में कुचन्दन व कालीयक का भी उल्लेख है। डल्हण ने सालसारादिगण एवं पटोलादिगण में कुचन्दन का अर्थ रक्त चन्दन किया है। तथा—कुचन्दन से ध० नि० के अनुसार पतंग भी लिया जाता है। यथा स्थान पतंग का प्रकरण देखिये।

इस प्रकार चन्दन शब्द से शास्त्रीय प्रयोगों में भिन्न-भिन्न अर्थों का ग्रहण करना विसंगत सा जान पडता है। चूर्णादि में चंदन से श्वेत चंदन तथा कषायादि में रक्त-

[1] स्वादे तिक्तं कषे पीतं छेदे रक्तं तनौ सितम्। ग्रन्थि-कोटर संयुक्तं चन्दनं श्रेष्ठमुच्यते॥ (भा० प्र०)
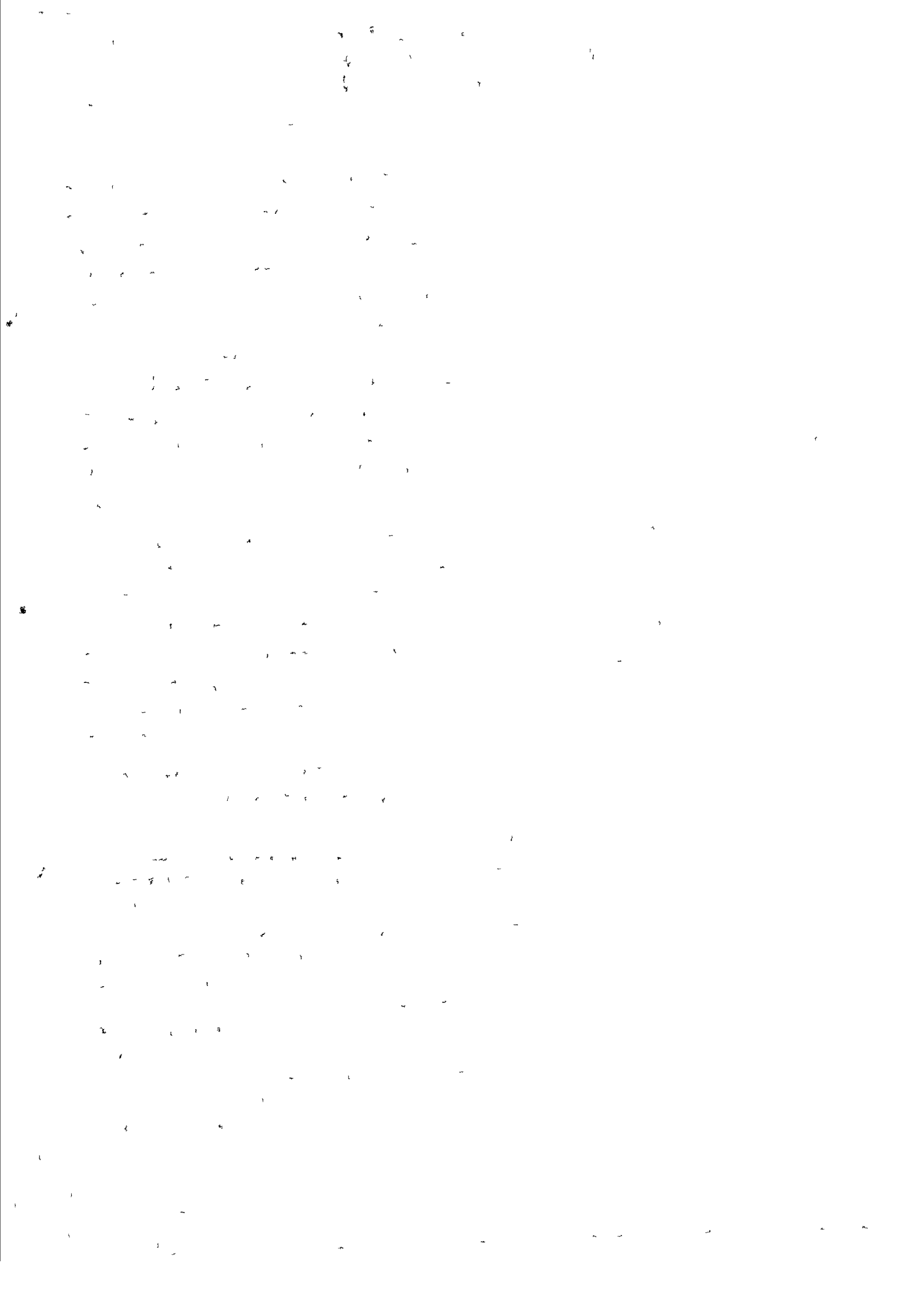
काण्डसार की अपेक्षा मूल मे तैल की मात्रा कुछ अधिक होती है।

इसके सार भाग के बुरादे को पानी मे भिगोकर बड़े-बड़े भवका यन्त्रो से परिस्रवण (Distilation) द्वारा यह तैल निकाला जाता है। प्राय १ मन चंदन की लकड़ी मे १० तो० उत्तम तैल निकलता है, जो पीताभ या रंगहीन, कुछ गाढा, चिपचिपा सा द्रव रूप मे, तीक्ष्ण सुगंधित एव स्वाद मे कटु तिक्त होता है। इसमे सेंटलोल (Santalol) नामक सत्त्व ६० प्र० श० होता है। इसे शीशियो मे खूब अच्छी तरह डाट बन्द कर, ठडे प्रकाश हीन स्वच्छ स्थान मे रखा जाता है। यह तैल पुराना होने पर भी सुगंधयुक्त रहता है, उसमे विकृति नही आती। बाजारू चन्दन तैल मे देवदारु तैल तथा रेडी तैल आदि की मिलावट की जाती है।

प्रयोज्य अंग--काण्डसार, तैल तथा छाल व बीज।

गुणधर्म व प्रयोग--

लघु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, कटु विपाक एव शीतवीर्य, कफपित्तशामक, ग्राही, सौमनस्यजनन, मेध्य, हृद्य, रक्तशोधक, कफ नि सारक, श्लेष्म-पूतिहर, मूत्रल, स्वेदल, अंगमर्द-प्रशमन, मूत्र मार्ग के लिये कोथ-प्रशमन, विषघ्न, तथा आमाशय, आन्त्र व यकृत के लिये बल्य है। इसका प्रयोग--तृषा, पाचन, दौर्बल्य, अतिसार, प्रवाहिका, कृमिरोग हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, रक्तपित्त, रक्तप्रदर, मानसिक दौर्बल्य, श्वेतप्रदर, गुल्मेह, मूत्रकृच्छ्र, पूयमेह, वस्तिशोथ, चर्मरोग, ज्वर, दाह, अंगमर्द आदि पर किया जाता है। जीर्ण कास मे इसके प्रयोग से कफ सरलता से निकलता एव कफ मे रक्त, पूय व दुर्गन्ध आना दूर होता है। इसका लेप--शामक, प्रदाह शमन, वर्ण्य, तथा पैत्तिक शिर शूल, विसर्प, दुर्गन्ध एव त्वग्दोषहर होता है। पित्त ज्वर, ताप ज्वर, एव जीर्ण ज्वर मे इसके प्रयोग से दाह, तृषा की शांति एव स्वेद उत्पन्न होकर ज्वर मे कमी होती, तथा ज्वर के कारण हृदय पर होने वाला विषैला परिणाम नही होता।

(१) रक्तातिसार, दाह, प्रमेह आदि पर इसे चावल के धोवन मे घिस कर मिश्री व मधु मिला पिलाते है, अथवा--इसका चूर्ण ८ रत्ती, मिश्री या खाड और मधु मे मिला, चावल के धोवन के अनुपान से सेवन कराते है। यह रक्तस्राव को भी दूर करता है। यदि इस प्रयोग को मूत्राघात, रक्तमेह एव सुजाक मे देना हो, तो उक्त मिश्रण मे मधु नही मिलाते।

(२) वमन पर--चन्दन चूर्ण ४ मा० तक, आमले के रस और शहद मे मिलाकर पीने से वमन शात होती है (वृ० मा०)--अथवा इसके साथ खस, सोठ व अडूसा पत्र समभाग लेकर कल्क करे, तथा मधु मिश्रित चावल-धोवन मे मिला पिलावे (भै० र०)। योग-रत्नाकर मे इस योग मे मृणाल (कमलनाल) भी समभाग मिलाया गया है।

(३) सुजाक (पूयप्रमेह) पर--उत्तम मलयागिरी चन्दन पानी मे घिसकर १ तो० कल्क निकाल ५ तो० शीत जल मे घोल दें, उसमे कलमी शोरा, जवाखार २-२ माशे पीसकर मिलादे। फिर मिश्री या शक्कर १ तोला मिला पिलावें। इस प्रकार दिन मे ३-४ बार पिलाने से मूत्र साफ खुलकर होता, दाह (चिनक) दूर होती एव पूय आना बन्द होता है। कुछ दिन के सेवन से सुजाक दूर हो जाता है।

(४) लू लगने पर तथा घोर तृष्णा पर--चन्दन घिसा हुआ २ तो०, शीतलचीनी १ तो०, कलमी शोरा ६ मा०, शक्कर १० तो० इनको आध सेर जल मे पीस-छान कर शर्बत बना ४ ५ बार मे थोडा-थोडा पिलाने से लू लगने का कष्ट दूर होता है।

घोर तृष्णा पर--इसके महीन चूर्ण को नारियल के पानी मे मिला कर पिलावे।

(५) प्रमेह पर--इसके साथ लाल चन्दन, मुलहठी, आवला, गिलोय, खस और मुनक्का इनका क्वाथ सिद्ध कर उसमे भूनी फिटकरी २-३ रत्ती मिलाकर सेवन से उपद्रवयुक्त प्रमेह, विशेषत रक्तमेह, हारिद्रमेह व माजिष्ठमेह समूल नष्ट होता है। (भै० र०)

(६) व्रणरोपणार्थ--चन्दनादि रोपण तैल--इसके साथ पद्माख, लोध, नीलोफर, फूल प्रियंगु, हल्दी, और मुलहठी इनके कल्क १ पाव मे दूध ४ सेर
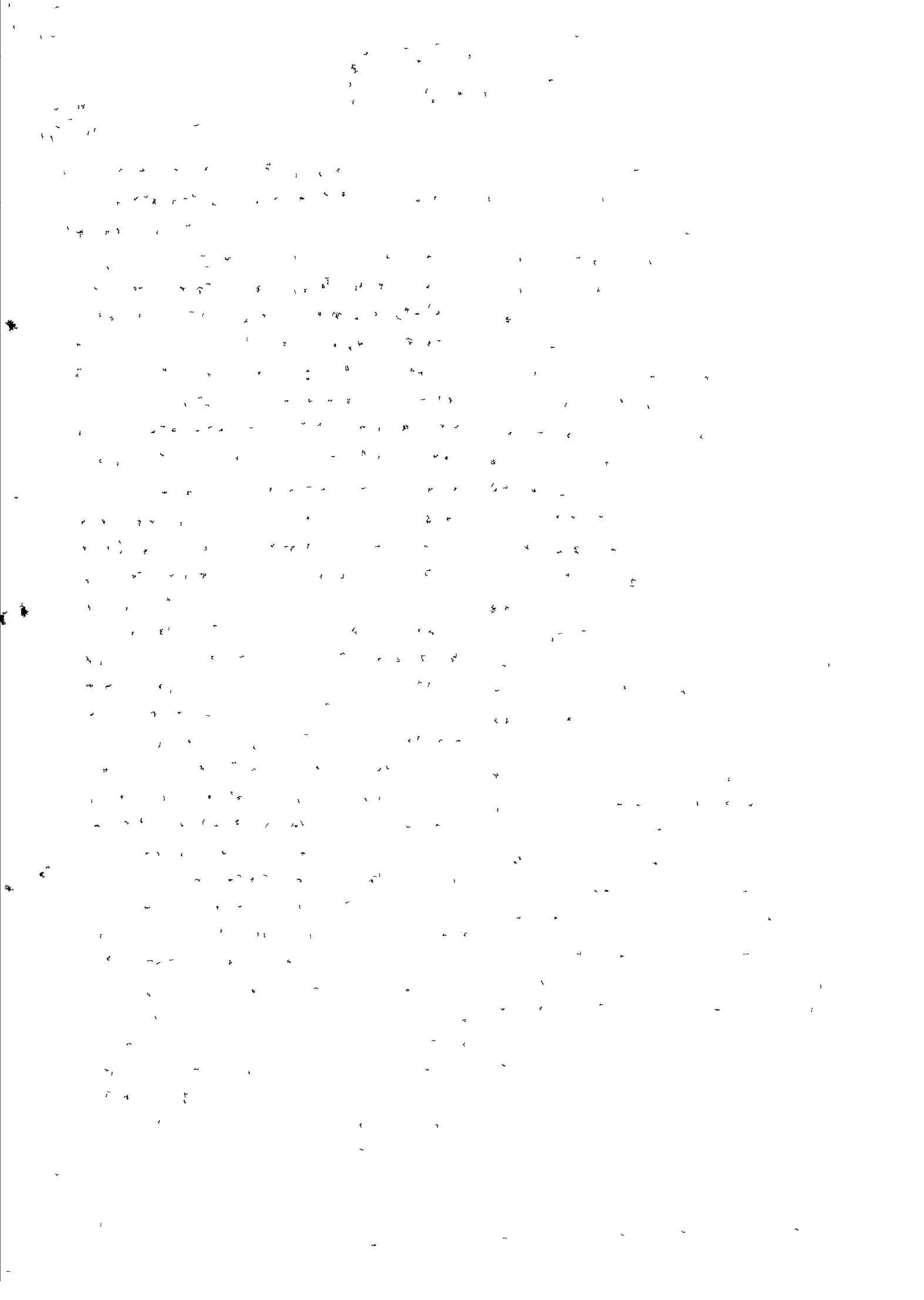
कर या दूध के साथ देने से बहुत लाभ होता है। यदि जलन अधिक हो तो इसे ५--१० बूद की मात्रा में प्रत्येक घन्टे पर देते है। पूयस्राव के बन्द हो जाने पर भी लगभग १४-१५ दिनो तक इसे देते रहने से रोग की पुनरावृत्ति नही होने पाती। यह प्रयोग--इलायची व वगलोचन के साथ अथवा सोठ या अजवाइन के फाट के साथ विशेष लाभकारी है। इसमे मूत्रदाह एवं वस्ति शोथ मे भी लाभ होता है।

अथवा--वंशलोचन तथा छोटी इलायची के बीज १-१ तोला दोनों का महीन चूर्ण कर उसमे उत्तम चदन का तैल मिला कर छोटी २ सुपारी जैसी गोलिया बना ले। प्रात साय १-१ गोली ४ तोला शीत जल मे घोलकर उसमे ६ मा मिश्री चूर्ण मिला पिला दे। इससे शीघ्र ही ६ पहर के अन्दर पूयप्रमेह की जलन शात होती, तथा ७ दिन मे सुजाक तथा स्त्रियो के प्रदर पर भी पूर्ण लाभ होता है। (व गु)

(१४) जीर्ण-वस्तिशोथ (Cystitis), गवीनीमुख शोथ (Pyelitis), मूत्र कृच्छ्र, तथा वस्ति के राजयक्ष्मा-उपसर्ग से बार-बार पेशाब होता हो, तो इसके तैल की मात्रा बताशे में डाल कर दूध के साथ सेवन कराते हैं।

(१५) जीर्ण कास मे--दुर्गन्धयुक्त कफ निकलता हो, तो इसकी २-४ बूदें बताशे पर डाल सेवन कराते है।

(१६) नाक की फुन्सियो पर---इसके तैल मे दुगना सरसो तैल मिला फुरहरी से लगाते हैं। खुजली, पामा आदि पर बड़े नीबू के रस मे मिलाकर लगाते है। वैसे ही कर्णशूल, दन्तशूल एव शोथ आदि अनेक चर्मरोगो पर भी इसका स्थानिक उपयोग किया जाता है।

बीज---चन्दन के बीज उष्ण है। गर्भपात या गर्भ-स्राव के लिये पिचुवर्ति के रूप मे योनिमार्ग मे इनको धारण कराते है।

छाल---वृक्ष की छाल को पीस कर विसर्प, खुजली आदि चर्मरोगों पर लेप करते है।

विशिष्ट योग---

चन्दनादि अर्क (हिस्टीरिया पर)---इसका उत्तम बुरादा, [illegible] हि, गाजर लाल रग की (इसके अन्दर के श्वेत भाग को निकाल दे), लाल कमल, लाख (पलास की या नीम की), ब्राह्मी (नई सूखी), शंखपुष्पी, ब्रह्मदडी, जटामासी और जवाखार २०-२० तो० लेकर चूर्ण कर ३० सेर जल मे शुद्ध मटके मे भरकर २४ घटे बाद भबके से अर्क खीच ले। अर्क खीचते समय कस्तूरी १॥ मा० और केसर ३ मा० इन दोनो को नाल के मुह पर बाध देना चाहिये, जिसमे वाष्प-जल टपकते समय इन दोनो द्रव्यो से युक्त हो पात्र मे टपके। फिर शीशी मे भरकर रख दें।

मात्रा--१ से ५ तो० तक प्रात. साय देवे। इससे योषापस्मार (हिस्टीरिया) अवश्य दूर होता है। पथ्य मे दूध भात देवे, तथा स्नान टब के जल मे बैठकर करें। (धन्वन्तरि प्रयोगाक से)

नोट---शुक्रमेह, पूयप्रमेह एव पौष्टिक चन्दनासव के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह मे देखे। अथवा अन्य ग्रन्थों मे देखें।

(२) चन्दन पाक या खमीरा सन्दल (पित्तविकार-नाशक)---चन्दन चूर्ण १० तोले थोडे गुलाबजल के साथ सिल पर अच्छी तरह पीस कर उसमे आध सेर गुलाब-जल मिला २४ घन्टे तक ढाक रक्खे। फिर मन्द आच पर पकावे। आधा जल शेप रहने पर छान कर उसमें ६० तो० मिश्री मिला, पक्की चाशनी होने पर पाक जमा दे, अथवा गुलकन्द जैसा खमीरा हो जाय तो उतार कर शीशी मे भर रक्खे।

मात्रा--१ तो० से २ तो० तक प्रात साय सेवन कर, ऊपर से दूध पीवें। इससे मूत्र साफ होता एवं पित्त-विकार शात होकर मस्तिष्क को परम शाति प्राप्त होती है। शरीर मे किसी प्रकार का दाह, उष्णता नही रहने पाती, तृषा व घबराहट शीघ्र दूर होती है। सुजाकग्रस्त रोगी के लिये विशेष लाभदायक है।

यदि उक्त प्रयोग खमीरा जैसा बन जाय तो मात्रा ७ मा० से १ तो० तक अर्क गावजवा १२ तो० के साथ सेवन करने से हृदय की धडकन, हृदय का डूबना, हृदय की कमजोरी पर यह विशेष लाभकारी होता है।

नोट--पाक के अन्य उत्तमोत्तम प्रयोग 'बृहत्पाक-संग्रह' में देखिये।

चन्दन रक्त

PTEROCARPUS SANTALINUS LINN.
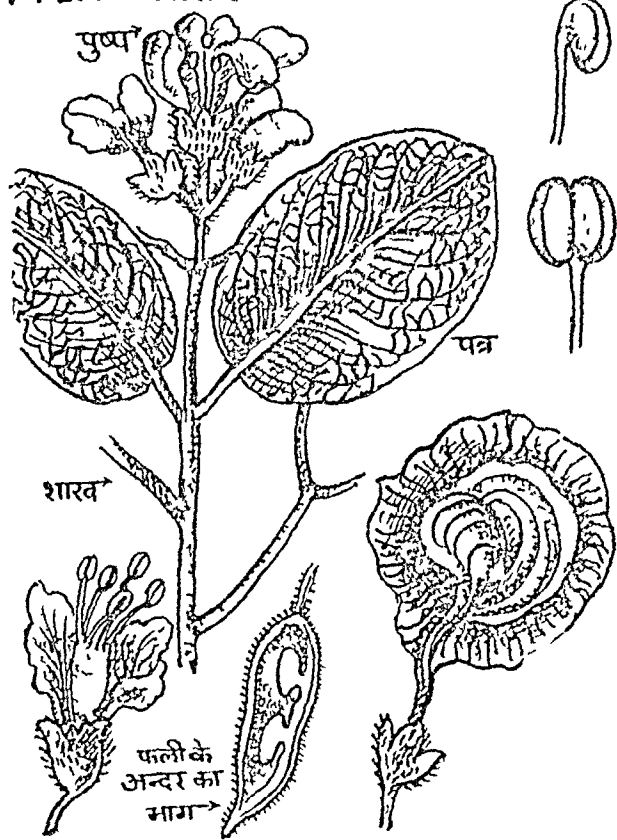
(१) सुश्रुत के पटोलादि, सारिवादि, प्रियग्वादि-गणो मे इसकी गणना की गई है।

(२) इसके बीज प्राय लाल घुमची (गुजा) जैसे होने से शायद किसी-किसी ने इसे बडी घुमची मान लिया है। तथा इसे कोई-कोई कुचन्दन कहते है। किन्तु बडी घुमची (रजन) इससे भिन्न है। यथा स्थान रजन (बडी घुमची) का प्रकरण देखें।

कई रक्त चदन से पतग ग्रहण करते हैं। यद्यपि पतग और रक्त चदन के वृक्षो मे बहुत कुछ साम्य है, तथा रक्त चदन के स्थान मे पतग की लकडी औषधि-कर्म मे लेते भी है तथापि पतग इससे भिन्न ही है। यथा-स्थान पतग का प्रकरण देखिये।

नाम—

स०—रक्त चन्दन, तिलपर्णी, रक्तसार, प्रवालफल, क्षुद्रचन्दन इ०। हि०—लाल चदन, रक्त चदन। म०—रक्त-चदन, राता निलि। गु०—रक्तफली, लाल चंदन। ब०—रक्त चदन। अ०—रेड सेन्डल वुड (Red sandal wood) रेड सेन्डर्स (Red sanders) ले०—टेरोकार्पस सेंटालिनस।

रासायनिक सघटन—इसमे एक स्फटिकाभ लाल रग का तत्त्व सेंटालिन (Santalin), सेंटालिक एसिड (Santalic acid), सेंटल टेरो कार्पिन (Santal pterocarpin) नामक एक अविलेय श्वेत स्फटिकाभ पदार्थ, होमोटेरो कार्पिन (Homopterocarpin), ग्ल्युकोसाईड, तथा रजक द्रव्य होते है।

प्रयोज्य अंग—काण्डसार।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, विपाक मे कटु, शीतवीर्य, कफपित्त शामक, (अधिकाश मे कफकर), स्तम्भन, रक्त-शोधक, दाह-प्रशमन, नेत्रहितकर, वीर्यवर्धक तथा वमन, तृषा, अतिसार, रक्तार्श, रक्तविकार, कुष्ठ सग्रहणी, दाह, ज्वर आदि मे प्रयोजित है।

दाह, क्षत, शोथ, शिर शूल, चर्मरोग, एव नेत्र विकारो मे इसका शीतल लेप किया जाता है। यह लेप व्रणरोपण भी होता है। नेत्रपलको की सूजन पर इसके लेप से लाभ होता है। ग्राही होने से अन्य औषधियो के साथ इसका क्वाथ अतिसार, सग्रहणी आदि मे देते हैं।

(१) रक्तपित्त पर—इसका चूर्ण और कमल-पुष्प दोनो के शीत कषाय मे मिट्टी का ढेला खूब तपा कर बुझावे। ठडा होने पर उसमे मिश्री व शहद मिला पिलावे। (वा० भ०) अथवा—

इसका चूर्ण, खस और लोध्र के क्वाथ से सिद्ध पेया का पान रोगी को करावे। (व० से०)

अथवा—इसके साथ खस, नागरमोथा, धान की खील, मूग, पीपल और इन्द्र जौ समभाग मिश्रित २ तो० जौकुट कर रात्रि के समय खिरेटी के क्वाथ मे भिगो प्रात काल छानकर पिलाने से रक्तपित्त अवश्य नष्ट होता है। (वा० भ० चि० अ० २)

यदि कफयुक्त रक्तपित्त हो तो इसके साथ इन्द्रजौ, पाठा, कुटकी, धमासा, गिलोय, खस और लोध समभाग
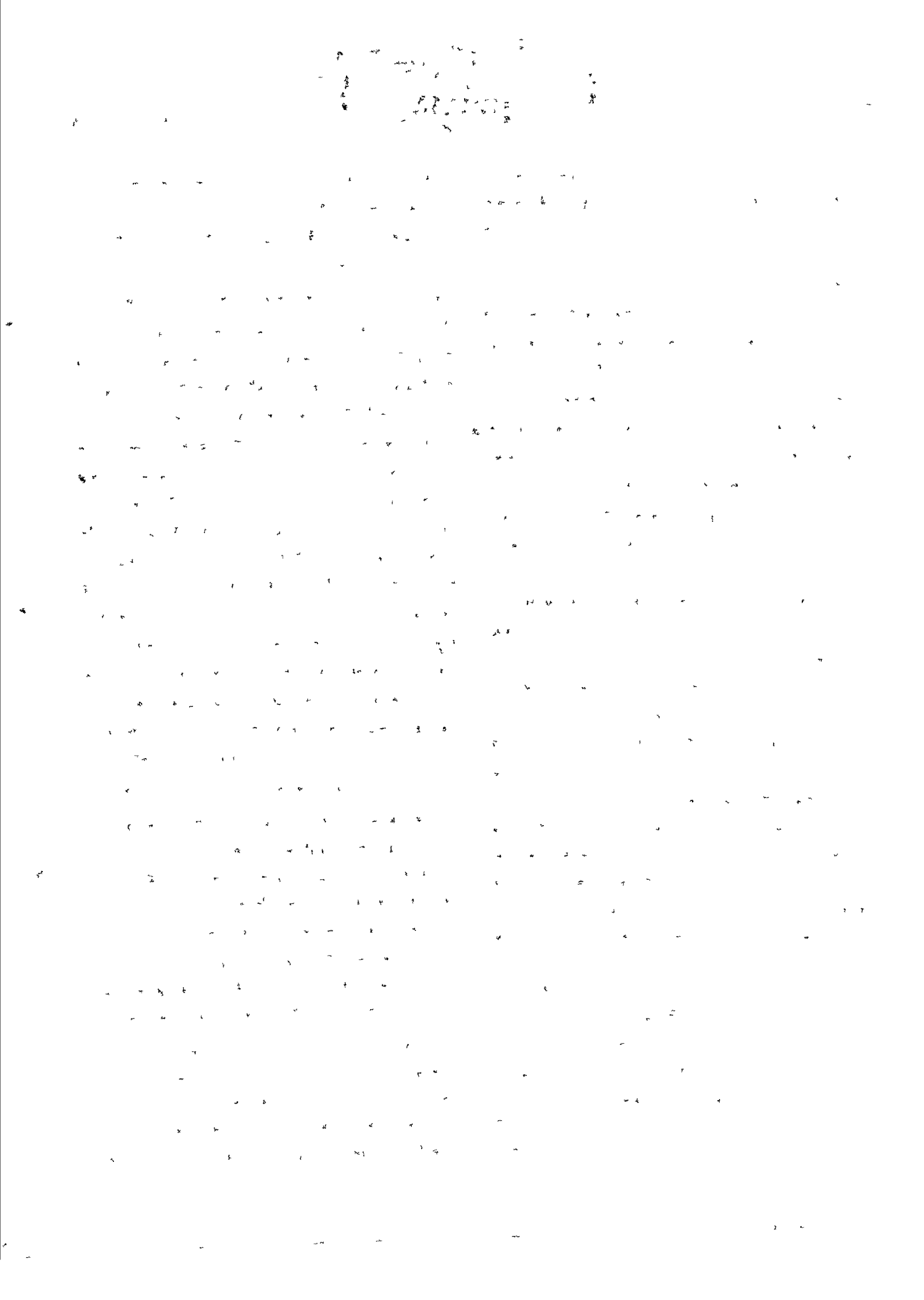
नीम-पत्र को दूध मे या शीत जल मे पीस कर लेप करते है। दाह पर—इसे ७ माशे तक चावल के धोवन मे पीस कर मिश्री मिला पिलावे। बालको के उदर मे रक्त-ग्रन्थि हो तो इसके साथ समुद्र फल को जल में पीसकर पिलावें। अग्निदग्ध व्रण पर—इसके साथ, वंशलोचन, गेरू और गिलोय को खूब महीन पीस घृत मिला लेप करते हैं। तारुण्य पिटिका (मुंहासे) पर—इसके साथ हल्दी को भैंस के दूध मे पीस कर लेप करते हैं।

चन्दरस-देखिये—कहरुवा। चन्दलोई शाक—देखिये माठ (लाल साग)। चन्द्रजीत—देखिये—दन्ती वडी। चन्द्रजीत लाल—देखिये—दन्ती वडी। चन्द्रमूला—देखिये वच (सुगन्ध)। चपरी—देखिये खेसारी।

चमेली (Jasminum Grandiflorum)

पुष्पवर्ग एवं पारिजात-कुल (Oleaceae) की इसकी खूब फैलने वाली लता होती है। इसका काण्ड मोटा नही होता, किन्तु पतली-पतली शाखाएं बहुत लम्बी बढ जाती हैं। इन्हे यदि सहारा न मिले तो ये भूमि पर ही खूब फैल जाती है। ये शाखाए कड़ी एव धारीदार, पत्र—अभिमुख, संयुक्त, २-५ इंच लम्बे, नोकदार, छोटे-छोटे गोल, अग्रभाग का पत्र कुछ अधिक लंबा, पुष्प—वर्षाकाल मे, पत्रकोण से, या शाखा के अन्त मे मजरी मे, बाहर से गुलाबी आभायुक्त श्वेत वर्ण के, ५ पखुडीयुक्त १-१॥ इच व्यास के, ¾-१ इच लम्बे होते है। यह भारत मे प्राय सर्वत्र ही बागो मे पुष्पो के लिये बोया जाता है। पुष्प दीखने मे तो सुन्दर नही होते, किन्तु सगन्ध अति मनोहर एवं दूर तक फैलने वाली होती है।

नोट—श्वेत और पीत पुष्प भेद से इसके दो प्रकार हैं—यहाँ श्वेतपुष्प वाली चमेली का वर्णन किया जा रहा है। पीत पुष्प या पीताभ श्वेत-पुष्प वाली को पीली चमेली (स्वर्ण जाति) कहते हैं। इन दोनों के गुण-धर्म में कोई विशेष भेद नहीं है। पीताभ श्वेतपुष्प वाली को कहीं-कहीं जुही भी कहते हैं। चमेली, जुही और मालती इन तीनों में बहुत घोटाला हो गया है। इन तीनों के गुण धर्म प्रायः एक समान ही है। किंतु जुही जो उक्त पीताभ पुष्प वाली चमेली से भिन्न है, उसके पुष्प चमेली से छोटे होते हैं। यथा स्थान 'जुही' का प्रकरण देखिये। मालती के पत्र कुछ लम्बे, फूल बहुत ही बारीक तथा कुछ टेढे से होते है, यह प्राय ग्रीष्म ऋतु मे सुपुष्पित होती है। यथा स्थान 'मालती' का प्रकरण देखिये।

चरक के कुष्ठघ्न गण में इसका उल्लेख है जंगली चमेली का वर्णन खुरहर प्रकरण मे देखिये।

नाम—

सं०—जाति, सौमनस्यायनी (मन को प्रसन्न करने वाली), चेतिका, हृद्यगंधा, मालती (भावप्रकाश मे मालती और चमेली को एक ही माना है) इ०। हि०—चमेली। म०—चमेली, जाई। गु०—चवेली। बं०—चामेली, जाति, जुई। अं०—स्पेनिश जेस्मीन (Spanis Jasmine)। ले०—जेस्मिन ग्रेंडी फ्लोरम।

रासायनिक सघटन—इसके पत्रो मे—राल, वेतसाम्ल (Salicylic acid), जेस्मिनीन (Jusmmine) नामक क्षार तत्व तथा कुछ कषाय द्रव्य होते है।

प्रयोज्य अंग—पत्र, पुष्प और मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

श्वेत और पीत दोनो चमेली लघु, स्निग्ध, मृदु, तिक्त कषाय, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य हैं। ये त्रिदोष-शामक, अनुलोमन, रक्तप्रसादन, मूत्रल, वाजीकरण, आर्त्तवजनन तथा कुष्ठ, कडू, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, नपुसकता, मुखरोग एव मस्तिष्क और नेत्ररोगो मे लाभकारी है। श्वेत चमेली पीत की अपेक्षा कुछ अधिक उष्ण और खुश्क होती है।

पत्र—कडुवे, व्रणशोधक, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, मुखरोग नाशक, दातो को दृढ करते है। मुख-रोगों मे इसके क्वाथ से कुल्ले कराते, दतशूल तथा दंतदौर्बल्य मे पत्रो को चबाते है।

नीचे बांधने तथा यदि मलावरोध हो तो मृदु विरेचन देने से लाभ होता व मासिक-धर्म की रुकावट दूर होती है।

(५) वमन पर–पत्र-रस में थोडी पीपल और काली मिर्च का चूर्ण तथा शक्कर व शहद मिला २-३ बार १-१ घंटे में चटाने से पुराना वमन–विकार दूर होता है। (ग नि)

(६) सन्निपात–ज्वर में जात्यादि क्वाथ–इसके पत्ते, आमला, नागरमोथा, और धमासा इनका क्वाथ सन्निपात ज्वरनाशक है। ज्वर में दोष विवद्ध हों, रुके हुए हों, तो इस क्वाथ में गुड (क्वाथ से चतुर्थांश) मिला पिलावे। (च चि अ. १)

(७) कास पर (जात्यादि धूम्रपान)–इसके पत्ते, मैनसिल, राल और गूगल समभाग लेकर, बकरी के मूत्र में पीस कर गोली बना चिलम में रखकर या अन्य किसी प्रकार से उसका धूम्रपान करने से खांसी नष्ट होती है। इसके धूम्रपान से कफ निकल जाता व हृदय तथा कंठ का अवरोध दूर होकर कास–श्वास में लाभ होता है। अथवा–

इसके पत्ते और जड तथा बेरी के पत्ते, मयूर, मैनसिल व गूगल समभाग पीसकर वत्ती बनावे। उसे बेरी के कोयलों की आंच पर जला कर धूम्रपान करायें। (यो०र०)

(८) रतौंधी (नक्तान्ध्य) पर जातिपत्र–रसाजन–इसके पत्रों का रस, शहद, हल्दी, रसौत और गाय का गोबर (गोबर का रस) समभाग लेकर चूर्ण-योग्य द्रव्यों (हल्दी व रसौत) का महीन चूर्ण कर सबको एकत्र मिला खूब खरल करें। इसे नेत्रों में आंजने से रतौंधी दूर होती है (व से.)।

(९) नेत्र की फूली (शुक्ल) पर इसकी कोंपल व मुलैठी के चूर्ण को घृत में भून कर मन्दोष्ण जल में पीसे छान कर उसमें किंचित् कपूर घिसकर इसकी बून्दें नेत्र में टपकाने से फूली नष्ट होती है। (व से)

इसके पत्तों को रेंडी पत्रों में लपेट उसपर मिट्टी का एक अंगुल लेप कर, पुटपाक कर इसके पत्रों का रस कांसे के पात्र में लेकर उसमें समुद्र फल को घिस आंजने से आंख का फरकना, खुजली, अधिमंथादि विकार नष्ट होते हैं। (यो. त)

पुष्प—सौमनस्यजनन, मेध्य, वाजीकरण, मूत्रल, आर्त्तव जनन है। नेत्र रोगों में—पुष्पों का लेप करते तथा उसका स्वरस नेत्रों में डालते हैं। सिर पीडा में–फूलों के रस को, या फूलों को गुलरोगन के साथ पीसकर नस्य देते हैं। स्तम्भन के लिये–फूलों को पीसकर शिश्न पर लेप करते हैं। मुख की झांई या व्यंग पर–पुष्पों को पीसकर लेप करते हैं। गर्भाशय से या मुख से रक्तस्राव होने पर फूलों का रस १ से ३ तोले तक ३ दिन पिलावें। नेत्र की फूली पर–फूलों की पखुडियों को थोडी मिश्री के साथ खरल कर लगाते हैं।

(१०) नेत्र के विकारों पर–(जाति पुष्पादि गुटिका) पुष्पों की कलियां, जवाखार और लाल चन्दन समभाग पानी के साथ पीसकर गोलियां बनाले।

इसे पानी के साथ पत्थर पर घिसकर नेत्रों में आंजने से काच, तिमिर तथा पटल नाम के नेत्र रोग नष्ट होते हैं। (भा भै र)

पित्तज और रक्तज नेत्र-रोगों पर–(जात्यादिवर्त्ती)–इसके पुष्प, जवाखार, शंख-चूर्ण, त्रिफला, मुलैठी और खिरेटी-मूल समभाग चूर्णकर आकाश जल में पीस कर वत्तियां बनाले। इसे आकाश-जल में घिसकर आंजने से लाभ होता है। (व से)

नेत्रपाक (आंख दुखने) पर–इसके फूल, सेंधानमक, सोंठ, पीपल के बीज (छोटी पिप्पली को रात्रि के समय दूध में भिगोकर प्रात हाथों से मलने पर उसके छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं) और वायविडङ्ग का सत (विडंग को कूटकर १६ गुने जल में पकावे, चौथाई शेष रहने पर छानकर पुन पकावे गाढ़ा हो जाने पर उतार कर शुष्क करले) ये सब समभाग महीन पीस, खरलकर सुरमा जैसा बनालें। इसे शहद में मिलाकर आंजने से अवश्य लाभ होता है। (भा भै. र.)

तन्द्रानाशार्थ—इसके फूल और कोंपल, कालीमिर्च, कुटकी, वच व सेंधानमक समभाग का चूर्ण कर, बकरे के मूत्र में घोटकर आंख में लगाने से तन्द्रा का नाश होता है। (यो० र०)

(११) योनि-दुर्गन्ध पर (जात्यादि घृत)--इसके फूल,
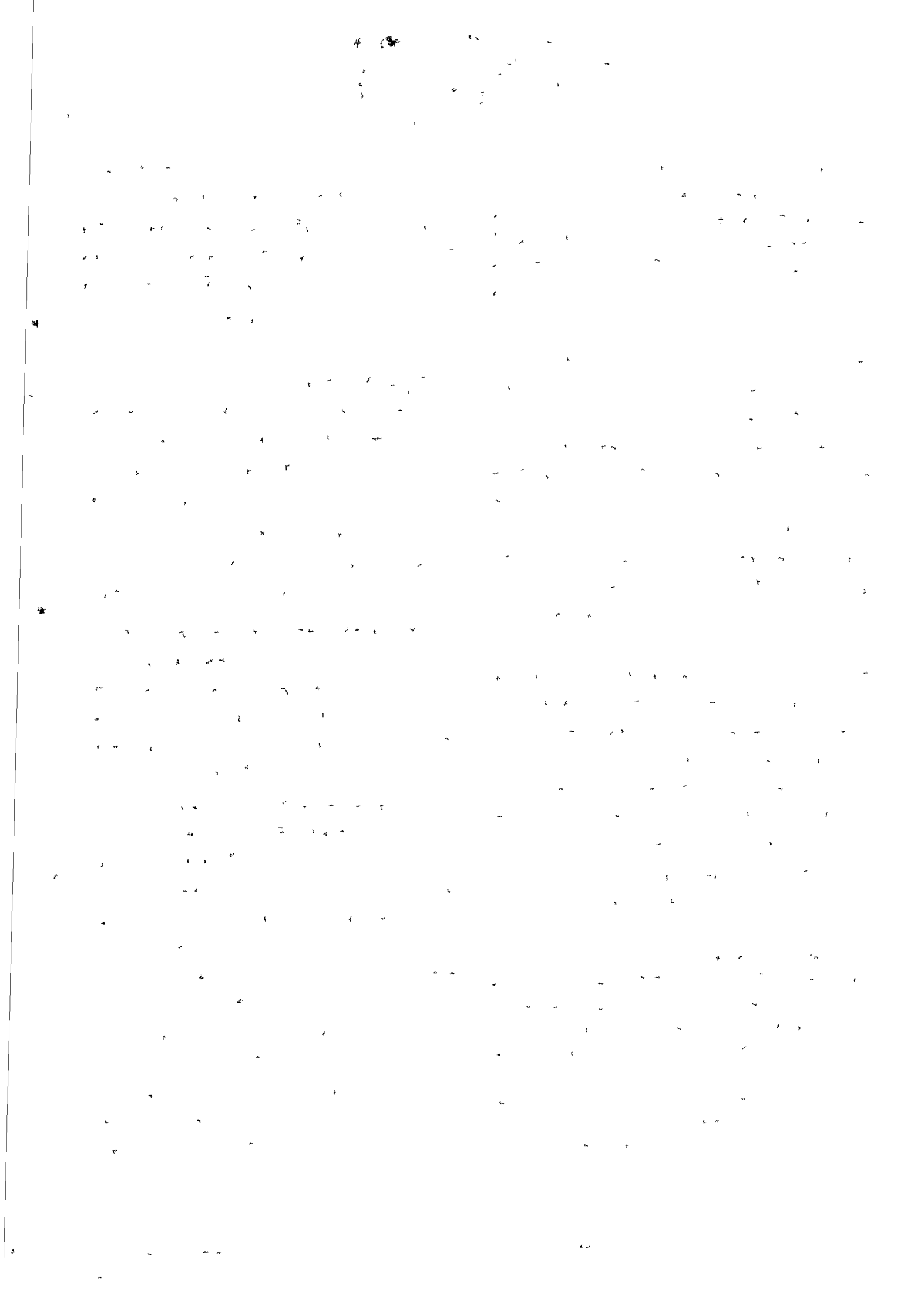
एकत्र मिला मद आँच पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रक्खें। इसके लगाने से सर्व प्रकार के जहरी घाव, खाज, खुजली, अग्निदग्ध की दाह, मर्मस्थान के व्रण, आदि में शीघ्र लाभ होता है। (व० च०) किन्तु इस तैल की अपेक्षा निम्न जात्यादि घृत और भी श्रेष्ठ लाभदायक है।

(३) जात्यादि घृत—उक्त तैल के प्रयोग के ही सब द्रव्य (केवल करजपत्र, कूठ, पद्माक, लोध और हरड को छोडकर) १-१ तो० लेकर (मोम को अलग रख) कल्क कर गोघृत ६५ तो० और पानी या इसका पत्र-रस घृत से चौगुना एकत्र पकावे, घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रख ले। इसका मलहम बनाना हो, तो उक्त मोम को पिघला कर घृत मे मिला दे यह जात्यादि मलहम बन जावेगा। उक्त प्रयोग मे चमेली-पत्र रस के लिये, पत्रो को पानी के साथ पीस-छानकर रस निकाल लेना चाहिए।

यह घृत या मलहम, मर्म-स्थानो के व्रण, पूर्वयुक्त घाव तथा गहरे, पीडायुक्त और जिनका मुख छोटा हो ऐसे व्रण एवं नाडी व्रण (नासूर) को शुद्ध कर भर देता है। (भै० र०)

चम्पा (पीला) Michelia Champaca

पुष्प-वर्ग एवं अपने चम्पक कुल (Magnoliaceae) का यह मझले या बडे कद का, सदैव हरा रहने वाला, सुन्दर वृक्ष बाग-बगीचों मे लगाया जाता है। शाखाए खडी, फैली हुई तथा पास-पास होती है, छाल—बाहर से धूसर, भीतर रक्ताभ, पत्र—एकान्तर, ८-१० इञ्च लम्बे, २-४ इञ्च चौडे, चिकने, चमकीले, तीक्ष्णाग्र, पत्रवृन्त—छोटे व मोटे, पुष्प—वसन्त, वैसाख मास से लेकर वर्षा-काल तक, फीके या गहरे पीतवर्ण के, २-३ इञ्च लम्बे, १-२ इञ्च व्यास के, महीन केशर युक्त ४-५ या अधिक पखडी वाले, भ्रमर नाशक, मन्द उग्र सुगन्धयुक्त (इसकी मादक गन्ध के कारण कहा जाता है कि भौंरा इसके पास नहीं जाता), फल—गोल-गोल छोटे-छोटे, फलो का एक सगठित गुम्बजाकार गुच्छ सा पुष्प-कोषो से अलग निकलता है। कई वृक्षो मे फूलों के झड जाने के बाद अत्यधिक फल आते है। ऐसे वृक्षो मे फिर कई वर्षो तक पुष्प नही आते। ये फल प्राय शीतकाल मे पक जाते हैं। इन फलो मे श्यामाभ लाल वर्ण के गोल बीज तन्तुओ पर लटके हुए होते हैं। वृक्षों की उत्पत्ति इन बीजो से ही होती है। बीजो से जो तैल निकाला जाता है, वह गाढा होता है।

इसके वृक्ष बगाल, आसाम, ट्रावणकोर, नीलगिरी, नेपाल, बर्मा मे अधिक होते है। और भी कई स्थानो मे ये लगाये जाते हैं, विशेषत मालवा मे ये पेड अधिक देखे जाते हैं।

इसके कई भेद है, जैसे श्वेत (पीला) चपा (Michelia Niligarica), अग्रेजी मे हिल चपा (Hill Champa) आदि। यह ऊचे पहाडों पर, दक्षिण भारत के पश्चिमी घाटों, नीलगिरी तथा सीलोन के पहाडों पर अधिक होता है। इसका पत्ता पतला, श्वेत रग का। शाखाए और पत्ते उक्त पीले चपा जैसे। फूल—श्वेत फीके रग के। इसकी फलिया लम्बी और मुलायम लगती हैं, तथा बीज लाल होते है।

इसमे एक उडनशील तथा स्थिर तैल, चरपरी राल, टेनिन, शर्करा, स्टार्च, कैलशियम आक्जलेट (Calcium Oxalate), एक कटु तत्त्व आदि पदार्थ पाये जाते हैं। इसकी छाल के फाण्ट या क्वाथ का प्रयोग, उक्त पीली चपा के जैसा ही ज्वरनाशनार्थ किया जाता है। शेष गुण धर्म भी वैसे ही हैं।

इसका ही एक भेद कनकचपा और होता है, जिसे शायद लेटिन मे माइनीलिया-हीडी (M Rheedi) कहते है। इसके भी पेड उक्त चपा जैसे, तना पतला, पत्ते का निम्न पृष्ठ-भाग झालरदार एव रोमयुक्त, फूल लगभग ५ इंच लम्बे, पाच सकरी (विशेष चौडी नही)
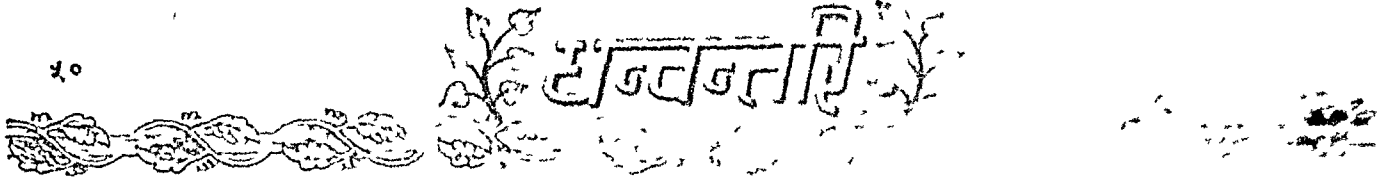
के चूर्ण को मधु से चटाते है। अतिसार मे—इसकी छाल और अतीस के चूर्ण का मिश्रण थोड़ी २ मात्रा में जल के साथ देते है। दिन मे ३-४ बार देने से ज्वरसहित आमातिसार तथा पक्वातिसार में भी लाभ होता है।

(१) विषम ज्वर पर—छाल २।। तो० जौकुट कर १०० तोले पानी मे पकावे। आधा शेष रहने पर छान कर, इसे ज्वर के पूर्व ५-७ तो० तक पिलावे। इस प्रकार २-२ घंटे से, देने पर नियतकालिक मियादी ज्वर नष्ट हो जाता है। (डॉ मुहीन शरीफ)

अथवा—छाल के मोटे चूर्ण का फाण्ट बनाकर सेवन करावे या इसका महीन चूर्ण ५ से १५ रत्ती की मात्रा मेजल के साथ देते रहे। जीर्ण ज्वर मे भी यह प्रयोग दिया जाता है। फाण्ट की विधि वि० योगो मे देखें।

कुष्ठ आदि चर्म रोगो पर—छाल चूर्ण ३ माशे तक दिन मे ३ बार जल के साथ, २ से ६ मास तक सेवन करने से रक्तशुद्धि व कीटाणुनाश होकर सब प्रकार के त्वचा-रोग दूर हो जाते है। दाद, खुजी, पामा, कच्छू, सिध्म, किलास (श्वेत कुष्ठ), विचर्चिका, चर्मदल (हाथ पैरो के तलवो मे जलनयुक्त खुजली), विपादिका आदि विकार दूर होते है। यह सामान्य औषधि होते हुयेअति दिव्य गुणकारी है। (गा० औ० र०)

(३) कंठ को ग्रन्थि-शोथ पर—वृद्ध मनुष्यों की ग्रसनिका-ग्रन्थियो (Tonsils) की वृद्धि हो जाने पर, छाल चूर्ण मुख मे रखकर रस निगलते रहे। छाल की मात्रा पूरी देवे, जिससे १-२ दस्त लग जाय तो अच्छा है। जिस प्रकार बालको की उक्त ग्रन्थियो की वृद्धि मे बच्छनाग गुणकारी है, वैसे ही वृद्धो के लिये चपा की छाल हितकर है। (गा० औ० र०)

मूल एवं मूल की छाल—विरेचन, आर्त्तवजनन, गर्भाशयोत्तेजक है। नारू पर—मूल को पानी मे पीस-छानकर पिलाते है।

(४) कष्टार्त्तव पर—मूल-छाल की चाय (फांट) बनाकर पीने से आर्त्तव साफ हो जाता है। थोडी मात्रा मे पीवे, अन्यथा विरेचन या अतिसार होने की सम्भावना है।

(५) व्रण पर—मुलैठी तथा चम्पा छाल के चूर्ण को दही मे मिला, पूययुक्त फोड़े पर बांधने से वह अच्छी तरह पक जाता, या बैठ जाता है।

(६) वृक्काश्मरी पर—मूल और इसके पुष्प को बकरी के दूध मे पीस छान कर पिलाते है।

पुष्प—कटुवे, शीतल, मूत्र-निःसारक, आध्मान-नाशक, उत्तेजक, वातशोथ निवारक, विष-विकार-नाशक, हृद्य, कफ निःसारक, कास, कुष्ठ, चर्मरोग और व्रण मे लाभकारी है। मूत्रकृच्छ्र तथा पूयमेह मे इनका प्रयोग करते है। दाह-प्रशमन होने से दाह पर पुष्पों का लेप करते है। कर्ण-पीड़ा पर—पुष्प रस किंचित् गरम कर कान मे डालते है। मुख या चेहरे की झाईं, कोठ पर फूलों की कलियों को पानी या नींबू-रस मे पीस कर लगाते है। मूत्रकृच्छ्र मे—फूलों को पानी के साथ पीसकर ठंडाई की तरह पिलाते है। सिर-दर्द पर—पुष्प-तैल (वि० योग मे देखें) को सिर पर लगाते है। संधिवात पर—पुष्प-तैल की मालिश कर ऊपर इसके पत्ते बांधते है। उदर-पीड़ा पर—फूलों का क्वाथ पिलाते है। चित्तोन्माद मे—ताजे फूलों को पीसकर शहद से चटाते है। व्रण पर—फूलों के कल्क की पुल्टिस बना बांधने से वह फूट कर शीघ्र सुधर जाता है।

(७) सुजाक (पूयमेह) पर—फूलों का फाण्ट दिन मे ३ बार पिलाते रहने से, मूत्र की जलन दूर होती व कीटाणु नष्ट होकर भीतर का घाव भर जाता है। रोग दूर होने पर भी कुछ दिनो तक इसका सेवन करे। फिर गिलोय, गोखुरू व आवलों के चूर्ण (रसायन चूर्ण) का सेवन ४–६ मास तक करते रहना चाहिये, क्योंकि सुजाक की जड शीघ्र दूर नही होती।

(८) उदर-कृमि पर—फूलों का स्वरस शहद मिलाकर दिन मे २ बार देते रहे। इससे कृमि निकल जाते हैं और भावी उत्पत्ति रुक जाती है। (गा० औ० र०)

(९) वाजीकरणार्थ—पुष्प-तैल की मालिश शिश्न पर करते तथा चम्पक-पाक का भी सेवन करते है। तैल और पाक की विधि—वि० योगो मे देखिये।

(१०) प्रतिश्याय मे—वि० योगो मे 'चम्पकासव' देखे।

से दुर्गन्धित मल रूप कफ के विपुल प्रमाण में निकलने पर, गठिया, सन्धिवात, मूर्च्छा आदि में मर्दन के काम आता है। वाजीकरणार्थ या शिश्न को सशक्त करने के लिए इसकी मालिश शिश्न पर की जाती है।

(५) चम्पा-पाक—इसके २१ फूलों को, गौलते हुए पानी में धोकर, महीन पीस कर गोदुग्ध दो सेर में मिला पकावें। खोया जैसा हो जाने पर, नीचे उतार कर उसमें कौंच-बीज, बादाम-बीज, चिरोंजी, मुनक्का, पिस्ता महीन कतर कर २-२ तो० तथा तमाल-पत्र, छोटी पीपल, जावित्री, इलायची, मालती, गोखुरु, रूमीमस्तगी और लौंग १–१ तो० सब का महीन चूर्ण कर उक्त खोये में अच्छी तरह मिला दें। फिर १ सेर शक्कर की चाशनी में सब को मिला, उसमें ५ तो० घृत और १ तो० अफीम का चूर्ण मिला खूब घोटकर नीचे उतार लें, तथा कस्तूरी ३ मा०, भीमसेनी कपूर ८ रत्ती, केशर ६ मा० और पंजाबी सालम मिश्री का चूर्ण ५ तो० मिला, २ मा० के मोदक या गोलियां बनालें।

प्रतिदिन स्वात्मानुसार प्रातः-सायं गोलियों का सेवन कर ऊपर से मिश्री मिला गोदुग्ध पान करने से प्रबल काम-शक्ति की जागृति होती है, शरीर पुष्ट होता तथा चाहे जितना परिश्रम करे थकावट नहीं होती है। (जंगल की जड़ी-बूटी, व० न० से साभार)

नोट—पाक के अन्यान्य उत्तमोत्तम प्रयोग 'वृ० पाक संग्रह' में देखिये। उक्त पाक की पूर्ण विधि भी उसमें देखिये।

(६) चम्पकासव—इसके छाया शुष्क फूल २॥ सेर को १३ सेर जल में पकावें। ७ सेर क्वाथ शेष रहने पर, छान कर शुद्ध मटके में भरें। ठंडा हो जाने पर उसमें मधु ४ सेर, धाय फूल १ पाव तथा अफीम, काकड़ाशिंगी व छोटी पीपल का चूर्ण ४–४ तो० मिला, सन्धान कर १५-२० दिन सुरक्षित रखें। फिर छान कर बोतलों में भर रखें। मात्रा—१ से २॥ तो० सेवन से जुकाम, सर्दी, कोष्ठबद्धता दूर होती है, क्षुधावर्धक है।

अन्य योग—वृ० आसवारिष्ट संग्रह में देखें।

चम्पा (श्वेत) (Plumeria Acutifolia)

कुटज-कुल (Apocynaceae) के इसके वृक्ष छोटी जाति के, साधारण ऊंचे, तथा बहुत कमजोर होते हैं, शाखाएं थोड़े ही झटके से टूट जाती हैं, एवं प्रायः सर्वांग में दूध जैसा रस होता है। शाखा की ग्रन्थीकलम (गुट्ठी) जमीन में गाड़ देने से ही वह लग जाती है, वृक्ष पैदा हो जाता है। छाल—मटियाली भूरे रंग की, पत्र—आम्र-पत्र जैसे किंतु अधिक लम्बे दलदार, हरे रंग के, फूल—वसंत ऋतु में, दलदार ५ पखुड़ीयुक्त, ऊपर से श्वेत, कुछ लाल आभायुक्त, किसी-किसी में लाल आभा भी नहीं होती है। भीतर से सुन्दर कुछ पीले वर्ण का होता है। फूलों को सूंघने से हल्की मीठी सुगन्ध आती है। इसके पुराने वृक्ष में क्वचित् कहीं-कहीं फलियां लगती है।

इसके वृक्ष की कलम भारत में प्रायः सर्वत्र बागों में लगाई जाती है। दक्षिण भारत के समुद्रतटवर्ति प्रदेशों में ये वृक्ष प्रचुरता से पैदा होते हैं।

नोट—इसी के कुल का, इसकी ही एक जाति, तथा रूप रंग एवं गुणधर्म में इसके समान ही एक और चम्पा (P Acuminata) होता है इसे लेटिन में प्लुमेरियाआलबा (P Alba) भी कहते हैं।

सं०—क्षीरचम्पक श्वेत चम्पक। हि०—सफेद चम्पा, गुलाचीन, गुलचीन, खुरचम्पा, गोबरचम्पा, इ०। म०—पांढरा चम्पा, खुरचम्पा। गु०—हाड़ चम्पा। बं०—गोरुर चांपा, गरुड चांपा। अं०—जसमाईनट्री (Jasmine tree) ले०—प्लुमेरिया एक्युटि फोलिया।

रासायनिक संघटन—इसमें अगोनियाडिन (Agoniadin) नामक एक कड़ुवा ग्लुकोसाइड, उड़नशील तैल, प्लुमेरिक एसिड (Plumeric acid) आदि पाये जाते हैं।
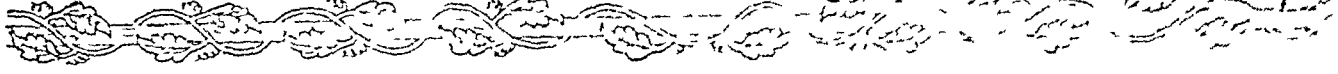
फली—साधारण सर्प विष नाशक है। कहा जाता है कि इसकी फली को पानी मे औटाकर पिलाने से या पानी मे पीस-छान कर पिलाने से सर्प-विष शीघ्र उतर जाता है। किन्तु ये फलिया बहुत ही कम मिलती है। अत वे यदि कही प्राप्त हो जाय तो इन्हे दूध मे उबाल कर रखने से बहुत दिन तक नही बिगडती। इस की फली पुरानी को पानी मे पीस कर पिलाने से भी विष दूर हो जाता है।

नोट—मात्रा-चूर्ण १-३ माशे तक।

यह उष्ण प्रकृति वालों के लिए अहितकर है। उस की हानि-निवारणार्थ—छाछ और मक्खन का सेवन कराते हैं।

चम्पा—दे—मोगरा मे। चरस—दे.—भाग में। चरेल—दे.—चिलबिल। चवन्नी गाछ—दे.—ममीरी।

चव्य (Piper Chaba)

हरीतक्यादि वर्ग एव पिप्पली कुल (Piperaceae) की इसकी बहुवर्षायु, पराश्रयी लता, काली मिर्च या पिप्पलीलता जैसी, किन्तु बहुत मोटी एव विस्तृत होती है। काण्ड एव शाखाए फूली हुई ग्र थियों से युक्त कडी होती हैं। पत्र–खाने के पान (नागर पान) जैसे किन्तु छोटे, ५-७ इच लम्बे, २-३॥ इच चौडे, अंडाकार, अनीदार, ऊपरी पृष्ठ भाग चमकीला, ३ सिराओ से युक्त, पुष्प दण्ड—पत्रकोण (पत्र तथा शाखा के मध्य भाग) से निकला हुआ, सीधा लाल रग के नन्हे २ फूल एव फलो के गुच्छो से युक्त होता है। पुष्पदण्ड मे कई शाखा प्रशाखाए होती है, जिस पर गुच्छे १॥ इच लम्बे एवं चौथाई इंच मोटे होते है। फूल व फल वर्षा के अन्त मे आते हैं।

फल—बहुत छोटे, गोल, इच के अष्टमाश भाग के व्यास के, कुछ सुगधित एव कडवे (चरपरे) होते है। मालूम नही इन फलो को गजपीपल (पीपल जैसे किंतु उससे मोटे और लम्बे) कैसे कहा जाता है? सभव है इस पिप्पली की ही कोई अन्य जाति की लता हो, जिसे चव्य मानकर उसके मोटे, लम्बे पिप्पली सदृश फलो को गजपीपल कहते हो। आधुनिक वैज्ञानिको की गज पीपल का वर्णन गजपीपल के प्रकरण मे पीछे यथास्थान देखिये।

नोट—लता के काण्ड, मूल एव शाखाओं के छोटे २ धूसर रग के टुकडो को ही चव्य कहते है। कोई २ काली मिर्च की जड को ही चव्य मानते है। चरक के दीपनीय, तृप्तिघ्न, अर्शोघ्न, शूलप्रशमन एवं कटु स्कन्ध में तथा सुश्रुत के पिप्पल्यादि गण मे इस की गणना है। अन्य आचार्यों ने पचकोल और षड्षण [1] मे इसे लिया है।

इसका मूल निवास-स्थान मलाया द्वीप है, किन्तु भारत मे अति प्राचीन काल से विशेषत मलाबार, बगाल व कूचबिहार मे इसकी लताए पाई जाती हैं।

नाम—सं-चव्य, चविका, उषणा इ। हि-—चव्य,चाब, चवक इ। म—चवक, काकला, चावचिनी। गु.—चवक। द—चई, चोई, चेअर। ले—पायपर चावा, पा आफिसिनारिम (pofficinarum)

गुणधर्म व प्रयोग—कफ वातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, आदि इसमे प्राय पीपलामूल के ही सब गुण हैं। इसमे अर्शोघ्न गुण की विशेषता है।

यह अरुचि, अग्निमाद्य, अजीर्ण, अतिसार, उदर-रोग, वृक्कव्याधि- कास, श्वास आदि मे प्रयुक्त होती है। अर्श या गुदजरोगो मे इसे (चव्य चूर्ण) सीधु (ईख के सिरके

[1] पिप्पली,पिपरामूल,चव्य,चित्रक व सोंठ के मिश्रण को पचकोल कहते हैं। यह रस व विपाक मे कटु, रोचक, तीक्ष्ण, उष्ण, पाचक, उत्तम दीपक, वातनाशक तथा गुल्म, प्लीहा, उदर-रोग, अफरा व शूल नाशक एवं पित्त प्रकोपक है।

उक्त पचकोल (पचोषण) के द्रव्यों मे कालीमिर्च मिला देने से षड्षण कहलाता है। इसमें उक्त सब गुण हैं। तथा यह अधिक रूक्ष, उष्ण और विष नाशक है।
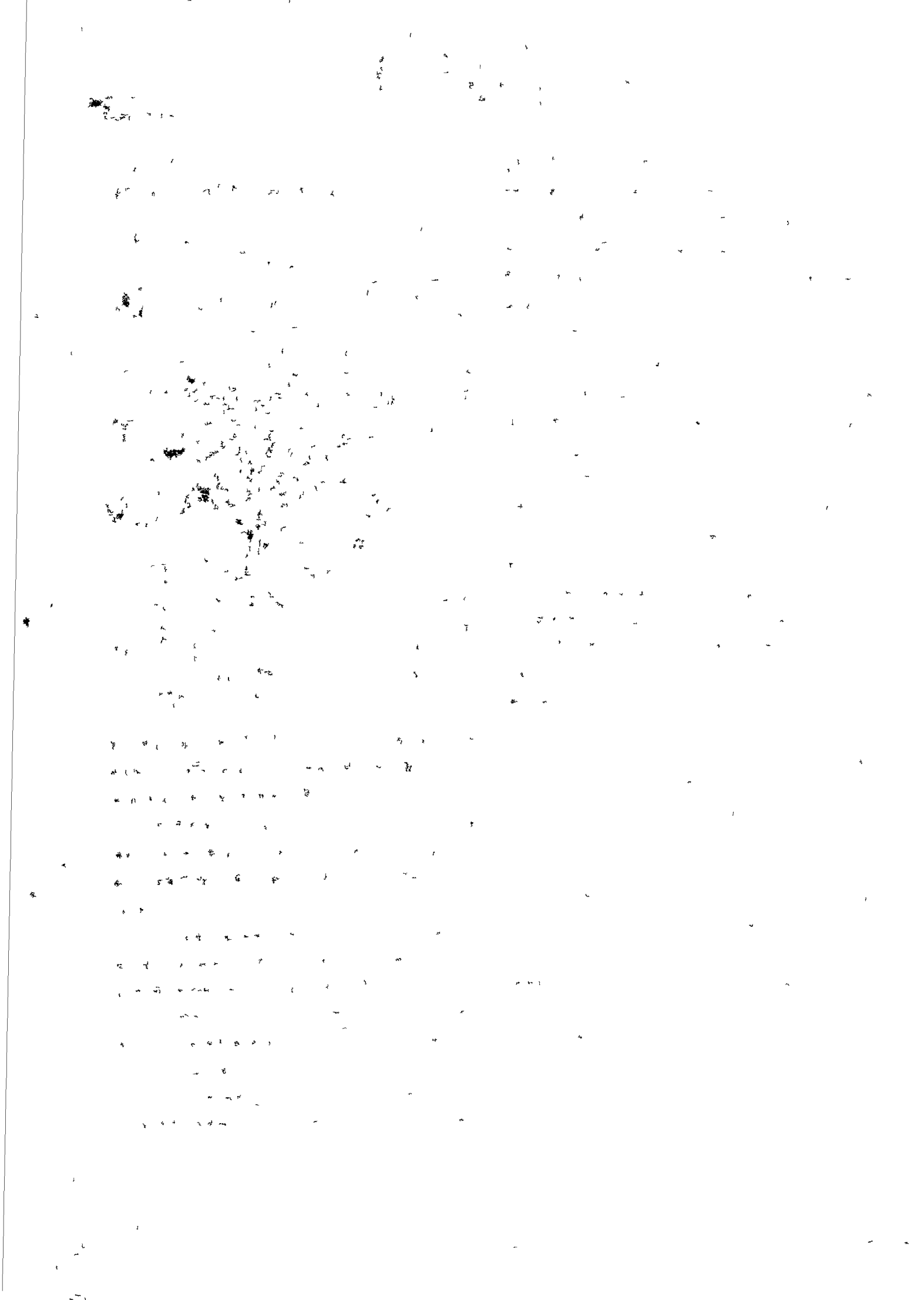
७ अर्क--भवका (नलिका-यंत्र) द्वारा खीचा हुआ इसके पचाङ्ग का अर्क अति रुचिकारी तथा विशेषत अर्श आदि गुदज-रोग नाशक होता है।

नोट--मात्रा--चव्य चूर्ण १-२ माशा तथा फल चूर्ण--२ से ४ या ८ रत्ती तक।

विशिष्ट योग—

(१) चव्यादि घृत—चव्य, सोठ, काली मिर्च, पिप्पली, पाठा, यवक्षार, धनिया, अजवायन, पीपलामूल, काला नमक, सेंधा नमक, चित्रक, बेलगिरी और हरड समभाग कुल १ सेर का कल्क कर, गोघृत ४ सेर, उत्तम जमा हुआ दही १६ सेर व जल १६ सेर मे एकत्र मिला, घृत सिद्ध करले। मात्रा—६ मा० से १ तो० तक, सेवन से मल व वात का अनुलोमन होता तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, गुदशूल, वक्षण-शूल आदि नष्ट होते हैं। (भै० र०)

चव्यादि घृत न० २—चव्य, पाठा, त्रिकटु, पीपलामूल, धनिया, बेल की छाल, जीरा, हल्दी, तुलसी, हरड व सेधा नमक १-१ तो० लेकर सबका कल्क कर, उसमे गोघृत ५२ तो० तथा घृत से चौगुना जल मिला, यथाविधि घृत सिद्ध करलें। मात्रा—१ तो० से १॥ तो० तक गर्म दूध के साथ सेवन करने तथा इस घृत की मालिश से अर्श के मस्से, वातरोग एव अश्मरी मे लाभ होता है। (हा० सं०)

चव्यादि घृत न० ३—चव्य, कुटकी, इन्द्र जौ, सोया और पाचो नमक (सेंधा, सचल, सामुद्र, काच, विड) ५ ५ तौला लेकर कल्क करें।

तथा उक्त द्रव्यो को १-१ सेर पानी लेकर, जौकुट कर ७२ सेर पानी मे पकावें। चतुर्थांश क्वाथ शेष रहने पर, छानकर उसमे उक्त कल्क और ४॥ सेर घृत मिला, घृत सिद्ध करले।

१ से २ तो० की मात्रा मे सेवन से अर्श नष्ट होकर ग्रहणी दीप्त होती है—(भा० भै० र०)

नोट—श्वास, कास नाशक चव्यादि घृत का पाठ वाग्भट मे देखिये। गुल्म, प्रमेहादि नाशक चविकासव अन्य ग्रन्थों मे या हमारे वृ० आ० सग्रह में; स्वरभेद, पीनसादि नाशक चव्यादि चूर्ण भै० र० में तथा चव्यादि लौह रस ग्रन्थों मे देखिये।

चांगेरी (Oxalis Corniculata)

शाकवर्ग एवं अपने ही चागेरी कुल[1] (Geraniaceae) की इसकी लता भूमि पर फैलने वाली, पत्र-काण्ड-भूमि से कुछ उठा हुआ लम्बा, जिसमे पत्र—प्राय तीन-तीन (कही चार चार भी) सयुक्त, गोलाकार के, पुष्प-नन्हे-नन्हे पीत वर्ण के पुष्पदण्ड पर होते है। फली—१-१॥ इंच लम्बी गोल (गावदुम जैसी), रोमावृत एवं इसके बीज छोटे-छोटे बादामी रग के होते है। पुष्प और फल शरद ऋतु मे आते हैं।

यह भारत में सर्वत्र प्राय उष्ण प्रदेशों की आर्द्र भूमि मे खडहर या घरो के आस-पास तथा छोटे छिछले पानी के या झरनों के किनारे प्रचुरता से पाई जाती है।

नोट--(१) चरक के अम्ल स्कंध मे इसका उल्लेख है तथा अतिसार, अर्श आदि के प्रयोगों मे ली गई है।

(२) इसकी एक बडी जाति होती है, जिसे बड़ी चागेरी (Oxalis Acetosella, Linn) कहते हैं। इसके पत्ते अपेक्षाकृत बडे, पत्रनाल बहुत लम्बे, इसका काण्ड रक्ताभ ग्र थिल तथा पुष्प-दल श्वेत या हलके गुलाबी रंग

[1] इस कुल की लता का पतला दुर्बल प्रयान तना होता है। जिसमे लम्बे-लम्बे पर्व एव पर्व ग्रन्थियो से मूल निकलती हैं। यह तना पत्रकोण से निकल कर भूमि पर कुछ दूर तक फैल कर नयी आगन्तुक मूल पैदा करता है जो नये पौवे को जन्म देती है। इस प्रकार के कई ससर्पि (Runner) मानू पौधा से पैदा होकर चारों ओर फैल जाते हैं। दूर्वा, चूका, ब्राह्मी आदि मेंभी यही प्रकार पाया जाता है, यद्यपि इनके कुल भिन्न-भिन्न हैं।

७ अर्क--भवका (नलिका-यन्त्र) द्वारा खीचा हुआ इसके पचाङ्ग का अर्क अति रुचिकारी तथा विशेषत अर्श आदि गुदज-रोग नाशक होता है।

नोट--मात्रा--चव्य चूर्ण १-२ माशा तथा फल चूर्ण--२ से ४ या ८ रत्ती तक।

विशिष्ट योग—

(१) चव्यादि घृत—चव्य, सोठ, काली मिर्च, पिप्पली, पाठा, यवक्षार, धनिया, अजवायन, पीपलामूल, काला नमक, सेंधा नमक, चित्रक, वेलगिरी और हरड समभाग कुल १ सेर का कल्क कर, गोघृत ४ सेर, उत्तम जमा हुआ दही १६ सेर व जल १६ सेर मे एकत्र मिला, घृत सिद्ध करले। मात्रा—६ मा० से १ तो० तक, सेवन से मल व वात का अनुलोमन होता तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, गुदशूल, वक्षण-शूल आदि नष्ट होते है। (भै० र०)

चव्यादि घृत न० २—चव्य, पाठा, त्रिकटु, पीपलामूल, धनिया, वेल की छाल, जीरा, हल्दी, तुलसी, हरड व सेंधा नमक १-१ तो० लेकर सर्वका कल्क कर, उसमे गोघृत ५२ तो० तथा घृत से चौगुना जल मिला, यथाविधि घृत सिद्ध करले। मात्रा—१ तो० से १॥ तो० तक गर्म दूध के साथ सेवन करने तथा उस घृत की मालिश से अर्श के मस्से, वातरोग एव अश्मरी मे लाभ होता है। (हा० सं०)

चव्यादि घृत न० ३—चव्य, कुटकी, इन्द्र जौ, मोथा और पाचो नमक (सेंधा, सचल, सामुद्र, काच, विड) ५ ५ तोला लेकर कल्क करे।

तथा उक्त द्रव्यो को १-१ सेर पानी लेकर, जौकुट कर ७२ सेर पानी मे पकावें। चतुर्थांश क्वाथ शेष रहने पर, छानकर उसमे उक्त कल्क और ४॥ सेर घृत मिला, घृत सिद्ध करले।

१ से २ तो० की मात्रा मे सेवन से अर्श नष्ट होकर ग्रहणी दीप्त होती है—(भा० भै० र०)

नोट—श्वास, कास नाशक चव्यादि घृत का पाठ वाग्भट में देखिये। गुल्म, प्रमेहादि नाशक चविकासव अन्य ग्रन्थों मे या हमारे बृ० आ० संग्रह में, स्वरभेद, पीनसादि नाशक चव्यादि चूर्ण भै० र० में तथा चव्यादि लौह रस ग्रन्थो मे देखिये।

चांगेरी (Oxalis Corniculata)

शाकवर्ग एवं अपने ही चांगेरी कुल[१] (Geraniaceae) की इसकी लता भूमि पर फैलने वाली, पत्र-काण्ड-भूमि से कुछ उठा हुआ लम्बा, जिसमे पत्र—प्राय. तीन-तीन (कही चार चार भी) सयुक्त, गोलाकार के, पुष्प—नन्हे-नन्हें पीत वर्ण के पुष्पदण्ड पर होते है। फली—१-१॥ इंच लम्बी गोल (गावदुम जैसी), रोमावृत एवं इसके बीज छोटे-छोटे बादामी रग के होते है। पुष्प और फल शरद ऋतु मे आते है।

यह भारत मे सर्वत्र प्राय उष्ण प्रदेशों की आर्द्र भूमि मे खडहर या घरो के आस-पास तथा छोटे छिछले पानी के या झरनों के किनारे प्रचुरता से पाई जाती है।

नोट--(१) चरक के अम्ल स्कंध मे इसका उल्लेख है तथा अतिसार, अर्श आदि के प्रयोगो मे ली गई है।

(२) इसकी एक बडी जाति होती है जिसे बड़ी चांगेरी (Oxalis Acetosella, Linn) कहते है। इसके पत्ते अपेक्षाकृत बडे, पत्रनाल बहुत लम्बे, इसका काण्ड रक्ताभ म थिल तथा पुष्प-दल श्वेत या हलके गुलाबी रग

[१] इस कुल की लता का पतला दुर्बल प्रगत तना होता है। जिसमें लम्बे-लम्बे पर्व एव पर्व ग्रन्थियों से मूल निकलती है। यह तना पत्रकोण से निकल कर भूमि पर कुछ दूर तक फैल कर नयी आगन्तुक मूल पैदा करता है जो नये पौधे को जन्म देती है। इस प्रकार के कई ससर्पि (Runner) मात्र पौधा से पैदा होकर चारो ओर फैल जाते हैं। दूर्वा, चूका, ब्राह्मी आदि सभी यही प्रकार पाया जाता है, यद्यपि इनके कुल भिन्न-भिन्न हैं।

चागेरी का रस, काजी और गुड समभाग लेकर सबको अच्छी तरह मथकर तीन दिन पिलाने से भी उन्माद (पागलपन) नष्ट हो जाता है। (व० से०)

२ शिर शूल—पित्त-प्रकोप जन्य सिर-पीडा एवं सिर मे जडता हो, तो इसके पचाग को महीन पीस, पानी मे पका, उफान आने पर उसमे श्वेत प्याज का थोडा रस मिला, उतार कर ठडा होने पर लेप करे तथा इसी का सिर के तालु पर धीरे धीरे मर्दन करें। तत्काल लेप के सूखते ही शान्ति प्राप्त होती है। (व गुणादर्श)

२ शीत पित्त पर—इसके पत्र-रस मे कालीमिर्च का महीन चूर्ण और आग पर पतला किया हुआ घृत मिला शरीर पर मालिश करते है।

४ हैजे पर—इसके १ तोला स्वरस मे थोडा काली मिर्च का चूर्ण मिला १ पाव पानी मे पीस छानकर थोडा थोडा पिलाते है।

५ अग्निमाद्य पर—इसके ताजे पत्तों की कढी या चटनी बना कर सेवन करने से पाचन-शक्ति मे सुधार होकर-क्षुधा बढती है। पत्तो के साथ पोदीना, काली मिर्च व नमक मिलाकर चटनी बनाते है।

६. जीर्ण अतिसार पर—पत्तो को तक्र या दूध मे उबाल कर दिन मे २-३ बार देते है।

७ नेत्र के पुराने श्वेत दाग (फूली) जाला आदि पर इसके स्वरस का अंजन करते हैं। पत्रों को पीसकर नेत्रो पर बाधना व पत्तो के पानी को आख मे टपकाना लाली को मिटाता व दर्द कम करता है।

८ उदर-शूल पर—इसके पत्तो के क्वाथ मे थोडी भुनी हुई हीग बुरक कर पिलाते हैं।

९ गुदभ्रंश पर—इसके रस मे घृत को सिद्ध कर गुदा पर लेप करते है। सेवनार्थ-चागेरी घृत का प्रयोग विशिष्ट योगो मे देखिये।

१० व्रणशोथ पर—इसके पचाङ्ग को पीस कर पुल्टिस जैसा बनाकर बाधने से, पीडा व जलन दूर होकर शोथ बिखर जाती है।

११. अन्तर्दाह पर—इसके पत्रो को ठडाई की तरह पीस छानकर मिश्री मिला पिलाते हैं

नोट—मात्रा स्वरस ६ माशे से १ तोला तक। यूनानी मतानुसार- फुफ्फुस विकार एवं शीत प्रकृति वालों के लिये यह हानिकर है। हानिनिवारणार्थ गरम मसाला देते है।

चागेरी घृत न. १—सोठ, पीपरामूल, चित्रक, गज-पिप्पली (अथवा चव्य), गोखुरू, पिप्पली, धनिया, बेल-गिरी, पाठा (पाढ) और अजवायन समभाग मिलित कल्क करे। कल्क से चौगुना गोघृत, घृत से चारगुना चागेरी स्वरस (अथवा जितना घृत लिया जाय उतना ही यह स्वरस लेवें) तथा स्वरस के बराबर ही दही एव उतना ही पानी मिला कर घृत सिद्ध कर लें। मात्रा—६ माशे। यह घृत दुष्ट वातकफ को तथा अर्श, ग्रहणी, मूत्रकृच्छ, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, आनाह आदि रोगो को दूर करता हैं। सग्रहणी मे जब आव आवे, बार २ टट्टी जाने से गुदा की वलिया निर्बल हो गई हों, टट्टी करते समय कुंथन करना पडे एवं कुंथन करते २ गुदा का भाग बाहर निकले (काच निकले), पेट मे आध्मान, अरुचि हो तब इसको सेवन करावे। (भै. र) यदि अन्य कारणो से केवल गुदभ्रंश हो, तो—

चांगेरी घृत न २—चांगेरी का रस जितना लेवे, उतना ही बेर का क्वाथ, उतना ही खट्टा दही और स्वरस का चतुर्थांश घृत लेकर उसमे सोंठ व यवक्षार का कल्क (घृत का चतुर्थांश) मिला घृत सिद्ध कर ले। मात्रा—६ मा. सेवन से काच निकलने की पीडा दूर होती है (भै र) शूलयुक्त अतिसार मे भी इस घृत से लाभ होता है।

चागेरी घृत नं० ३—(बालको के अतिसार और ग्रहणी-विकार पर)—चागेरी रस का समभाग पानी तथा चतुर्थांश घृत व बकरी का दूध एकत्र कर उसमे—मजीठ, धाय के फूल, लोध, कैथ, नीलोफर, सेंधानमक त्रिकटु, कूठ, बेलगिरी व नागरमोथा इनका कल्क (घृत से चौथाई भाग) मिला घृत सिद्ध करलें। इस घृत को दूध के साथ पिलाने से या वैसे ही बार बार चटाने से बच्चो का अतिसार एव ग्रहणी—विकार ठीक होता है। (व० से०) और भी चागेरी घृत के पाठ ग्रन्थो मे देखिये।

CASSIA ABSUS LINN

रात्रि मे आध-आध रत्ती की मात्रा मे पलक के अन्दर भर कर पट्टी बाव दें। प्रारम्भ मे कुछ देर वेदना अधिक होगी, किन्तु फिर शात होकर दूसरे दिन अन्दर की लाली दूर होकर आखे स्वच्छ हो जायेगी। यदि एक दिन मे लाभ न हो तो २-३ दिन और रात्रि मे यह प्रयोग करें। इसमे किसी को भी (शिशु, वृद्ध, युवा) हानि नहीं होती।

नेत्रो के रोहे, कुथिया (पलको का भीतर से सूज जाना) पर—नीम-पत्र के जल के साथ उबाली हुई इसकी गिरी को महीन पीस कर अन्दर लगाते रहने से रोहे आदि जड़ मूल से मिट जाते हैं।

नोट—नेत्रो की उक्त नेत्राभिष्यन्द आदि की दशा मे गरम पानी में स्वच्छ महीन वस्त्र या रुई को भिगो कर धोना चाहिए। कोष्ठबद्धता हो तो कोई सौम्य रेचन लेवें, तथा अति मीठा (शक्कर, गुड़) नहीं खाना चाहिये।

इसकी शुद्ध की हुई गिरी के महीन चूर्ण को वैसे ही या उसमे केशर, ममीरा और मिश्री मिलाकर महीन पीस छानकर सुर्मे के रूप मे लगाते रहने से भी कई नेत्र विकारो मे लाभ होता है, नेत्र की ज्योति बढती है।

नेत्र-रोगी के लिये 'चाकसू-पाक' का सेवन करना हितकारी है। आगे प्रयोग देखे।

(२) रक्तमूत्रता या मूत्र के साथ रक्तस्राव (विशेषत वृक्क-विकार के कारण) हो, तो इसके २१ बीज प्याज मे रखकर भूभल मे पकाये हुए, छीलकर श्वेत चन्दन चूर्ण ५ मा० मिला दोनो को थोडे जल के साथ, रात भर रख, प्रात जल को नितार कर पिलावे, अथवा उक्त बीजों के शुष्क चूर्ण को शर्बत-चन्दन के साथ मिला, दिन में ३ बार पिलावे। शीघ्र ही लाभ होता है।

(३) कास-श्वास पर—इसके बीज और रसौत समभाग लेकर गुलदाऊदी के शीत निर्यास मे पीस कर छोटे बेर जैसी गोलिया बना, १-१ गोली प्रातः साय सेवन कराते हैं।

(४) योनि-क्षत पर—बीज की गिरी को तक्र मे पीस कर लेप करते रहने से लाभ होता है।

दाद और उपदंश-व्रणो पर—बीजो को पानी के साथ पीस कर लेप करते हैं।

नोट—मात्रा—चूर्ण १-२ मा०।

यह उष्ण प्रकृति वालो के लिए कुछ हानिकर है। हानि-निवारणार्थ—हरा धनिया या अर्क गुलाब का सेवन करे।

विशिष्ट योग—चाकसू-पाक—(नेत्र—हितकारक) इसके बीज १ पाव, भाड मे भुनवाकर महीन कर चूर्ण कर उसमे ५ तो० पोस्त मिला, शाम को दूध मे भिगो, प्रात सिल पर पीस पिठ्ठी बना, गोघृत मे भूनकर, उसीमे तज ३ मा०, इलायची, बीज, सोठ, मिर्च, पीपल १-१ तो० और किसमिस ५ तो० कूट-पीस कर अच्छी तरह मिला, १। सेर मिश्री की चाशनी मे पाक जमा दे।
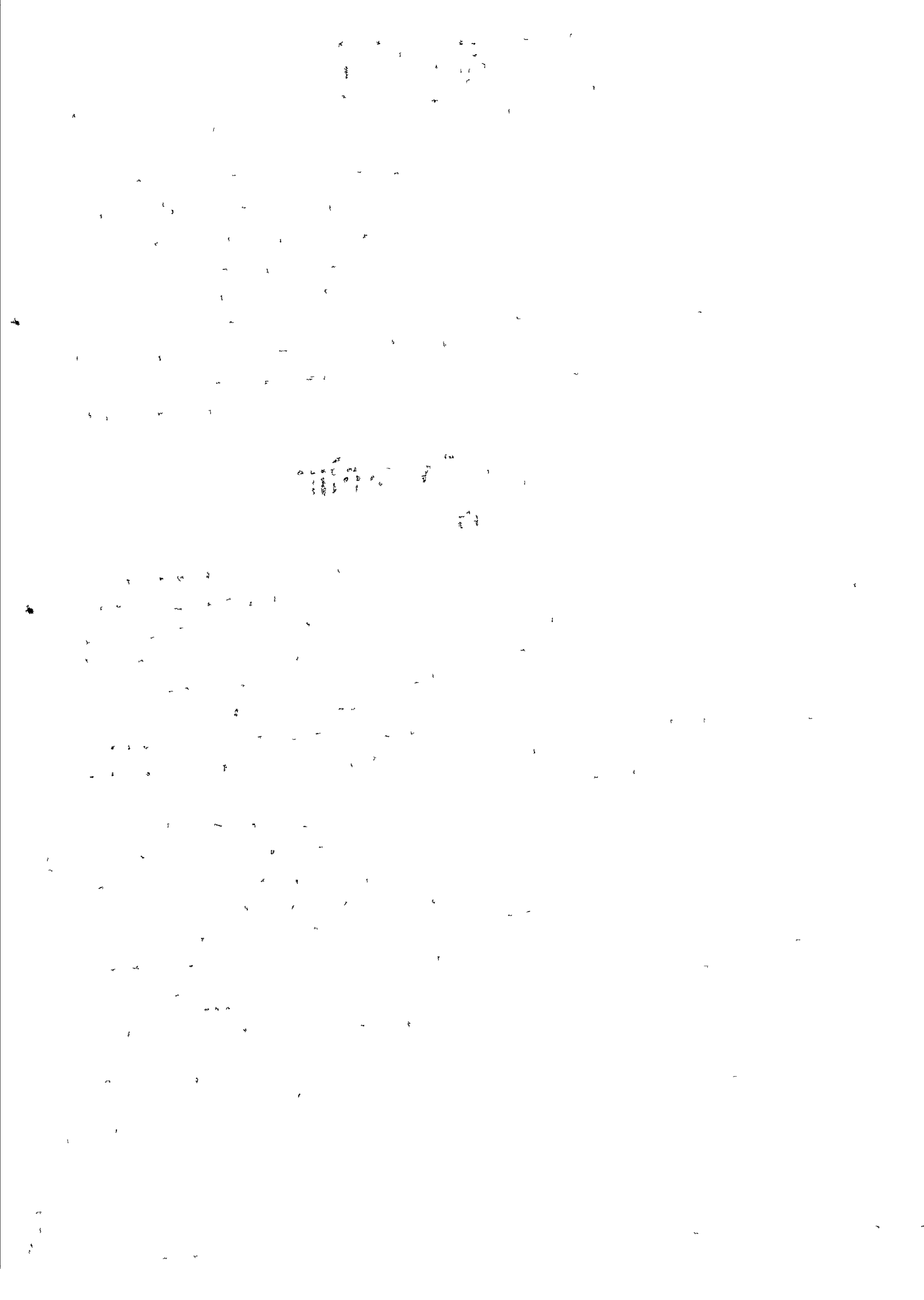
चाय [Camellia Theifera]

चविका (चाय) कुल (Ternstroemiaceae) की प्रमुख, सर्व प्रसिद्ध औषधि है। इसके सदैव हरितक्षुप, चिकने किंचित् रोमश होते हैं। खेती की सरलता एव उत्तम चाय के उत्पादनार्थ ये क्षुप ऊपर से समय समय पर काट दिये जाते हैं, जिसमे ये ४-५ फुट से अधिक ऊंचे न बढने पावे। पत्र—२-६ इंच तक लम्बे, १-१॥ इंच चौडे कहीं कहीं इससे भी अधिक लबे व चौडे, लम्बगोल, नोकदार प्राय चिमडे, दन्तुर, ऊपर से चिकने, निम्न भाग मे किंचित् रोमश, सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र—युक्त (इन छिद्रो मे एक प्रकार का विशिष्ट गंध युक्त तैल द्रव्य होता है), पत्र-वृन्त-बहुत छोटा (इन पत्तो की ही चाय बनाई जाती है)। पुष्प १-१॥ इंच व्यास के श्वेत, फल या डोडी ½ इंच व्यास की चमडे जमी ३-५-खडवाली, जिसमें हलके भूरे रंग के गोल, कडे छिलके वाले बीज होते हैं।

इसका मूल स्थान मलाया, चीन और जापान है। अब तो गत ३०० वर्ष से भारत में—आसाम, बंगाल नीलगिरी, बिहार, उडीसा, मद्रास, पंजाब, त्रावणकोर दार्जिलिंग, नेपाल, देहरादून आदि प्रांतों मे तथा सीलोन मे इसकी खूब खेती होती है। इङ्गलैंड, अमेरिका आदि में भी इसकी खेती की जाती है। किंतु ससार मे अब सबसे अधिक चायोत्पादक देश भारत ही है। सब देशों की अपेक्षा अधिक इसका निर्यात भारत से ही होता है, दूसरा नम्बर सीलोन का है।

नोट—१ भारत में चाय का प्रचार १७ वी शताब्दी से इंग्लैंड की ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा हुआ। इस कम्पनी ने ही इसकी विभिन्न स्थानो में खेती करवाने तथा इसके उत्पादन मे लाभ उठाना प्रारंभ किया। तबसे इसके उत्पादन मे धीरे धीरे प्रगति एव सुधार होता गया। सन् १८०७में भारत की चाय अन्य देशों की चाय से अधिक श्रेष्ठ मानी गई, तथा इसका प्रचार खूब प्रचुरता से बढने लगा। अब तो यह एक मात्र सर्व श्रेष्ठ सर्वप्रिय पेय, सब पेय पदार्थों की सार्वभौम सम्राज्ञी बन गई। प्रचार द्वारा यह इतनी सर्व सुलभ कर दी गई है कि अन्य देशों की बात अलग रही। भारत मे अब शायद ही ऐसा कोई स्थान हो, जहां इसका पान न किया गया हो, या इसके आदी न हो गये हो।
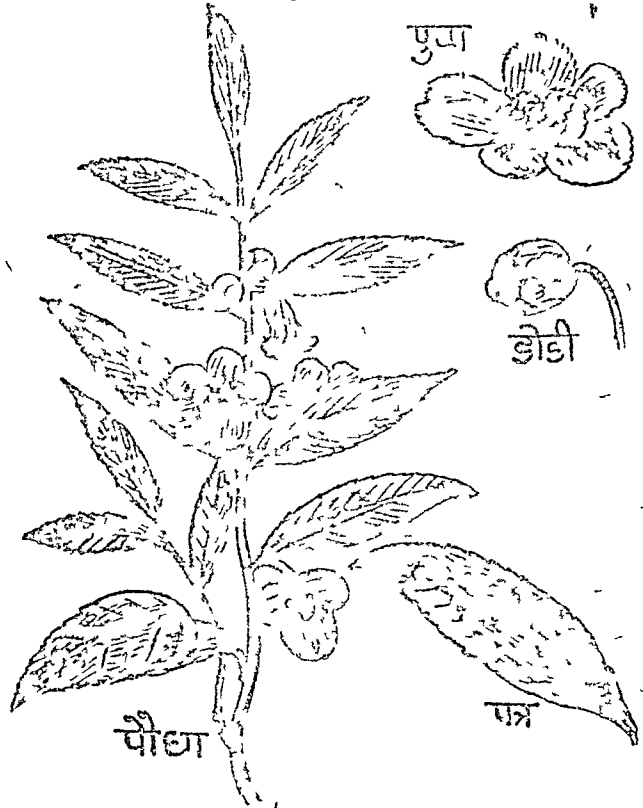
२. चाय के प्रकार—पत्तों को पौधो से तोडने के बाद शुष्कीकरण-प्रणाली द्वारा जो शीघ्र ही शुष्क कर लिये जाते है, वे कुछ हरे रहने से हरी चाय (Thea Viridis), तथा देर से शुष्क किये हुए पत्ते कुछ काले, श्याम वर्ण के रहने से काली चाय (Thea Bohea) कहलाते है। बाजारो मे हरी चाय के इम्पीरियल, हायसिन, यंग हायसिन, टॉनिक, स्किन व गन पाउडर ये भेद, तथा काली चाय के कंगू, पिको, सुचांग और उलंग नाम के भेद पाये जाते है। इनमे इंपीरियल चाय (Imperial tea) सबसे श्रेष्ठ मानी जाती है। यह शीतकाल मे होती है,

(५) ग्रन्थि तथा अर्श पर—चाय-पत्र को पकाकर पीसकर लेप करने से ग्रन्थि या शोथ बिखर जाती है, तथा अर्श की वेदना दूर होती है ।

(६) कंठ-क्षत पर—आमाशय की विकृति से व उष्ण दाहक द्रव्य के अति सेवन से कंठ में क्षत हो तो, चाय के क्वाथ से, दिन में २-३ बार कुल्ले (गण्डूष-धारण) करते रहने से क्षत का रोपण हो जाता है । यदि नाक, आंख या दांतों से पूय निकल कर कंठ में क्षत हुआ हो, या उपदंश के उपद्रव स्वरूप तालुव्रण हो या पूयमय कफ के गले में रुकने से क्षत हुआ हो, तो मूल रोग का भी उपचार करना चाहिये । (गा०[illegible] गौ० र०)

नोट—शीत, वर्षा ऋतु में चाय से [illegible] विशेष हानि नहीं होती, किन्तु शरद् और [illegible] ऋतु में [illegible] हानि होती है । अनिद्रा, [illegible] आदि विकारों को पैदा कर देती है । हानि निवारणार्थ [illegible] और [illegible] का प्रयोग करें । उष्ण प्रकृति वालों को [illegible] पर चाय पीने से, कंठ की खुश्की, शरीर में [illegible], [illegible], [illegible]-माण आदि विकार होते हैं । हानि-निवारणार्थ सुपारी पाक का सेवन [illegible] । यदि प्रकृति शीत प्रधान हो, तो [illegible] दालचीनी, सोंठ आदि का प्रयोग करें ।

चायतृण=तृणचाह (सुगंधी तृण)

चालटा (Dillenia Indica)

यह अपने ही भव्य-कुल[1] (Dilleniaceae) का प्रमुख, सदैव हरित, सुन्दर एक मध्यमाकार का वृक्ष है । छाल—धूसरवर्ण की, दालचीनी जैसी, पत्र—सघन, १०-१२ इंच लम्बे, आरे जैसे कटे हुए तीक्ष्ण दंतुरकिनारों से युक्त, पुष्प—ग्रीष्म काल में,—श्वेत वर्ण के, ६-७ इंच लम्बे गोल, सुगन्धित, सुन्दर भव्य (इसी से संस्कृत में शायद इसे भव्य कहते हैं), फल—शीतकाल में, गोलाकार, छोटे नारियल जैसे, कठोर छिलका वाले, लगभग ५-६ इंच व्यास के, नतोदर पुट-पत्रों से ढके हुए या पुष्प-बाह्य कोष के ही अधिकांश भाग से आच्छादित, अनेक रोमश बीज युक्त होते हैं ।

ये वृक्ष दक्षिण भारत, कोंकण आदि में, तथा बंगाल के जंगलों और बागों में और बिहार, सहारनपुर व देहरादून के बागों में लगाये हुए, आसाम, नेपाल और

[1] इस कुल के वृक्ष—सपुष्प, द्विबीज वर्गी, विभक्त दल, अधःस्थ बीजकोष, पत्र एकान्तर, सादे, बड़े, प्रायः दंतुर, चर्म-सदृश, पुष्प-बाह्य कोष के दल ५, पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल ४ से ५ पूर्णपाती, परागकोष अन्तर्मुख, पुंकेशर संख्या अनियमित । (द्र० गु० वि०) इस कुल में यही मुख्य वृक्ष है । दूसरा १ करमल (कागल) नाम का है । किंतु वह अप्रख्यात है ।
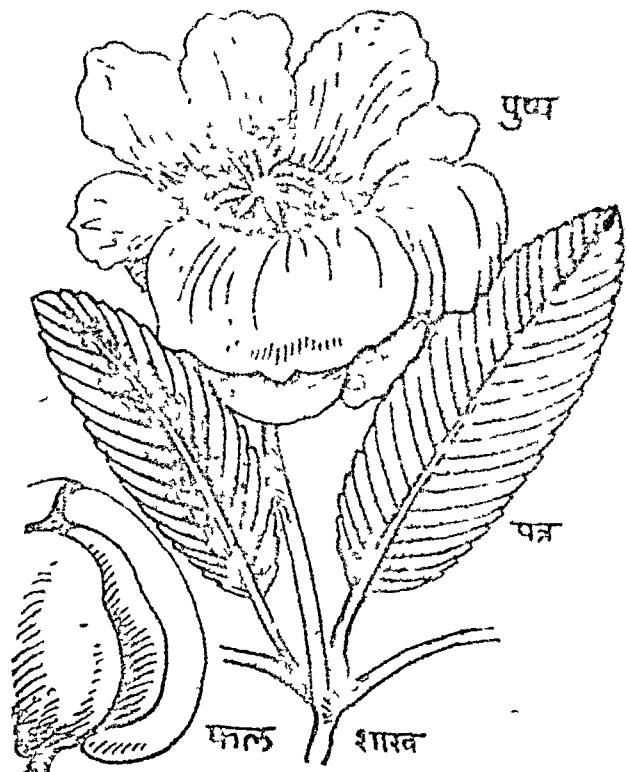
इच चौडे, चिकने, चमकीले, लम्बी नोकवाले, दन्तुर किनारे वाले, कडे, पुष्प–प्राय बसन्तऋतु मे, गुच्छो मे या एकाकी श्वेत वर्ण के, पुष्प वाह्य एवं आभ्यन्तर-कोप के दल ५-५, फल–छोटे सेव जैसे, गोल, ऊपरी छिलका कडा, ऊबड-खावड, कैथ फल जैसा, वृन्त-कैथ फल के वृन्त जैसा ही मोटा, बीज–फल के भीतर के श्वेत गूदे के बीच मे कोनयुक्त, पीताभ अनेक बीज, कुछ बादाम बीज जैसे ही, मृदुरोमश, होते है।

[५] बीज तथा उसका तेल कुष्ठादि रोगो पर विशेष रूप से व्यवहृत होता है। सुश्रुतोक्त तुवरक सभवत यही है। जिसका प्रस्तुत प्रसग मे वर्णन किया जाता है। इसके बाजारू तैल मे बहुत मिलावटे होती है, अत यह तैल पहले के वैद्यगण घर मे ही निकाल लिया करते थे। आगे इसकी विधि देखिये।

कहा जाता है कि इसके वृक्ष मूलत. फिलीपाईन-द्वीपकल्पो के निवासी है, किंतु भारत मे तो सुश्रुत के समय से या उसके भी पहले से दक्षिणी पश्चिमी घाटो की पहाडियो पर तथा कोकण, मलाबार, गोवा, ट्रावनकोर के पहाडी जगलो मे प्रचुरता से पाये जाते हैं। बगाल, देहरादून आदि के बागो मे भी ये लगाये हुए देखे जाते हैं।

नाम—

स०—तुवरक (रोगों को नष्ट करने वाला), कट्ट कपित्थ, कुष्ठवैरी। हि०—चालमोगरा, कडवा कैथ। म०—कडु कवीठ, जगली बदाम। बं०–चौल मुगरा। अं०–जंगली आलमण्ड (Jangli almond)। ले०–हिड्नोकार्पस वाइटियाना।

रासायनिक-संगठन—

बीजो मे लगभग ४४ प्र. श. स्थिर तैल, जिसमे हिड्नोकार्पिक एव चालमोगरिक (Hydnocarpic and Chaulmugric acids) क्षारतत्व तथा अल्पमात्रा मे

और भी कुछ नगण्य वृक्ष इस कुल में हैं।

संस्कृत मे इसका तुवरक (तवीति हिनस्ति रोगान् इति) नाम महर्षि सुश्रुत का दिया हुआ है हिन्दी व अंग्रेजी मे चालमोगरा नाम शायद बगला के चौलमुगरा का ही रूपान्तर है। चरक मे इसका कोई उल्लेख नही मिलता। सुश्रुत मे इसका संक्षिप्त वर्णन यथा कुष्ठ, मधुमेह एव नेत्र-विकारो पर स्पष्ट प्रयोगात्मक वर्णन मिलता है। सुश्रुत के पश्चात् हजारों वर्षो तक, परिस्थितवश औषधि-अन्वेषण की परम्परा टूट जाने से, अन्यान्य कई महत्वपूर्ण वूटियो के साथ ही इसका भी ज्ञान विस्मृत एव विलुप्त सा होगया। इसी लिए प्रमुख निघण्टु ग्रन्थों मे इसका कोई वर्णन नही। बौद्धकाल मे जब बौद्धधर्म का एशिया खड मे चारों ओर दौर-दौरा था, ब्रह्मदेश के बौद्धों को इस बूटी का पता लगा, तथा उन्होंने इसके विषय में अपने ऐतिहासिक ग्रन्थ मे उल्लेख किया। पश्चात् पाश्चात्य वैज्ञानिकों द्वारा उक्त बौद्ध-इतिहास ग्रंथ के आधार पर अनुसन्धान एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण कर इस बूटी को विशेष प्रकाश में लाया गया है।

[५] कुछ लोग इसके तथा नं० २ व ३ वाले चालमोगरा बीजों को भ्रमवश पपीता कहते हैं। वास्तव मे पपीता इनसे भिन्न कुचले की जाति का है। पपीता प्रकरण देखें।

चालमोगरा
HYDNOCARPUS WIGHTIANA BLUME

पत्र
फल काट
डोडी
शाख

कुष्ठ मे सफल उपयोग देख कर डा मोअर्ट (Dr mourt) ने सन् १५५४ मे इसका प्रवेश यूरोप मे किया। तब से आज तक पाश्चात्य औषधि-भडार की यह कुष्ठ-नाशक अधिकृत (Official) प्रधान औषध रही है।

(१) सुश्रुतोक्त सेवन-विधि साथ ही साथ आधुनिक सेवन-विधि सक्षेप मे इस प्रकार है-(रोगी के बलाबला-नुसार) स्नेहन, स्वेदनादि (साधारण पच कर्म) द्वारा रोगी की शुद्धि कर पेया, विलेपी के सेवन से लगभग १५ दिन बाद बल की प्राप्ति होने पर, शुक्ल पक्ष के शुभदिन प्रात काल तैल को मत्र[1] से अभिमन्त्रित कर, १ तोला की मात्रा मे (प्रथम दिन ५ बूद की मात्रा) प्रात. साय, गौ के ताजे मक्खन या दूध की मलाई के साथ देवें। फिर प्रति चौथे दिन ५-५ बूद बढाते हुए २०० बूंद तक, या सहन हो वहा तक बढावे। मात्रा अधिक हो जाने से उबकाई, वमन, रेचन आदि होने लगते हैं, ऐसा हो, तो मात्रा घटादे। प्रात खाली पेट न दें। रोगी को पथ्यान्न या चावल दूध खिलाकर १५ मिनट बाद इसे देवे। वमन, विरेचन द्वारा (यह वमन विरेचन तब ही होते है, जब कि सुश्रुत की मात्रा मे यह देवे) रोगी के दोष एक साथ बाहर निकलते हैं-फिर रोगी को प्रतिदिन सायकाल स्नेह और लवण रहित (या अल्प स्नेह लवण-युक्त) शीतल यवागू पिलावे। इस विधि से ५ दिन (या १ मास तक ४-४ दिन के अन्तर से वृद्धि-ह्रास क्रम से) प्रात सेवन करें। इस प्रकार फिर १५ दिन बन्द रख कर पुन सेवन करे इस प्रकार एक (या दो) मास तक आलस्य रहित, क्रोधादिका त्याग कर सयम पूर्वक इसके सेवन तथा मूग के यूष के साथ चावल का भोजन करने से (प्रात साय केवल दूध, दोपहर को मोसम्बी, मीठा अनार, सेव, केला, मीठा अगूर आदि मीठे फल ले) (दूध और फलो के बीच ३ घन्टे का या अधिक का अन्तर रक्खें। यदि यह पथ्य पालन न हो सके, तो पुराने चावल का भात, तथा जौ या गेहूं की रोटी दूध के साथ लेवें। अम्ल, लवण और चरपरे पदार्थ बिल्कुल न लें।) रोगी शीघ्र ही कुष्ठ से मुक्त हो जाता है। (रोग की विशेष दशा मे कभी २ इसका सेवन ६ मास या कुछ अधिक दिनो तक पथ्य-पालन पूर्वक, कराना आवश्यक होता है) साथ ही साथ इस तैल की मालिश करते (या इस तैल मे कपडा भिगो कर व्रणो पर डालते) रहना चाहिए। इससे व्रण भी शीघ्र ही भर जाते हैं। जिस कुष्ठ-रोगी का स्वर-भेद हो, नेत्र लाल हो, मास गल गया हो, कीड़े पड गये हो वह भी इस प्रयोग से सुधर जाता है। इस प्रकार यह प्रभावशाली तुवरक कुष्ठ एव प्रमेह को नष्ट करने में उत्कृष्टतम है।

नोट—ध्यान रहे--इसका प्रयोग अत्यधिक मात्रा में करने से-रक्तकणों का विनाश, वृक्कों में उग्रता, रक्तप्रमेह, नेत्र-प्रदाह, क्षुधानाश, छाती में वेदना, उदरशूल, ज्वर, त्वचा पर रक्त-विकार के ददोरे, सधि-प्रदाह, वृषणप्रदाह, प्रबल वमन, विरेचन आदि लक्षण होते है। अत इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिए।

कुष्ठ पर—

(१) आधुनिक प्रयोग, कर्नल डॉ० जी० डी० वर्डवुड के अनुसार—इसका तैल ५ बूंद, उत्तम गोंद का पानी व शर्बत ४-४ मा० तथा स्वच्छ जल १। तो० इस दो तोले मिश्रण की १ मात्रा, नित्य भोजन के बाद पीवें। धीरे-धीरे मात्रा बढाते जावें।

(२) इसका तैल ५ बूद, काडलिवर आइल ३० बूंद, गोद का पानी ४ मा० और स्वच्छ जल २॥ तो० एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) दिन मे ३ बार देवें।

(४) बाह्य प्रयोग—इसका तैल ४ मा० तथा सादा वैसालिन २॥ तो० एकत्र फेंट कर, कोढ-खाज पर लगाया करें। अथवा–इस तैल मे समभाग नीम का तैल मिला लगाते रहे।

(५) इजेक्शन–इसका हाइपोडर्मिक (मासपेशियो मे) इंजेक्शन विशेषत मद्यार्क लवण रूप से और अम्ल

---

[1]मज्जसार महावीर्य सर्वान् धातून् विशोधय। शखचक्र गदा पाणि स्त्वामाज्ञापयते ऽच्युत.॥ अर्थात् हे प्रभावशाली मज्जसार! सभी धातुओं को शुद्ध करो। शख,चक्र व गदा को हाथों से धारण करने वाले अच्युत भगवान तुम्हें आज्ञा देते है। उनकी आज्ञा का पालन करो। सुश्रुत चि. स्थान अ.१३

धसर वर्ण की, पत्र—सरलधार वाले, लगभग ६-१० इंच लम्बे, ३-४ इंच चौडे, भालाकार, निम्न भाग की शिराये बहुत स्पष्ट, पुष्प-हलके पीले रग के सुगंधित, फल—नारगी या बेल फल जैसे, गोल, ३-६ इ च व्यास के मटमैले रग के, फल का गूदा—ताजी दशा मे बाहर से काला, भीतर पीताभ श्वेत, कुछ समय पर यह कृष्णाभ पीत, स्वाद और गध रहित हो जाता है। बीज[1]—गूदे के भीतर १-१।। इ च लम्बे, मखमली मृदु-रोमश, फीके लाल या भूरे रंग के किंचित् त्रिकोणाकार तथा बीजों का छिलका पतला, भंगुर (सहज ही नखादि से दूर होने वाला) (चालमोगरा नं० १ बीजों का छिलका कड़ा, सहज मे दूर नहीं होता), व खाकी रग का होता है।

इन बीजों से जो तेल निकाला जाता है उसे चाल-मोगरा—ग्यानोकार्डिया (Gynocardia oil) तैल कहते है। यह तैल थोडी ही शीत मे चर्बी जैसा जम जाता है। ग्रीष्म-काल मे यह तैल द्रवावस्था मे तथा शीत-काल मे सर्दी के अनुसार जमी हुई या कुछ द्रव अवस्था मे पीले रग का या भूरापन लिये हुए पीत वर्ण का तथा जमने पर श्वेत रग का होता है। इसमे एक प्रकार की विशिष्ट गध, बिगडे हुए मक्खन जैसी होती व स्वाद मे किंचित् कटु होता है।
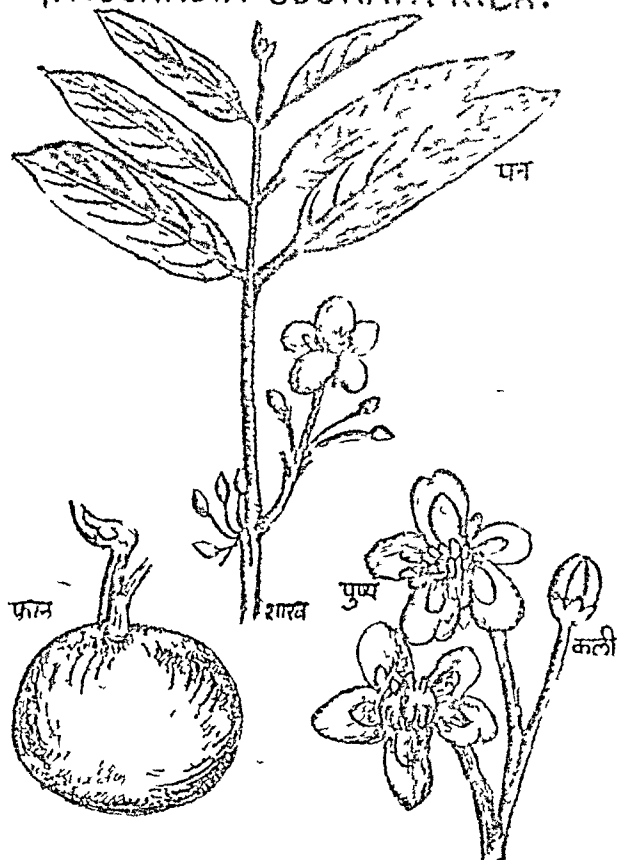
[1] कोई इन बीजों को पपीता कहते है। किन्तु पपीता इससे भिन्न कुचले की जाति का विषैला होता है। आगे यथास्थान पपीता का प्रकरण देखिये। इसे पहाडी पपीता कह सकते है।

चावल
ORYZA SATIVA LINN
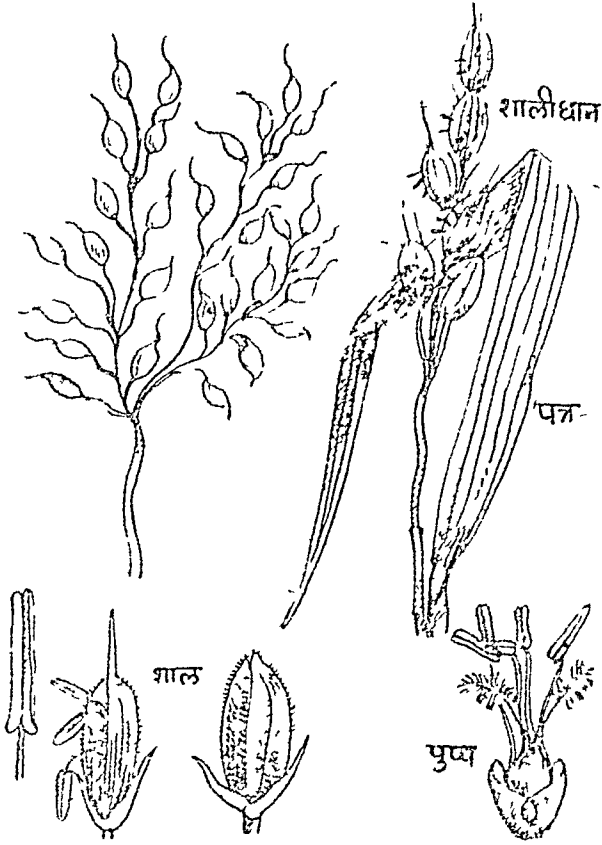
धान्यों के भेद–शालि धान्य, व्रीहिधान्य, शूक धान्य (जौ, गेहू आदि), शिम्बी धान्य (मूग, उडद, अरहर आदि), और क्षुद्र धान्य या कुधान्य या तृणधान्य (कगुनी, सावा आदि) ये ५ मुख्य भेद है। प्रस्तुत प्रसंग मे हमे केवल शालिधान्य एव व्रीहिधान्य का ही विचार करना है—

(१) शालिधान्य—जो भूसी रहित, श्वेत हो अर्थात् विना काडे, कूटे ही जो श्वेत होते हैं, एवं हेमत ऋतु मे उत्पन्न होते हैं[1] उन्हे शालि धान्य, जडहन या मुडिया कहते हैं। इसके रक्तशालि, कलमा आदि कई भेदोपभेद है।

इनमे से गुणधर्म सहित कुछ धानो के लक्षण—(अ) जो जली हुई मिट्टी से पैदा होते हैं (भाषा मे अगहनी चावल[2] कहते है) वे कसैले, लघु पाची (पचने मे हल्के), मूत्र-मल को निकालने वाले, रूक्ष एव बढे हुए कफ को कम करने वाले होते हैं।

(आ) जो केदार (जुते हुए खेत) मे उत्पन्न होते हैं। वे कसैले, गुरु, वातपित्त-नाशक थोडी मात्रा मे मल को निकालने वाले, बल्य, मेधाशक्ति को हितकर एव कफ और शुक्र-वर्धक होते है।

(इ) जो स्थलज (बिना जुती हुई भूमि मे उत्पन्न) होते है—वे मधुर, किञ्चित् तिक्त रसयुक्त, कसैले, विपाक मे कटु, पित्त कफ-नाशक तथा वात व जठराग्नि-वर्धक होते है।

देवधान—(जगली धान) इसी का एक भेद विशेष है। पौधा घास की तरह होता है। इसे स०–अरण्य धान, मुनि धान्य, निवार, तृण धान्य, लेटिन मे–हायग्रोरिझा-एरिस्टाटा (Hygroryza Aristata) कहते हैं। इसका चावल मधुर, कसैला, स्निग्ध, सुपाच्य, शीत वीर्य, पित्त-नाशक व विबन्धकारक होता है।

नोट—बोये हुए धानों के चावल—मधुर, कसैले, वीर्यवर्धक, बल्य, गुरु, शीतल, पित्तनाशक, कफजनक एव अल्प मल निकालने वाले होते है।

बोये हुए धानों की अपेक्षा विना बोये हुए धानों का चावल अल्प गुण वाला होते हुए भी, शीघ्र पचने वाला होता है। बोये हुए धानो के चावल यदि नये हो, तो वह वीर्य वर्धक, पुराने हो तो हल्के होते है। जो धान एक बार फसल के कट जाने पर पुन. उसी क्षुप में पैदा होतेहैं, वे शीतल, रूक्ष, बल्य, पित्त-कफ-नाशक, मल-रोधक, कसैले व किञ्चित् कड़वे एव हल्के होते है।

[1] इसे ही राजशालि (बासमती चावल) कहते है। अन्य चावल तुष छुडाने के बाद कूटकर या मशीन पर साफ किया जाता है, किन्तु यह विना कूटे ही श्वेत एव साफ बारीक, सुन्दर और उत्तम होता है। यह लघु, दीपन, बल्य, कान्तिजनक, धातुवर्धक एवं त्रिदोष-नाशक है। इसका क्षुप २-३ हाथ तक ऊ चा, पत्र—साधारण धान के पत्र जैसे, किन्तु कुछ कडे और चिकने होते हैं।

[2] जैसे ईख आदि के कट जाने पर, उस क्षेत्र मे घास फूस आदि फैलाकर जला देते है। वैसे ही धान की भूमि को भी जला देते हैं। फिर उसे जोतकर या विना जोते ही, वर्षा के प्रारम्भ मे धान विखेर देते है।
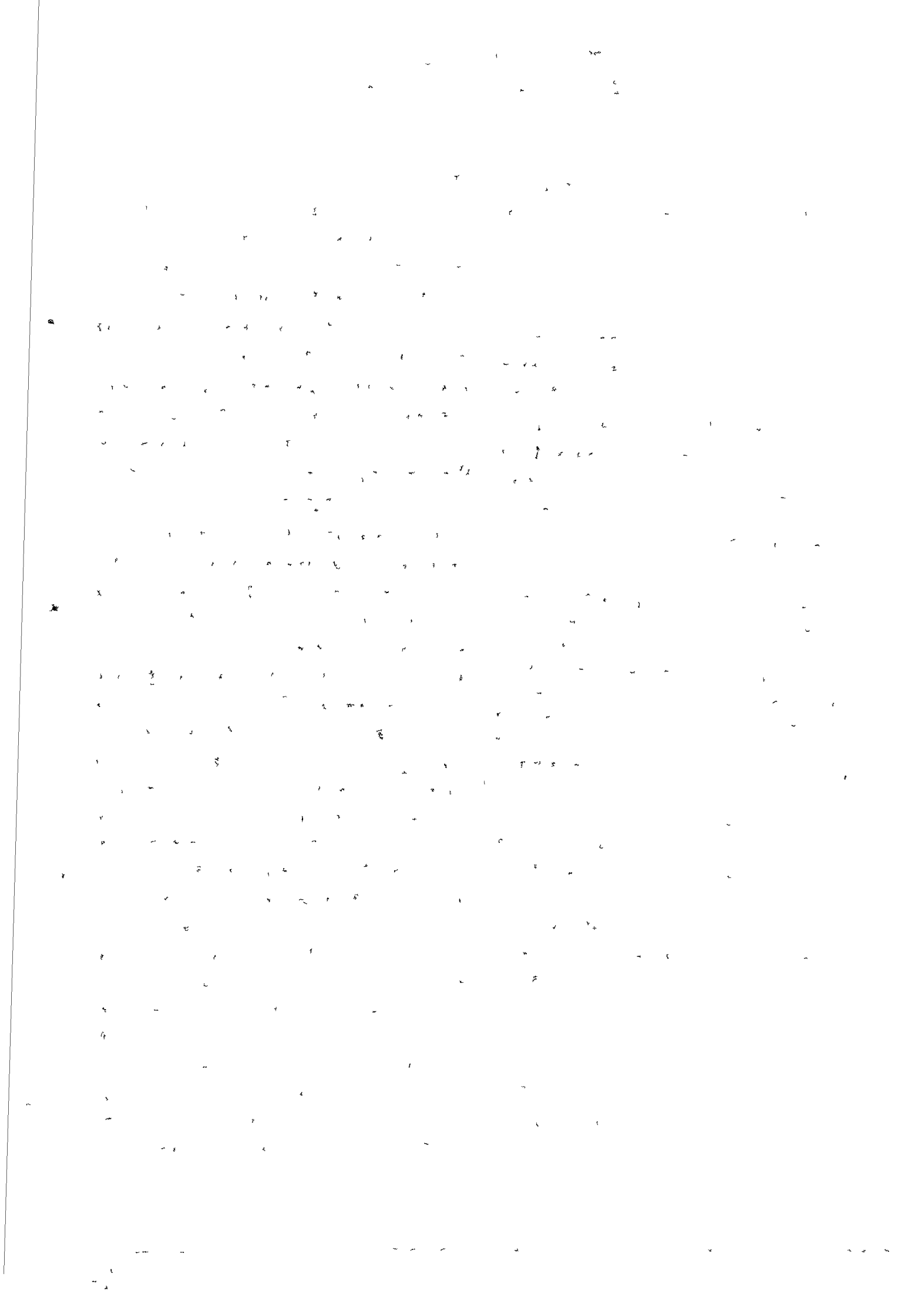
रोगोत्पादक हो जाता है।

आमयिक प्रयोग—फेफडो के विकार, क्षय, वक्षस्थल के रोग, एव रक्तमिश्रित कफ-स्राव में यह लाभदायक है। चावलो का पानी ज्वर तथा आन्त्र-प्रदाह मे शाति-दायक है।

१. पकाया हुआ चावल (भात)—

चावलो को अच्छी तरह बीनकर, साफकर तथा पानी से धोकर पाचगुने खौलते हुए पानी मे डालकर पकाने तथा सीज जाने पर उन्हे नीचे उतार कर उनका माड निथार कर, हलकी आच पर रखदे। पूर्ण रूप से पकाने पर यह भात कहलाता है। ताजा भात गरमागरम विशद गुणयुक्त अग्निवर्धक, पथ्य, तृप्तिदायक रुचिकर एव हल्का होता है। यदि यही भात बिना धोये और बिना माड निकाले सिद्ध किया गया हो एव ठडा हो गया हो तो वह भारी, अरुचिकर तथा कफवर्धक होता है। किन्तु माड के निकाल लेने से चावल के खनिज, प्रोटीन एव व्हिटामिन आदि निकल जाते है। ऐसा नि.-सत्व भात रोगियों को भले ही हितकर हो, किन्तु स्वस्थो के लिए हितकर नहीं।

चावल पकाया हुआ रक्तोत्पादक, मेदा-वर्धक आध्मानकारी है। यह शक्कर के साथ खाने से शीघ्र हजम होता है। मठे के साथ खाने से उष्णता, तृष्णा, जी मिचलाना, तथा पित्त के दस्तो मे लाभ होता है। यह अतिसार या पेचिश मे उत्तम पथ्य है। लाल चावल विशेष लाभकारी होते है। यह मूत्रविकार, तृष्णा शरीर की जलन को दूर करते है। इन्हे पकाकर इनका पानी निथार कर पीने से पेशाब साफ आता है। चावलो को भूनकर रात भर पानी मे भिगो, प्रात उस पानी को पीने से मेदे के कीडे नष्ट होते हैं। किंतु जिन्हे पथरी (अश्मरी) का रोग हो या मधुमेह हो उन्हे चावल हानि-कारक होते है।

एक वर्ष का पुराना चावल त्रिदोष-नाशक, तीन वर्ष का कृमिनाशक तथा ओज-वर्धक है। प्रसूतिकाल मे स्त्री के लिए यह विशेष लाभकारी होता है।

चावलो का धोवन-ग्राही और मूत्रल होने से-सुजाक, अतिसार एव श्वेत प्रदर जैसी व्याधियो मे प्रयुक्त औष-धियो के अनुपान के रूप मे दिया जाता है। यह व्रणो को धोने के लिए भी उपयोगी है।

चावलो को पानी मे पकाने के बाद नीचे उतार कर उसमें दूध मिला १५-२० मिनट ढाक रखदे। यह आहार रूप मे रोग-मुक्त अशक्त एव तरुणो के लिए, तथा जो वातिक अग्निमाद्य से पीड़ित हो उन्हे देना लाभकारी है। यदि अतिसार हो तो उस दशा मे चावलो के आटे को पानी मे पतला लेई जैसा पकाकर एव दूध मिलाकर देवें। यदि आमाशय, आन्त्र या वृक्को मे विक्षोभ या दाह-युक्त शोथ हो तो चावल का माण्ड या काजी (१ भाग चावल या चावल के आटे मे ४० भाग पानी, थोडा नमक और नीबू रस मिला कर) बनाई हुई उत्तम शातिदायक पेय है। किंतु यदि कोई जठराश्रित आतरिक व्रण (Gastric ulcer) हो तो नमक व नीबू रस नही मिलाना चाहिए। यह पेय-चेचक, मसूरिका, रक्तकोपजन्य ज्वर एवं सर्व प्रकार के दाहयुक्त शोथ की दशा मे तथा सुजाक तथा सुजाक और दाह एव जलन युक्त मूत्र विकारो मे उत्तम लाभकारी है। ध्यान रहे, इन सब अवस्थाओ मे अन्य चावलो की अपेक्षा रक्तशालि (दाऊद खानी) विशेष हितकारी होता है। यह चावल प्लीहा एव यकृत की वृद्धि मे वैसे ही अर्श और भगदर-ग्रस्त रोगियों को (जब कि ज्वर न हो) पथ्य रूप मे देना उत्तम होता है।

(२) खिचडी-(कृशरा)—चावल और दाल (समभाग या २ भाग चावल व १ भाग दाल) मिलाकर अच्छी तरह धोकर पाच या आठ गुना जल मे पका कर तैयार की जाती है। यह नमक, अदरख, हीग, मिर्च, मसाला, घृत, आदि डाल कर और भी स्वादिष्ट बनाई जाती है।

खिचडी यदि ठीक तरह से पकाई गई हो, तो यह अशक्त एवं रोगयुक्त निर्बलो के लिये दूध के समान ही पूर्ण आहार का काम देती है। इसमे शरीर-धातुवर्धक प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहायड्रेट, विटामिन्स एव खनिज द्रव्य सम्यक् रूप से अवस्थित हैं। यह वीर्य एव बलवर्धक, भारी देर मे पचने वाली, बुद्धिवर्धक, तथा मल-मूत्र
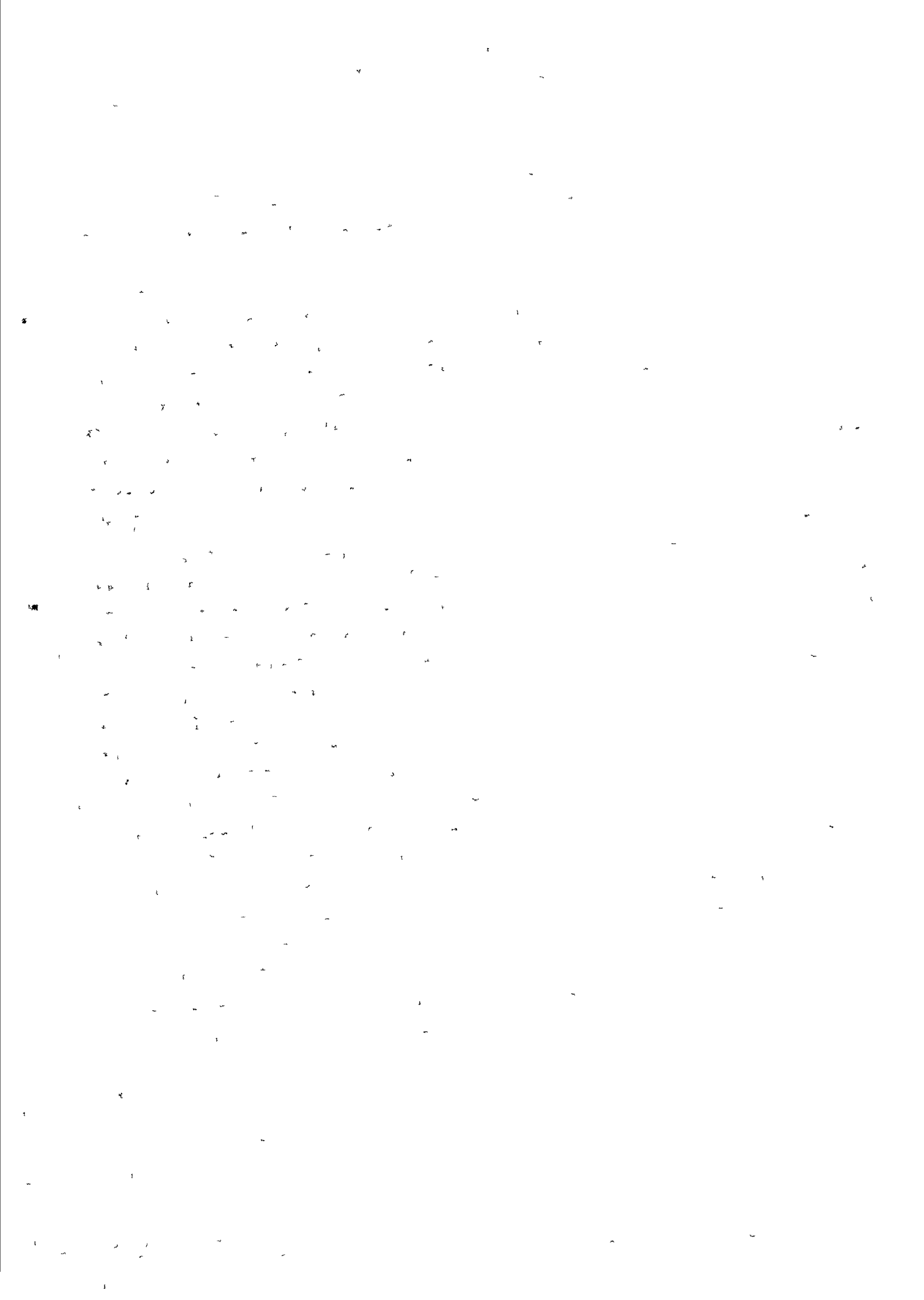
उक्त खीलों को पीस कर सत्तू सा बना, उसमे शक्कर, शहद या दूध या केवल पानी मिला देने से 'लाज तर्पण' कहलाता है। यह दाह और अतिसार मे हितकारी है। खीलो के चूर्ण मे खजूर, अनार, अंगूर आदि का रस तथा शहद और शक्कर मिला कर जो पेया तैयार होती है, वह उत्तम तर्पण है, इससे ज्वर, दाह, मदात्यय आदि नष्ट होते है। वैसे तो पानी मे घोलकर जो सत्तू खाया जाता है उसे भी तर्पण कहते है।

चावलो को भूनकर बनाया हुआ सत्तू-दीपन, हलका, शीतल, मधुर, ग्राही, रुचिकर, पथ्य, एव बलवीर्य वर्धक है।

(६) चिपिटा–[चिउरा, चिरवा, चिरमुरा] चौला भूसी (तुष) सहित गीले धानो को,-या तुष सहित धानो को भिगोकर गीले ही यदि भूनलिये जाय, तथा उनके खिलने के पूर्व ही उन्हे ऊखल मे कूटकर भूसी अलग कर दी जाय तो वे चिपिटे हो जाते है। इन्हे सस्कृत मे पृथुक चिपिटक तथा मरेठी मे-पोटे कहते है। ये गुरु, वातनाशक कफकारक है। दूध मे भिगोकर शक्कर मिलाकर सेवन करने से पुष्टिकारक, वृष्य, बलदायक एव मलभेदक(पतले दस्त लाने वाले) होते हैं। किंतु दही के साथ खाने से मलबन्धक हैं अत अतिसार मे लाभकारी हैं ध्यान रहे चिउरा को उपयोग मे लाने के पूर्व पानी में अच्छी तरह धो लेना चाहिए।

(७) मुरमुरा—चावलो को रेत की सौम्य भट्टी मे भूनने से मुरमुरा (मुरी) बनता है। यह भी बहुत लघु (हल्का) आहार है। भात के स्थान मे रोगियो को यह दिया जाता है। यह अग्निमाद्य, एव अम्लपित्त नाशक है। ऐसी दशा मे प्रात कलेऊ के रूप मे इसके साथ-नारियल के महीन टुकडे थोडे प्रमाण मे मिलाकर खाने से लाभ होता है।

(८) पायस (खीर)—उत्तम चावल १० तोले को धोकर प्रथम घृत मे तलें फिर १ सेर या २ सेर दूध को औटाकर उसमे इसे डालकर पकावें इसमे अन्दाज से थोडा घृत, शक्कर, किसमिस, चिरौंजी आदि मिला दे। बस यही-दुग्ध-क्षीरिका, पायस या परमान्न है। यह पचने मे गुरु पित्तनाशक, बलवर्धक, मलावष्टम्भक, मेदवर्धक, एवं रक्तपित्त, अरुचि, वातपित्त नाशक है।

नोट—चावलों से और भी कई प्रकार के खाद्य-पदार्थ—दुग्ध कूपिका, ताहरी, अरुचनी आदि बनाये जाते है। जापान और चीन देश में चावलों से एक प्रकार की शराब बनाई जाती है।

(९) चेहरे और शरीर की कांतिवर्धनार्थ—केवल चावलो को या इसमे अन्य उपयुक्त द्रव्यो को मिला उबटन जैसा बना कर चेहरे एवं शरीर पर लगाते है।

चावलो को पानी मे भिगोकर, उस पानी से चेहरे को धोते रहने से चेहरे की झाई दूर होती हैं।

(१०) चावल के धोवन मे शक्कर और सोरा मिलाकर मूत्र-रेचनार्थ देते है; इस धोवन को भाग के नशा उतारने के लिये पिलाते हैं, तृषा-निवारणार्थ–इस धोवन में शहद मिलाकर पिलाते हैं। तथा कई औषधियो के अनुपान मे यह धोवन दिया जाता है। बडे-बडे व्रणो को इस धोवन से धोना लाभकारी है।

(११) भस्मक रोग (तीव्राग्नि) पर—लाल शालि चावल २ भाग, तिल और मूग १-१ भाग लेकर अलग-भून लें, तिलो को कूटकर सूप मे पछोड ले। फिर सबको मिला ४ गुने जल मे खिचडी पका लें। इसमे घृत मिलाकर अच्छी तरह पेट भरकर खिलाते रहने से भस्मक रोग दूर होता है। (हा॰ सं॰)

रोग विशेष तीव्र न हो, तो यह खिचड़ी १-१ दिन छोडकर खिलावें। इसके सेवन-काल में रोगी को प्रवाल-पिष्टी ६ रत्ती, वशलोचन १ मा॰, सोना गेरु ४ रत्ती और गिलोय-सत्व १॥ मा॰ (या गिलोय-स्वरस ४ तो॰) मिला, दो हिस्से कर प्रात साय शहद के साथ देते रहने से अधिक लाभ होता है। (र॰ तं॰ सार)

अथवा—चावल और श्वेत कमल इन दोनो को बकरी या भैस के दूध मे पकाकर, घृत मिला सेवन कराते रहने से भी भस्मक रोग मे लाभ होता है।

(१२) वमन पर–धान की खील (लावा) १ तो॰, छोटी इलायची २-४ नग, लौंग २-४ नग, तथा मिश्री ३ से ६ माशे तक लेकर, सबको १ पाव (२० तो॰) जल मे मिला ५-७ उफान आने तक आग पर उबालें। फिर उतार कर शीतल होने पर कपडे से छान ले। इस लाज-

लाल वर्णयुक्त गहरे बादामी रंग की, पत्र–शाखा पर दन्त-वद्ध, ६–१२ इंच लम्बे, ४-५ इंच चौड़े अण्डाकार, ऊपर से हरे, चमकीले, नीचे की ओर रोमश, फूल–श्वेत वर्ण के, फल–अण्डाकार, हरे, चमकीले, चिकने १ इंच लम्बे, मीठे होते है। ये फल खाये जाते है। बीज–प्रत्येक फल मे १-३ तक होते है, जिनमे मक्खन जैसा गाढ़ा तैल होता है।
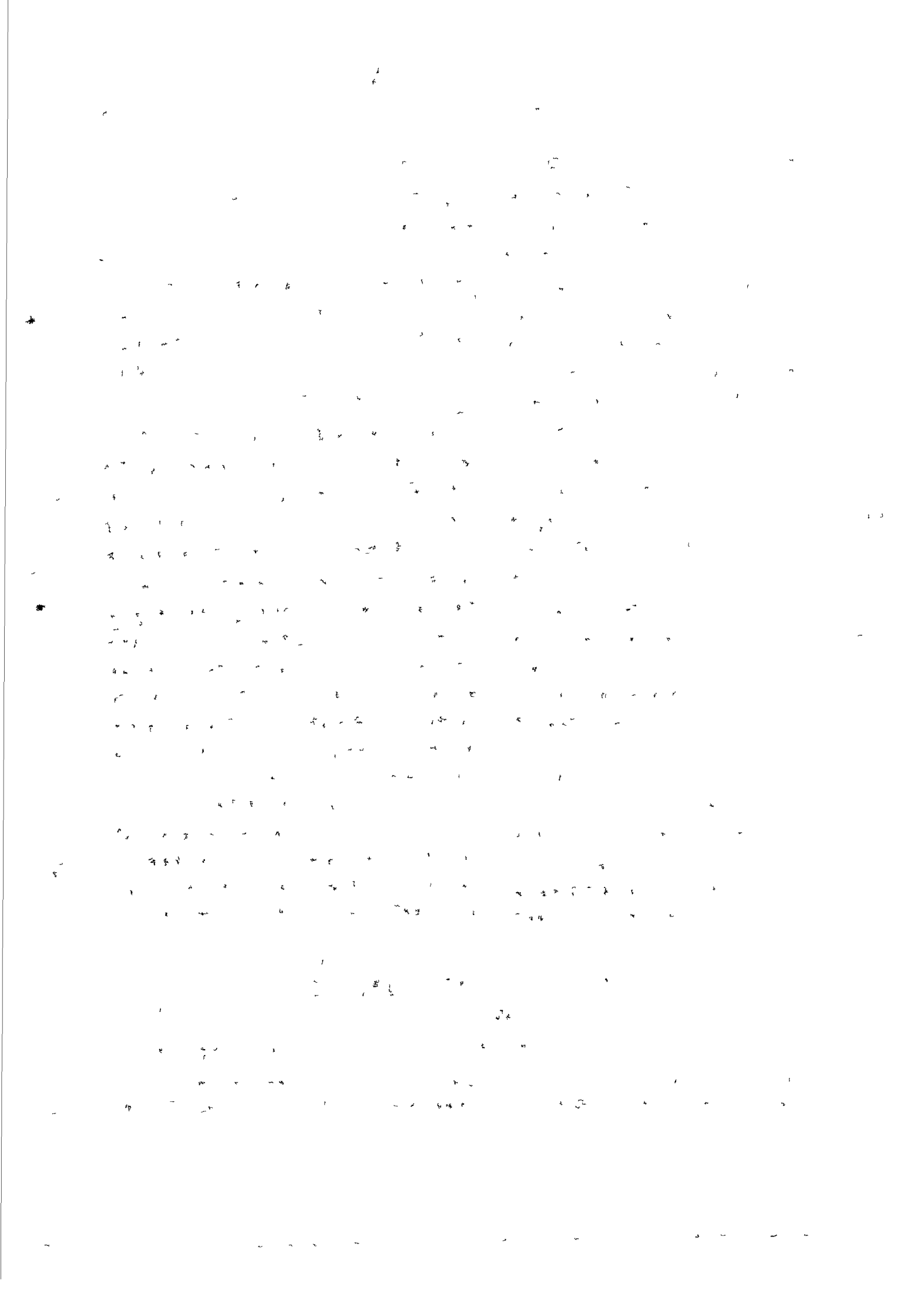
ये वृक्ष हिमालय के दक्षिण भागो मे कुमाऊं से भूटान तक अधिक पाये जाते है।

नाम—

हि०–चिउरा, फलवारा, फुलेल, बेउली।
अं०–फुलवारा बटर, इंडियन बटर ट्री।
(Phulwara butter. Indian-butter-tree)
ले०—बेसिया ब्युटीरेसिया।

रासायनिक संघटन-

इसके बीजो की गिरी मे प्र. श. ६० से ६५ तक श्वेत वर्ण की, मधुर गन्धयुक्त चर्बी प्राप्त होती है। यह मक्खन जैसा गाढ़ा तैल कोकम के तैल जैसा उपयोगी है। इससे साबुन, मोमबत्तियां जैसी चीजे निर्माण की जाती है।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी चर्बी मार्दवकर है। शरीर के किसी भी भाग पर लगाने से उसे मुलायम करती तथा उसकी वायु से रक्षा करती है।

सिर–दर्द, सन्धिपात, शोथ पक्षाघात आदि पर यह मालिश की जाती है। तथा खुजली एवं शीतकाल के चर्म-विकारो पर भी यह उपयोगी है।

चिकरी–देखिये–खारी मे। चिकाकाई–देखिये–शिकाकाई। चिचड़ा–देखिये–अपामार्ग और चचेड़ा।
चिचेड़ा–देखिये–चचेडा। चिडचिडी–देखिये–अपामार्ग।

चित्रक (श्वेत और रक्त)

(*PLUMBAGO ZEYLANICA, PLUMBAGO ROSEA*)

हरीतक्यादि वर्ग एवं [1]चित्रककुल (Plumbaginaceae) के श्वेत और लाल चित्रक के क्षुप दो से ४ या ६ फुट तक ऊंचे, बहुवर्षायु एवं प्रायः सदैव हरे-भरे रहते हैं। पत्र–मकोय के पत्र जैसे, १।। से ३ या ३।। इंच लम्बे, १-१।। इंच चौड़े, लम्बेगोलाकार, हरे, दलदार, चिकने, अनीदार, कही २ बेलपत्र जैसे तीन २ मिले हुए, कही डंठल पर सामने सामने विषमवर्ती, एवं पत्र-वृन्त श्वेत का श्वेत वर्णका तथा लाल का किंचित् लालवर्ण का बहुत ही छोटा ३/४ इंच तक लम्बा, पुष्प-दण्ड–४-१२ इंच लम्बा, अनेक शाखायुक्त, जिन पर श्वेतवर्ण के चमेली पुष्पो -जैसे पुष्प, किंतु निर्गन्ध गुच्छो मे (लाल चित्रक के पुष्प-गुच्छ लाल रंग के होते है) तथा इन गुच्छों मे अलग अलग विभाग से दिखाई देते है और प्रत्येक गुच्छे मे १५ से ३० तक पुष्प कुछ अन्तर से शीतकाल मे

[1]इस कुल के क्षुपों के पत्र-अभिमुख या एकान्तर, सादे, पुष्प- बाह्यकोष के दल ५, नीचे से जुड़कर नलिकाकार बने हुए, छोटी छोटी ग्रंथियो से युक्त, पुष्पाभ्यन्तर कोश के दल ५, पुंकेशर ५, स्त्रीकेशर १, फल छोटे और कड़े होते है।

इस कुल मे श्वेत पुष्प वाले तथा लाल फूल वाले, ये दो प्रकार के चित्रक ही प्रधान है। तथा ये दोनो व्यवहार में उपलब्ध हैं। निघण्टुओं मे कृष्ण और पीत पुष्पों के भी चित्रको का उल्लेख है। इनमें से कृष्ण (काला) चित्रक तो क्वचित् देखने सुनने मे आता है (बनारस कचहरी के पास योरोपियन क्लब के हाते से काले चित्रक का एक ही क्षुप नमूनार्थ रखा गया है--श्री गंगासहाय पाडे, सम्पादक भा-अ-नि) किंतु पीले का तो कही नाम निशान नही मिलता, शायद यह लाल चित्रक का ही कोई भेद हो।

कृष्ण चित्रक का विवरण आगे के प्रकरण मे देखिए।

कृष्ण कोई भी हो, सब की जड एक समान ही होती है। उनमे कोई विशेष भेद दृष्टिगोचर नही होता। ग्रीष्म ऋतु मे इन जडो के कुछ भाग तथा उक्त शाखाओ को कटवाकर व्यापारी लोग सग्रह कर लेते है। वर्षा मे पुन नवीन शाखाये जमीन के अन्दर शेष बची हुई जडो से फूटकर निकलती है। ये मूल तथा शाखाये स्वाद मे तिक्त, कटु, जीभ मे छेदन जैसी पीडादायक होती है। श्वेत चित्रक की अपेक्षा लाल चित्रक विशेष प्रभावशाली होता है।

श्वेत चित्रक के क्षुप दक्षिण भारत, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बगाल, विहार, एव कुमाऊं और सीलोन के प्राय उष्ण प्रदेशों की पथरीली जमीन एव भाडीदार जगलो मे अधिक पाये जाते है। वैसे तो प्राय पहाडी जमीन या पुराने जीर्ण शीर्ण किलो या टीलो पर भारत मे प्राय सर्वत्र ही ये क्षुप पाये जाते हैं।

किन्तु लाल चित्रक सर्वत्र नही मिलता। यह सिक्कम और खासिया पहाडो की तराइयो मे तथा विध्याचल की तराई और कूच विहार मे अधिक पाया जाता है। इसे प्राय बड़ी सावधानी से कही कही बाग बगीचोमे भी लगाते हैं। यह प्राय चिकनी एव कुछ रेतीली जमीन मे अच्छी तरह फलता फूलता है। अन्यथा शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

नोट—चरक के दीपनीय, तृप्तिघ्न, शूल-प्रशमन, भेदनीय, अर्शोघ्न, लेखनीय, कटुक स्कन्ध आदि तथा सुश्रुत के पिप्पल्यादि, मुस्तादि, आमलक्यादि, मुष्ककादि वरुणादि तथा आरग्वधादि गणों के प्रसगों मे एवं कई प्रयोगों मे इसका उल्लेख पाया जाता है।

(२) श्वेत और लाल इन दोनों चित्रकों के रासायनिक सघटनों में कोई विशेष भेद नहीं है। अतः कहा जाता है कि श्वेत चित्रक लाल चित्रक का ही एक रूपान्तर-मात्र है। दोनों के गुणधर्म मे प्राय समानता है।

रासायनिक सघटन--

इसमे जो प्लम्बाजिन (Plumbagin) नामक एक प्रभावशाली कटु, स्फटकीय, पीले वर्ण का सूच्याकार सत्व अधिक से अधिक ०.९१ प्र श. पाया जाता है वह कुछ विषैला, निद्राजनक तथा त्वचा पर लगाने से तेजाब जैसा प्रभाव करता है। यह प्रभाव श्वेत की अपेक्षा लाल चित्रक के उक्त सत्व मे विशेष तीव्र रूप मे होता है। यह सत्व गरम खौलते हुए पानी मे घुलनशीलहोता है, तथा इसकी गध सुहावनी किंतु कुछ उग्र या तीखी सी होती है।

नाम—

स.—चित्रक अग्नि (सस्कृत मे अग्नि के जितने नाम है, वे समस्त आयुर्वेदीय परिभाषानुसार इसे ही दे डाले गये हैं) तथा लाल को रक्त चित्रक, काल, अतिदीप्य आदि। हि. चित्रक। चीता, चितउर (लाल चीता) आदि। म० चित्रकमूल (लाल को तम्बडी चित्रक)। गु० चित्रो, धोलो चित्रो, चित्रा पीत से (रातो चित्रो)। ब० चितागाछ, चिता(रक्तोचितो,एडचितो)। अं० व्हाइट लेड वर्ट (white lead wort), सीलोन लेड वर्ट (Ceylon lead wort); लाल को रोज कलर्ड लेड वर्ट (Rose Coloured lead wort)। लै० प्लम्बेगो भिलेनिका (प्लम्बेगो रोझिया)

इसकी प्राय जड़ एव शाखाओं की छाल, नई ताजी काम मे ली जाती है। जूनी होने पर यह गुणहीन हो जाती है।

यह लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, विपाक मे कटु एव उष्ण वीर्य, दीपन, पाचन, पित्तसारक, ग्राही, कृमिघ्न, रक्तपित्त प्रकोपक,शोथहर, मूत्रल, कफघ्न, वर्ण्य, रसायन, तीव्रगर्भाशय संकोचक, गर्भस्राव, स्वेदजनन,त्वग्रोगनाशक, ज्वरघ्न, लेखन विस्फोट जनन है। तथा इसका प्रयोग—नाडो दौर्बल्य, वात व्याधि, अजीर्ण, उदरशूल, यकृद्विकार ग्रहणी, कृमि, शोथ (विशेषत यकृत, प्लीहा वा गुदा का शोथ), जीर्ण प्रतिश्याय, कास, रजोरोध, प्रसूति विकार, मक्कल शूल, ध्वजभग, कुष्ठ, श्वित्र, विसर्प, जीर्ण विषम ज्वर, कण्डू, पाडु, मेदा रोग, गुल्म, सधिवात, श्लीपद आदि मे किया जाता है। कटु होने से कफ का, तिक्त होने से पित्त का एव उष्ण होने से वात का नाशक है।

इसका सत्व (प्लम्बाजिन या प्लम्बेगो)—अल्प मात्रा मे लेने से केन्द्रिय स्नायु मण्डल को उत्तेजित करता है, तथा अधिक मात्रा मे यह शैथिल्यजनक एव मृत्युकारक

भूख लगने लगती है, भोजन मे रुचि एवं मन मे प्रसन्नता उत्पन्न होती है।

(२) संग्रहणी पर—मूल या छाल के चूर्ण को १ माशा तक की मात्रा मे तक्र के साथ सेवन करने से लाभ होता है। इस चूर्ण के साथ हरड, और सोठ का भी चूर्ण मिला देने से कफ की संग्रहणी शीघ्र दूर होती है। इसे हरड, सेंधानमक और पीपलामूल के चूर्ण को मिला कर तक्र के साथ या वैसे ही जल के साथ भी दिया जाता है। उक्त प्रयोगों से बडी और छोटी आतो की शिथिलता से उदर मे कभी कब्जी और कभी दस्त लगने की जो अव्यवस्था होती है वह दूर हो जाती है। अथवा—इसके चूर्ण के साथ हाऊबेर और हींग के चूर्ण को, या पचकोल (पीपल, पीपलामूल, चव्य, चित्रक व सोठ) सहित इनके चूर्ण को तक्र के साथ पिलाना भी हितकर है। अथवा—इसके मूल के क्वाथ और लुगदी के द्वारा सिद्ध किये गये घृत का सेवन भी विशेष लाभकारी होता है।[1] शास्त्रोक्त चित्रकाद्यरिष्ट का सेवन भी पुरानी संग्रहणी, आमातिसार आदि पर उत्तम लाभदायक है।

(३) अर्श पर—इसकी जड के चूर्ण को दूध मे पका कर उसका दही जमा लेवे, अथवा—जड को पानी के साथ महीन पीस कर मटकी के भीतर लेप कर, लेप के सूख जाने पर उसमे दही जमा कर, तथा उसको उसी मे मथ कर, उस तक्र को पान करने एव उसी तक्र के साथ पथ्यान्न सेवन करने से अर्श म विशेष लाभ होता है। अथवा—इसकी जड का महीन चूर्ण मात्रा ४ रत्ती से १ माशा तक नित्य ताजे तक्र के साथ (तक्र १ बार मे ५ से १० तोले तक लेवें) सेवन करते रहने से भी लाभ होता है, किन्तु इस प्रयोग को लगातार ६ मास तक करना चाहिये। अथवा—[illegible] पत्तों को पानी के साथ घोट [illegible] बवासीर दूर होती है, तथा [illegible] पर भी यह लाभदायक है।

चर्मकीलों पर—इसकी [illegible] तथा सुहागा, हल्दी, और पुराना गुड समान भाग लेकर खरल कर मस्सो पर लगाते रहने से वे नष्ट हो जाते है। (वृ. द.)

(४) यकृत, प्लीहा आदि विकारो पर—चित्रकमूल १। सेर जौकुटकर १६ सेर जल मे पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर उसमे १ पाव गुड मिला पुनः पकने देवे। घनीभूत हो जाने पर उसमे त्रिकुट, सौंफ, कूट, हरड, नागरमोथा, दालचीनी, वायबिडंग, इलायची, और चित्रक मूल का चूर्ण २-२ तोले मिला रखले। मात्रा—१ तो तक नित्य सेवन से अग्निदीप्त होती है, एवं यकृत, प्लीहा, गुल्म, अर्श रोग नष्ट होते हैं। (वा. भ.)

शास्त्रोक्त चित्रकाद्यरिष्ट, चित्रकादि क्षार, चित्रकादि लोह आदि भी यही कार्य करते है। अथवा—सरल प्रयोग त्रिमद (चित्रक, नागरमोथा और वायविडग) का है, तीनों का समभाग महीन चूर्ण मात्रा १ मा प्रात सायं शहद से चटावें। १ महीने में प्लीहा एव यकृत विकृति दूर होकर बार-बार आने वाला ज्वर नष्ट हो जाता है। तथा शक्ति की वृद्धि होती है। अथवा—

इसकी छाल के महीन चूर्ण को ग्वारपाठा के गूदे पर बुरक कर नित्य प्रात सेवन करने से विशेषतः प्लीहा वृद्धि पर शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—प्लीहा वृद्धि पर—इसकी जड की ताजी छाल ६ रत्ती खूब महीन पीस कर ३ गोलिया बनाले। प्रात. केवल एक बार खाली पेट १ पके केले के गूदे मे तीनों गोलियो को लपेट कर खा जावे। इससे प्लीहा तथा अन्य उदर विकार शीघ्र नष्ट होते हैं।

नोट—वातज प्लीहा मे चित्रक, पित्तज में हल्दी, कफज में धात्री पुष्प तथा त्रिदोषज में अर्क पत्र देते हैं। (भै. र.)

इन विकारो पर—इसके ताजे पत्तों का स्वरस फिल्टर-पेपर मे छान, मृतसंजीवनी सुरा मे मिला नित्य २० बूंद सेवन करते हैं। अथवा चित्रक के क्षार की मात्रा १ रत्ती तक शहद के साथ सेवन कराते हैं।

बाह्य प्रयोग—स्प्रिट योग से इसका तीक्ष्ण टिंचर

[1] [illegible] [[illegible]] आगे विशिष्ट योगों में [illegible]

उपदंश-जन्य बद (व्रण पिडिका) पर इसकी जड को नीबू रस मे पीसकर लगावे ।

(९) श्वेत कुष्ठ, मडल कुष्ठ आदि पर—इसकी जड की मात्रा १ माशा तक चूर्ण २॥ तो० ताजे छने हुए गोमूत्र (या पचगव्य) के साथ मिला प्रात नित्य १ बार ३ या ६ माह तक सेवन करते रहने से कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है। साथ ही बाह्य प्रयोगार्थ इसकी छाल को दूध, अगूरी सिर्का या नमक और पानी के घोल के साथ पीस कल्क बना लेप करे ।

अथवा–जड की ताजी छाल १ तोला और बावची १० तोला दोनों का महीन चूर्ण कर काच की शीशी मे भर रक्खे । नित्य प्रात साय १ से २ मासे की मात्रा मे जल के साथ खिलावे, तथा उसी चूर्ण को श्वेत कुष्ठ के दागो पर जल के साथ खूब महीन घोट कर लेप करें और धूप मे वह स्थान जब-तक गरम न हो जाय तब तक बैठे । इस विधि को आलस्यरहित हो नित्य करें। पथ्य पूर्वक रहे, तैल आदि का सेवन न करे। लेप के लिये–इसकी ताजी पत्तियो को गोमूत्र मे पीस कर गरम कर लेप करते रहने से भी लाभ होता है ।

अथवा—इसकी जड छाल के चूर्ण को--भागरा (भृगराज) के रस की ७ भावनाएं देकर शीशी मे भर रक्खें । मात्रा–३ माशे तक चूर्ण, शहद १ तोला के साथ सेवन करें । तथा सरसो का (शरपुखा) पचाग १ तो० जौकुट कर १ पाव पानी मे पकाकर ५ तो० रहने पर छानकर १ तो० शहद मिला पी लेवे । साथ ही उक्त चूर्ण को गोमूत्र में पीस कर श्वेत कुष्ठ पर लगावें, विशेष लाभ होता है । ध्यान रहे इसकी छाल या पत्ती के लेप से फफोला या दाने पड जाने पर घृत या मक्खन लगाते रहें । अथवा—

चित्रक तैल—चित्रक स्वरस १ सेर, अमलतास के पत्तो का रस १ पाव, तथा हल्दी, बावची, त्रिफला, अंजीर वृक्ष की छाल तथा अर्क मूल की छाल प्रत्येक २-२ तो० कूट-पीस कर मिलालें । उसमे १ सेर तिल-तैल मिला तैल सिद्ध करले । इस तैल की मालिश से कुष्ठ, श्वेत कुष्ठ, दाद आदि चर्मरोग शीघ्र नष्ट होते है ।

मंडल कुष्ठ पर–इसकी मूल को गोमूत्र या ताजे जल के साथ पीस कर लेप करने से, तथा फिर उसे ५ मिनिट बाद पौछ कर उस पर सम्हालू या निर्गुण्डी के बीजों को पीसकर लगाते रहने से लाभ हो जाता है ।

(१०) वातरोगो पर–मूल-छाल का चूर्ण ४ से ८ रत्ती तक नित्य १ बार, तिल तैल १ तो० मे मिला सेवन करावें । १ माह में वातरोग शमन हो जाता है ।

आमार्गगत वात-प्रकोप पर–इसकी मूल, इन्द्र जौ, पाठा, कुटकी, अतीस और हरड, प्रत्येक ४-४ मा० लेकर महीन चूर्ण बनालें (यह शास्त्रोक्त षड्धरण योग है) मात्रा–१॥ मा० से ३ मा० तक सुखोष्ण जल के साथ ६ दिन तक सेवन करने से यथेष्ट लाभ होता है । (भा० प्र०)

सधिवात पर–मूल को शराब (मद्य) के साथ पीस-कर, उसमे थोडा सेंधा नमक मिला, वेदना-स्थान पर लेप करने से शीघ्र वेदना शात होती है । विशिष्ट योगों में चित्रकादि चूर्ण देखे ।

यदि गठिया की विशेष पीडा हो, तो इसकी छाल को दूध के साथ पीस पुल्टिस बना बाध देवें । १०-१५ मिनिट बाद पुल्टिस को उतार देवे । शोथयुक्त वेदना दूर हो जावेगी ।

आमवात या शून्यवात पर—छाल को पानी मे पीस कर या इसके चूर्ण को तैल मे मिलाकर लेप या मर्दन करे ।

(११) पाडु और कामला पर–मूल-छाल के चूर्ण को आमला-स्वरस की तीन भावनाए देकर उचित मात्रा मे रात्रि के समय गोघृत के साथ सेवन कराने से पाडु रोग मे लाभ होता है ।

कामला व कुम्भ कामला हो, तो इसकी जड २ भाग तथा श्वेत अपामार्ग की जड १ भाग, दोनो का महीन चूर्ण कर रक्खे । मात्रा–१ से १॥ मा० तक गाय की छाछ के साथ सेवन करे । १५ दिन मे पूर्णतया लाभ होता है ।

(१२) कास, श्वास आदि कफ-विकारो पर—मूल का महीन चूर्ण १ मा० तक प्रतिदिन प्रात -साय शहद
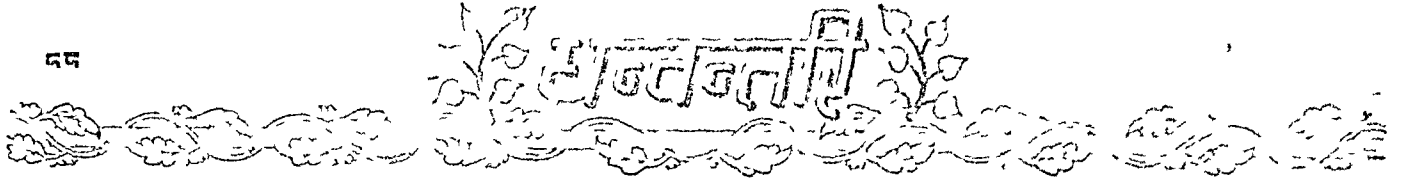
मिला पिलावे। अथवा इसकी मूल को माता के दूध मे घिसकर थोडा शहद मिला पिलावे। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

जिस स्त्री के बच्चे इस रोग से मर जाते है, उस स्त्री को गर्भ रहने पर ८ मास के बाद ९ वें मास से प्रसव काल तक इसके फल का महीन चूर्ण अर्ध रत्ती से १ या २ रत्ती तक थोडा गुड मिला सेवन करावे और ऊपर से गोदुग्ध १ पाव तक पिलाते रहे, दिन मे केवल एक बार। बच्चा हो जाने पर यह प्रयोग ४० दिन तक चालू रखने से माता का दूध शुद्ध होकर बच्चा निरोग रहता है। बच्चे की बाल घुटी में इसकी मूल और असगंध दोनो को थोडी २ मात्रा में घिसकर पिलाते रहना चाहिए। रक्तातिसार या आंव रक्त का विकार हो तो इसका चूर्ण अर्ध रत्ती और लोध २ रत्ती शहद मे घिस कर चटावे।

(२१) स्त्री रोगो पर—सूतिका विकार प्रसव के पश्चात्-कई प्रसूता स्त्रियो का मुंह आ जाता है [मुख मे छाले आदि] तथा दस्त लगते है, योनिमार्ग मे शोथ, खुजली और क्षत एक साथ या एक एक करके होते हैं तथा अन्यान्य विकार होते हैं। ऐसी अवस्था में इसके मूल चूर्ण को उचित मात्रा मे छाछ [तक्र] के साथ पिलाते रहने से, शीघ्र ही उक्त विकारो का जोर घट जाता है। अथवा इसके हरे ताजे पत्तो को छाछ के साथ पीसकर पिलाते है।

यदि सूतिका ज्वर हो तो इसकी मूल २ से ६ माशे तक तथा निर्गुण्डी [सम्हालु] के मूल की छाल १ तोला इन दोनो को जौकुटकर एक पाव जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर ठडा हो जाने पर उसमे १ तोला शहद मिला सेवन कराते है। इससे ज्वर हलका हो जाता है, शरीर मे उत्तेजना होती है तथा गर्भाशय उत्तेजित होकर दूषित आर्त्तव का स्राव होता, एव मक्कल शूल (After Pain) की संभावना नही रहती है।

मूढ गर्भ निस्सारणार्थ—यदि बच्चा गर्भाशय के भीतर ही मृत हो गया हो, तो उसे सरलता से बाहर निकालने के लिए—मूल छाल का महीन चूर्ण ४ से ८ रत्ती की मात्रा में निर्गुण्डी मूल के क्वाथ के साथ पिलाते है। तथा साथ ही साथ उक्त चूर्ण को मलमल वस्त्र के टुकडे मे पोटली बाधकर योनि मार्ग के अन्दर धारण कराते हैं।

गर्भाशय के मुखावरोध पर—गर्भाशय का मुख संकुचित हो जाने से गर्भधारणा नही हो पाती, ऐसी दशा मे बिना शल्य कर्म के भी चित्रक के उपचार से लाभ होता है—मूल छाल का क्वाथ कर ठडा हो जाने पर छानकर गर्भाशय के मुख पर पतलीधार से सिंचन [डुश] करते है। किंतु-इस तिक्त के प्रथम योनि की दीवारो मे घृत का लेपकर दिया जाता है। प्रयोग बहुत तीक्ष्ण है, अत: थोडी सावधानी की आवश्यकता है। इस प्रयोग से गर्भाशय का मुख खुल जाता है।

वन्ध्याकरण योग—मूल छाल चूर्ण १ माशे की मात्रा में २० तोला काजी मे मिला पकावें। अर्धावशिष्ट ५ तोले रहने पर रजोधर्म के बाद पिलावे। ३ दिन तक पिलाने से निश्चय ही स्त्री वन्ध्या हो जाती है।

—कुचिमार तंत्र

(२२) चूहे के तथा सर्प के विष पर—मूल चूर्ण को तिल तेल मे पकाकर हाथ पैर के तलुवो तथा सिर के तालू पर मालिश करने से चूहे के विष पर लाभ होता है।

सर्प विष—चित्रक मूल ६ तोला, केतकी की जड [बूटी दर्पण काले वेल का कन्द १ कहा है] और कठूमर की जड ३-३ तोला एकत्र जल मे घोट छानकर [जल आध सेर से १ सेर तक] सर्पदष्ट व्यक्ति को थोड़ी थोडी देर से ३-४ बार मे पिला देवे, तथा उसे गोबर के ढेर पर वैठाकर, उसके सिर पर शीतल पानी की धार छोडें। ऐसा करने से १-२ प्रहर मे विष उतर जाता है, पश्चात् कालीमिर्च और घृत के मिश्रण को यथेच्छ [आध सेर तक] पान करावे।

विशिष्ट प्रयोग—

१ रसायन कल्प—चित्रक मूल का अथवा इसके छायाशुष्क पचाङ्ग का चूर्ण रक्खे। मूल चूर्ण की मात्रा २ से ८ रत्ती तक, तथा पचाग चूर्ण १ से ४ मा तक गो घृत, मक्खन अथवा शहद के साथ [अथवा घृत के

सेटीन आदि डॉक्टरी दवाओ की तरह कोई दुर्गुण नही करता ।

नोट—आसव एवं अरिष्ट के अन्य प्रयोग हमारे बृ० आसवारिष्ट संग्रह मे देखें ।

चित्रकादि चूर्ण, चित्रकादि क्वाथ, चित्रकादि अवलेह, चित्रकादि तैल आदि आदि के प्रयोग-शास्त्रो मे देखिये ।

चित्रक (काला या नीला) (PLUMBAGOEAPENSIS)

इसमे और लाल या श्वेत चित्रक मे केवल फूलो का रग-भेद हैं । इसके फूल नीले रग के होते है तथा जड भी कुछ काली सी होती है, किंतु जड की कलौंछ स्पष्ट-दृष्टिगोचर नहीं होती । शायद किसी की जड काली भी होती हैं । यह चित्रक आजकल दुर्लभ ही है । शायद ही किसी बाग मे यह लगाया हुआ हो जैसा कि श्री ठा० बलवन्तसिह एम एस सी अपनी वनौषधि दर्शिका मे लिखते हैं कि यह प्राय: बागो मे लगाया हुआ मिलता है ।

नाम-

सं०—कृष्ण चित्रक, श्याम चित्रक आदि ।
हि—काला चीता, नीला चित्रक, कालाचित्तउर ।

कहा जाता है कि जहा काला बछनाग होता है, उसी जगल मे यह भी होता है ।

गुणधर्म—

कहा जाता है, तथा किसी निघण्टु मे लिखा है[1] कि शरीर के जिस स्थान के केश श्वेत हो, वहा इस चित्रक की जड को घिस कर लगाने से श्वेत केश सब झड जाते है, और फिर सदैव बाल काले निकलते हैं, किन्तु ऐसा करने से सूजन और दाह पैदा हो जाती है । ऐसी अवस्था मे उस स्थान पर घृत या मक्खन लगाते है । इसके खाने से भी बाल काले निकलते है ।

इसकी जड को दूध मे डालने से दूध का रंग तत्काल काला हो जाता है । गौ इसके क्षुप को केवल सूंघ ले तो उसका दूध काला हो जाता है । अथवा जिस काले चित्रक को गौ ने सूंघ लिया हो, उसकी जड़ को लाकर यदि दूध मे डाला जाय तो दूध काला पड जाता है ।

१ केशाः कृष्णा: प्रजायन्ते कृष्ण चित्रक भक्षणात् ।
कृष्ण कृष्णं समत्वाब्य गोभिराघ्रातमेव वा ॥
क्षीर मध्ये क्षिपेद्वापि क्षीरं कृष्ण प्रजायते । इति

चित्रा—दे०—नागदौन । चिनगारी—दे०—भारगी । चिना (चीना)—दे०—चेना ।

चिनाई घास (GRACILARIA LICHENOIDES)

यह शैवाल कुल (Algae) की सामुद्रिक काई या घास सीलोन, कन्याकुमारी के टवर्त्ती हिन्द महासागर मे एव खारे तालावो मे पैदा होती है । इसके तन्तु पीतवर्ण के बारीक तागे जैसे होते हैं । इन्ही तन्तुओ को शुष्क कर औषधि-कार्यार्थ रख लेते हैं ।

नोट—इसका ही एक भेद लाल रग का होता है । इसे लेटिन मे -जेलिडियम कार्टिलेजिनेम (Gelidium Cartilagineum), अंग्रेजी मे—रेड अल्गी (Red Algae) जापानी इजिंग्लास (Japanese Isinglass) आदि कहते है । यह जापान के तटवर्त्ती प्रदेशों मे विपुलता से होती है । प्रस्तुत चिनाई-घास की अपेक्षा यह गुणों में उत्कृष्ट होती है ।

नाम—

हि०—चिनाई घास, दरया की घास; पाची (लंका की सीलोनी भाषा मे अगर अगर) । अं०—सीलोन-मॉस (Ceylon moss), सी वीडस (Sea weeds) । ले०—

चियन (गारबीज)
ENTADA SCANDENS BENTH.
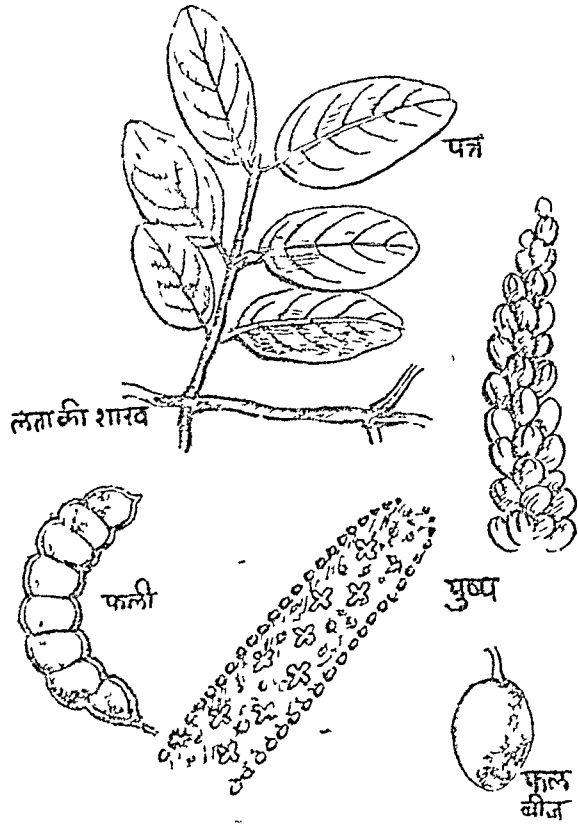
लम्बी, मालाकार, वक्र, ग्रीष्म के प्रारभ मे, बीज–गोल, २ इंच तक लम्बे चिपटे, कडे, उज्ज्वल होते है। बीजो को पीला पापडा, तथा बंगला मे गिल कहते हैं। औषधि-कार्य मे प्राय बीज ही लिए जाते हैं।

यह लता पूर्व हिमाचल प्रदेशो मे, पूर्वी बंगाल तथा उष्ण प्रान्तो के जंगलो मे पाई जाती है।

नाम–

हि०–चियन, गारबीज, कठबेल इ०। म०–गिरंबी, गारबीज, गरदुल, आटोडी इ०। गु०- पीलापापडा। बं०–गिलगाछ। ले०–एन्टाडा स्कान्डेन्स, ए० पुसीठा [E Pusaetha], एकाशिया स्कान्डेन्स [Acacia scandens]

रासायनिक संघटन–

बीजो मे एक प्रकारका चिपचिपा, गंदला सा तैल प्र श ७ तथा किंचित् सेपोनिन (Saponin) ग्लुकोसाईड एव कुछ क्षारीय तत्व पाये जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग–

बीज–दाहकारक, वामक, एव मछलियो के लिए मारक होता है। यह कटि एव संधिशूल, ग्रंथिक शोथ आदि नाशक है।

काख-विलाई–(काख मे जो दाहकारक ग्रंथिव्रण होता है) पर–बीजो का कल्क लेप करने से दाहयुक्त शोथ मे शांति प्राप्त होती है। यह बीजो का लेप कटि-शूल, सन्धिशूल तथा हाथ पैरो की सूजन पर भी लगाते है। केशो को स्वच्छ करने के लिए बीजो को पानी मे पीस कर लगाते है। प्रसूता स्त्री के शारीरिक शूल तथा शीत-वात-निवारणार्थ–फली को अन्य औषधियों के साथ पीस कर क्वाथ या शीत निर्यास पिलाया जाता है। यह ज्वर नाशक भी है। चर्म रोगो पर इसकी छाल का शीत निर्यास दिया जाता है। फोडो पर छाल का क्वाथ लगाते हैं।

चिरई गोड़ा (*VITEX PEDUNCULARIS*)

यह निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) का वृक्ष २०-२५ फीट ऊंचा, शाखायें–मृदुरोमश, पत्र–रायुक्त, वेलपत्र जैसे त्रिपत्रक, लम्बे, भालाकार ४-५ इंच लम्बे, १ इंच चौडे, नोकीले, अधर-तल पर सूक्ष्म पीत ग्रंथियुक्त, पुष्प-श्वेत पीतवर्ण के, ६-११ इंच लम्बी मजरियो मे तथा फल मांसल, ·२५–·४ इंच बड़े होते हैं।

नोट–(१) इसकी अन्य कई जातियां है। जिसकी जड काली सी होती है, वह पीली जड वाली की अपेक्षा गुणधर्म मे अधिक प्रभावशाली होती है।

(२) यद्यपि स्वरूप से, इसमे और काकजंघा बूटी मे कोई साम्य नही है, दोनों का कुल भी भिन्न है। तथापि नाम सादृश्य एव गुणधर्म मे किंचित् साम्य होने से कोई कोई इसे भी एक प्रकार की काकजघा ही

ताजा रस लगाते हैं।

नोट—चिरचोटी--उक्त बूटी से भिन्न—कण्टकारी कुल (Solanaceae) के इस बूटी के वर्षायु पौधे २-३ फुट तक ऊचे, वर्षा ऋतु मे पैदा होते हैं। इसे हिन्दी में—चिरचोटी, तुलसीपत्र। मराठी में–चिरचोटी, थानमांडी। गु०--पोपटी, परपोटी, बं०–तुन्तेपुरीय, तेकारी, और लें०—फिसीलिस इंडिका (Physcils Indica) कहते है।

इस बूटी के फल–स्वादिष्ट, खटमीठे, बेर जैसे ही लगते हैं। इसे अंग्रेजी मे विंटर चेरी (Winter-cherry) कहते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग

यह मूत्रल, पौष्टिक तथा विरेचक है। इसके पत्तो का उपयोग वृक्क की प्रदाहयुक्त शोथ, मूत्रकृच्छ्र, गुल्म, जलोदर एवं कोष्ठबद्धता की दशा मे किया जाता है। बालकों के कृमिजन्य शूल आदि उपद्रवों पर पत्तों का रस देते हैं।

स्तन शैथिल्य पर—इसके पंचांग को चावलों के धोवन मे पीसकर लेप करते हैं। श्वास के दौरे पर इसकी जड़ का चूर्ण या कल्क सुहागे की खील के साथ शहद मिलाकर चटाते हैं।

चिरफल–देखिये–तेजबल मे। चिरमिटी–देखिये—गुंजा

चिरवल (Hedyotis Umbelata)

मजिष्ठकुल (Rubiaceae) का इसका वर्षायु छोटा पौधा वर्षाकाल मे पैदा होता है। पत्र–छोटे, फल–लम्बगोल, तथा मूल–लम्बी कोमल, नारंगी रंग की होती है।

मूल से केशरिया रंग तैयार किया जाता है। अतः मूल के लिए ही इसकी काश्त (खेती) भारत के दक्षिण समुद्रतटवर्ति रामेश्वर आदि प्रांतों मे की जाती है।

नाम--

सं०—राजन। हि० और म०—चिरवल। बं०—सुरगुली
ले०—हेडियोटिस अम्बेलाटा, हे० इंडिका (H Indica) ओल्डेनलेंडिया अम्बेलाटा (Oldenlandia umbellata)

गुण धर्म, व प्रयोग

पत्र–वामक, कफनिस्सारक। मूल–कफघ्न व ज्वरहर है।

श्वासरोग, कफप्रकोप, वातनलिका-प्रदाह, तथा क्षय की दशा मे इसके पत्र तथा मूल के साथ ब्राह्मी मिला, क्वाथ (१० गुना जल में) सिद्ध कर ५ तोला तक की मात्रा मे पिलाते हैं। तथा रोगी को इसके पत्र-चूर्ण को आटे मे मिला रोटी बनाकर खिलाते हैं।

सर्प आदि विषैले प्राणियो के दश को इसके क्वाथ से धोते है।

उदरदाह या जलन पर–पत्र-रस को दूध व शक्कर मे मिला पिलाते है।

हथेली तथा तलुवों की जलन (विशेषत ज्वर की दशा मे) मे–पत्र-रस का मर्दन करते हैं।

चिरविल्व-देखिये-चिलबिल।

चिरायता (Swertia Chirata)

हरीतक्यादि वर्ग एवं भूनिम्ब कुल (Gentiaceae) के इसके वर्षायु या द्विवर्षायु क्षुप २-५ फुट ऊंचे कांड–स्थूल ½ से १॥ मीटर लम्बे शाखायुक्त, लम्बगोल, ऊपर की ओर चतुष्कोण, श्यामाभ पीत वर्ण के, पत्र–विपरीत
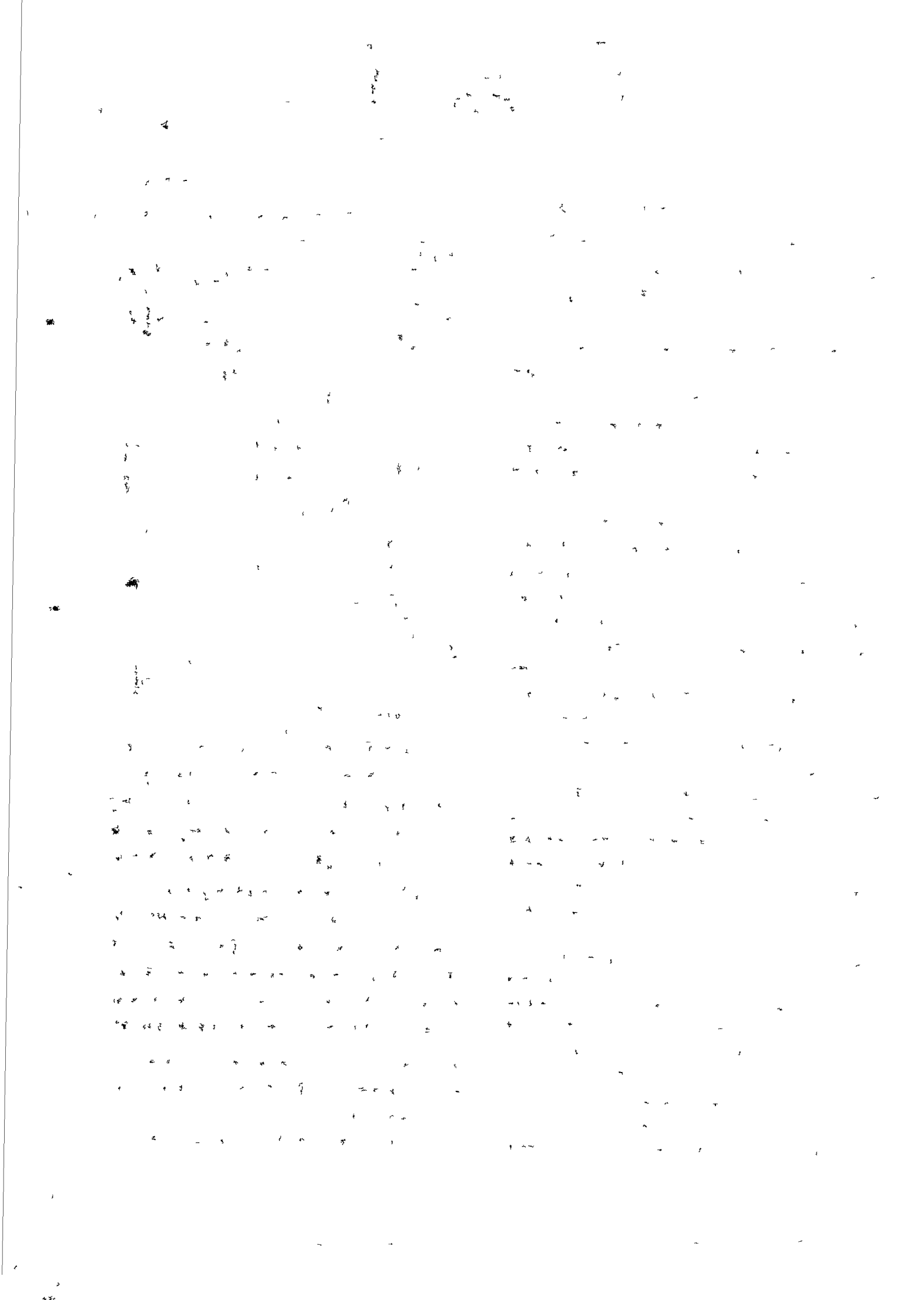
चरक के तिक्त स्कन्ध, स्तन्य-शोधन तथा तृष्णा-निग्रहण मे इसका उल्लेख है। इसमे ज्वरघ्न के अतिरिक्त दीपन, पाचन गुण होने से चरक ने ग्रहणी-विकार मे इसका विशेष उपयोग किया है। सुश्रुत के आरग्वधादि गण मे यह दिया गया है।

शाखाएं फैली हुई, पत्र—आलाकार १॥ ८ ७ इंच, दल-पत्र एवं पुष्प हलके सुर्खी लिये बैगनी रंग के होते है।

(६) श्वेत पुष्प वाला कश्मीरी चिरायता (S Paniculata) काश्मीर से नेपाल तक होता है। प्रत्येक शाखा मे श्वेत छोटे-छोटे पुष्प होते है। यह तथा कालमेघ दोनों ही चिरायता के प्रतिनिधि है। किन्तु कालमेघ (Andrographis-Pani-Culata) इससे भिन्न कुल का है। कालमेघ का प्रकरण देखे।

(७) बड़ा चिरायता (Exacum Bicolor) के क्षुप दक्षिण में कोंकण प्रान्त मे वर्षा ऋतु मे पैदा होते है। पुष्प–श्वेत, सुन्दर, दलपत्रों का अन्तिमभाग नीलाभ, डॉडी–मुलायम, बादामी रंग की, चमकीली होती है। यह पौष्टिक और अग्निवर्धक है।

(८) आसा चिराता, तितखन चि० (E Tetragonum), मरेठी मे–ऊद किराइत। यह उत्तर-प्रदेश के पहाडी प्रदेशो मे पैदा होता है। क्षुप १ हाथ ऊंचा, कांड--चतुष्कोण, पत्र विपरीत, वृन्तरहित, शल्याकृति किन्तु कुछ चौडे, १ अंगुल लम्बे, पुष्प नीले होते है। यह दीपन एव कटु पौष्टिक है। प्रयोग--जीर्ण ज्वर और अजीर्ण मे किया जाता है।

(९) कोंकणी या बारीक चिरायता (Erythraea Roxburghii), व०—शिभि, म०—लुन्तक। पुष्प गुलाबी सुन्दर सितारों के समान होते है। गुणो मे कटु पौष्टिक, ज्वर एव अजीर्ण नाशक। इसे कहीं कही कडू-नाई भी कहते है। इसका छोटा क्षुप वर्षा काल के बाद कोंकण में, और बंगाल मे विशेष उत्पन्न होता है, भारत में प्राय सर्वत्र पाया जाता है।

(१०) चिरायता छोटा (Eni costema Littorale) इसे मामेजवा भी कहते है। आगे का प्रकरण देखिये।

(११) जापानी चि०—(Swertia Chinensis)। इसका क्षुप छोटा ४-१४ इंच ऊंचा, कांड--बहुत बारीक, स्वाद मे अधिक कडुवा होता है।

नोट—इनके अतिरिक्त स्वर्शिया पेरनिनस (Swertia Perennis), स्व० कोरिम्बोसा (S Corymbosa), स्व० एफिनिस (S Affinis) आदि कई जातियां है, जो चिरायता के प्रतिनिधि रूप मे व्यवहृत है, तथा जिनका व्यामिश्रण चिरायता मे किया हुआ बाजारों मे मिलता है। पहाडी कुटकी (Gentiana Kurroo) को भी कहीं-कहीं किरायता कहते है, त्रायमाण का प्रकरण देखिये।

नाम--

स०—किरात, किराततिक्त (ये नाम विशेष महत्ता के हैं, क्योंकि इसके अन्य सभी पर्याय अधिकांश मे इसी के अपभ्रंश मालूम होते हैं। किरात यह भारत की एक जगली जाति का नाम है। इस जाति के लोग मुख्यत: हिमालय के पहाडी प्रदेशों में निवास करते थे। ये योग पहले से इस बूटी के तिक्त प्रभावों से परिचित थे एव औषध रूप मे इसका व्यवहार करते थे, अतः इसका किरात-तिक्त ऐसा प्राचीन नामकरण किया गया प्रतीत होता है)। भूनिम्ब इ०। हि०—चिरायता, चरैता। म०—किराईत, काडे किराईत। गु०—करियातु। बं०—चिरेत, चिराता, नेपाली निम्ब। अं०—चिरेटा [Chiretta]। ले०—स्वर्शिया चिराटा, ओफेलिया चिराटा [Ophelia Chirata]।

रासायनिक सघटन—इसमे ओफेलिक एसिड (Ophelic acid) नामक तिक्त तत्व, एवं चिरैटिन (Chiratin) नामक तिक्त, पीला ग्लुकोसाइड, यवक्षार, राल, गोद, पोटाश कार्बोनेट, फ़ास्फेट, चूना, मेगनीसियम आदि पाये जाते है। टेनिन बिलकुल नही होता।

प्रयोज्याग–पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु-विपाक एवं शीतवीर्य, कफ-पित्तशामक दीपन तृष्णानिग्रहण, आमपाचन, पित्त-सारक, अनुलोमन, कटुपौष्टिक, रक्तशोधक, व्रण-शोधन, कफघ्न, श्वासहर, स्तन्यशोधन, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, वातवर्धक है तथा अग्निमांद्य, अजीर्ण, यकृद्विकार, कामला, पांडु, आध्मान (विबन्ध), कृमिरोग, रक्तविकार, शोथ, रक्तपित्त, अम्लपित्त कास, स्तन्यविकार, चर्म-रोग, गड-माला, जीर्ण ज्वर, विषम-ज्वर, मूत्रकृच्छ्र आदि नाशक है।

(१) ज्वरो पर—यह अपने कटुतिक्त एव विबन्ध-नाशक गुणो से विशेषत कफ-पित्त ज्वर पर उत्तम कार्य-कारी है। इसमे भी नेपाल का किरात कुछ उष्ण होने से वातिक एव सान्निपातिक ज्वर पर भी हितकर है।

कामला पीलिया, खुजली आदि चर्मरोग दूर होते है। रोगी के शरीर के अनुकूल कपडे मे कमी वेसी भी की जा सकती हे।

–स्व प चोग्रालाल जी मिश्र वैद्य
सिद्ध मृत्युंजय योग)

११ जीर्ण ज्वर मे–पाडु और कृशता की विशेषता हो, तो किरातादि तैल (आगे वि योगो मे देखे) का अभ्यङ्ग लाभदायक है।––

१२ जीर्ण ज्वर, आमवात तथा सर्व प्रकार के गरमी के विकारो पर–चिरायता चूर्ण ३ माशा रात्रि के समय, जल२ तोला में भिगोकर,प्रात छानकरउसमें कपूर,शिलाजीत २ २ रत्ती तथा आध तोला मधु मिला, नित्य इसी प्रकार बनाकर सेवन करने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। अच्छी शक्ति आती है (व गु,)

१३ अम्लपित्त पर–इसके २ माशा चूर्ण मे ४ रत्ती भाग मिला, १० तोला जल मे भिगोकर प्रात छानकर पीवे। इसी प्रकार प्रात भिगोकर साय पीवें। कुछ दिनों मे यह रोग समूल नष्ट हो जाता है। अथवा—

इसके साथ समभाग भागरा लेकर क्वाथ सिद्ध कर उसमे मधु मिलाकर पिलाते हैं। किंतु आमाशय मे व्रण के कारण यह विकार हो तो ये प्रयोग काम नही देते।

१४. अतिसार पर–चिरायता, नागरमोथा और इद्रजौ समभाग लेकर क्वाथ बना, उसमे १ माशा रसौत चूर्ण तथा थोडा मधु मिला पीने से वेदनायुक्त पित्तातिसार नष्ट होता है (भैं० र०)

इस क्वाथ को इस प्रकार बनावें–रसौत सहित चारो द्रव्यों का समभाग मिलित चूर्ण २ तोले को को ३२ तोला जल मे पकावें। ८ तोला शेष रहने पर उसमें मधु मिलाकर पिलावें।–अथवा—उक्त चारो द्रव्यो का समभाग चूर्ण, मात्रा १॥ से ३ मासे तक मधु मिला सेवन करने से भी वेदना युक्त पित्तातिसार दूर होता है। (वृ० मा०)

१५ रक्तपित्त पर––चिरायता चूर्ण ३ मा० को ४ तो० पानी मे भिगोकर प्रात छानकर उसमे घिसा चंदन ३माशा मिला पिलादें। इसी प्रकार प्रात भिगो- रात्रि मे पिलावे। भोजन मे दुग्ध आदि लघु पौष्टिक द्रव्य लेते रहे। अतिमिर्च, शराब, तमाखू आदि का त्याग करे। थोडे ही दिनो मे रोग की शाति हो जाती है। (गा० औ० र०)

१६ हिक्का, गर्भिणी की वमन तथा शराबी की वमन पर–इसके चूर्ण या क्वाथ का प्रयोग मधु या शक्कर मिलाकर किया जाता है।

३ मा इसके चूर्ण को उबाले हुए जल मे भिगोकर, ढाक दे। १० मिनट बाद छानकर उसमे थोडी मिश्री मिलाकर प्रात पिलावे। इसी प्रकार शाम को भी पिलाने से गर्भिणी की वमन (जो गर्भ-धारण के बाद आमाशय की उग्रता के कारण होती है, तथा कुछ भी खाने पर थोडे ही समय मे हो जाती है) शीघ्र ही शात होती हैं। इस प्रयोग मे प्रवाल या वराटिका-भस्म भी यदि मिलाली जाय तो और भी शीघ्र लाभ होता है।

ऐसे ही शराब के अति सेवन से आमाशय मे उत्तेजना बढकर वमन होती रहती हो, तथा दाह, निद्रानाश व्याकुलता आदि उपद्रव हो तो वे सब इसके फाण्ट (या हिम) के सेवन से शमन हो जाते है।

१७ उदर-कृमि पर–उदर मे छोटे छोटे कृमि हो जाने से निर्बलता, पाडुता, अग्निमाद्य आदि विकार हो, तो इसके हिम मे हरड चूर्ण ३-३ माशा मिलाकर दिन मे दो बार देते रहने से सब विकार शमन हो जाते हैं। यदि हरड़ के चूर्ण के साथ लोहभस्म १-१ रत्ती मिलाते रहे तो लाभ अधिक होता है। (गा० औ० र०)

१८ उदर-पीडा पर–इसके पत्र-रस मे कालीमिर्च, सेंधानमक एव थोडी हीग मिलाकर अपचन जन्य उदर शूल और अफरा होने पर पिलाते हैं। शीघ्र लाभ होता है।

१९, स्तन्य-विकृति पर–इसके साथ अनन्तमूल, गिलोय, सतावरी व सोठ समभाग का क्वाथ सिद्धकर प्रात, साय सेवन से माता के रक्त व दूध की शुद्धि होती व पाचन-क्रिया सुधरती है।

२० आत्रकृमि शरीर की जलन व चर्म रोगो पर–
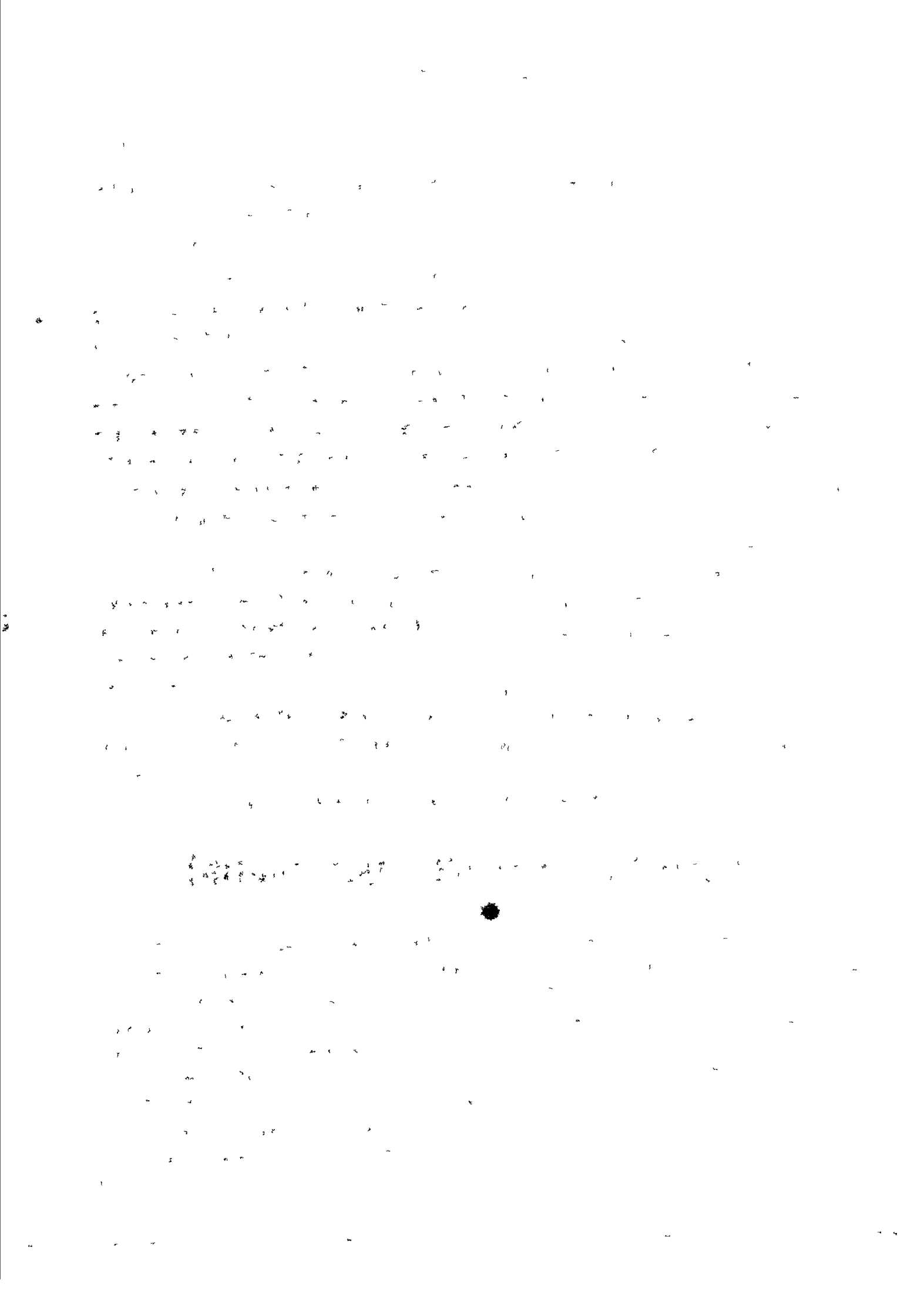
गुजरात और मद्रास मे इसका व्यवहार बहुत किया जाता है। वहा की ग्रामीण जनता की यह बेमोल की रामवाण क्विनाईन है। यह अत्यन्त कड़वी होती है। इसे प्राय. भाद्रपद मास मे लाकर साफ कर, सुखाकर संग्रह कर लेते हैं। चिरायते के स्थान मे इसका व्यवहार किया जाता है।

नाम—

सं—मामज्जक, नागजिव्हा, कृमिहृत, तिक्तपत्रा हि—छोटा चिरायता, नाय, नाई, मामेजवा, बहुगुणी इ.।

म.—मामिजवा, कडुनाई। गु—मामेजवा।

ले—एनिकोस्टमा लिट्टौरेल।

रा सघटन—इसमे एक तिक्त सत्व ग्लुकोसाइड के रूप मे होता है।

औषधिकार्यार्थ—मूल (मूल मे गुण अधिक होते हैं।) पत्र एवं प्राय. पचाङ्ग लिया जाता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

लघु, तिक्त, विपाक मे कटु, शीतवीर्य, दीपन, कफवर्धक, पाचन, रुचिकर, सारक, पित्तशामक, रक्तप्रसादन, मूत्र एव आर्तव-जनन है। तथा अपचन जन्य ज्वर, शीत ज्वर, विषमज्वर, अतिसार, उदरवात, दाह, तृषा, कास उदरकृमि, मधुमेह, चर्मरोग, व्रण, शोथ आदि नाशक है।

(१) ज्वरो पर—धूप मे घूमने, अपचन एवं ऋतुदोष से आये हुए ज्वर, व्रण, विद्रधि के लक्षण रूप ज्वर तथा विषमज्वर पर इसके पचाग का क्वाथ कर कालीमिर्च चूर्ण मिला दिन मे २ बार, तीन दिन तक देने से ज्वर उतर जाता हैं। कई दिनो के विषमज्वर पर जहा क्विनाईन आदि तीव्र औषधिया असफल हो गई हो, यह लाभ पहुँचा देती है।

(२) जीर्ण ज्वर पर—पचाङ्ग चूर्ण ३-३ मा तथा कालीमिर्च चूर्ण ४-४ रत्ती मिलाकर दिन मे २ बार जल के साथ देते रहने से धातुगत ज्वर, मन्द-मन्द रहने वाला ज्वर, अरुचि व निर्बलता दूर होती है।

यदि ज्वर की दशा मे अरुचि की विशेषता हो तो इसके ताजे पत्तो को कतर कर नमक लगाकर भोजन के साथ खिलाया जाता है। या इसके मूल का अचार दिया जाता है।
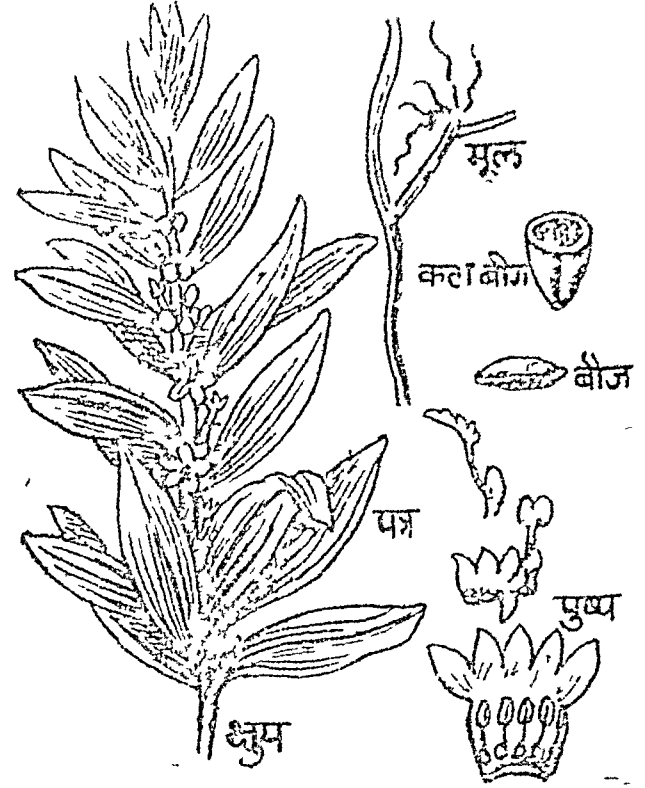
(३) अतिसार पर—अपचन के कारण दिन मे ३-४ बार थोडा २ मल उतरता हो तथा उदर मे भारीपन एव वातप्रकोप बना रहता हो। तो इसका चूर्ण, सेंधानमक सेका हुआ जीरा और कालीमिर्च को मट्ठे के साथ दिन मे ३ बार देते रहने से शीघ्र ही पाचन क्रिया सुधरजाती व आंत्र बलवान बन जाते हैं।

(४) मधुमेह—इसके पचाङ्ग का अर्क ५-५ तो दिन मे २ बार ४-४ रत्ती शिलाजीत मिलाकर देते रहने से मूत्र में बढी हुई शक्कर घट जाती है, तथा नई उत्पत्ति नही होने पाती।

(५) बदगाठ पर—इसके ताजे पत्र १ तो० व नमक १ मा० मिलाकर चटनी जैसा पीसकर लेप करे। दाह होने पर थोड़ा जल छिडकें। कुछ देर मे फाला हो

चिरयारी
TRIUMFETTA RHOMBOIDEA JACQ

पर प्राय सर्वत्र, किंतु बगाल दक्षिण भारत और सीलोन मे विशेष पैदा होती है। मारोरान की पहाडी पर यह बहुत होती है।

नोट—यह गगरेन [बर्डा] की ही एक विशेष जाति है।

नाम—

सं०—झिझारिटा, गांगेरुकी। हि०—चिरयारी, चिटके, चिकटी। म०—तूपकडी, लांडगे, चिपटे कुतरी इ०। गु०—झीपटो। व०—बेनोकरा। ले०—ट्रांयफेटा रोमबायडी।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, कसैली, वल्य, शीतल, वीर्यप्रद, स्निग्ध, संकोचक तथा पित्त, कफ अतिसार, ज्वर, क्षत, रक्तपित्त एवं रक्तस्राव-निवारक है।

ग्रंथि, व्रण, फोडा आदि के शीघ्र फूटने के लिये मूल को जल मे पीसकर उसमे कबूतर की बीट मिलाकर लगाते है।

मूत्रातिसार पर—मूल-छाल का चूर्ण दूध और शक्कर के साथ देते है।

शस्त्राघात पर—तत्काल इसके पत्तो के रस को लगाने या पत्तो को पीसकर लगाने से रक्तस्राव बन्द होकर जखम शीघ्र ठीक हो जाता है।

हृद्रोग, श्वास, कास पर—मूल को गोदुग्ध मे पकाकर और छान कर पिलाते हैं।

रक्तार्श, रक्तातिसार तथा फेफडों से कफ के साथ आने वाले रक्त को बन्द करने के लिए मूल ६ मा० को पानी मे पीस छान कर, शक्कर मिलाकर पिलाते हैं।

शीघ्र-प्रसवार्थ—मूल का क्वाथ पिलाते हैं।

चिरोंजी (Buchanania Latifolia)

फलवर्ग एव आम्रकुल (Anacardiaceae) का यह वृक्ष मीधा मध्यमाकार का ४० से ५० फुट तक ऊचा, शाखाए चारों ओर फैली हुई बहुत कच्ची, छाल—१ इंच तक मोटी, धूसर, कृष्ण वर्ण की, पत्र—६-१० इंच लम्बे, ५-६ इंच चौडे, श्याम हरित वर्ण के, नोकदार, कडे, खुरदरे, कोमल रोमयुक्त, पत्रवृन्त—बहुत ही छोटा, पुष्प शाखाग्र मे ऊपर की ओर मजरियो में, छोटे २ नीलाम श्वेत वर्ण के (यह पुष्प-मजरी मदिर के शिखर जैसो), फल—लम्बे सीकों पर, गोल, छोटे कुछ चपटे, मासल कच्ची दशा मे हरे, पकने पर लाल, जामुनी श्याम वर्ण के लगते हैं। कच्चा फल खट्टा, किन्तु गीष्म काल मे परिपक्व हो जाने पर, इमका ऊपरी गूदा-मृ,

चिल्ला नं० १ (Casearia Tomentosa)

गुडूच्यादि वर्ग-एवं सप्तचक्रा[1] कुल (Samydaceae) के इसके छोटे २ गुल्माकार क्षुप, प्राय सर्वत्र पाये जाते हैं। शाल वनो के पास या झाडीदार जंगलो मे बहुत होते है। शाखाए समतल फैली हुई, छाल-मोटी, भगुर, पीताभश्वेत एव चौकोर टुकडो मे छूटने वाली, काष्ठ-पीताभ, श्वेत, कडा. खुरदरा, पत्र-अण्डाकार या भालाकार, २-७ इच लम्बे, १॥।-३ इच चौडे, दन्तुर किनारे वाले, अधर पृष्ठ की नसों पर मृदुरोमश, पत्र सिरायें-रक्ताभ, पुष्प-नूतन टहनियो पर हरिताभ पीतवर्ण के फल-मासल, रीठे की तरह, अ डाकार, मुलायम, चमकीले ३/४ इंच बडे, ६ रेखाओ से युक्त तथा स्वाद मे कडुवे होते हैं। फलो का चूर्ण पानी मे डाल देने से मछलिया मर जाती हैं। यह अयोध्या, पूर्व बगाल, मध्य दक्षिण भारत, व हिमालय प्रदेश मे पाया जाता है।

नोट—इसकी दूसरी उपजाति (C Esculenta) सप्त रंगा के नाम से कही जाती है। इसका वर्णन आगे चिल्ला नं. २ मे देखिये।

नाम—

सं.—चिलहक। हि.-चिल्ला, चिलारा, वेरी, भेरा, इ.। म—मस्सी, लेनजा, करी।

गु.—धोलोम, सुंभल। ब.—चिल्ला।ले.—केसिएरिया टोमेन्टोसा।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, उष्ण-वीर्य, मूत्रल, रक्तशोधक, कफवातनाशक व धातुपुष्टिकर है।

जलोदर पर—इसके फल के गूदे को खिलाते तथा छाल को पीसकर सारे शरीर पर लेप करते और फिर इसके पत्र-क्वाथ से स्नान कराते हैं।

अपरस, छाजन, उकवत, दाद पर—छाल को पीसकर लेप करते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

इसके दोष गुण धर्म चिल्ला न २ जैसे हैं।

[1] इस कुल के पौधों के पत्र—एकान्तर, सादे, जामुन पत्र जैसे किंतु कुछ बडे, दन्तुर, पारदर्शक, गोल या रेखाकृति ग्रन्थियों से युक्त होते हैं इस कुल में केवल यह पौधा तथा चिल्ला २ (सप्तचक्रा) प्रधान है।

चिल्ला नं० २ (Casearia Esculanta)

उक्त सप्त चक्रा कुल के इसके गुल्माकार क्षुप २-५ फुट ऊचे, छाल-पीताभ श्वेत, पत्र-उक्त चिल्ला नं. १
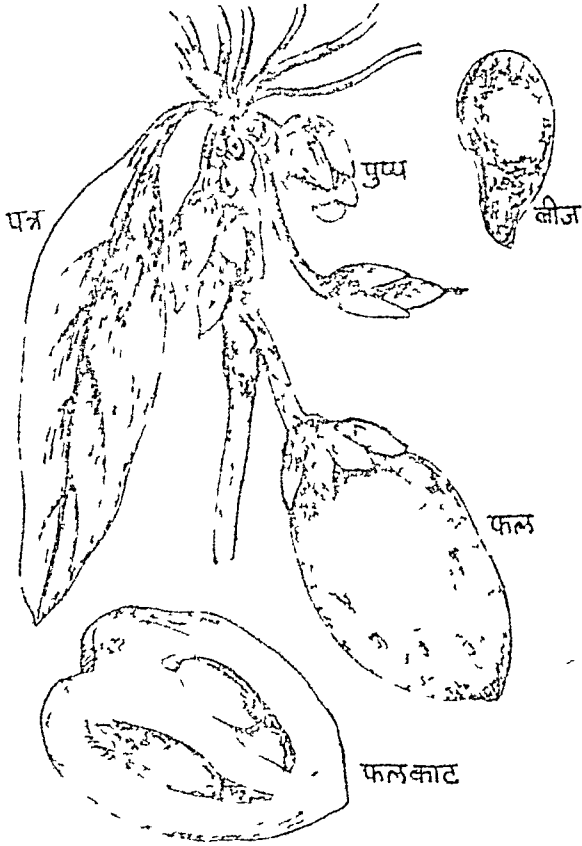
ये वृक्ष बम्बई प्रान्त मे तथा समुद्र के किनारे के प्रदेशो मे विशेष होते है।

नाम—

हि०—चीकू, सपोटा। म०- चिकू। गु०—चीकुनु भाड। बं०—सपोटा। अं०—सेपोडिला प्लम (Sapedilla plum), सेपोटा (Sapota)। लै०—एक्रस सेपोटा।

रा० स०—इसमे ग्लुकोसाइड, सेपोटीन (Sapotin) और कुछ क्षार तत्त्व पाये जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसके फल—पित्तनाशक, पौष्टिक, ज्वरनाशक, ज्वर रोगी को पथ्य, छाल—सकोचक, पौष्टिक, ज्वर नाशक, ज्वर मे इनकी क्रिया सिनकोना जैसी होती है। छाल का क्वाथ—जीर्ण ज्वर और अतिसार मे दिया जाता है। बीज—अधिक मूत्रल है। बीज-चूर्ण की मात्रा ३ रत्ती तक, पानी के साथ मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात मे देते हैं। अधिक मात्रा मे भेदक, विरेचक एव कुछ विषैला प्रभाव करते है।

चीड़ (Pinus Longifolia)

कर्पूरादिवर्ग एव देवदारु कुल (Coniferae) के इसके वृक्षबिल्कुल सीधे,सरल, बहुत ऊचे अधिक से अधिक १२५ फीट तक तथा कम से कम ५० फीट तक होते हैं। काण्ड की परिधि लगभग ५ से १२ फीट तक, छाल—खुरदरी, बाहर से किंचित् लाल, धूमर वर्ण की, भीतर से गहरे लाल रग की; काष्ठ-भाग—बाहर से पीताभ-श्वेत, अन्दर से रक्ताभ धूसर, अति स्निग्ध, तीव्र गधी, पत्र—छोटी टहनियो के अग्र भाग। गुच्छो (३-३ के समूह) मे, ५-१२ इच लम्बे, कुछ त्रिकोणयुक्त, हल्के हरे रग के, सूच्याकार के, नीचे की ओर झुके हुए, देवदारु के पत्र जैसे (भेद इतना ही है कि देवदारु-पत्र छोटे, और इसके लम्बे—तिगुने गन्ध के काम आने वाली सुई जैसे) होते है।

पुष्प—वसत ऋतु मे, ½ इच लम्बे, शखाकार, देवदारु के पुष्प जैसे, गुच्छो मे,फल—कुछ लम्ब-गोलाकार, ४—८ इच लम्बे, ३-५ इच मोटे, देवदारु के फल जैसे किंतु आकार मे कुछ बडे, तथा प्रत्येक उगली जैसे, कोठो मे २-२ कही-कही एक-एक ही बीज होते है। चैत्र-वैशाख मे फल फट कर बीज निकल पडते है और फल वृक्ष पर ही लगे रह जाते है। बीज—½-१ इच लम्बे, अण्डाकार, अग्र भाग पर तितली के पख जैसे पत्र-युक्त होते हे।

इसके वृक्ष, समूह बद्ध, हिमालय प्रदेश मे ३ से ६ हजार फाट की ऊचाई पर अफगानिस्तान से लेकर काश्मीर तक तथा पजाब, उत्तर प्रदेश से लेकर पूर्व मे

सुगन्धित द्रव्य, कृत्रिम कपूर, तीव्र रंग एवं वार्निश आदि के उद्योगों में बहुत किया जाता है।[1] यह तैल स्वच्छ, रंगहीन एक विशिष्ट प्रकार की गन्ध से युक्त, स्वाद में कटु एवं कुछ तिक्त होता है। पुराना हो जाने पर इसके स्वाद व गन्ध में विकृति आ जाती है, वह अप्रिय हो जाता है। भारतीय व्यापारी तैल में कई पदार्थों का मिश्रण होता है। शुद्ध तारपीन-तैल को प्रकाशहीन ठंडी जगह में बन्द बोतलों में रखना चाहिये।

नाम—

सं०—सरल (इसका काण्ड सीधा होने से) पीत वृक्ष, सुरभिदारुक, धूप वृक्ष (लकड़ी का धूप कार्य में प्रयोग होने से), [illegible] (पत्रगुच्छ [illegible] होने से), पीतदारु इ.। हि०—चीड़, चील, धूप सरल, इ०। म०—सरल देवदार। गु०—तेलियो देवदार, पाली थेरजा। बं०—सरल गाछ। अं०—लाँग लीव्ड पाईन, चिर पाईन [Long leaved pine, Chir pine] लै०—पाइनस लांगि फोलिया।

रासायनिक संगठन—इस विरोजा और इसके तैल में पाइनिन (Pinene), लाइमोनिन (Limonene) केरिन (Carene) और लांगिफोलिन (Longifolene) नामक [illegible] पाये जाते हैं।

प्रयोज्य अङ्ग—काष्ठ, निर्यास (गंधाविरोजा) और तैल (तार्पीन)।

गुणधर्म व प्रयोग—

[illegible], तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, मधुर, कटु विपाक, उष्ण-वीर्य तथा कफवात-शामक, दीपन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, कफ-नि सारक, श्लेष्म पूतिहर, मूत्रल, जतुघ्न, रक्तोत्क्लेशक, रक्तरोधक त्वग्दोषहर, व्रणशोधक, गर्भाशय-शोथ-हर, मस्तिष्क व नाडी-उत्तेजक है। वात-व्याधि, अग्निमांद्य, आध्मान, पित्ताश्मरी, जीर्ण कास, मूर्च्छा, यक्ष्मा, जीर्ण बस्तिशोथ, पूयमेह, मूत्रकृच्छ्र, श्वेतप्रदर आमाशयिक व्रण, आंत्रिक ज्वर, कुष्ठ, तथा कर्ण, कठ एव नेत्र सम्बन्धित विकारो पर प्रयोजित है। यह फुफ्फुस व श्वास-नलिका के रक्त-सवहन को बढाता एव रक्त-निष्ठीवन को बन्द करता है।

काष्ठ—इसकी लकडी दोष-विलोमकारी, शीत-जन्य शोथ-हर, वेदना-स्थापन है। इसका उपयोग अन्य यथोचित औषधो के साथ, क्वाथ के रूप मे–दाह, कास, मूर्च्छा, आध्मान, अपस्मार, अश्मरी, कफ-ज्वर, कृमि, श्लेष्मातिसार, अर्दित, पक्षाघात आदि वातिक व्याधियो एव वातज हिक्का पर किया जाता है। केवल इसी काष्ठ के क्वाथ मे, गुदव्रण, गुदभ्रंश पीड़ित रोगी को बैठालते रहने से भी लाभ होता हैं।

कठमाला एव प्राय शीतजन्य शोथ को दूर करने के लिये इसका लेप लगाते है।

(१) कर्णशूल मे—इसकी लकडी पर कपडा लपेट कर, तथा घृत मे डुबोकर जलाने से जो तैल टपकता है उसे कान मे डालने से लाभ होता है।

व्रण पर—व्रण-रोपण तैलो मे इसका उपयोग किया जाता है तथा व्रण मे इसकी छाल या बुरादा का धुआं दिया जाता हैं।

(३) कफवातज या शीतजन्य शोथ पर—इसके काष्ठ के चूर्ण के साथ अगर, कूठ, सोठ और देवदारु चूर्ण समभाग मिलित १ तो० लेकर गोमूत्र या काजी मे पीसकर पीने से लाभ होता है। (वृ० मा०)।

निर्यास (गंधा विरोजा)—कटुवा, कसैला, उष्ण, स्निग्ध, आध्मान-नाशक, वातकफ-शामक, कामदीपक, मूत्रल, कृमिघ्न, मदाग्नि, व्रण, खुजली, प्रदाह, सिर-दर्द, वेदना (योनि, गर्भाशय आदि की वेदना) नाशक, पूयघ्न, आर्तव-प्रवर्तक है।

---

[1] [illegible] आवश्यकता का प्र० श० [illegible] प्र० श० [illegible] पूर्ति करता [illegible]। भारत में भी [illegible] पाये जाते हैं, तथापि [illegible] अभी बहुत [illegible] जाता है। [illegible] आदि स्थानों [illegible]।

[illegible] प्रभाव [illegible] वार्निस [illegible] निर्माण [illegible] में [illegible]
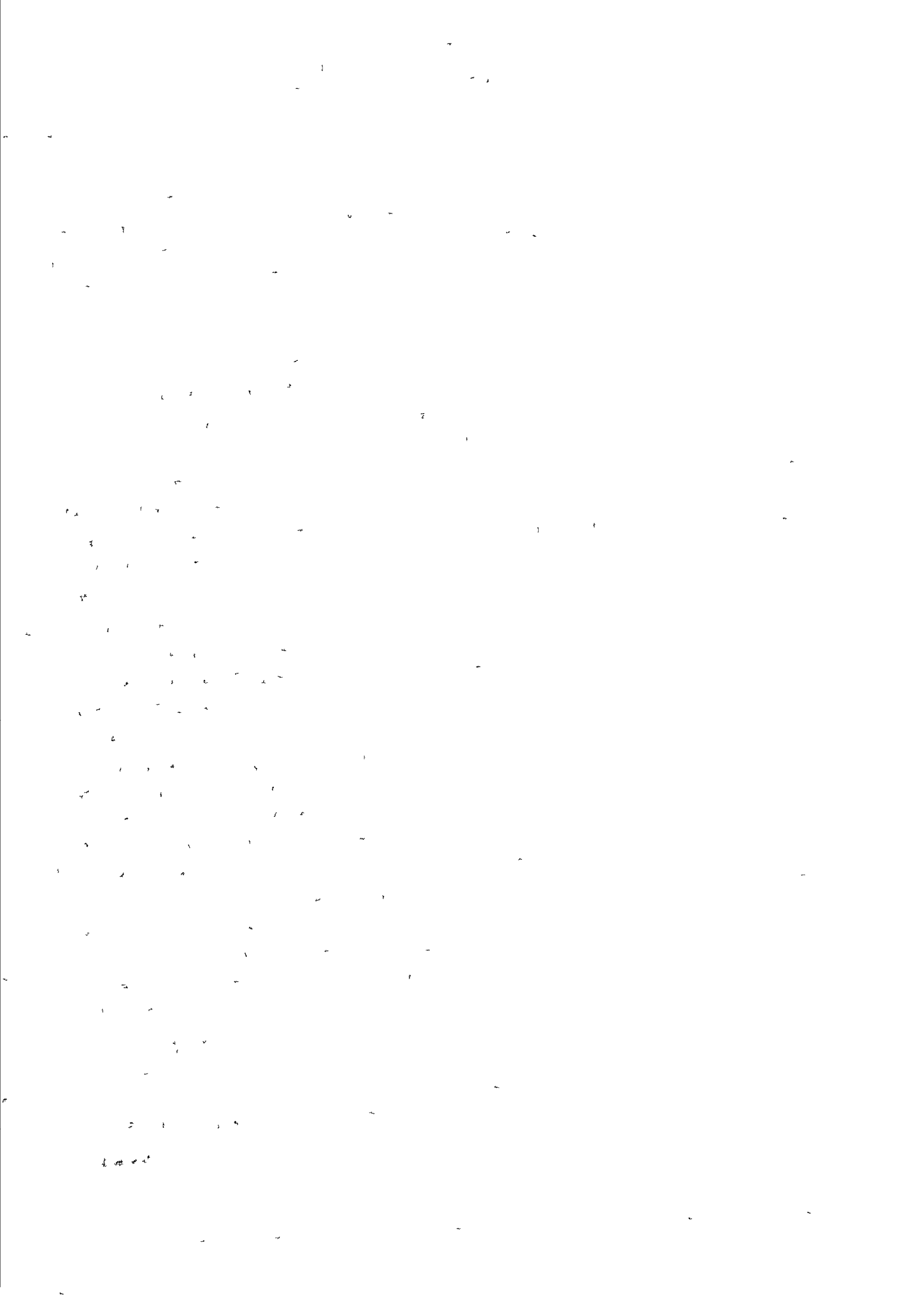
(६) कच्छु कुष्ठ (पामा-भेद, तर खुजली Scabies) पर—शुद्ध विरोजा ५ तोलेके साथ समभाग लोध, राल, कमीला, मैनसिल, अजवायन, व गधक का चूर्ण लेकर घृत २ सेर व पानी ८ सेर मे मिला, धूप मे रख दे। पानी के सूख जाने पर घृत छान ले। इस 'श्रीवास घृत' की मालिश से घोर कच्छु भी नष्ट हो जाता है। (व से)

(७) व्रणो पर धूप (श्रीवासादि धूप)—गधाविरोजा (अशुद्ध), गूगल, अगुरु, तथा राल की धूप देने से कोमल व्रण कठोर होकर उनकी स्राव व वेदना दूर हो जाती है। जिन व्रणो मे वायु का प्रकोप अधिक हो, स्राव विशेप हो, तथा अतिवेदना हो उनमे उक्त धूप अथवा बिरोजा,जौ, घृत, भोजपत्र, मोम व देवदारु के बुरादे की धूप देवे। अथवा केवल विरोजे की ही धूप देने से यथेष्ट लाभ हो जाता है। (भे र)

(८) कफ-प्रकोप-जन्य कर्ण शूल तथा सिर दर्द पर बिरोजे को गुलरोगन (गुलाव के तेल) मे घोट कर कान मे टपकाते है। तथा सिर दर्द पर मालिश करते है।

तैल (तारपीन)—कटु, कुछ तिक्त, उष्ण, वातानुलोमन,आत्र एव आमाशय उद्दीपक, अल्प मात्रा मे सेवन से हृदय उत्तेजक, धमनियो को सकुचित कर रक्तस्तभक, मूत्रल, अधिक मात्रा मे हृदयावसादक, रक्तातिसार जनक होता है। वाह्यत यह त्वचा-पर रक्तोत्क्लेशक, कोथ-प्रतिवधक, सक्षोभजनक है। इसे मर्दन करने से प्रारम्भ मे त्वचा लाल होकर प्रक्षोभ उत्पन्न होता है, फिर नाड्यग्रो के अवसाद से शून्यता पैदा होती है, जिससे सूक्ष्म रक्तवाहिनियो का सकोच होकर वाह्य (स्थानिक) रक्तस्राव रुक जाता है। किंतु अधिक मर्दन से त्वचा मे स्फोट आदि भी उत्पन्न होते है।

तैल के तथा विरोजा के गुणधर्म लगभग समान ही है। आन्त्रिक ज्वर (टायफाईड) मे यह अपने वातानुलोमक प्रभाव से शोथ (Tympanitis) को दूर करता तथा रोगोत्पादक दण्डाणु की वृद्धि को वन्द कर प्रत्यक्ष रोग मे लाभकारी है। ऐसी दशा मे तल की मात्रा १५-३० बूद घण्टे घण्टे से कई बार देते है।

• क्षत मे या कट जाने पर—तैल के लगाने से स्थानिक रक्तस्राव रुक जाता है और शीघ्र लाभ होता है। मुख के शल्यकर्म मे साधारण रक्तस्राव को रोकने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। चोट लग जाने पर इसकी मालिश से शीघ्र लाभ होता है। वैसे ही विच्छू व बर्र के दश पर भी इसे लगाने से आराम होता है।

आमवात, कटिशूल, गृध्रसी, सधिपीडा एव वात-नाडी-शूल मे यह लगाया जाता है।

(१) आध्मान एव तज्जन्यशूल, आन्तरिक शोथ मे इससे स्वेदन किया जाता है, फलालैन जैसे कपडे को उष्ण जल मे निचोडकर उस पर थोडा तैल छिडककर उससे सेका जाता है। देखिये प्रयोग ३।

(२) जीर्ण श्वसनी-शोथ (ब्राकाइटिस) मे इसके प्रयोग से कफ निकलने लगता है, तथा जीवाणुओं का नाश होने से दुर्गन्ध भी दूर होती है। रोगी के कफ मे तैल को छिडकने से वह श्वास मे जाकर अपना कार्य करता है। कफक्षय एव रक्तष्ठीवन मे भी इसे देते है, तथा सु घाते भी है। फुफ्फुसो के कोथ मे इससे विशेप लाभ होता है। इन विकारो पर—इसे तेल और मुलैठी के महीन चूर्ण समभाग २॥-२॥ तोले तथा शहद २ तोले सबको एक साथ घोटकर ३ माशा से ८ माशा तक की मात्रा मे सेवन कराते है।

(३) आध्मान जन्यशूल तथा स्फीत कृमियो (Tapeworms) पर—तेल को गोद के साथ घोट कर, थोडी शक्कर और जल मिला पिलाते है। आमाशयिक व्रण से या अन्य कारणो से आत्र से रक्त-स्राव होता हो तो इसके प्रयोग से लाभ होता है। तैल की वस्ति भी देते है। साधारण उदर-शूल पर—तेल की २ बूंदे, एक चम्मच सौंफ के अर्क मे मिला पिलावे। वच्चो के लिए तेल-मात्रा १ बूद।

उक्त कृमि-रोग पर इस तेल की ३ माशा से १ तोला तक की मात्रा रेडी तेल के साथ भी दी जाती है, किंतु इसमे सावधानी की आवश्यकता है। तेल की बस्ति भी देते है।

जीर्ण कोष्ठबद्धता, आध्मान एव सूत्रकृमि पर—इसकी, ६०-१२० बूदे साबुन के लगभग ३ सेर घोल मे मिला
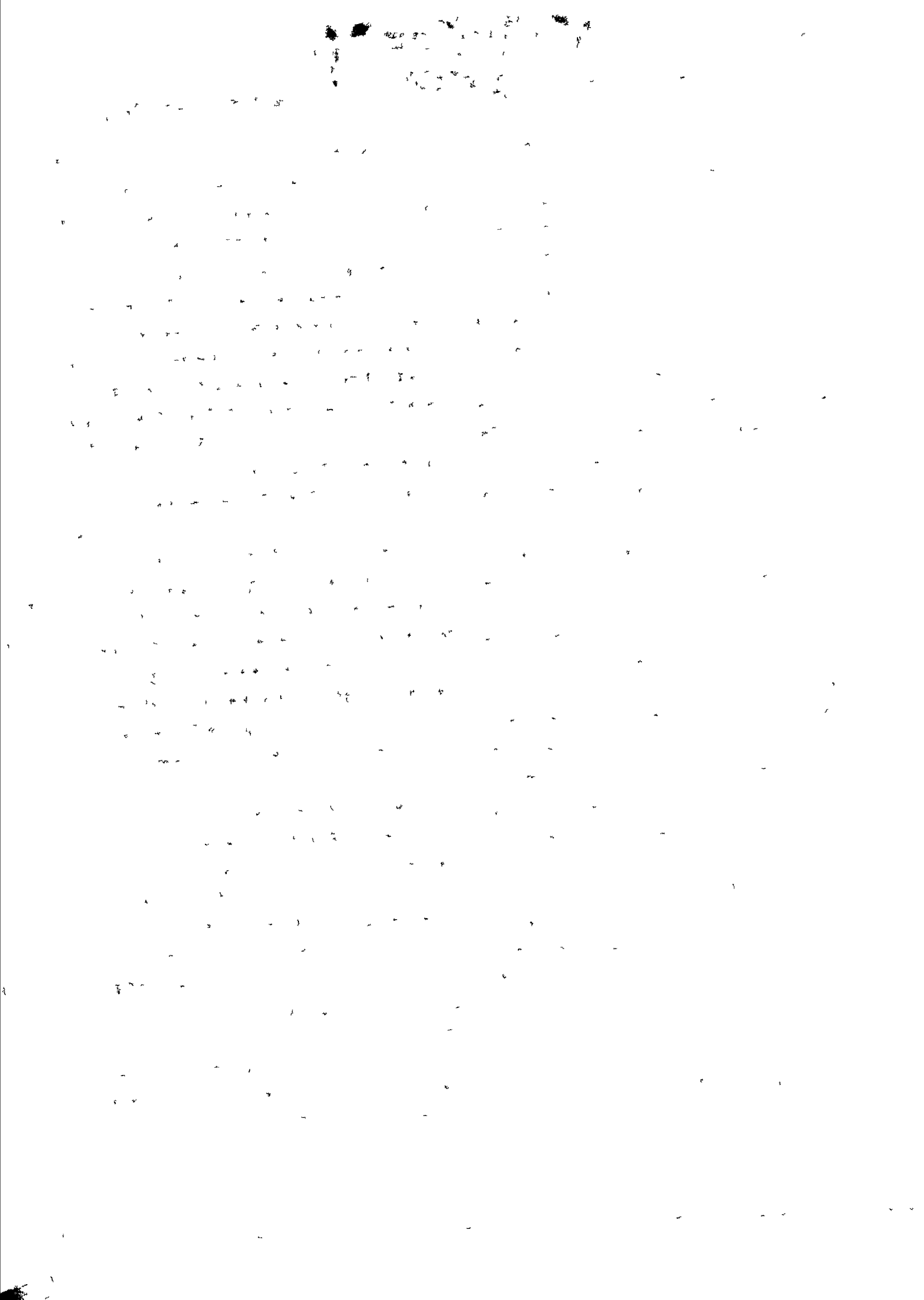
ऊरुस्तंभ, सन्धिवात और वातरक्त में इस तैल का उपयोग होता है। सूतिका-रोग में आक्षेप आने पर भी इसकी मालिश करायी जाती है।

१ अधिक मात्रा में सेवन से महास्रोत में प्रदाह से तीव्र विरेचन, वमन, रक्तातिसार तथा तन्द्रा, सारे शरीर में शैथिल्य, अवसाद, नाड़ी की मंदता, मूत्राघात, मूत्र-रक्तता, संवेदनिक-नाड़ियों का घात, प्रलापाक्षेप-जनक वात एवं सन्यास आदि लक्षण उत्पन्न हो सकते हैं। ये ही परिणाम अधिक मात्रा में तारपीन के तैल के सूंघने से भी हो सकते हैं।

२ [illegible] रोग आदि [illegible] में इस [illegible] के लिए [illegible] प्रयोग किया जाता है। किंतु रोगी के मूत्र (मूत्र) [illegible] होती है।

३ तारपीन तैल की वाष्प (फ्युमिगेशन) श्वास-मार्ग में ग्रहण करने पर [illegible] होती है। [illegible] जाने पर यह क्रिया [illegible] होती है।

चीड़ (सनोवर, कतरान) *(PINUS SYLVESTRIS)*

इसके वृक्ष सदैव हरे-भरे, ७० से १५० फुट तक ऊंचे, तने का व्यास १॥ से २॥ फुट, शाखायें-वर्तुलाकार, काष्ठ-पीतवर्ण का, पत्र-उक्त चीड़ पत्र जैसे ही, किंतु द्विविभक्त रूप में, पुष्प-नर-पुष्प-ताल की जटा जैसे तथा स्त्री पुष्प-फलसमूह (Cones) के भीतर होते हैं।

इसके वृक्ष यूरोप के फ्रांस, पोर्तुगाल, तथा एशिया के यूनान आदि उत्तर-प्रदेशों में, एवं मलाबार के समुद्र तटवर्ती प्रदेशों में अधिक पाये जाते हैं।

नोट—काला डामर या कतरान—किसी ऊंची जमीन या टीले पर गढा खोदकर उसके भीतर चारों ओर पक्की ईंट और चूने की दीवार खड़ी कर नीचे एक नाली सी बना देते हैं। उस गढ़े में इस वृक्ष की लकड़ी तथा जड़ों के टुकड़े कर भर देते हैं। गढे को बन्द कर चारों ओर आग जलाने से इसका रंग रहित, तैल नाली से बहकर निकलता है। उसे संगृहीत कर लेते हैं। यह तैल कुछ देर बाद लालिमायुक्त भूरा और फिर काला, सान्द्र हो जाता है।

इसे ही—कतरान, कातरान, चुडैल या चडियान का तैल या कील हिन्दी मे, पिक्स लिक्विडा (Pix Liquida) लेटिन मे, तथा वुड टार, पाईन टार, पिक्स पाईन (Wood tar, Pine tar, Pix pine) अंग्रेजी मे कहते हैं। यह कालापन लिये हुए भूरे रंग का, अलकतरे (डामर) जैसा विशिष्ट गंध युक्त होने से इसे ही काला डामर कहा जाता है।

ध्यान रहे कतरान या डामर दो प्रकार का होता है। एक तो यह है जो कोयले में से निकाला जाता है,
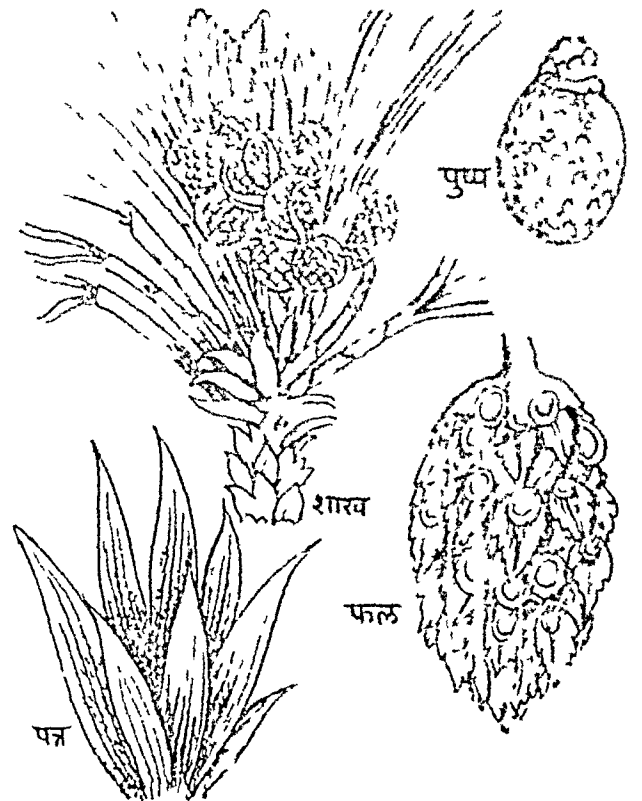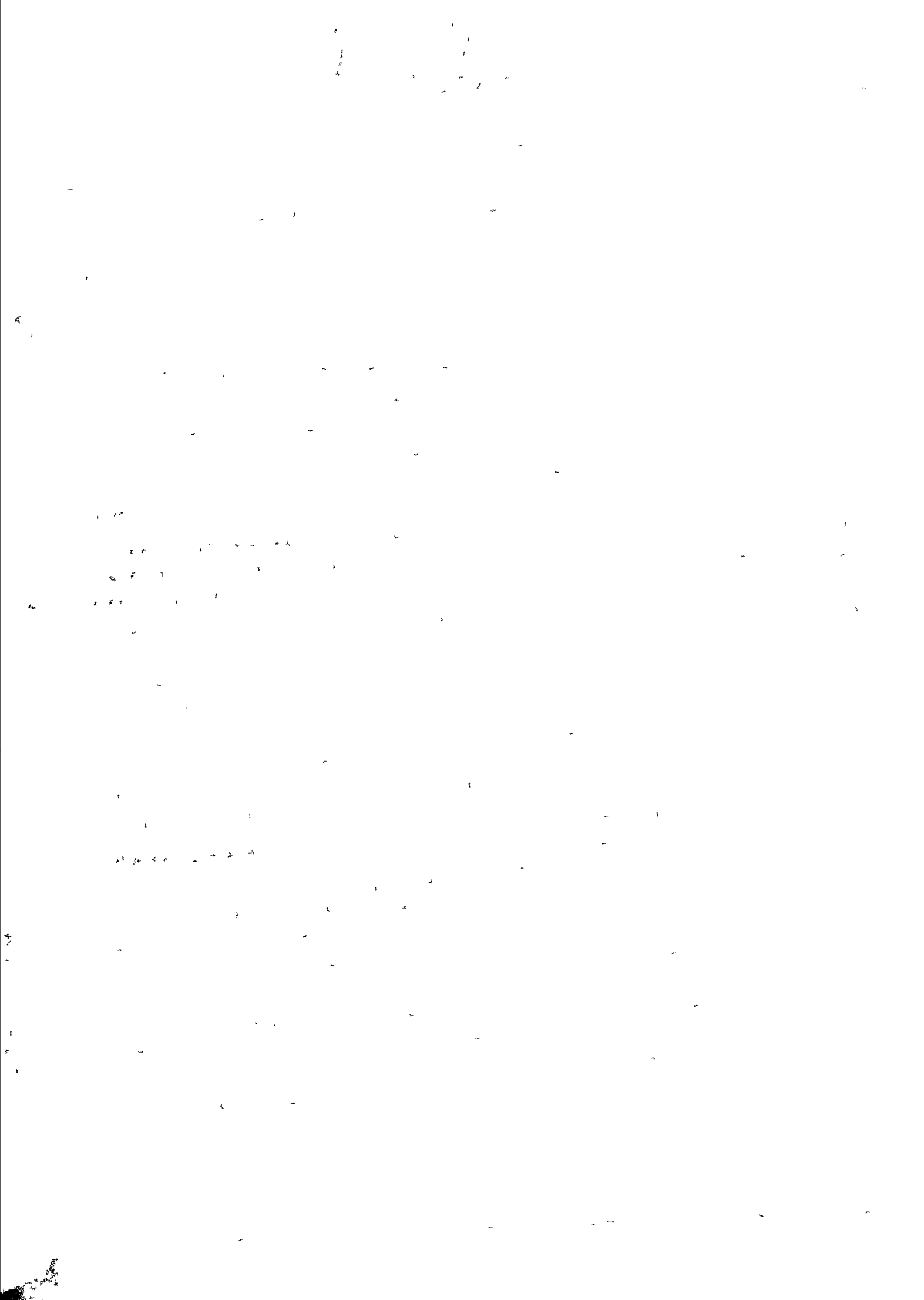
चिरकारी शुष्क उकवत (पामा) पर लगाने से लाभकारी है। किंतु इसका उपयोग सावधानी से करना चाहिये।

चर्म-रोगो पर—५० भाग कतरान के साथ, १५ भाग असली मोम और पेट्रोलियम ३५ भाग मिलाकर मलहम बना, विविध चर्म-रोगो पर लगाया जाता है।

नोट—मात्रा-सेवनीय मात्रा १ से ५ रत्ती तक, दिन में २ या ३ बार देते है। यह फुफ्फुस और शिरोरोगों में अहितकर है। हानि-निवारणार्थ-कतीरा, बनफशा बबूल का गोंद सेवन करावें।

चीता–दे०–चित्रक। चील–दे०–चीड। चीना–दे०–चेना।

चुकन्दर (*BETA VULGARIS*)

शाकवर्ग के वास्तूक (बथुआ) कुल के (Chenopodiaceae) के इसके क्षुप रूप पौधे मूली या शलगम के पौधे जैसे, पत्र–मूली या शलगम के पत्र जैसे, कन्द–मूली कन्द से अत्यधिक मोटे और नाटे, गोलाकार के, रक्त और श्वेत भेद से दो प्रकार के होते है। ध्यान रहे, मूलक (मूली) व शलगम इससे भिन्न राजिकादि-कुल (Crucifereae) के है।

कन्द को तिरछा काटने से अन्दर चक्राकार चकत्ते से होते हैं। लाल कन्द से, काटने पर लाल रस निकलता है।

यूरोप और अमेरिका मे इसका विशेष उत्पादन होता है। वहा शाकरूप मे तथा शर्करा-उत्पादन मे इसका अधिक उपयोग होता है और इसे Sugar beet (शर्करी-चुकन्दर) पुकारा जाता है। भारतवर्ष मे कई स्थानो के बागो मे यह पैदा किया जाता है।

नाम–

हि०–चुकन्दर। बं०–पलंग साग, बिट पलंग। अं०–कामन या गार्डन, या शुगर बीट (Common or Garden or Sugar-beet)। ले०–बेटा व्हलगेरिस।

रासायनिक सं —इसमे प्र० श० १० ७ प्रोटीन १३ ६ कार्बोहाइड्रेट, ० २० कैलशियम, ० ०६ फासफोरस, ० ८ खनिजपदार्थ, ८२ ८ पानी तथा प्र० श० ग्राम मे १ मिलीग्राम लोहा, ८८ मिलीग्राम व्हिटामिन सी, ७ इ० यू० व्हिटामिन बी १, और व्हिटामिन ए नाममात्र को रहता है। एक बीटीन (Betin) नामक इसमे प्रभावशाली सत्त्व भी होता है। इसमे शक्कर की मात्रा अधिक रहती है। किंतु गन्ने की शक्कर की अपेक्षा यह कम दर्जे की होती है। यह हृदय के लिये पौष्टिक नही है। किंतु यह शरीर मे गर्मी लाती एव फुर्ती या उत्तेजना बढाती है।

चुकन्दर
Beta vulgaris Linn.

पत्र
कन्द
कन्द

नाम—
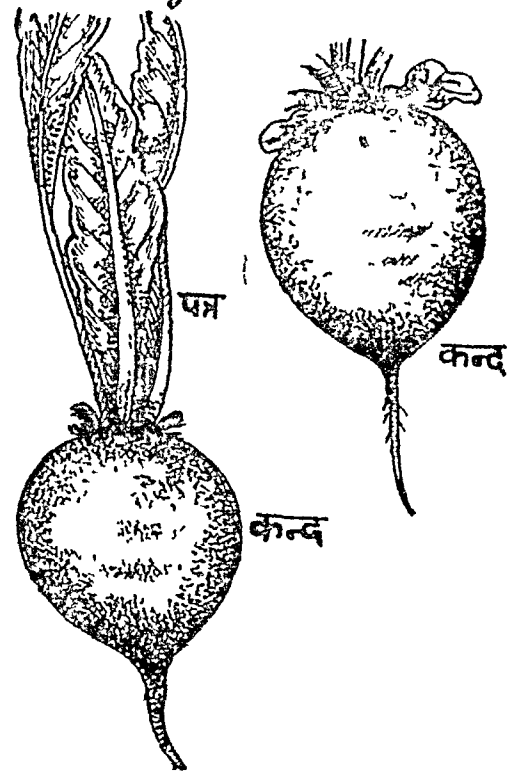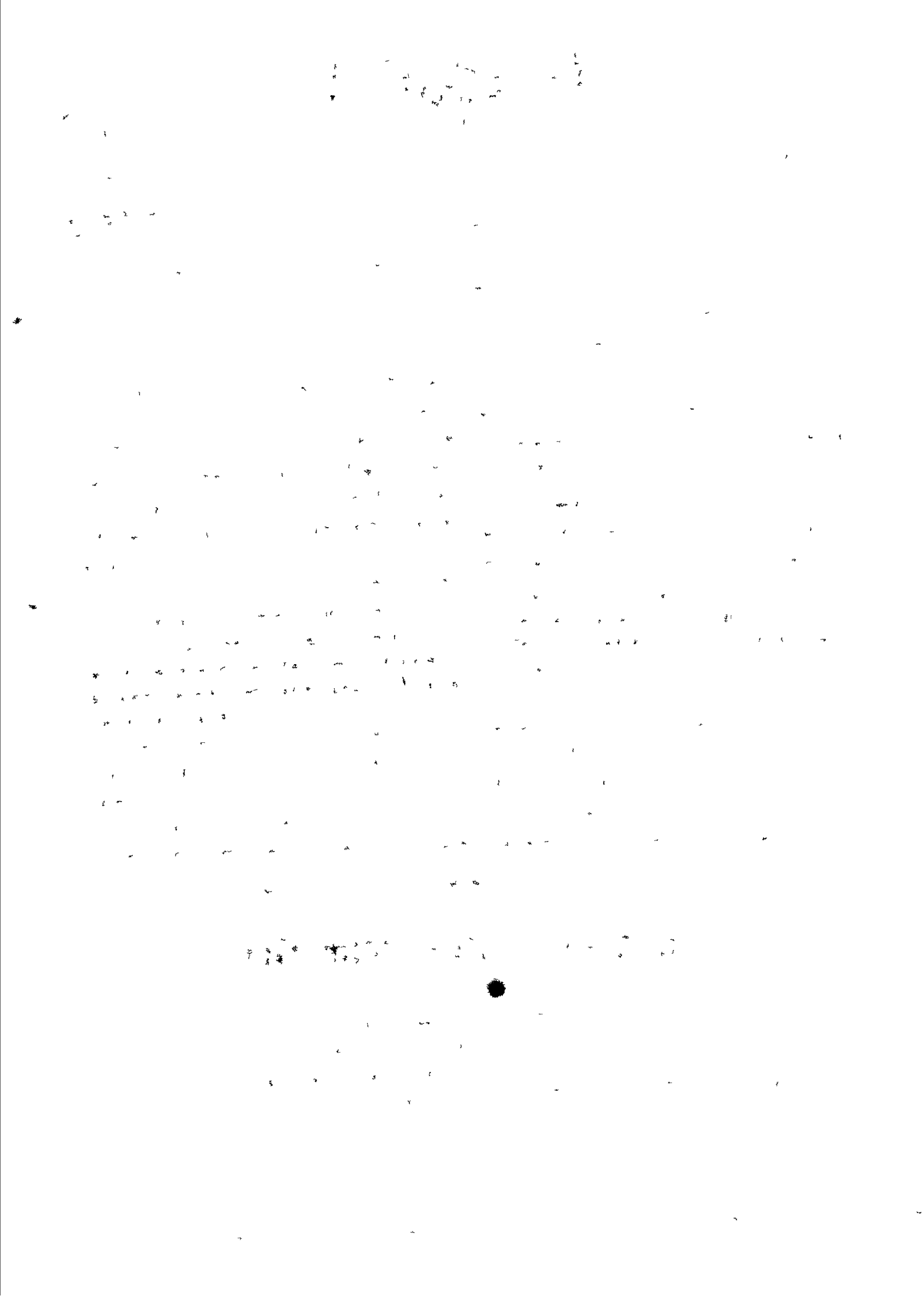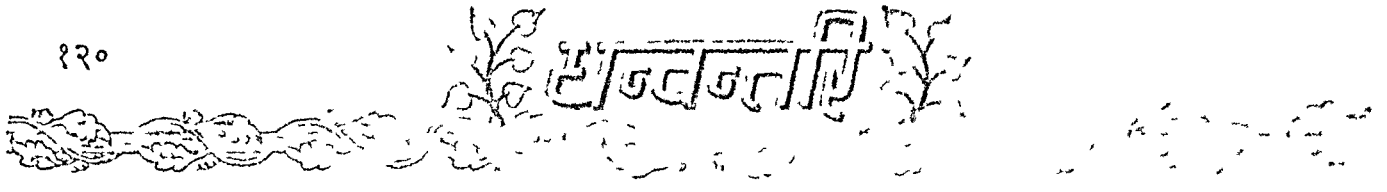
हि.—चुपरी आलू, खम आलू। म.—वनफल, चोपरि आलू, पिडालू इ.।

नोट-इसकी एक जातिविशेष, अधिकतर बंगाल की ओर पाई जाती है। इसे पिडालू[1] तथा हिन्दी व बंगाल में चोपरी आलू, गु०—कासोद्रियो, अं०—ग्लोबोस्येम (Globaseyam) तथा ले०—डिस्कोरिया ग्लोबोसा (D Golbosi) कहते हैं। यह मूत्रमार्ग में विशेषतः कृमिघ्न है, तथा इसका उपयोग कामोत्तेजक, मूत्रकृच्छ्र, सुजाक, व्रण, उदर-विकार आदि पर किया जाता है। ये दोनों पुष्टिवर्धक हैं।

नोट एरण्डादि कुल (Euphorbiaceae) का पिडार, पिडालू (Trevia Nudiflora) इससे भिन्न है। पिडार, का प्रकरण देखिए।

[1] मजिष्ठ कुल (Rubiaceae) का पिडालू इससे भिन्न होता है। उसका वर्णन, 'पिडाल' के प्रकरण में देखिए। उसे लेटिन में (Randia uliginosa) कहते हैं।

चुरहर (Clematis Gournia)

वत्सनाभ कुल (Ranunculaceae) की उग्र जगत चमेली की लता मूर्वा जैसी खूब लम्बी, पत्र—एकान्तर, क्वचित् पुंकेशर अनियत, स्त्री केशर अनेक व अरायुक्त, अभिमुख, पुष्प-प्राय ५ पंखुड़ी युक्त मूल—सूत्रवत्।

यह भारत के दक्षिण मे—नीलगिरी के आसपास के घने जंगलो, तथा समुद्र-तटवर्ती प्रान्तो मे अधिक पाई जाती है।

नाम—

हि.—चुरहर, मुरहरी, बलकुम। म.—रानजाई, मोरिगुल। अं०—ट्राबेलर्स जाय (Travelle-jo) ले०—क्लेमेटिस गोरियाना।

गुणधर्म—

यह स्फोट-जनन, मिर्गी और ज्वरहर है।

मलेरिया ज्वर पर—इसके पत्ते, सोंठ और काली-मिर्च का योग सफलतापूर्वक दिया जाता है।

चुलमोरा—दे०—चूका मे। चुल्लू—दे०—जर्दालु। चुल्लू का बादा दे०—बदा।

चूका (Rumex Vesicarius[1])

शाकवर्ग एवं चुक्रकुल[2] (Polygonaceae) के इसके गूदेदार वर्षायु क्षुप ६-१२ इञ्च ऊंचे, पत्र—लगभग १-२३ च लम्बे, ३-४ सिराओ से युक्त, त्रिकोण अण्डाकार, स्वाद मे खट्टे, फूल—गोलाकार छोटे श्वेत रंग के फल छोटे, श्वेत या रक्ताभ अत्यन्त छोटे छोटे काले चमकीले त्रिकोणाकार बीजो से युक्त होते हैं। बीजो को यूनानी मे 'तुख्म हुम्माज' या 'तुख्म' तुर्श कहते है।

इसकी पत्तियो का तथा कोमल डंठलो का साग बनाया जाता है।

यह प्रसिद्ध खट्टा साग भारत मे प्राय सर्वत्र तथा विशेषत पार्वत्य प्रदेशो के तराई भागो मे अधिक बोया जाता है।

[1] यही लेटिन नाम अमलवेत का भी भूल से दिया गया है। वास्तव मे उसका नाम सायट्रस डेकुमाना (Citrus Decumana) होना चाहिये उसे ही चकोतरा हिन्दी मे कहते हैं। चूका का चित्र अमलवेत के प्रकरण में देखिये।

[2] इस कुल के पौधों का काण्ड गोल, मांसल, पत्र एकांतर सवृन्त, पुष्प, छोटे प्राय श्वेत, पुंकेशर ४-६ एक या दो चक्रों मे—बीज—कोष—२-३ खण्डों वाला, ऊर्ध्वस्थ होता है।
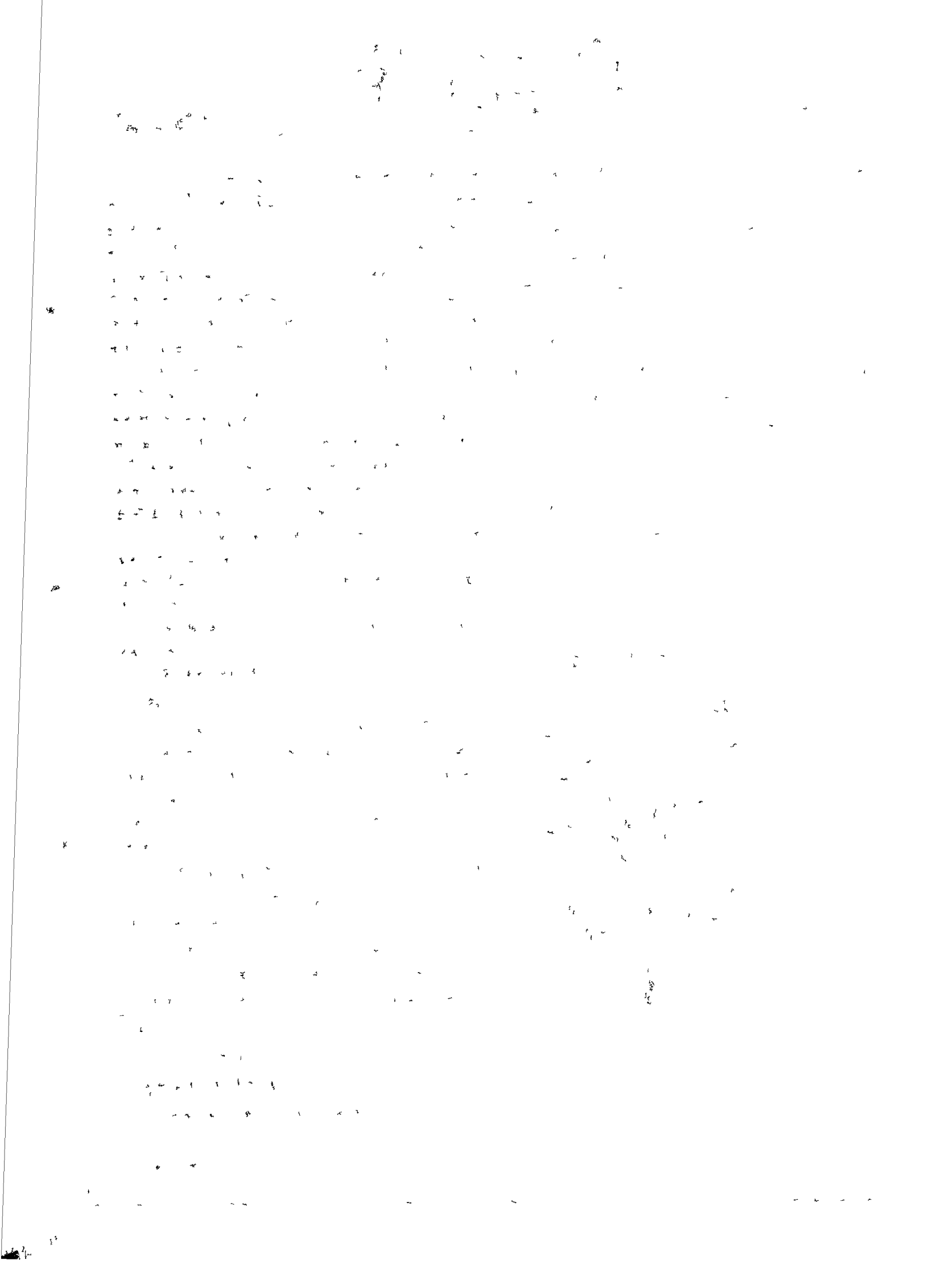
बीज–पिच्छिल, शीत, पित्तशामक, स्नेहन, ग्राही, दाह–प्रशमन है।

अतिसार, प्रवाहिका, आन्त्र-व्रण मे बीजो का, भून कर या विना भूने सेवन, ईसबगोल के साथ करते है। आमातिसार पर—भूने हुए बीजो का चूर्ण दिन मे २-३ बार देने से आम का पाचन होकर शीघ्र ही लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र, तथा मूत्रदाह मे, वैसे ही पित्तज-विकारो पर बीज विशेष गुणकारी है। किन्तु वृक्क और प्लीहा के लिये हानिकर है। हानि-निवारणार्थ सौंफ और शक्कर का सेवन कराते है।

नोट--मात्रा स्वरस १-२ तोला, अधिक से अधिक ४तोला तक। बीज चूर्ण ३-५ माशा। इसका अधिक सेवन काम-शक्ति के लिए अहितकर है।

मूल या जड का प्रयोग-अतिसार, कामला, श्वेत या रक्त प्रदर पर किया जाता है।

चूहाकानी–दे० मूसाकानी।

चेंच (बड़ी) *COR CHORUS ACUTANGULUS*

शाकवर्ग एव परुपक कुल (Tiliaceae) के इसके क्षुप वर्षाकाल मे १-२ फुट ऊचे बहुतशाखा युक्त उगते व बाद मे सूख जाते है। पत्र—२-३ इच लम्बे, १ मे १½ इच चौडे, अण्डाकार, दन्तुर या कगूरेदार, पुष्प—पीतवर्ण के, १-३ की सख्या मे प्रत्येक पुष्प-दड पर, फली—शृङ्गाकार, पृष्ठभाग पर ६ रेखाओ से युक्त, तथा इसके अन्दर अनेक कोष्ठो मे काले पिच्छिल नन्हे-नन्हे बीज होते हैं।

पत्रो का साग बनाया जाता है। ये क्षुप भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत उष्ण-प्रदेशो मे अधिक पाये जाते हैं।

नोट--बहुफली इसी की एक छोटी जाति है। इसका वर्णन आगे चेंच [छोटी] के प्रकरण मे देखें।

एक कार्कोरस ओलिटोरियस (C Olitorius) इसी की जाति होती है। इसे हि०–कोष्टा, ब०–नलित-पात कहते हैं। यह ज्वर और अतिसार मे उपयोगी है। इसका चित्र यहा देखे।

नाम

स०–चचु, चंचुकी, चिचा इ०। हि०–चैच, चंचु, चेंचुना, चेचुक, खेतपाल। म०--सुंच, थोर चचु। ग०--छुंछरी। ब०--चेचकी, वनपाट। ले०--कॉर्कोरस ऐक्युटे-गुलस, का० फेसिकुलारिस (C Fascicularis)।

प्रयोज्याग--पत्र और बीज।

गुणधर्म व प्रयोग–

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, रोचक, कषाय, विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, त्रिदोषशामक, स्नेहन, अनुलोमन, मूत्रल, ग्राही, वृष्य, बल्य, बृंहण, मेध्य, तथा–कोष्ठगत रूक्षता, उदरशूल, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, अर्श, रक्तपित्त, शुक्रदौर्बल्य, मूत्रकृच्छ्र आदि मे उपयोगी है। जन्तुघ्न और व्रणरोपण है। व्रणो पर लेप करते है।

बीज—कटु, उष्ण वीर्य, गुल्म, शूल, उदर-व्याधि, त्वग्दोष (कडू, कुष्ठ आदि), बल्य और मूषक-विष नाशक है।

नोट—इसके और छोटी चेंच के गुणधर्म प्राय. एक जैसे होते है। शेष गुणधर्म और प्रयोग नीचे के प्रकरण में देखिये।

चेंच (छोटी, बहुफली) *COR CHORUS ANTI CHORUS*

यह छत्ते की तरह जमीन पर फैली हुई उगती है। इसमे अर्ध चन्द्राकृति, छोटी-छोटी, बारीक बहुत-सी फलिया लगती है। इसी से यह बहुफली कहलाती है। भूफली जिसका वर्णन प्रथम खण्ड मे हुआ है, इसकी ही एक जाति विशेष है।

नाम–

सं०–क्षु चचु, भेदनी इ०। हि०–छोटी चेंच, बहुफली, भूफली। म०--लघु चचु। गु०--भीणकी छुंछ, बहुफली। अ०--Shrubby Jate (श्रबी जेट)। ले०--कार्कोरसएट्टिकोरस।

ले०–पेनिकम मिलियासियम, पे० मिलेरी [P Miliare]।

रासायनिक संघटन—इस कार्बोहायड्रेट प्रधान में अलबुमिनाइडस १२ ६, स्टार्च ६६ ४ और शेष भाग ३ ६ भाग होता है।

गुणधर्म व प्रयोग--

यह गुणधर्म मे कगनी जैसा ही मधुर, कसैला, शीतवीर्य रुचिकारक, रूक्ष, ग्राही, मूत्रल और दाहनाशक है।

इसकी रोटी बनाकर या चावलो की तरह पकाकर खाते है। इसे घृत या दूध के साथ खाने से छाती की जलन दूर होती व वीर्य बढता है। यह जलोदर, प्लीहा व रक्तस्राव मे लाभकारी है।

अतिसार—इसे भूनकर सत्तू बनाकर तक्र (छाछ) के साथ खाने से लाभ होता है।

चैनसुर–दे०–हालो। चोक–दे०–सत्यानाशी मे।

चोपचीनी (*SMILAX CHINA*)

हरीतक्यादिवर्ग एव रसोनकुल (Liliaceae) की, वच की ही जाति विशेष की इसकी आरोही विस्तृत लता होती है। डठल बहुत कडा, गोलाई मे १॥ इच से कही-कही अधिक, पत्र–बडे, गोल, किंचित् अण्डाकार ६–१८ इच तक लम्बे व चौडे, तेजपत्र जैसे, पुष्प–गुच्छो मे, श्वेत वर्ण के, फल–½ इच से १॥ इच तक गोल, जिसमे १-२ बीज होते हैं। मूल–स्थूल, भारी, लम्बोत्तर, कुछ चपटी, ग्रन्थियुक्त, भूरे रग की छाल से युक्त, चिकनी, चमकीली, कोई-कोई खुरदरी, भीतर से गुलाबी-श्वेत, कडी, पिष्टमय, पिच्छिल, गधरहित, स्वाद मे फीकी होती है, इसे ही चोपचीनी कहते है। बाजारो मे छाल उतरे हुए, भारी, गुलाबी रग के इसके टुकडे प्राय मिलते है।

यह चीन व जापान की वनौषधि है। भारत मे भी यह आसाम, टेनासरिम आदि स्थानो मे होती है, किंतु इसका अधिक प्रमाण मे आयात चीन देश से ही होता है, अत संस्कृत मे इसे 'द्वीपान्तरवचा' कहते है। लेटिन मे स्माइलेक्स चीना (अनेक कटे हुए काटेवाली चीन देशोत्पन्न एक लता) कहते है। यह छोटी जाति की चोपचीनी है। यह अन्यो की अपेक्षा अधिक गुण वाली होती है।

नोट-१. (अ) बडी जाति की चोपचीनी को स्माइलेक्स गलेब्रा (Smilax Glabra), ब.-हुरीनाशुकचिन, म.-मोठी शूकचिन कहते हैं। यह भारतीय चोपचीनी है।

यह ८-१० अंगुल लम्बा, आध-एक इंच मोटा गाठदर, वेरेशा, खुरदरा या चिकना भी, दृढ काष्ठ जैसा गुलावी या पीताभ श्वेत, किंचित् कालापन युक्त होता है।

ध्यान रहे, अधिक पुरानी होने पर इसमे प्राय घुन लगकर यह छिद्र युक्त दिखाई देती है। ऐसी घुनी हुई या गाठ-विहीन चोपचीनी का उपयोग औषधिकार्य मे नही करना चाहिये। वैसे ही जो वजन मे हलकी बिल्कुल श्वेत रग की या एकदम काले रग की टेढी मेढी, अनेक ग्र थियुक्त हो वह भी अनुपयोगी है।

उत्तम चोपचीनी का सग्रह करना हो तो उसे शहद मे डुबोकर या शक्कर के बीच मे रखने से उसमे घुन नही लगता तथा गुणधर्म मे भी किसीप्रकार न्यूनता नही आती। इसे कपूर व कस्तूरी के ससर्ग से तथा धूप, धुवा, धूल-वर्षा, लू, शीतादि से बचाना चाहिये। अन्यथा इसका प्रभाव घट जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग--

लघु, रुक्ष, तिक्त, कटु, विपाक, उष्णवीर्य, त्रिदोपशामक, दीपन, अनुलोमन—मल-मूत्र-शोधक, वेदनास्थापन रक्त शोधक, वृष्य, शुक्र-शोधक, मूत्रल, स्वेदल, कटुपौष्टिक आदि इसके गुणधर्म प्राय असगध जैसे हैं। यह उन्माद, अपस्मार, अग्निमाद्य, आध्मान, शूल, विवन्ध, कृमि, शोथ, गण्डमाला, ज्वर, दौर्वल्य, पूयमेह एव तज्जन्य-सधि-शोथ, सधिजाड्य आदि उपद्रव रक्तविकार कुष्ठादि चर्म रोग, उपदश या फिरगरोग की द्वितीय व तृतीयावस्था एव तज्जन्य कुष्ठ, व्रण, भगदर, पक्षवध, अर्श, तथा चिरकारी ज्वर आदि की दुर्वलता दूर करने के लिए व्यवहृत होती है। यह एक श्रेष्ठ रसायन है। क्रिया विशेपत त्वचा, सधिवधन तथा रस-ग्रन्थियो पर होती है। वाजीकरणार्थ एव शुक्र-विकारो पर इसे दूध मे उवाल कर देते हे। शोथ एव वेदनायुक्त विकारो पर इसका लेप करते है।

(१) उपदश या फिरग रोग पर—जीर्ण फिरङ्ग रोग मे रक्तविकृत होकर सारे शरीर मे विस्फोट, सधियो की जकडन, खुजली, श्यामत्वचा, रक्तविकार के धब्बे आदि हो जाने पर उसका चूर्ण ३ माशा की मात्रा मे सारिवा के फाण्ट या दूध या शक्कर के साथ दिन मे २ वार १-२ मासतक, पथ्यपूर्वक सेवन कराया जाता है। अथवा—

इसके १६ तोले चूर्ण के साथ मिश्री ८ तोला तथा छोटी पीपर, पीपरामूल, कालीमिर्च, लौंग, अकरकरा, खुरासानी अजवायन, सोठ वायविडङ्ग व दालचीनी १-१ तोला सवका चूर्ण एकत्र मिलाकर, मात्रा ६ माशा तक गरम पानी के साथ सेवन करे। अथवा—

इसके चूर्ण को या इसके शीत निर्यास को शहद मे मिलाकर सेवन करें। इससे त्वचा के समस्त विकार दूर होते हैं। अथवा—

इसके साथ मस्तगी, इलायची और दालचीनी का चूर्ण मिला, दूध मे पका कर सेवन करावे। इससे वातरक्त, जीर्ण वातविकार, दौर्वल्य आदि भी दूर होते हैं। कुष्ठ आदि चर्म-विकारो पर विशिष्ट योगो मे कल्प-प्रयोग देखे।

(२) सिर-दर्द पर—इसके चूर्ण का सेवन मक्खन-मिश्री के साथ करने से, थोडे ही दिनो मे मानसिक श्रम, या जीर्ण ज्वरादि से आई हुई निर्वलता के कारण होने वाली सिर की पीडा दूर हो जाती है। पुराने सिर-दर्द पर इसे अनन्तमूल के क्वाथ के साथ सेवन कराते है।

(३) भगदर पर—इसका चूर्ण, शक्कर या मिश्री, और घृत २॥-२॥ तो० लेकर इसके दो मोदक बनाकर प्रात-साय १-१ लड्डू खाकर ऊपर से गाय का दूध पीवे। पथ्य मे—केवल गेहू की रोटी, घृत, शक्कर और दूध ही देना चाहिये। १४ दिन मे लाभ हो जाता है। यदि इस प्रयोग के सेवन से शरीर मे गरमी प्रतीत हो तो दवा की मात्रा कम करे, तथा पथ्य मे घृत दूध अधिक लेवे।

(व० च०)

आगे विशिष्ट योगो मे मोदक-चोपचीनी देखे।

(४) शारीरिक निर्वलता पर—इसका चूर्ण २ से ६ मा० तक समभाग शक्कर के साथ सेवन कर ऊपर से दूध पीवे। दिन मे दो वार लेते रहने से थोडे ही दिन मे शक्ति वढती, स्वप्नदोष, व जीर्ण मलावरोध दूर होता है। वृक्क व मूत्राशय का शोधन होता एव उदर वायु शमन होती है।
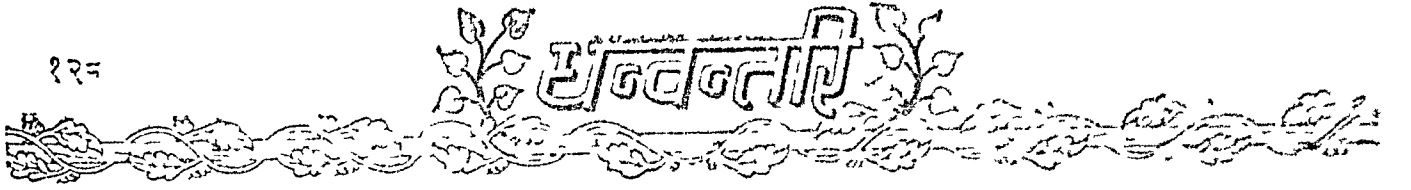
छान कर पिलावें। शेष क्वाथ को हाथ मुँह धोने आदि के काम मे लावे। इस क्रिया के बाद १घंटे तक शीत से बचना चाहिये।

यह स्वेदन विधि सप्ताह मे १ बार करे, नित्य प्रति करने की आवश्यकता नहीं। यदि रोग अधिक हो तो दो बार देवे।

कुष्ठ मे घाव या गलित कुष्ठ हो तो निम्नलिखित मलहम का उपयोग करे। कल्प-प्रयोग, चूर्ण व क्वाथ की मात्रा रोगानुसार क्रमश बढाने और घटाते हुए, ८० दिन तक करे। इस प्रयोग की अवधि मे २॥ तो० या ५ तो० तक चनो को मिट्टी के पात्र मे १० तो० जल मे, शाम को भिगो, प्रात, शौचादि से निवृत्त हो प्रथम उन्हे खूब चबाते हुए खाकर- ऊपर से उन का पानी पी जावे, शौच के बाद गुदा-प्रक्षालन, हाथपाव धोना, कुल्ली करना आदि कार्यो मे, चोबचीनी के साधारण क्वाथ (१॥ या २ तो० चूर्ण को १०-१२ सेर पानी मे पका, आधा-शेष रहने पर छानकर) का उपयोग करे। इसी क्वाथ-जल मे कपडा भिगोकर शरीर को पूर्णतया पोछ लें। साधारण पानी से स्नान न करे। उक्त पथ्यापथ्य का पूर्ण पालन करे। कल्प-प्रयोग पूर्ण हो जाने पर भी ४० दिन तक तक उसी प्रकार पथ्य का निर्वाह करने से गलित—कुष्ठादि भयकर व्याधियाँ दूर हो जाती है। फिर क्रमश नमक आदि के खाने का थोडा थोडा अभ्यास बढाना चाहिये। ध्यान रहे, थोडा भी कुपथ्य हानिकारक हो जाता है।

मलहम-चोबचीनी—शुद्ध चूना (१० तो० पत्थर के चूने की डली को तीन पाव गरम पानी मे डाल दे। वह उबल कर शात एव शीतल हो जाने पर उसे थाली या परात मे छान ले। थिराने पर पानी को वहाकर चूने को सुखा ले) १ तो० मुरदासग ६ मा० चोबचीनी २ तो० मेहदी के फल ४ तो० इन सब के महीन चूर्ण को ८ तो० जैतून तैल मे खूब खरल कर रक्खे। अथवा-

चोबचीनी चूर्ण २ तो० तूतिया, मुरदासग और सफेदा १-१ तो० इन सब के सूक्ष्म चूर्ण को मोम २ तो० व बादाम तेल ७ तो० (पहले मोम को तैल के साथ गलाकर) मे मिला खरल कर मलहम बनाले।

त्रिफला और नीम की पत्ती के क्वाथ से घावों को धो पोंछ कर मलहम की पट्टी लगाते रहने से कुष्ठ के व्रण, आतशक के क्षत, नासूर आदि मे शीघ्र लाभ होता है।

(३) अर्क-चोबचीनी-(उपदंशादि नाशक रक्त-शोधक)-चोबचीनी और गोरखमुंडी ४०-४० तो० मजीठ, गुलाब पुष्प,-मुनक्का और त्रिफला १०-१० तो० इन सब को जौ कुट चूर्ण कर २० सेर पानी मे; ३ दिन तक भिगो रक्खे। फिर भबके द्वारा अर्क खींच कर उस मे ८० तोला मिश्री मिला पुन अर्क खींच कर छान रक्खे। मात्रा-२-२ तोला० बलानुसार पीकर थोडा टहला करे।

अथवा—चोबचीनी १ सेर को महीन कूट कर २० सेर पानी मे ३ दिन तक भिगो रखने के बाद पात्र का मुख बन्द कर पकावे। लगभग ७ सेर पानी शेष रहने पर, भबके मे डाल अर्क खीच लें। मात्रा-१ से ५ तो० तक पीकर थोडा टहल लिया करे। इसी प्रकार दोनो समय, आरोग्यता लाभ होने पर्यन्त सेवन करते रहने से पुराने उपदश द्वारा उत्पन्न शरीर के व्रण, चकत्ते आदि दूर होते है, तथा कुष्ठ, गठिया, पीनस, एव व्रणादि सर्प-रक्त- विकार निर्मूल होते हैं।

आमवात गाठिया से पीडित रोगी को प्रात-चोबचीनी, पीपल और राम्ना का समभाग महीन चूर्ण मात्रा-१ तो० तक, मधु से चटाकर ऊपर से उक्त अर्क के पिलाने तथा नारायण तैल या विषगर्भ तेल की मालिश कराने से भयङ्कर गठिया शीघ्र ही दूर होती है। किंतु उक्त पथ्यापथ्य का पालन आवश्यक है। अथवा-

चोबचीनी ५७ तोला का मोटा चूर्ण, मीठा पक्व सेब ५० नग के छोटे छोटे टुकडे कर ले। और दालचीनी गुलाब पुष्प, रेहा के बीज ६-६ तोला, लौंग, बालछड, तेजपात, छोटी इलायची, कचूर, बिल्ली लोटन, गावजवान के पुष्प, कतरा हुआ आबरेशम ३-३ तोला, श्वेत व लाल बहमन, श्वेतचन्दन, अगर, छडीला १॥-१॥ तो मिश्री ६ तोला लेकर कूटने योग्य द्रव्यो का मोटा चूर्ण कर सब द्रव्यो को रात्रि मे अर्क गुलाब १ सेर मे भिगो
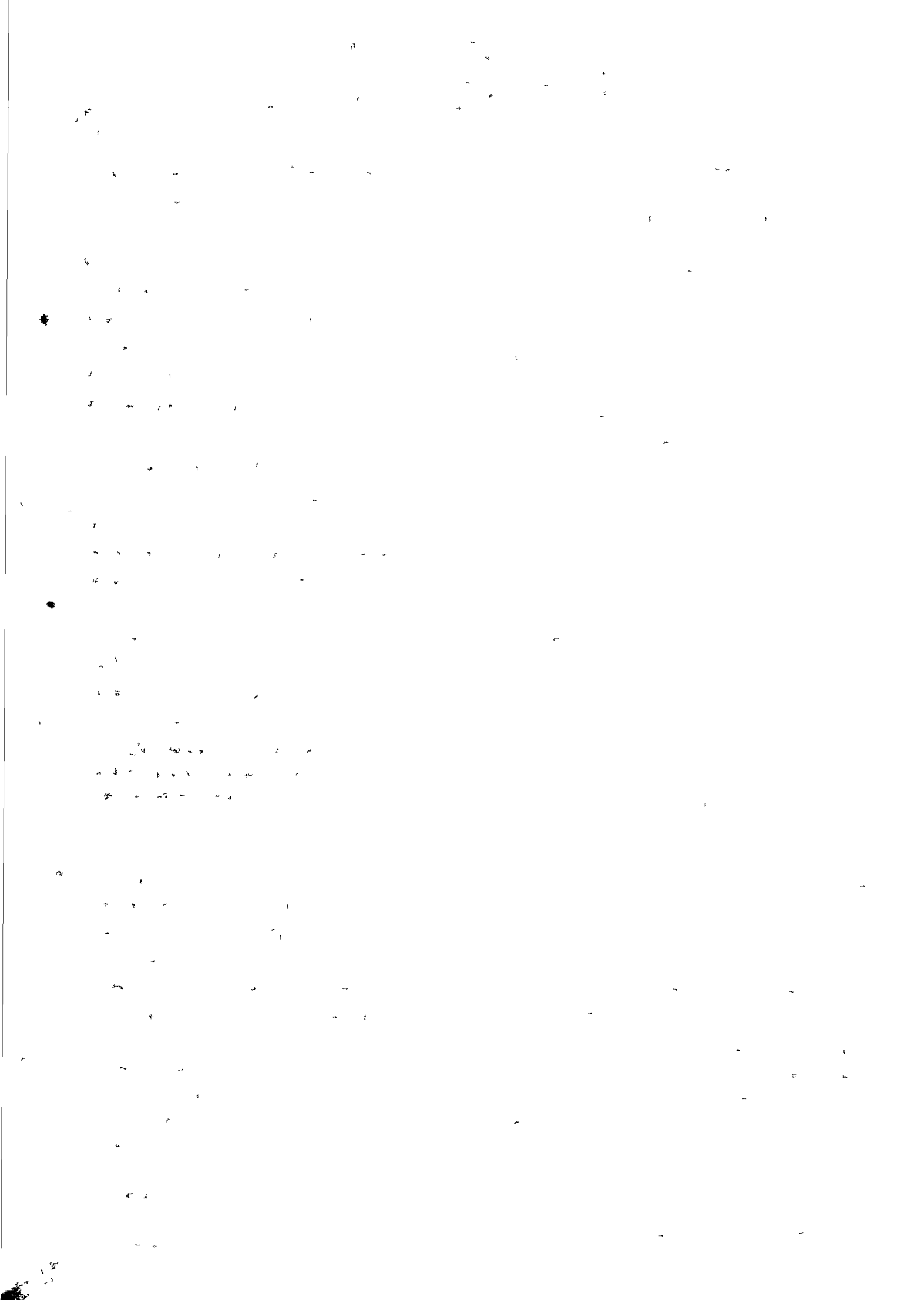
(६) मदन-मजीवन चूर्ण—चोपचीनी चूर्ण ४० तो० तथा जायफल, लोग, जायपत्री, पीपल, तज, तमाल-पत्र, इलायची, नागकेसर, बहुफली, पीपरामूल, अजवायन, कोच-बीज, असगध, सफेद मूसली, बलबीज, (खिरैटी के बीज), गोखुरु, समुद्र गोप के बीज, धतूरे के बीज, वसलोचन और मुलहठी प्रत्येक का १-१ तो० चूर्ण, इनको एकत्र महीन गरल कर रख ले।

मात्रा—३ मा०, शहद ३ मा० और घृत ६ मा० एकत्र मिला, चाट कर ऊपर से गोदुग्ध पीवे। यह अत्यत कामोद्दीपक एव वाजीकरण है। (व० च०)

चोवहयात (Guaicum Officinalis)

गोक्षुर-कुल (Zygophylleae) का यह झाडीनुमा सुन्दर वृक्ष होता है। छाल-ऊवड-खावड या अत्यन्त खुरदरी, पत्र—जोडे से, लकडी वजन मे भारी, लकडी का सारभाग ऊदे रग का बहुत कडा, जलाने से धूप जैसा सुगन्ध देने वाला स्वाद मे मसाले जैसा क्षोभक होता है, यही चोवहयात कहाता है। इसके पलग या तख्तपोश के पाये बनाते है।

औषधि-कर्म मे उक्त सार-काष्ठ और उससे निकला हुआ राल (Resin) लिया जाता है।

इसके वृक्ष विशेषत पश्चिमी भारतीय-द्वीपो के पहाडी प्रान्तो मे होते है। कहा जाता है कि बनारस, गोरखपुर और रोहतास के बागो मे कही-कही ये वृक्ष लगाये गये है।

GUAIOCUM OFFICINALIS

नाम—

स०—लोहकाष्ठ, अमृत दारु, इ०। हि०—चोव (चोबे) हयात, लोह-लक्कड। अ०—लिग्नम वायटी (Lignum Vito)। ले०—ग्वाएकम ऑफिसिनेलिस।

रासायनिक सघटन—

इसमे लगभग प्र० श० २०-२५ तक एक प्रकार का राल, खाकी रग का, सुगन्धित पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह उष्ण, रुक्ष, दीपन, पाचन, मूत्रल, स्वेदल, आनुलोमिक, हृद्य, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, विषनाशक एव शोथ-हर है।
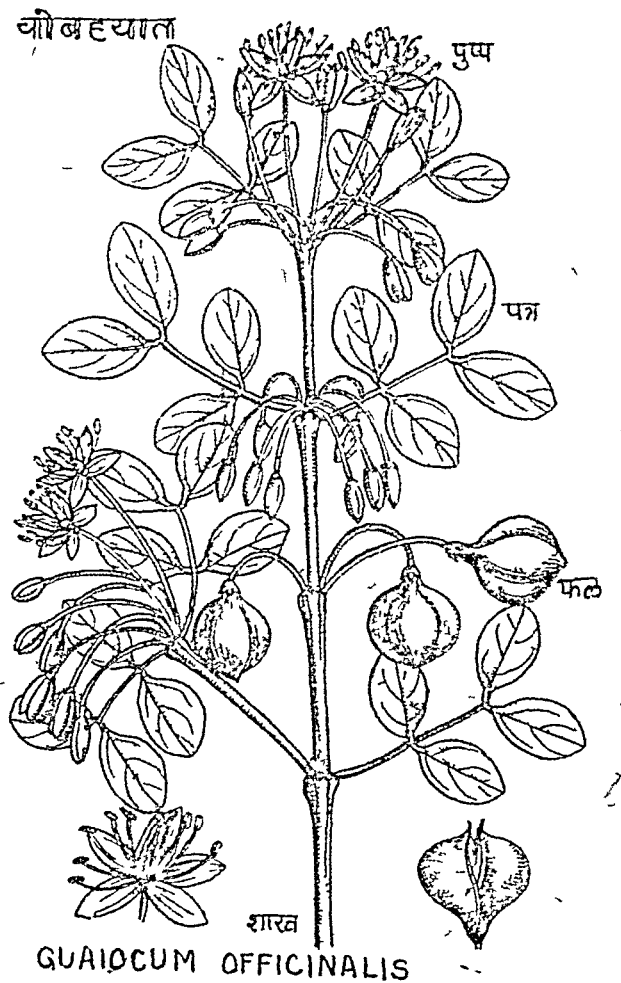
यह खुजली की हालत मे विशेष उपयोगी है। स्त्रियो के मासिक धर्म को साफ करने वाला एव गर्भाशय का शोधक है। गले की ग्रन्थि के शोथ पर यह उत्तम लाभकारी है, इसका चूर्ण जीभ पर रख कर धीरे-धीरे गले मे उतारते है। या इसे थोडे से पानी के साथ धीरे-धीरे निगलते है। जीर्ण आमवात, सधियो की जकड़न, गृध्रसी आदि वातरोगो मे इसे, शुद्ध गधक, सोरा, सोठ, और

और इसके तैल की मालिश करते है।

मात्रा—पत्र-रस -१से ४ मा । पत्र-शीतनिर्यास या फाट १ से २।। तो तथा पञ्चाङ्ग का क्वाथ—३ तोला तैल २-५ बूंद,

चौपतिया (Marsilia Quadrifolia)

शाकवर्ग की इस बूटी को कई लोग वासक-कुल (Acanthaceae) के उटगन की ही एक जाति विशेष मानते है। तथा इसका भी वही लेटिन नाम (Blepharis Edulis) देते है। जो कि उटगन के लिए दिया गया है। किंतु वास्तव मे यह उससे भिन्न अन्य कुल (Marsileaceae) की एक ही जलज बूटी है। इस कुल की अन्य बूटियां अभी अज्ञात है। उटगन के गुणो मे इसके गुणो की अपेक्षा बहुत कुछ कमी है। उटगन के पत्रो मे कुछ अम्लता होती है, किन्तुइसके पत्तो मे नही होती।

वर्षाकाल मे इसके छत्ते जैसे क्षुप जलाशय के समीप के कीचड या पानी के ऊपर तैरते हुए दिखाई देते है। पत्र—प्रत्येक डंडी पर ४-४ या प्रत्येक पत्र ४ भागो मे विभक्त १-१ इंच लम्बा होता है। इसी से यह चौपतिया कहाता है। पत्र-वृन्त ६-१० इंच लम्बा, कडा होता है। ये पत्र विविध आकार के कुछ श्याम वर्ण के होते है।

बीज कोष या फल— डंडी के अग्र भाग पर श्वेत वर्ण के गुच्छों मे इसके बीज-कोष होते है, जिन मे नन्हे-नन्हे चिपटे बीज होते है

नोट—(१) सुनिषण्णक और शितिवार नाम से चरक और सुश्रुत मे इसका उल्लेख है। चरक मे वातज कास विषपीडा, ऊरुस्तंभ और वातरक्त से पीडित रोगी के लिए इसके शाक का विधान है। तथा मूत्रकृच्छ्र पर इसके बीजों को तक्र के साथ पीस कर पिलाने के लिये कहा है[1] सुश्रुत के शाकगणों मे इसके गुणो का उल्लेख है। तथा रक्तपित्त रोग में इसके पत्तो को घृत में भूनकर या पका कर खाने के लिए पथ्य कहा है।[1]

(२) एक लाल चौपतिया भी होती है। इसमें लाल रंग के पुष्प आते है। इसे मरेठी मे 'देवकुरड्' कहते है। प्रस्तुत प्रसग की चौपतिया के पुष्प, श्वेत होते है।

यह बंगाल, विहार, आसाम तथा भारत के अन्यान्य जल-प्रचुर स्थानो पर बहुत होती है।

नाम—

सं-शितिवार, सुनिषण्णक,स्वस्तिक इ. । हि.-चौपतिया, शिरियारी। म.—कुरड्। गु -सुनिषण्णक। बं.-सुषणीशाक, शुनिशाक । ले.-मारसीलिया क्वाड्री फोलिया। पा.-मिन्युटा (P Minuta)।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, कसैली, शीतल, ग्राही, अविदाही (दाहन करने वाली), रूक्ष, दीपन, वीर्यवर्धक, रुचिकारक हृद्य, मूत्रल, त्रिदोषशामक तथा मेद, ज्वर, श्वास, प्रमेह कुष्ठ, भ्रम, आदि नाशक है इसके बीज शीतल है।

पत्तो का शाक वातज कास, विषपीडा, ऊरुस्तभ, वातरक्त मे देने से लाभ होता है। रक्तपित्त मे इसका शाक घृत से सिद्ध कर आवलो के या अनारदानो के चूर्ण मिलाकर पथ्य रूप मे देने से लाभ होता है।

अश्मरी और मूत्राघात पर—इसके बीज १ मा समभाग मिश्री के चूर्ण के साथ दिन मे २-३ बार देते है।

---

[1] तक्रेणयुक्त शितिवारकस्य बीज पिबेत्कृच्छ्र विघात हेतो।" (च. चि. अ २६)

[1] पटोल शेलू सुनिषण्ण यूथिका वटाति हितच शाकं घृतसंस्कृतं सदा, तथैव धात्री फल दाडिमान्वितम्॥ सु. अ. ४५ अर्थात् परवल पत्र का शाक, लिसोडे के फलों का एवं सुनिषण्ण (चौपतिया) के पत्तों का शाक घृत से संस्कृत कर आवले व अनारदाने के चूर्ण से कुछ खट्टा बना कर देना सदा (रक्तपित्त में) हितकारी है।

मे यह ठंडा ही पिये, किन्तु शीत ऋतु मे इसे कुछ गरम कर पीना ठीक होता है। तथा इन दिनो मे चौलाई का शाक भी खाना हितकर है। रक्तप्रदर मे शीघ्र लाभकारी है।

श्वेतप्रदर पर—इसके रस मे हीराबोल मिलाकर पिलाते है।

रक्तातिसार पर—मूल को पानी से पीस कर उसमे शहद और खाड मिलाकर पिलावे। अथवा—जड का स्वरस २ तो मे शहद ६ मा और मिश्री ३ मा मिला कर सेवन करावे। गुदमार्ग से रक्तस्राव बन्द होता है। आगे विशिष्ट योग मे इसका आसव देखे।

(६) नेत्र–पाक या नेत्रव्रण पर—मूल को स्त्री के दूध मे पीसकर या घिस कर नेत्रो मे टपकाने से दाह, जलन, वेदना, लाली और व्रण मे लाभ होता है।

रक्तार्श पर—मूल के रस मे ४॥ मा रसोत और १ मा नागकेसर चूर्ण मिला १-१ मा की गोलिया बना प्रति दिन १ गोली खाकर ऊपर से इसके मूल का ही शीत निर्यास १० तो तक पिलावे। पथ्यपूर्वक रहे। शीघ्र लाभ होता है। (यूनानी)

(८) अनार्त्तव मे रज प्रवर्त्तनार्थ—मूत्र के साथ गुलाब के पत्ते व तेलियागेरू प्रत्येक ६-६ मा कपास की जड १॥ तो और पुराना गुड (३ वर्ष का) २ तो लेकर सब को तीन पाव जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर छान कर, नित्य ३ दिन तक, केवल प्रात पिलाने से मासिक धर्म की रुकावट दूर होती तथा गर्भाशय की शुद्धि होती है। ध्यान रहे मलावरोध की अवस्था मे उदरशुद्धि करा ले। मासिकधर्म में विकृति होने पर ३ दिन स्नान न करे, अन्यथा रज स्राव ठीक नही होता। आवश्यकतानुसार गर्भाशय व बीजाशय पर रेंडी तैल लगा कपडा रखकर गरम जल की थैली से सेक करे, (प्रात साय २०-२० मिनट तक।) (रस तन्त्र सार)

सुजाक पर—मूल के साथ समभाग मुलहठी व अपामार्ग-मूल मिलाकर क्वाथ बना सेवन करने से मूत्र-वृद्धि होकर रोग की प्रथम व द्वितीय अवस्था मे विशेष लाभ होता है।

अथवा—कांटीली चौलाई (किसी भी योग के लिये जहा तक हो सके कांटे वाली चौलाई ही लेना ठीक होता है) की सूखी जड २ तो०, भांगरा (भृंगराज) का सूखा पंचाङ्ग व मकोय (काकमाची) १-१ तो०, सफेद चीनी ६ मा० तथा पुराना गुड ६ मा० सबको जौकुट कर, मृत्पात्र मे ३ पाव पानी के साथ चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर प्रात पिलावे। पुन साय उसी औषधि के कचरे को आध सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर प्रात पिलावे। इस प्रकार ७-१४ दिन तक सेवन से नया या पुराना सुजाक दूर हो जाता है। किन्तु प्रयोग-सेवन के पूर्व कोठे को मुलायम व शुद्ध कर लेवें।

(१०) चौलाई की जड के अन्य महत्त्व के योग—

० वन्ध्याकरण योग—मासिक धर्म होने के पश्चात् ३ दिन तक इसकी जड को चावलो के धोवन मे पीसकर पीने से स्त्री वन्ध्या हो जाती है।

—यो० त० भा० भै० र० से०

नारू पर—इसके जड की पुल्टिस बनाकर बांधने से नारू जड जाता है।

गर्भपात या गर्भस्राव पर—जिस स्त्री को गर्भपात होते रहने की शिकायत हो, उसे रजोदर्शन के समय ४-५ दिन तक उसका क्वाथ पिलाने मे लाभ होता है। अत्यार्त्तव पर यह अर्गट जैसी ही उपयोगी है। गर्भाशय-शूल तथा अति रक्तस्राव पर—मूल के साथ आवला, अशोक-छाल व दारु हल्दी मिला, फाण्ट बनाकर पिलाते है। गर्भ को स्थिर करने के लिये ऋतुकाल मे मूल को चावलो के धोवन मे पीस कर पिलाते है। इससे गर्भिणी व प्रसूता के रक्तस्राव मे भी लाभ होता है।

नासूर या नाडी-व्रण पर—मूल को पीस कर बाधते है।

अर्धशीशी पर—इसके और जटामासी के कल्क के साथ घृत को सिद्ध कर नस्य देवे।

अग्निदग्ध-व्रण पर—इसके रस का लेप करते है।

विष के विकारो पर—तण्डुलीयक घृत इसकी जड और घर के धुये (गृहधूम) के कल्क तथा दूध के साथ सिद्ध किया हुआ घृत पीने से समस्त विष-विकार

पृष्ठ भाग हरिताभ काला सा तथा भीतर का भाग श्वेत होता है। इसमें एक विशिष्ट गंध होती तथा स्वाद में तिक्त कसैली होती है। जिसका भीतरी भाग अधिक सुगंधित होता है, वही औषधिकार्य में विशेष उपयुक्त होती है।

यह विशेषत हिमालय प्रदेश, पंजाब, फारस आदि प्रदेशों में बहुत पायी जाती है।

नोट—इसकी कई जातियों के लेटिन नाम नीचे की नामावली में देखिये।

चरक तथा सुश्रुत में वातज शोथ, नेत्ररोग, विष विकार, शीत ज्वर आदि के कई प्रयोगों में यह (शैलेय) लिया गया है।

नाम—

सं०—शैलेय (पथरीले पहाड़ों पर होने से), शिला पुष्प [चट्टानों पर पुष्प-सदृश होने से] इत्यादि। हि०—छड़ी [री] ला, भूरिछरीला, छारछरीला, पत्थरफूल इ.। म०—दगड फूल। गु०—छडीलो, पत्थरफूल। बं०—शैलज। अ०—स्टोन फ्लावर्स [Stone flowers], यलो लिचेन [Yellow Lichen], रॉक मास [Roch moss] ले०—परमिलिया परफोरेटा. प०—परलाटा (P perlata) प.-केरटस कंडयाटिस [P Karatschadatis] प.-लायचिन ओडोरिफेरस [P Lichin odoriferous]

रासायनिक संघटन—

इसमें एक पीताभ, रवेदार रजक द्रव्य, गोंद, शर्करा, तथा लाइचेनिन (Lichenin) नामक तत्व और क्राइसोनिक एसिड पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पंचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, शीत-वीर्य, सौम्य एवं प्रभाव में हृद्य है। यह पित्तशामक, दीपन, ग्राही, कफनिःसारक, शोथहर, रक्तविकार नाशक, व्रणरोपण, वेदना-स्थापन, कण्डूघ्न, मूत्रल, अश्मरी नाशक, दाह प्रशमन, कामोत्तेजक, ज्वर और कुष्ठनाशक है। कफपित्त-जन्य रोग, तृष्णा, वमन, अग्निमांद्य, अतिसार, प्रवाहिका, हृद्दौर्बल्य, शोथ, रक्तविकार, कास, श्वास, आदि में इसका प्रयोग होता है।

अण्डशोथ, शिर शूल, व्रण आदि विकारों में इसका लेप किया जाता है। मूत्राघात में—इसके कल्क को किंचित् उष्ण कर वस्ति, कटि व वृक्क प्रदेश पर—लेप करते हैं। व्रणों पर इसका चूर्ण बुरकाते हैं। नेत्र-शक्ति की वृद्धि एवं नेत्र-स्राव पर इसे गरम कर नेत्रों में लगाते हैं।

१ मूत्रावरोध तथा अश्मरी पर—इसे १ तोला लेकर क्वाथ या फाण्ट बना, मिश्री व जीरे का चूर्ण मिला कर पिलाने, तथा इसे गरम जल में भिगोकर पेड़ू एवं कमर पर बांधने से या इसके साथ शोरा मिलाकर, पुल्टिस बना नाभि के नीचे बांधने से मूत्र की रुकावट दूर होती है।

२ सिर-दर्द पर—इसके कल्क को गरम कर मस्तक पर लगाते हैं, गरमी से होने वाला सिर-दर्द दूर होता है। इसे आग पर जलाकर धूम्र को नाक से खींचते रहने से भी लाभ होता है, मृगी, आवाशीशी तथा योषापस्मार में भी यह धूम्र लाभकारी है।

३ कुष्ठ पर—इसके साथ कमीला, मुलैठी, सौराष्ट्री मृत्तिका (फिटकड़ी), राल, नीलोफर व मैनसिल सम-भाग, चूर्ण को मक्खन में मिलाकर लेप करते रहने से स्रावयुक्त कुष्ठ नष्ट होता है। (वृ० नि० र०)

नोट—वातज-शोथ पर शैलेय-तैल प्रयोग चरक चि० अ० १७ में देखिए।

शुद्धि—इसकी शुद्धि की विधि भैषज्य र में इस प्रकार है—इसे काजी में पकाकर, जल से धोकर, पंच-पल्लवक्वाथ से वाष्प-स्वेदन करे। फिर भूनकर गुड़-मिश्रित हरड़ के क्वाथ से सेचन कर सुगन्धित पुष्पों-द्वारा सुवासित करे।

अथवा—इसे काजी में अच्छी प्रकार-उबाल कर, धोकर छागमूत्र में और फिर सहिजन के क्वाथ से भावनायें देकर, शुष्ककर मधु से मर्दन करें। तदनन्तर अगर तथा राल से धूपन कर सुगंधित पुष्पों द्वारा अधिवासित करे।

मात्रा—चूर्ण-६ से १२ रत्ती। क्वाथ—२-४ तोला।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण-वीर्य तथा त्रिदोषघ्न, विशेषत कफवातशामक, दीपन, अनुलोमन, मृदुरेचन, अन्य द्रव्यो के साथ देने से स्तभन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, हृद्य, ज्वरघ्न (विशेषत विषमज्वर प्रतिबन्धक), स्तन्यजनन, कटुपौष्टिक एव कुष्ठघ्न है। इसका प्रयोग विशेषत कफवातज विकार, रक्तविकार, हृद्रोग, कास, श्वास, कुष्ठ, उदर्द, ज्वरजन्य दौर्बल्य, आमवात, वात, चर्मरोग, जीर्णउदररोग, कफ जन्य सग्रहणी आदि मे किया जाता है।

विषमज्वरो मे यह कुनेन जैसा ही कार्य करता है, किन्तु उसके समान उपद्रवकारी नही है।

छाल—सकोचक, कटुपौष्टिक, धातुपरिवर्तक, कृमिनाशक, ज्वरघ्न एव ऋतुस्राव-नियामक हैं। इसका प्रयोग ज्वर, अग्निमाद्य, शूल, गुल्म जीर्णातिसार, प्रवाहिका, कृमि आदि मे अधिक किया जाता है।

प्रसूतावस्था मे छाल का प्रयोग अन्य सुगधित ज्वरनाशक द्रव्यों के साथ करने से अग्नि और बल की वृद्धि, ज्वर का प्रतिषेध एव स्तन्य-वृद्धि होती हैं।

जीर्णातिसार व प्रवाहिका मे इसका क्वाथ देते हैं। जीर्णआमवात और सधिशोथ पर—छाल का कल्क लेप करते हैं या पुल्टिस बनाकर बाधते है। कुष्ठ पर—ताजी छाल का अर्क दूध के साथ देते है। जीर्ण एव दूषितव्रणो पर—छाल को दूध के साथ पास कर लेप करते हैं। रक्तपित्त मे—इसका घन क्वाथ, चोबचीनी-चूर्ण मिला दूध के साथ सेवन करते है।

(१) ज्वरो पर—विशेषत. सतत विषमज्वर, जिसमें ज्वर एकसमान दिनरात बना रहता हो, कई दिनो तक रोगी ज्वर से सतप्त हो, ज्वर कभी उतरता ही न हो तो इसकी छाल के साथ गिलोय, अड्सापत्र, पटोल पत्र, नागरमोथा, भोजपत्र, खैर की छाल, और नीम की अन्तरछाल समभाग जौकुट कर मात्रा–४ तो को ६४ तो पानी मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर छान कर प्रात काल पिलावे, या इसकी ३ मात्रा कर दिन मे २-३ बार पिलादे। शीघ्र ही ज्वर उतर जाता है। अथवा केवल इसकी ही छाल का क्वाथ या फाट दिन मे २-३ बार पिलाते रहने से ज्वर शनै २ उतर जाता है। अन्ये द्युष्क आदि विषम ज्वरो मे भी यह क्वाथ लाभकारी है। ज्वर के पश्चात् की अशक्ति के निवारणार्थ छाल के क्वाथ मे अदरख का रस मिलाकर सेवन कराते है।

अथवा—इसकी अतरछाल का घन क्वाथ कर उसमे अतीस-चूर्ण की गोली बन सके इतना मिला, ३-३ रत्ती की गोलिया बना, धूप मे सुखा ले। ३-३ घटे से ३-३ गोली ठडे जल से देवे। विषमज्वर दूर होता है।

(सि यो. सग्रह)—

नोट—छाल से निकाला हुआ डिटेनिन नामक सत्व, कुनैन के स्थान मे सफलतापूर्वक दिया जा सकता है। कुनैन से होने वाली प्रतिक्रियायें इसके प्रयोग से नहीं होती किन्तु इसका असर कुछ समय बाद नही रहता। पुनः ज्वर आ सकता है।

ध्यान रहे छाल का क्वाथ या फाट, १२ घण्टे के पश्चात् पुन तैयार कर देना चाहिये। १२ घण्टे के बाद यह क्वाथ बेकार हो जाता है। जीर्णज्वर के साथ होने वाले अग्निमाद्य मे छाल का चूर्ण १० रत्ती की मात्रा मे, थोडी कालीमिर्च चूर्ण और सेधा नमक के साथ देते रहने से लाभ होता है।

कफज्वर मे—छाल के साथ गिलोय नीमछाल, और खजूर समभाग मिश्रित जौकुट कर ५ तो चूर्ण को ४० तो पानी मे पका दे। १० तो. शेष रहने पर छान कर, उसमे २ तोला शहद मिला सेवन से लाभ होता है।

(भा भै र.)

(२) मुख-पाक पर—इसकी छाल के साथ खस, पटोल नागरमोथा, हरड, कुटकी, मुलैठी, अमलतास, और बाल चन्दन का क्वाथ सिद्ध कर सेवन करे।

(ग नि)

(३) अश्मरी-जन्य मूत्रकृच्छ्र पर—इसकी छाल के साथ अमलतास, केतकी (केवडा), इलायची, नीम छाल, करज, कुटकी और गिलोय मिला कर क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला सेवन करने से, अथवा ये क्वाथ द्रव्य
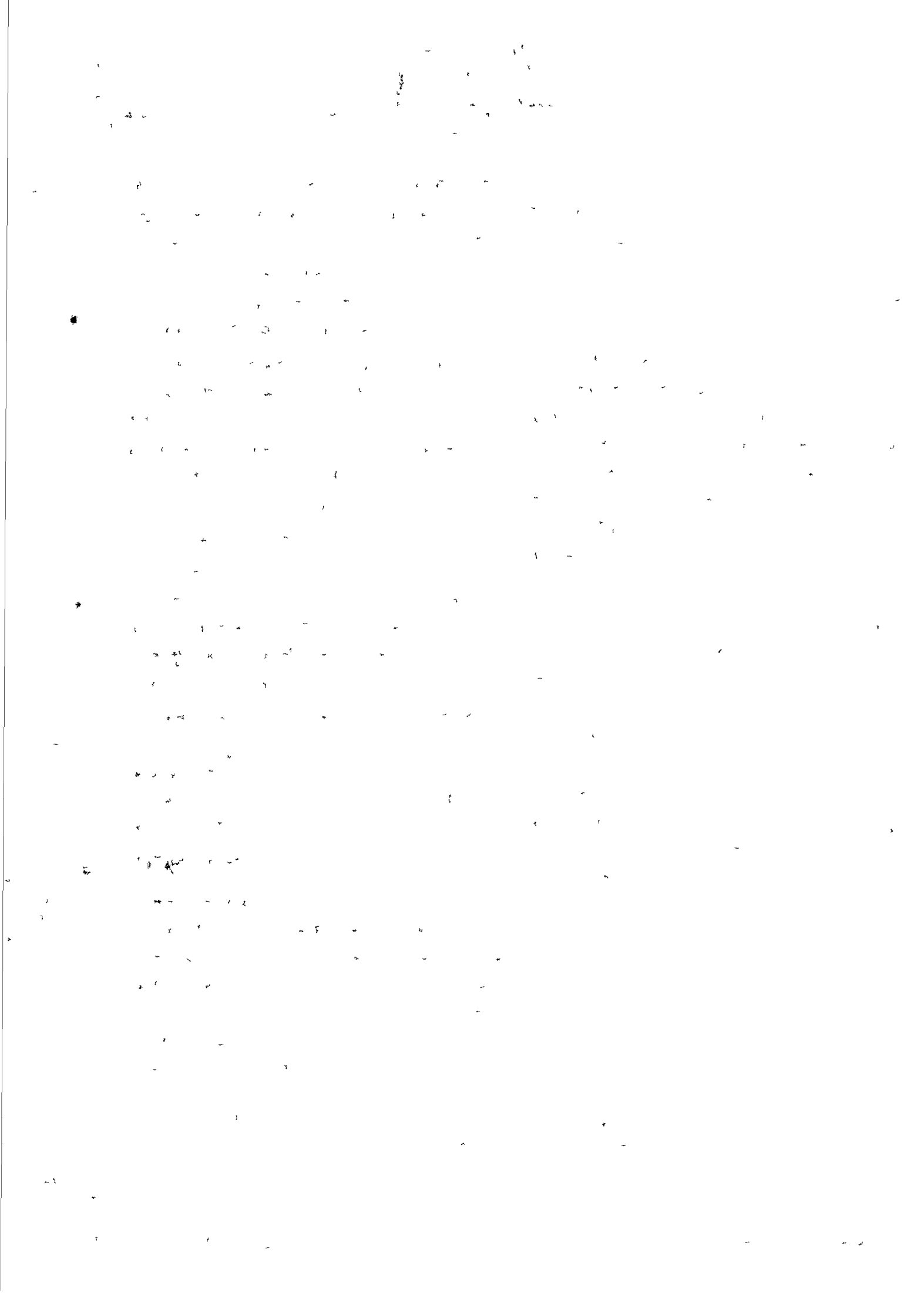
छत्री (Polyporus Officinalis)

शाकवर्ग की सस्वेदज जाति एवं छत्रक कुल (fungi) के इस शाक के क्षुप वर्षाऋतु मे स्वयमेव जमीन फोडकर या गोवर, काष्ठ, वृक्षादि पर पैदा हो जाते हैं।यह ६–७ इच ऊँची, शाखारहित, केवल एक डण्डी से बाहर निकलती है, उस पर गोल छत्ते के आकार का एक छत्र होने से इसे छत्री या छत्रक कहते हैं। किसी किसी डडी पर गोल गु वज सा होता है, तथा उसमे काली भुरकी सी रहती है, इसे कृष्णाच्छत्रक (Agaricus Compestris) कहते हैं। दूसरे खण्ड मे कृष्णाच्छत्रक का प्रकरण देखिये।

छत्री की सु भ, ढिगरा, गुच्छीआदि कई जातियाँ हैं। जिनमे कुछ विपाक्त और कुछ निर्विप होती है। अनजान मे विपाक्त छत्री का शाक खा लेने से वेहोशा, उदराध्मान, वमन, उन्माद आदि लक्षण होते है।

इसकी एक विदेशी जाति होती है, जिसे यूनानी मे गारीकून-सफेद हि०—जगली वलगर, कीआईन, अग्रेजी मे०—लार्च ऐगरिक (Larch Agaric) पर्जिग या व्हाईट ऐगेरिक purging or White Agaric) तथा लेटिन में अगारिकस एल्वस (Agaricus Albus) कहते हे। गारीकून यह एक क्षुद्र परगश्रयी वनस्पति है। इसकी उत्पत्ति के विषय मे यूनानियो मे वहुत मतभेद हे। इसे कोई गूलर,अजीर आदि के पुराने वृक्षा का जडो मे पैदा होना, तथा कोई गार वृक्ष की जड या जड मे पैदा होना इत्यादि मानते हैं।

इसकी उत्पत्ति, दक्षिण और मध्य यूरोप मे पुराने चीट के वृक्षो पर होती है। ऐसा बहुमत है। बाजारो मे इसके चिकने, हलके, श्वेत रग के, ततुल एव स्पज जैसे टुकडे प्राप्त होते हैं। स्वाद मे ये प्रथम मधुर, पीछे कुछ कडवे एव चरपरे से मालूम देते हैं। जो श्वेत वर्ण के हलके (जल मे भी न डूवने वाले), मुलायम तथा स्वाद मे मधुर, तिक्त न हों, या काले रग के हो वे औपधि-कार्य मे नहीं लिये जाते, वे प्राय विपाक्त होते हैं।

सर्व साधारण छत्री प्राय सर्वत्र वर्षा काल मे पैदा होता हे। किन्तु उत्तम प्रकार की छत्री पजाव, काश्मीर आदि पहाडी प्रदेशो मे ही पाई जाती है।

नाम

स०—भूमि छत्रक, संस्वेदज, शिलिंध्रक। हि०—छत्री, कुकुरमुत्ता, सांप की छत्री, खुमी, भुई फोड़, छत्तौना इ.। म०—अलम्बे। गु०—बिलाडीनो टोप। बं०—कोड़क छाता, छात्रकुड़, छातोना,। अं०—मश्रूम [Mushroom], फंगाई [Fungai]। ले०--पोलिपोरस आफिसिनेलिस।

रासायनिक संघटन—

इसमे (Resin) राल, तथा एक प्रभावशाली, अत्यत सूक्ष्म, श्वेत, चमकीला, रवेदार अगेरिकिन (Agaricin) नामक सत्व पाया जाता है। यही सत्व गारीकून मे भी होता है।

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग —

गुरु, स्निग्ध, मधुर, विपाक मे मधुर, शीतवीर्य, वात पित्त-शामक, कफवर्धक, प्रतिश्याय-कारक, वाजीकर, वृहण, एव वल्य है।

पुआल मे उत्पन्न छत्रक-रस एव विपाक मे मधुर रूक्ष तथा दोप-नाशक है। ईख का जड मे उत्पन्न छत्रा मधुर, अनुरस मे कपाय, कटु व शीतल है। गोमय-गोबर जन्य छत्रक गुण मे उक्त इक्षुक-छत्रक जैसा ही किंतु उष्ण, कपाय तथा वातकारी है। वास लकडी से उत्पन्न छत्रक कसैला तथा वातप्रकोपक, और भूमि मे उत्पन्न-भारी, विशेष वातल नही होता। भूमि के गुणानुसार ही इसके गुण धर्म होते है। (सु सू अ ४६)

वैसे तो सब प्रकार के सस्वेदज शाक–शीतल, दोष-कारक, पिच्छिल, गुरु तथा वमन, अतिसार, ज्वर एव कफ-सम्बन्धी रोगो को उत्पन्न करने वाले होते है। किन्तु जा छत्रक श्वेतवर्ण के पवित्र स्थान तथा पवित्र

HOLOSTEMMA RHEEDII (SPR)

श्वेत या हलके गुलावी रग के, सुगधित, छत्री जैसे तुर्रेदार होते हैं। पुष्प का मध्य भाग मीठा होने से, वालक इसे खाया करते है।

फली या डोंडी—आक की डोडी जैसी, प्राय सयुक्त २-२ लगती है। नोकदार होती, तथा भीतर मुलायम कपास सा होता है, जो डोंडी के पककर फूटने पर हवा मे चारो ओर उडने लगता है। डोडिया ४-५ इञ्च लम्बी, आयताकार होती है। कच्ची, कोमल डोडियो का शाक बनाया जाता है। यह शाक दक्षिण भारत मे प्राय लोकप्रिय है। डोडी मे बीज पतले, लम्बे भूरे रग के होते है।

मूल या जटो की छाल मोटी खाकी रग की होती है।

यह लता भारत के दक्षिण प्रान्तो मे विशेषत कोकण, गुजरात आदि मे तथा हिमालय के प्रदेशो मे और वर्मा मे बहुत पैदा होती है।

नोट—इस लता के प्रायः सर्वाङ्ग मे दूध होने से यह छिर (क्षीर) वेल कहाती है।

इस लता के ही सदृश और एक लता होती है, जिसे विष दौडी, भुईदारी आदि तथा लेटिन मे—टायलोफोरा फयासि क्युलेटा (Tylophora Fascı Culata) कहते है। यह जहरीली होती है, तथा चूहो को मारने के लिये इसका प्रयोग होता है। छिरवेल के स्थान मे इस विषैली लता का प्रयोग न होने पावे, इसका ध्यान रखना आवश्यक है।

नाम--

सं०—अर्कपुष्पी, शीतला इ०। हि०—छिरवेल। म०—दुदुरली, शिरदौडी, दुलदुली, दुदोली इ०। गु०—खरखेर। ले०—होलोस्टेमा रेडी, एस्लेपियासएन्युलेरिस (Aselepias Annularis)।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, पत्र, दूध एव पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग

मधुर, शीतवीर्य, आत्र-सकोचक, धातुपरिवर्त्तक, मूत्रल, शोथनाशक, तथा प्रमेह, अश्मरी आदि मूत्र सम्वन्धी विकारो पर इसका विशेष उपयोग होता है।

(१) पूयमेह (सुजाक) पर—इसकी मूल का क्वाथ सिद्धकर उसमे जीरा तथा मिश्री का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से, मूत्रनलिका की जलन दूर होती, तथा मूत्र साफ होता है। अथवा—

इसकी ताजी जड या उसके शुष्क चूर्ण को ३ माशा की मात्रा मे गोदुग्ध में पीस छानकर, दिन मे दो वार १४ दिन तक पिलाने से पूर्ण लाभ होता है।

(२) शुक्रमेह या स्वप्नदोप आदि वीर्य-विकारो पर—मूल के साथ श्वेत सेमर कद को पीसकर ६ मा० तक की मात्रा मे, दूध और शक्कर के साथ दिन मे दो-वार ७ दिन पिलाते है।

(३) अश्मरी पर—मूल या इसके काण्ड को पीसकर गोदुग्ध के साथ नित्य प्रात ३ दिनो तक देने से दाहयुक्त पथरी विदीर्ण होकर निकल जाती है।
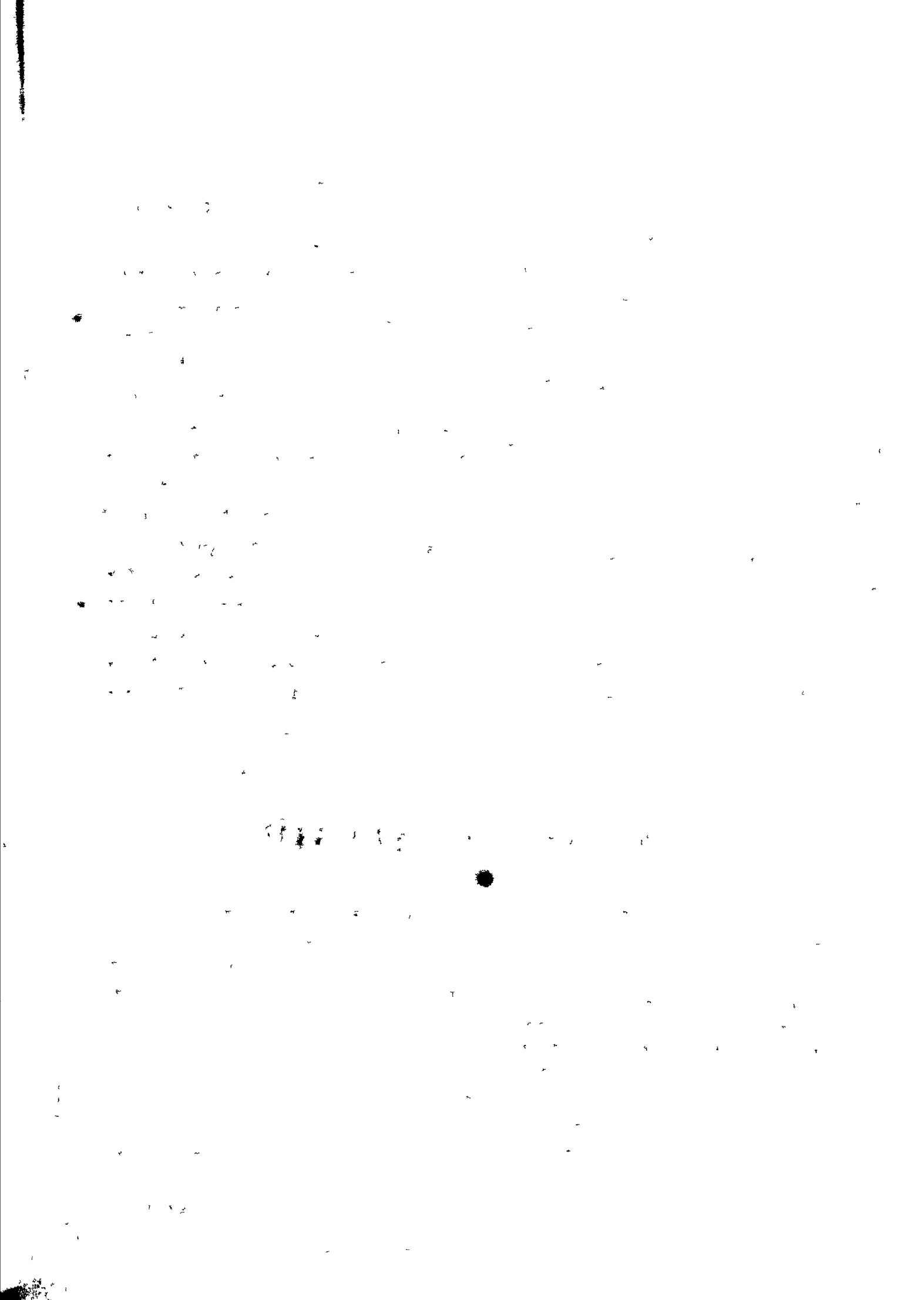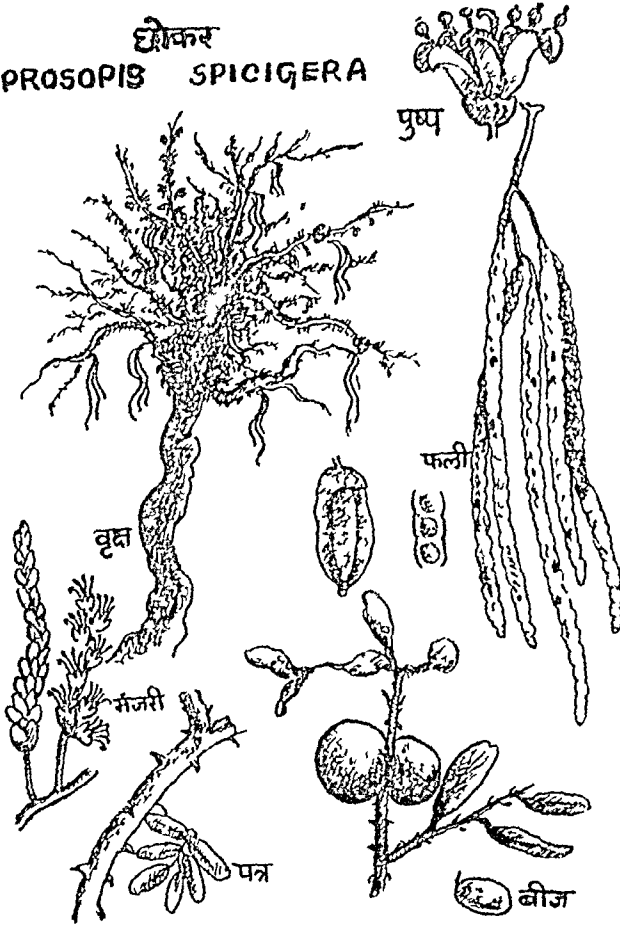
उत्तर-प्रदेश एव पजाव मे छोटीशमी (छोकर) ही विशेप होती है।

नाम–

सं.-शमी (शामक गुण विशिष्ट होने से), तुंगा, केशहन्त्री, शिवाफला, मंगल्या इ.। हि.-छोंकर, छिकुर, खेजड़ा, जाट, जड, सफेद कीकर, इ.। म.-शमी, सवंदड शवरी। गु-खीजडो, समड़ी। व.-शमी, शांई। अं'-स्पंज ट्री (Spung tree) ले.-प्रासोपिस स्पेसिजेरा।

रासायनिक सघटन

इसकी फली मे पिच्छिल द्रव्य के अतिरिक्त केरोबीन (Carobin) केरोवोन (Carobone), केरोविक एसिड (Carobic acid) पाये जाते है। शाखाओ मे शर्करा सदृश एक पदार्थ, तथा बीज मे एक पीत रजक द्रव्य होता है।

प्रयोज्य अ ग—छाल, फली व पुष्प-पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग

गुरु (छोटी शमी लघु), रुक्ष, कपाय, मधुर, विपाक मे कटु एव शीतवीर्य, कफपित्त-शामक, रोचक, स्तभन या ग्राही (इसकी फली किंचित् उष्णवीर्य होने से रेचक होती है, किंतु यह भी प्रभाव मे अतिसार-नाशक है) तथा भ्रम, मस्तिष्क-दौर्बल्य, अरुचि, अतिसार, प्रवाहिका (प्रवाहिका मे विशेप लाभ नही), अर्श, कृमि, रक्तपित्त, एव त्वचा के विकारो मे इसका प्रयोग होता है।

शमीर या छोटी शमी—कपाय, रुक्ष, शीत, लघु, रक्तपित्त, अतिसार, अर्श, कुष्ठ, श्वेतकुष्ठ, श्वास और कफनाशक है।

फली–गुरु, पित्तजनक,तीक्ष्ण, रुक्ष, मेध्य बुद्धिवर्धक, केशनाशक है। कच्ची फली ग्राही होने से अतिसार रोगी को पथ्य है। इसका शाक अग्निदीपक एव रुचिकर होता है।

छाल–रुक्ष कपाय, कटु, चरपरी, शीतल, कृमिनाशक आमवात, अतिसार, वातनलिकाप्रदाह, श्वास, अर्श, मस्तिष्क-विकृति, मन्याकम्प आदि विकारो मे उपयोग होता है।

(१) विच्छू के दश पर–छाल को पीस कर लेप करते है।

(२) जगम-विप पर–छाल के साथ नीम की तथा वरगद (वट) की छाल पीस कर लेप करते है। सर्प-विप पर–अन्तर छाल का रस पिलाते है। वमन द्वारा विप निकल जाता है।

पत्र–ग्राही एव विवन्धकारी है।

(३) अतिसार पर—पत्तो के साथ इसकी अ तर-छाल और थोडी कालीमिर्च मिलाकर पीसकर १-१ मासे की गोलिया वना जल के साथ सेवन कराते है।

(४) मूत्रकच्छ्र या मूत्रावरोध पर—पत्रो को पीस कर लुगदी वना किंचित् गरम कर नाभि-स्थान पर वाधने से मूत्र प्रवृत्त हो जाता है। तथा रोगी को पत्र-रस मे जीरा-चूर्ण और मिश्री मिलाकर पिलाते है। ७ या १४ दिन मे गरमी के विकार दूर हो जाते है।

प्रमेह पर—इसके १ तोला कोमल पत्तो के साथ ३ मा जीरा मिला, महीन पीस कर १ पाव कच्चे ताजे गो-दुग्ध मे मिला छान कर उसमे गुडहल का जड आधा

Fordii) नामक वृक्ष भी इसी की जाति का है। टाग-तेल का प्रकरण देखें।

नाम—

हि०-जंगली अखरोट, अपोला। म०-रान अक्रोट। बं०-अकोला। अं०-इंडियन वालनट (Inbian Walnut) फिलवर्टस (Filberts), क्याडल नट (Candle nut)। ले०-अल्यूराइटिस मोलुकाना, अल्यूट्रायलोवा (A (Triloba)।

रासायनिक संघटन—

फल की गिरी एव वीज मे—चर्वी, खनिज-द्रव्य, सेल्यूलोज (Cellulose), एक स्थिर तैल जिसमे ओलीन (Oleine), मिरिस्टिन (Myristin), पालमिटिन (Palmitin), स्टीरीन (Stearin) एव रेचक तत्त्वयुक्त चरपरा राल जैसा पदार्थ होता है। फल की राख मे—चूना, मेग्नेसिया, फास्फर आदि द्रव्य पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—फल की गिरी, और तैल। तैल को काकमी या काकुने तैल कहते है।

गुणधर्म व प्रयोग—

गिरी मीठी, कसैली, शीतल, कामोद्दीपक, पौष्टिक, कफनिःसारक, विबन्धकारक, क्षुधावर्धक, कफपित्तवर्धक, वातनाशक, तथा दाह, हृदय-रोग, यकृत-विकार मे उपयोगी है।

इसके तैल का गुण रेडी-तैल जैसा किंतु श्रेष्ठ है। इसमे दुर्गन्ध नही होती, सुस्वादु होता है, तथा इसके विरेचन मे वमन की प्रवृत्ति नही होती, जी नही मिचलाता। विरेचनार्थ यह तैल २॥ से ५ तो० तक दिया जाता है।

अर्श पर—इसकी गिरी के कल्क को तिल-तैल मे मिला गुदा मे रखने से या गुदा मे लगाने से अर्श की पीडा दूर होती है।

जङ्गली अदरख (Zingiber Lassumunar)

हरीतक्यादि वर्ग एव हरिद्राकुल (Scitaminaceae) के इसके पौधे या क्षुप आमा हल्दी के क्षुप जैसे, पत्ते खूब लम्बे २॥ फुट तक, और ५-६ इञ्च चौडे, नोकदार होते हैं। मूल या गठाने बागी अदरख या हल्दी की गठानो जैसी, जिसमे कपूर और जायफल के मिश्रण जैसी तीव्र गन्ध, स्वाद मे चरपरी, कुछ कडुवी, किन्तु सूखने पर स्वाद व गन्ध मे न्यूनता होता है।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र होती है, तथा इसके उपयोग बागी अदरख जैसे ही होते है। चित्र अदरख मे देखे।

नाम—

सं०-वन आर्द्रकम्, अरण्यार्द्रका। हि०-जंगली अदरख, वन आदा। म०-रान आलें, मालाबारी हलद, नसा। अं०-वाईल्ड जिंजर (Wild ginger)। ले०-जिजवर के सुमुनार, जिं० परिपुरियम (Z Purpureum), जि० क्लिफारडाय (Z Cliffordii)।

रासायनिक संघटन—

इसकी गाठो मे, जगली हल्दी की अपेक्षा अधिक पिच्छिल द्रव्य एव शर्करा होती है। तथा एक उडनशील तैल, वसा मृदुराल, क्षार, स्टार्च, अल्ब्युमिनाईडस आदि पाये जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग—

दीपन, पाचन, क्षुधावर्धक, उत्तेजक, तथा अतिसार, शूलादि मे इसका विशेष उपयोग किया जाता है। अन्य गुणधर्म बागी अदरख जैसे ही हैं।

जीर्ण त्वग्विकारो मे इसे रीठा और गोमूत्र में उबाल कर लेप करते और फिर स्नान करते हैं।

शरीर के किसी स्थान पर सज्ञाशून्यता होने पर इसे काली मिर्च के साथ पीस कर लेप करते हैं।

अतिसार पर—इसके साथ धनिया मिला क्वाथ बना कर सेवन कराते है।

पीले रंग के, फल—ग्रीष्मकाल मे, लम्बागोल, कमला-नीबू जैसे या बडी मटर जैसे, पाच गहरी सधियो एव कोपो वाले नारगी रग के, पकने पर साधारणत काली मिर्च जैसे हो जाते है।

यह हिमालय के प्रदेशो मे ५ हजार फीट की ऊचाई पर, कुमाऊ, भूटान, खासिया पहाडी, तथा पश्चिम नीलगिरी एव दक्षिण भारत के कोकण, मद्रास, सीलोन आदि के झाडीदार जगलो मे विशेष पाया जाता है।

जगली काली मिर्च
TODDALIA ASIATICA LAM

नाम—

स.—कंज, कांचन फल। हि.-जगली कालीमिर्च,कंज म.-लिमरी, सेंगर, रानमिरवेल। व.-कांचन, दाहन, कडातोडाली। ले.-टोडेलिया एक्युलियेटा, टो. एसिया-टिका (T Asiatica), टो. रुबिकालिस (T Rubicaulis) टो. नायटिडा T Nitida); स्कोपोलिया एक्युलीटा (Scopolia Aculeata)

रासायनिक संघटन—

दारुहल्दी मे पाया जाने वाला बरबेराइन (Berberine) नामक एक मुख्य प्रभावशाली कटु तत्व इसमे अल्प प्रमाण मे होता है, तथा राल, उडनशील तैल, नीबूकाम्ल (Citric acid) पेक्टीन (Pectin) स्टार्च आदि पाये जाते हे। पत्रो का वाष्पीकरण यन्त्र द्वारा जो पीताभ हरित वर्ण का तैल निकलता है उसमे सायट्रान (Citron) जैसी तीक्ष्ण सुगन्ध होती है।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्णवीर्य, तिक्त, कटु, दीपन, उत्तेजक, वातनाशक स्वेदजनन, पार्यायिक (विषम) ज्वर-प्रतिबन्धक, सुगंधित पौष्टिक है।

मूल की छाल और पत्र का फाट या टिंचर उत्तेजक, पौष्टिक, दीपन, वात एव आध्माननाशक, स्वेदल तथा ज्वरहर है। मलेरिया ज्वर मे यह कुनेन से भी बढिया कार्य करता है। अधिक मात्रा मे देने पर भी यह कुनेन जैसा कोई नुकसान नही करता।

इसके प्रयोग से जो पसीना आता है, उससे रोगी को थकावट या ग्लानि नही होती, प्रत्युत उत्तेजना प्राप्त होती हे। इसके मूल का चूर्ण १॥ तो की मात्रा मे लेकर २५ या ३० तो उबलते हुए पानी मे डालकर, ढाककर १० मिनट बाद छानकर, २॥ तोला से ५ तो की मात्रा मे दिन मे २-३ बार दिया जाता है।

सधिवात पर—इसके पत्तो के साथ इसकी मूल को पीस कर, तैल मे पकाकर मर्दन करते है।

आन्त्रपीडा पर—इसके ताजे कोमल पत्र चबाकर खाते हैं। या पत्तो की लुगदी मे शहद मिला कर सेवन करते है।

इसके कच्चे फलो का अचार बनाया जाता है। यह वातनाशक होता है।

जगली काहू दे०—काहू मे। जगली कासनी दे०—हुवल। जगली कुलथी दे०—चाकसू मे। जगली कु वार दे०—कण्टला। जगली केला दे०—केला मे। जगली खजूर दे०—खजूरी। जगली गाजर दे०—दुकू।

जंगली घुइयां (अरवी) (Colocasia Antiquorum)

सूरण कुल (Araceae) की इस घुइया के क्षुप, पत्रादि ग्राम्य घुइया के जैसे ही होते हे। यह वर्षाकाल मे खूब पैदा होती है। यह भी श्वेत और काली भेद से दो प्रकार की होती है।

नाम—

सं०-कच्छु। हि०--जगली घुइया, काचू इ०। म०--रान आलूं, सेरे अलूं। वं०--कचू। ले०-कोलोकेसिया एंटिकोरम।

गुण धर्म और प्रयोग—

अतिशीत वीर्य, रक्त-स्तम्भक, उत्तेजक, तृप्तिकर है। इसका रस त्वचा मे लगने से छाले व जलन पैदा होती है। काली ज० घुइया–रुचिकर, मुख-जाड्य-नाशक है। इसका रस मूत्र-विरेचक तथा अर्श पर हितकर है।

पशुओ के क्षत या व्रणो पर—मक्खी या कृमि के निवारणार्थ इसके कन्द को जल मे पीस कर लगाते है। यदि व्रण दूपित हो गया हो, तो कन्द को चारे मे मिला कर खिलाते है।

विच्छू के दश पर—कन्द को पीसकर लगाते है।

जगली घुइयां
COLOCASIA ANTIQUORUM SCHOTT

जगली चिकोडा–दे०–कडवी परवल। जगलीचचेडा–दे०–चचेडा (जगली)। जगली चोपचीनी–दे०–जगली उगवा। जगली जमालगोट (जयपाल)–दे०– दन्ती।

जंगली जायफल (*MYRISTICA MALABARICA*)

जातीफल कुल Myristicaceae के जायफल की ही जाति का यह वृक्ष, जायफल के वृक्ष जैसा ही होता है। इसका फल जायफल की अपेक्षा मोटा और लम्बा होता है, किन्तु इसमें सुगन्ध अत्यल्प तथा तैल भी थोडा होता है। इसे कोई-कोई रामफल कहते है। फल या बीज के ऊपर जो पीताभ-कृष्ण वर्ण का कोषावरण या छिलका होता है, तथा जो सूखने पर पृथक हो जाता है, उसे रामपत्री या वम्वई की जायपत्री कहते है। इस पत्री मे भी विशेप सुगन्ध या स्वाद नही होता।

ये वृक्ष कोकण, मलावार तथा कनारा मे विशेप
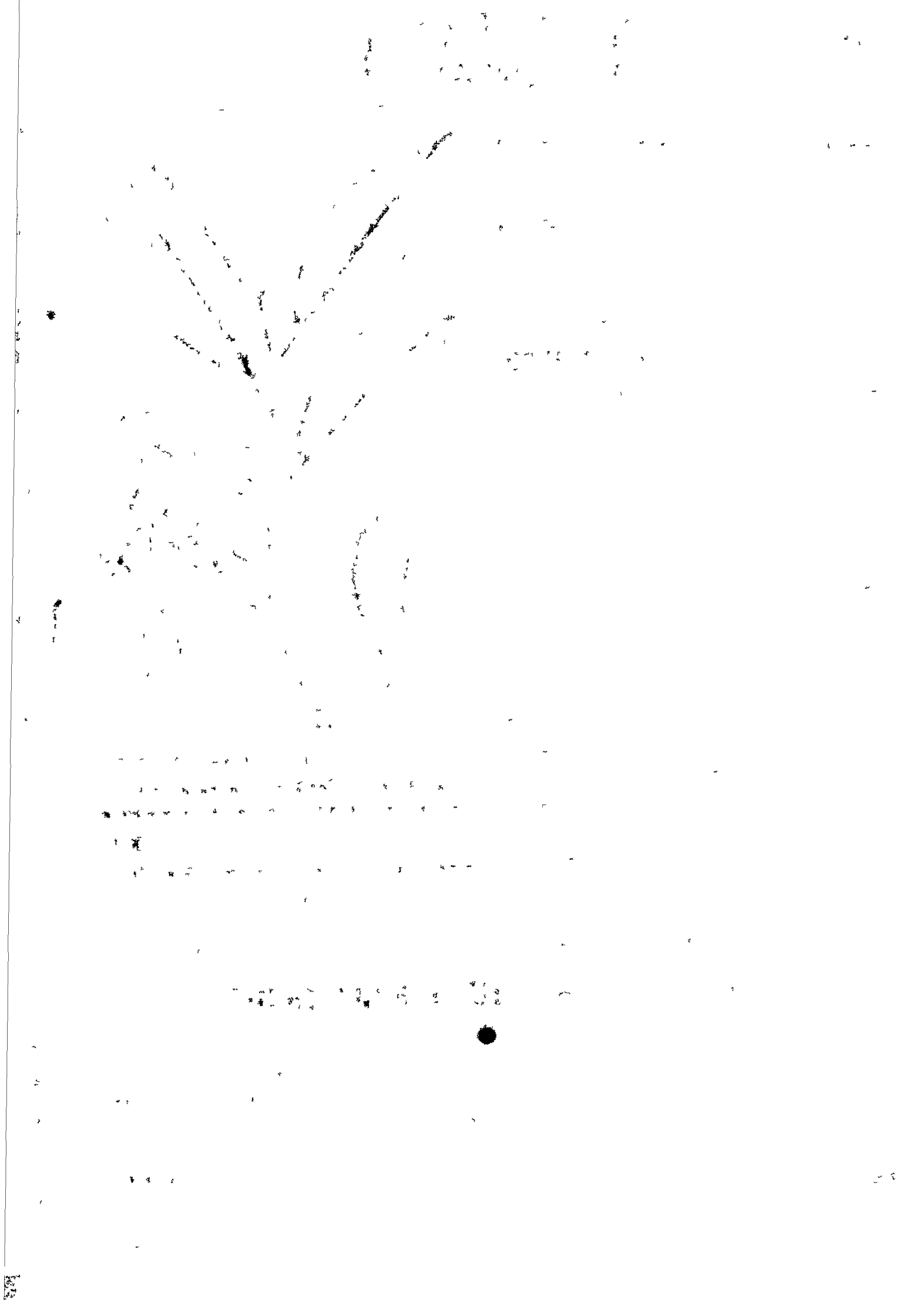
पुष्प आते हैं। पश्चात् मूल स्थान मे ही उसके पत्र ६ से १८ इंच लम्बे, साधारण प्याज के पत्र से बड़े, चौड़े, चिपटे, रेखाकार एव नोकदार, एक इंच तक चौड़े, गहरे हरे रग के आते है। पुष्प-वृन्त—१ से १॥ इंच होता है। बीजकोष या डोडी—वर्षाऋतु मे, ½ से ¾ इंच लम्बी, त्रिकोष्ठीय, अण्डाकार, दोनो ओर को क्रमश पतली, प्रत्येक कोष्ठ मे छोटे, गोल चिपटे, काले रग के ५ से १० तक बीज होते हैं।

कन्द—हलके रग का, २ से ४ इंच लम्बा, लट्वाकार, बल्ब जैसा, स्वाद मे अतिकडुवा होता है। ये भारतीय ज प्याज के कन्द विलायती प्याज (यह भूमध्य सागर के तटवर्तीप्रदेशो मे होता है) (urgineascilla) की अपेक्षा छोटा तथा बाहर से मटमैले रग का, भीतरी मासल छिलके मुडे हुए, चिपटे, विभिन्न आकार के ½ से २ इंच लम्बे, दोनो ओर को क्रमश पतले होते हुए, कभी कभी ३-४ एक साथ, काण्डक से चिपके हुए, हलके पीताभ बादामी या हलके पीले विभिन्न वर्ण के होते है। ये छिलके शुष्क अवस्था मे भगुर एव सहज ही मे चूर्ण बनाने लायक, किन्तु आर्द्र या गीले होने पर चिमडे एव लचीले होते है। इनमे कोई विशेष गन्ध नही होती, किंतु स्वाद मे अत्यन्त तिक्त होते है।

ये भारतीय ज प्याज के कन्द, उक्त विदेशीय वन पलाण्डु की उत्तम प्रतिनिधि औषधि हैं। औषधिकार्यार्थ प्रथम वर्ष के नीबू के इतने बडे कन्दो को लेना ठीक होता है। प्रथम वर्ष मे जैसे ही यह पुष्पित होता है वैसे ही उसी समय इसके कोमल कन्दो को निकाल कर तथा ऊपर के पतले छिलको को लेकर (तथामध्य भाग को दूर कर) टुकडे कर सुखाकर शुष्क स्थान मे, खूब अच्छी तरह डाट बन्द शीशियो मे रखना चाहिए। अन्यथा आर्द्र वायुमण्डल मे खुले रहने से ये टुकडे चिमडे हो जाते है, तथा चूर्ण की लुगदी बध जाती है।

इसके पौधे पश्चिमी हिमालय प्रदेश मे ७००० फुट की ऊंचाई तक तथा गढवाल, कुमायू, बिहार, मध्य-भारत, छोटानागपुर, राजपूताना, गुजरात, काठियावाड, शिमला, सहारनपुर, पजाब, सीमाप्रात, बगाल एव

जंगली प्याज
URGINOEA INDICA KUNTH
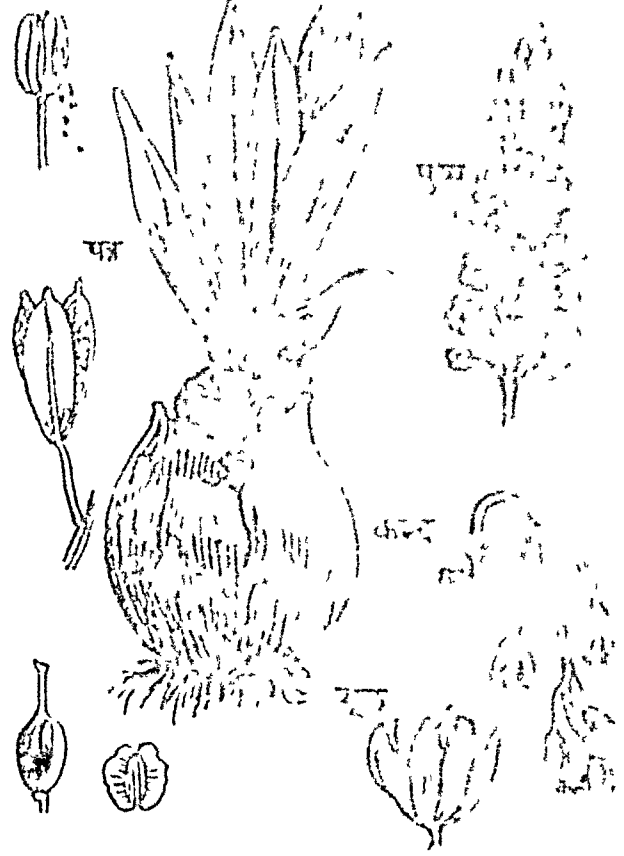
दक्षिण मे कोकण तथा कोरोमण्डल के वालुकामय समुद्री तटो पर, पश्चिमी घाट के किनारे किनारे रेतीली भूमि मे प्रचुरता से पाये जाते हैं।

नोट—उक्त प्याज की ही एक किस्म, जिसे हि०, बं—सुफेदीखस, म —मुईकांदा तथा ले —सिल्ला इंडिका (Scilla Indica) कहते हैं। कोंकण से दक्षिण की ओर समुद्र किनारे रेतीली भूमि मे पैदा होता है। इसे छोटा जं प्याज भी कहते हैं। इसके सदृश ही इसकी एक उपजाति सि. होहेनचेरी (S Hohenacheri) पंजाब में मिलती है। इन दोनों के कंद श्वेताभ बादामी, परवलदारबल्बजैसे,जायफल के इतने बड़े, गोल अंडाकार बगल में कुछ दबे हुए से होते हैं। इनके मासल छिलके बहुत चिकने तथा किनारे पर परस्पर ढके रहने के कारण एक ही मालूम देते हैं।

गुण की दृष्टि से उक्त सब ज प्याज एक समान है। बाजार मे इन सब का मिश्रण ही मिलता है।

निवारणार्थ कन्द को कुचल कर तथा आग पर खूब गरम कर उस पर पैर रखकर जोर से दबाये। ऐसा ७–८ बार करने से लाभ होता है। पैर के तलुवों की जलन दूर करने के लिये, ताजे कन्द को जलन-स्थान पर लगाते है। पादकटक पर यदि उक्त प्रयोग न किया जा सके तो इसके कद को पकाकर, पीसकर गरम-गरम बाध दिया करे। मस्सो (Warts) पर इसके चूर्ण को मलते है।

नोट—मात्रा–चूर्ण आधी से डेढ़ रत्ती। पानक या शर्वत ३०-६० बून्द। सुरासव या टिंचर ५-३० बून्द।

ध्यान रहे यह साधारण प्याज से अधिक वीर्यशाली है। विशेषत मूत्रजनन और कफनिःसरण कार्य इसमे अधिक होता है। तथापि यह उन समस्त विकारो मे गुणदायक है, जिनमे साधारण प्याज का उपयोग होता है। यह वैसे खाने के काम मे नही आता।

उष्ण-प्रकृति वालो को तथा अन्न-नलिका के क्षोभ की दशा मे, तीव्र वृक्क-रोग मे, तीव्र कास मे कफ के आशुकारी रोगो मे एव वमनार्थ भी इसका प्रयोग करना चाहिये। हानि-निवारणार्थ–मिश्री एव सिकजवीन दी जाती है।

विशिष्ट योग—

(१) सिर्का वनपलाडु—इसके १ भाग चूर्ण मे चौगुना सिर्का या १० भाग एसेटिक एसिड का घोल मिला कर ७ दिन बाद छानकर रख ले। मात्रा–५-१२ बून्द। एसिड एसिटिक १ भाग मे ४ भाग जल मिलाकर तथा ७ दिन बन्द रखकर छान लेने से यह घोल तैयार होता है। इस घोल मे १ भाग वनपलाण्डु का चूर्ण मिला देने से उत्तम सिर्का तैयार हो जाता है। यह कफघ्न है।

(२) शर्वत वनपलाडु—उक्त सिर्का वनपलाडु १७॥ भाग मे शक्कर ६५ भाग तथा पानी ७॥ भाग मिला १०० भाग पूरा कर शुद्ध लोह पात्र या एनेमल के पात्र मे, मदाग्नि पर शर्वत की चाशनी तैयार कर ले। या २॥ गुना शहद मिला ले। मात्रा–३० से ६० बून्द, या ½ से १ ड्राम तक, यह बालको के कफ-विकारो मे बहुत दिया जाता है। बच्चो के जीर्ण कास पर यह १०–१५ बूद की मात्रा मे देते है।

(३) आसव या टिंचर वनपलाडु—इसके [illegible] कन्द को शुष्क कर, जौकुट चूर्ण कर ८ भाग मे [illegible] स्पिरिट ५० तो० मिला, ७–८ दिन तक [illegible] शीशी मे रखे। फिर [illegible] छानकर शीशियों मे भरकर रखे। मात्रा– १० से ३० बून्द तक बच्चों को [illegible]। यह चूर्ण [illegible] जाता है, कफप्रधान [illegible]। [illegible] प्रतिश्याय, श्वास, [illegible] मे भी लाभदायक है।

(४) अवलेह न० ५०—[illegible], [illegible] (इसका वर्णन व० वि० भा० १ मे देखे) ७–७ मा० सैंधा नमक ४॥ तो० अर्क (आदा) [illegible] ?॥ तो० और अफीम ७ मा० [illegible] उसमे सबका ३ गुना शहद मिला रखे। मात्रा १ मा० [illegible] दिया जाता है।

वटिका व० प०—कन्द पर गेहूँ का आटा लपेट कर कण्डो की गरम भूभल मे रखें। पक जाने पर आटा उतार कर भीतरी नरम भाग निकाल ले, तथा उसके समभाग मटर का आटा मिलाकर पीस ले और थोडी मात्रा मे शराब मिला, गुलाब तैल के योग से टिकिया बना ले। दो मास बाद प्रयोग करे, किन्तु ४ मास के पश्चात् प्रयोग न करे। जलोदर, श्वास तथा विषो को नष्ट करता है। इसे 'कुरस असकील' कहते है—(यूनानी चि० सा०)

(५) डॉ० गुय की गोली या पिल्युमी डिजेटलिस कम्पोजिटी (Pl Digit. Co)—इसमे कन्द का चूर्ण, डिजिटेलिस चूर्ण और पारद वटी कल्क इन तीनो को १–१ ग्रेन लेकर, गोली बनने लायक शर्वत मिला लेते है। यह १ गोली हुई। इस प्रकार गोलिया बना, मात्रा १ से २ गोली। यह हृदय-विकार-जन्य शोथ पर उत्तम कार्य करती है। मूत्रल है।

पारद-वटी-कल्क का योग इस प्रकार है—शुद्ध पारा १ भाग, गुलकन्द १॥ भाग तथा मुलैठी चूर्ण ½ भाग एकत्र खूब खरल कर रक्खे या गोली बनाले। मात्रा–४ से ८ ग्रेन (विशेषत विरेचनार्थ)। इस कल्क मे

कुदा, गुं० बदाम । अं०—पून ट्री, वाइल्ड आलमांड (Poon tree, wild almond) । ले०—स्टरकुलिया-फिटीडा ।

इसके बीजो मे एक स्थिर तेल प्र० श० ४० होता है । बीजो को कूटकर पानी मे उबालकर यह तेल निकाला जाता है । यह तेल—गाढा, कुछ लारिक एसिड (Lauric acid) युक्त होता है । तेल के अतिरिक्त बीजो मे स्टार्च आदि होते है ।

प्रयोज्य अङ्ग—छाल पत्र और तेल ।

छाल व पत्र-स्वेदल, मूत्रल एवं मृदुरेचक है । आध्मान आदि उदर रोगों मे तथा आमवात मे भी उपयोगी है ।

पसीना लाने के लिए [illegible] दिया जाता है । खुजली आदि चर्म रोगों मे इसका कल्क लगाया जाता है ।

इसका तैल—साधारण मृदुरेचक [illegible], शान्तिदायक, कृमिनाशक है । [illegible] पर इसका मलहम बनाकर लगाते है ।

इसके बीजो को अल्पमात्रा मे, निगल जाने पर वमन तथा सिर मे चक्कर आने लगते है । ये बीज भून कर खाये जाते है ।

जगली भिंडी दे०—भिंडी मे ।

जगली मटर दे०—मटर मे ।

जंगली मदन मस्त[1] (Cycas Circinalis)

मदन कुल (Cycadaceae) के इसके खजूर जैसे वृक्ष सदैव हरे भरे रहते है । पत्र—वृक्ष के अग्रभाग पर १५ से २५ से मी तक लम्बे, फल—मुर्गी के अण्डे जैसे लम्बगोल पीले या नारगी रग के होते है ।

ये वृक्ष भारत के दक्षिण मे मलाबार के किनारे, तथा पश्चिम मद्रास की शुष्क पहाडियो पर, और ब्रह्मा, मलायाद्वीप, अण्डमान निकोबार मे अधिक पाये जाते है । भारत के बागो मे भी कही २ लगे हुए देखे जाते है ।

नाम–

हि०—जगली मदन मस्त, वजरबट्टू । म०-पहाडी मदन मस्त, मलाबारी सुपारी । ले०—सायकस सिरसिनेलिस, सा० इनरमेस (C Inermes) ।

[1] **जंगली सूरन (जिमीकंद) को भी मदनमस्त कहते हैं किंतु यह उससे भिन्न है ।**

रासायनिक संघटन—

वृक्ष की शुष्क गाठो मे अधिक पिच्छिल द्रव्य तथा पेकोसिन (Pakocin) नामक ग्लुकोसाईड होता है, जो कुछ निद्राजनक होता है ।

इस वृक्ष का गोद, कतीरा गोद जैसा होता है, जिसमे एक प्रकार का साबूदाना या पिष्टमय पदार्थ होता है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह उत्तेजक, कामोद्दीपक, व निद्राजनक है । इसका गोद दूषित व्रणो पर लगाते हैं, जिससे व्रण शीघ्र ही पक जाता है । इस वृक्ष की गठानो को पानी या चावल के धोवन के साथ पीस कर फोडो, शोथयुक्त-ग थियो पर लगाते है ।

गठानो को तथा गोद को पीसकर उसमे शक्कर आदि मिलाकर पाक आदि बनाते हैं, जो बल-वीर्य की वृद्धि करने वाला एव कामोद्दीपक होता है ।

जगली मू ग दे०—वनमू ग । जगली मूली दे०—कुकरोधा । जगली मेथी दे —वनमेथी । जगली मेहदी दे —दादमारी । जगली लवडर दे०—उस्तेखद्दूस । जगली सन दे०—झुनझुनिया । जगली सरसो दे०—खूबकला । ज० सूरण दे०—जमीकन्द (जगली) । जगली हल्दी दे०—आमाहल्दी । जगली हुलहुल दे०—हुलहुल । जगी हड दे०—हरड मे । जगेला दे०—जमरासी । जड दे०—छोकर । जबीरो नीबू दे०—नीबू मे । जबू दे०—जामुन । जशियाना दे०—जिंतियाना । जई दे०—आत जौ (Avenasaliva) और ओट धान्य ।
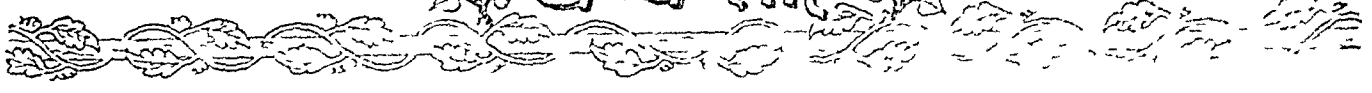
औषधिकार्यार्थ इसे ताजी लेनी चाहिये बहुत दिनो की पुरानी बेकार होती है। एक तो यह वैसे ही ऊपर-ऊपर की खोदी हुई बाजारो मे मिलती है, फिर पसारियो के यहा बहुत दिन पडी रहने से भी बेकार हो जाती है। पहाडी लोग बर्फीली शीत के कारण इसे प्राय अच्छी तरह खोदकर नही निकालते।

गुण धर्म व प्रयोग —

लघु, तीक्ष्ण, स्निग्ध, तिक्त, कषाय, मधुर, कटु-विपाक, शीतवीर्य। प्रभाव—मानसदोषहर (भूतघ्न) है। यह त्रिदोषहर, विशेषत पित्तकफशामक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, शूल-प्रशमन, हृदयोत्तेजक, हृद्य, रक्तस्तम्भन, शोथहर, कफनिसारक, मूत्रल, वाजीकरण, आर्त्तवजनन, स्वेदल, कुष्ठघ्न, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन, वेदनास्थापन, वर्ण्य, सज्ञास्थापन, मेध्य है। तथा स्मृतिह्रास, शिर शूल, आमाशयशोथ, यकृच्छोथ, कामला, हृदय-शैथिल्य, रक्तपित्त, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, बस्तिशोथ, जीर्णप्रमेह, नपुसकता, रज कृच्छ्र, गर्भाशय-शोथ, विसर्पकुष्ठादि विभिन्न चर्म रोग और अपस्मार, अपतन्त्रक, मूर्च्छादि आक्षेपयुक्त व्याधियो (जिन मे भूतावेग जैसी चेष्टाए होती है) मे इसका विशेष उपयोग किया जाता है। इसका फाट २॥ से ५ तो० की मात्रा मे दिन मे ३ बार देते है। शोथ, व्रणशोथ, शूल, दाह, वर्ण-विकार आदि मे इसका लेप करते हैं। स्वेदाधिक्य पर अवचूर्णन करते है। हृदय-विकार (हृदय स्पदन, छाती मे बेचैनी आदि) मे इसे १ तो० लेकर ५ तो० उष्णजल मे ४–५ घण्टे भिगोकर, छानकर पिलाते है। इससे सर्वागशोथ मे भी लाभ होता हैं

भूतावेश जैसी चेष्टाओ मे इसका ब्राह्मी-स्वरस, वच, और शहद के साथ सेवन कराते हैं।

हृदय की धडकन, कमजोरी तथा हृद्विकारजन्य उदर मे सचित दोष के निवारणार्थ इसे अन्य उपयुक्त सुगन्ध द्रव्य और नवसादर के साथ सेवन कराते है। इससे रक्त-वाहिनियो का सकोच होकर रक्तपित्त, विसर्प एव रक्तस्राव मे भी लाभ होता है।

विस्फोट एव व्रणो मे इसके लेप से जलन व पीडा की शांति होती है।

झाई–व्यङ्ग आदि त्वग्दोषो मे उबटन के रूप मे इस का व्यवहार करने से त्वचा की कान्ति बढती है।

शरीर के किसी भी भाग मे असह्य वेदना हो, तो इसके १ माशा चूर्ण को शहद के साथ दिन मे २-३ बार चटाते है।

दन्त–शूल मे—इसका मजन हितकारी है। मुख-दुर्गन्ध मे इसे चबाते है। बेहोशी मे इसे पीसकर नेत्रो पर लेप करते है।

दिल या हृदय की धडकन के बढ जाने पर—इसे पानी मे पीसकर लेप करते हैं। यह लेप मस्तक तथा ललाट पर करने से सिर–दर्द मे लाभ होता है।

हृदय और कफ के विकारो पर इसका गाढा शर्बत या अवलेह बना कर चटाते है। कफ की वमन पर—इसे ६ रत्ती की मात्रा मे, पानी के साथ पीस छान कर पिलाते है। नाक से मल-स्राव अधिक होता हो, तो इस के चूर्ण का नस्य देते हैं। कफ या सर्दी के विकारो मे ६ तो. चूर्ण का १½ सेर जल मे अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर उसमे १ सेर तक मधु मिला, थोडा २ सेवन कराते हैं। पित्तज्वर मे इसके कल्क का लेप करते है। भूत, प्रेत पिशाचादि के उपद्रवो की शाति के लिये यह महेश्वरादि धूपो मे मिलाया जाता है।

फाण्ट-विधि—इसका प्रयोग फाण्ट या शीतनिर्यास रूप मे, क्वाथ की अपेक्षा ठीक होता है। क्वाथ करने से इसका प्रभावशाली तैलाश उड जाता है। वह विशेष लाभ-दायक नही रहता। अत —

इसके १ तो चूर्ण को ½ सेर तक खूब उबलते हुए जल मे डाल कर, ढाक कर भर रक्खे। प्रात जल छान कर, थोडा २ दिन मे ४-५ बार पिलावे। अपस्मार, योषापस्मार, उन्माद, चित्तभ्रम आदि मानसिक विकारो पर इसका सेवन लाभकारी है।

(१) योषापस्मार (हिस्टीरिया) पर—

इसका महीन चूर्ण १ से २ मा तक तथा श्वेत वच का महीन चूर्ण ४ रत्ती से १ मा तक मिश्रण कर शहद के साथ दिन मे ३ बार सेवन करा दे। इस प्रयोग से

पर इसके १ पाव (२० तोला) मोटे चूर्ण को १ सेर पानी मे रात के समय भिगो, प्रात मन्द आच पर पकावे। चतुर्थांश पानी शेष रहने पर छानकर उसमे १ पाव तिल तैल मिला दें। फिर ५ तोला जटामासी का कल्क कर उसमें मिलाकर पुन पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रखे।

इस तैल को दिन मे २ बार लगाते रहने से बाल गञ्जा रोग शीघ्र ही दूर होता है। जुये भी नष्ट होते है इस तैल के प्रयोग से केश बढने, मुलायम रहते तथा काले व चमकीले होते हैं।

शरीर पर लगाते रहने से सिध्म, स्याह दाग, झुर्रियां आदि दूर होकर शरीर का रग निखरता है।

(वृ० द०)

अथवा—इसके चूर्ण को ४ गुना तिल-तेल मे ७ दिन तक भिगो रखें। पश्चात् पाताल यत्र से तेल निकाल ले। इसे लगाते रहने से भी बाल काले, लम्बे, तेजस्वी होने व उनका गिरना बन्द होता है।

आगे विशिष्ट योगो मे केश-विलास तैल देखे।

अथवा—मांस्यादि लेप—इसके साथ खरेटी मूल, कमल, आमला और कूठ समभाग लेकर महीन चूर्णकर पानी के साथ इस मिश्रण का बालो पर लेप करते रहने से बालो का गिरना—बन्द होकर के स्निग्ध, लम्बे, घुघराले व काले होते हैं। (भा. भै. र)

पत्र प्रयोग—

(८) [illegible] पर—इसके पत्रो का महीन चूर्ण १॥ से ३ माशा तक शहद मे चटाते हैं। अथवा—इसके २ तोला [illegible] २५ तोले [illegible] मे क्वाथ करे। [illegible] छान कर पिलावें। इस प्रकार [illegible] एव [illegible] शन्नि-[illegible] होता है।

नोट—(1) मात्रा-चूर्ण आधे से २ या ३ माशे तक, [illegible] मात्रा या १ तोला तक।

[illegible] मात्रा में इसके सेवन से पाचन-क्रिया ठीक [illegible] नहीं होती, [illegible] शुद्ध [illegible] में रहती है—[illegible] मात्रा [illegible] और नाडी [illegible] इसका शामक है [illegible]

का उत्साह बढता है। बडी मात्रा लेने से वमन, पेट मे मरोड और रेचन होता व वृक्को में क्षोभ होता है।

हानि-निवारणार्थ—कतीरा, वशलोचन या गुल्न-रोगन का सेवन कराते है।

(२) शराबी को, घाव से या शस्त्र-क्रिया होने पर कभी कभी कम्प होने लग जाता है, तब इसका अर्क या टिंचर सेवन कराते हैं।

(३) अपस्मार, उन्माद, मस्तिष्क-विकार, स्मरण-शक्ति ह्रास, रक्तचाप की कमी, मानसिक परिश्रम या चिन्ता से मानसिक व्यथा या व्यग्रता आदि व्याधियो पर इसका प्रयोग अवश्य ही लाभकारी होता है। किन्तु इसका लाभ शीघ्र ही नही होता। कुछ काल के बाद होता है। अत. धैर्यपूर्वक अल्प मात्रा से दीर्घकाल तक इसका सेवन करते रहना आवश्यक है। लाभ चिरस्थायी होता है।

(४) ब्रोमाइड के साथ मिश्रित जटमांसी की बहुत सी पेटेन्ट औषधियां बाजार मे मिलती है, जो मूर्च्छा, दिल की धडकन, अपस्मार आदि मे प्रयुक्त होती हैं। लाभ तो शीघ्र होता है, किंतु चिरस्थायी नही।

(५) जटामांसी से जो तैल निकाला जाता है, वह (Valerian Oil) पाचक, दीपक, अति उष्ण, अल्प मात्रा में भी अन्तर्दाहकारक एव नाडी मण्डल पर शीघ्र प्रभाव-कारी है। किंतु अधिक मात्रा में यह नाडियों को मन्द कर देता है। मात्रा—आधे बून्द से २ बून्द तक।

(६) इसका सत (घन सत्व)—वातगुल्म, आक्षेप, हृदय की धडकन तथा कम्पवात मे विशेष लाभकारी है। मात्रा—आधी से एक रत्ती।

विशिष्ट योग—

(१) मांस्यादि क्वाथ—

जटामासी १० भाग, दालचीनी, इलायची ८-८ भाग, कूठ या पोहकर मूल, लोग, कुलजन, श्वेतमिर्च नागरमोथा, सोठ ६—६ भाग, रोगनबलसा ५ भाग, केशर ४ भाग और चिरायता १० भाग इन सबका अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर मात्रा—२॥ तो० से ४ तो० तक सेवन करने से अशक्ति एव वीर्य की कमजोरी दूर होती है। (नाडकर्णी)

क्वाथ न० २—चर्म-रोग पर—

जटामासी, लाल चदन, अमलतास, करज की छाल, नीमछाल, मजीठ, मुलैठी, कुटकी छाल और दारु हल्दी सम-भाग लेकर क्वाथ करें। यह [illegible] (खुजली) आदि

डोडी–त्रिविभाग युक्त, पीले रग की घटाकार होती है।

मूल या कन्द—शकु के आकार के पतीत या वछनाग जैसे, ठोस, कृष्णाभ धूसर वर्ण के स्वाद मे प्रथम मधुर फिर तिक्त मालूम देते है। औषधिकार्य मे प्राय ये कन्द ही लिये जाते है।

पश्चिम हिमाचल प्रदेश के समशीतोष्ण स्थानो मे काश्मीर से कुमायू तक ८-१२ हजार फीट की ऊचाई पर, प्राय घास वाले स्थानो मे, तथा पजाब, नेपाल, तिब्बत, गढवाल आदि मे ये क्षुप बहुत पाये जाते है। उक्त ऊचाई से कम ऊचाई के स्थानो मे प्राप्त होने वाली यह बूटी गुणो की दृष्टि से न्यून होती है।

नोट—यूनानी वैद्यक मे इसका विशेष उपयोग किया गया है। इसकी ५-६ जातियां बताई गई है–

(१) जिसके कन्द (मूल) ऊपर से मटमैले या श्याम वर्ण के भीतर से लालिमायुक्त नीले गोपुच्छाकार स्वाद मे प्रथम मधुर, पश्चात् अति कडुवे होते है, उसे जदारखताई कहते है। यह सब से उत्तम एव औषधि मे प्राय यही प्रयुक्त होती है। यह खता (रकेतान) की पर्वतमाला मे तिब्बत मे बहुतायत से पैदा होती है। (२) जो बाहर और भीतर दोनो ओर से श्यामवर्ण या पीताभ मटमैले रंग के, वृश्चिक पुच्छाकार, स्वाद मे कडुवे होते है। उन्हे जद्वार अकरबी कहते है। यह नेपाल और तिब्बत मे विशेष पाई जाती है। गुण मे उक्त न १ से कम होती है। (३) जो बाहर व भीतर से काली या श्यामवर्ण की, स्वाद मे कडुवी, पानी मे घिसने से पानी का रग नीला कर देती है। यह भी नेपाल, तिब्बत, मोरग तथा रगपुर के पहाडो मे पाई जाती है। गुणो मे यह उक्त दोनो से कम होती है। औषधि-कार्यार्थ प्राय उक्त न १ और २ के कन्द ही लियेजाते है। (४) इनके अतिरिक्त चौथी जाति की वह है जो कृष्णाभ तिक्त, जैतून के फल के बराबर होती है। यह दक्षिण के पहाडो मे अधिक होती है। (५) पाचवी जाति की काली, नरम, अतितिक्त एव एक बालिश्त तक लम्बी होती है। इसे जद्वार अन्दलुसी या अन्तला कहते हैं। यह विशेषत बछनाग के साथ ही एक ही स्थान मे पैदा होती है। कहाजाता है कि इसके ३ रत्ती तक

जदवार (निर्विसी असली)

DELPHINIUM DENUDATUM WALL.
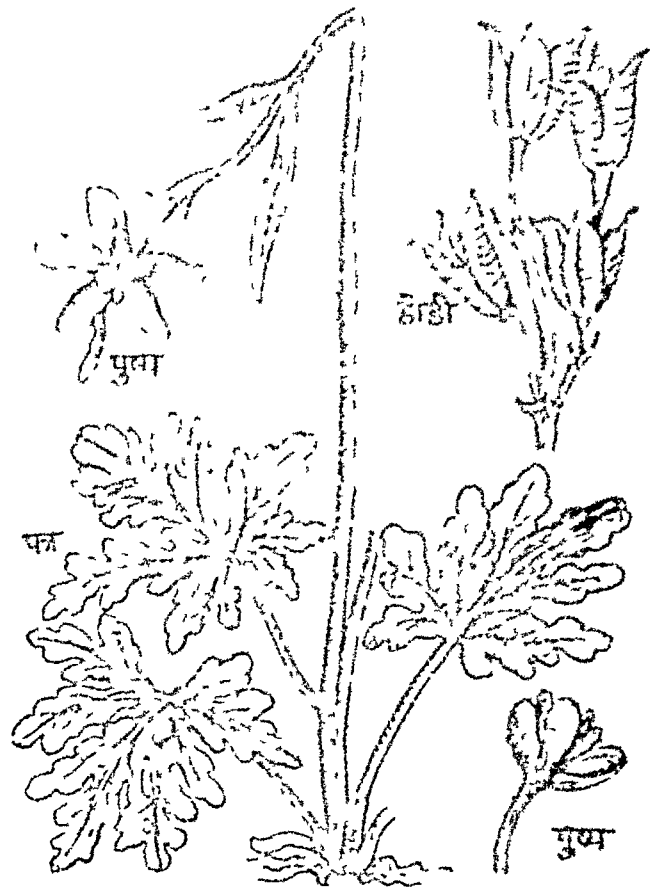
सेवन करने या इसे अपने पास रखने से बछनाग के विष का असर नही होता। (६) इसकी ही एक अन्य छोटी जाति होती है, जो श्वेत रग की, मीठी, किंचित् चरपरी, और सुगंधित होती है।

बाजारो मे मिलने वाली जदवार मे बहुत मिलावट होती है। प्राय बछनाग की जडो को दूध मे उबाल कर, उसके विष को कम कर, ऊपर से काला रग चढाकर इसके साथ मिला देते है। जो लाभ के बदले हानिकारक होती है। अत परीक्षा के लिये इसे पानी मे भिगोकर, कपडे पर रगडने से यदि कपडे पर काला दाग पडे, तथा तोडने पर भीतर श्वेत निकले, उसे नकली जानना चाहिये। जदवार और बछनाग के भेद को जान लेना आवश्यक है।

को गोखुरू, मकोय, ककडी और खरबूजो के बीजो के मोटे चूर्ण के साथ, रात भर पानी मे भिगोकर प्रात मल-छान कर पिलाते है।

नोट—मात्रा-साधारण मात्रा ४ से ८ रत्ती तक; जलोदर आदि विशेष अवस्था मे ३ माशे तक तथा वाजीकरणार्थ २ मा० तक देते हैं।

अत्यधिक मात्रा मे देने से–सिरपीडा, आन्त्रव्रण आदि विकार होते है, तथा उष्ण प्रकृति वालो को यह हानिकारक है।

हानि-निवारणार्थ—धारोष्ण दूध, यवमण्ड, धनिया, कतीरा तथा सिकजबीन का सेवन कराते है।

विशिष्ट योग—

(१) निर्विष्यादि वटी—इसके चूर्ण के साथ समभाग जहरमोहरा खताई और चादी के वर्क मिलाकर गुलाब, केवड़ा तथा वेदमुश्क के अर्क मे एक दिन खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले। १ से २ गोली, दिन मे दो बार चन्दनादि अर्क के साथ सेवन करे। यह हृदय की धडकन, मस्तिष्क की उष्णता एव शारीरिक निर्बलता दूर करती व चक्कर आना, मुखमडल निस्तेज हो जाना, स्फूर्ति का अभाव, अग्निमाद्य, आदि विकारोको भी दूर कर शरीर को सबल बनाती है। यह ओजवर्द्धक है। वृक्क एव मूत्राशय-शैथिल्य से मूत्र-शुद्धि न होती हो, रक्त मे विष-वृद्धि के कारण हृदय की धडकन मे वृद्धि व मस्तिष्क मे गरमी पैदा हो गई हो, तो यह विशेष उपकारक है।

विषमज्वर आदि रोग या अधिक मैथुन के कारण वीर्य मे उष्णता एव पतलापन आगया हो, तो ऐसी अवस्था मे वीर्य को शीतल तथा गाढा बनाने के लिये इसका उपयोग होता है। यदि मूत्र-सस्थान मे विकृति, सुजाक के लीन विष से हुई हो, तो इसे सारिवासव या चन्दनासव के साथ सेवन करावे। तम्बाकू के धूम्रपान आदि अति सेवन करने से उक्त विकार हो, तो इसे चन्दनादि अर्क के साथ देते हैं।

—(रसतन्त्रसार)

(२) वटी न० २—इसके चूर्ण के साथ, दरुनज-अकरबी (Doronicum Pardalianches), दालचीनी और लौंग ७-७ मा०, रूमी मस्तगी व जावित्री ३॥-३॥ मा० तथा कस्तूरी १ मा० सब का कपड-छान महीन चूर्ण कर शहद मे मिला १–१ रत्ती की गोलिया बनालें।

१ से २ तो० प्रात-साय देते रहने से श्वास, कास फुफ्फुस-कोषो का फूलना, हाफ चढना, जुकाम एव हृदय की निर्बलता दूर होती व शरीर बढता है।

—(गा० औ० र०)

(३) वटी न० ३—इसका महीन चूर्ण ४ मा०, अम्बर ५ रत्ती और केशर २ मा० इन तीनो को एक साथ खरल कर, गुलाब जल मे घोटकर १ रत्ती से २॥ रत्ती तक की गोलिया बनाले। यह हृदय तथा मस्तिष्क-विकृति पर व वीर्यस्राव तथा कामेन्द्रिय की अशक्ति पर दी जाती है।

(४) जद्वार क्वाथ—इसका मोटा चूर्ण २० मा० (१ तो० ८ मा०), गावजबा ८ मा० इन दोनो का साधारण क्वाथ-विधि से क्वाथ कर नाडी-दौर्बल्य, वातमण्डल के विकार, पक्षाघात, साधारण ज्वर तथा जीर्ण यकृत के विकारो पर सेवन कराते है। क्वाथ की सेवनीय मात्रा–८ मा० से १ तो० तक।

—नाडकर्णी

जमरासी (*ELAEODENDRON GLAUCUM*)

ज्योतिष्मति–मालकगनी–कुल (Celastraceae) के इसके मध्यम ऊचाई के वृक्ष, रक्ताभ शाखायुक्त, तथा पत्र–आमने-सामने २-६ इच लम्बे कुछ गोल, आयताकार या लट्वाकार, लम्बी नोक वाले (हरड़ के पत्र जैसे) किंतु सरल या गोल दातो से युक्त धार वाले, चमडे जैसे चीवट, पुष्प—पीले, छोटे-छोटे झुमको मे, फल—बेर जैसे, पीतवर्ण के, और मूल—मोटी छाल वाली, स्वाद मे कसैली कडुवी होती है।

लम्बा $\frac{1}{3}$ इंच चौडा, कुछ गोल, एरण्ड बीज जैसा, कृष्णाभ भूरे रंग का होता है। इसे ही जमालगोटा या जयपाल कहते हैं [१]। बीज के भीतर पीताभ श्वेत मगज होता है, जिसके दो दल होते हैं। दोनों दलों के मध्य में उसका बीजांकुर महीन पत्ती सा होता है, इसे पित्ता भी कहते हैं। बीज के मगज से प्र ग ५० से ६० तक पीताभ या रक्ताभ भूरा, गाढा तेल निकाला जाता है, जो स्वाद में तीक्ष्ण एवं दाहकारक होता है।

पाश्चात्य वैद्यक में उक्त तेल का ही अत्यधिक उपयोग किया जाता है। लेटिन में बीजों को Crotonis-semen तथा अंग्रेजी में Croton Seeds, तैल को Oleum Crotonis (Croton oil) कहते हैं।

लेख के शीर्ष स्थान में दिया हुआ लेटिन नाम इसके वृक्ष का है। क्रोटन (Croton) शब्द यूनानी या ग्रीक शब्द से उत्पन्न है, जिसका अर्थ होता है Tick or bug (एक क्षुद्र कीट विशेष या खटमल)। वृक्ष का विशिष्ट नाम Tiglium) टिग्लियम भी यूनानी शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ होता है पतले दस्त लाने वाला (To have a thin stool)। इस पौधे के प्राय सभी अंग पतले

जयपाल (जमालगोटा)

CROTON TIGLIUM LINN.

दस्त लाने वाले (विरेचन) हैं। बीज में इस गुण की अत्यधिकता है।

आयुर्वेद तथा यूनानी चिकित्सा-पद्धति में उक्त इसके तैल की अपेक्षा बीजों का और मूल का प्रयोग होता है, एवं तद्घटित अनेक विशिष्ट योग प्रसिद्ध हैं। पाश्चात्य पद्धति में भी पहले बीजों का ही प्रयोग होता था, किन्तु सम्प्रति केवल तैल का ही व्यवहार होता है।

ये वृक्ष चीन, तथा भारत में भी प्राय: सर्वत्र, किंतु पूर्व बंगाल, आसाम, सीलोन तथा भारतीय द्वीप समूहों में अधिक पाये जाते हैं।

नोट---(१) यहां प्रचलित जमालगोटा, जयपाल (दन्ती विशेष) का वर्णन दिया जा रहा है। प्राचीन जयपाल का वर्णन 'दन्ती' में यथास्थान देखिये।

(२) इसकी ही एक अन्य जाति नागदन्ती (C Oblongifolius) का वर्णन धनसर के प्रकरण में देखें।

(३) जंगली जमाल-गोटा दन्ती के प्रकरण में देखें।

---

१ आयुर्वेदीय बडी दन्ती (द्रवन्ती) C Polyandrum का ही एक भेद मात्र है। चरक सुश्रुतादि प्राचीन ग्रन्थों में इसी छोटी व बडी दन्ती का उल्लेख है। राजनिघण्टु आदि अर्वाचीन ग्रन्थों में इस प्रस्तुत प्रसंग के जमालगोटा या जयपाल का विवरण मिलता है। काल के प्रभाव से हमारे ग्रन्थ नष्ट भ्रष्ट हो गये हैं। सम्भव है, किसी प्राचीन ग्रन्थ में भी इसका उल्लेख हो। 'दंद' नाम से ईरानियों को इसका ज्ञान अति प्राचीन काल से था और कहा जाता है कि इन्हें इसका ज्ञान चीनियों से हुआ, क्योंकि इसका एक फारसी पर्याय 'दंद चीनी' है। जयपाल का अरबी नाम 'दन्दुस्सीनी' फारसी 'दंदचीनी' का रूपान्तर मात्र है। इब्नसीना नामक प्रसिद्ध अरबी हकीम ने अपने ग्रंथ में इस दन्दुस्सीनी के साथ ही साथ आयुर्वेदीय प्रसिद्ध प्राचीन 'दंती' (दंद हिन्दी) का भी उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन ग्रन्थों में जो दंती कही गई है, उसी का यह एक भेद मात्र है-जमालगोटा या जयपाल ये आधुनिक प्रचलित नाम देश भेद से इसके पड गये हैं।

नोट–ध्यान रहे, छिलके निकालने में या द्विदल के बीच से जीभी निकालते समय हाथों पर तेल लग जाता है। यह दाहक तैल वाला हाथ आखों के या शरीर के किसी भी भाग पर नहीं लगने पावे। यदि भूल से लग जाय तो तुरन्त ही घृत या तिल तेल उस भाग पर लगा देवें। कार्य हो जाने पर मिट्टी या साबुन से हाथों को धो डालना चाहिए। जिस दूध में इसकी शुद्धि करें–उस दूध को जमीन में गड्ढा खोद मिट्टी से दाब दें। जिसमें उसे कोई पी न सके।

शोथ-वेदना युक्त विकारो मे, चर्म रोगो या गज (खालित्य) मे बीजो का लेप करते हैं। तिला के रूप मे यह ध्वजभग होने पर शिश्न पर लगाया जाता है। हिक्का मे बीज के मगज को हुक्के मे भर कर धूम्रपान करातेहै। बिच्छू के विष पर बीज को पानी मे घिसकर लेप करते है।

(१) कोष्ठवद्धता, साधारण शोथ तथा कामला रोग पर—शुद्ध बीज-चूर्ण आधी रत्ती से १ रत्ती तक, त्रिकटु चूर्ण १ माशा, शुद्ध सुहागा १ रत्ती और १ तोला धान के लावा का मिश्रण प्रात पानी के साथ देते है) अथवा—इसके बीजो को फोडकर मीगी निकाल उसके दो दल करे। ऐसे २६ दल, थोडे गरम पानी मे रात को भिगो प्रात हाथो से मलकर, अन्दर की जीभी हटा कर फेक दे, व दाल धोकर स्वच्छ चीनी मिट्टी के खरल मे खूब महीन कर, उसमे सोठ का महीन चूर्ण २ तोला मिला, जल के साथ ६ घटे घोटकर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले और छाया मे सुखा लें।

१ या २ गोली रात मे जल के साथ लेने से प्रात बगैर कष्ट के दस्त साफ होता है। किन्तु इसके लेने के पूर्व मू ग की खिचडी घृत मिली देने से पेट स्निग्ध हो उत्तम लाभ होता है। रेचन के बाद पथ्य मे दहीभात लेवे।
(आ० सार सग्रह)

(२) श्वास पर—श्वास का दौरा होने पर बीज को एक सलाई से कोचकर दीपशिखा पर जलाते तथा उसका धूम्र नाक से सु घाते है। तथा इसके जले हुए मगज का चौथाई भाग पान मे रखकर खिलाते है।

(३) अर्ध शीशी आदि शिरोरोग पर—बीज को पत्थर पर जल के साथ घिस कर, सलाई से कपाल पर भ्रूभाग के ऊपर पीड़ा-स्थान पर एक सीधी लकीर खींच देते हैं। ५-७ मिनट में पीड़ा दूर हो जाने पर उसे धीरे से कपड़े से पोंछकर घृत लगा देते हैं।

अर्धशीशी (अर्धावभेद) हो तो—सूर्योदय से पूर्व प्रात २-३ बीजों का मगज, पत्थर पर नींबू के रस में घिसकर जिस ओर पीड़ा हो, उस ओर के नेत्र के ऊपर के भ्रूभाग के ऊपर उसे सलाई से लगावें, तो तत्काल होकर उसी दिन सिर-पीड़ा दूर हो जाती है। अथवा उक्त नीबू रस मे घिसे हुए कल्क को जिस ओर का मस्तक न दुखता हो उस ओर के कान मे उसके रस की १-२ बूदे टपका देवे। किन्तु इसको पूर्ण पीड़ा युक्त कान मे डाल दे, जिससे जलन न हो। यह प्रयोग कर लेट जावें व थोडी नीद ले लेवे। (व० गुणादर्श)

(४) जागम विष विशेषत सर्प-विष पर—मूर्च्छा, तद्रा, निद्रा दूर करने के लिए अजन–एक कागजी नीबू मे छिद्र कर, उसके भीतर इसके बीजो की ७ गिरी भर छिद्र के मुख को, छिद्र करते समय निकले हुए गूदे एव छाल से बन्द कर, नीबू को सूत से बाध कर रख दे। ७ वे दिन गिरी को निकाल कर धूप मे सुखा ले, तथा पुन उसी प्रकार दूसरे नीबू मे भरकर रख दे, और ७ वें दिन निकालकर सुखा ले। इस प्रकार ७ बार करके गिरी को सुखा, सुरक्षित रक्खे। इसे मनुष्य की लाला (थूक) मे (या नीबू रस मे) घिस कर नेत्रो मे आजने से सर्पदश से उत्पन्न मूर्च्छा दूर होती है। (फिर अन्य उपचार करे। ध्यान रहे सर्प-विष मे प्राय मूर्च्छा, तन्द्रा या निद्रा आती है, जिससे विष सरलता से नही उतरता, तथा अन्य उपचार काम नही देते) यह प्रयोग एक योगी से प्राप्त हुआ है और सत्य है। (भा० भैं० र०)

उपचार मे शुद्ध बीजो का चूर्ण या उक्त नीबू फल से भावित गिरी के चूर्ण की अल्प मात्रा घृत के साथ पिलाते है। जिससे दस्तो के द्वारा विष दूर होता है।

नोट—ध्यान रहे उक्त प्रकार से नेत्रों मे इसके आजने से वेदना असह्य होती है, इस वेदना के निवारणार्थ तथा नेत्रों को कोई हानि न पहुचे एतदर्थ, बकरी के दूध में रुई का फाया भिगोकर बाधना चाहिए। अथवा–

होकर यह विरेचक प्रभाव दर्शाता है। अत तीव्र विरेचन द्रव्यो मे इसका प्रथम नम्बर है। इसकी वून्द ५-२५ पानी जैसे दस्त लाती है। उदर मे मरोड एव आत मे क्षोभ होता है। यह उदर-कृमि-नाशक तो है, किंतु कृमिघ्न रूप मे इसका उपयोग प्राय नही किया जाता।

जिन अवस्थाओ मे शरीर से जलापकर्षण या रक्त के जलाश को शीघ्र ही कम करना अभीष्ट हो, या हृदयोदर मे सगृहीत जल (हृदयावरण मे सगृहीत जल) का दवाव कम करना हो, तब इसका उपयोग किया जाता है। जैसे मस्तिष्क गत शिरा के टूटने से यदि अर्द्धांगवात हो, ऐसी अवस्था मे यदि इसका उपयोग कर रक्तगत जल की कमी नही की जायगी तो मस्तिष्क पर रक्त का दवाव अधिक हो जावेगा, तथा मेदे पर रक्तस्राव अधिक वढता जावेगा, और रोगी के अच्छे होने की सभावना विलकुल नही रहेगी। यदि रोगी वेहोश हो, तो इस तैल की १ वून्द मक्खन मे मिला, जिह्वा पर घिसना चाहिये।

हृदयोदर मे इसके प्रयोग से वहुत कुछ लाभ तो होता है, किंतु कभी कभी जुलाव वन्द नही होते। ऐसी अवस्था मे इसके दर्पनाशक द्रव्य जैसे कत्थे को जल मे घिस कर तुरन्त ही पिलादे, या नीवू का रस पिलादे।[1]

१ (औषधि संग्रह-डॉ.-वा ग देसाई)

मस्तिष्क गत रक्तस्राव (Cerebral haemorrhage) एव सन्यास (Coma) आदि व्याधियों मे इसके तैल की १ वूंद मक्खन या मधु मे मिलाकर जिह्वा के नीचे चुपड देते है, अथवा इसके योग से वटित वटिका को भी इसी प्रकार प्रयुक्त कर सकते है। इस रोगी को छेड-छाड करने की आवश्यकता भी नहीं होती।

सामान्यावस्था मे रेचन के लिये शुद्ध इसके तैल की अपेक्षा, तद्घटित योगो का प्रयोग अधिक उपयुक्त होता है। आयुर्वेद मे इसके अनेक उत्तम योग है। आगे विशिष्ट योग देखिये।

नोट—(१) मात्रा—शुद्ध वीज चूर्ण चौथाई रत्ती से आधी रत्ती। तैल आधी से एक वूंद मक्खन, शहद या वतासा में देवें।

(२) इसके अतियोग से या नियम विरुद्ध सेवन से वमन, गले, छाती एवं कोष्ठ में दाह या जलन, मरोड, शूल, पानी जैसे पतले दस्त आमाशय या आंत्र में तीव्र व्रण, शोथ तथा अन्त मे रक्त मिश्रित दस्त आने लगते हैं। रोगी वहुत दुर्वल हो जाता है। वेहोशी तथा मृत प्राय अवस्था हो जाती है। किन्तु इससे मृत्यु होने की कोई वात सरकारी रिकार्ड में नहीं आई है।

इसके उपशमनार्थ—वातपित्त शामक, स्निग्ध-मधुर शीत द्रव्यो–गोदुग्ध, घृत, दही की लस्सी, शर्वत, नीवू का शर्वत आदि की योजना करनी चाहिये। प्रथम गोदुग्ध और घृत मिला कर वार-वार पिलाते और वमन कराते, पश्चात् दही की लस्सी या अन्डे की सफेदी दूध मे फेट कर पिलाते है। आतो मे जलन एव तीव्र वेदना हो, विरेचन अधिक हो, तो तुरन्त ही नीवू का शर्वत पिलावे या नीवू का रस चूसने को देवे। या दो तोला सूखी धनियां ५ तोला पानी के साथ महीन पीसे, तथा १ पाव दही ५ तोला मिश्री मे मिला दो वार मे पिलावे। ३-४ वार इस प्रकार पिलाने से दस्त, वमन, जलन आदि दूर होते है। या गरम पानी से आमाशय का प्रक्षालन-पम्प द्वारा करावे। यह न हो सके तो उक्त प्रकार से दूध व घृत का मिश्रण वार-वार पिलावे और वमन करावे। तथा इलायचीदाना पीसकर दही के साथ मिलाकर चटावे, या धान के लावा पीस कर चीनी व दही मिलाकर खिलादे। यदि पीड़ा अधिक हो तो मार्फिया का इजेक्शन लगावे। हृदयावसाद की

---

[1] शोथ व जलोदर मे अन्य विरेचन की अपेक्षा इसके तैल का अधिक उपयोग होता है। इन दोनों रोगों में पानी जैसे पतले दस्त होने से शीघ्र लाभ होता है। यह कार्य थूहर के दूध या इसके तैल से सिद्ध होता है। ये दोनों द्रव्य अति उग्र हैं। नाजुक देह वालों को नहीं दिये जाते। तथापि रोगावस्था में प्रकृति भेद से जिनके लिये इनमें से जो अधिक उपयुक्त हों उनकी योजना करनी पडती है। जीर्ण, कठोर, मलसग्रह, रक्तविकृति, यकृत पित्त की विकृति आदि होने पर थूहर की अपेक्षा इसका तैल या इसके वीजों के चूर्ण के योग से वने हुए इच्छाभेदी नाराचरस आदि का उपयोग अधिक सफल होता है। यदि अन्त्र में दाह शोथ हो, उदर पर दवाने से वेदना वृद्धि होती हो। तो इसकी अपेक्षा थूहर या निशोथ देना अच्छा माना जायगा।—(गां. औ. र)
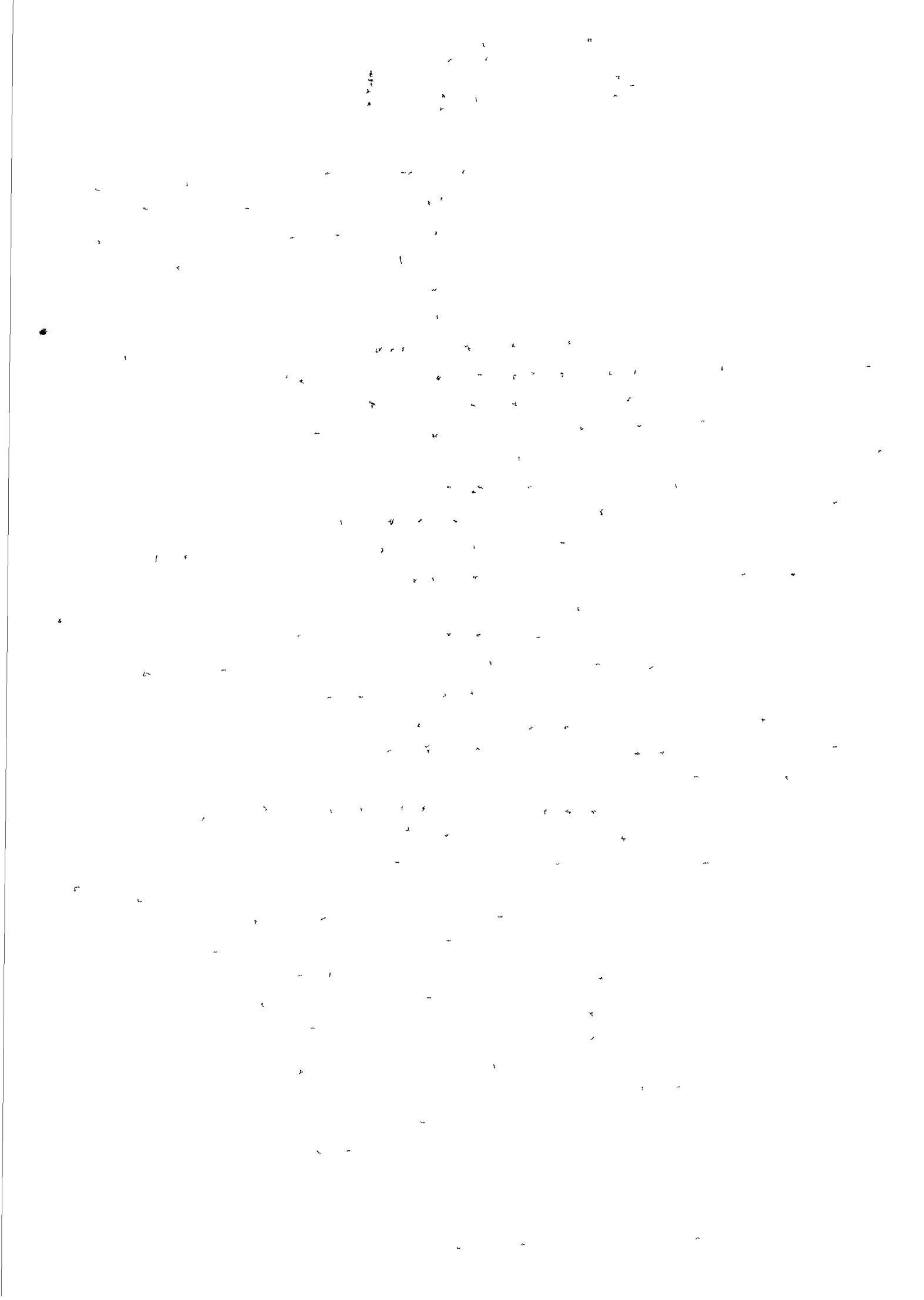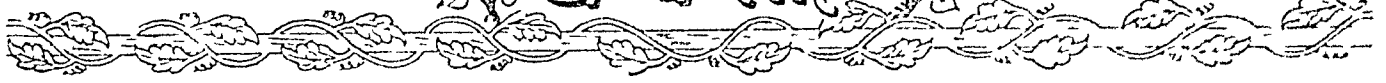
कफ प्रधान जलोदर मे, तथा रक्तदोष, उपदश, अजीर्ण, आमवृद्धि, कृमि आदि रोगो मे इसका प्रयोग उत्तम होता है।

(४) गोपीजल रस—शुद्ध जैपाल ८ भाग, शुद्ध गन्धक २ भाग, तथा सोठ, मिर्च, चित्रक, शुद्ध पारा व सुहागे की खील १-१ भाग लेकर, प्रथम पारे-गधक की कज्जली कर तथा शेप द्रव्यो का चूर्ण मिला, सव को जल के साथ घोट कर १-१ रत्ती की गोलिया वनाले।

यथोचित अनुपान से लेने से शूल, गुल्म, कोष्ठरोग, पैत्तिक विकार, भगन्दर, और हृद्रोग मे लाभ होता है।
(र रा सु)

(५) जलोदरारि रस—छोटी पीपल, ताम्रभस्म, और हल्दी चूर्ण १-१ भाग तथा शुद्ध जैपाल सव के वरावर लेकर सवको १ दिन थोहर (सेहुड) के दूध मे घोट कर १-१ रत्ती की गोलिया वना ले। १ या २ गोली शीतल जल से लेने से विरेचन होकर लाभ होता है। दस्त वन्द करना हो, तो दही-भात खावे। आमदोष निकल जाने के वाद मूग का यूप और भात खावे।
(यो र.)

नोट—भैपज्य रत्नावली का यह रस, उक्त प्रयोग से सौम्य व उत्तम है।

(६) नाराच रस—पारा, गधक, काली मिर्च १-१ भाग, सुहागा, छोटी पीपल, सोठ २-२ भाग और शुद्ध जैपाल ६ भाग, लेकर, प्रथम पारा गधक की कज्जली कर, शेप द्रव्यो का महीन चूर्ण मिला, सेहुण्ड के दूध से ३ दिन मर्दन कर, नारियल के गोले के वीच मे रखे, अत्यन्त तीव्र अग्नि से पकावे। पश्चात् खरल कर रक्खे। इसमे से थोडा लेकर नाभि पर लेप करने से १० वार विरेचन होता है। इसकी गन्ध सूघने से भी रेचन हो जाता है। यह सुकुमार प्रकृति के या राजाओ के योग्य विरेचन है।

(७) सर्वेश्वर रस—शुद्ध जैपाल ८ भाग, सुहागा खील ४ भाग लेकर प्रथम शुद्ध पारा १ भाग व शुद्ध गधक २ भाग की कज्जली कर उसमे उक्त दोनो का महीन चूर्ण मिला ३ दिन तक खरल करें। मात्रा—१-२ रत्ती, वातज्वर मे हर्र के चूर्ण से, कफ-ज्वर मे खाड और शहद से, जीर्ण ज्वर मे उचित अनुपान से, सूतिका-रोग मे पीपली-चूर्ण व शहद से देवे। (५ वर्ष के वालक को १ चावल के वरावर देने से ज्वर नष्ट होता है) सर्व ज्वर एवं सन्निपात मे इसे गुड की शक्कर के साथ देवे। कृमिरोग पर अजवायन और वायविडङ्ग के चूर्ण के साथ देवे—
(र० रा० सु०)

नाराचरस के तथा और भी अन्य प्रयोग अन्यत्र शास्त्रो मे देखे।

नोट—ध्यान रहे यदि आमाशय में व्रण हो, अम्लपित्त से दाह हो, आंत्र-दाह हो, शोथ हो, तथा अर्श रोगी गुदभ्रंश रोगी, एवं सुकुमार को, वालक, सगर्भा स्त्री को जैपाल प्रधान किसी भी योग को न देना चाहिए।

निम्न—जमालगोटे की गोलियो का एक यूनानी—उत्तम प्रयोग इस प्रकार है—

शुद्ध जैपाल वीज ३ तोला गुलवनफ्मा, गुलाव के फूल, खुरपे के वीज व कद्दू के वीजो का मगज १७-१७ माशा तथा—ककडी के वीजो का मगज, मगज वेदाना व गुल नीलोफर १०-१० माशा और कशनीज साफ किया हुआ, मस्तगी, वशलोचन व कतीरा ७-७ माशा, इन सवको पीसकर इसवगोल के लुआव मे मिलाकर चने जैसी गोलिया वना ले। इसे १ से २ माशा की मात्रा मे (या कम मात्रा मे) गुलाव के शर्वत के साथ देने से अच्छा जुलाव होता है। इन गोलियो से जमालगोटे से होने वाले सव फायदे तो मिल जाते है, मगर उसकी उग्रता और उसके नुकसान से रोगी वच जाता है। क्योकि इसमे इसकी दर्पनाशक वहुत सी ओषधिया मिली हुई है।
(व० चद्रोदय)

जमीकन्द (सूरण) (*AMORPHOPHALLUS CAMPANULATUS*)

शाकवर्ग का एव सूरण कुल[1] (Araceae) का यह एक प्रधान गुल्म १-३ फीट ऊंचा होता है। इसके कन्द

१ इस कुल के कन्दयुक्त क्षुप या गुल्म होते है। पत्र-एकान्तर, विभिन्न रंग के, प्राय: सादे क्वचित् विभक्त,
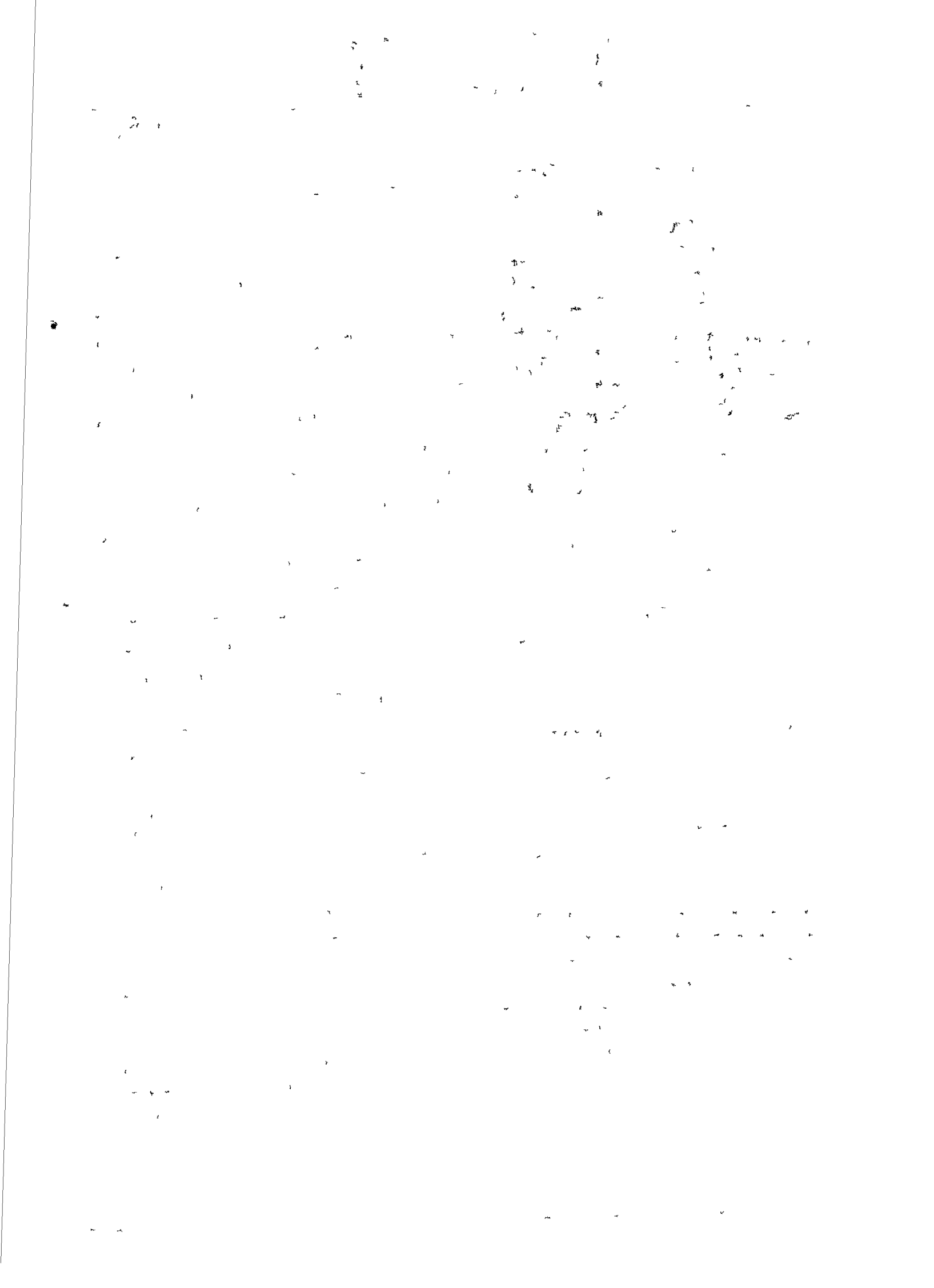
प्रतिशत ग्राम, ४३४ ई० यू० विटामिन बी० २ अति अधिक तथा सी० नाममात्र को होता है। इसका उक्त जलांश या रस कटु, तीक्ष्ण एव दाहक होता है, त्वचा मे लगने पर यह कण्डू, दाह आदि पैदा करता है।

शुष्क कन्द मे प्र० श० ०.५० ईथर एक्स्ट्रैक्ट, १२.१८ अल्बुमिनाइड्स (१.६० नैट्रोजन युक्त), ७६.२८ कार्बोहाइड्रेट, ४.०० काष्ठ तंतु तथा जलाने पर ७.०४ राख पाई जाती है।

प्रयोज्य अग—कन्द।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, कषाय, कटु विपाक, उष्ण-वीर्य, एव प्रभाव मे अर्शोघ्न है। यह कफवातशामक, दीपन, पाचन, रुचिवर्धक, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, शूल-प्रशमन, आर्त्तव-जनन, बल्य एव रसायन है।

यकृत की क्रिया मे सुधार, वायु का अनुलोमन एव रक्त-वाहिनियो मे सकोचन, इस प्रकार यह अपनी त्रिविध क्रियाओ से अर्श रोग मे लाभ पहुँचाता है। किंतु अधिक प्रमाण मे सेवन से यह विबन्धकारी या विष्टभकारी होता है। अल्प मात्रा मे विबन्धनाशक है।

यह अरुचि, अग्निमाद्य, विबन्ध, उदर-शूल, गुल्म, आमवात, यकृत-प्लीहा-विकार, अर्श (विशेषत. कफ-वातज), कृमि, कास, श्वास, सामान्य दौर्बल्य मे प्रयुक्त होता है।

शरीरस्थ त्रिदोष एव सप्तधातु, इनके लिए सारभूत द्रव्यो का विनियोग होते रहने से ही उनका अपेक्षित प्रमाण कायम रहता है, तथा मलरूप द्रव्यो का यथोचित निष्क्रमण भी होता रहता है। ऐसा होते रहने से ही परिपूर्ण आरोग्य की प्राप्ति होती है। ये सब बाते सूरण द्वारा सिद्ध होती है। अत यह कन्दो मे सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार धातुसाम्यावस्था (जो कि स्वस्थ प्रकृति का प्रधान लक्षण है) प्रस्थापित करने की आवश्यक शक्ति इस कद मे स्थित आमपाचन एव अग्नि-दीपन गुणो द्वारा सिद्ध होती है।

किन्तु ध्यान रहे यह तीक्ष्ण और उष्ण होने से इसका मामूली, सर्वसाधारण प्रकार से सेवन रक्तपित्त-प्रकोपक

जमीकन्द (सूरण)
AMORPHOPHALLUS CAMPANULATUS (ROXB.)
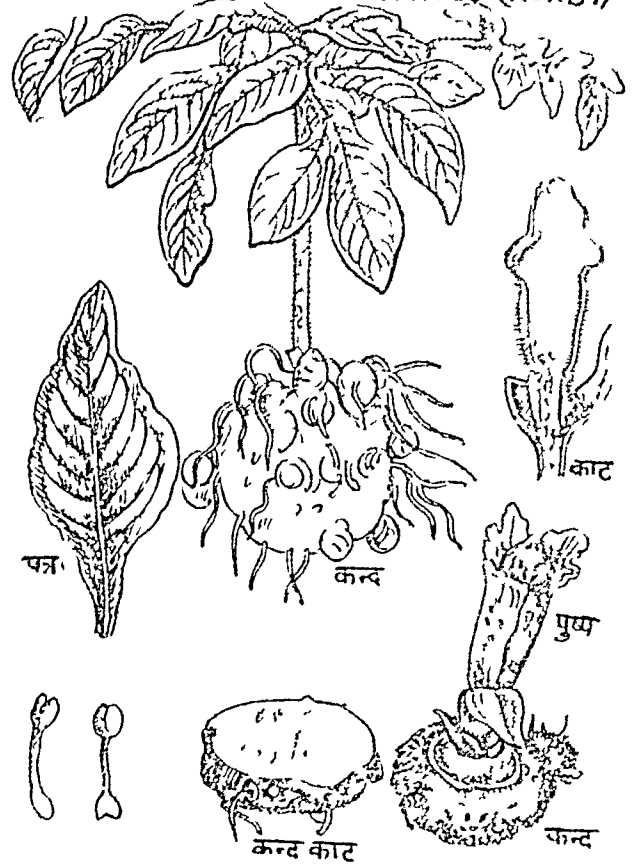
हो जाता है। अत कुष्ठ, दद्रु आदि चर्म रोगो मे एव रक्तपित्त के रोगियो के लिए यह निषिद्ध है।

सन्धिशोथ, श्लीपद, अर्बुद आदि मे इसे पीसकर घृत व मधु के साथ मिलाकर प्रलेप करते है। शुक्रदौर्बल्य तथा रजोरोध मे इसका मोदक या पाक बनाकर देते है। आगे विशिष्ट योग देखे। आमादि-विकार—आमातिसार आदि मे—इसके चूर्ण को घृत मे—पका, शक्कर मिला सेवन करते है।

इसके सेवन की विधि—

(१) जितने प्रमाण में इसे सेवन करना हो उतना काटकर गीली मिट्टी की मोटी तह मे लपेट कर आग मे रख दे जब मिट्टी लाल हो जाय, तब ठडा होने पर मिट्टी अलग कर इसके और भी टुकडे कर घृत मे छोक कर आवश्यक मसाला मिला शाक आदि यथेच्छ व्यजन-

लगना), अति तृष्णा, दौर्बल्य, निद्राल्पता, बहुमूत्रता आदि विकार अवश्य ही दूर होते हैं।
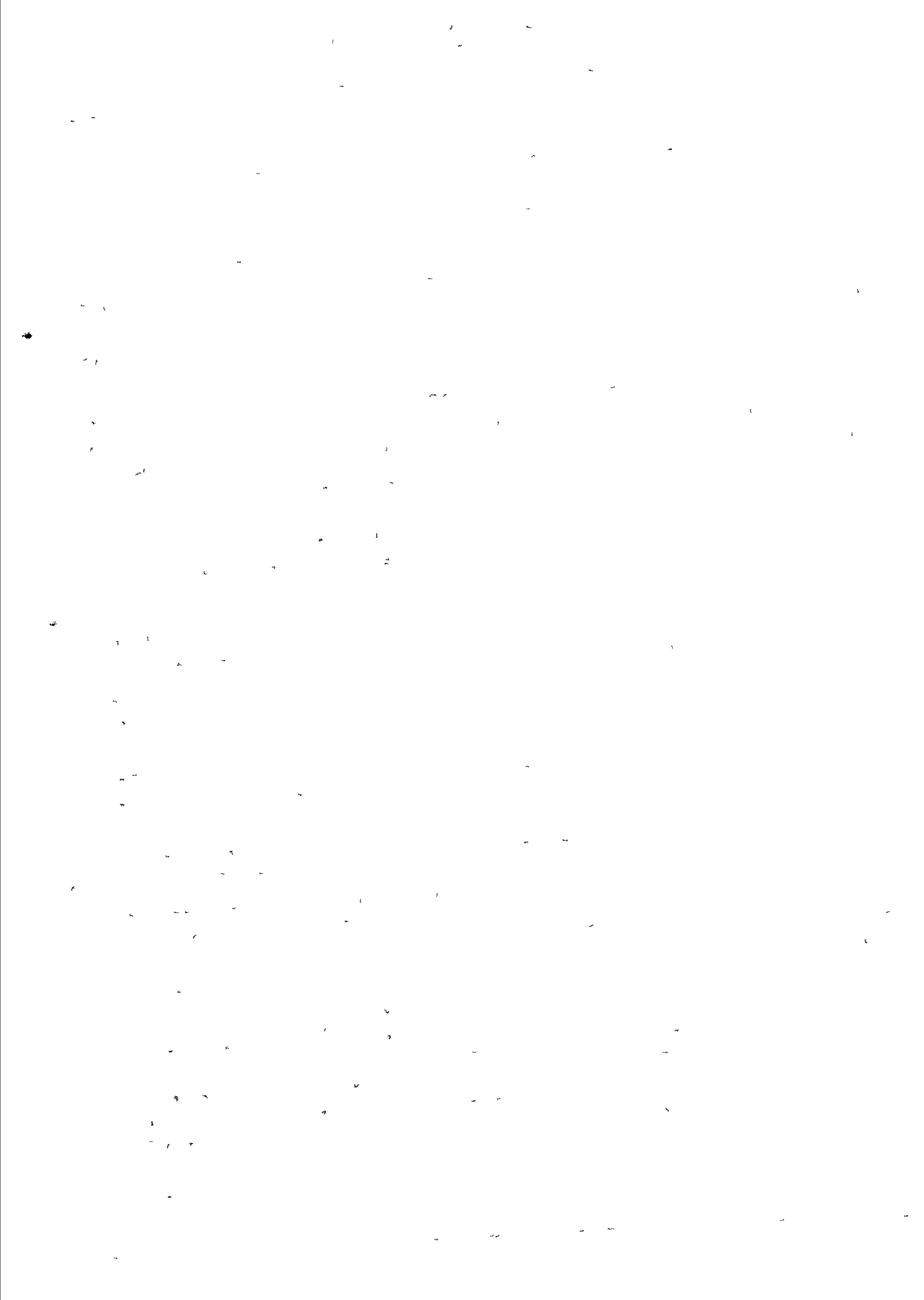
जीर्ण ज्वरादि से आई हुई दुर्बलता, अशक्ति तथा प्रसूतावस्था के बाद उत्पन्न हुई अशक्ति, इस कल्प के सेवन से शीघ्र दूर होती है।

(आ० पत्रिका से साभार अनूदित।)

(२) अर्श पर—कन्द २॥ सेर वजन का लेकर, मध्यभाग मे छिद्र कर, उसमे ४० तो० (यदि कन्द १॥ वजन का हो तो २० तो०) लाल फिटकरी का चूर्ण भरकर तथा छिद्र के मुख को उसके गूदे से ही ढक कर, कपड मिट्टी कर गज पुट मे फूक देवे। उत्तम श्वेत भस्म हो जावेगी। महीन चूर्ण कर रखे। ६ रत्ती से १२ रत्ती तक, दिन मे २-३ बार मलाई या मक्खन के साथ लेने से, रक्तस्राव बन्द हो कर, रक्तार्श मे विशेष लाभ होता है। पाचन-क्रिया मे सुधार तथा मल-शुद्धि होता है।

—(स्व० वैद्य गोपाल जी—
कुवर जा ठक्कुर)

नोट—उक्त प्रयोग इस प्रकार भी बनाया जाता है—२॥ सेर या १॥ सेर कन्द को मोटा-मोटा कूट ले। फिर ४० तोला या २० तो० लाल फिटकरी का फूला मिला, हांडी में भर मुख-मुद्रा कर १० सेर जगली कण्डों मे फूंक दें। शीतल होने पर श्वेत रग की भस्म होगी। कपडछान कर रख ले। मात्रा और सेवन-विधि उक्त प्रकार की ही है। शुष्क वातज अर्श में भी यह लाभकारी है।

यदि भस्म तैयार न हो, तो सूरण का चूर्ण, विलायती केपसूल मे भर कर निगल जाने से भी लाभ होता हैं। जिलेटिन की बनी हुई भीरी (शून्य) अथवा १ नम्बर की केपसूल लेनी चाहिये। (रस तन्त्रसार)

अथवा सूरण के छोटे-छोटे टुकडे कतर कर इमली की खटाई के साथ उबाल कर, तथा साफकर सुखा ले। इसका जितना चूर्ण हो उतना ही रीठे का चूर्ण उसमे मिलावे तथा दसवा हिस्सा सेंधा नमक और २०वा हिस्सा कालीमिर्च भी पीसकर मिलादे। ४-४ मा० प्रात साय गरम पानी के साथ ३ मास तक पथ्य पूर्वक लेते रहने से अर्श मे पूर्ण लाभ होता है। (स्वानुभूत)

अथवा—सूरण की ऊपरी छाल दूर कर उसे बाष्पविधि से या उक्त पुटपाकविधि से स्वेदितकर, चूर्ण करे तथा धूप मे सुखाकर दूध मे (यथोचित प्रमाण मे मिला) शक्कर मिला मीठी खीर बना सेवन करें। इसे तक्र या छाछ मे मिलाकर भी खीर तैयार की जाती है। और अर्श-रोगी को सेवन कराई जाती है।

सूरण के उक्त प्रकार से बनाये चूर्ण के साथ जीरा, धनिया, नमक को पीसकर इसकी चटनी भी यथेच्छ सेवन कराने से अपेक्षित लाभ होता है। सूरन का अचार या मुरब्बा नित्य ५ तो तक खाते रहने से भी लाभ होता है।

अर्श नाशक अन्य शास्त्रीय प्रयोग—

(३) सूरण-वटक—सूरण चूर्ण ३२ भाग, चित्रक मूल १६ भाग, सोठ चूर्ण ४ भाग, तथा कालीमिर्चचूर्ण २ भाग लेकर, एकत्र मिला, उसमे सब चूर्ण के समभाग गुड मिलाकर, खरल कर गुटिका बना ले। यह शार्ङ्गधर जी का सूरणपिंडी योग उत्कृष्ट अर्शनाशक है। (मात्रा ६ मा० से १ तो० तक उष्ण जल से देवे)

(शा० स० ख० २ अ० ७)

शार्ङ्गधर जी का ही सूरण वटक (वृहत्) आगे विशिष्ट योगो मे देखिये उक्त-सूरण पिण्डी योग वाग्भट मे भी मिलता है।

(४) सूरण-पुटपाक—सूरण पर आधा अगुल मोटा मिट्टी का लेप कर, शुष्क कर, आग मे पकावे। जब यह लाल हो जाय, निकाल कर, ऊपर की मिट्टी दूर कर, कूट कर उसका रस निकाल ले। यथोचित मात्रा मे ४ तोला तक रस मे तिलतैल १ तो० व सेंधा नमक १ मासा मिलाकर पीने से अर्श रोग नष्ट होता है।

(५) सूरणादि चूर्ण—सूरण और कुडाछाल सम भाग लेकर चूर्ण कर रक्खे। इसे तक्र के साथ (मात्रा ६ मा० तक) मिलाकर सेवन करते रहने से अर्श का नाश होता है।

(भा० भै० र०)

(६) सूरणादियोग—सूरण को आक के पत्रो मे लपेट कर ऊपर से मिट्टी का (१ अगुल मोटा) लेप कर कण्डो की आग मे पकावे। ऊपर की मिट्टी आग के समान लाल हो जाने पर, ठडा कर, सूरण को निकाल कर पीस

वृद्धि होती है। वृद्ध और बालकों को भी हितकारी है। किंतु गर्भिणी स्त्री व रक्तपित्त रोगी को न देवे।

(यो० र०)

३ सूरणादि चूर्ण—सोंठ, १ भाग काली मिरच २ भाग, जवाखार ४ भाग चित्रकमूल ८ भाग और सूरण १६ भाग लेकर चूर्ण करें। इसे नीबू के रस व अदरख के रस की १-१ भावना देकर सुखाले। मात्रा—१ से ४ माशे तक सेवन से अर्श, शूल, गुल्म, प्लीहा तथा कृमि-रोग नष्ट होता है। एवं अग्नि दीप्त होकर बार बार भूख लगती है। (भा० भैं० र०)

४. सूरण पाक—(बलवीर्यवर्धक)—सूरण कन्द १ सेर लेकर, स्वच्छकर, उस पर घृत चुपड कर, अण्डी के पत्तो मे लपेट सम्पुट कर, पुटपाक करे। पुन साफ कर टुकडे टुकडे कर, पिष्टी बना ले। पिष्टी को समभाग घृत मे भून ले। फिर १ सेर उत्तम खोया को अलग घृत मे भूनकर, उसमे आधा सेर घृतपक्व सूजी तथा पिस्ता, छुहारा, बादाम, दाख एव चारमगज (खरबूजा, तरबूज, ककडी और कद्दू की बीजगिरी) २॥-२॥ तोला खूब महीन कर मिलादें। फिर दुगुनी खांड की चाशनी मे सबको मिला उसमे लोहभस्म, वंग भस्म, चांदी भस्म व स्वर्ण भस्म ६-६ माशे अच्छी तरह मिलाकर, थाली मे पाक जमा दे, या मोदक बना ले।

१ तोला से ८ तोला तक, प्रातः साय दूध के अनुपान से सेवन करें। यह कामोत्तेजक, बल-वीर्य-वर्धक पाक पुरुष को सन्तानोत्पादन करने योग्य बना देता है।

—वैद्य प० परशुराम जी शास्त्री

नोट—सूरण पाक तथा अन्य पाको के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहत पाक सग्रह मे देखें।

इसके बीजो के गुणधर्म व प्रयोग—इसके जङ्गली भेद मे आगे देखे।

जमीकंद (जंगली) (Amorphophallus sylvaticus)

उक्त सूरण-कुल (Araceae) के जमीकन्द के सदृश ही इसके गुल्म होते हैं। अन्तर यही है कि यह जङ्गलो मे स्वय जात, रग मे रक्ताभ श्वेत, गुल्म या क्षुप कन्द भी अपेक्षा कृत बहुत छोटा होता है। पत्ते आदि उक्त ग्राम्य सूरण जैसे ही होते है। क्षुप मे जो डडा सा निकलता है, उसके अग्रभाग पर लगभग १० अ गुल तक लम्बी मक्के की भुटिया जैसी भुटिया या मुठिया आती है, जिसे वज्रमूठ कहते है। इस मूठ मे घने लम्बे मू गा जैसे दाने (बीज) होते है। पक्व होने पर ये दाने लाल रग के प्रवाल जैसे ही दिखाई देते है।

इसके कन्द व पत्रादि शाक के काम मे नही लिये जाते। किंतु कोकण आदि कई स्थानो के जगली लोग इसके कन्दो को छीलकर टुकडे-टुकडे कर धूप मे खूब शुष्क कर शाक बनाकर खाते है। तथा वर्षा के प्रारम्भ मे ही इसके कन्दो मे जो पत्राकुर फूटते है उन अकुरो को काट कर लाते है। ऊपर की कडी छाल को दूर कर, अन्दर के अति कोमल पत्तो का शाक इमली की खटाई मिलाकर बनाते तथा बडे प्रेम से खाते है।

सौराष्ट्र मे विशेषत. सूरत जिले के जगलो मे तथा दक्षिण के कोकण आदि प्रान्तो मे यह बहुत होता है।

नोट—(१) औषधि-कार्यार्थ यह उत्तम प्रयोजनीय है। ग्राम्य जमीकन्द के जो औषधि-प्रयोग कहे गये हैं। वे (मोदक, पाकादि छोड़कर) यदि इसी जगली के निर्माण किये जावें, तो विशेष लाभकारी होते हैं।

(२) सुश्रुत के सूत्र-स्थान के कन्दवर्ग मे ग्राम्य सूरण के गुणधर्म के उल्लेख के पूर्व ही जिस सुरेन्द्रकन्द का उल्लेख है, वह इस जगली जमीकन्द का एक साधारण भेद मात्र है। इसका विशेष वर्णन एव गुणधर्म आगे इसी प्रकरण में देखिये।

नाम—

स०—अरण्य सूरण, वज्रकन्द, वज्रमुष्टी इ०। हि०—

वार-वार मुख मे लगाना पडता है।

दत-पीडा पर—इसके बीजो का महीन चूर्ण, रुई मे रखकर, दातो की पोल मे रख देते है।

ग्रन्थिशोथ तथा मोच या रगड आदि से उत्पन्न स्नायु सम्बन्धी पीडायुक्त शोथ पर—इसके बीजो को पानी के साथ पीस कर लेप करते है।

जीर्ण कर्णस्राव पर—पुटपाक-विधि से निकाला हुआ, इसके पत्र-वृन्त या काण्ड का स्वरस कान मे टपकाते है।

जम्बीरी नीवू—दे०—नीवू मे। जयन्ती—दे०—जैत। जयपाल—दे०—जमालगोटा।

जयफल—दे०—जायफल। जर्जीर बीज—दे०—मूली मे।

जरदालु [1] [Prunus Armeniaca]

तरुणी कुल (Rosaceae) के इसके वृक्ष मध्यम ऊचाई के, पत्र—२-३ इच लम्बे, १½—२ इच चौडे, दोनो ओर को मुडे हुए, अण्डाकार, दतुल, तीक्ष्ण नोकदार पीछे की ओर कुछ रोमश, पत्र—वृन्त—१ इच लम्वा, पुष्प—वसत से ग्रीष्म के आरभ काल तक, एकाकी या गुच्छो मे, प्रथम गुलावी, फिर श्वेतवर्ण के, फल—गोल, चिपटे, आलूवोखारा जैसे, किन्तु कुछ छोटे, लगभग १ इच लम्वे, ग्रीष्म से शीतकाल के प्रारम्भ तक आते है। इन फलो को ही जर्दालु, खुवानी आदि तथा अग्रेजी मे एप्रिकॉट (Apricot) कहते है। ऊपर शीर्षस्थान मे लेटिन नाम इसके वृक्ष का है।

ताजी दशा मे ये फल श्वेताभ हरितवर्ण के तथा सूखने पर भूरे या रक्ताभ पीतवर्ण के हो जाते है। फलो के भीतर जो छोटे वादाम जैसी किंतु चिकनी गुठली होती है, उसके अन्दर वादाम-गिरी जैसी ही गिरी निकलती है। अत कोई इस फल को शकर-वादाम या शकरपारा भी कहते हैं। ताजे की अपेक्षा सूखा फल ही उत्तम होता होता है। इसके किसी वृक्ष के फल मधुर या मधुराम्ल

PRUNUS ARMENIACA LINN

[1] आलुक (आड़ू) (Prunus) के ही आलूवुखारा, आलूचा और जरदालु ये उपभेद हैं। गुण धर्म प्राय सबके एक जैसे ही है। किंतु इनमें यह जर्दालु श्रेष्ठ है।

चरक व सुश्रुत में वादाम, अखरोट आदि सेवा फलों के साथ जिस 'ऊरुमाण' फल विशेष का उल्लेख है (च सू. अ. २७ तथा सु सू अ. ४६) और जिनका गुणधर्म स्निग्ध, मधुर, उष्ण, गुरु, वल्य, शरीर पुष्टिकर आदि कहा गया है, उस उरुमाण को ही कई विज्ञ महानुभाव जर्दालु मानते हैं। हम भी ऐसा ही मानते है।
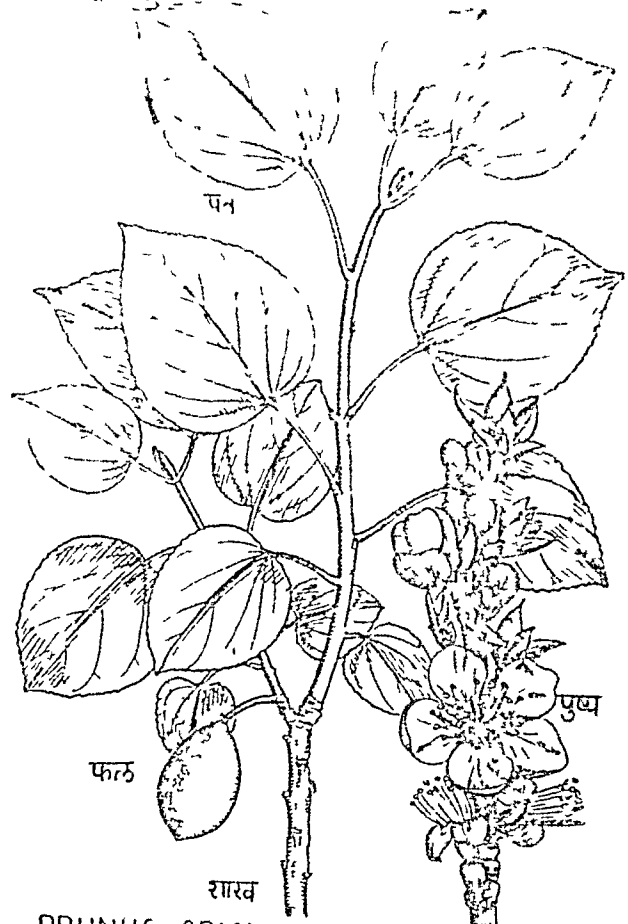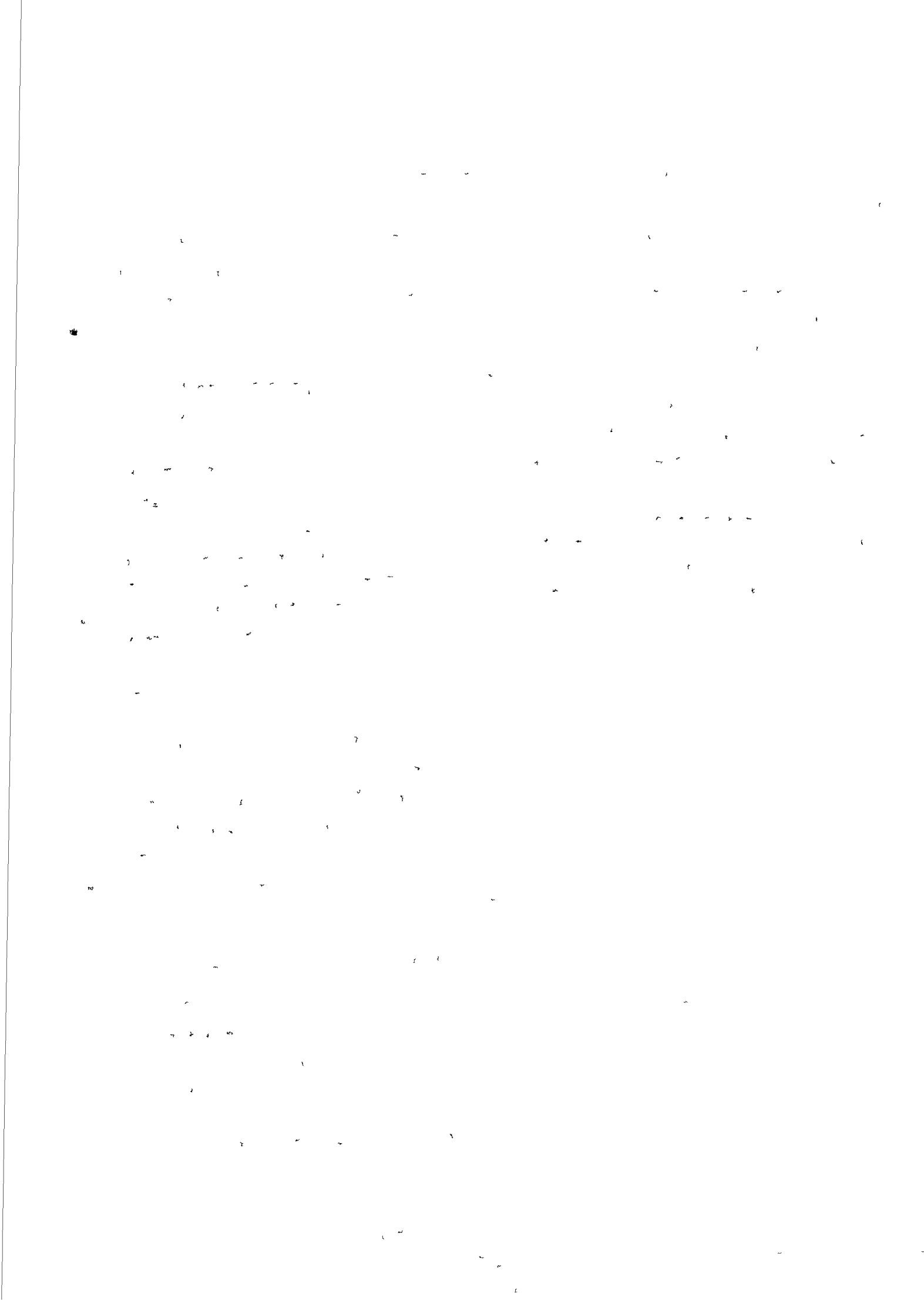
पत्तो को पीस कर नाभि पर लेप करने से भी उदर क्रमि नष्ट होते है।

गुद-शोथ पर भी इसका लेप करते ह।

कर्णशूल एव क्रमिकर्ण पर–उसका पत्र रस (विशेषत कडुवे वृक्ष के पत्रो का रस) डालने से शीघ्र लाभ होता है।

जीर्ण अतिसार पर––शुष्क पत्र-चूर्ण ७ मा तक की मात्रा मे शीत जल से पिलाते ह।

पुष्प––शीत और रूक्ष ह। सकोचक, व रक्तस्तभन है। जखम आदि के रक्तस्राव-निरोधार्थ पुष्पो के चूर्ण को बुरकते है।

नोट––मात्रा -फल-४ से १० नग। गिरी–१–२ तोला पत्र-क्वाथ ५-१० तोला। तैल १-३ मा०।

फलो के अधिक मात्रा में खाने से अग्निमाद्य, आध्मान, तथा कभी-कभी अतिसार होता है। वृक्कों के लिये यह हानिकर है।

हानिनिवारणार्थ—शक्कर, सन्तरी सोफ आदि का सेवन कराते है।

इसका प्रतिनिधि–आलू बुखारा या आडू है।

जरायुप्रिया[1] [*ERIGERON CANADENSIS*]

भृगराज (Compositae) कुल के इस बहुशाखी पौधे के पत्र २.५ से ७.५ से०मी० तक लम्बे व रोमश होते है। पुष्प–छोटे छोटे पीतवर्ण के पुष्प-वृन्त–गुलाबी रग का, गन्ध पोदीना की गध जैसी तथा स्वाद मे कुछ कडुवा व कसेला होता है। औषधि-कार्य मे पुष्प तथा तेल लिया जाता है।

इसके पौधे उत्तर पश्चिम हिमाचल प्रदेश, काश्मीर आदि, पजाब तथा उत्तरी गगा के मैदानो मे विशेष पाये जाते है। प्राय उष्ण प्रदेशो मे यत्र-तत्र यह पैदा होता है।

नाम—

सं०–जरायुप्रिया, माक्षिकविषा, पालिता। अ०– फलीबेन (Fleabane), स्क्वा वीड (Squa weed) ले०— एरीजेरान केनेडेन्सिस। ए विस्कोसम (E Viscosum)

जरायुप्रिया
ERIGERON CANADENSE LINN

१जरायुप्रिया यह सस्कृत नाम इस बूटी के लेटिन Eri अर्थात् शीघ्र ही योग्यकाल के पूर्व ही Geron अर्थात् वृद्ध होना, वसत ऋतु के पूर्व ही इस पौधे का जीर्णशीर्ण होना, इस अर्थ का द्योतक है। जरायु या वृद्धावस्था प्रिय है जिसको वह जरायुप्रिया।

दूसरे अर्थ मे जरायु अर्थात् गर्भाशय के लिए जो विशेष गुणकारी (प्रिय) है, वह बूटी।

यह पौधा मक्खियों के लिए घातक होने से इसका माक्षिकविषा यह दूसरा सस्कृत नाम रक्खा गया है। अंग्रेजी के Flea bane शब्द का भाषान्तर है।
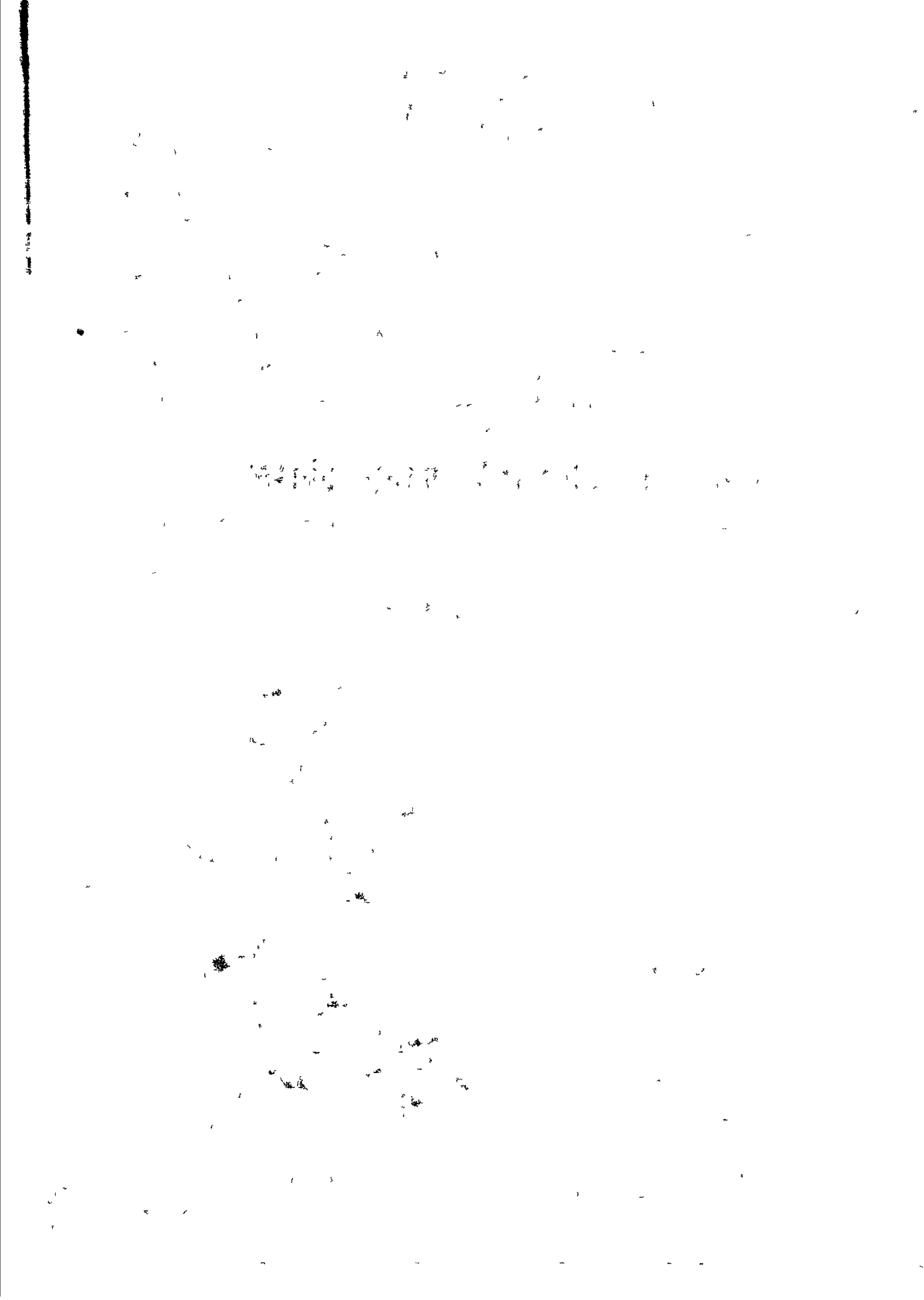
जरूल (*LAGERSTROEMIA FLOSREGINAE*)

मदयन्तिका–मेहदी-कुल (Lythraceae) के विस्तीर्णशाखायुक्त इस बडे वृक्ष की छाल चिकनी, फीके रङ्ग की, पत्र-१०-२० से० मी० लम्बे, ३ ८-८ ५ से मी चौडे, सूक्ष्म रोमश, पृष्ठ भाग मे अधिक नसो के जालो से युक्त, पुष्प–ग्रीष्मकाल मे ५ से ७ ५ से० मी० लम्बे, फीके लाल रग के, फल–लम्बगोल, १ से १। इन्च लम्बे, लाल रग के, बीज १/२-३/४ इ च लम्बे, फीके, धूसर वर्ण के होते है। इसके फल बहुत देर मे पकते है।

पीले और लाल रग के भेद मे ये वृक्ष दो प्रकार के होते हैं।

पूर्वी बगाल, चटगाव, आसाम, बर्मा, तथा पश्चिमी किनारे पर ये वृक्ष स्वयजात या लगाये हुए पाये जाते है।

नाम—

हि०—जरूल, अर्जुन। ब०—जारुल, अजहार। म०–तामण, बोन्द्रा, बुन्द्रा। ले०–लेगरस्ट्रीमिया फ्लॉसरेजिनी।

गुणधर्म व प्रयोग–

सकोचक, शीतवीर्य, उत्तेजक, क्षुधावर्धक, ज्वरहर, व मेदोत्पादक है। इसकी छाल विशेषत उत्तेजक व ज्वरघ्न है। मूल पत्र विरेचक, बीज-मादक, निद्रा लाने वाले है।

पीले वर्ण का जरूल–गुरु एव कफ-विकारो को बढाने वाला है। लालवर्ण का आमाशय तथा यकृत को शक्तिदायक है। यह मूत्रकृच्छ्रनाशक, तथा वाजीकरण भी है।

मात्रा–चूर्ण–१ से ४ माशा तक। स्वरस ८ तोला तक

अधिक मात्रा में यह विबन्धकारक और रक्तोत्पादक होता है। हानि-निवारणार्थ–सोफ और गुलकन्द देते हैं। इसका प्रतिनिधि-खट्टा सेब या नासपाती है।

जारूल

LAGERSTOEMIA FIOS-REGINAE RETZ.
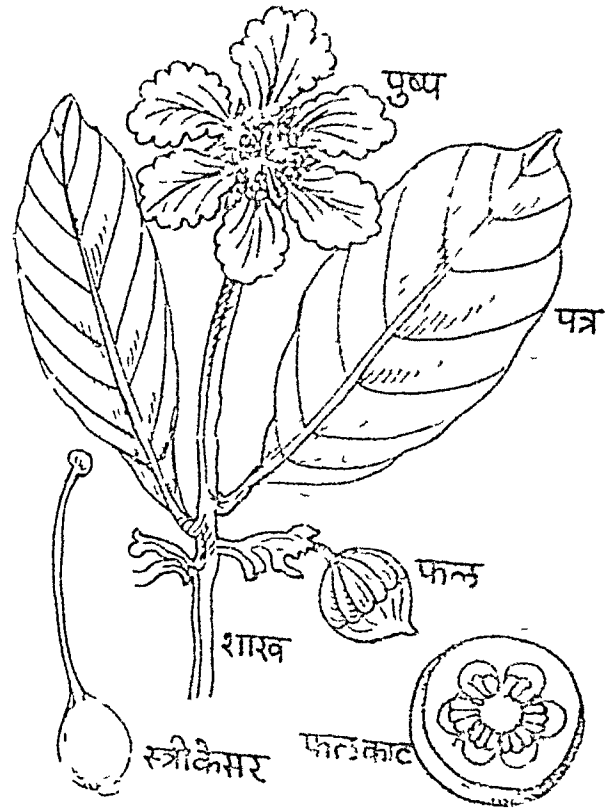
जल कुम्भी (*PISTIA STRATIOTES*)

पुष्प-वर्ग एव सूरण-कुल (Araceae) के इसके प्राय काण्डहीन, अनेक अधोमूल युक्त क्षुप, काई जैसे जलाशयो पर छाये हुए होते है। पत्रोद्भव के पूर्व इसकी नलिकाकार डडी, मध्य भाग मे फूली हुई मोटी कुभ या कलश जैसी होने से इसे कुभिका नाम दिया गया है। पत्र-प्रत्येक डडी पर ३ या ४ एक साथ, वृन्त-रहित, १-४ इ च लम्बे, मासल, गोलाकार, गाढे, नीलवर्ण के, दोनो ओर सूक्ष्म रामयुक्त होते है। पुष्प-वर्षाकाल मे, पत्रो के बीच से जो डडी सी निकलती है उन पर फूल, बेगनी रग के, लम्बगोल, एक खण्ड युक्त प्राय गुच्छो मे
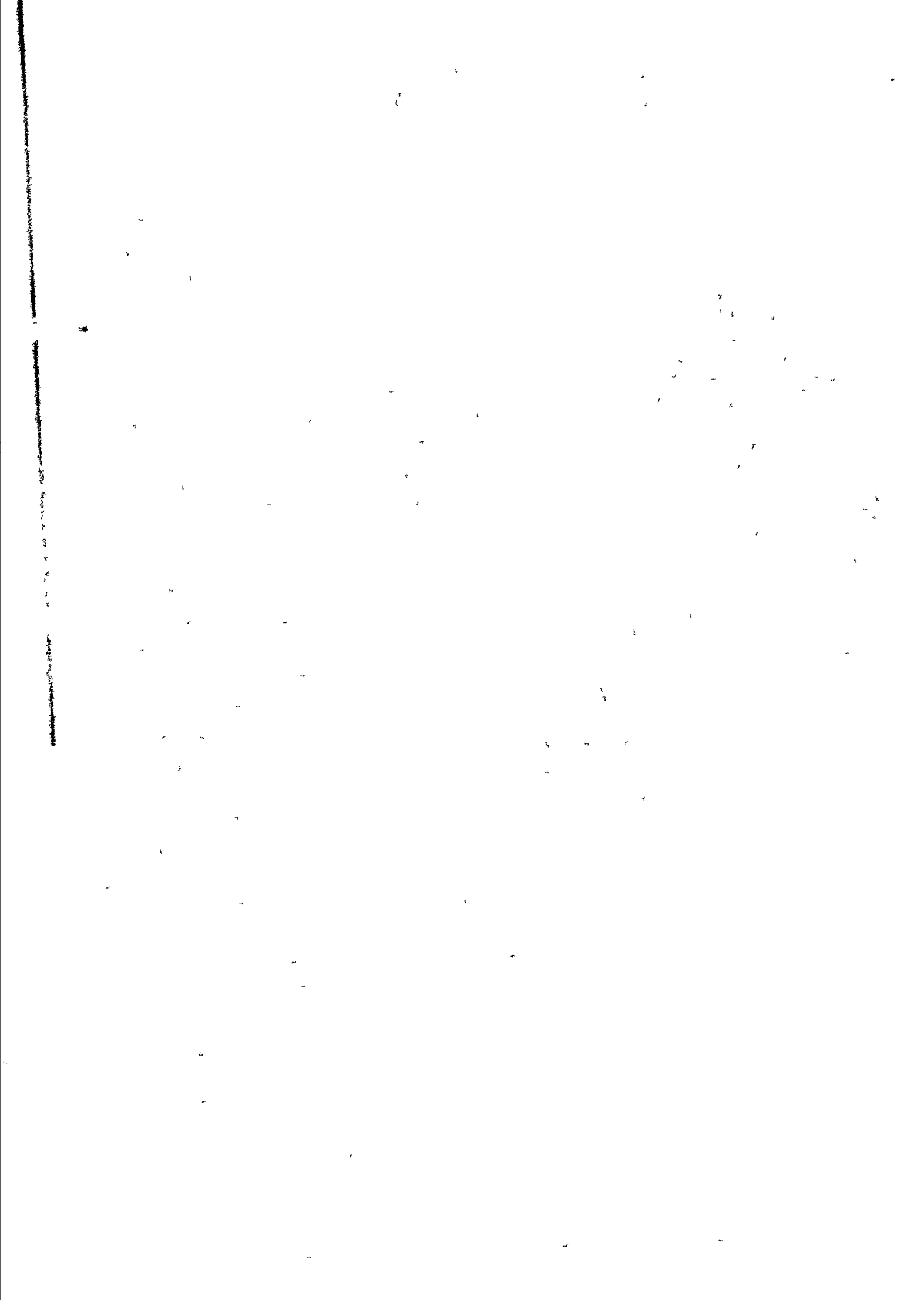
पिलाते तथा पेडू पर इसे पीस कर लेप करते है। (६) जीर्ण चर्म रोग पर–स्वरस को नारियल-तैल मे पकाकर लगाते है। (७) गलशोथ पर–स्वरस के साथ खाने के पान का रस मिला थोडा-थोडा पिलाते है।

पत्र—(८) व्रण और दाह पर पत्र–कल्क का लेप करते है। (९) रक्तार्श पर–पत्तो की पुल्टिस बना बाधने से अर्श की सूजन, वेदना और रक्तस्राव मे लाभ होता है। (१०) छोटे बच्चो के कास पर–पत्र को पान के बीडे मे रखकर चबाते तथा उसकी पीक को थोडा-थोडा बच्चे को पिलाते है।

मूल–स्नेहोपग, जलन व शोथनाशक व मृदुरेचक है।

(११) कास पर जड के चूर्ण को मिश्री के साथ फाक कर ऊपर से गुलाब-अर्क पिलाते है। (१२) श्वास पर— मूल के क्वाथ मे शहद मिला सेवन कराते है।

नोट—मात्रा–स्वरस १–२ तोला। क्वाथ–४–१० तो०।

विशिष्ट योग—

(१) जलकुम्भी तैल—इसके पञ्चाङ्ग का कल्क १६ तो०, तिल-तैल ६४ तो० तथा इसका ही स्वरस २५६ तो० एकत्र मिला, मदाग्नि पर तैल सिद्ध करलें। कपडे से छानकर शीशी मे भर रखे। इस तैल को कान मे डालने से कर्णशूल, पीव आना, नाडी-व्रण आदि दूर होते है। तैल-प्रयोग से पूर्व कान व व्रण आदि को साफ कर लेना चाहिये।

(श्री० स्व० यादव जी त्रिकम जी आचार्य)

(२) खटमलो के नाशार्थ यह प्रसिद्ध बूटी है—जहा खटमलो की विशेषता हो, उस स्थान पर इसके पञ्चाङ्ग को लाकर रख देने मात्र से समस्त खटमल इस पर आकर्षित होकर इसके पास आते और मर जाते है। (नाडकर्णी)

जलजमनी—देखिये—पाताल-गरुडी।

जल जम्बुआ (Alternanthera Sessilis)

अपामार्ग-कुल (Amarantaceae) के इसके लता जैसे पौधे आर्द्र भूमि पर या जलाशय के किनारे की भूमि पर ६ से १८ इच के परिमाण मे फैले हुए रहते है। इसकी शाखा जैसे-जैसे आगे बढती है, वैसे वैसे यह अपने श्वेत तन्तुओ द्वारा अपनी जडे जमीन पर जमाता जाता है। पत्र—आमने-सामने १ से ३ इच लम्बे, गोल तथा लगभग १ इच चौडे, अग्रभाग मे मोटे, पत्र–वृन्त-बहुत छोटा, सीधा,, पुष्प—छोटे-छोटे श्वेत या गुलाबी रग के मुण्डकाकार गुच्छो मे, पु केसर ५ सयुक्त, स्त्री-केसर २ या ३ तक अतिसूक्ष्म, फल—चपटा या दबा हुआ सा होता है। फूल और फल का समय वर्षा से शीत काल तक है। फल मे प्राय एक ही बीज होता है।

कोई-कोई इसे जलभागरा कहते है। शायद सस्कृत मे इसे ही मत्स्याक्षी कहते है, यह नाम सशयास्पद है।

यह बगाल मे तथा दक्षिण में जलाशयो के किनारे बहुत पाई जाती है।

नाम—

हि —जलजम्बुआ। म.–लांचरी। गु —जलजांबवो। जलभंगरो। बं.—सांची, शालिच। ले.–आल्टरनेन्थेरा सेसिलिस।

रासायनिक सगठन–

इस बूटी के नूतन भाग पौष्टिक होते हैं तथा इसमे प्र श. ५ प्रोटीन और लोह १६ ७ मि. ग्रा० प्रतिशत पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

शीतवीर्य, सकोचक, ग्राही, पौष्टिक, मूत्रल, स्तन्य, दाहप्रशमन एव मृदु भेदन या पित्तविरेचक हैं।

प्रसूता स्त्री को इसका स्वरस दूध के साथ या इसके रस से दलिया तैयार कर खिलाने से स्तनो मे दुग्ध-वृद्धि होती है।

दाह-युक्त व्रणो पर, या नेत्र-दाह पर इसके पत्तो का लेप करते है।

जलधनियाँ
RANUNCULUS SCELERATUS LINN.

(२) इस बूटी के पत्ते या पत्तो का रस त्वचा पर लगते ही जलन, खुजली एव छाला पड़ जाता है। इसी से कही २ इसे अगिया कहते है। किंतु अगिया बूटी इससे भिन्न है, जिसका वर्णन अगिया के प्रकरण खण्ड १ मे दिया गया है।

(३)इस बूटी के पौधो की एव उनके पत्र-पुष्प आदि की छोटाई, वढाई के भेद से कई जातिया है। किंतु गुण धर्म प्राय. सव का एक समान है।

नाम—

स --काण्डीर, काण्डकटुक, सुकाण्डक, तोयवल्ली, लटुकरी इ । हि.--जलधनिया, वनधनिया, कविराज, लटपुरिया, पलिका इ (कही २ देवकाडर)। म -खाजकोलती, कुलगी। अ.--वाटरसेलेरी (Water celery)ले.-रेननकुलस स्कलेरेटस। रे इ डिकस (R Indicus)

रासायनिक सघटन—

इसके समस्त अग मे एनिमोनिन (Anemonin) नामक एक प्रभावकारी, स्फटिक सदृश, दाहक, मदकारी एव विषैला तत्त्व होता है। तथा कुछ उडनशील तैल, रालादि भी पाये जाते है।

प्रयोज्य अग-पचाङ्ग ।

गुणधर्म व प्रयोग--

रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, वातकफ शामक, दीपन, पाचन, भेदन, आर्त्तवजनन है। तथा गुल्म, प्लीहा, उदररोग, उदरशूल, रजोरोध, एव विशेषत प्लेग पर प्रयुक्त है ।

रसग्रथियो के शोथ, ध्वजभग, आमवात, मकडी का विष, शीघ्र न भरने वाले व्रण, दुष्टव्रण, मस्से, चिप्परोग, क्रोष्टुशीर्ष, नाखूनो की सफेदी तथा खुजली आदि चर्म रोगो पर पचाङ्ग या पत्तो को पीस कर लेप करते है।

अति तीक्ष्ण तथा विषाक्त होने से इसका अन्त. प्रयोग वडी सावधानी से किया जाता है।

यह रक्तोत्क्लेशक एव स्फोट–जनक होने से इसका लेपादि वाह्य प्रयोग, त्वचा के भीतरसगृहीत दूषित जलादि को वाहर निकालने के लिये होता है । जैसे—

(१) हस्तमैथुन जन्य ध्वजभग या नपु सकता मे—जो दूषित जल शिश्न पर जमा हो जाता है, उसे निकाल वाहर करने के लिये, इसके पत्तो का लेप करने मे फुंसिया उठकर, दूषित द्रव्य निकल जाता है। फिर मक्खन लगाने पर छाले, स्फोट आदि निवृत्त होकर लाभ होता व उत्तेजना प्राप्त होती हे।

(२) प्लेग पर—यह प्रतिरोधक एव रोग–नाशक दोनो प्रकार से कार्य करती है। जहा प्लेग का प्रकोप हो, वहा इसका अचार, चटनी या शाकादि किसी न किसी रूप से प्रतिदिन १ से ४ तो तक सेवन करने से, या केवल इनके पत्ते ही २-४ नित्य चवा लेने से या पानी मे घोट कर पी लिया करने से प्लेग के आक्रमण का भय नही रहता।

प्लेग-ग्रस्त होने पर तत्काल ही इसे पीस कर प्लेग-ग्र थि पर लेप करे, प्रति २ या ३ घण्टे पर लेप वदलते रहे। ५-६ घण्टे मे ग्र थि पर छाले (फफोले) पडेगे, उनके फूट जाने पर दूषित जल रुई, कपडा, सोख्ता आदि से वही सुखा दे, अन्यथा अन्यत्र यह दूषित जल लग जाने

जलधनियाँ
RANUNCULUS SCELERATUS LINN.

(२) इस बूटी के पत्ते या पत्तो का रस त्वचा पर लगते ही जलन, खुजली एव छाला पड़ जाता है। इसी से कहीं २ इसे अगिया कहते हैं। किंतु अगिया बूटी इससे भिन्न है, जिसका वर्णन अगिया के प्रकरण खण्ड १ मे किया गया है।

(३) इस बूटी के पौधो की एव उनके पत्र-पुष्प आदि की छोटाई, बड़ाई के भेद से कई जातियां है। किंतु गुण धर्म प्राय सब का एक समान है।

नाम—

सं.—[illegible], [illegible]कटुक, सुकाण्डक, तोयवल्ली, [illegible]। हि.—जलधनिया, वनधनिया, कविराज, [illegible], [illegible] ([illegible])। म.—[illegible], [illegible]। अ.—[illegible] Water celery ले.—[illegible]। [illegible] (P Indicus)

[illegible]—

[illegible] मे एनिमोनिन (Anemonin) नामक एक प्रभावकारी, स्फटिक सदृश, दाहक, मदकारी एव विषैला तत्त्व होता है। तथा कुछ उडनशील तैल, रालादि भी पाये जाते है।

प्रयोज्य अग—पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, वातकफ शामक, दीपन, पाचन, भेदन, आर्त्तवजनन है। तथा गुल्म, प्लीहा, उदररोग, उदरशूल, रजोरोध, एव विशेषत प्लेग पर प्रयुक्त है।

रसग्रंथियो के शोथ, ध्वजभग, आमवात, मकडी का विष, शीघ्र न भरने वाले व्रण, दुष्टव्रण, मस्से, चिप्परोग, क्रोष्टुशीर्ष, नाखूनो की सफेदी तथा खुजली आदि चर्म रोगो पर पचाङ्ग या पत्तो को पीस कर लेप करते है।

अति तीक्ष्ण तथा विषाक्त होने से इसका अन्त. प्रयोग वडी सावधानी से किया जाता है।

यह रक्तोत्क्लेशक एव स्फोट—जनक होने से इसका लेपादि वाह्य प्रयोग, त्वचा के भीतरसगृहीत दूषित जलादि को वाहर निकालने के लिये होता है। जैसे—

(१) हस्तमैथुन जन्य ध्वजभंग या नपुंसकता मे—जो दूषित जल शिश्न पर जमा हो जाता है, उसे निकाल वाहर करने के लिये, इसके पत्तो का लेप करने से फुंसिया उठकर, दूषित द्रव्य निकल जाता है। फिर मक्खन लगाने पर छाले, स्फोट आदि निवृत्त होकर लाभ होता व उत्तेजना प्राप्त होती है।

(२) प्लेग पर—यह प्रतिरोधक एव रोग—नाशक दोनो प्रकार से कार्य करती है। जहा प्लेग का प्रकोप हो, वहा इसका अचार, चटनी या शाकादि किसी न किसी रूप मे प्रतिदिन १ से ४ तो तक सेवन करने से, या केवल इसके पत्ते ही २-४ नित्य चवा लेने से या पानी मे घोट कर पी लिया करने से प्लेग के आक्रमण का भय नही रहता।

प्लेग-ग्रस्त होने पर तत्काल ही इसे पीस कर प्लेग-ग्रंथि पर लेप करे, प्रति २ या ३ घण्टे पर लेप वदलते रहे। ५-६ घण्टे मे ग्रंथि पर छाले (फफोले) पडेगे, उनके फूट जाने पर दूषित जल रुई, कपडा, सोख्ता आदि मे वही सुखा दें, अन्यथा अन्यत्र यह दूषित जल लग जाने

मे वहा भी छाले पड जायेंगे। फफोलो का दूषित जल किसी पात्र में लेकर अन्यत्र फेका भी जा सकता है।

साथ ही साथ इस बूटी का स्वरस या कल्क १ या २ तो. की मात्रा मे प्रत्येक आधे या १ घण्टे पर पिलावे। ५-६ घण्टे मे प्यास और दाह कम हो जावेगी। खुलकर पेशाब और पाखाना भी होगा। ज्वर-वेग, बेचेनी, घबराहट आदि लक्षण भी घटने लगेंगे। (सक्रामक रोगाङ्क धन्वन्तरि)

प्लेग के ज्वर एव दाह की शाति के लिए यूनानी प्रयोग इस प्रकार है—इसकी ४-५ पत्तिया पीसकर रोगी की कलाई पर हलका लेप करे। ऊपर से कपडा लपेट कर गरम जल से भरी हुई बोतल या गरम ईट के टुकडे का सेंक करें। दिन मे ३ बार इस प्रकार सेंक करने से ६ घंटे मे ज्वर उतर जाता है। कलाई पर जो छाला पडता है, उसे दो दिन के बाद साफकर व्रणवत् चिकित्सा करें। या मक्खन या शतधौत घृत लगावें। इस क्रिया से असली प्लेग-ग्रथि का भी जोर कम हो जाता है। यदि ३ बार लेप करने से भी ज्वर न उतरे तो इस बूटी के ४-५ पत्ते पानी मे पीसकर पिलावे। ज्वर उतर जाने के बाद भोजन देने की जल्दी न करें। खूब क्षुधा लगने पर गाय का दूध अच्छी तरह पकाया हुआ गरम-गरम पिलावे। बाद मे साबूदाना की खीर, मूग का यूप, या मासाहारी को मास का शोरवा कुछ दिन पिलावे। फिर भोजन देवें। अन्यान्य प्रयोग—

गंज पर—पत्र-क्वाथ से सिर को धोते हैं।

दतपीड़ा पर—पत्रो को पीसकर उसकी लुगदी दात पर लगाते है।

रजोरोध पर—पत्रो को पीस, थोडा शहद मिला गुटिका सी बना गर्भाशय के मुख पर रखते हैं। प्रसव काल का रुका हुआ दूषित रक्त आदि भी इससे बह जाता है।

कठमाला पर—इसका प्रलेप करते है। दीपन-पाचन के लिये इसके हरे ताजे पत्रो को घृत मे भूनकर चूर्ण कर सेवन कराते है। इससे आमाशय की शक्ति बढती तथा मूत्र खुलकर होता है।

उकौत या छाजन पर—इस बूटी के मूल को तुलसी-पत्र के रस मे पीसकर लेप करते हे।

अर्श पर—इसकी जड (मूल) को काली मिर[illegible] साथ पानी मे पीस छानकर पिलाते हैं।

नारु पर—इसकी जड को गरम पानी मे पीस[illegible] लेप करते है।

छीक आने के लिए—इसकी जड का महीन [illegible] किंचित् प्रमाण मे सु घाते है। खूब छीके आती है।

शुक्रमेह पर—इस बूटी के फल को पान के बी[illegible] रखकर खिलाते हे।

नोट—१ मात्रा—चूर्ण २ से ८ रत्ती तक। बच्चो[illegible] लिए १ रत्ती।

अधिक मात्रा मे (६ माशे तक) खा लेने से इ[illegible] विपाक्त लक्षण—मुख, गला, आमाशय एव आत्र मे अ[illegible]विक दाह, वमन, विरेचन, जिह्वा-शोथ हो कभी-कभी [illegible] की वमन आदि होने लगते हे।

शमनोपचार—ताजा मक्खन, गोघृत या शुद्ध तिल-[illegible] पिलाते तथा इन्ही की मालिश कराते हे। निर्विषी के चू[illegible] को गोघृत के साथ खरल कर छाछ मिला पिलाते है[illegible] पथ्य मे गरम दूध मे या मूग के यूप मे, या चावलो [illegible] मण्ड मे घृत मिलाकर देते हैं। कुछ शाति प्राप्त होने [illegible] बादाम का तैल या लुआब वेदाना पिलाते है। तैल बादा[illegible] नाक मे टपकाते है। सिर पर गुलाव तैल लगाते है। ईस[illegible]गोल का लुवाव अनार-रस के साथ सेवन कराते है।

२ इसका क्वाथ या जल मिलाकर निकाला हुआ [illegible] रस वामक है। इसे कफ, पित्त एव विपादि निकालने [illegible] लिये देते है। किसी विषैले जानवर के काटने पर इसक[illegible] क्वाथ या रस थोडा पिलाते है तथा इसे नीबू के रस [illegible] घोट कर सलाई से नेत्रो मे आजते हे।

पाश्चात्य प्रणाली से इसे मद्य मे मिला टिंचर तैया[illegible] कर अत्यार्तव आदि गर्भाशय के विकारो को दूर कर[illegible] तथा स्तन्य (दुग्ध) वृद्धि के लिए सेवन कराते है।

इसके स्वरस को अल्प मात्रा मे शोधन, रोपण का[illegible]कारी मरहमो मे मिला, शीघ्र न भरने वाले व्रण, दुष्[illegible] व्रण आदि पर लगाते हैं।

विशिष्ट योग—

१ टिंचर जलधनिया—इसका स्वरस १ भाग तथा मद्यसार या रेक्टिफाईड स्प्रिट १० भाग दोनो का मिश्रण कर मजबूत कार्क वाली शीशी मे ३ दिन बन्दकर रखे। फिर फिल्टर पेपर से छानकर शीशियो मे भर ले।

मात्रा—५ से १५ बूद तक, २॥ तोला तक शुद्ध जल मे मिला, १ या २ घटे बाद देते रहने से प्लेग का ज्वर उतर जाता है। स्त्री के गर्भाशय के विकार दूर होते हैं। स्तन्य-वृद्धि होती व आमाशय की पाचन-शक्ति बढती है। एतदर्थ इसे दिन मे २ या ३ बार देते हैं।

२ अचार या काजी जलधनिया—इसकी कोमल शाखाओ को काट कर पानी मे उबाले। नरम हो जाने पर नीचे उतार कर नमक मिला कर मिट्टी के पात्र मे भर धूप मे रख दे। २-४ दिन मे अच्छी अम्लता आ जाने पर, थोडा थोडा सेवन करने से वात-कफ के विकार दूर होते हैं।

३. तैल जल-धनिया—इसका स्वरस और तिल तैल समभाग लेकर, मदाग्नि पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें।

इसे पक्षाघात आदि वात-व्याधि पर तथा शरीर के कमजोर हिस्सो पर मालिश करते रहने से लाभ होता है।

४ जलधनिया द्वारा रौप्य भस्म—शुद्ध चादी के कटकवेधी पत्रो को ११ बार इसके रस मे बुझा कर इसके १ पाव कल्क (लुगदी) के बीच मे रख, सम्पुट कर २५ सेर कण्डो की आच मे गजपुट देवे। —अथवा

चादी के वर्कों को इसके रस मे ३ दिन खरल कर सपुट मे रख, २-४ उपलो की आच दे। ठंडा होने पर निकाल कर पुन इसी प्रकार आच देवे। दूसरी या तीसरी अग्नि के बाद बिना चमक की भस्म हो जावेगी।

मात्रा—१ रत्ती, उचित अनुपान के साथ लेने से वाजीकरण-शक्ति पैदा होती है।

स्मरण-शक्ति की वृद्धि के लिए तथा सदैव बने रहने वाले जुकाम आदि के निवारणार्थ उक्त भस्म का मिश्रण इस प्रकार बनावे—

बादाम, कद्दू, धनिया और सोफ की गिरी तथा खस खस प्रत्येक ५ तोला, दाना छोटी इलायची २ तोले और मिश्री २५ तोले, इन सबके महीन मिश्रण मे उक्त रौप्य भस्म अच्छी तरह खरल कर रखे। मात्रा—१ तोले दूध के साथ रात्रि मे सोते समय लिया करें।

(उक्त विशिष्ट योग वैद्य उदयलाल जी महात्मा-के लेख से लिए गये है)

जल नीम (Herpestis Monniera)

गुडूच्यादिवर्ग एव तिक्त-कटुका-कुल (Scrophulariaceae) का इसका अतितिक्त स्वाद वाला, छोटा क्षुप होता है। जिसके काण्ड अतिकोमल, सरस, सूक्ष्म रोमश, ग्रन्थियुक्त होते हैं, तथा प्रत्येक ग्रन्थि से मूल निकलते हैं। यह सजल भूमि मे, कीच के ऊपर, हरा-भरा पसरा हुआ रहता है पत्र ½ से १ इच तक लम्बे १/१२ से ⅓ इच चौडे, युग्मपत्र आमने सामने, वृन्तरहित, कुछ मोटे से गूदेदार एव सूक्ष्म काले चिन्हो से युक्त होते है। ये पत्र छोटे कुलफा के पत्र जैसे आकार प्रकार के होते हैं। पुष्प-ग्रीष्म या वर्षा के प्रारभ मे, पत्रकोण से निकले हुए, एकाकी, छोटे-छोटे, नील या श्वेत वर्ण के, पु केसर ४, बीजकोप या डोडी-प्राय फूलो के साथ ही ग्रीष्म काल मे, छोटी-छोटी १/६ इच लम्बी अण्डाकार, चिकनी, नुकीली, दो कोष्ठो मे विभक्त, अनेक फीके रग के सूक्ष्म बीजो से युक्त होती हैं। ये डोडी सूखने पर भूरे रग की हो जाती है।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र आर्द्र जलासन्न भूमि मे, प्राय कुओ के आसपास जहा पानी बराबर गिरता रहता है अधिक देखने मे आती है।

बगाल मे ब्राह्मी के स्थान पर इसका ही व्यवहार

किया जाता है। अत इसे बगीय-ब्राह्मी भी कहते है। राजनिघण्टुकार की क्षुद्रपत्रा ब्राह्मी यही है। जल के समीप पैदा होने तथा स्वाद मे नीम जैसी कडुवी होने से यह जल नीम कहलाती है।

बगीय कविराजो का अनुसरण करते हुए कई लोगो ने इस जलनीम को ही असली ब्राह्मी या मण्डूकपर्णी मान लिया है। वास्तव मे ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी ये दोनो शतपुष्पा कुल (umbelliferae) की बूटिया परस्पर किंचित् भिन्न एव इस जलनीम से भी भिन्न है। ब्राह्मी या मण्डूकपर्णी की शुष्क पत्तियो मे कोई विशेष स्वाद या गन्ध नही होता, किंतु जलनीम के शुष्क होने पर भी तिक्त स्वाद रहता है। ब्राह्मी या म० पर्णी विपाक मे मधुर, शीतवीर्य एव दीपन है। शेष गुणधर्मो मे प्राय. तीनो (ब्राह्मी, म० पर्णी और जलनीम) समान हैं। (ब्राह्मी का प्रकरण देखे)

तुलसी कुल (Labiatae) के Lycopus Europaens लेटिन नाम की बूटी को भी हिन्दी मे जलनीम, काश्मीर मे गदभ गुण्डु कहते है। यह प्रस्तुत प्रसग की बूटी से एकदम भिन्न है। यह केवल शातिदायक है, तथा विशेषत पुल्टिस के काम आती है।

नाम—

स०-क्षुद्रपर्णा ब्राह्मी, जलनिम्ब, जललघु ब्राह्मी। हि०-जलनीम, बरमी, सफेद चमनी। म०-बाम। गु०-कड़वी लूणी, बाव, भुई ओकरा। बं०-छोट बिरमी, छोपचमनी। अ०-थाईम लीव्हड ग्रेटि ओला (Thyme leaved-gratiola), वा कोपा (Bacopa)। ले०-हरपेस्टिस मोनिएरा कुनीफोलिया (Moniera, Cuneifolia) बाकोपा मोनिएरा (Bacopa Monniera)।

रासायनिक सघटन—

इसमे प्र० श० ००१ से ००२ तक जो ब्राह्मीन (Bramhine) नामक क्षारतत्त्व होता है, वह कुचले के क्षारतत्त्व स्ट्रिकनीन (Strychinine) जैसा ही प्रभावशाली है। यह मेढक, चूहे आदि जानवरो के लिये अति विषैला है। इसकी अल्प मात्रा से रक्त का तनाव या भार कुछ बढता है, तथा श्वसन-क्रिया और आत्र, गर्भाशय आदि की अनैच्छिक मासपेशिया उत्तेजित होती हैं।

ब्राह्मी का ब्राह्मीन या हर्पेलारिन (Vellarin) नामक क्षारतत्त्व इतना विषैला नही होता। वह तो प्रत्यक्ष हृदय के लिये बल्य है, तथा इस जलनीम का क्षारतत्त्व अप्रत्यक्ष रूप से हृदयोत्तेजक होता है।

उक्त क्षारतत्त्व के अतिरिक्त इसमे कुछ ऐन्द्रिक अम्ल, राल आदि पदार्थ, तथा एक उडनशील तैल भी पाया जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग—पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफ-वात-शामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, मूत्रल, वामक, रक्तशोधक, मेध्य, नाडीबल्य, वेदना-स्थापन, हृदयोत्तेजक, रक्तभार-वृद्धिकर, स्वेदजनन, गर्भाशय-सकोचक, कटु-पौष्टिक, ज्वर-शातिकर, शोथ एवं आक्षेपहर है।

जलनीम (बाम)
HEPPESTIS MONNIERA LINN.
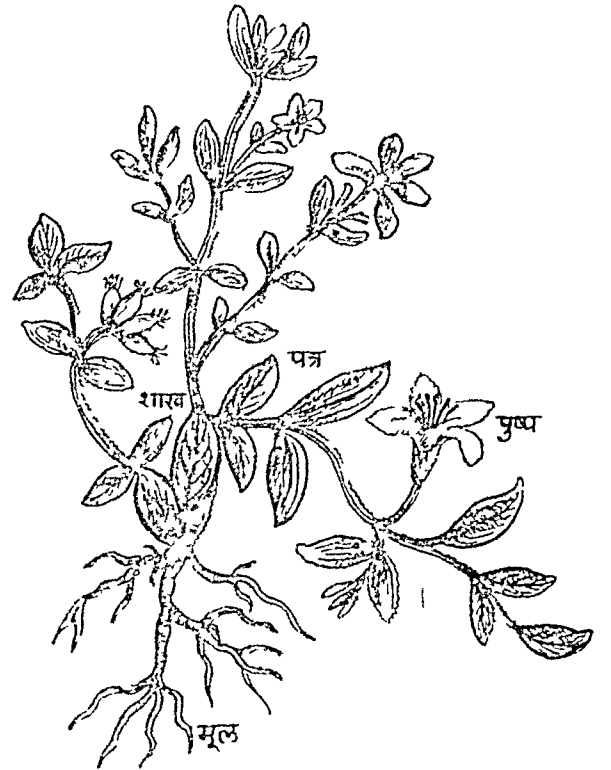
यह जीर्ण उन्माद, जीर्ण अपस्मार आदि मस्तिष्क विकारो पर तथा नाडी दौर्बल्य, अग्निमाद्य, आमदोष, विबन्ध मूत्रकृच्छ्र, उदर-रोग, शोथ, कृमि, वातरक्त, व्रण, कष्टार्त्तव, ज्वर, कुष्ठ-कण्डू आदि चर्मरोगो पर व्यवहृत है।

यह बूटी उत्तेजक होने से इसका प्रयोग रोग के तीव्र-प्रकोप काल मे करना ठीक नही है।

अर्श पर इसे त्रिफला के साथ सेवन करते हैं। स्वर-भग मे इसके पत्तो को घृत मे तल कर खिलाते है। उदर-शूल मे—पत्तो को पीस लेप करते हैं।

मसूरिका मे—इसके स्वरस मे मधु मिला उचित मात्रा मे पिलाते है।

आखो के सामने अधेरा या चक्कर आने पर—इसके पत्र का रस प्रलेप करते है।

फोडे को शीघ्र पकाने तथा उसे फोडने के लिये—इसे पीस कर बाधते हैं। त्वचा के रोग पर—इसे गिलोय और उशवा के साथ सेवन कराते हैं। शोथ पर—इसे गरम-गरम लेप करते है।

बालक की तृषा-शाति के लिये—पत्र-रस मे जीरा और शक्कर मिला पिलाते है। कर्णव्रण तथा कर्णस्राव पर—पचाङ्ग को पीसकर, गोमूत्र मे पका, सुखोष्ण पिचकारी कान मे लगाते है। ५-७ बार इस प्रकार पिचकारी लगाने से लाभ होता है। बिच्छू के दश पर—पत्तो को पीस लेप करते है।

(१) उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, भ्रम आदि मस्तिष्क-विकारो पर—इसके पत्र या पचाङ्ग-स्वरस १ तो० मे अकरकरा का या कुलजन का चूर्ण ३ मा० तथा उतना ही मधु मिला सेवन कराते रहने से उन्माद, चित्तभ्रम तथा अपस्मार मे लाभ होता हैं। इससे स्नायु-मण्डल की शक्ति बढती है।

उन्माद मे—पत्र-रस ६ मा० मे कूठ-चूर्ण २॥ मा० तथा १ तो० मधु मिला सेवन कराते हैं। उक्त विकारो पर इसके कल्क एव स्वरस द्वारा सिद्ध घृत का सेवन भी विशेष हितकारी है। आगे विशिष्ट योगो मे—घृत-जलनीम और तैल-जलनीम देखे।

(२) उपदश पर—इसके पचाङ्ग ३ मा० के साथ ५ नग काली मिर्च लेकर ५ तो० जल में पीस-छानकर नित्य १ या २ बार सेवन कराते है। इससे उपदश तथा सुजाक एव तज्जन्य गठिया व रक्त-विकारो मे भी लाभ होता है। अथवा इसे मजीठ या चोपचीनी के साथ भी सेवन कराते है। अथवा—इसके ताजे पत्ते ३ मा० पीसकर १ तो० मधु के साथ सेवन करने तथा ऊपर से १ पाव गोदुग्ध-पान करने, और इसके पचाङ्ग को कूटकर १६ गुने पानी मे चतुर्थांश क्वाथ कर, इस सुखोष्ण क्वाथ से स्नान करते रहने से उपदश की फुन्सिया, चकत्ते, व्रण आदि में लाभ होता है। किंतु कुपथ्य से बचते रहना आवश्यक है। स्त्री-प्रसग आदि से दूर रहे। अथवा इस बूटी के कल्क को घृत मे भून कर खिलाने तथा व्रणों पर त्रिफला की भस्म बुरकते रहने से भी उपदश मे लाभ होता है।

(३) रक्त-विकार पर—रक्त-विकार के साथ ही सुजाक भी हो तो इसका भवका द्वारा खीचा हुआ अर्क दिन मे दो बार २॥-२॥ तो० की मात्रा में पिलाते है, तथा पथ्य मे घृत, दूध, मक्खन आदि का सेवन कराते है।

तीव्र पामा (खुजली, छाजन) कण्डू आदि हो, तो रक्त-शुद्धि एव विकार-नाशार्थ ३ या ६ मा० यह बूटी ११ काली मिर्च के साथ पीस-छानकर पीवे। फिर प्रति-दिन बूटी की मात्रा दुगुनी करते हुए (किंतु काली मिर्च ११ ही रक्खे) जब १। या २॥ तो० बूटी की मात्रा हो जाय, तब ३ दिन तक उसी मात्रा मे लेकर, जिस क्रम से बढाया हो, उसी क्रम से मात्रा घटाते हुए (किंतु काली मिर्च ११ ही रक्खे) लावें। लगभग २६ दिन मे यह कोर्स पूरा होता है। कोर्स पूरा होने पर १ दिन उपवास करे। औषधि-सेवन-काल मे—गोघृत और चने की रोटी का भोजन करे। नमक, वह भी सेधा नमक बहुत थोडा, या न लेवे तो और अच्छा। दूध बिलकुल न लेवे।

बूटी ताजी ही लेना ठीक होता है। अन्यथा शुष्क बूटी का क्वाथ बनाकर सेवन करे।

(४) शीतपित्त पर—इस बूटी के साथ समभाग

काली मिर्च मिला १२ घण्टे तक इसी बूटी के स्वरस मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बनालें। ४-४ गोली प्रात-सायं जल के साथ देते रहने से नया या पुराना यह रोग ७ दिन मे दूर हो जाता है। (गा० औ० र०)

(५) मूत्रकृच्छ्र, अवरोध तथा अश्मरी पर—इसके पत्र-रस मे जीरा और मिश्री का चूर्ण, अथवा—फिटकरी व कलमी शोरा-चूर्ण मिला पिलाते है, और इसके रस मे कपडा भिगो कर या पत्रो को पीस कर, कल्क को नाभि या पेडू पर रखते है।

अश्मरी हो, तो इसके १ तो० ताजे स्वरस मे हजरत बेर (हज्रुल यहूद) की भस्म १ मा० मिला कर पिलाने से वमन तथा विरेचन के साथ पेशाब खुलकर होता, तथा अश्मरी निकल जाती है।

(६) बालको के तीव्र कास, जुकाम, एव फुफ्फुस के शोथादि विकारो पर—

इसका पत्र-रस १ से ३ माशा तक पिलाते है। वमन, विरेचन होकर लाभ होता है। साथ ही साथ इस बूटी को पीसकर पुल्टिस बना सुखोष्ण छाती पर बाधते हैं, या इसके कल्क का गरम-गरम लेप छाती पर करते हैं।

(७) ज्वर पर—इस बूटी के पचाग-चूर्ण की मात्रा १ माशा के साथ २-३ कालीमिर्च, जल मे पीस छानकर पिलाने से ज्वरवेग कम होता है। तथा इसीको कुछ दिनो तक सेवन करते रहने से, रस रक्तादि धातुयें शुद्ध होती व बल बढता है।

गरमी के दिनो मे ज्वर-वेग की—शाति के लिए—इसके पत्ते १ तोला समभाग धमासा के साथ महीन पीस छानकर पिलावे। यदि इसमे १ तोले वनमूग भी मिला ले तो ज्वर के बाद क्षुधा एव पाचन-शक्ति की वृद्धि होती है।

वात-कफ-ज्वर मे—इसके कल्क के साथ प्याज और बालू मिला पोटली बना स्वेदन करते हैं।

७ सन्धिवात गठिया-पर—इसका स्वरस किंचित् प्रमाण मे, घृत मिला पिलाते है। तथा इसके स्वरस मे थोडा पेट्रोल या मिट्टी का तेल मिला मालिश करते है। प्राय किसी भी शोथ-युक्त वेदना पर इसके स्वरस या कल्क के प्रलेप से लाभ होता है।

नोट-मात्रा-स्वरस आधा से १ तोला तथा चूर्ण ४ से ८ रत्ती।

विशिष्ट योग—

१ तैल-जलनीम (ब्राह्मी) इस बूटी के साथ वच, कूठ, दशमूल, एरण्डमूल, नागकेशर, तेजपात छरीला, पानडी, जटामासी, श्वेत चन्दन, दारुहल्दी, शखपुष्पी, खरेंटी, व गिलोय प्रत्येक २-२ तोला लेकर सबको इस बूटी के क्वाथ मे पीसकर कल्क करें।

प्रथम दिन काले तिल के तैल ४ सेर मे उक्त कल्क व इस बूटी का ही स्वरस ४ सेर मिला मदाग्नि पर पकावें। दूसरे दिन उसी तेल मे भागरा-स्वरस ४ सेर मिला पकावे। तीसरे दिन शंखपुष्पी-स्वरस ४ सेर मिला पकावे। फिर चौथे दिन बकरी का दूध ४ सेर मिला, तेल सिद्ध करे सिद्धहो जाने पर उतार कर तुरन्त ही छान लेवे। इच्छानुसार बेला, मोगरा आदि की सुगन्ध मिला सकते है।

इस तेल की मालिश सिर पर करते रहने से मस्तिष्क-शक्ति बढती है। जीर्ण उन्माद व जीर्ण अपस्मार मे अति हितकारी है। इसके नस्य व शिरोवस्ति विशेष गुणकारी है। (र० त० स०)

२ घृत-जल नीम (ब्राह्मी)-इस बूटी का स्वरस ४ सेर, घृत पुराना ४ सेर तथा वच, कूट और शख-पुष्पी की मूल, ये तीनो समभाग कुल ३२ तोला लेकर कल्क कर सबको एकत्र मदाग्नि पर पकाकर घृत सिद्ध करले।

मात्रा—½ तोला-से १ तोला तक, दूध के साथ, दिन मे दो बार सेवन से अपस्मार, शोषापस्मार, उन्माद, नाडी-दौर्बल्य जन्य विकार (न्यूरेस्थेनिया आदि), स्वर भग (क्षय जन्य) आदि रोगो पर विशेष लाभ होता है (नाडकर्णी)

जल नीली—दे० काई। जल पालक—दे० पालक मे।

जल पीपली[1] (Lippia Nodiflora)

गुडूच्यादिवर्ग एव निर्गुण्डीकुल (Verbenaceae) के बहुवर्षायु, बहुशाखायुक्त, एव मछली के गन्ध जैसे गन्ध युक्त इसके लता सदृश क्षुप प्राय ६ इंच से २ या ३ फुट तक की जमीन पर फैले हुए, सदैव हरे भरे रहते है। क्षुप के काण्ड-गोल, हरित पीताभ, रेखांकित चिकने, श्वेत रोम युक्त, पत्र—वृन्तरहित, छोटे-छोटे ½ से १½ इंच चौडे, अभिमुख, नोकदार, निम्न भाग मे सकडे, ऊपर की ओर कुछ चौडे, गहराई तक दातदार, दोनो ओर रोमश, पुष्प—पत्रकोण से निकले हुए १-३ इंच लम्बे पुष्प-दण्ड के अन्तिम भाग मे बहुत छोटे-छोटे श्वेत या गुलाबी रग के मजरी मे वृन्त-रहित, कुछ लम्बगोल आकार के लगते है। ये पुष्प ही बाद मे फल रूप मे परिवर्तित होकर छोटी पीपल जैसे दिखाई देते है। फल—ये फल लम्ब गोलाकार ⅟₂ इंच व्यास के लगभग शुष्क एव छोटी पीपल जैसे ऊपर को उभरे, तथा दो बीज युक्त (एक बीज गोल, दूसरा कुछ चपटा सा) होते है। फलो को खाकर मछली मरती है, अत इसे मत्स्यादनी भी कहते है।

यह भारत मे विशेषत दक्षिण के प्रान्तो मे तथा सीलोन मे, आर्द्र एव जलासन्न रेतीली भूमि मे विशेष होती है। वर्षाकाल मे अधिक फैलती है। काश्मीर की जलपीपली सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। जलपिप्पली को कोई महाराष्ट्री कहते है, किन्तु महाराष्ट्री इससे भिन्न है।

नाम—

स०-जलपिप्पली-मत्स्यगन्धा शारदी, मत्स्यादनी। हि०-जलपीपली (ल), देवकाडर, कविराज, भुई ओकरा, बुक्कन बूटी पनिसिगा, मोकना। म०-जल पिपली, रतवेल। गु-रतवेलियो, रतवा (इस विषय से पीछे टिप्पणी देखें)। ब०-बोडो बुक्कन, कावड़ा घास। अं०—पर्पल लीपिया (Purple lippia) ले०-लीपिया नोडीफ्लोरा (कहीं कहीं जलबनियां का जो लेटिन नाम है, वही इसका भी दिया गया है)।

इस बूटी मे एक कडुवा तत्व पाया जाता है।

---

[1] इस बूटी के पर्यायवाची नामों में, विशेषत: गुजराती में जो रतवा, रतोलिया नाम पाया जाता है। वह भ्रमपूर्ण है। आयुर्वेदाचार्य श्री सन्तलाल जी टाकसिथ वैद्यराज, नारनौल के एक (धन्वन्तरि वर्ष १ अंक ६ मे प्रकाशित) लेखानुसार—रतवा के क्षुप की ऊंचाई ५-६ फुट तक, तथा मूल में अंगुष्ठ जैसा मोटा होता है। १॥-२ फुट ऊपर चल कर इसके पतले पतले स्कन्ध चलते हैं। इनसे अधिक पतली टहनिया लगती हैं। इस तरह यह एक खासा झाड सा मालूम देता है। टहनियों में नीम की भांति सींके तथा सींक में दोनों ओर पत्ते आकार में लम्बे, अग्रभाग मे कुछ गोल ऐसे ४-४ से ८-८ तक लगते है, तथा एक पत्ता सींक के सिरे पर होता है। फाल्गुन या चैत्र मास में, मूग या मोठ जैसी लम्बी फलिया आती है। इनमे स्याह, सुर्ख रग के बीज निकलते है। रतवा और रतवो भेद से इसकी दो जातियां हैं। रतवी का आकार प्रकार रतवा की अपेक्षा छोटा होता है।

यह बूटी जहां कोई भी वृक्ष अंकुरित नहीं होता, ऐसे वालुकामय मरुदेश में भी अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एव फलित होती है। किन्तु जल पीपली तो प्रायः जल-बहुल स्थानों में ही होती है। इसमे जलपीपली जैसी मत्स्य आदि की कोई गन्ध नहीं होती, तथा स्वाद में मधुर होती है। इसमें पीपली जैसा कोई फल नहीं लगता प्रत्युत बीजों से भरी ल बी लम्बी फलियां आती हैं।

बालविसर्प (पहले की फुंसियां)पर—रतवा के पत्र जल में औटा कर, उस जल से, इसी बूटी के क्षुप के मूल के पास ही किसी भी प्रात काल की या सायकाल की सन्ध्या मे बालक को हाथों में लेकर स्नान करावें, बस फुंसियां नष्ट हो जावेगी, प्राणों का भय नहीं रहेगा। किंतु जिस क्षुप के तले स्नान करावेंगे। वह रतवा का क्षुप जलकर सूख जावेगा। यह एक प्रत्यक्ष चमत्कार है।

इसके पत्र व लाल चन्दन दोनों को घिसकर घुट्टी की तरह बालक को प्रातः साय पिलावें। तथा इसी का लेप फुंसियों पर करें।

यदि इस व्याधि से बालक की मृत्यु हो जाय, तो पुन. जब गर्भ स्थित हो उस समय से प्रसव काल तक गर्भिणी को इसके ३ पत्र व कालीमिर्च घोटकर प्रतिदिन प्रात: पिलाते रहने से आगामी बालक इस रोग से सुरक्षित रहेगा। इत्यादि देखें धन्वन्तरि अनुभूत चिकित्सांक पृ० ४०७ व पृ० ४०३।

प्रयोग अङ्ग–पंचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, कषाय, विपाक मे कटु, शीतवीर्य (कोई उष्णवीर्य मानते हैं), रुक्ष, ग्राही, रोचन, दीपन, अनुलोमन, स्नेहन, वेदनाहर, वातकारक, हृद्य, स्तभकर, कफघ्न, वीर्यवर्धक, चक्षुष्य, रक्त प्रसादन, मूत्रल, तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कृमि, दाह, व्रण, श्वास, कफ, चित्तभ्रम, मूर्च्छा तृषा, रक्तार्श, रक्तपित्त रक्तविकार, उन्माद आदि विकारो पर प्रयोजित है।

दाह-युक्त शोथ, विद्रधि, गर्दन पर उठी हुई ग्रंथि, वद, प्लेग की ग्रंथि आदि पर तथा फोडो को पकाने के लिये पचाग को पीस कर पुल्टिस वनाकर वाधते या प्रलेप करते हैं।

मुख की झाई, दाद, तथा, नेत्रो के ऊपर के काले दागो पर इसका लेप करते है।

रेचनार्थ—इसे ६ माशे, की मात्रा मे जल के साथ पीस कर पिलाते हे।

सिर-दर्द पर—पत्तो को पीसकर लेप करते हैं।

हाथ पैरो की जलन पर—इसे पीसकर लेप करते है। तथा आंवला ७ माशा भिगोकर प्रात मल छानकर मिश्री मिला पिलाते है।

कामशक्ति या अत्यधिक भोग-शक्ति को मन्द करने के लिए पत्तो को पीसछानकर मिश्री मिला पिलाते है।

पित्त-ज्वर मे—इसके चूर्ण को ३ से ६ माशे की मात्रा मे मधु से चटाते है।

१ सुजाक या मूत्रकृच्छ्र पर—इसके १ तोले पचागको पीस, १ पाव ठडे जल मे घोलकर, उसमे २।। तोला शक्कर तथा जवाखार व कलमीशोरा ६-६ माशा मिला, दिन भर मे ४ वार, ३-३ घटे मे पिलाने से, मूत्र खूब खुलकर होता और सुजाक मे लाभ होता है। उक्त १ पाव जल के मिश्रण की ही ४ मात्रा करें। इसे पीने से कभी कभी वमन हो जाती है, किन्तु घवडाने की कोई वात नही।

(गृह चिकित्सा)

अथवा—सुजाक पर—इसके २ तोले ताजे पत्तो को दिन मे ३ वार, घोट छानकर मीठा कुछ भी न मिलाते
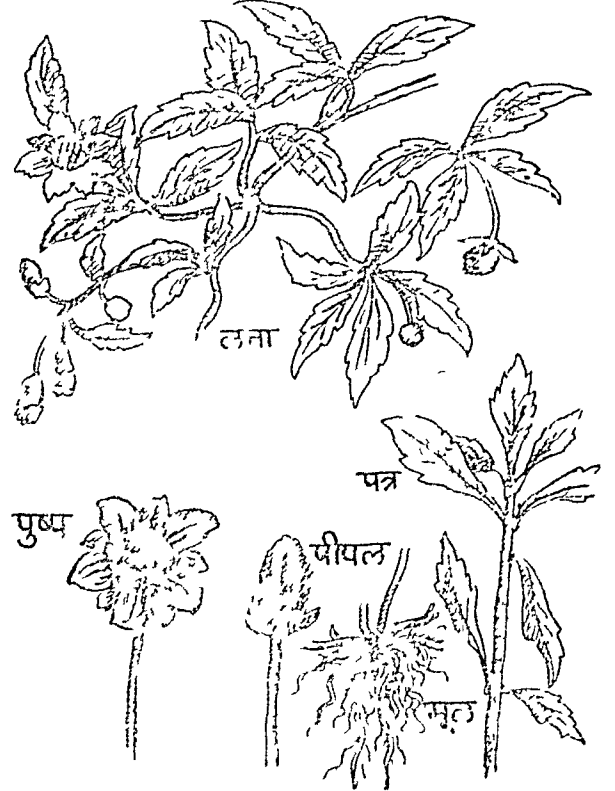
हुए सेवन कराते है।

अथवा—अतिदाह एव पीडायुक्त मूत्र होता हो तो इसे जीरा या सोया बीज के साथ पीस छानकर पिलाते है।

सुजाक जन्य सधि-वेदना हो तो इसका स्वरस पिलाते हैं, तथा वेदना-स्थान पर इसका लेप करते है।

२ अर्श पर—विशेषत रक्तार्श हो तो इसकी ताजी पत्ती १ तोला तथा काली मिर्च व मिश्री आवश्यकतानुसार लेकर सवको पीस छानकर प्रात निराहार अर्थात् कुछ न खाते हुए, पीवें, तथा साय खाना खाने के वाद (३-४ घटे वाद) पीवे, ऊपर से कोई स्निग्ध-पदार्थ खावे। यदि २-४ दिन वाद मस्सो मे पीडा या खुजली हो तो इसी बूटी को पीसकर गाय के मक्खन मे मिला टिकिया सी वना वाध दे तो वहुत शीघ्र लाभ होगा। २१ दिन सेवन करे तथा वाधे। यह खूनी ववासीर का अनुभूत योग है।

अथवा—इस बूटी के स्वरस के साथ शीशम का पत्र-रस तथा मूली-पत्र का रस समभाग लेकर मंद आंच पर पकावे। गाढा हो जाने पर नीचे उतार कर उसमें समभाग असली रसौत मिला, छोटे बेर जैसी गोलियां बनालें। प्रात साय २-२ गोली शीतल जल से सेवन करें रक्तार्श में अत्यन्त लाभप्रद है—

(कविराज विश्वनाथ प्रसाद जी भिषगाचार्य लखनऊ। धन्वन्तरि वर्ष २३ अङ्क ८)

दाह-युक्त फूले हुए रक्तार्श के मस्सों को, इसके पचांग को पीस, लुगदी की पोटली बना उसे खूब गरम ईंटो पर गरम कर सेंकते हैं।

अर्श के मस्से बाहर न हो भीतर ही कष्ट देते हो तो इसके पत्तो और फलो की चटनी बना कर खिलाते ह।

अथवा—इस बूटी का केवल स्वरस ही प्रात साय पिलाते रहने से वेदना-युक्त रक्तस्राव मे शीघ्र ही लगभग ३ दिन में लाभ हो जाता है।

३ रक्तपित्त पर—इसके पचाङ्ग के चूर्ण १ तोला को, या ताजी बूटी को दूध के साथ घोट छानकर शक्कर मिला पिलाने से नाक, छाती, व गुदमार्ग से होने वाला रक्तस्राव दूर हो जाता है।

नकसीर पर तो इसे पानी के साथ पीसकर सिर पर बांधने या लेप करने से भी लाभ होता है।

४ बाल-रोगो पर—इस बूटी का फांट या क्वाथ १ से २॥ तोला तक की मात्रा मे दिन मे दो बार बालको के अतिसार, साधारण सरदी, कष्ट से पेशाब का होना, अश्मरी एव अजीर्ण आदि विकारो मे तथा प्रसूता के प्रसूति ज्वर मे भी दिया जाता हे।

बालक के रक्तातिसार में इसके स्वरस को पिलातेहैं।

छोटे बच्चों को मलावरोध हो तो पत्र-स्वरस १० से २० बून्द तक मधु मिला चटाते ह। पेट साफ होकर, पाचन-क्रिया में सुधार होता है।

बच्चो के मस्तक के फोडा, फुसी और खुजली पर पत्रो को पीसकर मक्खन मिला लगाते हैं। इसके साथ ही बबूल-पत्र व मुलतानी मिट्टी भी मिला लेने से और भी उत्तम लाभ होता है।

५ कष्टार्त्तव पर—इस बूटी के साथ मुनक्का और समुद्रशोष कूट पीसकर छोटे बेर जैसी गोलियां बना, प्रात साय १-१ गोली दूध के साथ सेवन कराते हैं। मासिक धर्म की रुकावट दूर होती है।

६. श्वास पर—ताजी पत्ती १ तोला का स्वरस निकाल उसमें ७ नग कालीमिर्च-चूर्ण मिला पिलाते हैं। मुख से होने वाले रक्तस्राव को भी यह दूर करता है। इससे अतिसार मे भी लाभ होता है।

७ उपदंश पर—इस बूटी के फलो को पीसकर मटर जैसी गोलियां बना, छाया-शुष्क कर दिन मे २-३ बार चिलम मे २ गोलियां रख धूम्रपान कराते हैं।

८ छाजन (उकौत, एग्जीमा) पर—छाया-शुष्क पचाङ्ग का महीन चूर्ण कर प्रथम छाजन वाले स्थान पर सरसो तेल चुपड कर ऊपर से यह चूर्ण बुरकते हैं। ऐसा करते रहने से ७ या १८ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

नोट—मात्रा—चूर्ण-२ से ६ माशा। स्वरस-आधा से २ चम्मच तक।

विशिष्ट योग—

१. शर्बत जलपीपली—प्रथम इस बूटी के समभाग ब्रह्मदण्डी लेकर जौकुट कर रातभर दुगने जल मे भिगो रक्खे। प्रात मदाग्नि पर पकावें। आधा जल शेष रहने पर, छानकर उसमे ४ गुनी शक्कर मिला शर्बत तैयार करलें।

मात्रा—२ से ४ तोला प्रात साय लेने से उष्णता तृष्णा, यकृत के विकार, रक्तविकार तथा उन्माद आदि विकार दूर होते हे।

(२) भस्म-हिंगुल (सिंगरफ)—सिंगरफ रूमी १ तोला की डली लेकर १ पाव इस बूटी की लुगदी मे रख, गोला बना लें। फिर १ पाव पीली सरसो का तैल लेकर कढाई मे चढा दें। तथा कढाई के बीच मे उक्त गोला रख, मध्यम आंच पर पकावे। जब ऊपर की लुगदी मात्र जल जावे, तो सावधानी से हिंगुल की डली को निकाल लें। ध्यान रहे वह डली जलने न पावे। फिर उसे अर्क-दुग्ध मे घोटकर (जब लगभग १० तो० आक का दूध समाप्त हो जाय तब) गोला बना, छाया

शुष्क कर, उस पर मोटा खद्दर का टुकडा लपेट कर (खद्दर शुद्ध श्वेत रग का तथा आध पाव वजन का हो) ऊपर आग रख दे। जब जल कर ठडा हो जाय तो सावधानी से, श्वेत रग की सिंगरफ भस्म निकाल, खरल कर रखें।

मात्रा—१ रत्ती, मक्खन या मलाई के साथ सेवन से शरीर की सधियो की पीडा, तथा वात-कफ के विकारो पर विशेष लाभप्रद हैं।

गर्म, वादी, गरिष्ठ पदार्थ, लाल मिर्च, तैल, खटाई आदि से परहेज रक्खें।

इस बूटी के द्वारा ताम्रभस्म, यशदभस्म, रजतभस्म, माक्षिकभस्म, लोह, सगजराहृत आदि की भस्मे भी बनाई जाती है। (धन्वन्तरि वर्ष २३ अक ८)

नोट—इस बूटी की एक लाल फूल वाली जाति होती है। जिसके बीजों को जीरे के साथ लेने से वमन, प्यास की अधिकता, तथा जी की मिचलाहट दूर होती है। इसकी जड को दांत मे रखने से द त-पीडा मिट जाती है, किंतु अधिक समय तक रखने मे दांत गिर जाते हैं। (व चं)

जल-फल दे०-सिंघाडा। जल-ब्राह्मी दे०-जल नीम। जल-भागरा दे०-जल जम्बुआ और भागरा मे।
जलमहुआ दे०-महुवा मे। जलमाला दे०-बडा या जलवेत। जलवेत दे०-वेद।

जल सिरस

(*TRICHODESMA ZEYLANICA*)

श्लेष्मातक-(लसोडा) कुल (Boraginaceae) के इसके वृक्ष ३० से ६० सें० मी० तक ऊचे, तना या पिंड मोटा, बेंगनी रग का, पत्र—५ से १० सें० मी० तक लम्बे व १ २ से २ ५ सें० मी० चौडे, पुष्प—नीले रग के और फल—पकने पर भूरे रग के होते हैं।

ये वृक्ष गुजरात, कोकण, और मद्रास के खुश्क स्थानो पर विशेष होते हैं।

नाम -

सं -अम्बुशिरीपिका, झिंगी इ। हि -जलसिरस, ढाढोन, हेतेमुरिया। म —जलशिरसी, गाओझवान। ले.—ट्रायकोडेस्मा झेलेनिका।

गुण-धर्म व प्रयोग—

त्रिदोषशामक, अर्श आदि पर उपयोगी है। पत्ते स्नेहन और मूत्रल हैं। दाहयुक्त शोथ पर पत्तो की पुल्टिस बाधते हैं।

जलाधरी (बदरग)
ZANTHOXYLUM RHETSA DC

जलाधारी

ZANTHOXYLUM BUDRUNGA

जम्बीर कुल (Rutaceae) के इसके वृक्ष मध्यम आकार के नीबू वृक्ष के जैसे, छाल—कटकयुक्त फीकी पीले रग की पत्र—नीबू-पत्र जैसे, किंतु कुछ छोटे, पुष्प—श्वेत पखड़ीवाले, फल—गोल, नींबू जैसी गंध

युक्त, बीज—लम्बगोल, चिकने, चमकीले काले या काले रंग के होते हैं।

यह हिमालय के उष्ण स्थानों में आसाम, सिलहट, उड़ीसा, खासिया पहाड़ी, रंगून, चटगांव तथा दक्षिण में कोकण, ट्रावनकोर, मैसूर, मलाबार आदि स्थानों में होता है।

नाम—

सं.-तेजोवती, अग्रवल, लघुवल्कली इ. हि.-जल धारी बुक्ष। म.—तेजबला, कोकली, टेफल। गु.—तेजबल। ब.—नाम्बुल। ले.—जैन्थोक्साइलम बुड्डा।

रासायनिक संघटन—

इसमें प्र० श० ० २४ क्षारतत्त्व होता व बीजों में सुगंधित तैल होता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

फल—तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, संकोचन, उत्तेजक, पौष्टिक, कफनाशक, क्षुधावर्धक, श्वास-नलिका-प्रदाह-शामक तथा हृद्रोग, ताप, अर्श, अग्निमांद्य, अतिसार, मुख-दन्त तथा गल-रोग में उपयोगी है।

मूल—सुगंधित, अति स्वेदल, ज्वरघ्न तथा रज-स्थापनीय है।

हैजे पर—फल को अजवायन के साथ पीसकर पिलाते हैं।

सन्निपात में—फल को शहद के साथ देते हैं।

जलापा (*IPOMOEA CONVOLVULUS PURGA*)

त्रिवृत्कुल (Convolvulaceae) की यह एक विदेशी लता-विशेष की ठोस गाठदार जड़ है, जो अण्डाकृति, वेलनाकार १ से ३ इञ्च (कभी-कभी ६ इञ्च) तक लम्बी, रूप आकार में शलगम या बड़ी हरड़ जैसी, वजन में भारी, बाहर से गहरी-रेखांकित, झुर्रियां पड़ी हुई, काले-भूरे रंग की, तथा भीतर से पीताभ मटमैली सी, प्रायः स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे दागों से युक्त होती है। स्वाद में—प्रथम किंचित् मधुर, पश्चात् तीक्ष्ण व अरुचिकारक तथा एक विशिष्ट प्रकार की धूम्र जैसी गन्धयुक्त होती है। इसकी बड़ी जड़ के २-२ या ४-४ टुकड़े कटे हुए होते हैं।

नोट—उत्तरी अमेरिका के मेक्सिको प्रान्त के जलापा नामक स्थान विशेष में यह अत्यधिक प्रमाण में पैदा होती तथा बहुत प्राचीन काल से मेक्सिको प्रदेश के निवासी इसके रेचक गुण से परिचित हैं।

यूरोप निवासियों को इसका परिचय १८वीं—१९वीं शताब्दी में हुआ। इसके पूर्व भ्रमवश उसे काली-रेवन्द-चीनी समझते थे। यूनानी में इसका प्रचार थोड़े समय से हुआ है। अब तो वैद्यगण भी इसका उपयोग खूब करने लगे हैं। किन्तु इसके स्थान में निसोथ का प्रयोग उत्तम होता है। निसोथ को इसीलिये भारतीय जलापा (Indian Jalup) कहते हैं।

नाम—

हि०-जलापा चलापा। अं०-जेलप (Jalup)। ले०-जलापा (Jalapa) यह जड का नाम है। इसकी लता का नाम-आइपोमिया कॉन्वॉलव्हुलेस पर्जा है।

रासायनिक संघटन—

इसमे प्र० श० ९ से १८ की मात्रा मे एक राल (Jalapoe resin) तथा जलापर्जिन (Jalapurgin) प्र० श० १० की मात्रा मे पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, विरेचन, कफ-नि सारक, कफपित्त-नाशक है। यह सचित कफदोप मिश्रित जलीयाश को पानी जैसे पतले दस्तो द्वारा निकाल देता है।

इसमे सकमुनिया (I Resina) की अपेक्षा क्षोभक एव मरोड का प्रभाव कम है। आत्र की श्लैष्मिक-कला की ग्रन्थियो पर अधिक उत्तेजक प्रभाव होने से इसमे जलीय विरेचक प्रभाव की अधिकता है। यह साधारण पित्त-विरेचक (Cholagogue) प्रभाव भी करता हैं। अल्प मात्रा मे तो यह केवल मृदुसारक हैं। किन्तु अधिक मात्रा मे तीव्र विरेचक है।

यह एक जलीय विरेचन होने से इसका प्रयोग विशेषत शोफयुक्त विकृतियो मे शरीर से दूपित जल का अपकर्पण करने के लिये उत्तम होता है। जलोदर, तीव्र मलावरोध, आमवात, रक्तभारधिक्य, जीर्ण प्रतिश्याय, वातरक्त, शिर शूल, अर्दित, पक्षवध, सर्वाङ्ग शोफ, मस्तिष्क गत रक्तस्राव, वृक्क शोफ, (Brightis disease), मूत्र-विपमयता (Uraemia), कामला आदि रोगो मे यह उपयोगी है। किन्तु आमाशयात्र मे प्रदाह की अवस्था मे इसका प्रयोग नही करना चाहिये।

इसके चूर्ण को प्रसगानुसार गुलकन्द या शक्कर, या गुलावजल या सुखोष्ण मासरस से दिया जाता है। यदि इसमे कुछ वेचैनी या घवराहट होवे तो सोफ का अर्क पिलाते हैं।

साधारण रेचनार्थ—इसका चूर्ण उचित मात्रा मे समभाग शक्कर मिला सेवन करने तथा ऊपर से १ पाव तक उष्ण जल पीने से, सरलता से १–२ दस्त हो जाते हैं। दस्त वन्द करना हो तो १ या २ रत्ती कपूर शक्कर के साथ पीस कर खा लेवे, और शीत जल पीवे।

जलोदर पर—इसे ३ या ४ मा० तक की मात्रा मे, हर तीसरे दिन, शक्कर मिला कर खिलावे, साथ ही पुनर्नवा मण्डूर १ मासा की मात्रा मे प्रात साय ६ मा० शहद मिलाकर सेवन करावे। उदर का दूपित जल दस्तो की राह से निकल जावेगा तथा सूजन भी दूर होगी। (गृह चिकित्सा)

नोट—मात्रा-४ रत्ती से १॥ या ३ मासा तक। यह उष्ण प्रकृति वालों को अहितकर है। हानि-निवारणार्थ गुलकन्द और सौंफ का अर्क देवें।

जलपादि चूर्ण (Pulbuis Jalapae Compositus) यह एक नान आफिसल योग है। इसमे जलापाचूर्ण ५ औस, एसिड पोटासियम टार्ट्रेट ९ औस, व सोठ आवश्यकतानुसार मिलाई जाती है। मात्रा—४ रत्ती से ३॥ मा० तक (१० से ६० ग्रेन)।

जव (*HORDEUM VULGARE*)

शूकधान्यवर्ग एवं अपने यव-कुल (Gramineae) के सर्वप्रसिद्ध इसके वर्षायु खडे क्षुप २० से ४० इच ऊचे पत्र—पतले, मृदु, रेखाकार, नोकदार, मजरी-उपागसहित ८–१२ इच लम्वी ½ इच चौडी, दो पक्तियो मे भगुर, अक्षयुक्त, तथा पार्श्वभाग की गौणमजरी (Spikelets) वृन्तयुक्त, पु केसर युक्त एव उपाश (Anus) अतिखुरदरा ६–१२ इन ऊचा होता है।

हिमालय के उत्तर पश्चिम एव पूर्व की ओर १३ हजार फीट की ऊचाई तक तिव्वत, कश्मीर, अफगानिस्तान, वलुचिस्थान, उत्तरप्रदेश, विहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश आदि प्राय उष्ण प्रदेशो में तथा चीन, जापान, यूरोप मे भी इसकी अधिक उपज होती है। खेतो में यह

प्राय वसत ऋतु मे बोया जाता है। इसकी जगली जाति भी होती है।

भावप्रकाश मे इसके मुख्य ३ भेद इस प्रकार है—(अ) यव (सित-शूक श्वेत नोकयुक्त) (आ) अतियव (नि शूक—नोक या टुण्ड रहित) इसे मु डा जव कहते है तथा यह यव की अपेक्षा न्यून गुण वाला होता है। इसका विशेष विवरण 'आतजो' (प्रथम खण्ड मे) देखे। यह कृष्ण-अरुण वर्ण का होता है। (इ) तोक्य (हरे रग का शूक रहित छोटा पतला जव होता है, जो जई नाम से प्रसिद्ध है) यह अतियव से भी न्यून गुण वाला होता है।

उत्तरप्रदेश राजस्थान आदि में आज जिस जाति विशेष जव की उपज की जाती है, उसी का प्रस्तुत प्रसग मे विवरण किया जाता है। भारत के दक्षिण एशिया मे यह धान्य नही होता। इसकी कुछ उपजातिया भी भारत मे पाई जाती है। उनके लेटिन नाम आगे नामावली में दिये गये है।

आज जव के मुख्य उपज केन्द्र स्थान उत्तर भारत, चीन, जापान, एशिया, तुर्कस्थान, रोमानिया और पश्चिम यूरोप हैं।

ससार मे जितने प्रकार के धान्यो की उपज होती है। उनमें जव अत्यन्त प्राचीन, अनादिकालीन धान्य है।[1] आधुनिक विशेषज्ञो ने इसकी २०—२५ जातियो का

उल्लेख किया है किन्तु भारतवर्ष मे अति प्राचीन काल मे इसके अन्यान्य नामो की अपेक्षा यव (जव) इस

वरुण देवों ने पैदा किया। तथा इसीलिये हवनादि वैदिक कर्मों मे इसे प्रमुख स्थान (यव-मुख्या) दिया गया है, और इसे 'धान्यराज', दिव्य पवित्र धान्य की सज्ञाए दी गई है।

चरक के छर्दिनिग्रहण, स्वेदोपग तथा श्रमहर इन मे इनका उल्लेख है, तथा कास, श्वास, राजयक्ष्मा, उदररोग, क्षतक्षीण, व्रण, विसर्प आदि प्रयोगों मे इसकी योजना की गई है। सुश्रुत ने स्तन्य-शोधक एव स्तन्य-वर्धक तथा तर्पण, अपतर्पण क्रिया मे और पाडु श्वास, तिमिर आदि के प्रयोगों में इसे प्रयोजित किया है।

भारतवर्ष मे अति प्राचीन 'काल से इसके अन्यान्य नामों की अपेक्षा यव (जव) इस सामान्य नाम का ही अत्यधिक प्रचार होने से, प्राचीन वैदिक काल में किस जाति के यवों की विशेष उपज की जाती थी, इसका निर्णय होना मुश्किल है।

---

[1] अथर्ववेद में इसका उल्लेख इस प्रकार है—'देवाइम मधुना सयुत यव सरस्वत्याय विमणाय चक्रुपु। इन्द्र आसीत सीरपति शतक्रतु कीनाश आसन् मरुता सुदानव॥'—अथर्व का ६. सू-३०।

भावार्थ यह है कि इस मधुसयुत (मधुयुक्त यव-सक्तु) यव को देवताओ ने सरस्वती नदी के तट पर मनुष्यों को दिया। इसीसे आयुर्वेद मे प्रमेह या मधुमेह में मधुयुक्त जव का सत्तू अन्न रूप से दिया जाता है। उस अनादि काल में इन्द्र हलवाहा या प्रमुख जोतने वाला (सिरपति) तथा वरुण (किनाश) कृषक या किसान बना था। इस प्रकार की और भी सूक्तिया अथर्ववेद मे पाई जाती है।

इस जव की उत्पत्ति अथर्ववेद से भी पहले की मालूम देती है। इसीमे तो कहा है कि इसे इन्द्र और

सामान्य नाम का ही अत्यधिक प्रचार होने से, प्राचीन वैदिक काल मे किस जाति के यवो की विशेष उपज की जाती थी ? इसका निर्णय होना मुश्किल है।

नाम—

सं०-यव, धान्यराज, सितशूक, दव्यधान्य इ०। हि०-जव जौ। म०-सातु, जव। गु०-जव। बं०-यव। अं०-बार्ली (Barley)। लै०-हॉर्डियम व्हलगर। हॉ० सेटिव्हम (H Sativum) हॉ० डेकार्टिकेटम (H,Decorticatum) यह यूरोप व ग्रेट ब्रिटेन मे होता है), हॉ० डेस्टीचिव्हम[1] (H Destichum), हॉ० डिस्टिचन (H Distichum or H Gymno Distichun यह भी उक्त डेस्टीचिव्हम का एक भेद है, इसे पैगम्बरी या रसुली कहते हैं। यह तिबेट मे होने वाला नि.शूक यव है), हॉ० हेक्सास्टिचन (H Hexastichun इस सितशूक-यव विशेष की भी उपज भारत में अधिकता से होती है। यह भारत का उत्कृष्ट यव कहा जाता है—(The barley par excellance of India) हॉ० ईजिसिराम (H Aegiceras यह तिबेट तथा हिमालय के कुछ अन्तर्भागों में होता है) इत्यादि।

रासायनिक संघटन—

उसमे जल प्र० श० १२.५, अल्बुमिन ११ ५, कार्बोदक (शर्करा सह) ७०, स्थिर तैल १ ३, खनिजद्रव्य २ १, व्हिटामिन बी० १ प्र० श० ग्राम १५ मि० ग्रा०, बी २ तथा ए० अल्प-प्रमाण मे, केल्सीयम और फास्फरस ० ०२५ मि० ग्रा०, लोह ३ ७ मि० ग्रा० सामान्यत पाये जाते हैं।

इसकी राख मे लेक्टिक एसिड प्र० श० १२ ५, मेलिसिलिक एसिड २६, फास्फरिक एसिड ३२ ५ पोटास २२ ५ तथा केल्सियम ३ ५ पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु ? कसैला, स्वादु, (मधुर) विपाक मे कटु व शीतवीर्य है[2]। यह लेखन, रूक्ष, अग्निवर्धक, मेधाकर, किंचित् अभिष्यन्दी, कठ-स्वर को उत्तम करने वाला, बलकारक, वर्ण या काति को स्थिर करने वाला, वात और मल वर्धक, तथा कफ, पित्त, मेद, पीनस, श्वास, कास, ऊरुस्तम्भ, तृषा, रक्त, विकार (रक्तपित्त, कुष्ठादि), कठरोग, व चर्मरोग आदि मे उपयोगी है।

व्रण या व्रणशोथ पर इसका लेप तिल के समान हितकर है।

किन्तु जव मधुर होने पर भी इसका विपाक कटु होता है। इस वैचित्र्य के निराकरणार्थ ही शायद सुश्रुत ने मधुर के साथ जव को कसैला भी माना है (यवः कषायो मधुरो-हिमश्च-सु० सू० अ० ४६) क्योंकि कषाय रस का विपाक प्राय कटु होता और कटु विपाकी द्रव्य गुण में लघु होते हैं, न कि गुरु। इसीलिए चरक और वाग्भट ने इसे स्पष्ट तथा गुरु न कहते हुए 'अगुरु' कहा है (रूक्ष. शीतोऽगुरु स्वादु.—स्वादु –च० सू० अ० २७ तथा वाग्भट सू० अ० ६) जव यह एक विचित्र प्रत्ययारब्धी द्रव्य होने से मधुर व शीत होने पर भी गुरु या भारी नही या गुरुत्व इसमे न्यून है, यह दर्शाने के लिए ही 'गुरु' शब्द के सामने अकार प्रश्लेष, उक्त सूत्र मे किया गया प्रतीत होता है।

विचित्रप्रत्ययारब्धी (Empirical) द्रव्य वे होते हैं, जिनके गुणधर्मो की उपपत्ति या मीमासा, उनके रस वीर्य विपाक के द्वारा नही बताई जा सकती, जिनके विशिष्ट कर्म या प्रभाव को ही ध्यान में लाना पडता है जैसे-जौ व गेहू, मछली व दूध, सिंह व शूकर ये द्वन्द्व, गुणों में प्राय. समान होने पर भी विचित्र-प्रत्ययारब्ध होने से (आरभक कारण की विचित्रता से) ही जौ-वातकारक, कफ, मास व मेद को घटाने वाला, मल मूत्र को साफ न करने वाला (आत्र में वात व मल की वृद्धि करने वाला, मूत्र के प्रमाण को घटाने वाला) तथा प्रमेह या मधुमेह में हितकारक है। ये सब इसके गुणधर्म गेहू से विपरीत है। तथा मछली, दूध से विपरीत उष्णवीर्यादि गुण युक्त है। इत्यादि देखिये वाग्भट सू० अ० ६, तथा चरक सू० अ० २६ मे श्लोक ७० से ७४ तक। और भी कई उदाहरण इसके दिए गये हैं।

केवल भावप्रकाशादि सग्रह ग्रन्थों मे इसके गुणों में 'स्वर्योबलकरोगुरु' ऐसा पाठ दिया गया है। यहां पर भी चरक के समान अगुरु पाठ होना युक्ति युक्त है। इसीलिए हमने ऊपर गुणधर्म के प्रसंग में 'गुरु' शब्द के आगे प्रश्नार्थक चिन्ह लगा दिया है। यह रूक्ष है, तथा इसकी रूखी रोटी खाने से यह चिरपाकी होता है, इसलिए शायद इसे गुरु माना गया है।

---

[1] यह जगली जव पश्चिम एशिया, अरेबिया, कैस्पीयन समुद्र के तटवर्ती प्रदेश, काकेशस के दक्षिण भाग तथा हिमालय के १० से १५ हजार फीट की ऊंचाई पर पाया जाता है।

[2] स्वादु पटुश्च मधुरम् (वाग्भट सू अ ६) इस सूत्रानुसार मधुर रस का विपाक मधुर ही होना चाहिए,

गेहूँ की अपेक्षा इसमे पोषणांश कम होता है, तथा इसकी रोटी रुचिकारक, मधुर,लघु है, यह मल, शुक्र,वायु, बलकारी एव कफ विकारो को दूर करने वाली कुछ सग्राही, उदर मे आनाह एव वातकारक, तथा शरीर मे रूक्षता लाने वाली होती है। उष्ण प्रकृति एव स्थूल व्यक्ति के लिए हितकारी है।

किन्तु डा पेरीरा (Dr- Pereira) का कथन है कि यद्यपि जौ मे गेहूँ जैसी पिच्छिलता (Gluten) नही है, तथापि गेहू के जैसे ही इसमे अधिक प्रमाण मे नाइट्रोजन तथा अन्य पोषक तत्वाश है। ग्रीस के लोग पहलवानो को आहार रूप मे इसे दिया करते थे। सर्वसामान्य उपयोग के लिए देशी जौ यूरोप से निर्यात किये गये थे। पर्ल जौ(Pearl or pot barley)की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है, क्योकि वह ताजा मिलता है। यह कुछ मृदुसारक होने से आन्त्र-शैथिल्य से पीडित व्यक्ति के लिये उपयोगी नही है। (नाडकर्णी)

(१) अतिसार पर—जौ और मूग का यूष सेवन करते रहने से आन्त्र की उग्रता शात होती है। तथा यह यूष—लघु, पाचन एव सग्राही होने से राजयक्ष्मा या उर क्षत मे होने वाले अतिसार मे भी हितकर होता है।

(२) श्वास पर—इसके आटे की आक के पत्र-रस की ७ भावनायें देकर, छाया शुष्क करले। फिर इसे शहद के साथ अथवा इसकी यवागू या काजी बनाकर सेवन करते रहने से कफ सरलता से निकलता एव शाति प्राप्त होती है।

(३) मधुमेह मे—जौ रूक्ष एव कुछ कसैला होने से तथा इसमे कैल्सीयम युक्त फास्फोरस, पोटास आदि तत्त्व होने से, यह यकृत के द्वारा अग्राह्य शर्करा का आचूषण करता है। मधुमेही के लिये सितशूक यव लेकर शूक या तुष रहित कर भून व पीस कर सत्तू के रूप मे शहद और जल मिलाकर या दलिया के रूप मे तक्र या गौ के दूध केसाथ प्रतिदिन थोडा-थोडा कई बार (कुल पाचन-शक्ति के अनुसार १० तोले से १ पाव या आधा सेर तक) सेवन कराना चाहिये। इसके अतिरिक्त और कुछ भी आहार न देवे दूध तथा घृत पर्याप्त देवे। पत्ते वाले हरे शाक, आमला की चटनी दे। फलो मे किंचित् अम्ल फल (अधिक मधुर फल नहीं) दे। इस प्रकार पथ्यपूर्वक जौ मात्र का ही सेवन करने से औषधि के बिना इस रोग मे आश्चर्य जनक लाभ होता है। अग्निसन्दीपनार्थ तथा मूत्र की सफाई के लिये यवक्षार की किंचित मात्रा, घृत के साथ देते रहे। यवक्षार (जवाखार) आगे विशिष्ट योगो मे देखे। ध्यान रहे, मधुमेही को जव के सत्त्व या माल्ट (Malt) का सेवन कराना ठीक नही है। कारण इसमे शर्करा का अश विशेष आ जाता है। [1]सत्त्व या माल्ट की विधि व प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखे।

आयुर्वेदानुसार मधुमेह का समावेश मेह या प्रमेह व्याधि-वर्ग मे ही किया गया है। तथा चरक का कथन है कि प्रमेही—"खादेद्यवाना विविधाश्च भक्ष्यान्' (जौ के विविध प्रकार के भक्ष्यो को खावे) एव—"भृष्टान् यवान् भक्षयत प्रयोगात्। शुष्काश्च सक्तून्न भवन्ति मेहा" इत्यादि (देखे च. चि अ ६ श्लोक ४७ व ४८) अर्थात् भूने हुये या सूखे सत्तुओ के योग से तथा मूग और आवलो के आहार प्रमेह, श्वेत कुष्ठ, कफरोग और मूत्रकृच्छ्र नही होते।

(४) धातुपुष्टि के लिये—यवादिपाक—जौ, गेहू और उडद छिलके रहित, समान भाग लेकर महीन चूर्ण करे। फिर ४-४ गुने गोदुग्ध तथा ईख के रस मे अति मन्द आग पर पकावे। अच्छा गाढा मावा सा बन जाने पर उसमे अन्दाज से घृत डालकर भून ले। तथा स्वाद योग्य मिश्री का चूर्ण मिलाकर मोदक बनाले। अथवा मिश्री की चासनी मिलाकर पाक जमा दे। मात्रा—१ से ५ तो तक प्रात सेवन कर ऊपर से मिश्री और पीपल चूर्ण मिलाकर पकाया हुआ गौदुग्ध पीवे। इससे वीर्य

---

[1] डॉ डिमाक का कथन है—Barley Which matted loses 7 P C, it then contains 10 to 12P C of sugar, produced at the expence of starch Before malting no sugar is to be found (Pharm acographia Indico by Dr Dymock)

डॉ देसाई ने सत्तू के स्थान में उक्त सत्व मधुमेही को देने के लिए कहा है, किन्तु हमे यह उचित नही जचता।

एव काम शक्ति की अत्यन्त वृद्धि होती है। (हा स.)।

नोट—पाकों के अन्यान्य प्रयोग बृ. पाक सग्रह में देखिये।

अथवा यवादिचूर्ण—जौ, नागवला, असगन्ध तिल, गुड और उडद समभाग, चूर्ण बनाले। इसे दूध के साथ सेवन से शरीर बहुत शीघ्र हृष्ट पुष्ट एव अतिबलशाली होता है। (भा. भै र)

अथवा—जौ के १ सेर आटे की रोटिया सेक कर खूब मसल कर चूर्ण बना ले, फिर उसमे १-१ सेर उत्तम ताजा घृत और मिश्री का चूर्ण तथा १ तो श्वेत मिर्च और २ तो छोटी इलायची दाने का चूर्ण मिला सब को एक कलईदार परात मे आग पर रख गरम करलें और फिर पौर्णिमा की रात्रि मे, बाहर चादनी मे रखदे। इसमे से नित्य ४-५ तोले प्रात खाते हुए १-१ घूट गोदुग्ध पीते जावे। उत्तम धातुपुष्टि होती है। (व. गुणादर्श)

अथवा—२॥ तोला जौ को थोडे पानी मे भिगो व कूट कर छिलका उतार कर आध सेर गोदुग्ध मे खीर बनाकर, नित्य इसी प्रकार दो महीने तक सेवन करें। अथवा—उक्त प्रकार से कूट कर छिलका दूर कर चावल के समान पकाकर दूध या घृत के साथ सेवन करते रहने से भी शरीर मे शक्ति-सचार होकर दृष्टिमाद्य दूर होती नेत्र-ज्योति बढती व तिमिर रोग दूर होता है।

(५) सूतिका या प्रसूति-रोग मे—यवादि यूप एव घृत—जौ, वेर का गूदा, कुलथी व शालिधान की जड (२०–२० तो) लेकर, सब को कूट कर ८ सेर पानी मे पकावे। २ सेर पानी शेष रहने पर, छान कर उसमे आध सेर घृत तथा ५ तो जीरा चूर्ण मिला पुन पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान ले।

फिर उक्त (जौ, वेर, कुलथी, शालिधान की जड) द्रव्यो से सिद्ध यूप (इन द्रव्यो का मोटा चूर्ण १ तो १६ तो जल मे पका, चतुर्थांश या अर्धांश शेष रहने पर छान ले) मे इस घृत को १ तो तथा (स्वाद योग्य) सेंधानमक मिला, उसके साथ शाली या साठी चावलो का भात खाने से सूतिका-रोग मे लाभ होता है। (व से)

(६) ज्वर पर—यदि पित्त-ज्वर हो तो—जौ (भुने हुए), खस, मजीठ एव गभारी के फल समभाग कूट कर रख ले। इसमे से दो तोला चूर्ण, १२ तो पानी मे, मिट्टी के स्वच्छ पात्र मे रात्रि के समय भिगोकर प्रात मसल कर छान ले, तथा इसमे १ तो शहद मिला पिलावे। पित्त ज्वर शात होता है। (ग नि)

अथवा—जौ, परवल, धनिया, तथा मुलैठी का क्वाथ, मधु मिला कर पीने से पित्त-ज्वर, दाह, एव भीषण तृषा शात होती है।

ज्वर का उत्ताप अत्यधिक (१०३ से अधिक) हो, तो वर्फ की पोटली सिर पर फिरावे, अथवा—नौसादर के घोल मे भिगोई हुई पट्टी को सिर पर रक्खे, या पुराने घृत का लेप करे। (भै. र)

अथवा—कच्चे या अधपके जौ (खेत मे जो जौ पूर्णत न पके हो) के चूर्ण को दूध मे पकाकर उसमे जौ का ही सत्तू, घृत, मिश्री तथा शहद मिला, तथा दूध और मिला कर पतला कर पीने से ज्वर की दाह शात होतीहै। (ग नि)

यूनानी प्रयोग—जौ की गरम-गरम रोटी के टुकडे कर, मिट्टी के पात्र मे रख, उसमे थोडा पानी भर, ७ दिन तक जमीन मे गाडे रक्खे। फिर निकाल कर उसका साफ पानी लेकर शीशी मे भर रक्खे। इसमे से २ से ५ तो पानी, अर्क गावजवा के साथ बुखार के मरीज को देने मे तसल्ली मिलती है। (व च)

(७) अम्लपित्त पर—छिलके रहित जौ, अडूसा, और आमला समभाग २-२ तो० लेकर ४८ तो पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर इसमे त्रिगन्ध (दालचीनी, इलायची व तेजपात) का चूर्ण १-१ मा एव मधु २ तो मिला पिलाने से, अथवा—जौ, पीपल और परवल २-२ तो को ४८ तो पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमे २ तो मधु मिलाकर पिलाने से अम्लपित्त, वमन एव अरुचि दूर होती है। पथ्य मे मूग का यूप देवे। (यो र)

(८) उदर रोग—यवाद्य घृत—जौ, वेर और कुलथी ४-४ तो० लेकर कल्क करें। फिर बृहत्पचमूल का क्वाथ, सुरा

(परिपक्व चावल (भात) के सधान से सुरा तैयार होती है।) और सौवीर (जौ या गेहूं से तैयार की गई काजी) (सौवीर आगे वि योगो मे देखें) ये तीनो समपरिमाण मे (६४-६४ तो) मिलाकर गव्य घृत से चतुर्गुण लेकर, सबको एकत्र मिला, घृत सिद्ध कर लें। इस घृत के सेवन से उदर-रोग नष्ट होते है (च० सं० चि० स्था० अ० १३) ।

उदर में शूल हो, तो जौ के चूर्ण और जवाक्षार को तक्र मे मिला कर गरम कर उदर पर लेप करने से शूल नष्ट होता है। —(वृ० नि० र०)

(९) गर्भस्थिर रहने के लिये—जौ के आटे (या सत्तू) के साथ समभाग तिल का चूर्ण और शक्कर मिला, ६-६ मा० की मात्रा में शहद के साथ देते रहने से गर्भपतन का भय नही रहता। (व० गु०)

(१०) व्रण, शोथ, अण्डवृद्धि आदि पर—जौ और मुलहठी का चूर्ण समभाग एकत्र कर तिल-तैल और घृत समभाग मे मिला, मन्दोष्ण कर लेप करने से व्रण की दाह व पीडा शात होती है। (व० से०)

स्राव एव तीव्र वेदनायुक्त वातज व्रणो पर—जौ के साथ समभाग भोजपत्र, मैनफल, लोवान व देवदारु लेकर चूर्ण कर, घृत में मिला इनकी धूनी देवे।

(भा० भै० र०)

शोथयुक्त फोडे को फोडने के लिये—जौ और गेहू का चूर्ण तथा जवाखार का लेप लगाने से व्रण (व्रण-शोथ) फट जाता है।

अण्डवृद्धि पर—जौ के साथ समभाग तिल, पुनर्नवा-मूल एव अण्डी के छिलके रहित बीज, एकत्र मिला, काजी में पीस, मन्दोष्ण कर लेप करे।

(भा० भै० र०)

विद्रधि पर—जौ के साथ गेहू व मूग को थोडे पानी में पकाकर, पीसकर लेप करने से अपक्व विद्रधि अति शीघ्र ही नष्ट होती है। (यो० र०)

अग्निदग्ध व्रणो पर—जौ को जला कर, भस्म को महीन पीसकर, तिल तैल मे मिलालें।

या तिल-तैल में ही जवो को डालकर भूने, जब वे जलकर काले पड जावें, तब नीचे उतार कर, अच्छी तरह पीसकर जले हुए स्थान के छालों पर या व्रणों पर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है। (यो० र०)

ध्यान रहे, इस व्रण को शीत जल का स्पर्श न करायें। धोने के लिये त्रिफला फाण्ट का या उबाले हुए जल का उपयोग करे।

शोथ—यदि कफ-दोष से हो, तो जौ के आटे को अजीर के रस के साथ लगाते है।

पित्त की सूजन हो, तो इसके आटे मे सिरका और ईसबगोल की भूसी मिला लेप करते है। यह लेप कर्ण-शोथ पर विशेष लाभकारी है।

मोच या अस्थिभग पर—इसके आटे मे खुरासानी अजवायन का चूर्ण मिला, पानी मे पकाकर लेप करते है।

कंठमाला की शोथ पर—इसके आटे मे धनिया के हरे पत्तो का रस मिला लेप करते है।

(११) कान्तिवर्धनार्थ, तथा शुष्क खुजली, विसर्प आदि पर—जौ के साथ राल, लोध, खस व लाल चन्दन का चूर्ण तथा शहद, घृत व गुड समभाग लेकर सबको ४ गुने गोमूत्र मे पकावें। अच्छा गाढा हो जाने पर उतार कर सुरक्षित रखें।

इसके मलने से नीलिका, झाई (व्यङ्ग) आदि दूर होकर मुख कमल जैसा शोभायमान हो जाता है। इसे पैरों मे लगाने से पैरो की बिवाई आदि नष्ट होकर पैर कोमल होते है।

विसर्प पर—जौ का आटा और मुलहठी का चूर्ण दोनो को, शतधौत घृत मे मिला लेप करने से दाहयुक्त विसर्प शात होता है।

सूखी खुजली पर—इसके आटे मे तिल-तैल और छाछ (तक्र) मिला लगाते हैं।

गरमी के सिर-दर्द पर—आटे को सिरके के साथ लगाते हैं।

नोट—अधिक मात्रा मे नित्य जौ का भोजन करने से आ-मान, पेट मे मरोड एव वात-विकारों की सम्भावना है। आमाशय और आन्त्र कमजोर हो जाते है।

हानि-निवारणार्थ—घृत, मक्खन, मिश्री, गर्म-मसाला और मस्तगी का सेवन करें।

विशिष्ट योग—

जवाखार—

(१) [1]यवक्षार—खेतो मे जौ के क्षुपो मे बीज आने के समय ही उन को उखाड़कर, सुखाकर गजपुट के खड्डे मे जलाकर श्वेत राख करें, (खड्डे मे जलाने से यह अच्छी तरह जलकर श्वेत राख विशेष परिमाण मे प्राप्त होती है। राख के साथ जो काले कोयले हो उन्हे दूर कर दे) फिर उसे १६ गुने पानी मे रात्रि को भिगोदें। प्रात सावधानी से ऊपर का जल नितार लें। इस जल को छान कडाही मे पकावें। पानी जल कर क्षार बन जायेगा। यदि क्षार मे कुछ कालापन हो, तो उसमें और थोडा पानी मिला, छानकर पुन आग पर क्षार बना लें।

गुणधर्म व प्रयोग—

यवक्षार लघु, उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष, कटु विपाक (आयुर्वेदानुसार यह स्निग्ध है), अतिसूक्ष्म स्रोतोगामी, दीपन अतिसौम्य, रुचिवर्धक, मूत्रल, स्वेदल, रक्तशोधक, पित्त-क्रिया-सुधारक, तथा अम्लपित्त, कफ, कास, श्वास, शूल, वातप्रकोप, आमवृद्धि, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, पाडु, कामला, कठ-रोग, अर्श, गुल्म, अजीर्ण, ग्रहणी, आनाह, हृद्रोग, तथा उदावर्त, प्लीहा व यकृत के शोथादि विकार-नाशक है।

इसे भोजन के २० पूर्व मिनट अन्य सुगधी व तिक्त औषधो के साथ लेने से यह जठराग्नि को उद्दीप्त करता है। आमाशयान्तर्गत—श्लेष्मल कला के शोथादि विकारो को तथा कुपचन, अजीर्णादि विकारो दूर करता है। भोजन के पश्चात् लेने से परिणाम शूल, अम्लता-वृद्धि, अम्लपित्त, छाती में जलन ग्रहणी क्षत (Duodenal ulcer) मे शाति प्राप्त होती है। इसे भोजन के २ या २॥ घटे बाद जल के साथ लेते हैं। वमन होने पर इसे टार्टरिक तथा सायट्रिक एसिड या नीबू के रस के साथ जल मे घोलकर सेवन करते हैं। यकृत के पित्तस्राव पर इसका कोई अनिष्ट असर न होने से कामला रोग पर बार बार इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जाता है। रक्त—शुद्धि के लिए इसकी योजना अन्य सुगधित द्रव्यो के साथ की जाती है। यह मूत्रपिण्डो को उत्तेजित करता, तदन्तर्गत शोथ को हटाता, मूत्र के प्रमाण को बढाता व मूत्र-दाह को मिटाता है। सुजाक मे भी यह हितकारी है। यह त्वचा की स्वेद-ग्रथियो को उत्तेजित कर पसीना लाता है। अत ज्वर मे पसीना लाने के लिये यह नीम के रस या क्वाथ के साथ दिया जाता है।

श्वसन-सस्थान एव श्वास-नलिका की क्रिया मे आवश्यक सुधार कर, यह कफ को पतला करता, श्वासमार्ग के शोथ को हटाता है। काली खासी या सूखी खासी मे इसीलिये यह घृत के साथ चटाया जाता है। फुफ्फुस-सम्बन्धी विकारो मे क्षार की अपेक्षा राख का उपयोग उत्तम होता है।

पित्तवह स्रोतसो के शोथादि विकारो को यह दूर करता है। पित्त-प्रयोग एव पित्त-विकारो का दमन करता

---

[1] वैसे तो यह या इस प्रकार का क्षार कई वृक्षों की राख में पाया जाता है। किंतु उन वृक्षों के अन्दर रहने वाले विभिन्न पदार्थों के कारण उनके क्षारों के गुणों मे अन्तर होता है। काष्ठमय झाड़ियों की अपेक्षा कोमल रसयुक्त वर्षायु क्षुपों में यह क्षार अधिक पाया जाता है। भूम्यन्तर्गत पोटेशियम के लवणों को ये वृक्ष शोषण करते हैं। इन लवणों के बिना किसी भी वृक्ष की वृद्धि नहीं होती।

व्यापार की दृष्टि से इस प्रकार का क्षार विलायती अफसतीन (Worm Wood), चुकन्दर की जड़ (Beet root) सूरजमुखी आदि पौधो से, तथा भेड के बालों के धोल से, सोराखार से, पोटेशियम सल्फेट आदि से विशेष प्राप्त किया जाता है। तथा बाजारो में जवाखार के नाम से इन कृत्रिम क्षारों का अत्यधिक प्रचार होने से, जव के पौधों को जलाकर असली जवाखार निर्माण की क्रिया बन्द हो गई है। प्राय पोटास नाइट्रास के घोल मे सोडाबाई कार्ब मिलाकर बनाया हुआ जवाखार बाजारों मे बहुत पाया जाता है।

नोट—जौ के क्षुपों को जलाने से जो राख होती है, (जिससे क्षार निकाला जाता है) वह राख क्षार की अपेक्षा अधिक उपयोगी एवं सौम्य होती है। उसमे लेक्टिक, सिलसिक, फास्फरिक चूना आदि अधिक होते हैं—देखें ऊपर रा० सा० मे। (पृष्ठ ६३१)

है। अत यकृत प्लीहा के शोथादि विकारो मे इसकी योजना की जाती है।

नाम–

सं–यवक्षार क्षार, यावशूक, पाक्य, यवाग्रज। हि०–म०–गु० जवाखार जवाखार। अं०(–Impure Carbonate of potash)। ले०–पोटासी कार्बोनस (Potassi Carbonas)

रासायनिक सघटन—

इसमे मुख्यत पोटाशियम क्लोराइड ५०.८, पोटाशियम सल्फेट २० २, पोटाशियम बाइकार्बनेट १२ ६ तथा पोटाशियम कार्बनेट ६ ८ प्रतिशत होता है।

प्रयोग–

(१) उदावर्त पर—क्षार के साथ चित्रक, हीग और अम्लवेत का चूर्ण मिला, क्वाथ कर पिलाने से विरेचन होकर उदावर्त नष्ट होता है।

मूत्रावरोध जन्य उदावर्त्त हो तो क्षार ४ रत्ती मे समभाग शक्कर मिला, अ गूर के रस के साथ पीने से लाभ होता है। (भैं० र०)

(२) गले के रोग तथा कास, श्वास व क्षय पर–

१–यवक्षारादि गुटिका–क्षार के साथ चव्य, पाठा रसोत, दारुहल्दी व छोटी पीपली-चूर्ण समभाग एकत्र-कर मधु मे खरल कर चना जैसी गोलिया बना ले। १-१ गोली मुख मे रख, चूसने मे समस्त गल-रोग मे लाभ होता है। (भा० भै० र०)

२–यवक्षारादि गुटिका—क्षार १ तोला कालीमिर्च चूर्ण, छोटी पीपल चूर्ण २-२ तोला तथा अनार छाल का चूर्ण ४तोला एकत्रकर १६ तो गुड मे खरल कर ४-४ रत्ती की गोलिया बनाकर चूसते रहने से कास, श्वास व क्षय मे लाभ होता है। (व गु)

३–स्वरभग (वात जन्य) पर—यवक्षारादि घृत–क्षार, अजमोद, चित्रक व आमला ५-५ तोला एकत्र पीस कर कल्क करें। २ सेर घृत मे यह कल्क व ८ सेर भागरे का रस मिला, मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करले। भोजन के बाद सेवन करे।

(ग० नि० भा० भै० र०)

४–गुल्म और शूल पर–क्षार, चित्रक, निशोथ, नीम और हरड, पाचो समभाग, चूर्ण बनावें। १ से २ माशा तक घृत मे मिला सेवन करे। सर्व प्रकार के गुल्म दूर होते हैं। (व० से०)

अथवा—क्षार, अजवायन, सेधानमक, अम्लवेत, हरड, वच और हीग (घृत मे भुनी हुई) सम भाग, चूर्ण बना ले। मात्रा—१ माशा उष्ण जल से लेवे। उपद्रव युक्त प्रवृद्ध गुल्म तथा वातज शूल भी नष्ट होता है।

(भा० भै० र०)

अथवा—क्षार के साथ केवल अजवायन-चूर्ण समभाग खरल कर, १ से १॥ माशा तक उष्ण जल से सेवन करे।

(५) अपचन, मदाग्नि एव क्षुधा-नाश पर—क्षार ४ से ६ रत्ती तक घृत के साथ सेवन से दूषित डकार आना, व्याकुलता, उदरवात, अरुचि आदि लक्षणो सहित अपचन (अजीर्ण) दूर होता है। (गा औ र)

क्षार के साथ समभाग सोठ चूर्ण मिला खरलकर, प्रतिदिन १ मा० प्रात घृत के साथ लेने से क्षुधा प्रवल होती है।

उक्त योग को उष्ण जल के साथ लेने से देश-देशान्तर का जलदोष नष्ट हो जाता है। (भा० भै० र०)

(६) मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी पर—क्षार १ माशा तक घृत के साथ लेकर, ५-७ मिनट बाद शीतल जल या दूध की लस्सी पीने से मूत्रदाह, मूत्र बू द-बू द होना-अश्मरी-कण आदि दूर होकर मूत्र सरलता से होने लगता है। (गा० औ० र०)

इसकी मात्रा—१॥ माशा तक समभाग मिश्री के साथ, या दही के पानी के साथ, या ४ तोले पेठे के स्वरस के साथ १ तोला शक्कर मिला कर भी पीने से मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है। (यो र)

मूत्राशय मे अश्मरी हो, तो प्रात इसकी मात्रा १ माशा घृत के साथ सेवन कर ऊपर से सारिवा, गोखुरु दर्भ व कास का क्वाथ शिलाजीत और मधु मिलाकर पिलावें। इस प्रकार कुछ दिन लेने से अश्मरी टूटकर निकल जाती है। (गा० औ० र०)

(७) यकृत प्लीहा–वृद्धि या शोथ पर—क्षार और छोटी पीपल का चूर्ण १-१ माशा लेकर बडी हरड, रोहिडा (रोहतक) की छाल इन दोनो के क्वाथ (४

तो) मे मिला प्रतिदिन प्रात पीने से यकृत, प्लीहा, गुल्म एवं उदर-सम्बन्धी विकार नष्ट होते है (शार्ङ्गधर सं म. खड पथ्यादिक्वाथ) ।

इस योग से आन्त्रिक श्लेष्मा कम होकर पित्तमार्ग का अवरोध दूर होता, तथा कामला मे भी लाभ होता है ।

(viii) अर्श, अतिसार, वातशूल आदि पर-क्षार, सेंधा-नमक व सोठ ५-५ भाग, हरड १० भाग इन सबका एकत्र चूर्ण १० ग्रेन की मात्रा मे तक्र, या काजी या गरम चाय के साथ देते हैं । (नाडकर्णी)

(ix) फुफ्फुशोथ (ब्राकाइटिस) पर—क्षार १० ग्रेन अडूसा-पत्र-स्वरस १० बूंद व लौंग-चूर्ण ५ ग्रेन इस मिश्रण (यह १ मात्रा है) को खाने के पान के रस के साथ देते हैं । (ना क)

(x) उत्तम विरेचनार्थ—क्षार ६ मा निशोथ, त्रिफला १॥–१॥ तो० वायविडग व काली मिर्च—चूर्ण ६-६ मा इन सब के मिश्रण मे घृत, शक्कर या गुड मिला, उचित मात्रा मे देने से दस्त साफ हो जाता है । इससे आमाशयान्तर्गत नलिका का तथा वस्तिप्रदेश का शोथ एव कफ-वात जन्य अन्यान्य विकार व आन्त्र-कृमि पर भी लाभ होता है । (ना क)

(xi) प्लेग की गाठ पर—क्षार को तिल-तैल मे मिला पकावे । जब वह लेप के योग्य गाढा हो जाय, तब नीचे उतार कर गाठ पर सुखोष्ण लेप कर ऊपर से खाने का पान रख, उस पर बार-बार रुई से सेक करते रहे । (ना. क)

(xii) मक्कल शूल पर—क्षार की ४-६ रत्ती की मात्रा, पकाये हुए जल के साथ, या घृत के साथ पिलाने से प्रसूता के हृदय, मस्तक व वस्तिप्रदेश मे होने वाला शूल अवश्य नष्ट होता है । (भा भै. र.)

(xiii) खुजली, उदर्द, शीतपित्त, विचर्चिका आदि पर तथा क्षुद्र कीटक-दश पर, क्षार के घोल का लेप करते है । त्वचा को स्वच्छ, साफ रखने के लिये भी इसके घोल को लगाते है ।

नोट—क्षार की मात्रा—१ या २ रत्ती से १ मासा तक । रोगानुसार कहीं-कहीं ३ मासे तक भी दिया जाता है ।

अधिक मात्रा मे बार-बार इसके प्रयोग से अतिसार, शोथ, फास्फेट्स से बनने वाली अश्मरी, एवं वृक्क के कई विकार हो जाते हैं ।

एक ही बार में अत्यधिक प्रमाण में लेने से वमन होने लगती है । यह आंत्र के लिये अहितकर है । हानि-निवारणार्थ-कतीरा और गोंद देते हैं ।

(२) यव सत्त्व (Malt)—प्रवाही तथा शुष्क दो प्रकार का यह सत्त्व होता है । जौ को प्रथम २४ घटे तक सुखोष्ण कुनकुने जल मे भिगोते है । जल को ६-६ घटे से बदलते है । फिर जवो को पानी से निकाल, टाट पर फैला कर ऊपर गीला कपडा ढक कर बार-बार ऊपर पानी सींचते रहते है । १–२ दिन मे जवो मे अकुर फूटते ही धूप मे शुष्क कर, थोडे पानी के छींटे देकर मसल कर अकुरो को निकाल देते है, क्योकि अकुरो मे कुछ कडुवापन होता है । पुन अच्छी तरह सुखाकर, मोटा आटा पिसवाकर, या जौ कूट चूर्ण कर उसके वजन के समभाग शीतजल मे ६ घटे तक भिगो कर, फिर उसमे ४ गुना गरम पानी मिला १ घटे के बाद आग पर पकाते है । उफान आने पर, उसके पानी को मोटे स्वच्छ कपडे से छान लेते है । इस छने हुए पानी के पात्र को गरम पानी मे रख, मदाग्नि पर पकाने से, जब वह छना हुआ पानी शहद जैसा गाढा हो जाता है, तब तुरन्त ही नीचे उतार कुछ शीतल होने पर शीशियो मे भर, मजबूत कार्क से मुख बन्द कर, शीतल स्थान पर रखते है । शीशियो मे भरने के पूर्व उसमे यथावश्यक शक्कर कोई कोई मिला लेते है । यह जव का प्रवाही घन सत्त्व है । यह आयुर्वेद के 'यवमण्ड' का ही एक परिष्कृत प्रकार है । आगे यवमण्ड देखे ।

यह प्रवाही सत्त्व या माल्ट पाचक, पोषक, एव मृदु सारक है । गेहूं के सत्त्व की अपेक्षा यह शीघ्र ही पचता है । इसमे डेक्स्ट्रीन (Dextrin) तथा यवशर्करा (Maltose or malt sugar) की प्रधानता होने से यह आलू, चावल, मक्का आदि स्टार्च प्रधान आहार द्रव्यो को शीघ्र पचाता है । इसे कॉडलिव्हर आईल जैसी अन्यान्य औषधियो के साथ मिलाकर अनुपान रूप

मे भी दिया जाता है। जीर्ण रोगानन्तर शरीर मे आई हुई अशक्ति को दूर करने के लिये यह उत्तम उपयोगी है। अग्निमाद्य, अजीर्ण, कफ एव पित्त-प्रकोप, फुफ्फुस के विकार तथा निर्बलता के लिये यह हितकारी है। मधुमेही को भी इसके उपयोग की सलाह दी जाया करती है। किन्तु हम मधुमेही को इसकी अपेक्षा केवल जव के ही अन्न-भोजन की सलाह देते है। ऊपर मधुमेह का प्रयोग न ३ देखें।

मात्रा—६ मा से १ तो तक, भोजन के ३ घटे बाद लेवे। अधिक मात्रा मे लेने से विरेचन होता है,

शुष्क सत्त्व (माल्ट) बनाने के लिये उक्त प्रकार से ही जौ मे अकुर फूटने की प्राथमिक क्रिया सम्पन्न होने के बाद, उन्हे सुखाकर, अकुरो को दूर कर कडाही मे मदाग्नि पर सेकते है। वे जब कुछ लाल हो जाते हैं तब उतार कर, शीतल हो जाने पर महीन पिसवा लेते हैं। बस यही परिष्कृत सत्तू ही शुष्क सत्त्व है। यह पचने मे बहुत हलका व पौष्टिक होता है। इसके साथ ५ गुना गेहू का आटा मिला कर रोटिया, या गेहूँ का मैदा मिला कर बिस्कुट आदि बनाये जाते हैं, जो उत्तम पौष्टिक होते हे। जौ मे चना मिलाकर भी सत्तू बनाते है।

(३) सत्तू-भारतवर्ष मे बहुत प्राचीन काल से जव के सत्तू का प्रचार हे। इसीलिये सत्तू यह शब्द जव का पर्यायवाची नाम महाराष्ट्र आदि प्रान्तो मे है। ग्रीष्म ऋतु में, विशेषत उत्तर प्रदेश मे इसका अत्यधिक उपयोग किया जाता है।

वैसे तो बाजार से जव लाकर, पानी मे भिगोकर तथा धूप मे सुखाकर, कूटकर, (जिसमें उसका शूक भाग निकल जावे) भून कर पिसवा कर साधारणत बाजारू सत्तू बना लिया जाता है। किंतु उत्तम सत्तू बनाना हो, तो खेतो मे जब जौ पकने पर आता है, उसके पूर्व ही बालो को तुडवा कर धूप मे सुखा, और कूट कर तुष रहित कर, भाड मे भुनवा कर, घर की चक्की मे महीन पीस छान कर रख लेते है।

उक्त सत्तू मे शक्कर, घृत या दूध मिला, या गुड अथवा नमक मिला उसमें यथेच्छ पानी घोलकर, अच्छी तरह हाथो से मथ कर पीते है। यह जितना पतला हो उतनी ही तरावट पहुंचाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह शीत, लघु, लेखन, रूक्ष, मलावरोधक, रक्तपित्त-नेत्र-रोगों में हितकर है।

उष्ण प्रकृति के लिये संग्राहक, वातप्रकृति में मृदु-रेचक है। उक्त यव-सत्व (माल्ट) या यवमण्ड की अपेक्षा इसमें पोषणगुण कम होता है। उष्ण प्रकृति वालों को यह अतिसार की अवस्था मे भी लाभकारी होता है। वात या शीत प्रकृति के लिये यह कुछ अहित-कर है।

नोट—दांतों से काट-काट कर, तथा भोजन के बाद, रात्रि में, अधिक मात्रा मे और मास के साथ, एव सत्तू को गरम करके नहीं खाना चाहिये।

(१) गरमी, तृषा, दाह, तथा रक्तपित्त पर उत्तम पेय—सत्तू को अधिक जल मे भिगोकर रख दे। कुछ देर बाद ऊपर के जल को निथार कर उसमें शर्बत या शक्कर मिला पीने से गरमी, दाह, तृष्णा शान्त होती है। पित्त-ज्वर मे यह एक उत्तम लाभकारी पेय है।

अथवा—यवसक्तुमथ—सत्तू को थोडे घृत मे मसल कर ठण्डे पानी मे ऐसा घोले कि वह न बहुत पतला हो, और न गाढा। (अच्छी तरह मथानी से या हाथो से मथकर तथा रुचि अनुसार अनार, शक्कर, शहद या गुड मिला) इसके पीने से तृष्णा, दाह और रक्तपित्त मे लाभ होता है।—शा० स०। मात्रा—१० तोले तक, दिन मे दो बार दें।

इस योग को तर्पण या सन्तर्पण भी कहते है। यह शीघ्र ही पिपासा, थकावट, दाह को दूर कर बल बढाता है।

(२) गर्भ स्थिर रहने के लिये—सत्तू के साथ समभाग तिल का चूर्ण व शक्कर मिला, शहद से चटाते रहने से गर्भ-पतन का भय नही रहता। (व० गु०)

(३) परिणामशूल—(जो त्रिदोषजशूल भोजन की पच्यमानावस्था मे होता है) पर—सत्तू को ७ दिन तक केवल मटर के यूप के साथ पीने से यह शूल पुराना हो या नूतन नष्ट हो जाता है। (वृ० मा०)। अन्य आहार बन्द रखना चाहिये।

(४) त्रिदोष-नाशक सप्तमुष्टिक और पच मुष्टिक यूप—जौं का सत्तू (या जौ का चूर्ण), वेर का चूर्ण, कुलथी, मू ग, मूली के महीन टुकडे, धनिया और मोठ इन सात द्रव्यो की १-१ मुट्ठी (४-४ तो०) एकत्र मिला, १६ गुने जल मे पका, चतुर्थांश शेष रहने पर, ममल कर छान ले। सन्निपात मे रोगी को भोजन के स्थान मे, इसे ही थोडा-थोडा पिलावें। यह यूप तीनो दोषो को हरने वाला है। (कोई-कोई इसे गाढी लपसी जैसी बनाकर रोगी को थोडा-थोडा चटाते हैं) यह यूप ज्वर, आमदोष, आमवात, नाशक तथा कठ, हृदय व मुख का शोधक है। (शा० सं०)

पचमुष्टिक यूप—जौ का सत्तू या चूर्ण, वेर चूर्ण, कुलथी, मू ग, आमला, १-१ मुट्ठी (४-४ तो०) लेकर ८ गुने पानी मे पका, अष्टमाश शेष रहने पर छानकर पिलावें। यह सान्निपातिक ज्वर मे पथ्य के लिये लाभदायक है। कोई-कोई आमला के स्थान मे सोठ लेते हैं। वह भी त्रिदोषनाशक, तथा शूल, गुल्म, कास, श्वास व क्षय मे भी लाभकारी है। —[यो० र०]

प्रमेह पर—जव को ऊखल मे कूट, छिल्के (तुष) निकाल डाले। फिर साफ जौ को गोमूत्र मे १ घटा भिगोकर सुखालें। इस प्रकार ७ दिन तक करें। फिर ७ दिन तक त्रिफला (क्वाथ) मे भिगो-भिगो कर सुखावें। पश्चात् उन्हे भूनकर, पीसकर किये हुए सत्तू के, या सत्तू के रोटी का सेवन करते रहने से पाचन-क्रिया सबल होती व दाह-शमन होती, आम, कफ, उदर-कृमि, मग्रहीत मल आदि नष्ट होते, तथा कफज एव पित्तज प्रमेह दूर होते है। —[गा० औ० र०]

६—विसर्प, अग्निदग्धव्रण एव दाह-शाति के लिए सत्तू-प्रलेप—सत्तू के साथ मुलैठी का चूर्ण मिला, उसे शतधौत घृत मे घोटकर लेप करते रहने से दाह सहित विसर्प विकार शात होता है।

अग्निदग्ध—व्रण पर—सत्तू को तिल-तेल मे मिला लेप करते है।

दाह-पीडित रोगी के शरीर पर—सत्तू को पानी मे घोलकर लेप करते हैं।

४—यव-कषाय (जवजल या बार्ली वाटर)—उत्तम विलायती पर्ल-जौ ६ तोला ८ माशा या इसका मोटा चूर्ण १ या २ बडे चम्मच भर लेकर लगभग २।।। सेर जल मे पकाते तथा आधा जल शेष रहने पर उसे मसलते हुए छानकर रस लेते है। इसमे पोषकतत्व अर्ध-प्रतिशत से कुछ अधिक होता है।

यह कटुपौष्टिक, संकोचक और मूत्रल है। अन्दर की श्लेष्मल कला के लिये यह मृदुकर, तथा कठ और मूत्रमार्ग के विकारो पर लाभदायक तथा ज्वर के लिए यह शातिदायक पेय होता है। इसमे थोडी शक्कर व नीबू का रस मिला देने से उत्तम रुचिकर, शातिकर पेय बन जाता हे।

इसे मृदु सारक बनाना हो तो, उक्त बार्ली वाटर मे अंजीर के महीन टुकडे, तथा मुनक्का प्रत्येक ६।। तोला व मुलैठी चूर्ण १ तोला ४ माशा और जल ५३ तोले मिला कर पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लें। इसे अधिक मृदुकर बनाने के लिये इसमे २।। तोला बबूल का गोद मिला ले। यह मूत्रपिण्डो का उत्तम दाह, शोथ-शामक एवं शातिकर पेय होता है।

इसमे समभाग गौ का दूध तथा किंचित् उत्तम शुद्ध शर्करा मिला कर, उन छोटे बच्चो को जिन्हे मातृदुग्ध नही मिलता या गोदुग्ध हजम नही होता, थोडा थोडा पिलाते रहने से उनके लिए उत्तम पोषक आहार होजाता है। यह आयुर्वेद का एक प्रकार का यवमण्ड ही है।

(५) यवमण्ड[1]—जौ को अच्छी प्रकार कूटकर, ऊपरी छिलका निकाल कर, १४ गुने जल मे पकाते है। पक जाने पर ऊपर का जल निथार कर पिलाते है। यह शीतल, मूत्रल, रक्त और पित्तसशमन व उत्तम शीघ्रपाकी पथ्याहार है। विशेषत उष्ण एव पित्त जन्य विकारो मे इसका उपयोग लाभकारी है। पित्तज्वर, राजयक्ष्मा, उर क्षत, शुष्क कास, पित्तज शिर शूल एव पार्श्वशूल मे यह उपयुक्त है—

जव को उक्त प्रकार से साफ कर तथा किंचित भूनकर तथा १४ गुने जल मे पकाकर जो जल तैयार किया

[1] मण्ड-विधि चावल के प्रकरण म देखिये।

जाता है, उसे वाट्यमण्ड कहते है। यह भृष्ट-यवमण्ड उक्त यवमण्ड से और भी हलका, तथा कुछ सग्राही होता है। यह कफ-पित्त-प्रकोप-नाशक, कठ के लिए हितकारी एव रक्त-पित्त-शामक होता है। अतिसार पीडित रोगी के लिये विशेषत राजयक्ष्मा व उर क्षत-ग्रस्त रोगी के अति सार के लिए यह उत्तम गुणदायक आहार है।

(६) जौ का दलिया (Barley garuel) और यवागू—

उत्तम जौ का दलिया १। तो लेकर प्रथम उसमे थोडा ठडा पानी मिला पकावें। लपसी सा बन जाने पर, उसमे ५० तोला खूब गरम या खौलता हुआ पानी मिला, अच्छी तरह हिलाते रहे। फिर इसे १५ मिनट तक आग पर उबलने देवें। और छानकर रख ले। इसे प्राय गरम-गरम ही पिलाया जाता है। यह मूत्रल है। कफज जीर्ण अतिसार मे उत्तम पथ्य है। भगन्दर-रोग मे यदि ज्वर न हो तो यह दिया जाता है। प्रसूतिका के आमा-तिसार पर इसे मसूर के यूष के साथ सेवन कराते है।

यवागू—की विधि चावल के प्रकरण मे देखें।—यव की यवागू, किंचित् शक्कर मिला पतली दूध जैसी बना, शीतल कर शहद मिलाकर थोडी थोडी पिलाते रहने से दाह, बेचैनी पित्त ज्वर या वमन सहित ज्वर आदि लक्षणो से युक्त पित्ताशय के शूल पर उत्तम लाभकारी होती है। यह शूल का विकार प्राय स्त्रियो को अधिक होता है। कभी कभी यकृत के पित्ताशय मे अश्मरी होने पर या पित्तनलिका मे अवरोध होने पर बहुत वमन होती एव यकृत-स्थान मे भयकर वेदना होती है। ऐसी अवस्था मे यह यव की यवागू विशेष हितकारी है।

(गा० औ० र०)

(७) सौवीरक (जव की काजी)—भिगोकर छिलका निकाले हुए जवो को कूटकर आठ गुने पानी मे पका, सन्धान विधि[1] से बन्द कर रखदें। शरद व गरमी के दिनो मे ६ दिनो तक, वसन्त तथा वर्षा मे ८ दिनो और हेमन्त व शिशिर मे १० दिनो तक रखने से सन्धान सिद्ध होकर जो काजी तैयार होती है। उसे सौवीरक कहते हैं।

यह ग्रहणी, अर्श तथा कफ विकारो मे लाभदायक होती है। यह मल-भेदक, अग्निप्रदीपक उदावर्त्त, अगमर्द अस्थिशूल, आनाह, शिरोरोग, एव शैथिल्यनाशक है। केशो को हितकारी, बलकारक और सतर्पण है। इसी प्रकार की काजी गेहू से भी बनाई जाती है।

(८) यवादि तैल—जौ ५ तोला तथा मजीठ १। तोला इन दोनो को पानी मे पीसकर कल्क करे। १ सेर तिल-तैल मे यह कल्क व ४ सेर उक्त जौ की काजी (सौवीरक) मिला, तैल सिद्धकर लें। इसकी मालिश से ज्वर, प्रबल दाह व अङ्गो का प्रहर्ष नष्ट होता है।

(भा० भै० र०)

(ग्रन्थ मे द्रव्यो का प्रमाण बहुत अधिक दिया है, हमने उक्त प्रकार से अल्प प्रमाण मे हीइसे बताया है।)

[1] किसी द्रव्य या द्रव्यों को जलयोग द्वारा अधिक दिन खट्टा होने तक या मद्य की तरह उठान होने तक रख छोडना सन्धान कहलाता है। सन्धान की हुई वस्तु लघु रुच पाचक व वातनाशक होती है।

जव (जौ) बिरहना दे०—आतजौ मे। जवा—दे० गुडहल। जवाखार—दे० जौ मे। जवाईन दे०—अजवाइन।

जवाशीर (*FERULA GALBANIFLUA*)

शतपुष्पा या मण्डूकपर्णी—कुल—(Ubelliferae) के इस बहुवर्षायु क्षुप के पत्र—पक्षाकार पुष्प-पीले, तथा फल—कुछ अण्डाकार होते हैं।

इस क्षुप के मूल भाग मे छिद्र करने मे जो निर्यास (गोंद) निकलता है उसे ही अरबी, हिन्दी व मराठी मे जवाशीर, जावशीर, तथा अग्रेजी व लेटिन मे गाल बेनम (Galbanum) कहते हैं। शीर्षस्थान मे दिया हुआ फेरूला गालबेनिफ्लुआ, इसके पौधे का नाम है। इस जवाशीर नमक गोद को पानी मे मिलाने से पानी दूध जैसा प्रतीत होने से, फारसी मे इसे गावशीर (गोक्षीर)

कहते है। औषधि-कर्म मे यही गोद लिया जाता है। यूनानी मे इसका बहुत प्रचार है।

यह गोद बाहर से हरिताभ पीतवर्ण का—अर्ध पारदर्शक या स्वच्छ, भीतर से श्वेताभ पीत रग का, स्वाद मे कडुवा एव अप्रिय होता है।

इसके क्षुप अधिकतर भूमध्य सागर के तटवर्ती तथा पर्शिया आदि प्रदेशो मे, और कुछ प्रमाण मे भारत के उत्तर-पश्चिम प्रदेशो मे पाये जाते है। भारत मे जवाशीर का विशेष आयात पर्शिया से होता है। इसकी एक जाति और होती है, जिसे लेटिन मे Opopanax Chironium कहते है।

रासायनिक संघटन—

इसमे गंधक रहित, टरपेन्टाईन तैल सदृश रासायनिक सघटन वाला एक उडनशीलतैल प० श० ६ से ९ तक, एक प्रकार की राल ६० से ६७ तक तथा टेनिन रेजोरिन (Resorin) आदि होते है। इसके शुष्क वाष्पीकरण द्वारा एक नील वर्ण का स्थायी तैल, तथा एक स्फटिकाभ प्रवल क्षारीय तत्व अम्वेलिफेरान (Umbelliferon) नामक प्राप्त किया जाता है।

नोट १—बाजार मे व्यापारी लोग इसमें उशक (प्रथम खण्ड में उशक का प्रकरण देखें) और मोम का मिश्रण कर देते हैं। असली जवाशीर पानी मे घोलने से श्वेत दूध जैसा हो जाता है। तथा मिश्रित का घोल अन्यान्य वर्ण का होता है। यही इसकी परीक्षा है।

नोट २—कोई कोई जवाशीर को गंधाविरोजा ही मानते हैं। यद्यपि इसमें गंधाविरोजा जैसे गुण-धर्म हैं तथापि यह उससे भिन्न है। चीड़ के प्रकरण में ग० वि० देखें।

गुणधर्म व प्रयोग—

उष्ण, रुक्ष, दीपन, उत्तेजक, सारक, वातानुलोमन मूत्रल, कफनिःसारक, लेखन, शोथघ्न, व्रणरोपण, रज स्रावी, शरीर की ऐंठन व मरोड को दूर करने वाला, तथा कफज विकार, अग्निमाद्य, जलोदर, वालग्रह, कम्पवात अर्दित, पक्षाघात, सिरदर्द, अपस्मार, मूर्च्छा, सन्यास, आध्मान, उदरवात-शूल आदि रोगो पर यह शीघ्र लाभकारी है। वात-नाडियो को सवल बनाने तथा संगृहीत वात को हटाने से वातप्रधान विकारो पर यह विशेष प्रयुक्त होता है।

यह गुणधर्मो में प्राय हीग के समान है किन्तु कुछ कम वलशाली है।

श्वासकृच्छ्रता मे जब छाती या श्वासमार्ग मे कफ की रुकावट से श्वासोच्छ्वास मे कठिनता एव बेचैनी होती है, तब तथा पक्षाघात, योषापस्मार, जीर्ण फुफ्फुस शोथ (व्राकाइटिस), श्वास एवं आंत्र-योनि व गर्भाशय की श्लेष्मलकला के विकारो पर इसका सेवन अल्पमात्रा मे गोली के रूप मे किया जाता है। दतशूल मे इसे दांतों पर मलते हैं। दुष्टव्रण पर—इसका चूर्ण बुरकते या इसे मलहम मे मिलाकर लगाते है। गाठ या ग्रथिशोथ पर—पकने के पूर्व ही, इसे पानी या शहद मे मिला लेप करते है। गाठ वैठ जाती तथा शोथ विखर जाती है।

(१) योषापस्मार से ग्रस्त रुग्णा की मदाग्नि पर—इसके साथ समभाग हीग, बोल तथा गुड २॥-२॥ तो लेकर एकत्र मिश्रण कर, पानी की भाप (वाष्प) पर गरम करते तथा उसे हिलाते रहते हैं। मिश्रण के एक हो जाने पर, गोलिया (चना जैसी) वना सेवन कराते हैं। (ना. क.)

(२)-मक्कल शूल पर—प्रसूता के गर्भाशय मे शूल हो, या प्रसव हो जाने के वाद गर्भाशय मे जरायु का कुछ भाग रह गया हो एव कष्ट पहुँचाता हो, किंतु ज्वर न हो तथा जनन-मार्ग से दूषित स्राव न होता हो, तो इसके सेवन कराने से जरायु या विकृत द्रव्य बाहर निकल जाता व शूल शात होता है।

सगर्भा स्त्री मे इसका प्रयोग प्राय नही किया जाता या बहुत अल्प प्रमाण में करते हैं।

(३) नपुंसकता पर—जवाशीर व अकरकरा के चूर्ण को तिल-तैल मे मिला शिश्न पर लेप करते रहने से शारीरिक निर्वलता जन्य नपुंसकता दूर होती है। किंतु साथ ही साथ देह को सवल बनाने वाली औषधि एव पौष्टिक भोजन भी लेते रहना चाहिये।

(४) आध्मान (अफारा) पर—जवाशीर मे थोडा घृत लगाकर गुनगुने चाय या काफी के साथ सेवन करने से अफारा, उदरशूल, उदर का भारीपन, छोटे-छोटे कृमि आदि नष्ट होकर अग्निप्रदीप्त होती है।

(५) मोतियाविन्दु पर—इसे जल या दूध मे घिसकर २-४ मास तक अंजन करते रहने से नया मो० वि० कट जाता है।

ध्यान रहे इस विकार पर तेज दवा का प्रयोग न करे। नेत्रो से अधिक अश्रुस्राव न हो ऐसा सौम्य उपचार करे। अत आवश्यकतानुसार इसके साथ पुराना घृत मिला लेवें। (गां. औ. र.)

नोट—मात्रा—१ से २ मासा तक।

ग्रीष्मकाल तथा उष्ण देश में इसका सेवन बहुत कम मात्रा में करें। यह वृषणों के लिये अहितकर है।

इसका प्रतिनिधि गधाविरोजा, या उशक या अंजीर वृक्ष का दूध है।

जवासा दे०—घमासा।

जवासा (*ALHAGICAMELORUM*)

गुडूच्यादि वर्ग एव शिम्बीकुल के अपराजिता-उपकुल (Papilionaceae) के इसके ग्रीष्म ऋतु मे हरे-भरे कटकयुक्त क्षुप १-३ फुट ऊचे, शाखाए—अनेक लम्बी पतली, काटे—तीक्ष्ण १ या १॥ इच तक लम्बे, चुभने से भयानक पीडा करने वाले, पत्र—प्राय काटो के मूल भाग से निकले हुए, छोटे, लम्बे, कोमल, गोलाकार, सूक्ष्म रोमश, पुष्प—वसत ऋतु मे, काटो के मूल मे ही निकले हुए, मजरी मे, किंचित् लाल या बेगनी रग के होते हैं। फली—१॥ इच लम्बी, सीधी, कुछ टेढी या मालाकार होती हैं। मूल—जमीन मे बहुत दूर तक घुमी हुई होती है। इसकी फली मे ७–८ नन्हे-नन्हे बीज होते है।

इसके क्षुप से एक प्रकार का सुगधित निर्यास या गोद निकलता है, जो जम जाने पर रक्ताभ श्वेत रग का दानेदार, तथा स्वाद मे प्रथम मधुर, फिर तिक्त प्रतीत होता हे। उसे ही यवास या यास शर्करा, तुरज बीन, अंग्रेजी मे मान्ना (Manna) कहते है। यह यास, यासशर्करा भारतीय जवासा से अत्यल्प प्रमाण मे प्राप्त होती है। अत भारत मे इसका आयात पर्शिया से अत्यधिक होता है।

चरक और सुश्रुत के सूत्रस्थानो मे इस शर्करा का उल्लेख है। किन्तु डल्हणाचार्य (टीकाकार) का कथन है—"यवास क्वाथ पाक घनी भावाच्छर्करा क्रना यवास शर्करा" अर्थात् जवासा के घन क्वाथ से भी शर्करा निष्पन्न होती है।" यह प्राकृतिक यवास शर्करा नही है।
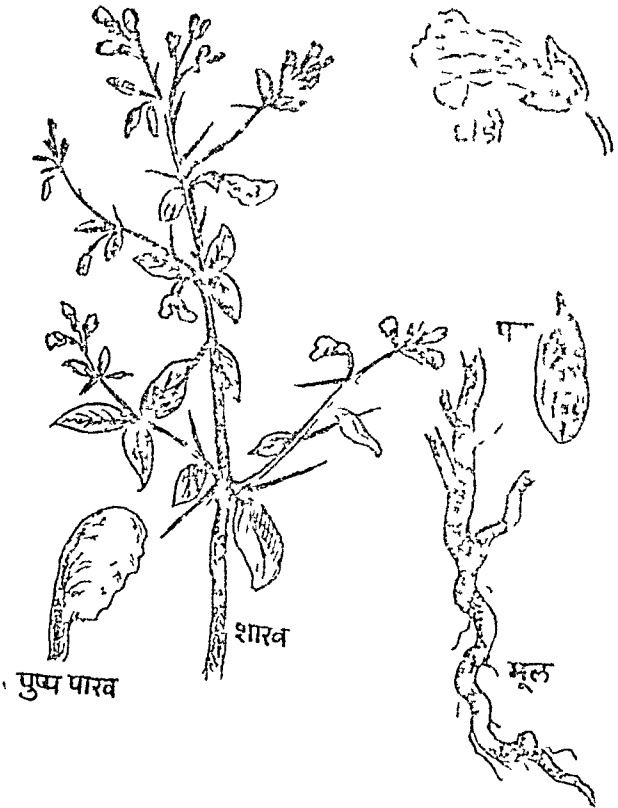
जवासा के क्षुप भारत के उत्तरप्रदेश के गगाजमुना के तटवर्ती स्थानो मे, राजस्थान मे, पश्चिमोत्तर प्रान्तो मे गुजरात, सिंध आदि तथा कधार, मिश्र, सीरिया, पर्शिया अरब, खुरासान आदि देशो मे प्रचुरता से पाये जाते है।

इसे ऊट बहुत प्रेम से खाता है। तथा गर्मी के दिनो

मे खस के स्थान मे इसकी बनी हुई टट्टी खूब ठडक पहुँचाती है।

नोट—ध्यान रहे, जवासा और धमासा (दुरालभा) इन दोनों के स्वरूप मे तथा गुणधर्म में बहुत कुछ समानता होने से दोनों को कहीं-कहीं एक ही माना गया है। वास्तव मे ये दोनों भिन्न-भिन्न बूटियां हैं। यथास्थान धमासा का प्रकरण देखें।

नाम—

स —यास, यवास, दु स्पर्श इ.। हि.-जवासा, यवासा जुनवासा, सावनसूखीबूटी, हिंगुआ इ। म.—जवासा। गु —जवासो। बं —जवसा अं.-अर्बियन या पर्सियन मन्नाप्लांट (Arabian or Persian manna plant)। ले.—अल्हेगी केमीलोरम, अ. मारोरम (A Maurorum)।

रासायनिक संघटन—

इसकी शर्करा में इक्षुशर्करा प्र श. २६ ४ तक, तथा मेलिसिटोज (Melisitoze) आदि कई शर्कराओ का सम्मिश्रण पाया जाता है।

प्रयोज्य अग—पंचाङ्ग, यास शर्करा।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, तिक्त, कषाय, विपाक मे मधुर शीतवीर्य, कफनि सारक, वातपित्तशामक, स्वेदल, मूत्रल अनुलोमन, पित्तसारक, बल्य, बृहण, वेदनास्थापन, त्वग्दोपहर, रक्तशोधक, रक्तरोधक, वमन तृष्णानिग्रहण शोथहर, श्वासयत्र की रूक्षता-निवारक, दाह-ज्वरशातिकर तथा मूर्छाभ्रम, मस्तिष्कदौर्वल्य, विबन्ध, अर्श, कामला, रक्तपित्त, वातरक्त, प्रतिश्याय, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, चर्मरोग आदि मे प्रयुक्त होती है।

(१) इसका कफनाशक धर्म बडे महत्त्व का है। कफज विकारो की प्रारम्भिक अवस्था मे इसके पचाग का और मुलैठी का मिश्रित क्वाथ या अवलेह रूप घन क्वाथ विशेष लाभकारी होता हे। इसकी वाष्प मे धूपन तथा धूम्रपान भी कराते है। कफ ढीला होकर निकल जाता है, गले मे तथा श्वासनलिका मे तरावट आती कासवेग कम होता, एव गले व श्वासनलिका की सूजन तथा श्वासमार्ग मे अन्य विकारो का शमन होता हे। इन विकारो मे इसके पचाग के साथ कटेरी मिलाकर भी क्वाथ बनाकर देते है। इसके पचाग के चूर्ण को चिलम मे भरकर इसके साथ थोडी अजवायन व काले धतूरे का पत्र मिला कर धूम्रपान कराते है। तमक श्वास मे विशेष लाभ होता हे। इसके उक्त अवलेह को उष्णजल से दिया जाता है।

(२) भ्रम या चक्कर आते हो, तो इसके अवलेह या घनक्वाथ मे घृत मिलाकर सेवन कराते है। अवश्य लाभ होता है।

(३) पित्तज जीर्ण शिर शूल तथा उदरशूल पर—प्रात खाने पीने के पूर्व, इसके पत्तो को किंचित् पानी के साथ पीस छान कर ३-४ बूदे स्वरस की नस्य देवे। फिर १।२ घटे के बाद रोगन बनफशा का नस्य देवे। शीघ्र लाभ होता है। (यूनानी)

उदरशूल पर—२० तो इसके पचाग को आधा सेर पानी मे, अर्धावशिष्ट क्वाथ कर नमक १ मा मिला कर पिलाते हे।

(४) अर्श, सधिवात तथा प्रतिश्याय एव कठ या गले के विकारो पर—अर्श के मस्सो को इसके पचाग के क्वाथ से धोते, तथा पचाग को पीस कर लेप करते है। इससे वेदना, शोथ दूर होकर रक्तस्राव बन्द होता है। तथा १ तो जवासा को १० तो जल मे पीस छानकर प्रात साय पिलाने से रक्तार्श मे लाभ होता है।

सन्धिवात पर—इसके पचाग के कल्क से सिद्ध किये हुए तिल-तैल की मालिश करते हैं।

जुखाम और गले के रोगो पर—पचाग के क्वाथ से कुल्ले कराते, तथा इसी क्वाथ का बफारा देते है।

वातज्वर पर—इसके पचाग का मोटा चूर्ण, तथा सोठ, नागरमोथा व गिलोय प्रत्येक १-१ तो लेकर, ४० तो जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने से लाभ होता है। (भा भै र)

(६) लू लगने पर—इसके पचाग का भवके द्वारा खीचा हुआ अर्क आध सेर, अर्क वेदमुश्क और मिश्री चूर्ण १-१ पाव, नीबू-स्वरस १० तो तथा तेजाब गधक २० बूद, सबको एकत्र कर बोतलो मे भर, दृढ कार्क लगाकर ७ दिन रखने के बाद छान लें। इसे १ मे ५ तो. तक थोडा पानी मिला पिलाने से, लू से पीडित रोगी

को शान्ति प्राप्त होती है। [illegible] विकारों में भी लाभ होता है। (वृ॰ [illegible])

(७) विस्फोटक (रक्तपित्त विकृति से उत्पन्न, [illegible] युक्त अग्निदग्ध के समान फफोले [illegible] शरीर में या किसी एक भाग में होते हैं।) पर—[illegible] ४ मा॰ काली मिर्च ५ दाने, दोनों [illegible] पानी में पीस छानकर पिलाने से विस्फोटक नहीं निकलता, और न जोर कर सकता है (स्व॰ प॰ भागीरथ स्वामी)

(८) गर्भस्थिति के लिये—इसके बीज १ तो॰ गौ घृत ५ तो॰ में मिलाकर रजस्वला होने के ३ दिन बाद ३ दिन तक खिलावें, पथ्य गोदुग्ध तथा चावल बूरा (शक्कर) मिलाकर खाना चाहिये। यह अनुभूत योग है—

(—स्व॰ प॰ भागीरथ स्वामी)

स्त्रियों के श्वेत प्रदर पर—इसके ४ मा॰ महीन चूर्ण को प्रातः साय जल के साथ पिलाते हैं।

यवासशर्करा—मधुर, कसैली, विपाक में तिक्त, [illegible]-वीर्य, कफहर, सारक और वृष्य है।

नोट—बाजार में यह नकली भी मिलती है। [illegible] यवशर्करा श्वेताभ लालिमायुक्त, दाने कुछ गोल [illegible] से हलके, स्वाद में मधुरता के साथ कुछ कसैले एवं [illegible] युक्त होती है। पानी में भिगाने से कुछ चिकनाई मालूम देती है।

यह मधुर होने से छोटे बालक एवं कोमल प्रकृति के लोगों के लिये एक सर्वोत्कृष्ट सारक औषधि है। यह सरलता से पित्त का उत्सर्ग करती है। इसका काम में उपयोग करते तथा उष्ण व्याधियों में, अन्य विरेचन द्रव्यों के साथ उनके कर्म को तीव्र करने के लिये भी मिलाकर पिलाते हैं।

यूनानी वैद्यक में दवाये तरजबीन नामक इसका एक उत्तम योग इस प्रकार है—

(९) तरजबीन (यवासशर्करा) साफ किया हुआ ६० मा॰ लेकर १ सेर ताजे दूध में उबालें। जब पाक हो जावे, तो प्रतिदिन दो चम्मच खिलावें। पित्त दोष के [illegible]

[illegible]

(वृ॰ [illegible])

नोट—मात्रा—[illegible] १ से [illegible] मात्रा। [illegible] १ ३ माशा।

यह [illegible] के लिये [illegible]—[illegible]। इसका प्रतिनिधि—[illegible] (गुलकन्द) है।

यवासशर्करा—[illegible]। इसका प्रतिनिधि [illegible] और [illegible] है।

विशिष्ट योग—यवासासव (रक्तपित्तादि, तथा नेत्र-विकार-नाशक) ताजा जवासा १ सेर, कूट कर ८ सेर पानी में, रात्रि के समय ताम्रपात्र में भिगोकर रख दें। प्रातः पकावें, २ सेर जल शेष रहने पर छान लें। इस जल को पुनः पकावें, गाढ़ा घनसत्व हो जाने पर शीशी में भर दें। यह सत्व ५ तो॰ और शुद्ध [illegible] १ सेर एकत्र मिला, कांच के पात्र में भर कर ७ दिन रक्खें। फिर छानकर बोतल में सुरक्षित रक्खें।

मात्रा—३ मा॰, पानी ५ तोला में मिला पिलावें। रक्तपित्त, रक्तस्राव, प्रदर रोग, गर्भस्राव, [illegible], सोम-रोग, विषमज्वर, मूत्राघात, [illegible], मूत्रातिसार, रक्तातिसार, श्रम, उदरपीड़ा, वमन, नकसीर आदि पर लाभप्रद है।

नेत्ररोग के लिये—उक्त यवासासव १॥ मा॰ और उत्तम गुलाबजल ५ तो॰ दोनों को एक शीशी में भर मुख बन्द कर ७ दिन रक्खे। फिर छान कर रक्खें। २-२ बूद प्रतिदिन प्रातः साय २ या ३ बार नेत्रों में डालते रहने से दुखती आख (नेत्राभिष्यन्द) शीघ्र आराम होती है। धुन्ध, जाला, फूला, गुर्री, खुजली, गन्दापन, नेत्रस्राव आदि विकार भी शीघ्र नष्ट होते हैं।

(वृ॰ आ॰ अ॰ स॰)

जहरी नारियल दे॰—दरियाई नारियल। जाट दे॰—छोकर। जाई दे॰—चमेली।
जाठोन दे॰—गुंजा में। जापानी कपूर दे॰—कपूर में। जाफर दे॰—सिन्दुरिया।
जाफरान दे॰—केसर। जामफल दे॰—अमरूद। जाभीर दे॰—नीबू जबीरी।

जामुन (Eugenia Jambolana)

फलादिवर्ग एवं लवग कुल (Myrtaceae) का लगभग सदैव हरा-भरा बड़ा वृक्ष होता है। पत्र ३-६ इंच लम्बे, २-३ इंच चौड़े, गाजवृक्ष या पीपल के पत्र जैसे चिकने-चमकदार, पुष्प—वसन्त ऋतु में, हरिताभ श्वेत, या स्वर्ण-वर्ण के, मंजरियों में आते हैं। फल—ग्रीष्मान्त या वर्षा के प्रारम्भ में ½ से २ इंच तक लम्बे, १ से १½ इंच मोटे, अण्डाकार, कच्ची दशा में हरे, कुछ पकने पर लाल, बैंगनी रंग के, तथा परिपक्वावस्था में गाढ़े नील वर्ण के एवं गोल लम्बी छोटी गुठली से युक्त होते हैं। ये फल खाये जाते हैं। तथा औषधि-कार्य में भी आते हैं। इसके वृक्ष बागों में लगाए जाते हैं। फल आकार में जितना बड़ा हो उतना ही अधिक गुणकारी होता है।

नोट—प्रस्तुत प्रसंग की बड़ी जामुन (राजजम्बू) की कई उपजातियाँ हैं। उनमें से प्रसिद्ध ये हैं—

(१) छोटी जामुन (क्षुद्र जम्बू) इसे काठ जामुन, वन जामुन, बंगला में वनजाम कहते हैं। इसके वृक्ष, पत्र, फल आदि बड़ी जामुन की अपेक्षा छोटे होते हैं। फल—में मांसल भाग या गूदा बहुत कम होता है, गुठली बड़ी होती है। इसमें ग्राही गुण की अधिकता है।

इसके ही नदी-जम्बू, काक-जम्बू भेद हैं। जंगलों में नदी नालों के किनारे कहीं २ एक साथ इनकी कतार सी देखी जाती है। इन्हें जल जामुन भी कहते हैं। पत्र—कनेरपत्र जैसे, फल—छोटी जामुन से भी छोटे होते हैं। वृक्ष की शाखाएं प्रायः जड़ से ही निकलती हैं।

(२) भूमि जम्बू—का वृक्ष झाड़ीदार छोटा तथा फल—छोटा, मटर जैसा होता है। इसे लेटिन में प्रेम्ना हर्बेसी (Premna Herbaceae) कहते हैं। यह भारंगी का ही एक भेद है। हिमालय तथा दक्षिण की पहाड़ियों पर अधिक होता है। यथास्थान भारंगी का प्रकरण देखें।

(४) गुलाबजामुन—यह विदेशी जामुन है, जो बंगाल और बर्मा में भी होने लगा है। इसका वृक्ष
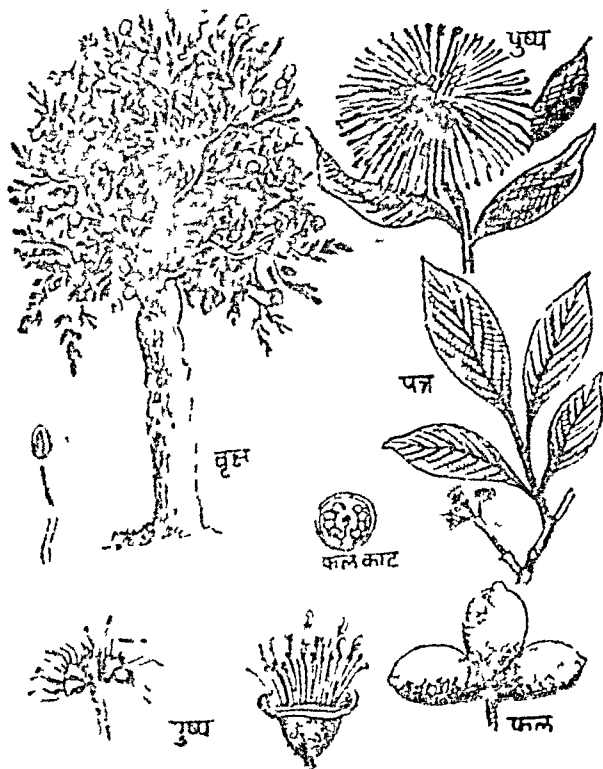
प्रस्तुत प्रसंग के राजजम्बू की अपेक्षा छोटा, शाखाएं बिखरी हुई तथा पत्र भी कुछ छोटे किंतु अधिक लम्बे फल—आकार में नीबू के बराबर, किंतु कुछ चपटा सा गुलाबी रंग का, अन्दर का गूदा श्वेत गुलाब की सी गंध-युक्त, स्वाद में मीठा, स्वादिष्ट गुठली बहुत छोटी, गोल भूरे रंग की, पुष्प—कुछ लालिमायुक्त श्वेतवर्ण के, २-३ इंच लम्बे पुष्प-दण्ड पर अनेक आते हैं। ये प्रायः बकुल (मोलसरी) के पुष्प जैसे होते हैं।

इसे बंगला में गोलाब जाम, लेटिन में युजेनिया जंबोस (Eugenia Jambos) तथा अंग्रेजी में रोज एपल (Rose apple) कहते हैं। फल—शीतल, रूक्ष, आत्रसकोचक, गुरु व त्रिदोषनाशक है। फलों से अर्क गुलाब भी बनाते हैं। यह एक मेवा की तरह खाया जाता है।

हृदय, मस्तिष्क, यकृत एव आमाशय को बलप्रद है। अधिक खाने से आध्मानकारक है। गुठली-ग्राही है। अतिसार मे इसका चूर्ण देते है। इसके चूर्ण मे मिश्री तथा थोडा सोठ-चूर्ण मिला शुक्रप्रमेह मे देते है। छाल—मधुर, कसैली, उष्ण, रूक्ष, आत्रसकोचक, श्वास, तृष्णा अतिसार आदि मे प्रयुक्त होती है।

जामुन की जितनी जातिया है, उनमे राजजम्बू ही श्रेष्ठ माना गया है। यह भारत के बागबगीचो मे प्राय सर्वत्र लगाया जाता है।

चरक के मूत्र-सग्रहणीय, पुरीष-विरजनीय, छर्दि-निग्रहणीय तथा सुश्रुत के न्यग्रोधादि-गणो मे इसकी गणना है।

नाम—

स-राजजम्बू, महाफला, फलेन्द्रा इ०। हि०-जामुन, (बडी), फलादा, फरेंदा इ०। म०-रायजामूल, थोर-जांमूल। गु०-जावो। ब०—कालजाम अ०-जाम्बुल (Jambul) तथा छोटी जामुन ब्लैकबेरी (Black berry)। ले०-युजिनिया जम्बोलना, यु० फ्रुटिकोसा (E Fruticosa)।

—

रासायनिक सगठन—

बीजो मे एक जम्बोलिन (Jamboline) नामक ग्लुकोसाईड (यह स्टार्च को शर्करा मे परिणत होने से रोकता है) फेनिल युक्त एक एलाजिक एसिड (Ellagic acid) तथा पीताभ सुगधित तेल, वसा, राल, गैलिक, एसिड, अलब्युमिन आदि पाये जाते है। वृक्ष की छाल मे टैनिन प्र० श० १० और एक गोद होता है।

प्रयोज्य अग—फल, गुठली, पत्र और छाल। ये सब मधुमेह पर उपयोगी हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

फल—लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर, अम्ल, मधुर विपाक, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, प्रबलवातवर्धक, रक्तस्तभक, त्वग्दोषहर दाहप्रशमन, दीपन, पाचन, यकृदुत्तेजक मलरोधक, श्रमहर, तृषाशामक, अतिसार, श्वास, कास, उदर-कृमि आदि नाशक है।

फलो को भोजन के बाद तीसरे प्रहर मे खाना ठीक होता है। इनके साथ नमक, कालीमिर्च, सोठ, अजवायन आदि मिलाकर खाने से विशेष लाभ होता है। फल ताजा व उत्तम पका हुआ होना चाहिये। बासी, सडा गला या कच्चा फल हानिकारक होता है। कच्चे या अधपके फल खाने से आत छिल जाती एव फेफडो मे विकार होने की सभावना रहती है। फल खाने के बाद दूध नही पीना चाहिये। पानी आवश्यकतानुसार पी सकते है। फलो को भोजन के पूर्व या खाली पेट खाने से वात की वृद्धि व आध्मान होता है। अधिक खाने से भी आध्मान, विष्टम्भ होता है।

फल और उसके बीज यकृत के द्वारा होने वाली शर्करा की पाचनक्रिया का सुधार करते हैं, जिससे रक्तगत एव मूत्रगत शर्करा कम होती है। और मूत्र का प्रमाण भी कम होता है। इसमे जो सौम्य लोह-अश रहता है, वह रक्त की अशुद्धता से होने वाली प्लीहा एव यकृत की वृद्धि मे तथा अन्य उदर-रोगो मे उत्तम लाभ कारक है।

(१) मधुमेह मे—अच्छे पके फलो को २॥ से ५ तो० तक लेकर, २५ तो० उबलते हुए पानी मे (पानी नीचे उतार कर) डालकर ढक दें। आध घटे बाद मसल कर छान ले। इसकी ३ मात्रा कर दिन मे ३ बार इस फाट को पिलादें। शीघ्र कुछ दिनो मे लाभ होता है। किंतु पथ्य, परहेज मे सावधान रहने की आवश्यकता हैं। पथ्य-परहेज आगे गुठली या बीजो के प्रयोग मे देखे।

लोहभस्म मे इसके रस की ५-७ पुट देने से उत्तम नीलवर्ण की भस्म बन जाती है, जो मधुमेह मे उपयोगी है।

(२) प्रमेह, मधुमेह एव धातु-विकार पर—अच्छे पके जामुनो को कल्प-विधि से प्रतिदिन चार बार, प्रतिबार ३ छटाक तक खाकर ऊपर से आध रत्ती सेंधा-नमक चाट लिया करे। इस प्रकार मात्रा धीरे २ बढाते हुए १५ दिन सेवन करे। और फिर घटाते जावें। उक्त तीनो रोग दूर होकर शरीर मे शक्तिसचय होता है।

(फलाक)

किंतु ध्यान रहे जामुन मे शरीर—पोषणार्थ आवश्य-

कीय सब तत्त्व नही होते। अत कल्प-विधि से सेवन करना हो, तो अच्छे मीठे आमो को चूस कर फिर जामुन खाना ठीक होता है। पश्चात् २-३ घटे के दूध पीवे।

मधुमेही की तृष्णा-शांति के लिये इसके फलो के रस के साथ आम का रस समभाग मिला कर पिलावे।

मधुमेह पर—निम्न विधि से आसव बनाकर भी प्रयोग करते हैं—

उत्तम पकी जामुन का रस २० सेर लेकर उसमे गुड ५ सेर घोल दें, फिर उसमे जामुन की गुठली ३ सेर छाल व पत्र १-१ सेर तथा-कुडा छाल और लोह-चूर्ण आध-आध सेर सब जौकुट कर, एव एकत्र कर, मिट्टी के चिकने पात्र मे भर कर, मुखसधान कर, अनाज के ढेर मे दवा दें। ४० दिन बाद छानकर, बोतलो मे भर दे। मात्रा—५ तो तक प्रतिदिन सेवन से मधुमेह मे लाभ होता है। (बृ आ अ स)

यदि ताजे जामुन न मिलें तो शुष्क फलो का दो तो चूर्ण नित्य पानी के साथ सेवन करें।

जलोदर, प्लीहा-वृद्धि आदि पर-ताजे, पके, काले फल चूर्णकर, निचोड कर, छान कर, मिट्टी के पात्र मे भर दें। १५ दिन बाद पुन छानकर बोतलो मे भर लें। फिर नितर जाने पर ऊपर का लाल-लाल रस नितार कर, नीचे की गन्दी गाद को फेक दें।

पश्चात् शुद्ध गधक, कलमी सोरा, व नौसादर १ तो प्रत्येक अलग-अलग महीन पीस कर एक बोतल मे डाल कर उसमे उक्त जामुन का अर्क या सिरका ५५ तो. मिला, आध घटे बाद बोतल का मुख बन्द कर ४० दिन धूप मे रक्खें। फिर काम मे लावे। प्रात साय १ से ३ मा तक सेवन से यह आसव जलोदर, प्लीहा व श्वासनाशक है। यह अतिपाचक, अजीर्ण, शूल, अफरादि उदर-रोगो को शीघ्र नष्ट करता है। (बृ० आ० अ० स०)

प्लीहा-नाशक सिरका विशिष्ट योगो मे देखें।

(४) योषापस्मार (हिस्टीरिया) पर—जामुन ३ सेर, एक घडे मे डालकर उसमे १ मुट्ठी भर सेंधा नमक छोड दे, तथा पानी ३ या ४ सेर मिला, ७ दिन रक्खे। पश्चात् रुग्णा को नित्य प्रात १॥ पाव निराहार मुंह (खाली पेट) खिलाकर, ऊपर से १ प्याली इसी जल की (आसव की) पिलादें। जिस दिन से सेवन आरभ करें, उसी दिन एक अन्य घडे मे उपरोक्त विधि से जामुन आदि डाल दे। जिससे प्रथम घडा समाप्त होने पर, दूसरा घडा सेवन के लिये तैयार हो जावे। दो सप्ताह के सेवन से एक देवी का १५ साल का यह रोगदूर हो गया था, तथा उसके स्वस्थ होने पर सन्तान भी हुई थी। (बृ० आ० अ० स०)

रक्तातिसार आदि पर—फलो के रस को, अर्क गुलाब के साथ, थोडी-थोडी खाड मिलाकर पिलाते है।

पित्तप्रकोप पर—१ तो इसके रस मे, १ तो० गुड मिला, आग पर रखे। उसमे जो भाप उठे उसे मुख मे लेने से, शीघ्र पित्तशांत होता है।

पेट मे बाल या लोहे का अश चला गया हो, तो फलो को खाने से वह नष्ट हो जाता है।

फलो के सिरका द्राव आदि के प्रयोग—विशिष्ट योगो मे देखे।

गुठली (बीज)—मधुर, शीतल, धातु-अवरोधक, जीर्णातिसार, प्रवाहिका, रक्तप्रदर, रक्तातिसार, इक्षुमेह, मधुमेह, उदकमेह आदि मे उत्तम लाभकारी है। औषधि-प्रयोगार्थ पके जामुन की गुठली लेना चाहिये।

(६) मधुमेह पर—गुठली व सोठ १-१ भाग तथा गुड़मार बूटी २ भाग, इन सब को कूट पीस एव महीन छानकर, ग्वारपाठा के रस मे खूब घोटकर आध तो० की गोलिया बना छाया शुष्क कर ले। दिन मे ३ बार १-१ गोली (या ३-३ गोली) शहद के साथ लेने से, मूत्र मे आने वाली शक्कर १ या २ मास में बन्द हो जाती है। पथ्य कुपथ्य का ध्यान रक्खे पथ्य मे—जौ व चने का आटा, बाजरा, मूग, साठी चावल, अरहर, तिल, चनो का पानी, शहद, परवल, पालक, करेला, मूली, टमाटर, लौकी, लहसुन, कच्चा केला, खजूर, [illegible] ताड का फल, तोरई आदि देवे। मद्य, तैल [illegible], शक्कर एव इनके बने पदार्थ पेठा, गेहूँ, [illegible]खी, आलू, [illegible] का रग, बीडी, सिग्रेट, [illegible]दि और नवीन अन्न व सेम की फली, त्याज्य

है। मलमूत्र के वेग को रोकना, दिन मे सोना, एक ही स्थान पर देर तक बैठना भी नही चाहिये ।

उक्त प्रकार से मधुमेह जन्य प्रमेह पिटिकाएं, कार्बंकल आदि उपद्रव भी दूर हो जाते हैं।
—वैद्य सुखरामदास जी ओझा (व च)

अथवा—गुठली १० तो महीन चूर्ण कर, उसमे फिटकरी फुलाई हुई १ तो०, उत्तम शिलाजीत २॥ तो० मिलाकर, बेलपत्र के क्वाथ मे खूब खरल कर १-१ मा० की गोलिया बनालें। प्रात सायं १-१ गोली लेकर ऊपर से बेलपत्र ५ नग, पानी ५ तो मे पीस छान कर कुछ गरम कर पीवें। १ मास के प्रयोग से पूर्ण लाभ होता है।
(गृह-चिकित्सा)

अथवा—गुठलियो को एकत्र कर छाया मे शुष्क कर रखले। आवश्यकता के समय इनको कूटकर महीन चूर्ण करें। फिर गुडमार बूटी ३ माशे, पानी १ पाव मे पकावे ५ तो० शेष रहने पर छान कर शीशी मे रखें। प्रथम चूर्ण ३ मा० प्रात फाक कर, ऊपर से यह गुडमार का क्वाथ १॥ तो० पिलादे। दोपहर को पुन ६ मा० चूर्ण फाक कर ऊपर से शेष बचा हुआ क्वाथ पिलावे। इस प्रकार १–१॥ मास तक निरंतर नित्य गुडमार बूटी के ताजे क्वाथ के साथ सेवन कराने से कष्टसाध्य मधुमेह भी अच्छा हो जाता है। पथ्य का पालन करें।
(भा० ज० बू०)

रोगी को दूध देना हो तो मक्खन निकाला हुआ पीसा दूध दे सकते हैं। आमला, कागजी नीबू, जामुन, [illegible], गरम करके शीतल किया जल, घोड़े की सवारी, [illegible] आदि भी पथ्य हैं। गेंहू की रोटी खाना हो तो चोकर सहित आटे की खावें।

अथवा—गुठली का चूर्ण १ पौंड (८० तो०) [illegible] ४ पौंड पानी मे सब [illegible] करे। ४ घंटे बाद [illegible] छान लें। [illegible] ४ घंटे बाद ऊपर [illegible] जो चूर्ण [illegible] १ पौंड [illegible] १ [illegible] लगादें।

२७ दिन बाद इसमें १५ पौंड स्प्रिट और ५ औंस (१२॥ तो०) शहद मिलावें। पुन कार्क बन्द कर, ३० दिन बाद छान कर काम मे लावे। मात्रा—१ ड्राम (६० बूंद तक) पानी के साथ दिन मे ४ बार देवे। पथ्य मे जौ के आटे का लेह और हलका भोजन दें। शीघ्र लाभ करता है। केवल बहुमूत्र की शिकायत हो, तो गिरी के चूर्ण के समभाग काले तिल मिलाकर, १ तो० की मात्रा में प्रात सायं दूध से लेवें। (वृ० आ० अ० स०)

(७) जीर्ण अतिसार व रक्तप्रदर पर—गुठली के चूर्ण के साथ, आम की गुठली की गिरी का चूर्ण और भुनी हुई छोटी हर्र का चूर्ण समभाग खरल कर, ३ मा० तक जल के साथ सेवन करने से जीर्ण-अतिसार मे लाभ होता है।

रक्त सहित आमातिसार पर इसकी और आम की गुठली की गिरी समभाग, महीनचूर्ण कर समभाग देशी खाड मिला, ३ से ६ मा० की मात्रा मे ताजे मठ्ठे या जल के साथ देते हैं।

रक्तप्रदर पर—गुठली के चूर्ण को चावलो के पानी या माड के साथ पिलाते हैं। प्रदर पर—गिरी के साथ कमलगट्टे की गिरी (गिरी के बीच वाला हरा भाग फेंक दें) और वशंलोचन समभाग महीन चूर्ण कर, चूर्ण के समभाग देशी खाड मिला दे। प्रात साय ३ मा० की मात्रा मे गाय के दूध से ले। सर्व प्रकार के प्रदर दूर होते हैं।

मोतियाबिंदु पर—गुठली का चूर्ण शहद मे घोटकर ३-३ मा० की गोलिया बना, प्रात साय १-२ गोली गोदुग्ध के साथ सेवन से तथा गोली को शहद मे घिस कर आखो मे आजने से नवीन मो० बिन्दु मे अवश्य लाभ होता है।

(९) ज्वर पर—गुठलियो को स्वच्छ कर, सुखाकर लोहपात्र मे रख, आच पर भून कर राख करते तथा ३ मा० यह भस्म मधु मे कफ या वातकफ-ज्वर मे चटाते है। कफ व वमन बन्द करने के लिये गुठली का चूर्ण मधु से चटाते है।

(१०) नासूर-पिटिका आदि पर—गुठली को पानी मे पीसकर मुख के मुहासो आदि पर तथा गरमियो

मे होने वाली छोटी छोटी फुंसियो पर लेप करते हैं।

जूते की जखम पर—तंग जूते पहनने से पैर मे जो जखम होता है, उस पर भी उक्त प्रकार से लेप करते हैं।

कर्णस्राव पर—गुठली के चूर्ण को तैल मे पका कर तैल कान मे डालते हैं। शीघ्र लाभ होता है। गुठलियो का ही तैल निकाल कर, कान मे कुछ बून्दे डालने से उत्तम लाभ होता है।

कुचले के जहर पर—इसका चूर्ण १० मा० तक गोदुग्ध या पानी के साथ दिन मे कई बार पिलाते है।

छाल—जामुन वृक्ष की छाल–कसैली, मधुर, स्तंभक मलरोधक पाचक, रुक्ष, रुचिकारक, व पित्तशामक है। इसका क्वाथ जीर्णातिसार, प्रवाहिका, सग्रहणी आदि मे देते हैं। प्रदर पर—नया प्रदर हो, गरम-गरम जल जैसा स्राव होता हो, तो इसका क्वाथ दिन मे दो बार शहद मिलाकर देते हैं। वमन पर—खट्टी वमन होने पर छाल की भस्म मधु से चटाते हैं, यदि वमन मे रक्त आता हो तो जामुन के फलो का शर्बत देते है।

(११) मधुमेह पर—इसके वृक्ष की अन्तर्छाल, सुखाकर इस प्रकार जला ले कि श्वेत भूरे रग की राख हो जाय। इसे खरल मे घोट छान कर रख ले। जिस रोगी के मूत्र की ग्रेविटी १.२० से १.३० तक हो (ध्यान रहे प्रारम्भ मे रोगी के मूत्र की स्पेसिफिक ग्रेविटी १.२० से १.३० या ३५ तक बढती है। तथा १ औंस मूत्र मे शक्कर लगभग ५ से १० रत्ती तक जाती है। ज्यो २ रोग पुराना होता हैं त्यो २ ग्रेविटी बढकर १.५० तक चली जाती है, तथा मूत्र मे २५ रत्ती तक शक्कर के तत्व जाने लगते हैं। शक्कर के साथ अलब्यूमिन एव अन्य कई जीवन-पोषक तत्व पेशाब के साथ बहने लगते हैं।) उसे इस भस्म मे से १० रत्ती भस्म प्रात भूखे पेट १ औंस पानी के साथ तथा वैसे ही १०-१० रत्ती भस्म दुपहर और शाम को भोजन के १ घंटा बाद देवे। तथा ३-३ या ४-४ दिन के अन्तर से पेशाब की ग्रेविटी एव शक्कर की जाच करते रहे। तथा पथ्यापथ्य[1] का अवश्य पालन करावे।

यह विश्वास किया जा सकता है कि इस प्रयोग मे अधिकाश रोगियो का रोग १॥ महीने मे चला जाता है। यदि रोगी के पेशाब की स्पे० ग्रे० १.३४ से ५० तक हो तो इस भस्म को २० से ३० ग्रेन की मात्रा में दिन मे ३ बार देवें तथा रोगी की प्रकृति का विचार कर यदि कोई उपद्रव मालूम हो तो दूसरी सहायक औषधियां (चंद्रप्रभावटी, गिलोयसत्व, प्रवालभस्म आदि) भी इसी भस्म के साथ दी जा सकती हैं। (व० च)

(१२) बहुमूत्र आदि पर—इसकी छाल ५ सेर, बबूल एवं खैर वृक्ष की छाले २॥–२॥ सेर सबको जौ कुट कर १ मन १२ सेर पानी में पकावे। १३ सेर क्वाथ-जल शेष रहने पर, एक शुद्ध मटके मे छानकर भर दें। ठडा हो जाने पर उसमे शहद १० सेर, धाय फूलो का चूर्ण १३ छटाक, लोध, त्रिकुट, प्रत्येक ४-४ तो० चूर्ण कर मिलावे। पात्र का मुख अच्छी तरह सन्धान कर, १ मास तक सुरक्षित रखे। फिर छानकर बोतलो मे भर लें। मात्रा—१ से ४ तो० तक सेवन कराने से यह आसव बहुमूत्र स्त्रियो के सोमरोग, प्रमेह व मधुमेह में भी लाभ करता है। (स्वकृत)

अतिसार पर—जामुन और कुडे की छाल समभाग जौकुट कर ४ गुने पानी मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर, पुन पका कर गाढा कर लें। जब अवलेह तैयार हो जाय (करछली में चिपकने लगे) तो उतार कर शीतल कर रक्खे। (मात्रा—१ तो० तक) शहद मिलाकर चाटने से भयकर अतिसार, आमातिसार तथा पानी एव राध युक्त मुरदे की सी गध वाले अतिसार को भी यह अवलेह शीघ्र नष्ट करता है। (हा० स०)

छाल के रस मे दूध मिला पिलाने से वमन होकर पित्त गिर जाता है। तथा पित्तातिसार मे लाभ होता है। इसकी शांति के लिये चावल और घृत खिलावे। बालको के अतिसार एव अग्निमाद्य मे छाल का ताजा रस, बकरी के दूध के साथ पिलावें। (चक्रदत्त)

गर्भवती स्त्री के अतिसार पर—इसकी छाल और आमवृक्ष की छाल २-२ तो० जौकुट कर, १६ गुने पानी मे १/४ क्वाथ सिद्ध कर, उसकी ३ मात्रा कर दिन में

[1] पथ्यापथ्य उपर प्रयोग न० ६ मे देखलें।

३ बार, धनिया व जीरा-चूर्ण २-२ मा० मिलाकर पिलाते हैं। ३-४ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

रक्तप्रदर पर—छाल के महीन चूर्ण को लोह-खरल मे २१ भावनाए इसके ही जल के रस की देवें, और १० भावनाए गूलर-छाल के रस की देकर, शुष्क कर शीशी मे भर रखे। प्रात साय १-२ मा० तक, अवपके केले के फल के गूदे मे मिलाकर चटावें। पथ्य मे—दूध, दलिया, मूंग का हलुवा, पुराने चावलो की खीर आदि दें। नमकीन चीज, लालमिर्च आदि तीक्ष्ण चीजो का त्याग करें। —(गुप्तसिद्ध प्रयोगाङ्क-धन्वन्तरि)

वछनाग (वत्सनाभ) के विष पर—अन्तरछाल के रस में, चावलों का माड मिलाकर पिलाते है।

नोट—छोटी जामुन वृक्ष की मूल उत्तेजक, धातु-परिवर्तक, दीपन एवं कटु पौष्टिक है। बडी जामुन या छोटी जामुन की छाल—

(१५) मसूढ़ो की सूजन तथा मुख के विकारो पर—पारद के सेवन तथा अन्य कारणो से हुए शोथ, छाले आदि पर—छाल के क्वाथ या फाण्ट से गण्डूष या कुल्ले दिन मे २-३ बार कराते हैं। इसमे सूजन, वेदना आदि मे शान्ति प्राप्त होती है। दात मजवूत होते हैं।

इसकी कोमल लकडी की दातून भी दातो के लिये लाभकारी है।

(१६) श्वास, फुफ्फुस-विकार आदि पर—छोटी जामुन के वृक्ष की मूल की छाल का ताजा रस और अदरख का रस एकत्र कर उसमें गरम जल मिलाकर, अथवा जड का कल्क बनाकर उसमें सोठ-चूर्ण, मिला गरम जल मे घोल छानकर सेवन कराते हैं। यह ज्वर, तथा गण्डमाला सम्बन्धी विकारो पर भी लाभदायक है।

पत्र—जामुन के पत्ते, कसैले, सकोचक, ग्राही, कफ पित्त, दाहशामक वमक-नाशक हैं। कोमल पत्र-स्वरस वमन में तथा रक्तपित्त मे भी देते है। पुटपाक-विधि से पत्र-स्वरस उत्तम निकाला जा सकता है।

पत्तो के कल्क का प्रलेप दुष्ट व्रणों का शोधक है। छोटी जामुन के पत्तो की पुल्टिस बना बाधने से व्रण का शीघ्र ही परिपाक होता है।

पत्तो की भस्म का मजन मसूढो को मजबूत करता है। इस भस्म में थोडा सेंधानमक मिलादें। मसूढो व दातो के सब विकार नष्ट होते है।

मुख के छालो के शमनार्थ—कोमल व ताजे पत्तो को पानी मे पीस कर कुल्ले कराते है।

अफीम के विष-प्रभाव के शमनार्थ, पत्र १ तो० पीस छान कर कई बार पिलाते है। बिच्छू के दश पर—पत्र-रस लगाते हैं।

कोमल पत्तो का क्वाथ पान करने से पित्त-विकार एव वमन आदि दूर होते हैं।

पत्र-क्वाथ में शहद मिला कर, योनिमार्ग में पिचकारी लगाने मे योनिसम्बन्धी अनेक रोग दूर होते है।

प्लीहादि तथा आमाशय के विकारो पर—पत्तो को गोदुग्ध मे पीस कर नित्य सेवन कराते हैं। प्लीहादि—नाशक जम्व्रुपत्रासव देखें। (बृ० आ० अ० सग्रह)

(१७) वमन, अतिसार आदि पर—इसके पत्तो के साथ आम्र पत्र, खस, वड एव पीपल वृक्ष के अकुरो के क्वाथ को ठडा कर, शहद मिला पीने से वमन मे लाभ होता है। (ग० नि०)

अथवा—इसके और आम के पत्तो के क्वाथ को ठडा कर, उसमे शहद और धान की खीलो का चूर्ण मिलाकर पीने से वमन और अतिसार दोनो मे लाभ होता है। (व० से०)

(१८) अतिसार, सग्रहणी और रक्तार्श पर—इसके पत्तो के साथ, अनारपत्र, सिंघाडे के पत्र, पाठा और चौलाई के पत्ते समभाग लेकर कूटकर रात को पानी मे पकाकर छानकर उसमे बेलगिरी भिगोकर ढक कर रख दें। प्रात इसमे थोडा गुड व सोंठ का चूर्ण मिला पीने से समस्त प्रकार के अतिसारो और भयकर सग्रहणी मे भी लाभ होता है। (व० से०)

केवल रक्तातिसार हो, तो इसके तथा आम और आमले के कोमल पत्तो (कोपलो) को कूट कर रस निकाल कर उसे लगभग ५ तो० की मात्रा मे बकरी का दूध समभाग मिला तथा थोडा शहद (१ तो० तक) मिला पीने से रक्तातिसार का नाश होता है। (भा० प्र०)

रक्तार्श मे—कोमल पत्र-स्वरस २ तो० मे थोडी शक्कर मिला पिलाते हैं। रक्तस्राव बन्द होता है।

अथवा—कोमल पत्र १ तो० को १ पाव गाय के दूध मे पीस छान कर थोडा शहद मिला दिन मे ३ बार पिलाते है। ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। इससे रक्तप्रदर मे भी लाभ होता है। उसमे शहद मिलाने की आवश्यकता नही।

अतिसार मे-पत्र-स्वरस १ तो० मे ३ मा० मधु मिला (इस प्रकार दिन मे ३ बार) देते रहने से ३-४ दिनो मे पूर्ण लाभ होकर, आम का पाचन होता एव रक्तस्राव भी दूर होता है।

(१६) मथर ज्वर (मोतीझारा) मे—इसके कोमल पत्र तथा कालीमिर्च व गुलदाऊदी के फूल (फूल न मिलें तो पत्ते) तीनो समभाग, पानी मे पीस छान कर पिलाने से रोगी की बेचैनी दूर होकर शांति प्राप्त होती है।

(२०) व्रणादि के कारण विकृत हुए त्वचा के रग पर—इसके और आम के पत्तो तथा हल्दी, दारु-हल्दी, व नवीन गुड समभाग लेकर दही के पानी मे पीस लेप करते रहने से त्वचा का वर्ण पूर्ववत् हो जाता है। (वा० भ० उत्तर तत्र अ० ३२)

व्रणो पर जम्ब्वादि तैल देखिये। (भा० प्र०)

(२१) कर्णस्राव पर—इसके और आम के कोमल पत्तो को तथा कैथ और कपास के फल एव अदरख को पानी के साथ पीस कर कल्क करे, इसमे ४ गुना पानी तथा नीम, करंज या सरसो का तैल मिला, तैल सिद्ध कर कान मे डालने से कर्णस्राव बन्द होता है। (च० द०)

कान मे दुर्गन्धित स्राव युक्त पूतिकर्ण रोग हो, तो इसके तथा आम, मुलैठी और बट के पत्तो के (प्रत्येक प्रकार के पत्र १—१ तो०) कल्क तथा क्वाथ (प्रत्येक के पत्र २०—२० तो० लेकर ४ सेर पानी मे चतुर्थांश क्वाथ) से तिल तैल (२० तो०) सिद्ध कर कान मे डालते रहे। (यो० र०)

(२२) अधिक पसीना एव दुर्गन्ध-नाश के लिये—इसके पत्र तथा अर्जुन के फूल और कूठ का चूर्ण एकत्र कर थोडे पानी मे पीस कर उबटन करे। (यो. र.)

नोट—मात्रा—पत्र-स्वरस १ से २॥ तो० तक। चूर्ण-१ से ३ मासा। गुठली-चूर्ण ४ से २० रत्ती तक। छाल क्वाथ १॥ से २॥ तो०। छाल की भस्म १० से १५ रत्ती।

फलो को सदैव नमक मिलाकर खावें, वह भी अत्यधिक मात्रा मे नही। क्योकि यह देरी से पचता एवं कफ अधिक पैदा कर सीने, मेदे व फेफडो मे विकार का कारण हो जाता है। कभी २ ज्वर को भी पैदा कर देता है।

विशिष्ट योग—

(१) सिरका—छोटे जामुन-फलो का रस (छोटी जामुन न मिले तो बडी जामुन का रस) ५ सेर मे पाचो नमक का ५-५ तो० चूर्ण महीन पीस कर मिला दे। नमक घुल जाने पर बोतलो मे रख, कार्क बन्द करदे। (बोतलो मे रस थोडा खाली ही भरे, व कार्क कसकर लगादे) फिर उन्हे धूप मे रख दें। इस प्रकार १ महीने तक, एक ही स्थान पर रखे रहने से बोतलो की तलैटी मे गाद सी जम जावेगी, तथा स्वच्छ सिरका जो ऊपर रहेगा उसे धीरे २ दूसरी बोतलो मे रख लें। गाद को फेंक दे।

मात्रा—२ तो० तक, समभाग जल मिलाकर सेवन करने से उदरशूल व घृतपक्व पदार्थो के अति खाने से होने वाले अजीर्ण तथा अफरा, मन्दाग्नि, प्लीहा, यकृत एव उदर रोगो मे लाभ होता है। बढ़े हुए रोगो मे ४-४ घटे से तथा साधारण रोग मे प्रात साय लेवे। अजीर्ण पर यह अच्छा काम करता है। (अनुभूत-योग)

नोट—सिरके के लिये उत्तम पके हुए ताजे फलों का रस लेवे। अधिकतर बगैर नमक का सादा सिरका निम्न प्रकार से बनाया जाता है।

(२) सिरका न० २—फलो के रस को बोतल या अमृतवान मे भर दे। ३—४ दिन तक रोज प्रात, छान ले। फिर सप्ताह मे दो बार छाने फिर ७ दिन के बाद छाने। पश्चात् १५ दिन बाद छान ले। बस सिरका तैयार है। यदि इसे और भी उत्तम बनाना हो, तो १ मास और पडा रहने द। इस पर फफूंद आई हो तो छान ले। यह सिरका पुराना होने पर अधिक गुण दायी होता है।

ध्यान रहे छानते समय बोतल या जो पात्र हो,

वह तथा कपडा आदि सूखा एव स्वच्छ होवे, गीला न हो, अन्यथा सिरका विकृत होने की सभावना है।

यह सादा सिरका दाहपूर्वक ज्वर, शिर शूल आदि में विशेप लाभकारी होता है। अपचन, अहितकर एव दूपित अन्न, पानादि मे हुई विसूचिका, उदरशूल, आध्मान, दूपित डकारे आना आदि विकार हो, तो यह सिरका ४ मा० (१ ड्राम) की मात्रा मे, थोडा जल मिलाकर १–१ या २–२ घंटे मे २–४ बार देने से ही लाभ होता है। किन्तु कंठ मे दाह हो एव खट्टे जल की वमन हो, तो सिरका नही देना चाहिये।

(गा० औ० र०)

पेट में बाल चला गया हो, अतिउग्र पीड़ा हो, तो मात्रा ३–७ मासा तक पीने से (समभाग जल मिला ले) तुरन्त शाति मिलती है।

(३) प्लीहा रोग-नाशक सिरका न० ३–शुद्ध आमलासार गंधक ७ तो०, नौसादर व कलमीसोरा १-१ तो०, हीराकसीस व कुनेन ३–३ मा० इन सब को पीस कर एक बोतल मे भर उसमे जामुन के पके फलो का रस भर कर बोतल का मुख मजबूत काग से बन्द कर दे, तथा उस काग के ऊपर गीली चिकनी मिट्टी का लेप कर ४० दिन तक धूप मे रखे। फिर उसे काम मे लेवे।

प्रात-साय २० से ८० बून्दें, २॥ तो० जल के साथ सेवन करने से, बढी हुई तिल्ली का रोग चमत्कारिक ढङ्ग से आराम हो जाता है। सेवन-काल मे घृत का सेवन अधिक मात्रा मे करे और तैल, लाल मिर्च, खटाई, दही, इमली इन चीजो का बिलकुल त्याग कर दे।

(व० च०)

(४) जम्ब्वरिष्ट—जामुन की अन्तरछाल, हरे पत्र, फूल और गुठली १-१ सेर कूट कर ६४ सेर जल मे पकावे। ८ सेर जल शेप रहने पर ठडा कर छान लें। फिर उसमे जामुन-फलो का रस १ सेर, धाय-फूलो का चूर्ण ½ सेर, नागकेसर-चूर्ण १ पाव और शहद १० तो० मिला, चीनी मिट्टी की बर्नियो मे भर, मुख बन्द कर १ महीने तक पडा रहने देवे। फिर छानकर, नितार कर बोतलो मे भर रक्खें। यह जितना पुराना होगा, उतना ही उत्तम गुणकारी होगा। मात्रा–१ से ४ तो० तक, दूने जल मे मिला प्रात-सायं सेवन से प्रमेह, मधुमेह, रक्तार्श, रक्तातिसार, मूत्रदाह, उदर-रोग, संग्रहणी एव पित्त-विकार दूर होते है। (धन्वन्तरि सिद्धयोगाक)

— जम्बुद्राव—उक्त प्रयोग नं० १ का सिरका, जिसमे ५ चीजो का मिश्रण है, वह वास्तव मे जम्बुद्राव ही है। अथवा कपडे से छने हुए जामुन-फलो के रस मे ½ भाग केवल सेंधा नमक मिलाकर, ७ दिन तक रखने से भी साधारण जम्बुद्राव तैयार होजाता है। यह भी प्लीहोदर, यकृत्वृद्धि, कामला आदि पर अच्छा काम देता है।

द्राव का प्रयोग प्राय प्रतिदिन नही किया जाता। एक-एक दिन के अन्तर से प्रात-साय लेना ठीक होता है। रोगी को तैल, लाल मिर्च, गुड दही तथा अधिक घृत व शक्कर भी नही खाना चाहिये।

(६) शर्वत तथा अवलेह जामुन—अच्छे मधुर परिपक्व बडी जामुन के रस १ सेर मे शक्कर २॥ सेर मिला कर पकावे। शर्वत जैसी चाशनी बनाकर छानकर रखले। १ से २॥ तो० तक, जल, दूध, मलाई, मक्खन आदि यथोचित अनुपान के साथ सेवन से पित्तातिसार, रक्तज सग्रहणी, वमन, जी मिचलाना, गलशोथ, रक्त-प्रदर, प्रमेह, सुजाक, रक्तार्श आदि मे उत्तम लाभ होता है। सगर्भा स्त्री को भी यह दिया जा सकता है। छोटे बालको के अजीर्ण, रक्तवमन, या साधारण वमन आदि पर भी यह उत्तम हितकारी है।

अवलेह बनाना हो, तो फल-रस से चौगुनी मिश्री मिला, शहद जैसा गाढा पाक करे। यह जितना जूना हो, उतना ही गुणदायक होता है। इसका भी उपयोग उक्त विधि से किया जाता है। यह अवलेह सगहणी आदि रोगो के अतिरिक्त आन्त्रक्षयादि व्याधियो मे विशेप लाभ करता है।

जायपत्री—देखिये—जायफल मे।

जायफल (*MYRISTICA FRAGRANS*)

अपने ही जातीफल–कुल[1] (Myristicaceae) की यह प्रमुख वनौषधि है। इसके सदा हरित एवं सुहावने बड़े वृक्ष ३० से ८० फीट तक लम्बे, शाखाएं–नाजुक, नीचे की ओर झुकी हुई, पत्र–जामुन-पत्र जैसे, किन्तु छोटे २–५ इंच लम्बे, १½ इंच चौड़े, दृढ, सुगंधित, ऊपरी पृष्ठभाग गहरे हरित वर्ण के, निम्न भाग पीताभ धूसर वर्ण के, पुष्प–वर्षा के बाद, छोटे ¼ इंच लम्बे, गोलाकार, श्वेत या पीतवर्ण के सुगंधित किंतु इसकी कई उपजातियों के पुष्प निर्गन्ध होते हैं।

फल—वर्षा ऋतु के बाद, गोलाकार १–२ इंच लम्बे, छोटे नागपाती जैसे, प्रायः ३ स्तरों से युक्त होते हैं—प्रथम स्तर–फलावरण–स्थूल, मांसल, पकने पर पीत-वर्ण का, फल का यह बाह्य आवरण है। फल के परिपक्व होने पर यह आवरण दो भागों में विभक्त हो जाता है। तब इसका द्वितीय स्तर–पलाशपुष्प के वर्ण जैसा लाल रंग का जालीदार, मांसल आवरण अन्दर के बीज को घेरे हुए रहता है। यह बीज पर गुच्छे के रूप में चिपटा रहता है। शुष्क होने पर यह भंगुर होकर बीज से स्वयं ही पृथक हो जाता है। इसे ही जायपत्री (जावित्री) कहते हैं।

तृतीय स्तर—यह बीज के ऊपर का कुछ कड़ा स्थूल भाग है। इस आवरण सहित बीज को ही जायफल कहते हैं। वास्तव में यह फल का बीज है।

फल के पकने पर स्वयं जब वह फट जाता है तब उक्त जायपत्री और बीज (जायफल) अलग अलग हो जाते हैं।

नोट—इसके वर्ग की ८१ जाति हैं। भारत में इसकी १० जाति पाई जाती हैं। इसकी निर्गन्ध जाति, जिसके फलों को रामफल (सीताफल के वर्ग का रामफल इससे भिन्न है), जंगलीजायफल (देखें जंगली जायफल) या बम्बई जायफल कहते हैं, तथा जिसके द्वितीय स्तर की पत्री को राम-पत्री या बम्बई की जायपत्री कहते हैं, उसे असली जायफल या जायपत्री में मिश्रण कर देते हैं। ये जंगली जायफल कम चौड़े, अधिक लम्बे, किंचित् मुलायम एवं प्रायः गंधहीन होते हैं, तथा जायफल की अपेक्षा हीन गुण वाले होते हैं। इसके वृक्ष कोंकण, मद्रास, कर्णाटक एवं उत्तर मलाबार प्रान्तों में पाये जाते हैं।

उत्तम जाति के इसके वृक्ष मलाया द्वीप पुंज, पेनाग, सुमात्रा, सिंगापुर, जंजीबार, सिंगापुर या चीन के आस-पास के जंगलों में स्वयं नैसर्गिक रूप से उगते हैं।

जातीफल का उल्लेख आयुर्वेदीय संहिताओं एवं निघण्टुओं में प्राचीन काल से मिलता है।

नाम—

सं०–जातीफल, जातीकोष, मालतीफल इ०। हि०, म०, गु०, बं०–जायफल। अं०–नटमेग (Nutmeg)। लै०–मिरिस्टिका फ्रेग्रेन्स, मि० आफिसिनालिस (M Officinalis), मि० अरोमेटिका (M Aromatica), मि० एस्रोस्चाटा (M Aoschata)।

रासायनिक संघटन—

जायफल में—उड़नशील तेल–२–८ / या ५.५ ।. होता है। यह पतले रंग का तैल ही इसका कार्यकारी तत्व है। तथा इसमें एक स्थिर तेल २४.४० प्रतिशत भी होता है। यह गाढा होता है। तथा इसे (Butter of nutmeg) जातीफल-नवनीत कहते हैं। इसकी साबुन जैसी बट्टिया पीले रंग की बाजारों में मिलती हैं। इसमें लगभग ६१ प्रतिशत मिरिस्टिक एसिड (Myristic acid) मिरिस्टिन (Myristin) तथा एक सुगंधित तैल होता है। इस सुगन्धि तैल में मिरिस्टिसीन (Myristicene) एवं मिरिस्टिकोल (Myristicol) नामक तत्व होते हैं। इसके उड़नशील तैल में मुख्यतया यूजेनाल (Eugenol) व आइसो यूजेनाल (Iso-eugenol) पाये जाते हैं।

---

[1] इस कुल के वृक्षों के पत्र अखण्ड, एकान्तर, उपपत्र-रहित, पुष्प-श्वेत या पीतवर्ण, पुष्प-बाह्यकोष के दल ३, पुकेसर १०, बीजकोष १ खंडवाला, फल-मांसल, बीज-बड़े, प्रभूत तैलयुक्त होते हैं। (द्र० गु० वि०)

जायफल
MYRISTICA FRAGRANS HOUTT.

इसके अतिरिक्त जायफल में सुगंधि बालसम, स्टार्च एवं रेशेदार पदार्थ होते हैं।

व्यापारी लोग इसके असली तेल में इसके उपवर्ग के अनेक वृक्षों के फलों से निकले हुये तैल का मिश्रण कर देते हैं।

प्रयोज्य अङ्ग—

जायफल (यह चिकना और काफी वजनदार होना चाहिये। यह जितना ही बड़ा हो उतना ही उत्तम होता है।) जायपत्री, और तेल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, विपाक में कटु, उष्णवीर्य, कफवात शामक, रोचन, दीपन, पाचन यकृदुत्तेजक, स्वापजनन, मलरोधक, वातानुलोमन, ग्राही, कृमिघ्न, स्वर्य, दुर्गन्धनाशक, कटुपौष्टिक, कफनिःसारक, [illegible] मदकारी, [illegible] [illegible] है।

अतिसार में [illegible]

[illegible] है।

[illegible] हैजा की दशा में [illegible] तेल में पीस, [illegible]।

[illegible] प्रयोजित करते हैं। [illegible] है। शिर शूल, [illegible] नेत्र रोगों में [illegible] है। [illegible] में—इसके चूर्ण को [illegible] भी बल मिलता है। मुख के छालों पर—[illegible] चूसते हैं। [illegible] पर—[illegible] है। व्यंग, नीलिका, झांई आदि पर—इसे पानी में घिसकर लगाते हैं। हृल्लास (उत्क्लेश मिचली) पर—इसे शीतल जल में घिसकर पिलाते हैं। तृषा तथा वमन पर—इसे चावल के धोवन में घिसकर पिलाते हैं। उदराध्मान तथा विबन्ध में—इसे नीबू के रस में घिसकर देते हैं। मुहांसे (यौवन-पिटिका) पर—इसके साथ लालचन्दन व काली मिरच समभाग लेकर पानी में पीस लेप करते हैं। दुर्गंध युक्त दुष्ट व्रण पर इसके चूर्ण को बुरकते हैं।

(१) अतिसार पर—फल में एक छोटा छिद्रकर उसमें अफीम भर, छिद्र को उसके ही बुरादे से बन्द कर उस पर गीला आटा लपेट, भूभल में दाब दें। आटा पक कर लाल हो जाने पर उसे हटाकर भीतर के फल को पीस गोलियां बना लें।

मात्रा—२-३ रत्ती। अथवा—

फल के समभाग सुहागा और शुद्ध अफीम लेकर तीनों को नागरवेल (खाने के पान) के रस में खूब घोट

कर १-१ रत्ती की गोलियां बना १ या २ गोली तक्र के साथ दिन मे २ या ३ वार देते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

ग्रीष्मकालीन आमातिसार या प्रवाहिका पर—फल का चूर्ण २ माशा तक दूध के साथ सेवन कराते हैं।

साधारण अतिसार पर—फल को भूनकर चूर्ण १।। माशा की मात्रा मे दिन मे ३-४ वार देवे।

उदर-पीडा पर—उक्त भुने हुए फल का चूर्ण ३ माशे तक एक ही वार देने से लाभ होता है।

(२) प्रवृद्ध अतिसार, आमातिसार एव तज्जन्य उदर-शूल या पेट की ऐंठन पर—

फल के समभाग लौंग, जीरा और शुद्ध सुहागा महीन चूर्ण कर शीशी में भर रक्खें। यह भैं० रत्नावली का लवंगचतु समचूर्ण है। मात्रा १ से ३ मा०। शहद और खाड (चीनी, शक्कर) के साथ। प्रात -साय, बढ़े हुये रोग मे ४-४ घटे मे देवें। वालको को ½ से २ रत्ती तक देवे। यह एक अति उत्तम सिद्ध योग है। अथवा—

अतिसारयुक्त रोग एव सग्रहणी मे जातीफलादि रस—फल, सुहागा की खील, अभ्रक भस्म, धतूरे के बीज १-१ तो०, अफीम २ तो इन्हे एकत्रकर गन्ध प्रसारणी-पत्र-रस मे मर्दन कर चने जैसी गोलिया बनालें।

इसे अतिसारयुक्त रोगो मे, तथा साम या पक्व-ग्रहणी, रक्तग्रहणी, शूलयुक्त ग्रहणी आदि मे रोगानुसार अनुपान के साथ देवें। साधारण सग्रहणी मे शहद से देवे। आम एव पक्वातिसार मे शूलयुक्त रक्तस्राव की दशा मे इसका प्रयोग उत्तम है। रोगी को पथ्य मे दही-भात देवे। —(भैं० रत्नावली)

सग्रहणी पर—जातिफलादि पाक वि० योगो मे देखें। अथवा—

जातीफलादि योग—फल के साथ सोंठ, राल और सुहागा समभाग तथा अरण्य उपलो की राख सबके सम-भाग लेकर महीन चूर्ण बनाले।

इसे २।। मा० की मात्रा मे चावलो के धोवन के साथ प्रात -साय सेवन करने से जीर्णातिसार, रक्तातिसार एव शूलयुक्त अतिवेगवान अतिसार का नाश होता है। (भा० भैं० र०)

वालको के अतिसार पर—अनार की एक कली को बीच मे चाकू से चीरकर उसमे शुद्ध अफीम चौथाई रत्ती भर, थोडी चिकनी मिट्टी से कली को चारो ओर से पोतकर, कण्डे की आग मे पका ले। ऊपर की मिट्टी साफ कर, उसे १ नग जायफल के साथ खरल कर, मसूर जैसी गोलिया बना ले।

इससे वच्चो का अतिसार, तथा पेट की ऐंठन मिटती है। दूध पीते वच्चो को मातृदुग्ध या मधु से, वडे वच्चो को मधु या गरम किये हुए शीत जल से दें। यदि दस्त अधिक होते हो तो ४-४ घटे से तथा साधारण दस्तो मे प्रात -साय देवें।

—अ० योग (प० केदारनाथ पाठक, रासायनिक द्वारा सकलित)

नोट—विशिष्ट योगों मे जातीफलासव एव जायपत्री-आसव देखें।

(३) विसूचिका (हेजा) पर—इसका शृत जल पिलाते, या इसे शीत जल मे घिसकर पिलाते है। तृषा शमन होती है। हाथ-पैरो मे ऐंठन होने पर, वायटे उठने पर १ फल के चूर्ण को १० या २० तो० सरसो-तैल या मीठे तैल में मिला, गरम कर मालिश करते है।

(४) अजीर्ण-दशा की तृषा और वमन पर—फल १ तोला चूर्ण को, २ सेर उवलते हुए पानी मे मिला, नीचे उतार कर ढक देते है, फिर शीतल होने पर थोडा-थोडा जल पिलाते है।

इसके भूने हुए फल का चूर्ण १ से १।। माशा की मात्रा में १-१ घटे से फकाकर ऊपर से इसका शृतजल थोडा-थोडा पिलाने से भी विसूचिका मे लाभ होता है।

(५) आध्मान (अफरा) पर—फल का चूर्ण २।। रत्ती मे समभाग सोंठ-चूर्ण तथा जीरा-चूर्ण ५ रत्ती मिला, खरल कर (यह १ मात्रा है) भोजन के पूर्व लेने से लाभ होता है।

(६) वीर्य-स्तम्भन तथा नपुंसकता पर—एक वडा जायफल (जो ७ मा० से कम न हो) लेकर उसे पोला (खोखला) कर, भीतर १।। माशे अफीम भर, उसके

मुख को आटे से वन्द कर, ऊपर से आटा लगाकर गोली वना आग पर सेंक लें। सुर्ख हो जाने पर, ऊपर से लगा आटा हटाकर, सारे फल को पीस, शहद मे मिला छोटे वेर जैसी गोलिया बनाले। १ गोली सम्भोग के पूर्व दूध के साथ लेने से बहुत स्तभन होता है।

(व० चन्द्र०)

जायफल-चूर्ण ४-४ रत्ती प्राय-साय ताजे जल से ४० दिन तक सेवन करे। शीघ्रपतन की शिकायत दूर होगी, किंतु सेवनकाल मे सम्भोग न करे।

तिला—फल, सुहागा और सखिया १-१ तो० लेकर चिकने खरल मे खूब खरल कर उसमे चमेली-पत्र-रस २ सेर, और ३ सेर तिल-तैल मिला पकावे। तैल-मात्र शेष रहने पर छान कर, शीशी मे अच्छी तरह वन्द कर रक्खें। इस तैल को शिश्न पर धीरे-धीरे मर्दन कर ऊपर से खाने का पान बांध दिया करें। २१ दिन के इस प्रयोग से शिथिल शिश्न मे उत्तेजना प्राप्त होती है। (नाडकर्णी)

(७) अर्श तथा अग्निमाद्य पर—जातीफलादि वटी—फल, लौंग, पिप्पली, सेंधा नमक, सोंठ, धतूरे के बीज, सिंगरफ व सुहागा की खील समभाग, जम्बीर नीबू के रस मे खरल कर २-२ रत्ती की वटी बनालें। इसे तक्र के अनुपान से सेवन करने से, अर्श और अजीर्ण मे लाभ होता है।

अर्श के रोगी को मल पतला आता हो या ग्रहणी की शिकायत हो, तो इसका सेवन कराते है। पैत्तिक अर्शो मे विशेषत अर्श सदाह व शोफयुक्त हो तो इसका सेवन नही कराना चाहिये। (भै० रत्नावली)

रक्तार्श पर मलहम—फल का महीन चूर्ण ८ मा० क्षाराम्ल (टेनिक एसिड Tannic acid) ४ मा० इन दोनो को चरवी (शूकर की हो तो उत्तम, इसे अग्रेजी मे लार्ड Lard कहते हैं) मे खरल कर मलहम बना लें। इसे अर्शांकुरो पर लगाते रहने से कण्डुयुक्त दाह-शोथ नष्ट होता है। (नाडकर्णी)

(८) निद्रानाश पर—जायफल और जावित्री के चूर्ण (१ से २ मा०) को दूध मे उवाल कर, ठडा होने पर मिश्री मिला पिलावें, तथा फल के चूर्ण को घृत मे घिसकर नेत्रो पर लेप करें।

नेत्रो की खुजली एवं जलस्राव में फल को पानी मे घिस कर नेत्रो के चारो ओर लगावें। इससे नेत्र-ज्योति भी बढती है।

(९) प्रसवपश्चात् होने वाली कटिवेदना पर—फल-चूर्ण १ मा० तक तथा कस्तूरी ½ रत्ती पान के बीडे मे डालकर खिलाते हैं, तथा फल को शराब (मद्य) मे घिसकर लेप करते हैं।

(१०) बाल-रोगो पर—बालको की छाती मे कफ भर जाने से होने वाली हांफनी एव श्वास पर—फल को जल मे घिस कर, कुछ गरम कर फुफ्फुसो पर लेप कर, थोडा सेंक करते हैं।

बालको के प्रतिश्याय पर—फल-चूर्ण और सोठचूर्ण गोघृत के साथ चटाते है। तथा फल को दूध मे घिसकर गरम कर मस्तक पर लेप करते हैं। फल-चूर्ण को सरसो-तैल मिला सिर पर लगाते हैं।

बालक को गौ का दूध सरलता से पचने के लिये—गौदुग्ध मे पानी मिला, उसमे फल को उबाल और छान कर पिलाते हैं। इससे मल पीला दुर्गन्धरहित, बधा हुआ नियमित होने लगता है।

श्वास-कासादि पर—वि० योगो मे जातीफलादि पान देखें।

नोट—(१) जायफल को घृत मे रखने से कई वर्षो तक सुरक्षित रहता है। बिगडता नहीं।

(२) जायफल चूर्ण—पल्विसक्रेटीएरोमेटिकस (Pulv Cret Aromat) पल्विसक्रेटी ऐरोमेटिकस कम ओपिओ (Pulv Cret Aromat Cum Opio) आदि आफिसिय योगों में तथा स्प्रिट्स मिरिस्टिकी (Spiritus Myristicae) या स्पिरिट नटमेग (Spirit nutmeg) आदि नान आफिसिय योगों में पडता है।

जायपत्री—इसकी उत्पत्ति का वर्णन प्रारभिक विवरण मे देखिये।

नाम—

स०-जातिपत्री, जातिफलत्वक् आदि, हि० म०—जायपत्री, जावित्री; वं०—जायत्री, अ.—मैस (Mace)।

रासायनिक संघटन—

इसमे जायफल के सदृश उडनशील तैल ८-१७ प्रति-

शत, तथा राल, वसा, शर्करा व पिच्छिल द्रव्य होते है ।

विशेष देखें—ऊपर जायफल का रा० सघटन । इसके पीताभ सुगंधित तैल में जावित्री की गंध आती है । इसमे मेसीन (Macne) नामक तत्व होता है ।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, कटु, तिक्त, सुगंधित, स्वादिष्ट, रुचिकर, दीपन, पाचन, किंचित्‌सग्राही (जायफल की अपेक्षा कम ग्राही) कफ, कास, वमन, कफयुक्त श्वास, हृद्रोग, क्षय, आतो (आंत्र) के जीर्ण विकार, व विसूचिका कृमि आदि पर प्रशस्त है ।तृष्णाशामक, वाजीकर, कामोत्तेजक, वर्णकारक, सौंदर्यवर्धक, मुख-स्वच्छकारक, तथा वेदना-स्थापक है ।

कफ जन्य श्वास मे इसे पान के बीडे के साथ खिलाते हैं । क्षय मे भी इसे देते हैं । वाजीकरण योगो मे या पाकों मे इसे मिलाने से गुण और स्वाद मे वृद्धि होती है । आत्र के जीर्ण विकारो मे शरीर कृश होने पर इसे ६ से १० रत्ती तक की मात्रा मे देते हैं । शीत एवं वातज शिर शूल मे इसका लेप करते हैं ।

हस्तिमेह-(वातजमेह जिसमे मूत्र बून्द-बून्द निरन्तर टपकता रहता है—A false incontinence of urine मे इसका लेप पीठ, नाभि और पेडू पर करते व सेवन भी कराते हैं ।

बाधिर्य पर—इसे तैल मे पीसकर कान मे डालते हैं ।

(११) अतिसार आमातिसार पर—जावित्री-चूर्ण १-१ मा० दही की मलाई के साथ या तक्र से दिन मे ३ बार देवें । ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है ।

बालकों के अतिसार मे—इसका चूर्ण ½ से १ रत्ती शहद से दिन मे ३ बार देवें ।

(१२) स्वरभंगपर—जातिपत्रादिलेह—जावित्री, पीपल, धान की खील, बिजौरे नीबू के पत्ते और इलायची समभाग पीस कर शहद मे मिला चाटते रहने से स्वर अत्यन्त मधुर हो जाता है । (भा० भै० र०)

(१३) गर्भाशय-शोधनार्थ—इसे केसर के साथ घोटकर वर्तिका (वत्ती) बना, गर्भाशय के मुख तक प्रविष्ट कराते हैं । गर्भाशय के विकृत द्रव्यो का शोषण होकर, उसकी कमजोरी दूर होती है ।

चेहरे की झाई (व्यग) पर—इसे अफसतीन या शहद के साथ मिलाकर लगाते हैं ।

नोट-दौर्बल्य आदि नाशक जातिपत्रीपाक-वि. योगों मे आगे देखे ।

तैल—इसका विवरण जायफल व जायपत्री के रासायनिक सगठन मे देखिये ।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह दीपक, उत्तेजक, वल्य, तथा जीर्णातिसार, आध्मान, आक्षेप, शूल, आमवात, दन्तवेष्ट (पायोरिया), व्रणरोगादिनाशक है ।

जावित्री-तैल मे उक्त जायपत्री के जैसे ही वेदना-स्थापन, उष्ण, उत्तेजक, वातहर, आदि गुण हैं ।

शैत्य एव अवसाद युक्त अवस्था मे तैल को त्वचा पर रगड़ते हैं ।

ध्वजभग पर—इसे शिश्न पर लगाकर पान बाधते है ।

गठिया या सधिवात पर—इसकी मालिश करते है ।

त्वचा की शून्यता पर—इसकी मालिश करते है ।

उदरशूल व आध्मान पर—फल के तैल को शक्कर या बताशे मे डालकर खिलाते है ।

स्रावयुक्त दुष्ट व्रणो के शोधनार्थ—फल-तैल को मलहम मे मिला लगाते है ।

(१४) जीर्णसधिवात से हुई जकडन, सधिशोथ, पक्षवध तथा मोच पर—फल या पत्री के तैल को सरसो तैल मे मिला मर्दन करते हैं । स्थानीय उष्णता एव चेतना की वृद्धि होती है, तथा प्रस्वेद आकर विकार दूर होता है ।

(१५) दतशूल तथा दन्तवेष्ट पर—तैल का फाया दात या दाढ के कोटर मे रखते है । कीटाणु नष्ट होकर विकार दूर होता है ।

नोट—जातिफल-तैलासव प्रयोग आगे विशिष्ट योगों मे देखें ।

विशिष्ट योग—

(१) जातिफलपाक-(श्वास कासादि हर)—जायफल

५००-नग लेकर चूर्णकर, १३ सेर दूध मे पकाकर खोया सा हो जाने पर उसे १। सेर घृत में भून लें। फिर उसमें वशलोचन १५ तो०, कपूर, कंकोल, लौंग, इलायची, तेजपात, दालचीनी, मोचरस, ४-४ तो० महीन चूर्ण कर मिलावे। पश्चात् मिश्री की चाशनी में सब को मिला पाक जमा दें।

३ मा० से १ तो० तक की मात्रा में सेवन करने से श्वास, कास, प्रमेह, अर्श, क्षीणता, क्षय आदि कई रोगो को दूर कर बल की वृद्धि सहित वीर्य को पुष्ट करता है। (वृ० पाक सग्रह)

नोट--संग्रहणी-नाशक जातिफलादिपाक नं० १ तथा अन्य उत्तमोत्तम पाकों के लिये हमारी बृहत् पाकसग्रह पुस्तक देखिये।

दौर्बल्य-नाशक—जातिपत्री (जावित्री) पाक भी उक्त पुस्तक में ही देखने योग्य है। विस्तार भय से यहा नही दिया जा सकता।

(१) जातिपत्रादि अवलेह—जावित्री १२ तो०, सोंठ ६ तो०, गोद बबूल, छोटी इलायचीबीज, प्रत्येक ३½ तो० सबका चूर्ण कर, ३४ तो० खाड की चाशनी में मिला देवें। मात्रा—७ मा० भोजन के पश्चात्, अर्क सोफ या जल से देवें। यह भोजन को पचाता, वात तथा कफ-दोष नष्ट करता व आध्मान, अजीर्ण और विसूचिका में लाभप्रद है। (यू० चि० सा०)

(२) जातिफलासव तथा तैलासव—जायफल के चूर्ण १ भाग में ५ गुना मद्यसार (९० प्रतिशत) मिला, बोतल मे अच्छी तरह कार्क बन्द कर रक्खे।

इसी प्रकार जातीफल-तैलासव बनाना हो, तो जायफल के शुद्ध तैल १ भाग मे, १० गुना मद्यसार (९० प्रतिशत) मिला बोतल में भर रक्खे। ७ या १५ दिन बाद काम में लावे।

चूर्णासव की मात्रा २० से ६० बून्द तक, तथा तैलासव की मात्रा १० से ३० बून्द तक। ये दोनो स्थानिक तथा सर्वाङ्ग उत्तेजक, आमाशय व ग्रहणी के लिये दीपक तथा कुछ ग्राही हैं। स्थानिक एव सर्वाङ्ग वातशूलहर व अतिसार, वमन, विसूचिका पर लाभप्रद हैं। इनकी मात्राओं को २॥ तो० दूध या जल के साथ लेवे। जल मे लेना ठीक होता है।

(३) हलुवा या माजून कुवतीबाह—जायफलचूर्ण, लौंग, तुमान, नागरबेल (खाने के पान) की जड, कबाब चीनी (शीतल चीनी), सोंठ, और अकरकरा प्रत्येक का चूर्ण २-२ तो० दालचीनी-चूर्ण ४ तो० लेकर ३ तो० शहद में एकत्र खूब खरल करें। फिर उसका हलवा बना उसमें ५० नग चादी के वर्क मिलावें। मात्रा— आध से २ तो० तक, दिन में दो बार गोदुग्ध से लेवे। यह हृदय व मस्तिष्क के लिये बलप्रद, वीर्य-स्तम्भक एवं प्रमेह, दौर्बल्य व नपुसकता-नाशक है। (नाडकर्णी)

नोट--जातिफलादि चूर्ण एवं वटिकाओं के अन्यान्य विशेष प्रयोग शास्त्रों में देखिये।

मात्रा-विचार—

जायफल-चूर्ण मात्रा ५ से १० रत्ती। अधिक मात्रा मे या बार बार लेने से यकृत व फुफ्फुसो को एव उष्ण प्रकृति वालो के लिये हानिकर है। सिर में दर्द, मादकता, मूर्छा, तथा वीर्य-स्थान-में उष्णता उत्पन्न कर वीर्य को पतला करता व नपुंसकता लाता है।

इसकी हानिनिवारणार्थ—धनिया, चन्दन, बनफशा, मधु का सेवन कराते हैं।

जायपत्री की मात्रा—२ से ८ रत्ती या २ मा० तक। अधिक मात्रा मे लेने से शिर शूल-जनक, मादकता एव मूर्छा-उत्पादक है। जायफल या जावित्री दोनो की क्रिया अधिक मात्रा मे मस्तिष्क पर कपूर के विषैले परिणाम जैसी होती हैं। मूढता तथा प्रलाप की वृद्धि होती है। जायपत्री--हानिनिवारणार्थ—मक्खन मे चन्दन और मिश्री मिलाकर देते है, या गुलाब अर्क व बबूल का गोद देते है।

नोट—जायफल या जावित्री का प्रयोग ज्वर, प्रदाह एवं मस्तिष्क में रक्तचाप की वृद्धि की दशा में नहीं करना चाहिये।

तेल की मात्रा—१ से ३ या १५ बूद तक है। अधिक मात्रा मे यह भी उक्त परिणामो को पैदा करता है।

जारुल दे०—जरूल जावसीर दे०—जवाशीर।
जामुस, जासोद, जास्वन्द दे०—गुडहल।
जावित्री दे०—जायफल मे।
जिगना दे०—जोकमारी।

जिंगनी (Odina Wodier)

वटादिवर्ग तथा आम्रकुल (Anacardiceae) के इसके वृक्ष ३०-५० फुट ऊंचे, पिंड की गोलाई ४-५ फुट तक, शाखायें बडी तथा फैली हुई, छाल-मोटी। पत्र—सेमल पत्र जैसे १२-१८ इंच लम्बे, संयुक्त पक्षाकार, विषम संख्या के ७-११ तक पत्रक युक्त, लट्टू जैसे आकार के, लम्बे नोकदार, सरलधार युक्त, चमकदार और सुन्दर होते हैं।

पुष्प—ग्रीष्मकाल मे, आम के बौर जैसे, बौरो मे सूक्ष्म, पीताभ लाल वर्ण के, सुगन्धित, फल—बेर जैसे लाल रंग के गोल या लम्बे से व किंचित् चिपटे होते हैं।

गोंद या निर्यास—वसन्त ऋतु मे (विशेषत अप्रेल व मई मे) वृक्ष के पिंड पर घाव कर देने से एक पीताभ श्वेत रङ्ग का गोंद निकलता है। यह पूर्णतया पानी मे नही घुलता तथा औषधि-कार्य मे आता है।

नोट-अष्टांग हृदय सूत्रस्थान अ. १५ के रोध्रादि गण में इसका उल्लेख है, तथा टीकाकार ने 'जिंगिणी कृष्ण शाल्मली (जिंगनी यह काली सेमल है) सूचित किया है।

इसके वृक्ष मद्रास, काठियावाड़ बंगाल, बिहार, आसाम, बर्मा आदि प्राय उष्ण प्रदेशो के जंगलो मे अधिक पाये जाते हैं।

ये वृक्ष दीखने मे बहुत सुन्दर होते है, किन्तु ये अधिक दिन नही ठहरते। शीतकाल मे पत्रो के बिखर जाने से इनकी शोभा मारी जाती है, तब ठूंठ जैसे हो जाते है।

नाम—

सं०-जिंगिणी, सुनिर्यास, प्रमोदिनी, गुडमंजरी।
हि०-जिंगनी, जीआल, काली सेमल।
म०-मोई, मोख, शिपटी।
बं०-जिओल, दुदुलली।
गु -जिंनि, मेवडी, मोलेदु।
ले०-ओडिना वोडियर, लेम्नीग्रेंडिस (Lemnea Grandis)

रासायनिक संघटन—

छाल मे टेनिन तथा उसकी राख मे पोटाशियम कार्बोनेट अधिक प्रमाण मे रहता है।

प्रयोज्य अङ्ग—

छाल, पत्र व गोंद।

गुण धर्म व प्रयोग—

मधुर, कषाय, कुछ नमकीन, विपाक मे कटु एवं उष्ण वीर्य है।

छाल—उत्तम शोधक, पौष्टिक, व्रणरोपक, व्रणशोधक व रोपण, तथा अतिसार, हृद्रोग आदि नाशक है।

(१) अजीर्ण, अतिसार एवं शारीरिक शैथिल्य-निवारणार्थ छाल का क्वाथ सेवन कराते हैं।

(२) मुख-रोग, मुख के छाले, गले की खराबी तथा कास पर—छाल के क्वाथ से कुल्ले कराते हैं, इससे दंतशूल एव मसूडो के ढीलेपन में भी लाभ होता है।

(३) दुष्ट व्रण, योनि के व्रण, विसर्प आदि पर—छाल के क्वाथ या लोशन से प्रक्षालन करते, तथा छाल के क्वाथ के साथ तेल सिद्ध कर लगाते है। अथवा—छाल के चूर्ण को नीम के तैल मे मिलाकर लगाते है।

(४) अग्निमाद्य, अजीर्ण एव दौर्बल्य मे—इसका क्वाथ २॥ तोला की मात्रा मे सेवन कराते है।

(५) नेत्राभिष्यन्द एव दूषित व्रणो पर—छाल का ताजा रस लगाने से उत्तम लाभ होता है।

पत्र—

(६) मोच तथा त्वचा के छिल जाने से और स्थानीय सूजन व पीडा पर—पत्रो को तेल मे पकाकर, तेल का मर्दन करते या लगाते है। शोथ पर—पत्तो को गरम कर बांधते हैं।

(७) बेहोशी या मूर्च्छा पर—अफीम के खाने या अन्य विष से उत्पन्न बेहोशी पर—ताजे पत्तो या कोमल शाखाओ के रस १० तोले मे इमली का घोल ५ तोला मिला पिलाने से वमन होकर मूर्च्छा दूर होती है।

(८) सधिवात या गठिया पर—पत्तो के साथ काली मिरच पीस कर लेप करते है।

(९) श्वास तथा स्त्रियो की दुर्बलता पर—पत्रो के क्वाथ का सेवन कराते है।

गोद—स्नेहन और सग्राहक है।

(१०) स्त्रियो की पुष्टि एव दुग्धवर्धनार्थ-गोद का सेवन दूध के साथ कराते है।

(११) त्वचा के छिल जाने या मोच पर—गोद को ब्राडी (उत्तम शराब) मे मिला लगाते है। इसे नारियल के दूध मे भी पीसकर लेप करने से मोच की पीडा पर लाभ होता है।

अपबाहुक तथा मन्यास्तभादि ऊर्ध्वजत्रु वातव्याधियो पर—इसके गोद के साथ गूगल को जल मे पीसकर नस्य देने से लाभ होता है—(व० से०)

मात्रा—क्वाथ की ५ से १० तोला तक।

ज़िंतियाना (Gentiana Lutea)

भूनिम्ब कुल (Gentiaceae) के इस विदेशीय त्रायमाण के पौधे प्राय ३-३॥ फुट तक ऊंचे होते है। ४-५ वर्ष के पुराने पौधो की जडे एव राइजोम को खोद कर निकालते तथा शुष्क कर लेते है। पौधो मे बेलनाकार भौमिक काण्ड (राइजोम) पाये जाते है, जो ४ सेंटीमीटर तक मोटे होते है। इसी राइजोम से जडे निकलती है, जो लगभग १½ या ३ फुट तक भी लम्बी होती है। जडे अन्दर से श्वेत रग की एव गन्धहीन होती है। पानी सुखाने पर इनका रग रक्ताभ भूरा हो जाता, एव एक विशिष्ट गन्ध आने लगती है। स्वाद में भी अधिक तिक्त हो जाता है।

इसकी जडें बाजार मे लाल जेंशन (Red Gentian) के नाम से मिलती है, इसके पत्र-पुष्पादि का स्वरूप चित्र में देखिये। इसके अभाव मे देशी जितियाना (गाफिस—अरबी नाम) अर्थात् त्रायमाण उत्तम प्रतिनिधि है।

इसके जडें ही औषधि-कार्य मे ली जाती है। मध्य व दक्षिण यूरप के पहाडी प्रान्त तथा एशिया माइनर, और स्पेन से काफी मात्रा मे ये जडो के टुकडे बाहर के देशों में भेजी जाती है।

नाम—

हि०—जंशनमूल, जितियाना। अं०—जशियन (जेशन) रूट (Gention root) लै०—जंशियाना लूटिया ज० रेडिक्स (¹Gentianae Radix)।

¹ यूनान के एक बादशाह, जिन्होंने इस औषधि के बल्य प्रभावों का पता लगाया था, इनका नाम जतीयूस

जशिग्रोनोज नामक एक त्रिशर्करेय पदार्थ (Tri Saecharide), पेक्टिन (Pectin) और एक उडनशील तैल होता है। इसमे टेनिन नही होता।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, दीपन, वातानुलोमन, बल्य, विषघ्न, मूत्र एव आर्तवजनन है।

श्वानदशजन्य विष-विकार (जलसत्रास), सर्पदश, बिच्छू-दश आदि मे विष-प्रशमनार्थ इसका सेवन कराया जाता है। यूनानी तिरियाको (विषनाशक औषधियो—अगद) के योगो मे यह डाला जाता है।

मूत्राशय की शिथिलता, मन्दाग्नि एव उदर-शूल मे इसका चूर्ण दिया जाता है। आर्त्तव-प्रवर्तनार्थ एव गर्भ-पातनार्थ भी इसे देते हैं।

इसका चूर्ण पीताभ भूरे रग का होता हे।

आफिशल योगो मे—इसका फाट (Infusion) निर्माण के लिये इसके घनसत्त्व (Concentrated Compound infusion of Gentian) १२५ मि० लि० (सी० सी०) मे परिस्रुत जल (Distilled Water) इतना मिलाया जाता हे कि तैयार औषधि १००० मिलि-लिटर हो जाय। मात्रा—½ से १ औस (१५ से ३० मि० लि०) या १। से २॥ तो०। औषधि तैयार करने के बाद १२ घटे के अन्दर ही इसका उपयोग करें, क्योकि इसके बाद खराब हो जाने का डर है।

उक्त घनसत्त्व की मात्रा २ से ४ मि० लि० या ३० से ६० बून्द है। यह बिल्कुल गाढा नही होता। जिति-याना टिंचर (Compound tincture of Gentian) की मात्रा भी ३० से ६० बून्द हे।

मात्रा—चूर्ण की मात्रा १ से २ मा० तक।

यह उष्ण प्रकृति वालो के लिये तथा फुफ्फुस के विकारो पर अहितकर है।

जितियाना
GENTIANA LUTEA LINN

रासायनिक संगठन—

इससें जशिइन (Gentin) नामक एक तिक्त ग्लुको-साईड (Clycoside) तथा जशियामरिन (Gentia-marin), जशियाना एसिड (Gentianic acid),

था। इसीलिये इस बूटी का नाम जंतियाना या जंशन पड गया है। लूटिया लेटिन में पीतवर्ण को कहते हैं। इसबूटी के पौधों में पीले रंग के पुष्प आते हैं तथा इसकी जड में कुछ पीतवर्ण होता है। अत उक्त नामकरण हुआ है।

जिम (Mollugo Oppositifolia)

भारस कुल (Ficoidaceae) के इसके जमीन पर चारो ओर फैलने वाले, कही २ ऊपर को भी उठे हुए पत्रमय वर्षायु क्षुप, कई लम्बे पर्वयुक्त शाखाओं से सुशो-भित होते हैं।

जिम

MOLLUGO SPERGULA LINN.

पत्र—½–१ इंच लम्बे, ⅛ इंच तक चौडे, बर्छी के आकार के, शाखा के चारो ओर विषम परिमाण मे, पुष्प—वर्षाकाल मे, पत्रकोण मे निकले हुए, गुच्छो मे श्वेत वर्ण के ¼-½ इंच लम्बे, डोरे जैसे वृन्तोयुक्त, वाह्यकोष बाहर से हरा, पखडिया ⅛ इंच लम्बी गोल, नोकदार, फली या डोडी—वर्षाकाल मे, लम्बगोल, ⅛ इंच तक लम्बी, ३ खड वाली तथा बीज—गहरे बादामी रग के होते है।

नोट—यह गोमशाकी बूटी (देखिये खड १ में) का ही एक भेद मात्र है। इन दोनो बूटियो मे स्वरूप एव गुणधर्म की दृष्टि से कोई विशेष भेद नहीं है।

इसके क्षुप बगाल मे सर्वत्र जलाशयो के किनारे पाये जाते है। यह गुजरात, दक्षिण किनारा, सिलोन, बर्मा, अफ्रीका के उष्ण प्रदेशो मे तथा आस्ट्रेलिया मे भी बहुत होता है।

नाम—

स०-ग्रीष्मसुन्दर, कणिजा, पर्पटक। हि०-जिम, गीमा। म०--सराल, फरस। गु०--ओसगड भेद। बं०---जीमा या गीमा शाक, जलपापरा ले०- मोल्लुगोओपोझिटिफोलिया, मोल्लुगोस्परगुला (M Spergula) मोल्लुगो सेरह्नियाना (M viana)

रासायनिक संगठन—

इसमे एक तिक्तनत्त्व राल जैसा पदार्थ, तथा गोद और जलाने पर राख मे क्षारीय नाइट्रेट्स (Alkaline nitrates) ६० प्रतिशत पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग, पत्र और स्वरस।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, दीपन, पाचन, मृदुसारक, मासिकधर्मनियामक उदर एवं आन्त्रदोष-निवारक, विषघ्न, कीटाणु-नाशक, मूत्राशयोत्तेजक, गर्भाशय-दोषनिवारक तथा सग्राहक भी है।

बगाल मे प्राय इस बूटी का अधिक प्रचार है। सूतिका-रोग की औषधि के साथ अनुपान रूप मे इसका स्वरस विशेष दिया जाता है।

(१) सूतिका-रोग पर—महारस शार्दूल (र सा स)

अभ्रक भस्म, ताम्रभस्म, स्वर्णभस्म, शुद्ध गधक व पारद, शुद्धमैनसिल, सुहागे का फूला, जवाखार, हरड, वहेडा, आमला ४-४ तोला, शुद्ध वच्छनाग ३ मा०, दालचीनी, छोटी इलायची दाने, तेजपात, जावित्री, लौंग, जटामासी, तालीसपत्र, सुवर्णमाक्षिक भस्म, और रसौत २–२ तो०। प्रथम पारा गन्धक की कज्जली कर भस्म तथा बछनाग-चूर्ण मिला खूब खरल कर, शेष द्रव्यो का महीन चूर्ण मिला उसमे इस जीम के रस की व नागरवेल (पानो) के रस की ७–७ भावनाए देकर सफेद मिर्च का चूर्ण ४ तो० मिला, पुन इसी जीम या पान के रस के साथ खरल कर २–२ रत्ती की गोलिया बना लें।

ध्यान रहे इस बूटी के स्थान पर कई लोग हरमल की भावना देते हैं। यद्यपि हरमल सूतिका-रोग-नाशक है, तथापि पित्तज अम्ल वमन, दाह, और अतिसार न हो, एवं मलावरोध हो, तब वह हितकर होती है वमन, अतिसार पर इसी बूटी के रस की भावना ही

हितावह मानी जाती है।

मात्रा—१ से २ गोली, दिन मे २ बार-खस, लाल चंदन, नागरमोथा, गिलोय, धनियां व सोंठ के क्वाथ के साथ। (र० त० सार)

प्रसूता के वातप्रकोप-निवारणार्थ इसके पत्तों का शाक बनाकर खिलाते हैं।

प्रसव के पश्चात् होने वाला दूषित रक्तस्राव रुक गया हो, तो इस बूटी का रस १–२ तो० तक या इसके पचाङ्ग का फाट देने से रुका हुआ स्राव सरलता से निकल जाता है।

(२) जीर्ण सुजाक पर—इसके पचाङ्ग का चूर्ण, खस, और गाजवा समभाग जौकुट कर, ३ मा० चूर्ण को १ सेर जल मे उबाल कर छान लें। ठडा हो जाने पर रोगी को, पानी के स्थान पर इसे ही पिलाते रहने से लाभ होता है। (नाडकर्णी)

(३) ज्वर पर—इसके पुष्प तथा कोपलों का फाट या क्वाथ बनाकर पिलाने मे पसीना आकर ज्वर शांत होता है।

(४) चर्मरोग, खुजली आदि पर—इसके स्वरस का लेप या पंचाङ्ग को पीस कर लेप करते है। और रोगी को इसका शाक खिलाते हैं।

(५) कर्णशूल पर—इसका स्वरस रेंडी-तैल मे मिला कान मे डालते है। तथा इसके कल्क को रेंडी तैल मे मिला गरम कर कान पर बाधते है।

(६) गठिया वात पर—इसकी जडों को (ये जडे सुगंधित होती हैं) तैल मे पकाकर लगाते है।

मात्रा—स्वरस १–२ तो० तक।

जिमीकन्द–देखिये–जमीकन्द।

जियापोता (Putronjiva Roxburghii)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इस सदैव हरे भरे, सुहावने, मध्यमाकार वृक्षों के काण्ड सीधे, सरल दीर्घ, छाल—कालिमायुक्त भूरे रग की, पत्र—अशोक-पत्र जैसे २–३ इंच लम्बे, अण्डाकार, गहरे हरे रग के, किनारे कुछ कटे हुए, चमकीले, पुष्प—पीताभ श्वेत रग के छोटे-छोटे गुच्छों मे, फल—झरबेरी जैसे, लम्ब गोल, नुकीले, बीज या गुठली—बेर की गुठली जैसी, कडी होती है। पुष्प वसतकाल मे लगते है। फल–शीत काल मे पकते है।

नोट—इसके बीजों को तागे में पोहकर, पुत्र-प्राप्ति के लिये स्त्रिया गले में पहनती हैं। तथा बच्चों के गले में भी पहनाती हैं, जिससे वे स्वस्थ बने रहें। वैसे भी रुद्राक्ष की तरह इन बीजों की माला गले मे धारण करते हैं।

ये वृक्ष भारत के उष्ण प्रदेशों की पहाडी जमीन मे कुमाऊं से पूर्व मे, तथा दक्षिण मे कोकण प्रांत, पूर्व और पश्चिम घाटों मे, मैसूर, कोल्हापुर आदि के जगलों मे नैसर्गिक पैदा होते है। बागों मे भी ये लगाये जाते हैं।

नाम—

सं०–पुत्रजीव, गर्भकर, यष्टीपुष्प, अर्थसाधक इ०। हि०–जियापोता, पितौंजिया, पतजू, पुत्रजिया। म०–पुत्र-जीव पुत्रवती। गु०–पुत्रजीवक। ब०–पुत्रजिश, जियापुत्ती पुतजिया। ले०–पुत्रजीवा राक्सबर्गी नागेला पुत्रजिया (Nagela Putranjiva)

रासायनिक संघटन—

बीज मे लगभग २८ ८६ प्रतिशत मज्जा या गिरी होती है, जिसमे ४२ ९ प्रतिशत स्वच्छ, हलका, पीतवर्ण का तैल प्राप्त होता है। इस तैल मे ग्लिसरीन जैसा क्षारीयसत्त्व (Clycerides of certain acids) होता है।

प्रयोज्य अंग—बीजगिरी, फल, पत्र और छाल।

गुण धर्म व प्रयोग—

कटु, लवणरसयुक्त, रूक्ष, गुरु, शीतल, स्वादु, सुगंधित, मलमूत्रप्रवर्तक, वृष्य, कामोद्दीपक, गर्भप्रद

नेत्रहितकर, तथा वात, कफ, तृष्णा, वमन, दाह, विसर्प श्लीपद आदि नाशक है।

इसके बीज (बीज की गिरी), पत्र या जड के दूध के साथ सेवन से मृतवत्सा (जिसके बालक मर जाते है) को दीर्घायुष पुत्र की प्राप्ति होती है।

(रसरत्नाकर सिद्ध नित्यनाथकृत)

इसकी जड १ से २ तो० तक दूध के साथ देते है। गर्मी, प्रसूतिविकार, कष्टार्तव, प्रदर आदि के कारण होने वाले वन्ध्यत्व (बाझपन) मे भी इसकी जड या बीज की गिरी दूध के साथ देने से लाभ होता है -

(व० च०)

पत्र व गुठली का प्रयोग क्वाथ रूप मे शीतज्वर मे करते है।

(१) ग्रन्थिरोग पर—दाहयुक्त प्लेग आदि की ग्रन्थि, तथा कान, गले (गलमाला, गलगण्ड आदि) व कर्णमूल, वद ग्रन्थि आदि पर फल-मज्जा को या वृक्ष की अन्तरछाल को पानी मे पीस कर प्रलेप करते है। शीघ्र लाभ होता है। (रसरत्न समुच्चय भा० प्र०)

उक्त ग्रन्थिरोगो मे रोगी को फल की या गिरी की मज्जा को गौ के दूध से पिलाते है।

श्लीपद पर—पत्र-रस का लेप करते है।

(२) विष या दूषी विष पर—वृक्ष की अन्तर छाल या बीजगिरी ४ या ५ मा० गोदुग्ध मे पीस छान कर सेवन कराते है। अन्नपानादि के दोष या सयोग विरुद्ध पदार्थो के योग से उत्पन्न अत्यन्त उग्र दूषी विष नष्ट होता है। (व० गुणादर्श तथा भा० भै० र०)

विशिष्ट योग—

(३) पुत्रादिवटी—इसके फल का गर्भ (या बीज-मज्जा), शिवलिंगी बीज, पारस पीपल के बीज, नाग [illegible], [illegible], [illegible], देवदारु, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] (बिनौले) बीज, श्वेत चन्दन, [illegible] चन्दन, [illegible], [illegible] तथा त्रिफला ये तीनो द्रव्य ४-४ तो० सब का चूर्ण कर उसमे वग, लौह एव स्वर्णमाक्षिक भस्म ४-४ तो० मिला, सबको छोटी कटेरी के क्वाथ, अशोक छाल के क्वाथ व इसी जियापोता के फलो के गर्भ के क्वाथ और शतावरी के रस या क्वाथ की १-१ भावना देकर, ६-६ रत्ती की गोलिया बना छाया शुष्क कर लें।

३ से ४ गोली तक प्रात साय दूध के साथ, कुछ समय तक सेवन करने से सर्व प्रकार के ऋतुदोष दूर होकर स्त्रियो का वन्ध्यत्व मिट जाता है। जिनके गर्भ हमेशा गिर जाता हो, रजोदर्शन के समय कष्ट हो मासिक धर्म कम आता हो व गर्भधारण न होता हो, उनके सब विकार इस प्रयोग से दूर होते हैं। जन्म वध्या, काकवध्या और मृतवत्सा स्त्री के लिये यह एक उत्तम औषधि है। जगली जड़ी बूटी (व० च०)

जियापोता (पुत्रजावक)

PUTRANJIVA ROXBURGHII WALL.

[illegible] दे०—नागचना। जगम ह्यात दे०—पर्ण बीज

जीवन्ती (Cimicifuga Foetida)

वत्सनाभ कुल (Ranunculaceae) की इस वनौषधि के बहुवर्षायु, दुर्गन्धयुक्त क्षुप शीघ्र २ से ३ या ६ फुट तक ऊंचे, तने का ऊर्ध्वभाग रोमश, निम्नभाग रोमरहित, पत्र—संयुक्त, कंगूरेदार, २ से ३ इंच लम्बे, निम्नभाग मे हलके रंग के, पुष्प—पीताभश्वेत, शाखी कलंगी पर एक साथ लगते हैं। पुष्प में ५ पंखुडियां होती हैं। फल या डोडी—½ इंच लम्बी, ६ से ८ तक बीजो वाली होती है।

यह बूटी हिमाचल के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से भूटान तक ७ से १२ हजार फीट की ऊंचाई पर तक पैदा होती है।

औषधिकार्यार्थ प्राय इसकी जड ही ली जाती है।

नोट–कोई २ भ्रमवश इसे ही 'जीवन्ती' मानते हैं। जीवन्ती का प्रकरण देखिये।

नाम—

सं०–मत्कुणारि (खटमल मारने वाली) हि०–जीउन्ती (यह पंजाबी शब्द है)। अं०–बगबेन (Bugbane)। ले०–सिमिसिफुगा फीटीडा। इसकी एक जाति का नाम सिमिसिफुगा रेसमोसा (C Racemosa) है।

रासायनिक संघटन—

इसमे सिमिसिफुगीन (Cimicifugine) नामक उपक्षार पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी जड उष्ण, कटु, कफनिःसारक, वल्य, शोथहर, वेदनाशामक, ज्वरघ्न, आमवातहर, हृद्य, कटुपौष्टिक, ऋतुस्रावनियामक, मासिकधर्म के कष्ट को दूर करने वाली एव गर्भाशय-सकोचक है।

शरीर मे इसकी क्रिया कुटकी और सुरजान (Colchicum Luteum) के समान होती है। अल्प मात्रा मे यह हृद्य, कटुपौष्टिक, एव गर्भाशयसंकोचक है। बडी मात्रा मे वामक स्नायुमण्डल-अवसादक, नाडी-मदकारक एव कम्प, चक्कर आदि लाती है। तब वच्छनाग (वत्सनाभ) की विष-क्रिया जैसी हृदयावसादक, हृदय
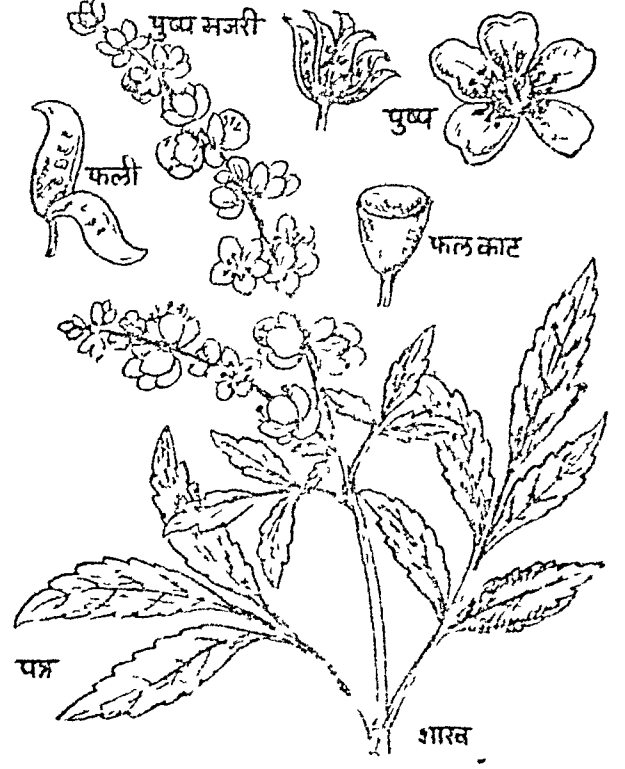
को कमजोर करने वाली हो जाती है।

सन्धिशोथ पर—जड को या ताजे पत्तो को पीसकर बांधते हैं। नूतन आमवात मे यह विशेष उपयोगी है। गृध्रसी व कटिवात मे भी इसका उपयोग किया जाता है। राजयक्ष्मा मे कफवृद्धि कम करने के लिये लाभदायक है। फुफ्फुसो के भीतरी सडान को दूर करती है। गर्भाशय को पुष्टिप्रद एव अत्यार्तव-निवारक है व मासिक धर्म के प्राय सब कष्टो को दूर करती है।

साइबेरिया देश मे खटमल व मच्छरो को भगाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है। चीन और इण्डोनेशिया मे यह [illegible] ज्वर-प्रतिकारक एव स्वेदन मानी जाती है। [illegible] ([illegible] की पीडा) [illegible], [illegible] की प्रारम्भिक अवस्था, [illegible] [illegible]

तथा वात-नलिका-प्रदाह मे इसका उपयोग करते हैं। मात्रा—१० से १५ रत्ती तक।

जीरा (श्वेत) [Cuminum Cyminum]

हरीतक्यादि वर्ग एव शतपुष्पा-कुल (umbelliferae) का इसका वर्षायु क्षुप, सौफ के क्षुप जैसा १-३ फुट ऊचा, शाखाए पतली, पत्र—सौफ के पत्र जैसे पतले-पतले लम्बे, छोटे २ पक्षाकार २-२ एक साथ, पुष्प—छत्तो पर पीताभ श्वेत वर्ण के, बारीक, शीतकाल मे आते है, बाद मे उन्ही छत्तो पर फल या बीज लगते है। पकने पर बीजो को अलग कर लेते है। इन्हे ही जीरा कहते हैं। ये ४ से ६ मि मि लम्बे तथा २ मि-मि तक चौडे लम्ब-गोलाकार, अग्रभाग मे क्रमश पतले, रग मे श्वेत धूसर वर्ण के होते हैं।

नोट-यह गरम मसाले का एक सर्वप्रसिद्ध द्रव्य है। सस्कृत में 'जीरक' नाम से यही श्वेत जीरा ग्रहण किया जाता है।

चरक के शूलप्रशमन, शिरोविरेचन गणो मे व अतिसार, ग्रहणी, श्वास, कास, उदरशोथ, पीनस, अरुचि योनिरोग आदि के प्रयोगो मे और सुश्रुत के पिप्पल्यादिगण मे एव अतिसार, मदात्यय आदि रोगो के प्रयोगो में इसका उल्लेख किया गया है।

जीरा स्याह (स्याह जीरा) व जीरा काले (काला जीरा) का वर्णन आगे के प्रकरण मे देखे। कलौजी (मगरैला) भी आयुर्वेदानुसार इसका ही भेद माना गया है, तथा इन तीनो जीरो को 'जीरक त्रितय' कहा गया है। कलौजी का वर्णन इस ग्रन्थ के भाग २ मे आ चुका है। विलायती जीरा, स्याह जीरा में देखिये।

जीरे की खेती भारत के विशेषत उष्ण प्रदेशो मे, राजस्थान, गुजरात, पजाब, उत्तरप्रदेश आदि मे अधिक होती है। एशिया माइनर व पर्शिया से भी यह आता है। आसाम और बगाल मे भी कही २ बहुत ही अल्प प्रमाण मे होता है।

जीरा का एक भेद काली जीरी (अरण्यजीरक) अन्य कुल का है। कालीजीरी का प्रकरण भाग २ मे देखिये।

नाम—

स०—जीरक, जरण (पाचक), अजाजी, कणा इ०। हि०—जीरा, सफेदजीरा, सादा जीरा इ०। म०—जिरें। गु०—जीरुं, शाकुन जीरु। ब०—जीरे। अं०—क्युमिन सीड (Cumin seed)। ले०—क्युमिनम साइमिनम।

रासायनिक संघटन—

इसमे एक उडनशील तैल थाइमिन (Thymene) ३.५-से ५ २ प्रतिशत होता है, यही इसके स्वाद व गध का उत्पादक है। इस तैल मे कार्वोन (Carvone)
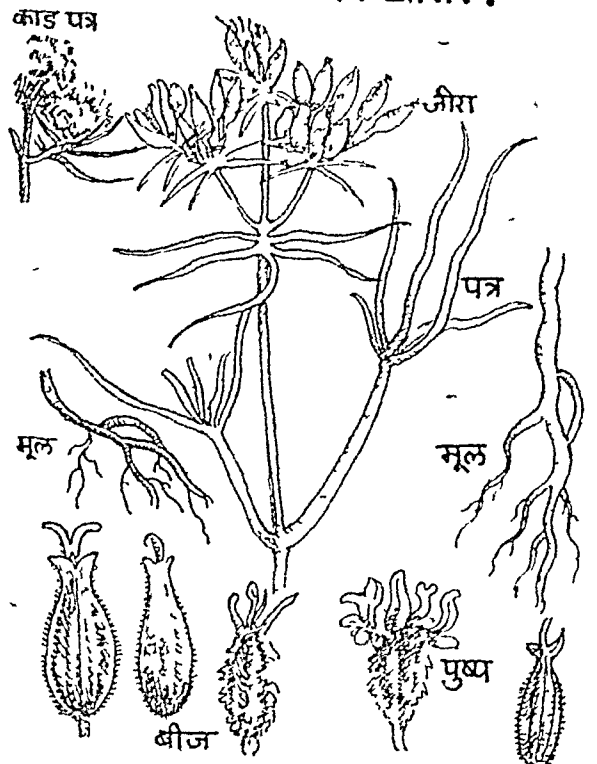
नामक एक तत्व जिसमें ५६ प्रतिशत क्युमिनाल Cuminol) या क्युमिक अलडिहाइड (Cumicaldehyde) रहता है। इस तैल को कृत्रिम रूप से थाइमॉल thymol (अजवाइन सत) में परिवर्तित किया जा सकता है, जो उत्तम प्रतिदूषक (antiseptic) एव कृमिघ्न पदार्थ है।

इसके अतिरिक्त बीजो मे स्थिर तैल १० प्रतिशत तथा पेन्टोसान (Pentosan) ६ ७ प्रतिशत प्रोटीन के यौगिक, मैलेट आदि होते है।

प्रयोज्याङ्ग—बीज।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, मधुर, कटुविपाक, उष्णवीर्य, कफवातशामक, पित्तवर्धक, रोचक, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, ग्राही, शूलप्रशमन, कृमिघ्न, उत्तेजक, कटुपौष्टिक, वाजीकरण, रक्तशोधक, मूत्रल, स्तन्यजनन, लेखन, वेदनास्थापन शोथहर, ज्वरघ्न, त्वग्दोषहारक, गर्भाशयशोधक है। तथा अरुचि, वमन, अग्निमाद्य, अजीर्ण, आध्मान, उदरशूल, ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, रक्तविकार, श्वेतप्रदर, नूतन एव जीर्ण ज्वर (विशेषत वात प्रधान ज्वर) आदि मे यह प्रयोजित है।

मूत्रजननेन्द्रिय सस्थान के विकार सुजाक, मूत्रावरोध, अश्मरी आदि तथा बालको के पाचन-विकारो मे अधिक उपयोगी है।

पचनक्रिया की विकृति से या मूत्रपिण्डो के विकार से मूत्रशुद्धि न हो, तो गिलोय, गोखुरू आदि के साथ इसकी योजना करने से पेशाब खुलकर आता है। वैसे ही स्त्रियो के गर्भाशय एव बीजाशय-शैथिल्य के कारण रज शुद्धि न होती हो, तो इसके सेवन से मासिक धर्म साफ आता है, तथा मूत्रशुद्धि भी होती है। प्रसूता के लिये यह एक श्रेष्ठ औषधि है। आत्र मे प्राय मल की रुकावट से जो सड़ान एव दुर्गन्ध पैदा होती है, उसे यह दूर कर देता है, तथा मल के दूषित जलाश का शोषण कर, उसे अच्छी तरह बधा हुआ बाहर निकालना है। इसीलिये दही, तक्र के रायते मे या शाक भाजी मे इसका प्रक्षेप दिया जाता है। इससे उदर मे दूषित वायु का सग्रह, आध्मान या कोष्ठबद्धता आदि नही होने पाती।

मूत्राघात, पूयमेह एव अश्मरी मे इसके चूर्ण को चीनी या मिश्री के साथ देते हैं।

स्तन्य (दुग्ध) वर्धनार्थ इसे गुड के साथ देते है। विषमज्वर मे भी इसे गुड के साथ देते है। अग्निमाद्य एव वातविकारो का भी इससे निवारण होता है, तथा पाचनक्रिया का सुधार होकर क्षुधावृद्धि होती एव पेशाब साफ होता है।

श्वेतप्रदर पर—इसके चूर्ण मे मिश्री मिला, चावल के धोवन के साथ देते है। स्त्री-रोगनाशक 'जीरकादि-मोदक' उत्तम है। गर्भिणी के पित्तजन्य वमन पर—इसे नीबू-रस के साथ देते हैं। प्रदर पर 'जीरे की खीर' वि योग मे देखे।

अतिसार मे इसका चूर्ण दही के साथ देते है। परिणामशूल (Hungerpain) मे इसमे हीग सेंधानमक मिला, मधु व घृत मे देते है। अम्लपित्त मे—इसके साथ धनियाचूर्ण मिला शक्कर के साथ देवे।

अण्डवृद्धि मे—इसे काली मिर्च के साथ पानी मे पीसकर औटाकर मर्दन एव प्रक्षालन करते रहने से अण्डकोष का कडापन दूर होता है।

नेत्रविकार—अर्म (नाखूना)—(Pterygium), जाला, अक्लिन्न वर्त्म (पिल्ल) आदि पर इसे खूब महीन पीस कर नेत्रो मे लगाते है। वि योगो का 'जीरक खड' सेवन करे।

(१) पीडाहर होने से इसका बाह्य लेप अर्श, स्तन अडकोष, एव उदर-पीडा पर करते है। अर्श मे वेदनापूर्ण सूजन हो तो इसे पानी मे पीस लेप करते तथा इसे मिश्री के साथ सेवन भी कराते हैं।

(२) खुजली आदि चर्म-रोगो पर—जीरक-तैल जीरा ४ तो० चूर्ण करे, उसमे २ तो० सिन्दूर मिला, कडुवा तैल ३२ तो० तथा २ सेर पानी मे तैल सिद्ध करले। इसकी मालिश से खुजली, पामा (एक्जिमा) की खुजली शीघ्र दूर होती है। (यो र)

अन्य विधि—पानी न मिलाते हुए, प्रथम तैल को खूब गरम कर उसमे उक्त चीजो का चूर्ण जरा जरा सा डालते हुए पकाते है। सब चूर्ण के जल जाने पर तैल

को छानकर लगाते हैं। तथा रोगी को जीरे के क्वाथ से स्नान कराते हैं।

(३) ज्वरों पर—जीरा में गिलोय और सूमा के रस की ७-७ भावनाएं देकर, छाया-शुष्क कर पीस, छान शीशी में रक्खें। मात्रा–३ मा०, शक्कर ६ मा० के साथ फांककर, ऊपर से ३ अंगुल गिलोय को ५ तो० पानी में पीस छान कर, गरम कर १ तो० शक्कर मिला पीवें। दिन में तीन बार ऐसा करने से गरमी का बुखार (पित्तज्वर) दूर होता है। जीर्ण ज्वर में उक्त दवा के बाद ऊपर से बकरी का दूध पीवें तो वह भी अच्छा हो जाता है। (भा० गृहचिकित्सा)

जीर्ण ज्वर पर—गुड़ (जूना हो तो उत्तम) ४० तो० को ६० तो० पानी से पका, ३ तार की चाशनी आने पर उसमें २० तो० जीरा-चूर्ण मिला खूब कूटे, तथा हाथों में घी लगाकर मसल कर १ से २ मा० तक की गोलियां बना लें। प्रातः सायं १ या २ गोली खाने से लाभ होता है। आमाशय में संचित आमविष दूर होकर शरीर स्वस्थ बनता है। (स्वास्थ्य)

अथवा इसके चूर्ण को मात्रा ६ मा० तक प्रातः सायं जूने गुड़ के साथ सेवन से भी, २१ दिन में पूर्ण लाभ होता है। (व० गुणादर्श)

अथवा–जीरे को गोदुग्ध में पकाकर, शुष्क कर चूर्ण कर लें। ३ से ६ मा० तक यह चूर्ण मिश्री के साथ सेवन करें।

ज्वर जन्य निर्बलता पर—ज्वर के शमन होने पर अग्निमांद्य और निर्बलता के निवारणार्थ जीरे का फाण्ट-जीरा-चूर्ण ३ मा० को उबलते हुए १० तो० जल में डालकर नीचे उतार कर ढक दें। २० मिनट बाद छान थोड़ी शक्कर मिला नित्य प्रातः पीते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है।

शीत ज्वर में—इसके १ तो० तक चूर्ण को प्रातः करेले के रस के साथ, तथा रात्रि के समय जूने गुड़ के साथ देते हैं।

ज्वरावस्था में (विशेषतः पित्त ज्वर में) प्रायः ओष्ठ-पाक होता है। होंठों पर छोटी फुन्सियां होतीं तथा ओष्ठ-संधि में वेदना होती है। जीरे को जल में पीस दिन में २-४ बार लेप करते रहने से लाभ होता है।

(४) सुजाक पर—जीरा ४ भाग, खूनखराबा (हीरा दोखी) व गुलाब-पुष्प की पखुड़ी २-२ भाग तथा कलमी शोरा व धनिया ५-५ भाग लेकर सबका महीन चूर्ण करलें। १० रत्ती की मात्रा में, जल के साथ देते रहें। (नाडकर्णी)

(५) अतिसार पर—आंत्र एवं पचन-क्रिया के निर्बल हो जाने से, थोड़ा २ दस्त लगता है। उदर में कुछ दर्द होता रहता है। शरीर शनैः २ कृश होता जाता है। ऐसी अवस्था में भोजन के बाद भूना हुआ जीरा, काली मिर्च और सेंधा नमक मिलाया हुआ तक्र-पान करते रहने से लाभ होता है। अर्श व ग्रहणी में भी लाभ होता है। (गा० औ० रत्न)

(६) वमन पर—जीरकादि रस—जीरा, धनिया, हरड़, त्रिकुटा (सोंठ मिर्च पीपल) तथा पारदभस्म (अभाव में रस सिन्दूर) समान भाग, एकत्र खूब खरल कर रक्खें।

मात्रा—१ मा० तक, शहद से लेवें। वमन तुरन्त बन्द होती है। –(यो० र०)

अथवा—जीरकादि घृत—जीरा व धनिया ४-४ तो. एकत्र पानी के साथ पीस, कल्क करें, फिर गोघृत ३२ तो० और पानी १२८ तो० एकत्र मिला पका कर घृत सिद्ध कर लें।

मात्रा–आधा तो० से २ तो० तक, सुखोष्ण जल के साथ सेवन करने से कफपित्तज अरुचि, मन्दाग्नि और वमन में लाभ होता है। (यो० र०)

(७) अग्निदग्ध पर—जीरकघृत–जीरा ८० तो० को चौगुने जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर उसमें ५ तो० जीरे का कल्क तथा २० तो० गोघृत मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर छानकर उसमें १। १। तो० मोम को पिघला कर व राल को पीस कर मिला दें इसे लगाने से अग्निदग्ध की पीड़ा शीघ्र शांत होती है। (च० द०)

(८) व्यङ्ग (झांई), धब्बे आदि पर—दोनों जीरा (सफेद व स्याह), काले तिल और सरसों समभाग लेकर

दूध मे पीस, लेप करने से मुखमण्डल के विकार दूर होते हैं। (वा॰ भ॰)

(९) बिच्छू के टंक की पीडा, श्वान-दश तथा मकडी के विष पर—जीरा व सेंधा नमक का समभाग चूर्ण घृत व शहद मे मिला, मन्दोष्ण कर लेप करने मे विच्छू-दंश की पीड़ा शात होती है। (व॰ से॰)

बीडी मे तम्बाकू के स्थान पर जीरा भर कर धूम्र-पान करने से भी बिच्छू का विष उतर जाता है। साथ मे दश-स्थान की पीड़ा-शाति के लिये उक्त लेप भी करना चाहिये।

कुत्ते के विष पर—जीरा व काली मिर्च घोट, छान कर पिलाते है - मकडी या लूता-विष पर—जीरा और सोठ को पानी मे पीस कर लगाते है।

(१०) हिक्का पर—जीरे में थोड़ा घृत मिलाकर बीडी मे भर धूम्रपान कराते है। वमन पर भी यह धूम्र-पान लाभकारी है।

(११) रतौंधी (रात्र्यन्ध) पर—जीरा के साथ आमला और कपास के पत्ते समभाग, पानी मे पीस कर सिर पर बाधते हैं। २१ दिन में पूर्ण लाभ होता है। (व॰ गुणादर्श)

(१२) हरताल, सखिया, मैनसिल आदि के विष पर—जीरा-चूर्ण या जीरा की ठडाई शक्कर के साथ ५-७ दिन तक देते रहने से विष शात हो जाता है। पचन-सस्थान का दाह दूर होता है। (गा॰ औ॰ र॰)

(१३) मुख के छाले आदि मुख के रोगो पर—जीरा को पानी मे पीस कर उसमे इलायची-चूर्ण और फिटकरी का फूला मिला कुल्ले कराते रहने से लाभ होता है।

विशिष्टयोग—

(१) जीरकादि चूर्ण न॰ १—जीरा, कालीमिर्च, छोटी हरड, अजवायन, व सेंधानमक समभाग लेकर जीरे को थोडा भून लें और शेष द्रव्यो के साथ महीन चूर्ण कर लें। मात्रा—३ मा तक, जल के साथ या शहद के साथ लेने से अरुचि, आध्मान, उदरशूल, हिक्का, वात-विकार, अपचन आदि पर लाभ होता है।

चूर्ण न॰ २—तृषा एव हृदय के लिये हितकर—जीरा, धनिया, अद्रक व कालानमक समभाग चूर्ण कर, १ से २ मा की मात्रा मे, उत्तम सुगन्धित मद्य मे मिला पीने से तृष्णा शीघ्र शात होती है। (यो॰ र॰)

चूर्ण न॰ ३—जीरा ४ भाग, सोठ ३ भाग, काली मिर्च २ भाग, कालानमक १ भाग तथा अजमोद व सेंधानमक ½–½ भाग सबका चूर्ण (३ मा तक की मात्रा मे) भोजनान्त में तक्र के साथ सेवन से अग्निदीप्त हो, प्लीहा, उदर, अजीर्ण, विसूचिका दूर होते है। इसका नाम सिंहराज चूर्ण है। (हा स)

अन्य जीरकादि चूर्णों के योग शास्त्रो मे देखिये।

(२) स्वादिष्ट जीरा—जीरा २० तो॰, सेंधानमक ५ तो॰ और काला नमक २॥ तो॰ इन तीनो को काच की बरणी मे डालकर, उसमे नीबू-रस २० तो॰ मिला मुख बन्द कर ७ दिन धूप मे रक्खें। रस के सूख जाने पर धूप मे अच्छी तरह शुष्क कर, पीस छान शीशियो मे भर ले। भोजन के बाद या जब भी आवश्य-कता हो लें। १ से ३ मा तक, जल के साथ लेने से जी मिचलाना, भूख न लगना, अपचन, अरुचि, उदरकृमि-जन्यशूल, अतिसार आदि मे लाभकर है। अपचन की दशा मे दुर्गन्धयुक्त वमन होती हो, तो १-१ घटे से २-३ बार इसे लेने से लाभ होता है। सगर्भास्त्री को भी यह दिया जाता है।

स्वादिष्ट जीरा न॰ २—जीरा १२ तो॰ सेंधानमक १० तो धनिया ८ तो॰ सोठ, कालीमिर्च ४-४ तो॰ छोटीपीपल, इलायची २-२ तो॰ दालचीनी १॥ तो॰ नीबू-सत (साइट्रिक एसिड) १॥ तो॰ व खाड १६ तो लेकर, प्रथम खाड और नीबू-सत को अलग रख, शेष द्रव्यो का महीन चूर्ण करें, फिर खाड व नीबू-सत मिला, खरल मे ३ घटे तक घोट कर बरणी मे भर रक्खें।

मात्रा—२ मा तक लेने से क्षुधा-वृद्धि होती, उदर मे गैस का विकार शमन होता तथा अधोवायु की ठीक ठीक प्रवृत्ति होती है। यह बहुत ही उत्तम स्वादिष्ट चूर्ण बालक, स्त्री, वृद्ध एव किसी भी प्रकृति के व्यक्ति के लिये लाभकर है।

(३) जीरकादि गुटिका—जीरा, सेंधानमक २-२ भाग, कालीमिर्च १ भाग, तथा भूनी हींग ½ भाग लेकर सबका महीन चूर्ण कर उसमे चूर्ण के समभाग गुड मिला ६-६ मा की गोलिया बना लें। सुखोष्ण जल से सेवन करने से अजीर्ण, अलमक, विसूचिका एव अफरा नष्ट होता व अपानवायु खुलता है। (भा० भै० र०)

(४) जीरकावलेह—जीरा-चूर्ण ६४ तो दूध २५६ तो०, घृत (गौ घृत हो तो उत्तम) और लोध-चूर्ण ३२-३२ तो० सबको मन्दाग्नि पर पका, गाढा होने पर, नीचे उतार कर, ठडा हो जाने पर उसमे ६४ तो० मिश्री और दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, पीपल, सोठ, जीरा, मोथा, सुगन्धवाला, अनारदाना, धनिया, हल्दी, कपूर व वसलोचन का चूर्ण २-२ तो० मिलादें। यह प्रमेह, प्रदर, ज्वर, निर्बलता, अरुचि, श्वास, तृष्णा दाह एव क्षय-नाशक है। (मात्रा १ तो० अनुपान दूध) (यो० र०)

(५) जीरक-खड—जीरा-चूर्ण १ भाग, खाड २ भाग, और तपाया हुआ घृत ४ भाग लेकर, सबको एकत्र मिला, पत्थर के स्वच्छ एव चिकने पात्र (या चीनी मिट्टी के पात्र) मे भर कर, मुख पर शराव ढक कर कपरौटी कर, अनाज के ढेर मे दबादें। १४ दिन बाद निकाल कर काम मे लावें।

मात्रा—१ तो०, अनुपान गर्म दूध। यह योग नेत्रो के लिये हितकर है। इसे माघ मास मे सेवन करना चाहिये। (भा०भै०र०)

(५) जीरकादि मोदक या पाक—स्त्री-रोग-नाशक—जीरा-चूर्ण ३२ तो० सोठ व धनिया-चूर्ण १२-१२ तो० सोफ, अजवायन व स्याह जीरा-चूर्ण ४-४ तो०, दूध १२ तो० तथा खाड २॥ सेर और घृत ३२ तो० सब को एकत्र मिला मन्द आच पर पकावे, (अथवा खाड व घृत को अलग रख शेप सब द्रव्यो का पाक करें, खोया सा हो जाने पर घृत मे भून, खाड को पाक की चाशनी मे व निम्न प्रक्षेप मिला द्रव्यो का चूर्ण मिला) अच्छा गाढा हो जाने पर या चाशनी आ जाने पर उसमे त्रिकटु, (सोठ, मिर्च, पीपल), दाल चीनी, तेजपात, छोटी इलायची, वाय-विडग, चव्य, चित्रक, मोथा व लोग का चूर्ण ४-४ तो० मिलाकर मोदक या पाक बना लें।

मात्रा—½ से २ तो० तक, गरम दूध या जल के साथ सेवन मे समस्त स्त्री-रोग, विशेषत सूतिका-रोग व ग्रहणी-रोग दूर हो अग्नि दीप्त होती है। (भै० र०)

शेप उत्तम जीरा-पाक-आदि के प्रयोग हमारे वृहत्-पाकसग्रह मे देखे।

(६) जीरकाद्यरिष्ट—सूतिकादि रोग-नाशक—जीरा १० सेर कूट कर १ मन १२ सेर पानी मे पका, १३ सेर शेप रहने पर छान कर, सन्धान-पात्र मे भर उसमे गुड १५ सेर—धाय पुष्प-चूर्ण १३ छटाक, सोठ-चूर्ण ८ तो० तथा जायफल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, नाग केशर, इलायची, अजवायन, ककोल (कबाब चीनी, शीतल चीनी लेवे) और लोग का चूर्ण ४-४ तो० मिला दे। मुख-मुद्रा कर १ मास बाद छान कर काम मे लावे। सूतिका-रोग, सग्रहणी, अतिसार व जठराग्नि-विकार-नाशक है। (इस अरिष्ट मे ४ तो० लोध-चूर्ण भी मिला दिया जाय तो यह प्रसूति-रोगो पर विशेष प्रभावशाली हो जाता है। (मात्रा १ से २ तो० तक) (भै०र०)

जीरकाद्यरिष्ट के अन्य प्रयोग वृ० आ० सग्रह मे देखे।

(७) तक्र जीरकादि योग—तक्र (छाछ) के साथ-जीरा, सोठ, सेंधानमक, १-१ तो० हींग, भुनी हुई ३ मा० सब का मिश्रित चूर्ण-मात्रा—२ मा० तक मिलाकर लेने से, तक्र का स्वाद उत्तम होकर वह विशेप पाचक, आन्त्र-क्रिया-सुधारक, आमपाचक, आन्त्र-कृमिनाशक व अतिसार मे लाभकारी होता है। इस चूर्ण को दही के साथ भी ले सकते है।

(८) जीरक फाण्ट या चाय जीरा—जीरा चूर्ण ३ मा० को १० तो० उबले हुए पानी मे डाल कर ढक दें। ५ मिनट बाद छान कर उसमे ५ तो० दूध व १० तो० शक्कर मिला पीवें। प्रात साय इसके सेवन से शरीर स्वस्थ एव मोटा ताजा होता है,— (स्वास्थ्य)

(९) जीरा की खीर—२ तो० जीरा कुचलकर प्रात १ पाव गौदुग्ध मे भिगो दे। २ घण्टे बाद मद

आंच पर पकावें, रबडी जैसा हो जाने पर उसमे २ तो मिश्री मिला कर नीचे उतार लें। यह १ मात्रा है।

इसके सेवन से प्रदर एव तज्जन्य हाथ-पैरो की व आंखो की जलन मिट जाती है। पाचन-शक्ति नष्ट होने एव पतले दस्त होने को भी यह ठीक करता है।

रोग की साधारण दशा मे केवल प्रात एक बार लेवें। बढी हुई दशा मे दो बार (प्रात साय) इसे लेवें। इसके सेवन के बाद तुरन्त पानी नही पीना चाहिये।

(सिद्ध मृत्यु जय योग)

जीरा (स्याह) (Carum Carwi)

जीरा श्वेत के ही वर्ग एव कुल के इसके क्षुप २-३ फुट ऊ चे, पत्र—कटे हुए, सूत्र जैसे, लम्बे, पुष्प—छत्तो मे, श्वेत जीरे से छोटे, फल या बीज—श्वेत जीरे से छोटे, किन्तु पतले लम्बे, कृष्णाभ एव सुगन्धित होते हैं। इसे ही स्याह जीरा कहते है।

इसकी खेती उत्तरी हिमालय के पहाडी भागो मे—काश्मीर, गढवाल, सीमाप्रान्त एव भारत के मैदानी भागो मे तथा अफगानिस्तान मे होती है, तथा ये स्वय जात भी पाये जाते हैं।

नोट-(अ) आजकल बाजारों मे गाजर, सोया आदि के बीजों को रंग कर स्याह जीरे के नाम से बेचते हैं। इनमें गंध बिलकुल नहीं होती। कभी-कभी जिन बीजों से तैल निकाल लिया जाता है, उनकी भी मिलावट की जाती है।

(आ) विलायती स्याह जीरा—यह देशी स्याह जीरे का ही एक विदेशी भेद है। यह मध्य एव उत्तरी यूरोप मे तथा ईरान मे प्राय सर्वत्र स्वयजात पाया जाता है। हालण्ड (Holland) मे यह काफी मात्रा मे बोया जाता है। अमेरिका, अफ्रीका मे भी यह बोया जाता है।

भारत मे इसका आयात विशेषत. इग्लेंड तथा लेवाट (Levant) से होता है। किंतु औषधीय दृष्टि मे लेवाट प्रान्त का स्याह जीरा निकृष्ट कोटि का होता है। विलायती स्याह जीरे मे एक विशिष्ट प्रकार की सुगध एव स्वाद होता है। इसे हि म गु—मे कुरूया, करोया, कमूने, रूमी कमूने अरमनी आदि कहते है। गुणधर्म आदि देशी स्याह जीरे के समान हैं।

(इ) स्याह जीरा का एक भेद काला जीरा (विष-जीरा) है। यह विशेष उग्र एवं विषाक्त होता है। कोई कोई भ्रमवश इसे ही कालीजीरी (अरण्य जारक) मानते हैं। इस अङ्क के भाग २ मे कालीजीरी का प्रकरण देखिये। जीरा काला (काले जीरे) का वर्णन आगे के प्रकरण मे देखें।

(ई) भारत मे स्याह जीरा बहुत प्राचीन काल से प्रचलित है। चरक मे इसका उल्लेख 'कारवी' नाम से है।

नाम—

स०-कृष्ण जीरक, कारवी, काश्मीर जीरक, जारण, उद्गार शोधन इ.। हि —स्याहजीरा। म —शहाजिरें। गु —श्याजीर। ब०-शाजीरा, कृष्ण जीरक। अ०-ब्लैक क्युमिन (Black Cumin) ब्लैक कारवे सीड (Black Caraway seed) ले --केरम कार्वी (क्यारई)

रासायनिक सघटन—

इसमे एक उडनशील, हलके पीले रग का, सुगधित तैल ३ १ मे ७ प्रतिशत तक पाया जाता है। इस तैल मे कार्वोन (Carvone) ५३—६३ प्रतिशत होता है। यह तैल ८ भाग अलकोहल (८० प्रतिशत) मे विलेय होता है। इसे अच्छी तरह डाटबद शीशियो मे शीत एव प्रकाशहीन स्थान मे रखा जाता है। इस तैल की मात्रा—१ से ३ बूद है।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, कफवात-

शामक, दीपन, रोचन, पाचन, ग्राही, आन्त्रसंकोचक, उत्तम वातानुलोमन, दुर्गन्धनाशन, हृद्य, शोथहर, मूत्रल, रज-प्रवर्त्तक, गर्भाशयशोधन, स्तन्यजनन, नेत्रहितकर, उदर कृमिनाशन, व ज्वरघ्न है तथा अरुचि वमन, अग्निमांद्य, अजीर्ण, आध्मान, उदरशूल, अतिसार, संग्रहणी, हृद्दौर्बल्य, जीर्णज्वर, प्रसूतिविकार एव दूषित डकारो के आने मे इसका प्रयोग होना है। यह शाको मे गर्म मसालो मे मिलाकर डाला जाता है। वैसे भी इसे डालने मे लाभ होता है -

जीर्णज्वर मे इसके प्रयोग से ज्वर की शाति होकर अग्निवृद्धि एवं आहार का पाचन ठीक होने से बल की वृद्धि होती है।

अर्श मे—शोथयुक्त पीडा को दूर करने के लिये इसके क्वाथ का सेंक दिया जाता हैं, तथा इसकी पुल्टिस गरम-गरम बाधते है।

गर्भाशय की पीडायुक्त शोथ के निवारणार्थ स्त्री को इसके क्वाथ मे बैठाते तथा इसका शर्बत पिलाते हैं।

प्रतिश्याय और पीनस मे—कोमल प्रकृति वालो को इसके क्वाथ के वाष्प का बफारा, या वाष्प का नस्य कराया जाता है।

नेत्रो मे रक्त-स्कन्दता हो, तो इसे मुख मे चबाकर, इसका रस नेत्र मे डालने से जमा हुआ रक्त पिघल जाता है।

दत-पीडा पर—इसके क्वाथ के कुल्ले कराते हैं।

हिक्का पर—इसके चूर्ण को सिरके मे मिला कर देते हैं।

विशिष्ट योग—

(१) जीरक अवलेह—(ज्वारश कमूनी कबीर) स्याह जीरा भूना हुआ ४। तो० तथा दालचीनी, काली मिर्च, श्वेत मिर्च, बूरा अरमनी ७-७ मा०, सुदाब-पत्र १ तो०, सोंठ का मुरब्बा ३ तो०, हरड का मुरब्बा ५ तो०, सूर्यतापी गुलकन्द ८ तो०, खाड २० तो० व शहद १० तो० लेकर, प्रथम गुलकन्द व मुरब्बो को पानी मे पीस, खाड मिला, आग पर रक्खें। पाक-सिद्धि पर शेष द्रव्यो का चूर्ण मिला, ज्वारश तैयार करें।

मात्रा—७ मा० अर्क सोंफ से प्रयोग करें। यह उदर के वात-विकार, वातिक शूल, आध्मान, हिक्का, अजीर्ण, वातोदर को नष्ट करता है। कुछ रेचक भी है। (यूनानी चि० सागर)

और भी ज्वारश कमूनी के योग यूनानी-ग्रन्थों में देखिये।

(२) जीरकासव—रक्तपित्त, ज्वरादि पर—स्याह जीरे के १ भाग चूर्ण मे ५ गुना मद्यसार (६० प्रतिशत) मिला, बोतल मे भर, अच्छी तरह कार्क बन्द कर रक्खें। ७ या १४ दिन बाद मोटे कपडे से खूब निचोड़ते हुए छान कर शीशियो में भर रक्खें।

मात्रा—१५ से ६० बून्द तक, थोडे गर्म जल में मिला सेवन से विषम ज्वर, जीर्ण ज्वर, अग्निमांद्य एव तज्जन्य सम्पूर्ण उपद्रव नष्ट होते हैं। रक्तपित्त पर इसे शक्कर के शर्बत के साथ देने से शीघ्र लाभ होता है। इसके आसव अरिष्ट के अन्य प्रयोगों के लिये हमारा बृ० आ० संग्रह ग्रन्थ देखें।

नोट—स्याह जीरा-चूर्ण की मात्रा—आधे से २ मा० तक है।

इसके तैल का उपयोग अन्य औषधियो को सुगधित करने के लिये, एवं उनसे उत्पन्न हृल्लास व मरोड के निवारणार्थ किया जाता है।

इसके अर्क का उपयोग बच्चो के पेट फूलने, शूल आदि मे अनुपान रूप से किया जाता है।

विलायती स्याह जीरा (कुरूया)—

जलोदर पर—प्रारभावस्था मे ही इसके क्वाथ ७ तो० मे जैतून-तैल २। तो० मिलाकर ७ दिन तक पीते रहने से विशेष लाभ होता है।

श्वास या कृच्छ्रश्वास में—भोजन से पूर्व इसे ७ मा० मुख मे धारण करें। जब वह गरम हो जाय, तब चाब कर उसका रस निगल जाने से लाभ होता व कफ का नाश होता है। इससे आध्मान और आमाशय-शूल एव आमाशय की निर्बलता से हुआ श्वास-रोग ठीक होता है।

वातज उदर-शूल मे—इसके हरे पौधे कुचल कर रस निचोड़ कर पिलाने से लाभ होता है।

इसे शाको मे डालने से, उनके आध्मान एवं विष्टंभकारक दोष दूर होकर वे शीघ्र पचते हैं। यह आमाशय की आर्द्रता को नष्ट करता एवं अजीर्ण मे लाभकारी है। (यू० द्र०)

जीरा काला (विषजीरा) (Conium Maculatum)

उक्त जीरो के समान वर्ग एव कुल के इसके क्षुप १॥ फुट से ३॥ फुट तक ऊचे, पत्र—गहरे हरे रग के, अनेक खडयुक्त, पुष्प और फल या बीज—कृष्णाभ श्वेत वर्ण के तथा बीज विशेष काले या गहरे बादामी रग के, ⅛ इंच तक लम्बे चिपटे से होते हैं। पत्र, पुष्प व बीजो में करकरी सुगन्ध रहती है। फल या बीज पूरी तरह पकने के पूर्व ही सग्रह कर लिये जाते हैं।

यह भारत मे तथा यूरोप मे अधिक होता है।

इसका प्रयोग विशेषत एलोपैथिक-चिकित्सा मे अधिक किया जाता है। यह अन्य जीरो के समान खाने के काम मे नही आता। औषधि—रूप मे यह लिया जाता है। प्राय लेप आदि बाह्य-प्रयोगो मे अधिक उपयुक्त है।

इसे—काला जीरा, विष जीरा, कुर्दुमाना, कोनायम, किरमाणी जीरा, अग्रेजी मे—हेमलेक, लेटिन मे—कोनियम मेक्युलेटम कहते हैं।

रासायनिक संघटन—

इसमे, प्राय क्षुप के समस्त भाग मे विशेषत कोनाईन व मेथिल कोनाईन (Conine & methyl Conine) रहता है, यह उग्र सुगधी होता है। इसके अतिरिक्त अल्प प्रमाण मे कोनिसीन (Y Coniceine), कोनहैड्रीन (Conhydrine) और हेस्पेरिडीन (Hesperidin) नामक उपक्षार पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

कटु, तिक्त, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, प्रभाव मे विषाक्त, अवसादक, वृष्य, वेदनाशामक, शोषक, स्पर्शज्ञान-नाशक, निद्राकारक, आक्षेप-निवारक व वातनाशक है।

इसका लेप लगाने से स्पर्शज्ञान में कमी व पीडा की शांति होती है। यह किसी स्थान विशेष मे जमे हुए रक्त को बिखेर देता है। पेशी-समूह पर इसकी क्रिया अफीम जैसी होती है। पेशियो को सुस्तकर एवं मस्तिष्क-क्रिया को मन्द कर यह निद्रा लाता है।

केसर या विद्रधि मे पीडा-निवारणार्थ इसका बाह्य लेप करते हैं, तथा कुछ प्रमाण मे सेवन भी कराते हैं।

श्वास, कास एव कुकुरकास मे—कफ-निवारक औषधि के साथ यह दिया जाता है।

रक्त प्रदर पर—इसे प्रथम अत्यल्प मात्रा मे देकर फिर धीरे-धीरे मात्रा बढाकर देते हैं।
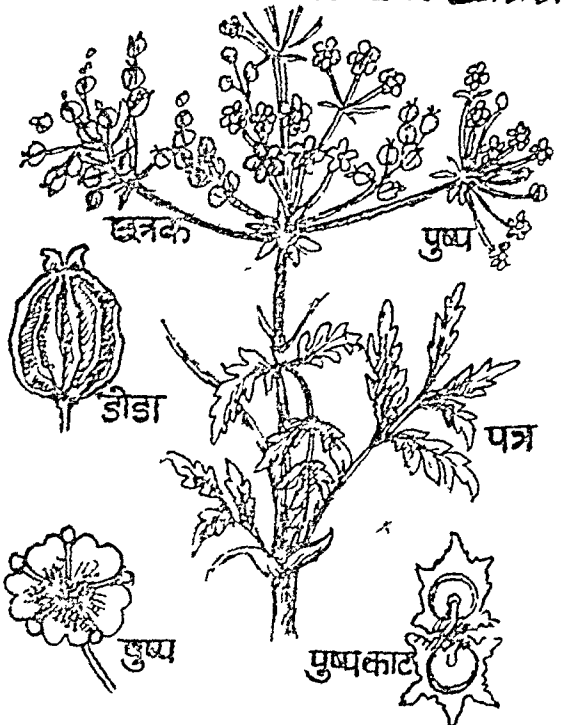
अर्बुद, गलगण्ड, गुल्म, प्लीहावृद्धि, फीलपाव आदि अन्य रोगों पर तथा अपस्मार, कम्पवात, धनुर्वात आदि के आक्षेप-निवारणार्थ इसका लेपादि बाह्य प्रयोग तथा अल्प-मात्रा में आभ्यन्तर प्रयोग भी किया जाता है।

बच्चे के मर जाने से स्त्री के स्तनों में जो दूध का जमाव हो पीड़ा होती है, उसे कम करने के लिए इसका लेप उपयोगी है।

पुरुष या स्त्री के कामोन्माद के निवारणार्थ एवं शुक्रमेह में इसका लेप जननेन्द्रिय पर किया जाता है।

आभ्यन्तर उपचारार्थ इसका मद्यार्क या टिंचर दिया जाता है। विधि—

इसके ताजे बीजों का चूर्ण १० तोला में समभाग (१० तोला) अल्कोहल मिला, पार्कोलेशन क्रिया द्वारा १ पाईण्ट तक अरिष्ट या टिंचर तैयार करते हैं। मात्रा—आधा से एक ड्राम तक। अथवा—

इसके पत्र व कोमल टहनियों को कूटकर रस निचोड़कर, ३ तोला रस में १ तोला मद्यसार (अल्कोहल) मिलाकर ७ दिन रखें। फिर छानकर काम में लाते हैं। मात्रा—१ से २ ड्राम तक।

विषाक्त प्रभाव एवं उपचार -

इसे ८ रत्ती से अधिक मात्रा में खाने से आमाशयान्त्रिक संकोचन-क्रिया में अवरोध, श्वासकृच्छ्र में शिथिलता, तथा मांसपेशियों की क्रियाशक्ति लुप्त होती है। नेत्रों की कनीनिका संकुचित व दृष्टि शक्ति का ह्रास होकर अन्त में पक्षाघात की सी स्थिति होकर दम घुटने लगता एवं श्वासावरोध होकर मृत्यु होती है।

उपचार—उत्तेजक औषधियों का प्रयोग, नस्य, वमन आदि करावें। स्टमकपंप से पेट साफ करें। चाय या कहवा पिलावें या टैनिक एसिड का प्रयोग करें।

पान के रस में—श्वास कुठार, त्रिभुवन रस, बृहत कस्तूरी भैरवरस, या हिरण्यगर्भ की योजना करें। अश्वगन्धारिष्ट या सारस्वतारिष्ट का पान करावें।

(अ नव से)

जीवक दे०—ऋषभक के साथ, भाग १ में।

जीवन्ती[1] (नं १) (*LEPTADENIA RETICULATA*)

गुडूच्यादिवर्ग एवं अर्ककुल (Asclepiadacea) की वर्षाऋतु में होने वाली, वृक्षों पर चक्रारोही, पत्रमय अनेक शाखावाली इस लता विशेष के काण्ड-का नवीन भाग श्वेताभ मृदुरोमश एवं जीर्ण दशा में कार्क (Cork) जैसा फूला हुआ, शाखाएं—अंगुली से लेकर कलाई जैसी मोटी, स्थान-स्थान पर फटी हुई, पत्र—अण्डाकार,

[1] इस जीवनीय गण के शाक विशेष के विषय में प्राचीनकाल से बहुत मतभेद है। अधिकांश विद्वानों ने जिसे जीवन्ती माना है, उसीका सर्वप्रथम वर्णन कर, आगे के प्रकरण में जीवन्ती न० २ का वर्णन करेंगे।

कोई २ (Holostemma Rheedii) को जीवन्ती मानते हैं। वास्तव में यह लेटिन नाम 'छीरवेल' अर्कपुष्पी का का है। छीरवेल का प्रकरण देखें। इसे संस्कृत में 'अर्कपुष्पी' कहते हैं।

किसी ने जीउन्ती (Cimicifuga Foetide) को ही भ्रमवश जीवन्ती मानलिया है। पीछे जीउन्ती देखें।

कुछ लोगों ने (Dregia Volubilis) (जिसे भाषा में एक नकछिक्नी भेद, बम्बई की ओर तिलकु सा, डोधी, तथा कहीं कहीं लाखन, जो मूर्वा के स्थान पर काम में ली जाती है) को ही जीवन्ती मान लिया है।

किसी ने पोरबन्दर की ओर होने वाली 'खीरवेल' (Sarcostemma Brevistigma), को ही जीवन्ती नाम दे दिया है। इसके विषय में 'सोमवल्ली'-प्रकरण यथास्थान देखिये।

हरड़ की एक प्रसिद्ध जाति विशेष का नाम भी जीवन्ती है।

सरलधारयुक्त, श्वेताभ, चीमट, १-४ इंच लम्बे, १-२ इंच चौडे, ऊपर चिकने, नीचे नीलाभ, रोमश, अग्रभाग में नुकीले उग्रगन्धी, पत्रवृन्त—½-१ इंच लम्बा, कुछ मोटा, पुष्प—पत्रकोण से निकले हुए छोटे गुच्छो मे, नीलाभ श्वेत या पीताभ हरित वर्ण के, फली एकाकी, शृंगाकार, अग्रभाग मोटा व कुछ टेढा, २-५ इंच लम्बी आध इंच से कुछ मोटी, सरस, कुछ कडी, चिकनी, बीज—आध इंच लम्बे, मकडे, लगभग आक के बीज जैसे होते हैं।

मूल—पुरानी होने पर कलाई जैसी मोटी, अनेक शाखा या उपमूलयुक्त, मूल की छाल—मोटी, कुडकीली नरम, भीतर से श्वेत, चिकनी, उग्रगन्धी व स्वाद मे फीकी मधुर होती है। औषधि-कार्य मे प्राय मूल ही ली जाती है।

नोट—[अ] कच्ची फलियों का तथा पत्तों का भी शाक बनाया जाता है। यह शाकों में श्रेष्ठ मानी गई है। 'जीवन्ती शाकं शाकानाम्' —च. सू अ २५.

[आ] जिसकी फली तोड़ने पर श्वेत दुग्ध सा रस निकलता है, उसे 'जीवन्ती' तथा जिससे पीला रस निकलता है उसे स्वर्ण 'जीवन्ती' कहते है। किन्तु स्वर्ण जीवन्ती (बगाल की जीवन्ती) इससे भिन्न है, उसका वर्णन आगे नं० २ प्रकरण मे देखे।

(इ) बागों मे होने वाली जीवन्ती मीठी तथा जगलो में होने वाली कडुवी होती है। इस कडवी का वर्णन आगे नं० २ के प्रकरण मे देखिये।

(ई) चरक के जीवनीय, मधुरस्कन्ध, वय स्थापन- तथा सुश्रुत के काकोल्यादि गणों मे इसका उल्लेख है।

यह विशेषत पश्चिम एव उत्तर भारत, पजाब, उत्तरगुजरात एव दक्षिण भारत मे पाई जाती है।

नाम—

सं०-जीवन्ती, शाकश्रेष्ठा, पयस्विनी इ । हिं०—जीवन्ती, डोंडीशाक। म.—डोंडी, राईडोडी, खीरखोंटी। गु०-डोडी, खरखोडी, राडारुडी। ले०—लेप्टाडीनिया रेटिकुलेटा, जिम्नेसाऑं रेंएिटयाकम Gymnema Aurantiacum

प्रयोज्याग—मूल।
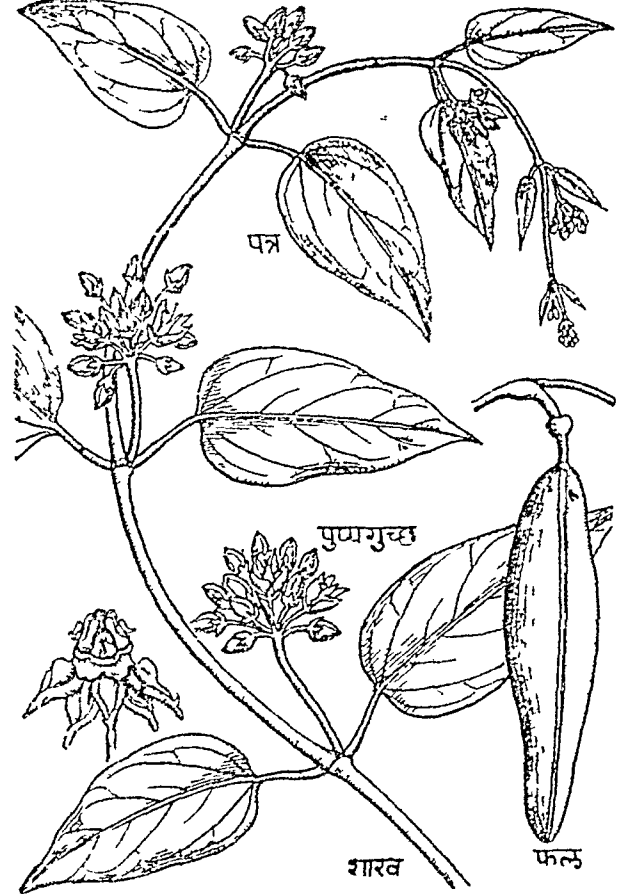
LEPTADENIA RETICULATA W&R

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुरविपाक, त्रिदोष- (विशेषत वात पित्त) शामक, स्नेहन, अनुलोमन, ग्राही हृद्य, दाहप्रशमन, वृष्य, वय्य, रसायन, मूत्रल, दृष्टिशक्ति-वर्धक, रक्तपित्तशामक, कफनिसारक व ज्वरघ्न है तथा कोष्ठगतरूक्षता, विष्टम्भ, ग्रहणी, हृद्दौर्बल्य, कास, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रदाह, पूयमेह, क्षय, शोथ, यक्ष्मा, नक्तान्ध्य, व्रण आदि मे प्रयोजित होती है।

ज्वरजन्यदाह मे—मूल के क्वाथ मे घृत मिलाकर पिलाते है।

रतोंधी (नक्तान्ध्य) मे—इसके साग को घृत मे पकाकर खिलाते हैं।

अतिसार मे—साग को दही, अनाररस व स्नेह

के साथ खिलाते हैं।

पैत्तिक शोथ पर—इसका लेप करते हैं।

इसका पत्र-शाक भी बल्य व नेत्र-हितकर है।

(१) शुक्रमेह या वीर्यस्राव पर—इसके मूल के चूर्ण के साथ समभाग सेमल-मूल का चूर्ण मिला, मात्रा ४ से ६ मा तक, शक्कर के साथ फंकाकर ऊपर से दूध पिलाते हैं।

(२) सुजाक—प्रारंभिक दशा मे-मूल क्वाथ मे जीरा-चूर्ण १॥ मा मिला प्रात नित्य ६ दिन तक पिला ऊपर से दूध की लस्सी पिलावे। मूत्र की दाह एव जलन शात होती, सगृहीत पूय निकल जाता एव मूत्र-नलिका-प्रदाह कम हो जाता है। फिर आवश्यक उपचार करें।

(३) ओष्ठ व मुखव्रणो पर—इसके मूल के कल्क और दूध के साथ सिद्ध किये हुए तैल मे शहद और आठवा भाग राल का चूर्ण मिलाकर प्रलेप करने से ओष्ठ व मुख के घाव शीघ्र ही नष्ट होते हैं। (व से) अथवा—इसके चूर्ण के साथ मैनफल, नीलाथोथा, चित्रक, मैदा और शाली चावल का चूर्ण मिला पकाया हुआ दूध लगाने से ओष्ठो (होठो) के व्रण शीघ्र नष्ट होते हैं— (भा भै र)

मात्रा—चूर्ण १-६ मा तक। क्वाथ के लिये चूर्ण १ से २ तो तक -

विशिष्ट योग

(१) जीवन्त्यादि घृत—राजयक्ष्माहर—जीवन्ती, मुलैठी, मुनक्का, इन्द्रजौ, कचूर, पोहकरमूल, छोटी कटेरी गोखुरु, खरैटी, नीलोफर, भुई आमला, त्रायमाणा, धमासा और पीपल समानभाग लेकर पानी से पीस कल्क करें। कल्क से ४ गुना घृत (गोघृत), तथा घृत से चौगुना इन्हीं द्रव्यो का क्वाथ या जल लेकर सब को एकत्र मिला घृत सिद्ध कर लें। इसके सेवन से ११ लक्षणो युक्त भी कष्टसाध्य राजयक्ष्मा नष्ट होता है। (काम, असताप, स्वरभेद, ज्वर, पार्श्वशूल, सिरपीडा, मुख से खून आना, कफस्राव, श्वास, अतीसार और अरुचि ये यक्ष्मा के ११ लक्षण है) इस घृत का योग्य सेवन-काल भोजन के मध्य मे या भोजन के पश्चात् है। किन्तु जिन्हे अतिसार न हो तथा कोष्ठबद्धता हो वे इसका सेवन खाड के साथ मिलाकर दूध में भोजन के पूर्व भी कर सकते हैं। मात्रा—आधा तोला)। [भै र]

जीवन्त्यादि घृत के अन्य योग शास्त्रो मे देखिये।

सब से सरल और उत्तम योग इस प्रकार है।

(२) जीवन्तीमूल का कल्क १ सेर, जीवन्तीमूल और शतावरी का क्वाथ १६ सेर तथा गोघृत ४ सेर एकत्र मिला मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करलें।

यह घृत नित्य १-१ तो दिन मे २ बार सेवन कराते रहने से राजयक्ष्मा, उर क्षत, दाह, दृष्टिमांद्य और रक्तपित्त मे लाभ होता है। (गा औ र)

जीवन्ती-सत्त्व—इसकी जड तथा पत्तो का घनसत्त्व तैयार कर उसकी टिकिया बना ली जाती हैं। बाजार मे ये टिकिया 'लेप्टाडीन' नाम से मिलती हैं। गर्भाशय-शोधन एव गर्भ-स्थापन के लिये इनका प्रयोग किया जाता है। पुरुषो के वीर्य के विकारो पर भी यह उपादेय है।

गर्भस्थापनार्थ—मूल के क्वाथ का प्रयोग भी सफल होता है।

जीवन्ती नं. २ (Dendrobium-Macraei)

वर्गीय रास्ना-कुल (Orchideae) की यह लता प्राय बांदे के रूप मे वृक्षो (विशेषत जामुन के वृक्षो) पर चढी हुई पाई जाती है। इसके काण्ड—घास के काण्ड जैसे पर्वयुक्त, किंतु कोमल, सुवर्ण सदृश तेजस्वी, नीचे की ओर लटकते हुए २-३ फीट लम्बे होते हैं। तथा काण्ड पर विभिन्न दूरी पर मूलकाकार, कुछ दबी हुई

चमकीली २-३।। इञ्च लम्बी शाखाएं होती है, जो दोनो ओर छोर पर पतली होती हैं। पत्र—उक्त शाखाओं या कूटकंद (Pseudobulbs) के अग्र भाग मे एकाकी, कोमल, लाल रग के ४-८ इञ्च लम्बे, लगभग १ इञ्च चौडे, रेखाकार, आयताकार कुण्ठिताग्र एवं अनेक पतली शिराओं से युक्त; पुष्प—पत्रकोण से निकले हुए (वर्षा ऋतु मे) ¾ से १ इञ्च लम्बे, श्वेत, किंतु किनारो पर पीतवर्णयुक्त, संख्या मे १ से ३ तक, दिन मे कुछ घंटे तक विकसित होने वाले, पुष्पवृन्त—¾ से १ इञ्च लम्बा, फली—शरद ऋतु मे, अनेक बीज वाली होती है।

यह बगाल मे प्रचुरता से तथा हिमालय पर खासिया पहाडी, दक्षिण मे पश्चिम घाट, मद्रास, नीलगिरि, सीलोन, एव वर्मा, मलाया आदि मे पायी जाती है।

नोट—यह बगाल की जीवन्ती कहलाती है, वहां इसका शाक सूप बनाया जाता है। कोई-कोई इसे ही अष्टवर्ग का जीवक मानते हैं।

नाम—

सं०—स्वर्ण जीवन्ती, जीवन रक्षक। हिं०—जीवन्ती, जिवसाग। म०—जोई वसी। गु०—जिवन्ती। बं०—जीवन्ती, जिवें। ले०—डेंड्रोबियम मेक्रीई।

रासायनिक सघटन—

इसमे आल्फा (Alpha) व बीटा (Beta) नामक दो रालीय क्षारमय तत्त्व, तथा जिबंटिक एसिड (Jibantic acid) और जिबेंटिन (Jibantine) नामक उपक्षार पाये जाते है।

प्रयोज्याग—पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, शीतवीर्य, मधुर, रसायन, स्नेहन, वल्य और चक्षुष्य है।

शुक्रक्षयजन्य निर्बलता पर—पचाङ्ग के क्वाथ मे अन्य वीर्य-विकार-नाशक द्रव्यो को मिला सेवन करना अति हितकर है।

त्रिदोषजन्य विकारो पर—इसका क्वाथ अन्य सुगन्धी द्रव्यो के साथ सेवन कराते है।

रतौंधी पर—घृत से सिद्ध किया हुआ इसका साग

जीवन्ती नं.२

DENDROBIUM MACRAEI, LINDL.
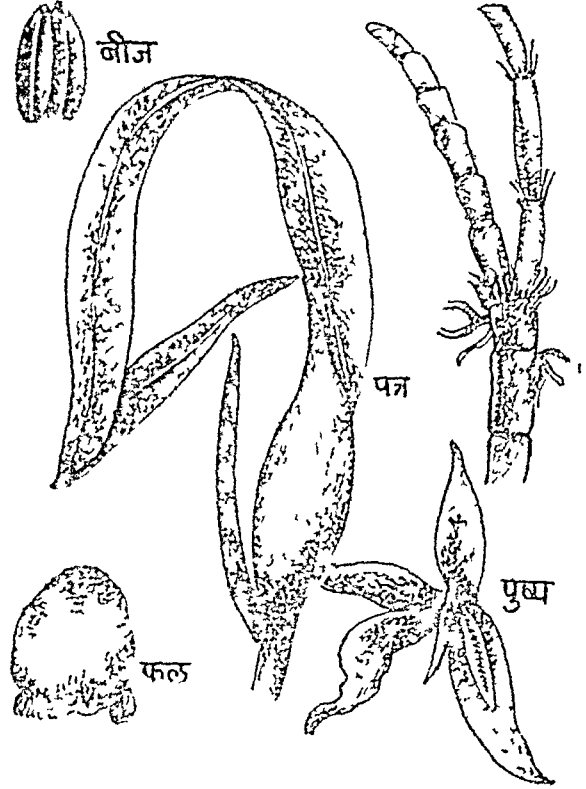
खिलाया जाता है।

सर्पदंश पर—इसके क्वाथ से विष-क्रिया नष्ट होती है।

मात्रा—चूर्ण की ३ से ६ मा०।

नोट (१)—इसका उपयोग श्वास, कास, क्षय, गले के विकार, ज्वर, दाह, नेत्र-विकार एवं रक्तविकार मे होता है।

(२) जीवन्ती कडवी—यह उक्त जीवन्ती का ही एक कडुवा भेद है। इसे स०—तिक्त जीवतिका, हिं०—कडवी जीवन्ती, म०—विपदोडी, और गु०—कडवी खरखोडी कहते है।

यह उष्ण वीर्य, लघु, दीपन, मलस्तम्भक (ग्राही), पित्तजनक, दाहजनक, कफनाशक, कठरोग, वात, गुल्म, अर्श, कुष्ठ, विष, प्रमेह व मूषक-विष आदि मे उपयोगी है।

इसकी कोमल कोपले वमन-कारक, कफ-निसारक है। पत्तो का प्रलेप—फोड़ा, फुन्सी, विस्फोटक रोग आदि पर करते हैं।

जुआर [Sorghum Vulgare]

धान्य-वर्ग एवं यव-कुल (Gramineae) का यह प्रसिद्ध धान्य प्राय समस्त भारतवर्ष के खेतो मे वोया जाता है। पौधे की ऊंचाई ३-४ हाथ, पत्ते–लम्बे मक्का के पत्र जैसे, वीज या दाने सिट्टे या भुट्टो मे लगते है, ये भुट्टे पौधो के अग्रभाग पर होते हैं। वीज–वाजरा से बड़े व गोल होते है।

नोट—(अ) श्वेत और लाल जुआर भेद से इसके मुख्य दो प्रकार है। एक जगली जुआर होती है, उसे 'गुरलू' कहते है। गुरलू का प्रकरण भाग २ में देखें।

(आ) भरोच प्रदेश के जुआर को निआलो, पूना की जुआर को कालवोंटी, दगडी सातारा, सोलापुर की जुआर को वेट्री, टुक्री नासिक व कर्नाटक की जुआर को–फावली या कागी कहते है।

(इ) जुआर के कोमल दाने वाले भुट्टों को भूनकर, सेंककर निकाल कर खाते हैं। ये मधुर और पौष्टिक होते हैं। पाडु, कामला, यकृत-शोथ, प्लीहावृद्धि एव आंत्र के रोगियो के लिये पथ्यकर है।

(ई) इसके पौधे का काण्ड कोमल, ताजी दशा में ईख जैसा मधुर होता है। ईख के समान इसका रस चूसते है। इसके पौधों में से फलोत्पत्ति के समय सूक्ष्म प्रमाण में मीठा स्राव होता है। इसे या इससे होने वाली शर्करा को–'यावनाली' संस्कृत मे कहते हैं।

(उ) पौधा शुष्क हो जाने पर काण्ड और पत्तों को काट कर गाय, बैल, भैंस आदि जानवरो को खिलाते है। कांड व पत्तों को जानवर बडे प्रेम से खाते हैं। इसे चरी या करव कहते है। हरे पत्तों को पीस कर शरीर पर मसलने से रक्त-विकार के कई दोष दूर होते हैं।

नामः—

सं०–यावनाल। हि०–जुआर, ज्वार, जोनटी, जोन्हरी, चरी ड०। म०–जोंधला, जोंवारी। गु०–जुवार। अं०–मिल्लेट (Millet) ले०–सारघम व्हलगेर, एण्ड्रोपोगान-सॉरघम (Andropogon Sorghum)

रासायनिक सघटन–

इसमे जलीय अश, तथा अल्ब्युमिनाइड्स, श्वेतसार, पोटास, न्युक्लोमाईड आदि पाये जाते हैं।
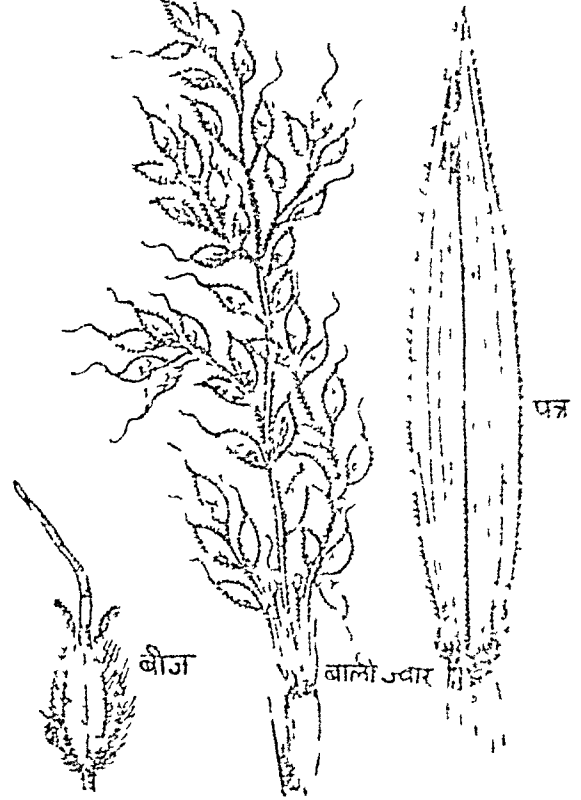
गुण धर्म व प्रयोगः—

लघु, कषाय, मधुर, रूक्ष, शीतवीर्य, अवृष्य (या-किंचित् वीर्य-वर्धक) क्लेदकारक, ग्राही, आनाहकारक, चिरपाकी, मूत्रल, रुचिवर्धक, कफ–पित्त तथा रक्त-विकार आदि पर लाभकारी है।

श्वेत दानो वाली ज्वार–पथ्यकर, वृष्य, एव वल-प्रद है। त्रिदोष, अर्श, व्रण, गुल्म तथा अरुचि-नाशक है।

लाल जुआर-कफकारक, पिच्छिल,गुरु, शीतल मधुर, पुष्टिकर तथा त्रिदोष-नाशक है।

(१) गुर्द एव मूत्र-पिण्डो के विकार मे वीजो का क्वाथ देते हैं।

(२) आमातिसार पर–इसके आटे की गरम-गरम

रोटी दही मे चूर कर, बिलकुल ठडा हो जाने पर खिलाते है।

(३) अन्तर्दाह पर—आटे की रवड़ी रात मे बनाकर, प्रात उसमे कुछ श्वेत जीरा और मट्ठा मिलाकर पिलाते हैं।

(४) शीतपित्त पर—इसके कोमल काण्डो का रस निकाल उसमे गाजवाँ का रस या क्वाथ मिला-१-३ तो० की मात्रा में पिलाते तथा इसी मिश्रण की शरीर पर मालिश करते हैं।

(५) धतूरे के विष पर—इसके काण्ड के रस में शक्कर और दूध समभाग मिला-३—३ तो० की मात्रा में घंटे-घटे के अन्तर से पिलाते हैं।

(६) सन्धिवात व पक्षाघात पर—इसके दानो को पानी मे उबाल कर या पानी की भाप पर पका कर तथा सिल पर पीस कर वस्त्र से निचोड कर रस निकाल उसमे समभाग रेंडी—तैल मिला, गरम कर व्याधि-स्थान पर लेप कर ऊपर से पुरानी रुई बाध सेंक करते है। ७ दिन तक ऐसा करने से लाभ होता है।

(७) दुष्ट कैंसर, भगदर एव दुष्ट व्रणो पर—इसके कच्चे भुट्टे का हरा, ताजा एव दूधिया रस लगाते तथा उसकी वत्ती बना घावो मे भर देते हैं, शीघ्र लाभ होता है।

जो फोडा पकता या फूटता न हो, उस पर इसके दानों को वफा कर तथा धतूर-रस मिला पुल्टिस वना कर लगाते हैं।

चाकू या हथियार के घावो मे इसके काण्ड या साठे पर जो श्वेत अस्तर सा होता है, उसे भर देते हैं।

(८) खुजली पर—इसके हरे पत्तो को पीसकर, उसमे वकरी की मेगनियो की अधजली राख और रेंडी-तैल समभाग मिला लगाते हैं।

मुहासे एव कीलो पर—इसके कच्चे दाने पीसकर उसमे थोडा चूना वा कत्था मिला लगाते है।

(९) आवाशीशी (अर्ध मस्तकशूल)—मस्तक के जिस ओर दर्द होता हो, उसी ओर के नासा रध्र मे इसके हरे पत्रो के रस मे थोडा अदरख का रस मिला टपकाते हैं।

(१०) स्तन्य-जननार्थ—इसके आटे मे सौंफ का चूर्ण मिला, हरीरा पका कर प्रसूता को खिलाते है।

(११) दन्त-रोग पर—इसके दानो को जलाकर उसकी राख से दातो को मलते है। दातो का हिलना, दत-पीडा एव मसूडो की सूजन मे लाभ होता है।

(१२) प्रस्वेद लाने के लिये—इसके शुष्क दानो को भाड़ मे भुनवाकर लाही कर और फिर उसका क्वाथ वना कर पिलाते हैं।

जुई (जुही) दे०—जूही। जुफतरूमी दे०—सरू मे।

ज्ञुमकी बेर

(VACEINUM MYRISTS)

कुटज—कुल (Apocynaceae) के इस क्षुप का तना गोल, कुठित, कटकयुक्त, शाखा—गोल, चिकनी, पाडुवर्ण, पत्र—गोलाकार, एकातर, सादे, पुष्प—नीलाभ-श्वेत,

जुमकीबेर
VACCINIUM MYRISTS LINN
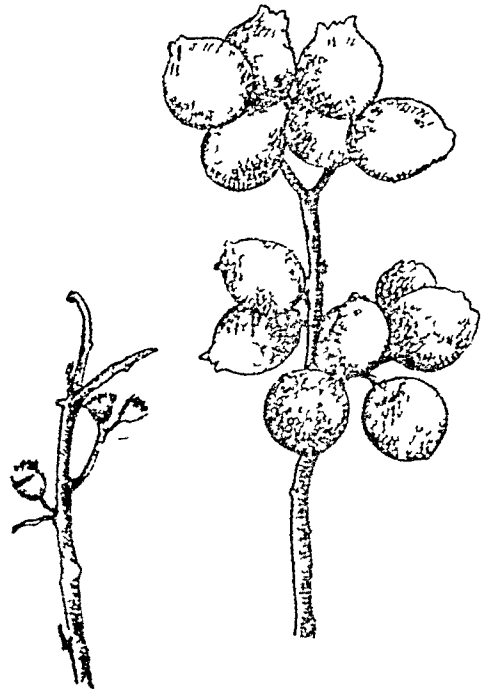
फल–कठोर, वहुवीज युक्त, व मूल–साधारण गुच्छेदार। होती है।

यह हिमालय मे, काश्मीर मे ७ हजार फीट की ऊंचाई पर सर्वत्र प्राप्त होता है।

नाम–

हि०-गु०—जुमकी वेर।

प्रयोज्याग—फल।

गुणधर्म व प्रयोग––

कषाय, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, हृद्य, दीपन, शोथघ्न व कफ-शामक है।

यह फुफ्फुसो पर विशेष प्रभावकारी है। फुफ्फुसावरण-शोथ मे तथा आन्त्र-शोथ, आन्त्र-विकार, चर्म-रोग मे उपयोगी है। इसका विशेष गुण (Chloromagcitine or Chlorophenicol) से भी अत्युत्तम है।[1] मात्रा–चूर्ण २ से ४ मासा शहद के साथ।

—वैद्य उदयलाल जी महात्मा

देवगढ (उदयपुर) राजस्थान

---

[1] वैद्य अन्नुभाई जी का कथन है कि मैंने इस बूटी का टायफाईड के रोगियों पर प्रयोग कर यथेष्ट सफलता प्राप्त की है–व० परिचय

जूट (CORCHORUS CAPSULARIS)

परुपक-कुल (Liliaceae) के इसके वर्षायु पौधे ३-४ फुट तक लम्बे, सन के पौधे जैसे, पत्र–२-४ इंच लम्बे, चौथाई इंच चौडे सूक्ष्म रोमयुक्त, अण्डाकार, कंगूरेदार, पुष्प-पीले, आध इंच तक व्यास के, फल (डोडी)–गोलाकार, पाच भाग वाला तथा प्रत्येक भाग मे अनेक बीज होते हैं।

नोट-(अ) इसकी एक जंगली जाति होती है। इसका वर्णन इसी प्रकरण के अन्त मे देखें। इस जंगली जाति को या प्रस्तुत प्रसंग की ग्राम्यजूटको ही कालाशाक, नाडी का शाक कहा जाता है। नाड़ी शाक इससे विशेष भिन्न नहीं है। नाडी-शाक का प्रकरण देखें।

(आ) जूट का औषधि महत्व की अपेक्षा औद्योगिक या व्यापारिक महत्व अत्यधिक है। व्यापारिक दृष्टि से रुई के बाद जूट का ही नम्बर है। ब्रिटिश शासन के पूर्व इसका ऐसा महत्व भारत में ही क्या अन्यत्र कहीं भी नहीं था। भारत की तो यह एक खास आमद की वस्तु है। तथा भारत को छोड इसकी उपज अन्यत्र कहीं भी नहीं होती। अंग्रेजों ने इसका व्यापारिक महत्व बढ़ाया। इसकी खेती विशेषत पूर्व बंगाल मे खूब होने लगी। इससे बोरे टाट आदि कई उपयोगी वस्तुयें निर्माण होने लगीं। सन १९०८ में इन वस्तुओं के निर्माण करने वाली बड़ी बड़ी मीलें ८४ थीं, जिनमे प्रतिदिन ४८०० टन से भी अधिक माल तैयार होता था। अब तो और भी अधिक मीलें होगई है।

(इ) कई लोग सन और जूट को एक ही मानते हैं। किन्तु ये दोनों भिन्न हैं। सन का प्रकरण देखें। यह भारत के बंगाल प्रान्त में, विशेषत. पूर्व बंगाल में अत्यधिक होता है।

नाम—

सं०-पाट, सिंगिका,। हि०-जूट, नाड़ी शाक, पाट, करेबुशाग इ । म०-कुलीची भाजी, टाकल जूट, गु०-छूंछ, छानेहट छुचड़ी बोराकु चट। बं०-नालिता शाक, पाट, कोष्ट। अ ०-जूट प्लांट Jute-Plant ले०-कारकोरस केपसुलारिस, कार ट्रिलोक्युलारिस (C Triloculans)

रासायनिक संघटन—

इसमे केपसुलेरिन (Capsulerin) नामक मुख्य तत्व है। इसके बीजो के तैल मे कारचोरिन (Corchorin) नामक एक तिक्त-तत्व, तथा ग्लयासेराईडस एवं लिनोलिक (Glycerides of oleic and Linolic-acids) नामक क्षार पाये जाते है।

प्रयोज्याग–पत्र, बीज, छाल।

गुणधर्म व प्रयोग—

मधुर, कसैला, रोचक मल-शोधक, गुल्म, उदर-रोग

जूट (पाट सण कुष्ठा)
CORCHORUS CAPSULARIS LINN.

विवन्ध, अर्श, सग्रहणी व रक्तपित्त आदि मे उपयोगी है। कफ तथा शोथ-नाशक, वल्य व मेध्य है।

पत्र— कटु पौष्टिक, स्नेहन, मृदुकर, दीपन, क्षुधा-वर्धक, मूत्रल, दाहशामक हैं।

इसके कोमल पत्र एव कोमल कोपलो का साग वगाल मे खाया जाता है। शुष्क पत्र वगाल के वाजारो मे नलिता नाम से विकते हैं।

शुष्क पत्तो के चूर्ण के साथ धनिया और अल्पप्रमाण मे सरसो के चूर्ण का मिश्रण, चिरायते की अपेक्षा अधिक उपयोगी होता है।

उक्त मिश्रण का अथवा केवल इसके शुष्क पत्रो का फाट, ज्वरो पर तथा अग्निमाद्य, यकृद्विकार, मूत्र-पिण्डशोथ, सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, आत्रशूल आदि पर एव वालको के क्रिमि–रोग मे दिया जाता है।

उक्त फाट कटुपौष्टिक रूप मे भी दिया जाता है। इससे क्षुधावृद्धि होती तथा रोगमुक्ति के वाद हुई निर्वलता दूर होती है।

तीव्र अतिसार एव आमातिसार मे—पत्र-चूर्ण की मात्रा ३ रत्ती मे समभाग हल्दी-चूर्ण मिला कर पान। या दही के साथ देते है तथा कोमल पत्रो का साग चावल के साथ पकाकर खाते है।

पत्र-रस—आमरक्त, ज्वर, अम्लपित्त आदि पर उपयोगी है।

वीज—चरपरे, उष्णवीर्य, सारक, गुल्म, शूल, विष, चर्म-रोग आदि पर प्रयोजित होते हैं।

ज्वर तथा उदर–यत्र की अवरुद्ध दशा मे वीजो के चूर्ण की मात्रा २० से ४० रत्ती तक दी जाती है।

वीजो का तेल–पौष्टिक व वात नाशक है। यह तैल खाने के भी काम मे लिया जाता है।

जूट वड़ी
(*CORCHORUS OLITORIUS*)

इस वडी जाति के जूट के पौधे भी वर्ष जीवी एवं स्वय जात होते है। यह वगाल के पश्चिम भाग मे अधिक होता है। इसके क्षुप २-३ हाथ ऊचे पत्र–२-४ इच लम्वे १-२ इच चोडे चिकने लम्वाकृति, अग्रभाग मे कडे, किनारे आरे जैसे, पत्र वृन्त–१-२॥ इच लम्वा, पुष्प–एक स्थान में ही २ या ३ लगते है . पखुडिया पीत वर्ण की, वृन्त-वहुत छोटा, फल (डोडी)—गोल, २ इच लम्वा, रोमश एव १० शिरायुक्त होता है।

इसे स०–पट्टशाक, नाडीक, नाडीशाक हिन्दी मे–कोष्टापाट, पटुआशाक, बटा जूट, वगला मे–पाठशाक, नलिता पाट, म०–अलव्या। गु०–अलवी, नीलानी भाजी। और लेटिन मे–कारकोरस ओलिटोरियस कहते है। यह कई प्रान्तो मे नैसर्गिक जगली पैदा होता है, तथा कही कही जूट के लिए वोया भी जाता है।

उपर्युक्त जूट मे पत्रो के जो गुण धर्म कहे गये है, वे अधिकाश मे इसके ही पत्रो मे पाये जाते हैं। वगाल की वाजारो मे खास कर इसी के शुष्क पत्र नालते पाट

नाम से बेचे जाते हैं। इसका क्वाथ या फाट अपेक्षा कृत ज्वर आदि रोगो पर एवं कटुपौष्टिक रूप से अधिक लाभकारी है। यह रक्तपित्त-नाशक, विष्ट भजनक एवं वात-प्रकोपक है।

इसके पत्र-चूर्ण को शहद के साथ उदर-वेदना मे देते हैं। तथा इसके बीजो का चूर्ण अदरक —रस व मधु के साथ उदर-रोगो मे ही देते है।

नोट०-उक्त छोटी व बडी जूट के शेष प्रयोग नाडी शाक के प्रकरण मे देखें।

जूफा (Hyssopus Officinalis)

तुलसी कुल (Labiatae) के इसके घास जैसे भूमि पर फैले हुए, छोटे छोटे वर्षायुक्षुप, १-२ फुट तक कहीं २ ऊ चे काण्टयुक्त होते हैं। शाखायें-काष्ठमय, गाठदार, पत्र-बर्छी या वल्लमाकार, लम्ब रेखाकार, नोक रहित, वृन्तरहित, सुगंधित, तिक्त, पुष्प-शाखा की प्रत्येक ग्रंथि पर, पत्र कोण से निकली हुई मजरी मे पीताभ, हलकी मीठी सुगन्ध युक्त छोटे पुष्प, ६ से १२ तक आते हैं, पुष्पवाह्य-कोष-¼ से ½ इंच लम्बी, आभ्यतर कोष नीला-बजनी, बीज- त्रिकोणाकार, सकडे कुछ मुलायम होते हैं।

इसके क्षुप मध्य एशिया के ईरान, श्याम आदि प्रान्तो मे, तथा मध्य यूरोप मे स्वयजात, नैसर्गिक पैदा होते हैं। उधर से भी इसका आयात भारत मे होता है। भारत के पश्चिम हिमालय प्रान्तो मे काश्मीर से कुमाऊ तक तथा पजाब मे इसी की एक जाति के क्षुप पाये जाते हैं, उन्हें लेटिन में–Hyssopus Parviflora कहते हैं।

नोट-इसका विशेष उपयोग यूनानी चिकित्सा मे किया जाता है। आयुर्वेद में भी अब इसका उपयोग होने लगा है।

नाम:-

हिन्दी आदि भाषा मे यूनानी 'जूफा' नाम से ही यह प्रसिद्ध है। अ-हिस्सोप (Hyssop), ले०-हिसोपस ऑफिसिनेलिस, हि०-पारविफ्लोरा (H parviflora) तथा Nepeta ciliaris(नेपेटा सिलियारिस)
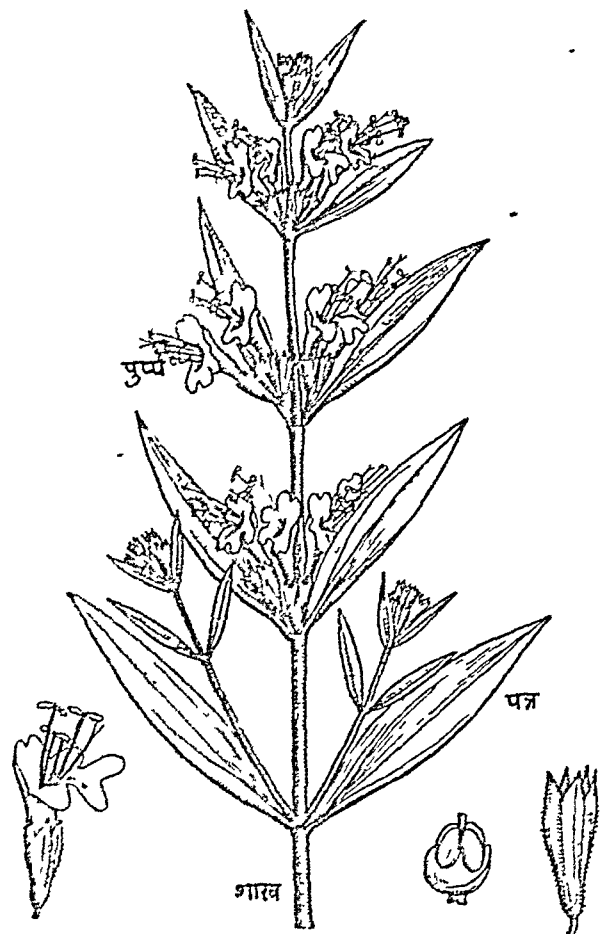
रासायनिक सघटन-

इसमें एक ग्लुकोसाइड तथा एक हरिताभ पीतवर्ण का तैल अत्यल्प प्रमाण में, और टेनिन, राल, वसा, पिच्छिल द्रव्य आदि पाये जाते हैं।

जूफा
HYSSOPUS OFFICINALIS LINN

प्रयोज्याग—पत्र एव पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग:-

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण कटु, विपाक मे कटु, उष्ण वीर्य; कफवातशामक, पित्तसारक, अनुलोमन, उत्तेजक, स्वेदल, मूत्रल, लेखन, ज्वरघ्न, कृमिघ्न, शोथहर है तथा आध्मान, विबन्ध, उदर-रोग, प्रतिश्याय, कफप्रवान, कास, श्वास, फुफ्फुस शोथ, निमोनिया, पक्षाघात, अतिसार, गर्भाशय के प्रदाह आदि मे इसकी योजना की जाती है।

यह जमे हुए खून को बिखेरता है। उदर-शोधनार्थ यह सिकजवीन के साथ दिया जाना है। इसका फाट या शर्वत-जीर्ण-कास, श्वास, फुफ्फुसशोथ (ब्रॉंकाइटिस) कठ-प्रदाह युक्त शोथ, उदरशूल, योपापस्मार, कष्टार्त्तव या ऋतुनिरोध आदि मे सेवन कराया जाता है।

शोथ यदि उष्णताजन्य हो, तो-इसका क्वाथ मधु मिला पिलाते हैं। तथा विभिन्न लेपनो में इसका मिश्रण कर लेप करते हैं। उदर के गोल कृमि पर-इसका चूर्ण मधु से देते हैं, अथवा इसके पत्र-रस का शर्वत मधु मिला पिलाते है। दत--पीटा पर-इसके क्वाथ से कुल्ले करते हैं। त्वचा के दागो पर-क्वाथ की मालिश करते है। प्लीहा, शोथ तथा मासतान (कठगत रोग Diphtheria) पर इसके क्वाथ को अजीर के साथ देते हैं। श्वास तथा जीर्ण कास पर--इसके फूलो का क्वाथ देते है। इसकी पुल्टिस आँखो पर बाधने से नजले का जलस्राव रुक जाता है।

विशिष्ट योग-

शर्वत जूफा—जूफा, हसराज, सोफ की जड़, कर्फ़स (अजमोदा) मूल, १०-१० तो० तथा-मुनक्का जल से धोकर कुचले हुए ३० तो० उन्नाव, सूखे लिसोडे शुष्क अजीर, सोसन (ईरसा) मूल, मुलैठी २०-२० तो०, बिहिदाने, अनीसून और सौंफ ५-५ तो० जौ (छिले हुए), अलसी, जटामासी और खतमी के बीज ३-३ तो० लेकर सबको जौ कुट कर रात्रि को ३ गुने जल मे भिगो, प्रात मदाग्नि पर पकावे। ⅓ जल शेष रहने पर, उतार कर, ठडा कर छान ले। ६ सेर चीनी मिला शहद जैसी चाशनी बनावें। मात्रा-१-२-तो० जल मे मिला, दिन मे २-३ बार सेवन से वात-पित्त प्रधान कास. मे उत्तम लाभ होता है।

(श्री यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य)

अथवा— १ पाव जूफा को ८ सेर पानी मे उबालें, ¼ शेष रहने पर, शेष जल से दुगनी खाड़ व समभाग मधु मिलाकर पाक करले। मात्रा-२-४ तो०। कास श्वास मे अति उत्तम है।

नोट·—

जूफा की मात्रा-२ से ६ मा० तक है।

यह यकृत-विकार पर हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ-उन्नाव, खट्टा अनार व बबूल का गोंद देते है।

जूही (श्वेत व पीत) (*JASMINUM HUMILE*)

पारिजात कुल की (Oleaceae) इसकी क्षुप जैसी लता, चमेली की लता जैसी, शाखाएं पतली, पत्र-सयुक्त, त्रिदल, त्रिदल का मध्य पत्र ½ से १ इच लम्बा, लगभग ½ इच चौडा, पार्श्व के दोनो दल बहुत छोटे-छोटे, पृष्ठ भाग रोमश-नोमश, निम्न भाग श्वेत रोमश, हद, पत्रवृन्त-बहुत छोटा, पुष्प-मजरी, या गुच्छों मे, अनेक छोटे-छोटे श्वेत-पुष्प, ५ पखुडी युक्त, अति मोहक, सुगन्धित। पुष्प-काल—ग्रीष्मान्त या वर्षा से लेकर शरद-काल तक। ये रात्रि में विशेष विकसित होते हैं।

नोट -(अ) श्वेत और पीत पुष्पों के भेद से जूही मुख्यत दो प्रकार की है। इन दोनों के गुण धर्म एक समान है।

पीत पुष्पो वाली, पीत जूही या स्वर्ण जूही के पुष्प तुरही सदृश, नीचे झुके हुए होते हैं। इसका क्षुप सूक्ष्म-रोमश, सरल, कोण युक्त, वक्र-हरित शाखा युक्त। पत्र-एकान्तर-१ से ३ इच लम्बे अंडाकार, नोकदार, दोनों

जुई पीली [स्वर्ण जूही]
JASMINUM HUMILE LINN

[illegible] हरे, [illegible] गुच्छ, पुष्प— [illegible] या मंजरी पर [illegible], तेजस्वी, पीतवर्ण के, सुगन्ध-युक्त [illegible] नलिकाकार [illegible] होता है। [illegible] छाल [illegible] होती है।

(घ) [illegible]—भारत में प्रायः सर्वत्र, विशेषतः [illegible], एवं दक्षिण भारत [illegible], कर्नाटक, [illegible] तथा एवं पुष्प-वाटिकाओं में [illegible]

[illegible] बंगाल, बिहार, [illegible] आदि के [illegible]

([illegible]) [illegible] में भी [illegible] नलिकाकार, [illegible]
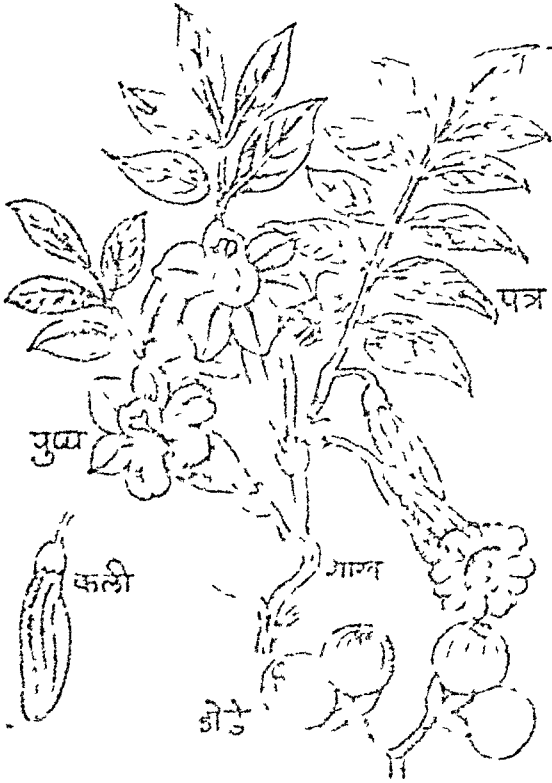
(ङ) उक्त दो प्रकार की जूही के अतिरिक्त, इसकी अन्य भी कई जातियाँ हैं। इनमे से वनमल्लिका *J* Angustifolium व Sambac. मोगरा मे, *J*.Officinalis, *J* Arborescens मालती, J. Pubescns कुन्द मे, J Grandiflorum चमेली मे; तथा जूही पालक (जो भिन्न जाति की है) इसके आगे के प्रकरण मे देखिये।

नाम-

स—(श्वेत व पीत के) यूथिका (झुण्ड में होने से), गणिका—[मनोहर होने से], अम्बष्ठा, स्वर्णयूथिका, हेम पुष्पिका इ। हि०—जूही, जुही। सोनाजूही, पीतजूही [मालती] म० व० गु०—जुई, माईली, जिंगरी, पिंवली जुई, पीली जुई, स्वर्ण थूई इ०। अं—पर्लजेस्मीन [Pearl Jasmine] गोल्डन या इटालियन जे० [Golden or Itallin J] ले०—जेस्मिनम ऑरिकुलेटस, जे. हुमीले, जे बिग्नोन्यासियम [J- Bignoniaceum]

प्रयोज्याग—पुष्प, पत्र, छाल, दूध, मूल।

गुणधर्म व प्रयोग

(श्वेत व पीत जूही)—लघु, तिक्त, कषाय, मधुर, कटु विपाक, शीतवीर्य, प्रभाव मे हृद्य, पित्तशामक, कफवातवर्धक, रक्तरोधक, व्रणरोपण, कुष्ठघ्न, विषहर व पित्त-विकार हर तथा हृद्रोग, रक्तपित्त, दाह, तृषा, उरःक्षत, चर्मरोग, मुखरोग, व्रण दन्त, नेत्र और शिरोरोग आदि मे प्रयोजित है। इसके गुणधर्म प्राय चमेली से मिलते जुलते हैं। इसीलिये कई लोग श्वेतजूही और चमेली को एक ही मानते है।

श्वेत जूही के मूल का क्षीरपाक क्षय रोग मे लाभकारी है। मुख के छाले या मुख-पाक पर—पत्र को चबाते है, अथवा—पत्तो के साथ दारुहल्दी व त्रिफला मिला क्वाथ कर कुल्ले कराते है। कर्णशूल या कर्णस्राव मे—इसका स्वरस मिलाकर सिद्ध किया हुआ तिल-तैल कान मे डालते हैं।

पाददारी या बिवाई पर—पत्तो को पीसकर लगाते है।

पीतजूही (स्वर्ण जूही)—के गुणधर्म उक्त श्वेत जूही जैसे ही हैं।

जीर्ण नाड़ीव्रण(नासूर),भगंदर, दूषित व्रण या अस्थि-विकृति पर—इसके पौधे की छाल में छेदने से जो निर्यास या दूध निकलता है, उसे लगाते हैं। शीघ्र लाभ होता है।

रतौंधी या अन्य नेत्र—विकारों पर—इसके फूल व भागरे के पत्ते ५०-५० नग, सहिजना-पत्र ३० नग, कालीमिर्च १६ नग व छोटी पीपल ६ नग, सबको महीन पीस छोटी-छोटी बत्तियां या गोलियां बना, सुखा कर लेते हैं। इन्हें पानी या काजी में घिस कर लगाते हैं।

दाद पर—इसकी जड़ को पीस कर लेप करते हैं।

योनि—शैथिल्य पर—इसके फूलों को पीस कर लगाते हैं।

विशिष्ट योग-

मूत्रीमूत्र योग—ग्रीष्म काल में उखाड़ी हुई जूही की जड़ को, बकरी के दूध में पकाकर (जड़-५ तो० दूध ४० तो०, पानी दूध से चौगुना एकत्र मिला क्षीरपाक करें) सेवन करने से मूत्राघात, मूत्र युक्त मूत्रकृच्छ, शर्करा तथा अश्मरी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है।

गा०नि (भा०भै०र०से)

नोट—मात्रा-पत्र चूर्ण-६ मा० तक। पत्र-क्वाथ-४-४ तो० पुष्प—चूर्ण-१-३ मा०। पुष्प-स्वरस १-२ तो०

जूही पालक (Rhinacanthus-Communis)

वासाकुल (Acanthaceae) के इसके भाड़ी-जैसे गुल्म ४-५ फुट लंबे, काण्ड—सरल, अनेक कोमल नये जोड़ युक्त, चिकने षटकोण शाखाओं से लदे हुए; छाल—धूसर वर्ण की, पत्र—अभिमुख, कुण्ठिताग्र भालाकार, २-४ इंच लम्बे, १-२ इंच चौड़े, पृष्ठ भाग रोमश, अधो-भाग-चिकना, स्वाद में चरपरा, मसलने से दुर्गन्ध-देने वाले, पुष्प—श्वेत, गुच्छों में, तुर्रे के आकार के; बीज-कोष (फली) में गोल-गोल ४ बीज होते हैं। मूल—कड़ी, अनेक उपमूल-युक्त होती है। पुष्प व फलकाल-दिसम्बर से एप्रिल मास तक।

इसके गुल्म विशेषत पश्चिम और दक्षिण भारत में, पश्चिम घाटों पर, उड़ीसा, बंगाल में प्राय सर्वत्र, छोटा नागपुर तथा सीलोन में बोये जाते या नैसर्गिक भी पैदा होते हैं।

नामः—सं०-यूथिक पर्णी। हि०-जूहीपालक, पालक जुंहया, जुईबानी दु०। म०-गजकर्णी, कबूतर का झाड़। गु०-गजकरण। ब०- जुंईपाना, पलक जुई। ले०-रीनाक्यांथस काम्यूनिस

रासायनिक संघटन—

मूल व छाल में राईनाकेंथीन (Rhina-Canthin) नामक एक लाल राल युक्त कार्यकारी तत्व लगभग २-

प्रतिशत होता है, जिसकी क्रिया क्राईसोफेनिकएसिड (Chrysophanic acid) सदृश होती है। यह तत्व अल्कोहल मे घुलनशील हे।

प्रयोज्याग–मूल, छाल, पत्र व बीज।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, कटु, तिक्त, रुक्ष, कटु, विपाक, उष्ण वीर्य, कफवात-शामक, रक्तशोधक, उत्तेजक, वाजीकर, कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, व विषघ्न हे।

मूल—लेखन, स्फोटजनन, कुष्ठघ्न विशेषत द द्रुघ्न व कामोत्तेजक है।

(१) दाद पर–मूल या मूल-छाल को पानी, नीबू रस, या चूने के पानी मे पीस कर लेप करते हैं। यह उकवत, छाजन, तथा धोबिया खाज (Dhobi eitch) पर विशेष लाभकर है। अथवा–जड की छाल को फिटकरी व कालीमिर्च के साथ पीस कर भी लेप करते है।

अथवा–छाल को छाया-शुष्क कर बिना छिलका निकाले इलायची के साथ पीस कर, पानी के साथ गोलिया बनालें। इन्हे पानी मे घिस लगाने से दाद पर उत्तम लाभ होता है। छाले या फफोले नही पडने पाते।

(२) कामोत्तेजनार्थ—मूल-चूर्ण को दूध मे उबाल कर पिलाते है।

(३) कुष्ठ आदि चर्म-रोगो पर–मूल का क्वाथ सेवन कराते तथा मूल और पत्र को पीस कर लेप करते है।

(४) कृमि-रोगों पर—मूल या पत्र का कल्क चूने के पानी के साथ देते है। बीजो-का भी सेवन कराते है।

(५) व्यङ्ग, न्यच्छ आदि क्षुद्र-रोगो पर—इसके पत्तो का रस लगाते है।

नोट–मात्रा–मूल चूर्ण ४–१२ रत्ती।
पत्र-स्वरस-½-१ तो०। बीज—चूर्ण-६-१२ रत्ती

जेठी मध—देखें मुलैठी। जेपाल—देखें जमाल गोटा।

जैंत (Sesbania Aegyptiaca)

शिम्बी-कुल के अपरा जित उपकुल (Paptionaceae) के इसके मध्यम प्रमाण के वृक्ष ६-१० फीट ऊँचे, पत्र–इमली पत्र जैसे सयुक्त, इमली पत्र से अत्यधिक लम्बे (३-६ इच तक), जिनमे २०-२४ पत्रक मृदुरोमश, स्वाद मे तिक्त, विशिष्ट गधयुक्त, पुष्प–वर्षाऋतु मे, छोटे-छोटे पीत वर्ण के, प्रत्येक पुष्प–दण्ड मे ३–१२ पुष्प, तथा फली शीतकाल मे, सहिंजना की फलीसदृश किंतु पतली व कुछ छोटी, २०-२५ छोटे-छोटे बीज युक्त होती है।

नोट -(अ) पुष्प-भेद से इसकी पीत, रक्त व कृष्ण तीन जातियाँ है। ये तीनों गुण धर्म मे प्राय समान हैं। काली(कृष्ण) जैत की विशेषता आगे गुण धर्म में देखें। इसकी एक श्वेत जाति भी होती है। (आ) कार्पासकुल (Malvaceae)की Abutilon-Avicennae वनौषधि, जिसे गुजराती मे नाहनी-खपाट कहते हैं, उसे भी संस्कृत मे जया, जयन्ती नाम दिया गया है। वह कघी [अतिबला] की एक छोटी जाति-विशेष है। पौधे १ से २ हाथ ऊंचे; पत्र--कंघी के पत्र समान, किंतु बहुत कोमल व सुहावने होते है। इसकी छाल औषधिकार्य मे ली जाती है। यह ग्राही पौष्टिक है। शेष गुण धर्म कंघी के ही समान है। कंघी का प्रकरण भाग २ मे देखें। यहाँ उसका चित्र दिया जाता है।

(इ) प्रस्तुत प्रसंग की पीली जैंत (तथा इसकी अन्य जातियाँ) आफ्रिका देश मे विशेष पैदा होने वाली आजकल भारत मे प्राय सर्वत्र किंतु दक्षिण भारत मे तथा सीलोन आदि उष्ण देशों मे अधिक प्रमाण मे पैदा होती है।

नाम —

सं०–जयन्ती, जया (रोगों को जीतने वाली) सूक्ष्म मूला, सूक्ष्मपत्रा, केश रुहा (केशों को बढाने वाली) इ०। हि--जैंत, जयन्ती, झीजन, जेत्रासिन, जन्तर इ०

जैंत
SESBANIA AEGYPTICA PERS.

म०-जेत, शेवरी, जाजन। बं०-जयन्ती। ले०-सिसबेनिया ईजिप्टियाका।

रासायनिक संघटन —इसके बीजो मे वसा ४८ प्रतिशत, अलब्यु-मिनाइड ३३ ७ प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट १८ २ प्रतिशत, सेल्युलोज २८ ३ प्रतिशत तथा क्षार ४ २ प्रतिशत पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, बीज, फूल, छाल, व पुष्प।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रुक्ष, कटु, तिक्त, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, प्रभाव मे ज्वरघ्न, विषघ्न, त्रिदोष (विशेषत कफ पित्त) शामक, दीपन, ग्राही, कृमिघ्न, रक्त शोधन, कंठ्य, स्वेदजनन, विस्फोटज्वर–प्रतिषेधक, मधुमेह, गलरोग, क्षयजन्य–ग्रंथियो आदि की नाशक है।

पत्र—विरेचक, कृमिनाशक हैं। पत्तो का कल्क-केश्य, शोथहर, वेदनास्थापन, व्रणपाचन, कुष्ठघ्न, व सधिवात नाशक है। पत्र–स्वरस-जन्तुघ्न है। पत्र प्रयोग से मूत्र की एव तदन्तर्गत शर्करा की मात्रा कम होती है। पत्तियो का गरम कल्क या पुल्टिस विद्रधि, अण्ड-वृद्धि, सधिशोथ आदि मे बाधी जाती है। पत्र–क्वाथ से व्रणो का प्रक्षालन करते हैं। खालित्य (Baldness) व पालित्य (बालो के पकने पर) मे इसका लेप लगाते या इसके क्वाथ से सिर धोते है।

कण्डू, कुष्ठ, गलगड आदि मे पत्तो का लेप करते हैं। कृमि-रोग मे पत्र स्वरस देते हैं।

स्वर भेद, प्रतिश्याय, आदि कफ जन्य विकारो मे तथा इक्षुमेह (Glycosuria) और बहुमूत्र मे पत्र-क्वाथ देते है। तथा पत्र-कल्क आटे मे मिला उसकी रोटी बना कर खिलाते हैं।

जिन्हे जुकाम (प्रतिश्याय) बारबार हो जाया करता है उन्हें पत्तो का शाक सेवन कराते है। उत्तम लाभ होता है।

नोट.–रसशास्त्र में द्रव्यों के शोधनार्थ पत्र-स्वरस विशेष प्रयुक्त होता है।

बीज—ऋतुस्राव नियामक, आर्त्तवजनन, विषघ्न उत्तेजक है। इनका प्रयोग कष्टार्त्तव, रजोरोध, प्लीहा-शोथ आदि मे किया जाता है।

अग्निमाद्य व अतिसार मे बीजो का चूर्ण देते हैं।

मसूरिकादि विस्फोट रोग–प्रतिषेधार्थ–इसके लगभग २०–२५ बीजो को पीस कर गाय के घृत के साथ सेवन कराते है। तथा बीजो का लेप भी करते हैं।

खुजली पर–बीज-चूर्ण आटे के साथ मिला लेप करते हैं।

बिच्छू के दंश पर—बीजो का लेप करते हैं।

मूल व छाल—सकोचक, योगवाही, विषघ्न व कुष्ठघ्न है।

कुष्ठ, विशेषत श्वेत्र या श्वेत कुष्ठ पर—मूल (श्वेत जयन्ती की मिले तो और उत्तम है) को दुग्ध मे पीस कर दूध के ही साथ रविवार के दिन पीने से श्वित्र

नष्ट होता है[1] । (भैं०र०)

विच्छू के विष पर—इसकी ताजी जड को हाथ मे दाव कर रखने से विष उतर जाता है, ऐसा कई लोग कहते हैं। दशस्थान पर मूल को पीस कर लेप करते हैं।

ज्वर उतारने के लिये—सहदेई मूल के समान इसके मूल को सिर पर धारण करते हैं।

छाल—संकोचक है। रक्तविकार, गलगंड आदि मे, इसका क्वाथ पिलाते हैं।

अग्निमाद्य व अतिसार मे छाल का स्वरस देते हैं।

पुष्प—ज्वरहारी, व गर्भ निवारक है-ज्वरी के सिर पर पुष्पो को धारण करते हैं।

गर्भ-धारण निवारणार्थ—पुष्पो को काजी मे पीस, पुराने गुड के साथ, मासिक स्राव के वाद ३ दिन तक पिलाते हैं।

काली जैंत—विशेषत रसायन या धातु परिवर्तक है। सामान्य दौर्वल्य मे इसका प्रयोग किया जाता है।

विषो के निवारणार्थ—इसकी मूल या छाल का क्वाथ या स्वरस पिलाते हैं।

जैंत का विशिष्ट योग—जयावटी (ज्वर नाशक) जैंत-मूल का चूर्ण ८ भाग तथा मीठा विष, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, मोथा, हल्दी, नीमपत्र—चूर्ण और वायविडग १-१ भाग इन सब द्रव्यो का चूर्ण एकत्र कर वकरे के मूत्र से मर्दन कर २-२ रत्ती की गोलियाँ वना लें। यह पित्तज्वर तथा रक्तपित्तोत्पन्न ज्वर मे अति कारी है। सभी प्रकार के ज्वरो की तरुणावस्था मे एवं मलेरिया ज्वर मे भी जव आमरस का परिपाक न हो दाह, प्यास, पसीना, व तापाश तीव्र हो, मदाग्नि आदि लक्षण हो तव दिन मे तीन वार तक सेवन करा सकते हैं। इसे अदरक के रस व मधु के साथ देते हैं।

ज्वर की मध्यमावस्था मे, जव किसी भी समय ३-४ घटे के लिये ज्वर होकर शात हो जाता हो, तव पीपल चूर्ण व मधु के साथ प्रात.साय देवें।

ज्वर की जीर्णावस्था में प्लीहा आदि के बढ़ जाने या अपथ्य सेवन आदि से ज्वर आता हो तो भी इसका सेवन कराते हैं।

नये या पुराने रक्तपित्त वातिक या क्षतज कास मे ज्वर हलकी हालत मे १०१ तक रहता हो तो इससे विशेष लाभ होता है। रक्तपित्त मे इसे चन्दन-क्वाथ के साथ देते हैं।

भागरे के रस व मधु के साथ इसका सेवन निरतर करते रहने से रतौंधी मे कभी कभी विशेष लाभ होता है।

(—भैं०र०मे आयुर्वेदाचार्य श्री जयदेव विद्यालंकार के विशेष वक्तव्य से)

नोटः—मात्रा—चूर्ण—२-३ या ६ मा०तक।
स्वरस-१-२ तो०। क्वाथ—५-१० तो० तक।

[1] श्वेत जयन्ती मूल पीत पिष्टं च पयसैव।
श्वित्र निहन्ति नियत रविवारे वैद्यनाथाज्ञा॥
(—भैं०र० कुष्ठाविकार)

जैतून (Olea Europaea)

पारिजात-कुल (Oleaceae) के इसके वागी वृक्ष सदा हरे भरे मध्यम आकार के तथा जगली वृक्ष वडे होते हैं। पत्र—अमरूद के पत्र जैसे, किंतु कुछ गोलाकार फल—कलमी वेर जैसे अण्डाकार, कच्ची दशा मे हरे रग के होते हैं। कच्चे फलो का अचार एव तरकारी बनाते हैं। पकने पर ये फल नीलाभ लाल रंग के हो जाते तथा इनका मध्यस्तर (Mesocarp) तैल से भर जाता है।

तैल निकालने के लिये फलो का सग्रह वसत काल के आरभ मे करते हैं। तथा अच्छे परिपक्व फलो को मशीन में चक्की द्वारा इस प्रकार पीसा जाता है, कि गूदा तो पिस जाय, किंतु गुठली (जो ३/४ इंच लंबी व

२ इंच मोटी होती है) टूटने न पावे। इन पिसले हुए फलों को पुन गोल-गोल थैलो मे कस कर भर दिया जाता है, तथा थैले पर थैले; एक के ऊपर एक रख कर मशीन द्वारा दबाया जाता है, जिससे गाढा तैल (Crude Oil) निकल आता है। नालियो द्वारा इस तैल को हौज मे सगृहीत कर, उसमे पानी मिलाते है। स्वच्छ एवं शुद्ध तैल पृथक होकर पानी पर तैरने लगता है। फिर तैलीय भाग को प्रथक कर लेते है। इसे वर्जिन-आयल (Virgin Oil) कहते है। औषधि-कार्यार्थ यही उपयुक्त होता है। उक्त प्रकार से गाढ़ा तैल निकालने के बाद जो चोया या फुजला रह जाता है, उससे प्रपीडन द्वारा दूसरे दर्जे का तैल अलग निकाला जाता है, जो अन्य कार्यो के लिये व्यवहृत किया जाता है। फलो की गुठलियो मे भी कुछ प्रमाण में तैल होता है।

इन वृक्षो का मूल उत्पत्ति स्थान भूमध्य सागर के तटीय प्रान्त हैं। अब कई वर्षो से अमेरिका के केलिफोर्निया प्रात एव दक्षिण यूरोप, आस्ट्रेलिया, एशिया-माइनर, यूनान आदि देशो मे इसकी खेता की जाती है। भारत के हिमाचल प्रान्तो मे, नीलगिर मे भी इसके पौधे लगाये गये है। पश्चिम सिंध तथा अफगानिस्तान, बलूचीस्तान मे इसकी एक जगली जाति के वृक्ष होते हैं।

नोटः—(अ) खास कर इसके वृक्ष इसके तैल के लिये ही लगाये जाते हैं। इसका उक्त प्रकार से शीत प्रपीडन द्वारा, यूरोप देशीय जैतून (Olea Europaea) के पके फलों से प्राप्त किया हुआ स्थिर तैल उत्तम स्वच्छ विमल, हलका, सुनहरे रंग का, हलकी गंध युक्त एवं स्वाद में तैलीय या फल जैसा होता है।

उक्त दूसरे दर्जे के तैल को टेबल आयल (Table Oil) कहते हैं। यह खाने के काम में लाया जाता है[1]। पुनः चोये से निकाला हुआ तैल साधारण (Common) जैतून तैल कहाता है। यह उक्त प्रथम दर्जे के तैल की अपेक्षा कुछ गाढा एव पीताभ या हरिताभ छटा वाला होता है।

(आ) हिन्दी में-उक्त तैल को जैतून—तैल, रोगन जैतून, अंग्रेजी में ओलिव्ह आइल [Olive Oil] तथा लेटिन में ओलियम ऑलिव्ही (Oleumolivae) कहते हैं।

यह तैल अनेक प्रकार की औषधियों में तथा उत्तम साबुन और ग्लिसरीन आदि में भी चिकनाई के लिये प्रयुक्त होता है।

(इ) जैतून के वृक्षों से (विशेषतः जंगली वृक्षों से) एक प्रकार का गोंद निकलता है, जो पीताभ कृष्ण या लाल वर्ण का, तथा स्वाद मे मधुर होता है। इस गोंद को कुछ देर हाथ में रखकर मसलने से वह पिघलकर शहद जैसा हो जाता है।

तैल का रासायनिक संघटन—

इसमे ऑलाईन (Olein) जो ऑलीइक-एसिड का ग्लिसेराइड होता है ९३ प्रतिशत, लीनोलीन (Linolein) जो लीनोलिक एसिड एव ग्लिसरीन का यौगिक है ७ प्रतिशत, पामीटीन (Palmitin) नामक स्थिर तैल, जो पामेटिक एसिड एव ग्लिसरील (Glyceryl) का यौगिक होता है, तथा एरेकिन (Arachin) आदि

जैतून
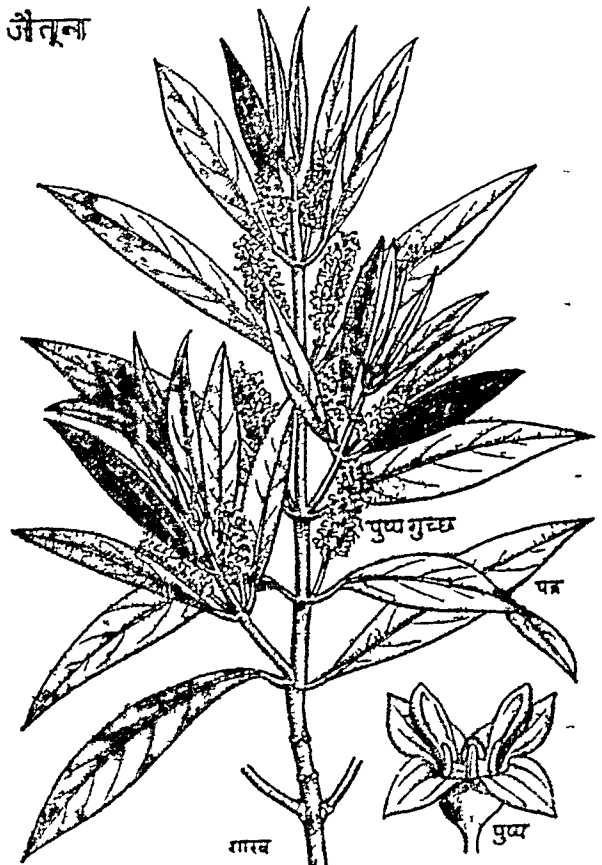
OLEA EUROPAEA LINN

[1] अनेक देशों में खाद्य के रूप में इसका प्रचलन है।
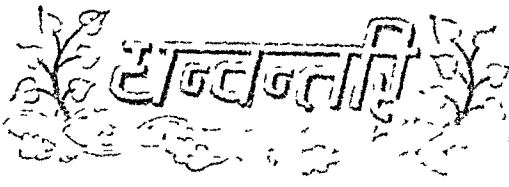
उपादान पाये जाते हैं ।

ध्यान रहे—इसके शुद्ध तैल मे बिनौले का तैल, तिल तैल, मूंगफली तैल आदि का मिश्रण कर बाजार मे बेचा जाता है । जहा तक हो सके औषधि कार्यार्थ इसका शुद्ध तैल ही लेना चाहिये । इसके अभाव मे बिनौले का या मूंगफली का तैल ले सकते हैं ।

प्रयोज्याग—तैल, पत्र, फल और गोद ।

गुणधर्म व प्रयोग—

तैल—उष्ण, स्नेहन (स्निग्ध गुण की इसमे सर्वाधिक विशेषता है) तथा पित्त रेचन । कच्चे फलो का तैल या पुराना सडा-गला तैल रूक्षता एव खुजली पैदा करता है ।

आभ्यन्तर प्रयोग—(१) पुष्टि के लिये—इस तैल का अल्प मात्रा मे सेवन करने से यह आमाशयान्त्र मे काडलिवर आयल (मछली के तैल) जैसा इमलसन मे परिणत होकर आत्रो द्वारा शोषित होता तथा पोषण का कार्य (Nutrient) करता है । अत क्षयकारक रोगो मे इसका प्रयोग एमलसन के रूप मे करने से यह पुष्टिकर प्रभाव करता है । यह इस कार्य मे मछली के तैल की अपेक्षा अधिक लाभकारी है । यदि यह वैसे ही न लिया जा सके तो इसके एमल्सन के लिये इसमे नारगी आदि फलो का रस मिलाकर सरलता से लिया जा सकता है । अथवा १ औंस (२॥ तो० तक) इसके तैल मे १८० ग्रेन (६० रत्ती) बबूल का गोद चूर्ण और २ औंस जल मिलाने से उत्तम एमल्सन बन जाता है । गोद के स्थान मे यव सत्त्व (माल्ट एक्स्ट्रैक्ट) के साथ भी यह अच्छी तरह मिल जाता है । अथवा तैल को कैप्सूल (Capsule) में भरकर भी इसे लेते हैं ।

(२) मल-विबन्ध नाशार्थ—बालक या निर्बल व्यक्तियों को २॥ से ५ तो० की मात्रा मे देने से यह आतों का स्नेहन करता तथा साथ ही मृदुविरेचन प्रभाव भी करता है, जिससे शुष्क मल मुलायम होकर बिना कष्ट के साफ निकल जाता है । अतएव प्रकुपित (वेदना शोथयुक्त) अर्श, मलाशय व्रण (Rectal ulcer) गुदचीर (Anal fissure), भगंदर, गुदभ्रंश या अन्य वेदनायुक्त मलोत्सर्ग की व्याधियों मे, तथा अफीम के सेवन से उत्पन्न मल-विबन्ध (कब्जी) मे इसका सेवन विशेष उपयोगी है । सेवनविधि उक्त नं० १ प्रयोग मे देखें ।

सारक प्रभाव के लिये इसे बस्ति (Enema) के रूप मे (१० तो० तैल को आधा सेर चावल के गरम-गरम माड मे मिलाकर) भी प्रयुक्त कर सकते हैं ।

अश्मरी (पित्ताश्मरी) रोग मे भी इसकी बस्ति लाभकारी है । शूल (कुलज) रोग मे भी इसे पिलाते या बस्ति देते हैं। [गुदामार्ग द्वारा ईथर एव पैराल्डिहाइड का प्रयोग करने एव अधस्त्वचीय मार्ग द्वारा (Hypodermic) ईथर एव कपूर का प्रयोग करने के लिये भी इसका माध्यम द्रव्य (Vehicle) के रूप मे प्रयोग किया जाता है । (मे० मेडिका)]

(३) आमाशय, पित्ताशय एव पित्ताश्मरी पर इस तैल का कार्य—मुख द्वारा सेवन करने से यह आमाशय पर संकोचक प्रभाव करने से यह अप्रत्यक्ष तथा पित्त-विरेचन (Indirect cholagogue) प्रभाव करता है । अत. आमाशय के व्रण (Gastric ulcer) अथवा इस व्रण के न होते हुए भी इसके लक्षणो से युक्त अग्निमांद्य (Dyspepsia) मे इसका सेवन लाभप्रद है ।

पित्ताशय पर उक्त प्रभाव के कारण इसका प्रयोग अनेक पित्ताशय के रोगो (पित्ताश्मरी, पित्ताशय शोथ, पित्ताशय दौर्बल्य–atony the gall-bladder आदि) मे करने से उपद्रवो की शाति होती है ।

पित्ताश्मरी (Gall stones) का मुख्य घटक कोलेस्टेरीन (Cholesterine) इस तैल मे शरीर तापक्रम ९८° फा. पर विलीन हो जाता है अत पित्ताश्मरी विलयन एव तज्जन्य शूल निवारणार्थ इस तैल का प्रयोग बहुत उपयुक्त समझा जाता है । एतदर्थ इसका सेवन अधिक समय तक निरन्तर करना पडता है । और अल्प मात्रा से प्रारंभ कर उत्तरोत्तर मात्रावृद्धि करनी पडती है । साधारणतया दो रोगियो को १० से २० औंस तक तैल प्रति दिन सेवन कराना पडा है। इससे पित्त पतला होकर उसका उत्सर्ग आत्र मे बहुत अधिक मात्रा मे होता है, जिससे

कालान्तर मे पथरी भी मूत्र-मार्ग से सहजही बाहर निकल जाती है-(मे मेडिका)

(४) प्रदाहकारी विषो पर—फास्फोरस के अति-रिक्त अन्य नखिया, स्प्रिट आदि प्रदाहकारक विषो मे—इस तैल का प्रयोग स्नेहन द्रव्य के रूप मे, महास्रोत (Alimentary Canal) मे होने वाली वेदना, दाह एव शोथ-शमनार्थ किया जाता है।

तैल के बाह्य प्रयोग—

त्वचा पर मालिश आदि से यह स्नेहन, मृदु कर, सशमन, शोथविलयन एव अङ्गप्रत्यङ्ग मे शक्तिप्रद कार्य करता है। निर्बल व्यक्ति, विशेषत दुर्बल एव कृश शिशुओ के शरीर पर मालिश से यह अन्दर शोषित होकर शरीर को पुष्ट कर कृशता दूर करता है।

अङ्ग वेदना, पक्षवध, आमवात, गृध्रसी आदि मे विलयन एव सशमनार्थ (Soothing) इसका मर्दन करते हैं। इससे शरीर की रूक्षता, तथा चवल (छाजन), शुष्क गज आदि त्वचा के रूक्ष-विकारो (किटिभ-Psoriasis, चर्मकुष्ठ-Zeroderma-आदि) मे भी लाभ होता है।

यह तारपीन, फिनाईल, कार्वोलिक एसिड आदि की तीक्ष्णता कम करने एवं गुणोत्कर्ष के लिए उन द्रव्यो मे मिलाया जाता है।

प्लेग, हैजा, चेचक आदि संक्रामक रोगो के प्रति-कारार्थ इसे फिनाईल में मिला कमरे मे छिडकते तथा शरीर पर मालिश भी करते हैं।

व्रणशोधन, रोपण एव सधान के लिये इसे मरहमो मे मिला व्रणो पर लगाते हैं।

अस्थि-सधानार्थ (टूटी हुई हड्डी के जुडने के लिए) इसके (विशेषत जगली जैतून के) तैल की मालिश की जाती है।

(५) आग आदि मे झुलसने पर (Burn and scald) सशामक प्रभाव एव दग्धावयव के रक्षण के लिये इसका मलहम या लिनिमेंट बना कर—यथा चूने के पानी १ भाग मे यह तेल दो भाग मिला एव घोट कर लगाना एक उत्तम योग है।

अथवा—इसके तेल (अभाव मे अलसी तेल) १ सेर मे चूने का पानी १ सेर मिला मथानी से खूब मथलें—(यदि दोनो एक होते हो तो पानी को नितार कर कुछ कम करलें) फिर उसमें २ तोला नीलगिरी तेल मिला शीशियो में भर लें। यह अग्रेजी कैरन आईल के स्थान पर काम देता है। आग से या तेजाव से जलने पर पट्टी तर कर इसे लगायें या फाये से लगायें।

—वैद्य बद्रीनारायण शास्त्री आयुर्वेदाचार्य, अजमेर

(६) चेचक या लोहित ज्वर (Scarlatina) के दानों पर जब खुरंट निकलने लगती है तो किसी उपयुक्त जीवाणु-नाशक द्रव्य (यथा फिनोल ४-५ प्रतिशत) के साथ इसे लगाया जाता है।

(७) नेत्र-विकारो पर—इसके शुद्ध तेल को नेत्रों में लगाने से नेत्र-दृष्टि बढती तथा नजला, खुजली, धुध, जाला आदि विकार दूर होते हैं।

नोट—तेल की साधारण मात्रा आधा से २॥ तोला तक है।

विकृत तेल के सेवन से यदि खुजली आदि विकार हो तो शहद व शर्वत वनफशा का सेवन कराते हैं।

पत्र-प्रयोग—

प्रस्वेद पर—जंगली जैतून के पत्रो को शुष्क कर पीसकर शरीर पर मलते हैं।

व्रणरोपणार्थ—पत्र-चूर्ण शहद मे मिलाकर लगाते हैं।

शीतपित्त, खुजली, दाद, गरमी के दूषित व्रणो पर—जगली जैतून के पत्रो का प्रलेप करते है।

कर्ण-विकार पर—पत्र-रस कान में डालने से शूल, पीब व शोथ पर लाभ होता है। कान में यदि फुसी या बहरापन हो तो पत्र-रस में समभाग शहद मिला कुन कुनाकर कान में डालते हैं।

नेत्र विकारो पर—बागी जैतून के पत्र नेत्र रोगो पर विशेष लाभकारी है। इससे मोतियाबिन्द मे भी लाभ होता है। बच्चो की आखो का टेढापन (तिरछा देखना) मिटाने के लिये पत्र-रस की नस्य देते है।

फल—जैतून के फलो का मुरब्बा मृदु विरेचक है।
इसे गरम पानी से खिलाने मे पत्र दस्त लगने है।

फलो का अचार क्षुधा-वृद्धि करता व आमाशय को शक्तिप्रद है। किन्तु कुछ विबन्धकारी भी है। इसे यदि सिरके के साथ खाया जाय तो शीघ्र हजम हो जाता है।

अचार की विधि—बागी जैतून के कच्चे फलो को चूना और राख मिश्रित पानी मे डुबोकर कुछ समय तक रखते हैं, जिससे उनकी कड़वाहट बहुत कुछ दूर हो जाती है फिर उन्हे बोतलो या बर्नियो में नमक एव सुगन्धित द्रव्य मिश्रित जल के साथ भर देते हैं। २-८ दिन में अचार तैयार हो जाता है।

गोंद—यह उष्ण एव रूक्ष है। यह जुकाम, गर्मी, नजला व खासी में लाभकारी है। आवाज को साफ करता है।

गर्भाशय-शोथ-निवारणार्थ—इसे योनिमार्ग मे रखते हैं।

दाद की जखम व तर खुजली पर—इसे मलहम में मिला कर लगाते है।

इसे आख में लगाने से पुतली के रोग जाला आदि में लाभ होता है।

इसे कीडा खाये हुए दात मे भर देने से बहुत लाभ होता है।

यह गोंद मूत्रल है तथा योनि मे रखने से मासिक धर्म को जारी कर देता है। यह गर्भ को भी गि[illegible] है। (व च०)

नोट-गोंद की मात्रा ३ से ५ माशा तक।

इसके दर्प को नाश करने के लिए, अर्थात् यदि इसके पत्र, फल, गोंद, तैल आदि के अधिक सेवन से अनिद्रा, सिरदर्द, कमजोरी, दुर्बलता, फेफड़ो के कोई विकार पैदा हो जावे तो—बादाम, अखरोट, शहद, शर्बत नीलोफर या खमीरा बनफशा का सेवन विशेष लाभदायक है। (व० च०)

जोंकमारी
Anagallis Arvensis

Primulaceae कुल की इस वर्ष जीवी क्षुद्र बूटी के पौधे जमीन पर फैले हुए, पत्र—अभिमुख, सयुक्त २-२, शाखा की गाठ-गाठ पर, अण्डाकृति, निरापाल से व्याप्त, पीले धब्बो से युक्त हरित वर्ण के, वृन्तरहित, पुष्प—पत्रकोण से निकली हुई डडी पर—१-१ पुष्प, ५ पखुड़ी वाला, किरमिजी रग का, फल—मोटे मटर जैसा, अनेक या एक बीज युक्त होता है।

ANAGALLIS ARVENSIS LINN.

नोट—लाल या किरमिजी या नीले फूल के भेद से इस बूटी की दो जातिया होती हैं। इसके पौधे काश्मीर, कुमाऊं, खासिया पहाडी आदि स्थानों में पाये जाते हैं।

यह जोंक मछली और कुत्तों के लिये विषैली है।

नाम—

हि.—जोंकमारी, जिगनी, जगमानी, धब्बर। ग.—काली-फुलड़ी, गोलीफुलड़ी, ले०—अनेगेलिस अरवेंसिस

रासायनिक संघटन--

इसमे सेपोनीन (saponin) व एन्जिम (Enzyme) ये तत्व पाये जाते है। ये तत्त्व प्राय रीठा व सीकाकाई के विपैले तत्व जैसे ही होते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग —

तिक्त, कटु, आनुलोमिक, वेदनाशामक उवमादक, व्रणरोपक व शोथहारी है, तथा गठिया, जलोदर उन्माद, अपस्मार, सर्पविष, श्वानविप आदि मे उपयुक्त है।

उन्माद और अपस्मार मे इसे विरेचनार्थ देते है। पागल कुत्ते के विप पर इसे घोट कर पिलाते तथा दंश-स्थान पर लेप करते है। सर्विशोथ, यकृतशोथ, जलोदर व वृक्क व फुफ्फुस के विकारो पर इसका लेप करते तथा विरेचनार्थ खिलाते है। शरीर मे प्रविष्ट हुए शल्य के निष्कासनार्थ तथा दंत-पीडा-शमनार्थ इसका बाह्य लेप करते है। पीनस मे नाक की दुर्गन्ध-निवारणार्थ इसका नस्य देते ह।

जोंधरी (जोनरी)—दे० जुवार। जोईपाणी—दे० जूही पालक।

जोगीपादशाह (Saussurea sarca linn)

भृंगराज-कुल (Compositae) की इस काण्ड रहित के वनौषधि क्षुप के पत्र—एकान्तर श्लक्ष्ण, शाखा—छोटी स्निग्ध, पुष्प—पीताभ कपिश, फल—छोटे श्वेत वर्ण के रोमश, बहुबीज युक्त, तथा मूल—छोटे सूत्र जैसी होती है।

यह काश्मीर से गुलमर्ग के समीप पहाडी प्रान्त मे १० हजार फीट की ऊंचाई पर सर्वत्र प्राप्त होती है।

इसकी बिक्री कन्सरवेटर ऑफ फारेस्ट डेवेलोंमेंट सर्कल जम्मू (काश्मीर) द्वारा होती है। इसका वर्णन (Flora of British India, By Hooks) में है। हिन्दी वर्णन श्रद्धेय अन्तुभाई वैद्य लिखित वनस्पति परिचय के पृष्ठ ३६३ पर है।

नाम—

हि. गु.—जोगीपादशाह लें—सासुरिया सारका।

उपयोगी अङ्ग—पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

कटु विपाक, उष्णवीर्य, बृंहण, रक्तदोषान्तक, वात-कफशमन है। शारीरिक अङ्गो मे इसका प्रभाव त्वचा और आंत्र पर होता है।

वीर्य सम्बन्धी विकार, ज्वर व आंत्र रोग पर इसका उपयोग किया जाता है।

मात्रा—चूर्ण २ से ४ मा, अनुपान दुग्ध व शहद।

विशेप—वैद्य अन्तुभाई का कथन है कि इसका मैने त्वग्रोगो मे तथा वीर्य-क्षीणता सबंधी-विकारो मे यथेष्ट उपयोग किया है। रोगियो को पर्याप्त लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इसका आगे अन्वेपण आवश्यक है।

—वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा

देवगढ (राजस्थान)

जोजलसर-सरु (सरो) मे देखें। जोमान-दे० अजवायन। जौ-दे० जव। ज्योतिष्मति-दे० मालकागनी।

झट्ठू-दे० गेंदा। झझोरा-दे० झिंझोरा। झउवा—दे० झाऊ। झडबेर-दे० बेर मे।

झनझनिया-दे० झुनझुनिया। झरिष्क-दे० दारुहल्दी। झाटी-दे० कटसरैया।

झाऊ (Tamarix Gallica)

यह अपने झावुक-कुल (Tamariscinae) का प्रधान वृक्ष[1] है। यह झाडीदार या गुलमाकार छोटे कद का सदा हरा भरा वृक्ष ६ से १२ फुट तक ऊँचा, शाखाएँ—अनेक, कोमल, सरल, या झुकी हुई, हरिताभ लाल या रक्ताभ बादामी रग की, पत्र-अति सूक्ष्म, लम्बे, पतले, सूक्ष्म चिन्ह युक्त, तेजस्वी,

[1] इस कुल के झाड़ीदार वृक्ष-सपुष्प, द्विबीज पर्णा, विभक्तदल, अध:स्थ बीज कोप, पत्र-एकान्तर, अवृन्त, अखंड, छोटे, पुष्प-छोटे व नियमित; पुष्प बाह्यकोप तथा आभ्यतर-कोप के दल ४-५ या १० तक, पुंकेसर ५, स्त्री-केशर, गर्भाशय एक कोपी, फल-विदारी, अनेक बीजयुक्त होते हैं। (—द्र०गु०विज्ञान)

पुष्प—शरदऋतु—मे, शाखाग्र के गुच्छो मे, कुछ रक्ताभ-श्वेत वर्ण के ⅛ इच व्यास के, फल—शीतकाल मे, वृक्ष की शाखाओ पर कीट जन्य ग्रन्थियो (माई) को ही फल कहा जाता है। ये तीन धारी वाले, हलके गुलाबी या भूरे रंग के चमकदार होते है। नीचे नोट न० १ में देखें।

झाऊ
TAMARIX GALLICA LINN.
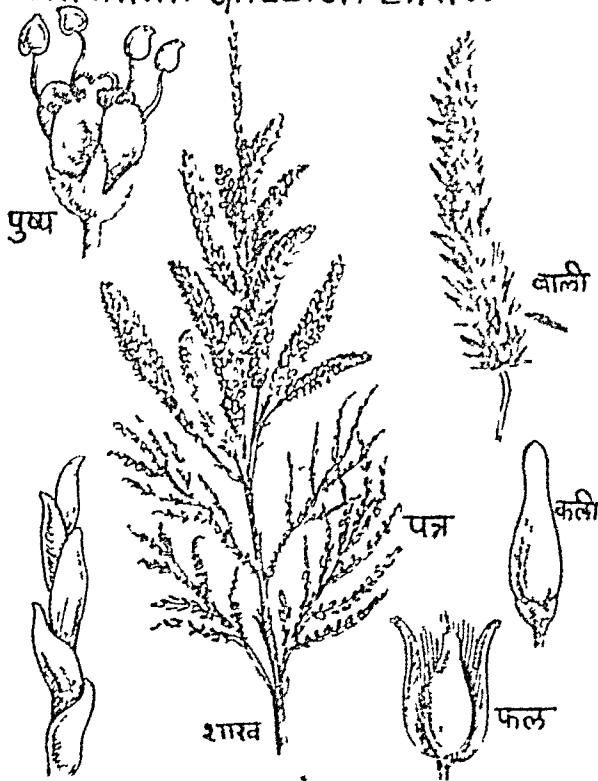
नोट न १—इस वृक्ष की शाखाओं पर एक प्रकार की कीडे के दश से या कोरने से चारो ओर हरिताभपीत या कपिश वर्ण की, बेडौल कुछ गोल आकृति की मटर से से लेकर रीठे के बराबर या माजूफल जैसी, भीतर से पोली ग्रन्थिया बन जाती है। ये ही इसके फल कहे जाते हैं। बडी झाऊ (जिसका प्रस्तुत प्रसग है) की इन ग्रन्थियों को बडी माई, गुजराती मे—पढवास तथा अग्रेजी मे टेमेरिक्सगाल्स (T. n [illegible] gal) कहते हैं।

न २—इसकी शाखाओं से यवास शर्करा जैसी एक प्रकार की शर्करा भी निकलती है जिसे झावुक शर्करा, गजगबीन ([illegible] Manna Arundinacea [illegible]) [illegible] है। यह देश में [illegible] [illegible] जाती है। बड़े के बाजार में [illegible], गजगबीन [illegible] पीले रग का मिलता है। यह शर्करा भारतीय झाऊ के वृक्षों से नहीं होती। पशिया [illegible] आदि देशों के वृक्षों में (जहां इस वृक्ष की अधिक उपज है), [illegible] विशेषतः पाई जाती है।

न० ३—श्वेत और लाल भेद से या छोटी और बडी के भेद से झाऊ की दो जातिया है। इन दोनो के गुण धर्म में [illegible] कुछ साम्य है।

श्वेत या छोटी झाऊ (जिसका प्रस्तुत प्रसग है) के वृक्ष छोटे, पुष्प श्वेत तथा [illegible] की भीतरी छाल भी कुछ श्वेताभ लाल होती है किन्तु इसके [illegible] [illegible] फल या माई आकार में बडी होती है।

लाल झाऊ (फराश) के [illegible] [illegible] पुष्प व भीतरी छाल लाल, किन्तु माई अपेक्षाकृत छोटी होती है। इसका वर्णन आगे के झाऊ लाल के प्रकरण में देखिये। वनझाऊ का वर्णन सरो (सरू) मे देखें।

न० ४—आयुर्वेद मे झाऊ विषयक कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं प्राप्त हुआ।

न० ५—प्रस्तुत प्रसग की झाऊ के वृक्ष भारत मे नदियों के या समुद्र तटवर्ती प्रदेशो विशेषत उत्तर प्रदेश के गगा जमुना के किनारे के समवर्ती स्थानों मे पजाब सिंध, उत्तर गुजरात बगाल, बिहार, मद्रास तथा अफगानिस्तान पर्शिया, यूरोप, अफ्रीका आदि देशों में प्रचुरता से होते है।

नाम—

स —झावुक, बहुग्रन्थिया, अफला इ०। हि०—झाऊ झउवा, झाव, जेश्रोग, पिलची इ०। म०—झाऊ। गु०—झाऊ, झाव, प्रांस। ब —झाव, बन झाऊ। अ —टेमेरिस्क (Tamarisk)। ले०—टेमरिक्सगेलिका टेम ट्रापी(T Tropi) टेम इडिका (T- Indica)।

रासायनिक सघटन—

इसकी माई मे टेनिक एसिड प्रचुर प्रमाण मे होता है। समुद्र किनारे के वृक्षो की माई मे लवण भी रहता है। वृक्ष मे प्राप्त होने वाली झावुक शर्करा मे इक्षुशर्करा गुलकोज, द्राक्षशर्करा, तथा श्वेतसार निर्यास (Dextrin) भी पाया जाता है।

प्रयोज्यांग—

पत्र, माई शर्करा, और मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसका पत्राङ्ग-लघु, रूक्ष, कषाय, कटु-विपाक, शीत-वीर्य, मृदुरेचक, कफनिःसारक, कफ-पित्त-नाशक, स्तम्भक, ग्राही, रक्तस्तम्भन, रक्तशोधक, शोथहर, वेदनास्थापन, प्लीहा-सकोचकारक है।

पत्र—

(१) प्लीहावृद्धि तथा शोथ मे—पत्र का क्वाथ देते तथा पत्र का लेप करते हैं। तथा रोगी को झाऊ की लकड़ी के बने पात्र में रखा हुआ जल पिलाते हैं। पत्र-चूर्ण ३॥ माशा समभाग मिश्री मिला प्लीहाविकार मे देते है।

(२) प्रदर तथा गुदभ्रंश के रोगियो को पत्र-क्वाथ मे अवगाहन कराते हैं।

(३) व्रण, अर्श, शीताद (Bleeding or Spongy gums) तथा दतपूय (पायोरिया) व प्रतिश्याय मे—पत्र-क्वाथ से व्रणो का प्रक्षालन करते तथा रक्तस्राव युक्त व्रणो पर शुष्क पत्र-चूर्ण को बुरकते हैं। व्रण तथा अर्शाकुरो मे पत्र की धूनी या पत्रो को उबालकर देते हैं। यह पत्रो की धूनी या बफारा फूटे हुए चेचक के फाले, क्षत, पूय-युक्त व्रणो को शीघ्र सुखा देता है, मस्सो की वेदना दूर होती है। शीताद या दतपूय मे पत्र क्वाथ से कुल्ले कराते हैं। प्रतिश्याय मे पत्तो का बफारा देते है।

(४) अनैच्छिक मूत्रस्राव पर—इसकी पत्ती १ तोला को जल मे पीस छान कर पिलाते रहने से तीसरे दिन मे लाभ होने लगता तथा २१ दिन मे पेशाब स्वाभाविक तौर पर होने लगता है।

—श्री राजकिशोर सिंह वैद्यशास्त्री
(जौनपुर)

माई—

बडी माई (प्रस्तुत प्रसग की) तथा छोटी माई (लाल झाऊ की) दोनो तिक्त, शीतवीर्य, सग्राही, दोष-विलयन, रक्तस्तभक, लेखन, प्रमाथी, छेदन, दीपन, प्लीहा व यकृत को बलदायक हे।

(५) शुक्र-दौर्बल्य, वीर्यस्राव पर—इसका चूर्ण,

झाऊलाल (फरास)
TAMARIX APHYLLA, KARST.
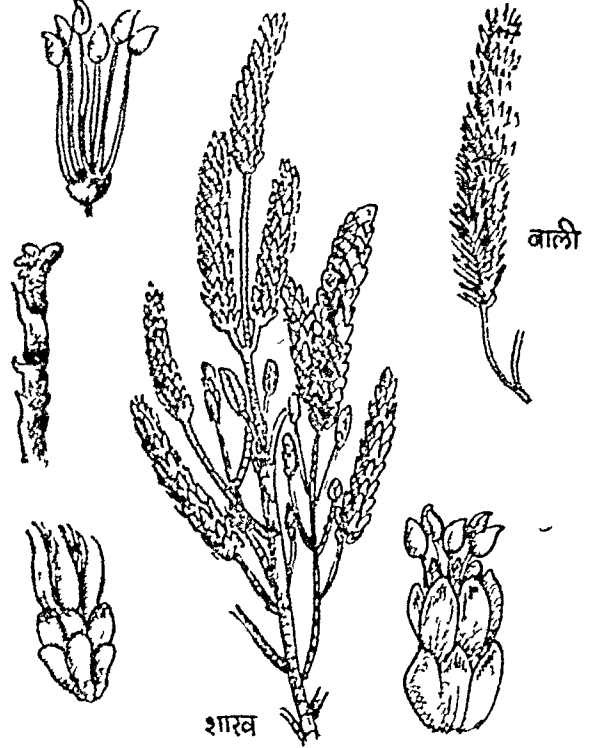
क्वाथ या फाट अपने कटुपौष्टिक एव ग्राही प्रभाव से उत्तम कार्य करता है। रक्तपित्त मे भी यह लाभ-कारी हे।

(६) अतिसार—पित्तातिसार मे इसके चूर्ण को दिन मे ३ बार पानी के साथ देते है। इससे जीर्णातिसार प्रवाहिका और सग्रहणी मे भी लाभ होता है।

(७) दत-विकार पर—चूर्ण का मजन करते रहने से दतपीडा, मसूढो की शिथिलता तथा गल-शुडी वृद्धि-(कौवे-घाटी की सूजन Vuvlitis) मे भी यथेष्ट लाभ होता हे।

(८) योनिशैथिल्य पर—इसके चूर्ण की पोटली योनिमार्ग मे धारण कराते हैं। पोटली छोटी सी जामुन के आकार की बना, उसमे एक लम्बा डोरा बाधते हैं। है। डोरे से उसे आसानी से बाहर निकाल कर, पुन. दूसरी पोटली धारण कराते हैं। ऐसा करने से गर्भाशय मे भी दृढता प्राप्त होती तथा योनिस्राव या श्वेत व
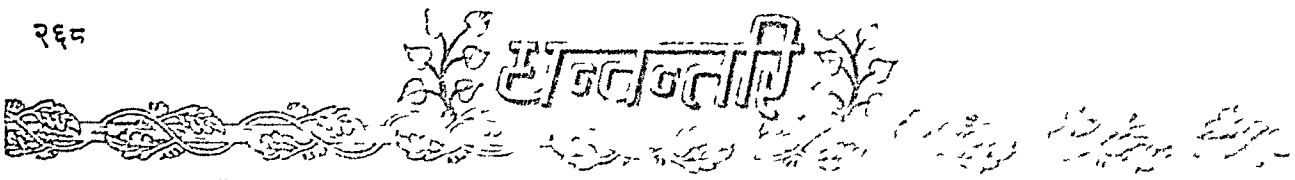
रक्त प्रदर मे भी विशेष लाभ होता है।

(९) खुजली, पामा, छाजन तथा सिर के जुंआ-नाशार्थ—इसके चूर्ण के साथ कबीला को तैल मे मिलाकर लगाते हैं। जू के नाशार्थ—झाऊ की छाल के क्वाथ से सिर को धोकर माई-चूर्ण लगाते हैं।

किसी चोट के लगने से रक्तस्राव हो, तो-इसके चूर्ण को बुरकने से शीघ्र स्राव बन्द हो जाता है।

(१०) शोथ-शूल युक्त अर्श पर—मरहम—माई-चूर्ण १ या २ ड्राम, अफीम आधा ड्राम इन दोनो को १ औंस वेसलीन या किसी भी दाह-शामक तिल-तैल आदि मे मिला, मरहम बना लगाते हैं। इससे गुद-चीर, गुदभ्रंश मे भी लाभ होता है।

(११) प्लीहावृद्धि पर—माई १८ माशे, श्वेत-मिर्च, संबुल (संखिया), तगर और उशक-९-९ माशा लेकर प्रथम उशक को जंगली प्याज के सिरके मे हलकर, शेष द्रव्यो का चूर्ण इसी सिरके मे मिलाकर १ टिकिया बना लें। मात्रा ४॥ माशा तक सिकंजबीन के साथ देवे। प्लीहा का कड़ापन दूर होता है। इसे कुर्स कजमाजज कहते हैं— (यु चि सा)

मूल और छाल--

(१२) कुष्ठ तथा शोथ पर—मूल का क्वाथ देते हैं। कुष्ठ-रोग मे यह क्वाथ जैतून-तैल के साथ बहुत दिनो तक सेवन कराते हैं।

(१३) पलित पर—इसकी ताजी जड को जौकुट कर, समभाग तिल-तैल तथा दोगुना जल मिला, मदाग्नि पर पका, तैल सिद्ध कर सिर पर श्वेत बाल काले होने के लिये लगाते हैं।

(१४) कुच-शैथिल्य पर—इसकी छाल के साथ अनार की छाल मिला, महीन पीसकर दूध मे मिला दिन मे दो बार स्तनो पर लेप करते हैं।

(१५) केशो के झडने पर तथा केश-वृद्धि के लिये—मूल की छाल और आमला दोनो को भागरा के रस मे पीस, पानी मिला कर सिर को धोते रहने से बालो का गिरना दूर हो केशवृद्धि होती तथा काले बाल पैदा होते हैं।

(१६) श्वेत प्रदर और गुदभ्रंश रोगी को—इसके मूल और पत्र के क्वाथ मे बिठाते रहने से लाभ होता है।

(१७) अतिसार और प्रवाहिका पर—छाल का फांट या क्वाथ पिलाते हैं।

पंचाङ्ग—

इसके पंचाङ्ग का क्वाथ ग्राही एवं शीतवीर्य है। पंचाग की भस्म मूत्रल है।

(१८) शुक्र नाश तथा गले की शिथिलता पर—इसके पंचाग का घनक्वाथ शहद के साथ या वैसे ही थोड़ा थोड़ा चटाते हैं।

(१९) दूषित व्रण तथा उपदंश जन्य ग्रंथियो पर—इसके घन क्वाथ का लेप करते हैं।

झाऊ-शकरा (गजगबीन)—सम स्निग्ध-रूक्ष, आनुलोमिक, कफघ्न, लेखन, रेचन, प्रतिश्यायहर, स्वरशोधक श्वास-कासहर तथा मस्तिष्क-संशोधक है।

इसके सेवन से दस्त पतला होकर आसानी से निकल जाता है। आंत मे कोई तकलीफ नही होती। बच्चो की कब्ज़ पर यह विशेष दिया जाता है।

नोट—मात्रा—

क्वाथ—५-१० तो०। स्वरस—१-२ तो०।

चूर्ण—१ से ४ मा०। माई-चूर्ण—१ से ४ मा०।

झाऊ-शकरा—३ मा० से १ या ६ तो० तक।

माई—अधिक मात्रा मे—आमाशय के लिये हानिकर है। हानि-निवारणार्थ शहद देते हैं।

झाऊ लाल

(*TAMARIX DIOCA*)

यह उक्त झाऊ की ही जाति का एक बागी भेद है। इसके वृक्ष उक्त झाऊ से बडे, किंतु निम्न नोट न० १ मे कहे गये महाझाऊ या फरास से कुछ छोटे होते हैं। इसकी छाल भीतर से लाल रंग की, पत्र—लाल या बैंगनी वर्ण के, एकलिंग, विशिष्ट नलिकाकार, वन्द मंजरी मे होते हैं।

इसकी माई (कीटगृह, ग्रन्थियां) उक्त झाऊ की माई की अपेक्षा छोटी, लगभग चने के बराबर, गोल, गठीली तथा पीताभ भूरे रंग की होती है।

झाऊ लाल
TAMARIX DIOICA ROXB.
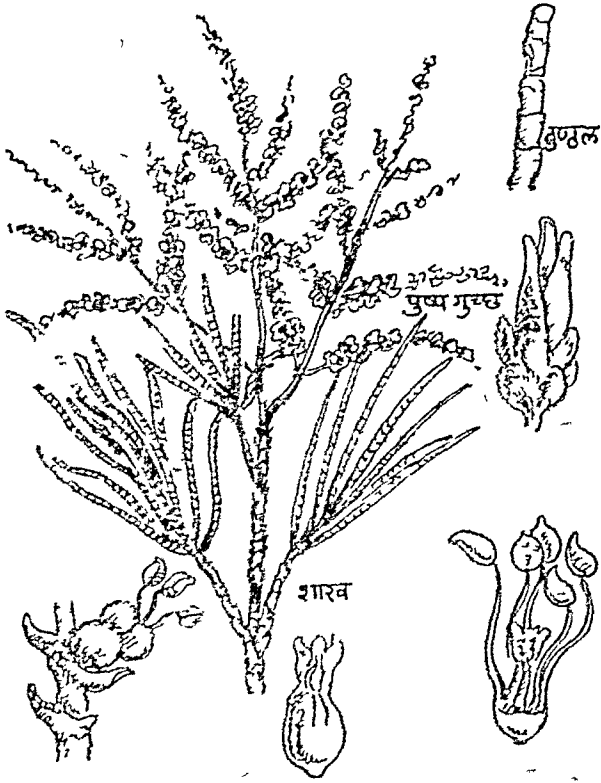
नोट न० १—इस लाल झाऊ का ही एक भेद-विशेष—महाझाऊ होता है, जिसके वृक्ष पाईन या देवदार सदृश खूब ऊंचे लगभग ६० फीट तक होते हैं।

पत्र और छाल—उक्त लाल झाऊ के पत्र व छाल जैसे, पुष्प—भी जैसे ही लाल वर्ण के, किन्तु उभयलिंगी व अपरिमित विच्छिन्न मंजरियों में लगते हैं।

इसे सं०—महा झावुक, हि०—फरास, लाल झाऊ, ले०—टेमरिक्स एफिला (T Aphylla), टेम आर्टिकुलेटा (T. Articulata)।

इसकी माई भी उक्त लाल झाऊ के माई जैसे ही होती है। यह भारत में नदियों के किनारे तथा पंजाब व सिन्ध में बहुत होता है।

नाम—

सं०—रक्त झावुक। हि०—लाल झाऊ, फासा, थार, थारी। गु०—लाल झाव। बं०—रक्त झाऊ। ले०—टेमरिक्स डायोका (T Dioca) टेम० ओरिएन्टेलिस (T Orientalis)।

यह हिमालय में २५०० फीट की ऊंचाई तक, तथा पंजाब, सिन्ध, उत्तर-प्रदेश, बंगाल, सुन्दरवन, गुजरात, आसाम, अफगानिस्तान और ब्रह्मदेश के शुष्क प्रदेशों में बहुत होता है।

इसका रासायनिक संघटन उक्त झाऊ के जैसा ही है।

इसके गुणधर्म व प्रयोग सब झाऊ के समान ही है।

झाड की हल्दी—दे०—दारु हल्दी में।

झामरबेल (Ipomoea Tridentata)

त्रिवृत कुल (Convolvulaceae) की यह लता बहुत छोटी व पतली, पत्र—बहुत छोटे, पुष्प—पीले रंग के; फल—गोल, चिकने, चमकीले, ४ बीज वाले होते है।

यह वर्षाकाल में, पुरानी दीवालों और पहाडों पर पैदा होती है। यह प्रसारिणी की ही एक छोटी जाति विशेष है।

नाम—

झामर वेल, टोपरा वेल यह इसके कच्छी भाषा के नाम हैं। गुजराती मे—भीत गरियो। ले०—आइपोमिया ट्रायडेंटाटा।

गुण धर्म व प्रयोग—

ग्राही, पौष्टिक, मृदुसारक, रक्त-शोधक है। इसमें ग्राही और सारक दोनो परस्पर विरोधी गुण एक साथ पाये जाते हैं। रक्तातिसार तथा विबन्ध या कब्जी दोनो के निवारणार्थ इसका उपयोग किया जाता है।

सन्निवात, अर्श तथा मूत्र-सम्बन्धी विकारों पर भी इसका उपयोग होता है।

रक्तातिसार पर इसका ताजा रस या पंचांग का चूर्ण ३ मा० की मात्रा में देते है।

चर्म-रोगों पर इसके कल्क से सिद्ध [illegible]

लगाते हैं। संधिवात पर भी यह तैल मालिश करते है । अर्श तथा मूत्र सम्बन्धी विकारो पर इस का चूर्ण जल के साथ देते हैं।

झार मरिच–दे०–काला दाना। झिझोरा (झिझेरी)–दे०–कचनार भेद। झिंटी (लाल)–दे०–कटसरैया मे (लाल कटसरैया)। झिंटी नील–दे०–कटसरैया मे (नीली कटसरैया) झिल्ल (झिल्ली)–दे०–चीत मे। झींपटा–दे० –चिरपोटी।

झुनझुनिया (Crotalaria Verrucosa)

गुडूच्यादि वर्ग एव शिम्बी-कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इसके वर्षायु सरल या वक्र क्षुप २-४ फुट तक ऊचे, पत्र—कोमल,पतले, अण्डाकार, अग्रभाग मे कुछ मोटे, लगभग ४–६ इञ्च लम्बे, पुष्प—लम्बे पुष्प-दण्ड मे पीत, श्वेत या हलके नील वर्ण के १२ से २० तक, पुष्प-बनसन्निवद्ध, फली—सन की फली जैसी १–१½ इञ्च लम्बी, रोमश, १०-१२ काले बीजयुक्त होती है। पुष्प व फली शीतकाल मे लगती है।

नोट (न० १)—शुष्क फली को हिलाने से झुन-झुन शब्द होने से इसे झुनझुनियां हिन्दी मे, तथा इसके क्षुप सन (पटसन) के क्षुप जैसे होने से सस्कृत मे-शणसमाकृति कहते है।

(न० २)—इस वनौषधि के छोटे-वडे भेद से कई प्रकार हैं। जिनके नाम लेटिन में—C Sericea, C Prostrata C Retusa, C Striata, C Angulosa आदि हैं। इन सबके स्वरूप और गुणधर्म प्रायः एक समान हैं।

(न० ३)—चरक के वमनोपग, मूलिनी और सुश्रुत के ऊर्ध्वभागहर गणों मे इसकी गणना है।

इसके क्षुप भारत के जगलो या उष्ण प्रदेशो मे विशेषत बगाल और दक्षिण भारत मे अधिक पाये जाते हैं।

ध्यान रहे यह सन (पटसन) का ही एक जगली भेद है। सन का वर्णन यथास्थान आगे देखें।

नाम—

स०—शणपुष्पी (सन के पुष्प जैसे पुष्प होने से), घंटारवा, शण समाकृति, इ०। हि०—झुनझुनिया, झनझनिया, जगली सन, सुनक इ०। म०—खुलखुला, घागरी, खिरस। गु०-घुघरो। ब०—बनशन। लै०-क्रोटलेरिया वेरुकोसा।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, मूल, बीज (फली), पुष्प।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण वीर्य तथा वामक, कफपित्त शामक, कफ-सशोधक, कुष्ठघ्न है। अपस्मार, भूतबाधा, कण्ठरोग, हिक्का, श्वास आदि मे उपयोगी है।

पत्र—ग्राही, सकोचक, उष्ण, लालाप्रसेक-शमन, पित्त-शामक, रक्तशोधक व कुष्ठघ्न है।

१ कुष्ठ, गीली खुजली, कण्डू, त्वग्दाह, पैत्तिक-शोथ, झाई, पीली फुन्सियो पर—पत्तियो को पीस कर

लेप, पुल्टिस आदि लगाते है, तथा पत्र-रस का सेवन भी कराते हैं।

२ शरीर मे बन्दूक के छर्रे आदि वाह्य शल्य के घुस जाने पर—पत्तो को पीस कर लेप करते हैं।

३ मुख व कण्ठ के रोगो पर—पत्र-क्वाथ से कुल्ले कराते हैं।

४ नाक मे पीनस या व्रण हो, तो पत्र-रस का नस्य कराते हैं।

फल और बीज—

५ अपस्मार पर बीज सहित फली को जौकुट कर क्वाथ बनाकर पिलाते, तथा इसी चूर्ण की धूनी देते हैं।

६ कण्ठरोध पर—फली के शुष्क चूर्ण को चिलम मे भरकर धूम्रपान कराते हैं। शीघ्र ही कफजन्य कण्ठावरोध दूर होता है। यदि रोगी धूम्रपान मे असमर्थ हो, तो अन्य व्यक्ति इसके धूम्र को अपने मुख मे भरकर रोगी के मुख व नाक मे धूम्र को छोडने से भी लाभ होता है।

७ भूतबाधा पर—फली की धूनी देते हैं।

(व० गुणादर्श)

८ व्रण पाचनार्थ—बीजो को गोमूत्र मे पीसकर लेप करने से फोडे शीघ्र पक कर फूट जाते हैं।

मूल—वामक है। वमनार्थ इसका प्रयोग करते हैं। कुष्ठ पर भी यह लाभकारी है।

पुष्प—हृद्य, तथा रक्तस्राव-रोधक है। हृद्रोग तथा रक्तपित्त मे यह उपयोगी है।

नोट—मात्रा-मूल तथा पत्र-चूर्ण-१ से ३ मा० तक। पत्र स्वरस—आधे से १ तो० तक।

टंकारी (*PHYSALIS PERUVIANA*)

गुडूच्यादिवर्ग एव काकमाची या कटकारी-कुल (Solanaceae) के इसके वर्षायु क्षुप ६-१८ इच ऊ चे कोमल रोमयुक्त, पत्र-अण्डाकार, दन्तुर, २ इच लम्बे, पुष्प-पीत या गुलाबी या कई रग के, कुछ घटाकृति, पुष्प-वृन्त-कुछ लम्बा, अवनत पीतवर्ण का, फल—१॥ इच लम्बे, आधा इंच चौडे, लाल रग के छोटे छोटे-गोल, एव झूमको मे आते है। फल-कुछ खटमीठे, रुचिकर, अनेक बीजयुक्त होते हैं। फूल व फल शीतकाल मे आते है।

वर्षा के प्रारभ काल मे इसके पौधे भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत बगाल, कोकण आदि प्रान्तो मे जगल, पहाडी भूमि तथा मैदानो मे भी पैदा होते है। कही कही ये बोये भी जाते है।

नोट—यह बूटी काकनज की एक उत्तम प्रतिनिधि होने से इसका कुछ सक्षिप्त उल्लेख काकनज के प्रकरण मे (भाग २ मे) भी किया गया है।

इस बूटी का उल्लेख भावप्रकाश निघण्टु को छोड, अन्य निघण्टु ग्रन्थो मे नही पाया जाता। छोटी अरनी को भी कही कही भाषा मे टकारी टेकारी (जो सस्कृत के तर्कारी शब्द का अपभ्रश मालूम देता है) कहते है, उससे यह भिन्न है।

नाम—

स०-टंकारी, लक्ष्मीप्रिया।

टकारी (टिपारी)
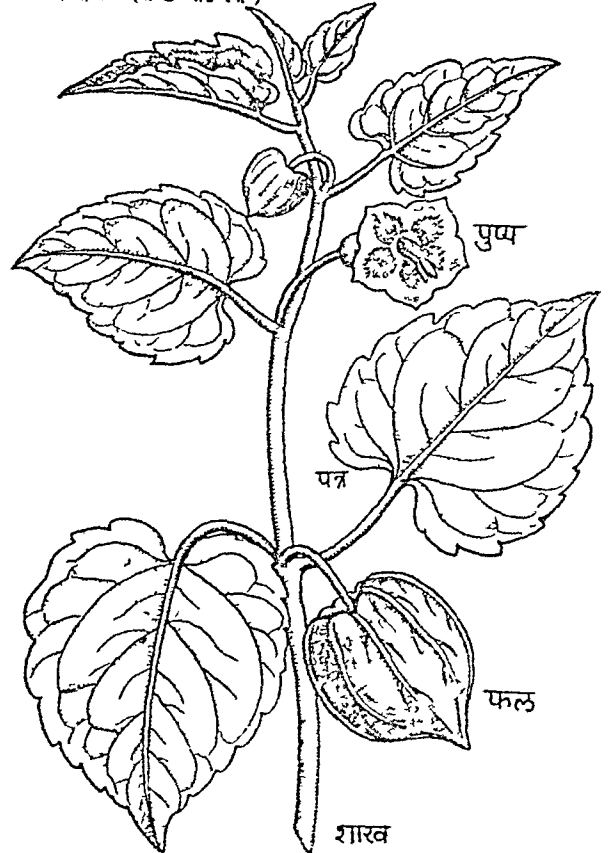
PHYSALIS PERUVIANA LINN

हिं०—टकारी, टिपारी, तुलातिपति, देशी काकनज।
म०—चिरबोट, फोपटी, तानमोंगी।
गु०—पीपरी, पपोटी। ब०—टेपाटी नन टेपारी।
अं०—केप गुजबेरी (Cape goose berry)।
ले.—फिसेलिस पेरूविएना, फि.मिनिमा (P. Minima)

प्रयोज्याग—फल, पचाङ्ग, पत्र, मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, वात कफ नाशक, दीपक, पौष्टिक, शोथ, उदर रोग आदि पर उपयोगी है।

फल—वल्य, मूत्रल, विरेचक है। सुजाक मे-फलो का सेवन कराते हैं। मलावष्टम्भ मे—फलो का पाक बनाकर खिलाते है।

पंचाङ्ग—

स्तनशैथिल्य पर—इसके पचाग को चावल के धोवन मे पीसकर लेप करते है।

पीठ पर हुए विसर्प पर—पचाग का लेप करते है।

बालको के उदर विकार पर—पचाग के क्वाथ की वस्ति देते है।

प्लीहा वृद्धि पर—टंकारि आदि लेप—

इसके ताजे पचाग चूर्ण के साथ-कूठ मूल, हीग, हरड, पिप्पली, काला नमक, सैंधव नमक, जवाखार, का चूर्ण मिला एकत्र घृत मे घोटकर प्लीहा पर लेप व मालिश करते है।

पत्र—उदर कृमि एव आन्त्र विकार पर—पत्र रस का सेवन कराते है।

शोथ पर—पत्तो को पीसकर गरम कर पुल्टिस बनाकर बाधते हैं।

मूल—तमक श्वास पर—मूल के चूर्ण के साथ सुहागा फुलाया हुआ मिला दोनो को मरलकर शहद से चटाते हैं। श्वासावरोध कम होकर कफ सरलता से निकल जाता है।

नोट—मात्रा-३ से ६ मा० तक।

टगर पादुका (*LIMNANTHEMUM CRISTATUM*)

भूनिम्ब कुल (Gentianaceae) की इस जलोत्पन्न लता की गाठ से मूल निकलते है। पत्र—अण्डाकार १ से ३ इच व्यास के, कुमुद जैसे, किंतु आकार मे कुछ छोटे, पत्र-वृन्त १॥ इच लम्बा, पत्र का ऊपरी पृष्ठ भाग चिकना निम्न भाग स्पष्ट शिराओ से युक्त, पुष्प—श्वेत वर्ण के, फल—गोलाकार, १ या २ गोल-गोल ½ इच व्यास के बीजो से युक्त होते है। फूल और फल वर्षा काल मे आते हैं।

नाम -

स-कालानुसारिवा, हिं०—टगरपादुका। व०—चादमाला। ले०-लिमनमथेमम क्रिस्टेटम।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह ज्वर तथा पाडु या कामला रोग मे उपयोगी है। अनेक वैद्यकीय एव हकीमी प्रयोगो मे यह व्यवहृत होती है। कहा जाता है कि दूध देने वाली गाय को इसे खिलाने से दूध की खब वृद्धि होती है।

नोट—कोई कोई इसे ही 'तगर' मानते हैं। किन्तु तगर इससे भिन्न है। इसी बूटी की एक जाति जिसे हिन्दी या पंजाबी में 'कुन' तथा लेटिन मे—Limnanthemum Nymphaeoides कहते है उसके ताजे पत्ते नियतकालिक शिर शूल में उपयोगी हैं।

टमाटर (*LYCOPERSICUM ESCULENTUM*)

कटकारी-कुल (Solanaceae) के इस सर्वप्रसिद्ध-वर्षायु क्षुप के पौधे खड़े बैंगन के क्षुप जैसे अनेक शाखा-युक्त २-५ फुट तक ऊंचे, पत्र—अन्तर पर, बैंगन-पत्र जैसे किन्तु कुछ छोटे होते हैं। पुष्पबैंगन के पुष्प जैसे, फल-छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े कहीं कहीं एक पौंड वजन के गोल, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर सुन्दर चमकदार लाल रंग के कोई पीले रंग के होते है। कच्ची दशा मे खट्टे, कसैले तथा पकने पर मधुराम्ल स्वाद के होते है।

टमाटर

Solanum lycopersicum Linn

नोट-(अ)-यह वास्तव में अमेरिका केमेक्सिको प्रान्त का निवासी है। 'टोमाटो' यह नाम इसका उसी प्रान्त का है। वहा से प्रथम इसका प्रचार युरोप में हुआ, फिर यह भारत में आया। यह एक पोषक आहार (फल और तरकारी दोनों रूपों मे) होने से वर्तमान में प्राय: सर्वत्र (सब देशों में) बोया जाता है।

(आ) ई० स० १८२५ तक इसकी खेती भारत में विशेष नहीं होती थी। यह दीखने में मांस जैसा तथा इसका गूदा भी वैसा ही लुचलुचा होने से, भारत में प्रथम यह एक निषिद्ध, हेय, घृणास्पद पदार्थ माना जाता था। अब भी कुछ लोग इसे ऐसा ही मानते हैं। शेष सब लोग सराहना करते हुए, इसे अकेला या साग सब्जी के साथ पकाकर या सलाद, चटनी आदि के रूप में सेवन करते है। रोगियों को इसका यूष (सूप) बनाकर दिया जाता हैं।

(इ) इसके कई भेद एवं जातिया है। जिनमें छोटे २ बेडौल, भद्दे से फल या टमाटर लगते हैं, उनकी अपेक्षा सुन्दर सुडौल आकार के टमाटर वाली जातिया श्रेष्ठ होती है। इनमें बाल्टिमोर (Baltimore) बोनिबेस्ट (Bonny Best) पीच ब्लो (Peach Blow), मेग्मम बोनम (Magmum Bonum) आदि नाम की जातियां बंबई प्रान्त में अधिक बोई जाती हैं। एक पौंड्राजा (Pondraja) नामक टमाटर होता है, जो वजन मे एक पौंड तक होता है, तथा पकते समय प्राय फट जाया करता है।

(ई) जिस खेत की भूमि में सुहागे का अंश रहता है, उसमे टमाटर की फसल अच्छी होती है। यदि किसी खेत मे इसकी फसल छितरी हुई होवे, फलने पर फल टेढे मेढे लगें, तथा अच्छी ललाई लेकर फल न पकें, या पकने पर फट जावें, तब समझना चाहिए कि इस भूमि में सुहागातत्व (बेरोन) की कमी है। टमाटर के पौधों पर सुहागे का अंश पहुंचना आवश्यक है। इसके लिये २५ सेर पानी में १ छटांक सुहागा पीस कर घोल दें। इस हिसाब से एक एकड भूमि मे लगभग ८ मन पानी और उसमें १२ छटाक से १ सेर तक सुहागा घोलना पडेगा। एक बार टमाटर बोने से पहले भूमि में छिडकाव कर दें। फिर १ महीने बाद पौधों पर छिड़काव करें। यदि चाहे तो एक मास बाद पुन: छिडकाव करे। फसल अच्छी होगी और वे टमाटर रुचिकर, पाचक एवं शुद्ध रक्त वर्धक होंगे।
(सुधानिधि)

नाम—

सं०—रक्तवृन्ताक, विदेशीवृन्ताक। हिं०—टमाटर विलायती बेंगन। म०-बेलवांगी, भेद्रा, टमाटा। गु०—टमाटर। बं०—कुलीबेंगुन, बेलायतीबेगुन। अं०-टोमाटो

(Tomato) लव एपल(Love apple) ले०-लायकोपरसीकम एस्कुलेटम, सोलेनम लायको परसीकम [Solanum Lycopersicum]।

रासायनिक संघटन—

ताजे उत्तम पके टमाटर में प्रतिशत पानी ९२.८, कार्वोहाइड्रेट ४.५, प्रोटीन १.६, खनिजपदार्थ ०.७, वसा ४.५, कैलसियम ०.०२, फास्फोरस ०.०८, लोहा २.४ मि. ग्रा., विटामिन ए ३२०% मि ग्राम, विटमिन बी ४० प्रतिशत मि. ग्रा., वि. सी. ३२.२० प्रतिशत मि. ग्रा., साइट्रिक एसिड प्रचुर मात्रा में, आग्जेलिक तथा मैलिक एसिड नाम मात्र पाये जाते हैं। कच्चे टमाटर में विटा बी २३ मि. ग्रा., विटा सी ३१.३ मि. ग्रा.। टमाटर के छिलके व छिलके के पास वाले गूदे में 'ए' विटा. बहुत अधिक होता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

अम्ल, मधुर, शीतवीर्य, विपाक में प्रायः मधुर, रुचिकर, दीपन, पाचक, सारक, रक्तशोधक, मलनाशक अग्निमांद्य, मधुमेह, अतिसार, मेदोवृद्धि, उदर रोग, रक्तपित्त, आन्त्रपुच्छदाह (अपेंडिसाइटिस), बेरीबेरी, गठिया, सूखारोग, हृद्दौर्बल्य, नक्ताध्य आदि में उपयोगी है।

(१) रक्तविकार, रक्तपित्त, रतौंधी, मधुमेह व बालकों की निर्बलता पर—अच्छे लाल टमाटर का मधुर रस (ध्यान रहे टमाटर सदैव बड़ी जाति का पका हुआ मधुर रस प्रधान चुन कर लेना चाहिये) प्रातः और रात्रि के समय, २ तो० तक, थोड़े से ताजे व गुनगुने पानी में मिलाकर पिलाते रहने से, तथा भोजन में नमक की मात्रा कम कर देने से त्वचा शुष्क होकर खुजली आना, लाल २ चट्टे हो जाना, फोड़ा, फुन्सी, आदि में लाभ होता है। खुजली में इसके १ तो० रस में, नारियल तैल २ तो. मिलाकर मालिश करें तथा सुखोष्ण जल से स्नान करें। मसूढ़े शिथिल होकर दाँतों से रक्तस्राव होता हो तथा अन्य रक्तपित्त के विकारों पर यह रस २॥ से ५ तोला तक दिन में ३ बार पिलाते हैं।

छोटे बालकों को यह रस थोड़ी मात्रा में (१ छोटा चम्मच) दिन में २–३ बार पिलाते रहने से उन्हें उक्त सर्दी आदि रक्त-विकार नहीं होने पाते उनके दांत बड़ी आसानी से निकलते। तथा वे निरोगी व बलवान होते हैं। उनका सूखा रोग दूर होता है। किन्तु उन्हें अधिक भी शक्कर नहीं खिलाना चाहिये। टमाटर का ताजा रस ही प्रयोग में लाना चाहिये।

मधुमेही को भी, इसके रस का तथा इसके शाक का नियमित सेवन करते रहने से रक्त की शुद्धि एवं वृद्धि होकर मूत्र में शर्करा की मात्रा कम होजाती है।

इसी प्रकार स्थौल्य (मोटापन) वाले को भी उक्त रसका सेवन प्रातः सायं करते रहने से लाभ होता है।

(२) ज्वर पर—इसका रस सेवन कराने से, तृष्णा शांत होती तथा ज्वर का तापांश भी कम होता है। वैसे ही ज्वर प्रकोपजन्य रक्तान्तर्गत हानिकारक पदार्थों की वृद्धि शीघ्र ही दूर होकर रोगी को शांति प्राप्त होती है।

मलेरिया ज्वर के बाद, पाचक रसों की कमी प्रायः होती है। तब टमाटर, मूली व अदरख काट कर नीबू-रस मिला रोटी के साथ खिलावें।

(३) यक्ष्मा में—इसका रस ८ तो० तक कांच के ग्लास में डालकर उसमें १। तो० कोडलिवर आयल मिलाकर, भोजनोपरान्त पिलाते रहने से कुछ सप्ताहों में स्वस्थता प्राप्त होती है। —श्री हरकृष्ण जी सहगल

(४) मुख के रोग—विशेषतः मुख में छाले तथा मसूढ़ों से रक्तस्राव होता हो, तो इसके रस को पानी में मिला कुल्ले कराते हैं।

मुख के ऊपर हुए काले दागों पर—टमाटर के चौड़े टुकड़े काटकर, उन दागों पर रख कर बांधते रहने से वे शीघ्र ही मिट जाते हैं।

जिव्हा के मैलेपन या सफेदी छा जाने पर—१ या २ टमाटर सेंधानमक के साथ सेवन कराते हैं।

नाभि-स्खलन (धरण का डिगना) —फल के दो टुकड़े कर, बीच का हिस्सा निकाल, रिक्त स्थान में भूना-सुहागा ६ रत्ती भर, आग पर गरम कर चूसने से हटी नाभि ठिकाने पर आ जाती है।

—पं० चिरंजीलाल जी शर्मा

(धन्वन्तरि से)

(६) सग्रहणी व अतिसार पर—फल को बीच से चीर कर उसमे कुटज-चूर्ण १ मा० भर आग पर तपा कर, ठडा कर खिलावें। लाभ होता है।

(७) हृदय की धड़कन बढ जाने पर—इसके दो फलो का रस पानी मे मिला, उसमे अर्जुन-छाल चूर्ण १ मा० डाल कर पिलावे।

(८) रक्तार्श पर—फल को चीर कर उसमे सेधा-नमक भर कर खिलाते है। आध पाव इसके रस मे भूना जीरा, सोंठ, काला नमक-चूर्ण ३—३ मा० मिला, प्रात साय सेवन करें। साथ मे मूली, गाजर, बथुए का खाना भी हितकर है।

(६) सिर के फोडो व फुसियो पर—इसके रसमे कपूर व नारियल का तैल मिला लगाते है।

सिर की रूखी भूसी पर—इसके रस मे चीनी मिला-कर सिर पर मलते है। —प०चिरजी लाल जी

(१०) अजीर्ण पर—फल को कुछ सेंक कर, सेंधा नमक व काली मिर्च लगा कर खिलावे। अथवा-

एक फल का रस, २।तो० गरम जल मे मिला कर उसमे ५ रत्ती खाने का सोडा मिलाकर पिलावे।

(११) हृल्लास पर—फल का रस १ भाग, चीनी का शर्बत ४ भाग एकत्र मिला, उसमे थोडा लौग व काली-मिर्च का चूर्ण डाल कर सेवन करने से शीघ्र लाभ होता व जी मिचलाना, उल्टी, तथा प्यास की शाति होती है।

(१२) कफवृद्धि, मलबद्धता तथा गठियाव त पर—भोजन से पूर्व टमाटर का सेवन सेंधानमक और अदरख के साथ कराते है। आन्त्रपुच्छदाह पर भी इसका सेवन इसी प्रकार कराया जाता है। ग्रीष्मऋतु मे इसके शर्बत का सेवन अति हितकारी होता है।

नोट—(अ) मात्रा—कम से कम आधा से २ टाम तथा अधिक से अधिक ७ तोले तक। ३ मास के शिशु को १ २ चम्मच इसका शुष्क किया हुआ रस (यह शुष्क रस १४ से २० मास तक विकृत नहीं होता) मात्रा-१ग्राम से १२ ग्रेन तक।

(आ) खुले हुए मैदानी खेतो मे, सूर्य की काफी रोशनी में पके हुए टमाटरो में, विटामिनों की मात्रा विशेष वृद्धिगत हो जाती है। अत ये अधिक गुणकारी होते हैं।

इसमे पाये जाने वाले विटामिन्स मे यह विशेषता है, कि अन्य पदार्थों के विटामिन्स के समान, ये अग्नि के ताप से (८० प्रतिशत की उष्णता पर भी) नष्ट नहीं होते, तथा बहुत दिनों तक विकृत भी नही होते। जो विटामिन्स ताजे टमाटर मे होते हैं वे ही सूखे हुए या डिब्बों मे बन्द या अचार, मुरब्बे आदि के रूप में सुरक्षित रखे हुए टमाटरों मे भी पाये जाते हैं।

(इ) पाडु रोग में भी इसका सेवन लाभदायक है। कारण यह है कि इसमें लौह का प्रमाण दुग्ध से दूना तथा अण्डे की श्वेतता से पचगुना अधिक होता है। जो काम मण्डूर व स्वर्ण माक्षिक यकृत में पहुँच कर करते हैं, उन्हे ही यह टमाटर का लोह सम्पन्न करता है। पांडु रोगी का इसके १० तोले रस में काला नमक ३ माशा मिला प्रात साय पिलाते हैं।

इसके खनिज सार रक्तशोधक है। रक्तनालियों मे एकत्रित यूरिया को दूर करते तथा रक्त की अम्लता से उत्पन्न विष से बचाते हैं। यही यूरिया का एकत्रित होना अमेरिकन वैज्ञानिकों के मतानुसार रोग-क्षमता को कम करता तथा शीघ्र वृद्धावस्था को भी करता है। इसी यूरिया के जमने से गठिया भी हो जाता है।

(ई) किन्तु ध्यान रहे, टमाटर मे सायट्रिक एसिड, मलिक एसिड तथा अन्य क्षार द्रव्य होने से, जिस व्यक्ति को यूरिक एसिड जन्य गठिया (सधिवात) हो उसके लिए यह हितप्रद नही है।

वात या वातपित्त प्रधान व्यक्तियों के लिए भी इसका सेवन हानिप्रद है। खुजली पैदा कर देता है। ऐसे व्यक्तियों को इसे वैसे भी नहीं खाना चाहिए तथा इसे बेसन के साथ मिलाकर तेल म छोंक कर तो कदापि नहीं खाना चाहिए।

टमाटर स्टार्च का विरोधी है। चावल या रोटी, आलू आदि स्टार्च प्रधान द्रव्यों के साथ इसका खाना, विरोधी-भोजन है। इस प्रकार इसे खाने से विशेषत जिनकी जठराग्नि तीव्र नहीं है, उन्हे अजीर्ण पैदा कर देता है। तथा यह अपनी अम्लता से आमाशय के अधोमुख को कुछ संकुचितकर देता है। जिससे उदरस्थ भोजन आमाशय में ही पड़ा रह जाता और खट्टा होकर पित्त की वृद्धि करता है।

यह भी ध्यान रहे—कि इसके प्रतिदिन अधिक मात्रा में सेवन से, धातु विकृत हो जाती व वीर्य पतला पड जाता है। अग्नि माद्य कर अर्शविकार को बढ़ाता है।

(उ) जहां तक हो सके तरकारी (शाक) के रूप में

इसे बहुत कम खाना चाहिए, क्योंकि इसके सत्वांश में न्यूनता आ जाती है। फल के रूप में या सलादि चटनी आदि के रूप में खाना लाभ दायक होता है। पेय के रूप में अर्थात टमाटरों को थोड़े घृत में छौंककर पानी डालकर रस निकाल, उसमें थोड़ा गुड़ या चीनी मिलाकर पीना भी लाभप्रद है।

विशिष्ट योग—

(१) टमाटरासव—

५ सेर उत्तम टमाटर लाकर, शुद्ध जल से धोकर, चीनी मिट्टी के पात्र में उन्हें खूब मसल कर, उसमें ४ गुना जल, २॥ सेर गुड़, तथा दाख व धाय के फूल ६४ ६४ तोला मिला दे। फिर प्रक्षेपार्थ सोंठ, मिर्च, पीपल, इलायची, दालचीनी, तेज-पात, मोथा, चित्रक, वाय-विडंग, श्वेतचन्दन, धनिया, लौंग, तगर, नागकेशर, जायफल, हल्दी, दोनो जीरा, राई, व काला जीरा प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला मिला, पात्र का मुख सन्धान कर लग-भग (७ से ११ दिन) सुरक्षित रक्खे। फिर वस्त्र से छानकर उसमें सेंधव, हींग व कालीमिरच का चूर्ण यथा रुचि मिला बोतलों में भर रक्खे।

इसे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में (१ या २ तोला तक) सेवन करने से नष्ट हुई अग्नि तीव्र हो उठती है, शुद्ध डकारें आती उत्साह वृद्धि होती, मलमूत्र का ठीक उत्सर्ग होता मुख-शुद्धि व स्मरण शुद्धि होती है, विटामिनसी की कमी से उत्पन्न रोगों—रक्तपित्त, दन्तरोग, पाण्डुता, अल्परक्तता तृषारोग, वमन, दुर्बलता आदि दूर होकर स्वास्थ्य लाभ होता है। —वैद्य मयाराम सुन्दर जी जैतपुर (सुधानिधि)

(आरोग्य-सिन्धु गुजराती मासिक से सुधानिधि में उद्धृत प्रयोग-प्रेषक के संस्कृत श्लोकों का उक्त अनुवाद मात्र हमने यहां कर दिया है—(कृ. प्र. त्रि.)

(२) टमाटर का रस-प्रयोग—टमाटर, गाजर व ककड़ी के महीन कतरे हुए टुकड़ों पर, थोड़े पानी में १०-१२ घण्टे भिगोकर बढ़िया फुलाई हुई किशमिश को फैलाकर ऊपर से २-४ नम्बर दही या [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] लेवे। कुछ हरी धनिया की पत्ती और [illegible] [illegible] हुई [illegible] [illegible] [illegible] दे, और अधिक स्वाद [illegible] तो भुने हुए जीरे का महीन चूर्ण २-३ चुटकी बुरक दे। इस सलाद (कचूमर) को खूब चबा-चबा कर खावें और थोड़ा मठा पी लेवे। भूख के अनु-सार २-४ बार इसी आहार पर रहे। अन्न न खायें। इससे शरीर का शोधन (छोटा सा कायाकल्प) हो जाता है। पेट साफ होता है। ७ दिन तक केवल इसे ही सेवन करने और गाय के दूध का जमाया हुआ दही का मठा पीने से पाचन सम्बन्धी रोग दूर होते, क्षुधावृद्धि होती एवं यकृत ठीक से काम करने लगता है।

—श्री इन्द्रप्रसाद गुप्त सेवक

(श्री वेंकटेश्वर समाचार से)

(३) टमाटर की चटनी—अच्छे पके लाल टमाटरों को टुकड़े कर उबाल लें, तथा रस निचोड़ लें। इस रस को मंद आंच पर पकावे, गाढ़ा हो जाने पर, १ सेर रस के लिये १ पाव सिरका, आधा सेर महीन कतरा हुआ अद्रक, ५ तो० शक्कर, १ पाव किशमिश, ½ सेर कतरा बादाम, ½ पाव लाल मिर्च, और २॥ तोला नमक (मिर्च और नमक को खूब महीन चूर्ण कर) मिला दें। और इसे १ मास तक धूप में रखें यह उत्तम चटनी तैयार हो जाती है, जो अधिक दिन तक रखने पर भी नहीं बिगड़ती।

चटनी नं० २—पके लाल टमाटर आध सेर लेकर टुकड़े कर उसमें काला नमक १ तोला सेंधा या सादा नमक २ तोला कालीमिर्च २ मा., लौंग १ मा और जीरा भुना २ तो चूर्ण कर मिलादें। यह चटनी रखी नहीं जा सकती, बनाने के बाद २-३ दिन में इसे समाप्त कर देना चाहिये।

(४) चूर्ण गोली टमाटर—इसके रस में पांचो नमक, त्रिकुट, जीरा, अजवायन, अजमोद, नौसादर १-१ तो धनिया, अमल बेत, सुहागे का फूला २-२ तो का चूर्ण और हींग भुनी ६ मा. मिला, खरल कर बेर जैसी गोलियां बना ले। यह पाचक, स्वादिष्ट, व क्षुधावर्धक है।

(५) टमाटर का रायता—वैसे तो दही और टमा-टर का रायता बहुत सुन्दर और स्वादिष्ट होता है। किन्तु और भी उत्तम रायता बनाना हो, तो अच्छा ताजा लाल पका हुआ टमाटर, पालक साक का पत्ता, अद-रक, पानगोभी, गाजर, चुकन्दर तथा प्याज (इसे नहीं भी लें तो कोई हर्ज नहीं) सब की महीन कतरन को

एकत्र मिला, ऊपर से भुना पीसा हुआ जीरा, नमक और नींबू का रस मिलादें। बड़ा ही स्वादिष्ट रायता होता है। प्रतिदिन प्रात. साय (खाली पेट) इसे ३ से ४ छटाक तक सेवन कर सकते हैं। यह एक उत्तम रसायन है। डा. एस पी रंजन।

टमाटर पेट सूप, टमाटर गरम मास आदि कई प्रकार के व्यंजन बनाये जाते हैं। विस्तार-भय से यहा सब नहीं लिये जा सकते।

टरमेरा—दे०—सरसों मे।

टांगतैल (Aleurites Fordii)

एरण्ड-कुल (Euphorbiaceae) के मध्यमाकार के १५ से ३० फीट तक ऊचे जगली अखरोट जैसे, इसके वृक्षो के पत्र-प्राय हृत्पिण्डाकृति के, पत्रदण्ड के दोनो ओर पर्याय क्रम से, शीत-काल मे झड जाने वाले, पुष्प-श्वेत वर्ण के, लाल पीले दागो से युक्त एक लिंग विशिष्ट, बहिर्व्यास २-३ इच, पुष्प-दल ५, पुकेसर ४ से २० तक, फल—कसा या सुराही के समान सूक्ष्माग्र ३-५ बीजो से युक्त, पकने पर फल तीन भागो मे विभक्त होकर फटता, तथा बीज गिर जाते हैं। अत फलो के फटने के पूर्व ही इनको सग्रह कर लिया जाता है। बीज—दीखने मे ब्राजील देश की बादाम जैसे होते तथा इनका आच्छादन बादाम जैसा ही मोटा व सख्त होता है। सितम्बर और अक्टूबर मास मे फल पकते है फूल—अप्रेल मास मे बहुत आते हैं।

ये वृक्ष पहाडी पथरीली भूमि मे पैदा होते है। जल-युक्त जमीन पर नही होते। बीज से या शाखा काट कर लगा देने से ये पैदा हो जाते है। ये बहुत शीघ्र बढते, तथा ३ से ६ वर्ष के भीतर ही फलते हैं।

चीन तथा जापान देश के ये वृक्ष, भारत के विशेषत पूर्वोत्तर भागो मे, उत्तर वर्मा के कई स्थानो मे तथा आसाम के डेराग नामक स्थान मे पाये जाते है। यहाँ के कई चाय के बगीचो मे इन्हे पैदा करने की चेष्टा की जा रही है। चीन के हेको बन्दर से इसके बीज एव तैल का निर्यात बहुत परिमाण मे होता है। इसके वृक्ष बगाल के शिवपुर बोटेनिक गार्डन मे भी लगाये गये है।

टाङ्ग-तैल

ALEURITES FORDII HEMSL.

नाम—
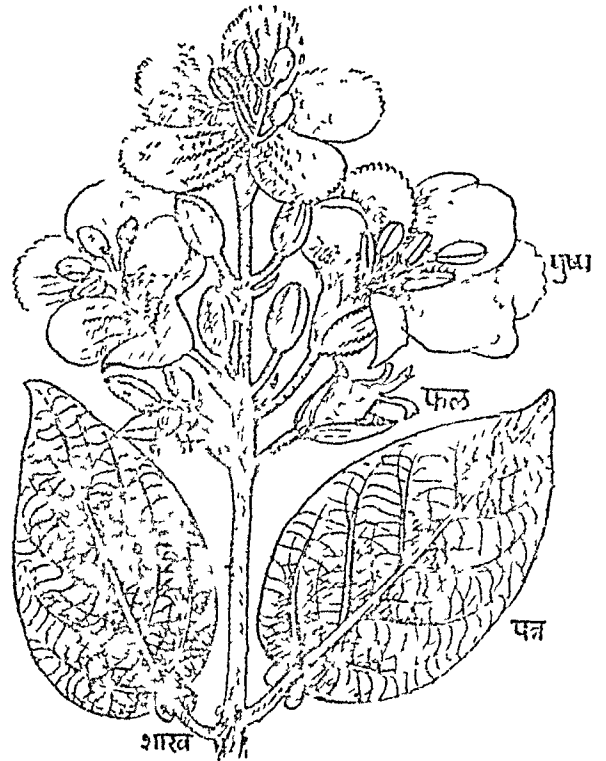
टाँग तैल यह इसका बगला नाम है। अ०-टुंग ऑइल(Tung Oil), लै०-अल्युरिटिस फोरडी आई।

पर्यायनाम—तैल।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके बीजो से जो तैल निकलता है, वह क्षत

आराम करने के लिये, तथा चर्म—रोगो मे विशेष व्यहृत है। यह वामक है। चीन निवासी इसके बीजो का व्यवहार चूहे मारने के लिये करते है।

वर्तमान मे विशेषत यूरोप मे इस तैल की कदर क्रमश बढती जाती है। इससे उत्तम वार्निश बनता है। इसे लगाकर लकडी पर पालिश किया जाता है। अत इसे चीनी लकडी का तैल (Chinese Wood Oil) भी अंग्रेजी मे कहते है। इस तैल के सयोग से निर्मित वार्निश लकडी पर शीघ्र ही सूख जाता है तथा इस कार्य के लिये अन्य तैलो की अपेक्षा यह उत्कृष्ट सिद्ध हुआ है। इसे काष्ठ पर लगा देने से उसके ऊपरी भाग मे एक पतली सी चमकदार परत जम जाती है, उसमे उसके अन्दर जल का प्रवेश नही हो पाता, जहाजो पर रग करने के लिये तथा आयल क्लाथ, वाटर प्रूफ इत्यादि बनाने के लिये यह प्रचुर परिमाण मे काम आता है। इसकी खेती भारत मे होना विशेष प्रयोजनीय है।

—भारतीय वनौषधि से साभार

टांगुन (टागुनी) दे०—कगुनी।

टिंडे (*TRICHOSANTHES LACINIOSA*)

शाकवर्ग एव कोशातकी-कुल (Cucurbitaceae) की इस लता के पत्र—ककडी के पत्र जैसे पतले, सिराजाल से युक्त खुरदरे, रोमश; पुष्प—पीले रग के छोटे-छोटे ककडी के पुष्प जैसे, फल—प्राय ग्रीष्म ऋतु मे, गोल, पोलाई लिये हुए हरे, टेढे मेढे, रोमश, स्वाद मे कुछ मीठे होते है। फलो को ही टिंडे कहते हैं। इनका शाक बनाया जाता है।

यह भारत मे कम अधिक प्रमाण मे प्राय सर्वत्र खेतो व बागो मे बोये जाते है। बगाल व उत्तर-पूर्व भारत मे ये बहुत होते हैं।

आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही मिलता। अर्वाचीन ग्रन्थो मे भी बहुत कम वर्णन है।

नाम—

सं०-डिण्डिश, रोमशफल, मुनिनिर्मित (कहा जाता है कि विश्वामित्र मुनि के द्वारा यह निर्मित है)। हि०-टिंड, टींडसी, ढेढस, टेरस इ०। म०-ढेढसं, फागली। गु०-कटोला। बं०-डेरसा। ले०-ट्रायकोसैंथिस लेसिनिओसा।

रासायनिक सघटन—

फलो मे—पानी ९२.३%, खनिज-पदार्थ ०.६%, प्रोटीन १ ७%, वसा ० १%, कार्बोहाइड्रेट ५.३%, कैलशियम ० ०२%, फास्फोरस ० ०३%, लोह ० ९ मि ग्रा प्रति सौ ग्राम, विटामिन ए २८ इ० यू० % ग्राम। शेष विटामिनो की जाच नही हुई है।

—(महेन्द्रनाथ पाडेय)

गुण धर्म व प्रयोग—

रूक्ष, किंचित् गुरु, शीत-वीर्य, रोचक, मल-मूत्र-विसजक, वातजनक, कफ पित्त एव अश्मरी-नाशक है। कामशक्ति तथा मस्तिष्क-शक्ति वर्धक है। इसके कोमल फल और अकुर सारक, दीपन एव क्षुधावर्धनार्थ उपयोगी है।

अश्मरी या पथरी पर—ताजे कोमल फलो को या अकुरो को कुचल, पीस कर तथा वस्त्र से निचोड़ कर निकाला हुआ स्वरस मात्रा ३ तोले तक लेकर उसमे १ मा० जवाखार मिला, कुछ गरम कर पिलाते है। ६-७ दिन के प्रयोग से लाभ होता है।

टिपारी—दे०—टकारी। टुटगठा—दे०—सोम। टेगरी—दे०—तगर। टैंट (टैंटी)—दे०—करीर। टेसू—दे०—ढाक। टेट्टू—दे०—अरलू न० २।

टोरकी (*INDIGOFERA LINIFOLIA*)

शिम्बीकुल की अपराजिता—उपकुल (Papilionaceae) की इस वनौषधि के श्वेत वर्ण के किन्तु नील रग प्रधान वर्षायु क्षुप, अनेक शाखायुक्त, काण्ड ६ से २० इञ्च लम्बे, कोमल, लगभग दो धारी युक्त, श्वेत

चमकाने रोमयुक्त, पत्र—अनेक सादे, ½ से १ इञ्च लम्बे, सकरे, रेखाकार, अग्रभाग मे मोटे, दोनो सिरे पर नोकदार एवं दोनो ओर श्वेत चमकीले रोमयुक्त, पुष्प—पत्र-कोण मे ६ से १२ तक सघन तेजस्वी लाल रग के, बहुत छोटे, वृन्त-रहित, फली—गोलाकार लम्बी, कडी ½ इञ्च लम्बी होती है। इसमे पुष्प और फली सब ऋतुओ मे आती है।

ये क्षुप भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत बम्बई और बगाल के हुगली, हावडा, २४ परगना, वर्धमान आदि मे रास्तो के किनारे और जगलो मे पाये जाते हैं। तथा सीलोन, बलुचिस्तान, अफगानिस्तान आदि देशो मे भी यह पाए जाते हैं।

नाम—

स०-चुन्द्रनील। हि०-टोरकी, तरकी। म०-पांटरी, टोरकी। गु०-भीणी गली। बं०-भांगाडा। ले०-इण्डिगोफेरा लिनिफोलिया।

गुणधर्म व प्रयोग—

मूल—रक्तशोधक, विषघ्न, रसायन, पौष्टिक, बीज—पौष्टिक। पत्तो से नीला रग निकलता है।

विस्फोटक ज्वर मे—मथर, चेचक, मसूरिका आदि के ज्वरो मे, इसके मूल के क्वाथ का सेवन कराते है।

जीर्ण रक्त-विकार पर—मूल या बीजो का चूर्ण प्रात-साय दूध या पानी के साथ लेते रहने से पाचन-क्रिया मे सुधार व रक्तशुद्धि हो कुछ दिनो मे चर्मरोग दूर हो जाते है।

दुष्ट व्रण पर—जो व्रण शीघ्र न भरता हो, उस पर इसके पत्तो की पुल्टिस बांधते हैं। व्रण का शोधन रोपण हो जाता है।

ढगरा—दे०—खरबूजा, फूट। डडाथूहर—दे०— थूहर मे। डड्या—दे०—प्रियगु। डकरा—दे०—वच्छनाग। डासरिया—दे०—रायनु ग। डामर—दे०— चीड (सनोवर, कतरान)।

डिकामाली (Gardenia Gummifera)

हरीतक्यादि-वर्ग एवं मजिष्ठ–कुल (Rubiaceae) के इस अनेक शाखा तथा पत्रमय छोटे-छोटे ३-४ हाथ के वृक्षो की छाल कुछ मोटी हरिताभ भूरे रग की, पत्र—आकार व रग मे अमरूद के पत्र जैसे, किंतु बडे व लम्बे, पुष्प—बसत मे कनेर-पुष्प जैसे श्वेत रग के, कुछ सुगधित, फल—अमरूद फल जैसे किंतु छोटे या कन्दूरी जैसे गोल १-१॥ इञ्च लम्बे, ऊपरी पृष्ठभाग पर उठी हुई अनेक धारियो से युक्त तथा भीतर ३-४ कोष्ठ वाले और बहुत बीज युक्त होते हैं। कोकण की ओर फलो को खाने या अचार बनाते हैं।

इन वृक्षो की कोमल शाखाओ के मध्य भाग से तथा कलियो मे से, या पत्तो के टूटने से शाखाओ के पृष्ठभाग पर, शीतकाल मे, एक हरिताभ किंचित् पीत-वर्ण का गोद निकलता है, जो हवा लगने पर सूख कर जम जाता है। इसे ही डिकामाली कहते है। इसके पीताभ या हरिताभ कृष्णवर्ण के चौडे-चौडे टुकडे बाजार मे पसारियो के यहा मिलते हैं। ये गध मे उग्र एव कुछ हीग जैसे होते है। यही गोद औषधि-कार्य मे लिया जाता है।

ये वृक्ष विशेषत मध्यप्रदेश, दक्षिण भारत, कर्नाटक, बम्बई प्रान्त तथा सतपुडा पहाड के दक्षिण की ओर के देशो मे कोकण से चटगाव तक, एव मलाबार के पहाडी, जगली स्थानो मे पाये जाते है।

नोट न० १—इसका एक भेद और होता है, जो बड़ा चमकीला, अनेक शाखा एवं पल्लवमय वृक्ष रूप में १० से २५ फुट ऊंचा, छाल–तिहाई इंच मोटी हरिताभ धूसर वर्ण की, नये अंकुर कोमल, हरिताभ धूसर, गोंदमय, पत्र–अण्डाकार ३–१० इंच लम्बे, २–५ इंच चौड़े, अनेक सिरायुक्त, छोटे वृन्त-युक्त, पुष्प-पर्ण कोन से, एकाकी, १–२ इंच डाली पर, श्वेत वर्ण के सुगंधित,

अच्छी तरह पानी में मिल जावे, तथा मिट्टी धूल आदि तलेटी पर बैठ जावें, तब रुई की बत्ती से पानी को दूसरे पात्र में टपका लेव और इसे मंद आंच पर औटावें। गाढ़ा हो जाने पर, पात्र को नीचे उतार धूप में शुष्क कर लें।

अथवा जल्दी मे मामूली शुद्धि करनी हो, तो इसे गरम पानी में घोल, छानकर शुष्क कर लें।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु तिक्त, कटु विपाक, उष्ण वीर्य; कफवातशामक, रोचन, दीपन, पाचन, अनुलोमन, संकोचक, स्वेदजनन, व्रणरोपण, वेदनास्थापन, आमनाशक, हृदयोत्तेजक, कफनिःसारक, श्वासकासहर, लेखन, श्लेष्मपूतिहर, प्लीहावृद्धिहर, कोष्ठवातप्रशमन, नियतकालिकज्वर-प्रतिबन्धक है तथा अरुचि, अग्निमांद्य, अजीर्ण, विबन्ध, वस्तिविकार, अर्श, आध्मान, गुल्म, उदरशूल, हृदयदौर्बल्य, जीर्णश्वासकास, हिक्का, चर्मरोग, मेदरोग आदि मे उपयोगी है।

(१) यद्यपि इसके कृमिघ्नता के गुण का आयुर्वेद में स्पष्ट उल्लेख नही है, तथापि आधुनिक शोध द्वारा पता लगा है, कि इसके प्रयोग से कोष्ठान्तर्गत वर्तुलाकार कृमि या कुछ लम्बे नन्हे-नन्हे कृमि नष्ट या निर्जीव हो जाते हैं। बालको के कृमिरोग पर इसे प्रात साय दूध के साथ देते हैं। बड़ों के लिये इसके चूर्ण को यथायोग्य मात्रा मे शक्कर के साथ देकर ऊपर से थोडा गरम जल पिलाते हैं। अंग्रेजी सटोनीन नामक कृमिघ्न औषधि से यह श्रेष्ठ है, कारण—इससे दस्त के साथ, नष्ट हुए कृमि निकल जाते है। तथा गुदकृमि (चुन्नो) पर भी इसके चूर्ण को लगाते हैं।

(२) इसकी मुख्य क्रिया महास्रोत पर होती है। इसके प्रयोग से विना कष्ट वायु का अनुलोमन एव मल-मूत्र का निःसरण होता है।

उदर-पीड़ा पर—इसके १ मासा चूर्ण को अद्रकरस व नींबू-रस ३-३ मा मे मिला पिलाते हैं। इससे अपचन, वमन, एव अजीर्णजन्य विसूचिका आदि मे लाभ होता है। छोटे बालको को कम मात्रा मे देवें। वेदनायुक्त अङ्गो पर भी इसके लेप से लाभ होता है।

नींबू के ऊपरी भाग को चीर कर अन्दर कुछ छिद्र कर उसमे इसका चूर्ण भरकर तथा कोयले की आच पर खदका कर, चूसने मे भी उदर-पीडा आदि मे लाभ होता है।

(३) आध्मान पर—छोटे बच्चे का पेट यदि वात के कारण फूला हो तो मूग या चना (½ से १रत्ती तक) बराबर इसे दूध मे घिसकर पिला देने से खुलासादस्त होकर पेट मे मुवार हो जाता है। डिब्बा रोग मे भी लाभ होता है।

यदि बडे मनुष्य का भी पेट फूला हो तो लगभग १ २ माशा तक इसे काले नमक के साथ फाककर ऊपर से गरम जल पी लेने मे खुलासा दस्त होकर आध्मान शांत हो जाता है।

नोट—यह खाने में बहुत खराब मालूम देती है, खाते समय उलटी सी आने लगती हैं। अत. यदि मुख द्वारा सेवन न हो सके तो इसके साथ एलुवा वा हींग या रेवदचीनी व एलुवा मिला, थोडे जल में मिला आग पर थोड़ा गरम कर नाभि के ऊपर उदर पर लेप करने से फूला हुआ पेट उतर जाता है तथा वात शमन होकर मलमूत्र की शुद्धि हो जाती है। बालकों के उदर पर भी इसका इसी प्रकार लेप करते हैं। डिब्बा का विकार शमन हो जाता है।

बालको के दतोद्भव के समय होने वाले विकार भी इसके सेवन से दूर होकर दात सरलता से निकलते हैं। इसे लगभग ५ रत्ती लेकर १ तोला पानी मे घोल उसमें रुई का फाया भिगोकर बालक के जबडे पर लेप करने से शीघ्रता व सरलता से दात निकल आते है।

(४) विषम ज्वर पर—इसे आधा से १ माशा तक जल के साथ, दिन मे ३ वार, ३-४ दिन तक बराबर देते रहने से अथवा इसका फाट देने से नियतकालिक (एकाहिक, तिजारी आदि) ज्वरो मे होने वाला कम्प दूर होता है।

हाथ पैर मे बाइटें या रगो की तनावट हो तो इसे रेंढी मे मिलाकर मर्दन करते है।

इसके चूर्ण को शक्कर के साथ सेवन करने से ज्वर तथा आमातिसार मे लाभ होता है।

(५) शुष्क कास, वमन, तथा सिर-दर्द पर—इसकी मात्रा ३ माशे के साथ समभाग अडूसा-पचाङ्ग का चूर्ण मिला क्वाथ बनाकर पिलाते रहने से शुष्क कास मे लाभ

होता है।

वमन पर—इसे नीबू-रस मे मिलाकर कुछ गरम कर चटाते है।

सिर-दर्द पर—इसे तेल मे मिला गरम कर मदन करते है।

(६) रक्त-विकार, दुष्ट व्रण नारु तथा अर्श पर—इसे १ माशा तक की मात्रा मे ताजे जल के साथ सेवन करने से शरीर पर चट्टे उठना, खुजली तथा पामा आदि विकार दूर होते हे।

वेदना एव खुजली युक्त अर्श पर—इसे जल मे घिस कर दिन मे २ वार लेप करते हे।

दुष्ट व्रण पर—इसके क्वाथ से व्रण को धोकर इसके शुष्क चूर्ण को बुरकते रहने से मक्खिया नही बैठती तथा व्रण शीघ्र शुद्ध हो जाता है।

जानवरो के कृमियुक्त दूषित व्रण या क्षत पर भी इसके महीन चूर्ण को उसमे भर देते है तथा दूसरे दिन इसके क्वाथ से या गरम पानी से धोकर पुन चूर्ण को भरते है। इस प्रकार ३-४ दिन करने से व्रण अच्छा हो जाता है।

नारु मे—इसे लगभग ५ रत्ती तक देते तथा ऊपर से भी लगाते है।

दतशूल मे—इसे लगाते हे।

(७) उन्माद पर—इसके साथ छोटी इलायची और ब्राह्मी मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत हितकारी होता हे। (चरक)

नोट—मात्रा २ से ५ रत्ती। बालकों को आध से २ रत्ती तक। वडो की उदर-शुद्धि के लिये १ से ३ मासे तक।

विशिष्ट योग—

शर्वत वाल-रक्षक—शुद्ध डिकामाली व वायविडङ्ग १०-१० तो, नागर मोथा, इन्द्र जौ, सोया व छोटी इलायची के दाने १।-१। तोला सबको मिला, २॥ सेर जल मे उबाल चतुर्थांश क्वाथ करें। फिर छानकर १। सेर शक्कर व २ रत्ती केशर मिला शर्वत बना लें। तैयार होने पर तुरन्त छान, शीतल होने पर बोतल मे भरलें।

मात्रा—६० बूद (चाय का १ चम्मच) दिन मे दो वार। यह बच्चो के स्वास्थ्य की रक्षा करने वाला, स्वादिष्ट, सुगंधित, सौम्य और निर्भय शर्वत दीपन, पाचन, रुचिकर, सारक, कृमिघ्न व बल्य है। मलावरोध, अतिसार, मिट्टी खाने की आदत, उदर बडा हो जाना, आतो मे वायु का भरा रहना, अफरा, जुकाम, दूध फेंकना, गोल कृमि (Round worm) उदर-पीडा, कृमि के कारण नाक, गुदा व मूत्रेन्द्रिय पर खुजली आना, शारीरिक कृशता, निस्तेजता आदि विकारो को दूर करता है। दात आने के समय होने वाली पीडा, ज्वर, हरे पीले दस्त लगना, बेचैनी आदि को भी दूर करता है। यह शर्वत विलायती बालामृत (हाइपोफास्फेट आफ लाइम) शर्वत के समान देखने मे सुन्दर नही है, किंतु उसकी अपेक्षा गुण-दृष्टि से विशेष हितावह है।

माता के अति कृश होने से या गर्भावस्था मे माता के बीमार रहने से शिशु निर्वल रहता है। उसकी हड्डिया यदि कमजोर हो तो सुधापट्क[1] व प्रवाल पिष्टी ½ से १ रत्ती इस शर्वत के साथ देते रहे। यदि वह बालशोष (सूखा रोग) से पीडित हो तो उस पर भी इसे सुधापट्क के साथ प्रयुक्त करें।

(रसतत्र सार भा २)

[1] सुधापट्क योग—प्रवाल भस्म १ तोला, शुक्ति भस्म २ तोला, शखभस्म ३तोला, वराटिका भस्म ४ तो, कच्छप पीठ की भस्म ५ तोला व गोदन्ती भस्म ६ तोला मिला, नीबू-रस में ३ दिन खरल करलें। मात्रा-१-४ रत्ती दूध के साथ, दिन में ३ बार।

—श्री प० यादव जी त्रिकम जी

डिजिटेलिस[1] (Digitalis Purpurea)

तिक्त (कटुका) कुल (ScroPhulariaceae) के इस वनस्पति के द्विवर्षायु, बेंजनी पुष्प वाले क्षुप २-४

[1] लेटिन डिजिटस (Digitus) शब्द जिसका अर्थ होता है अंगुली Finger, उससे डिजिटेलिस शब्द की व्युत्पत्ति है। इसके दल-चक्र या पुष्पाभ्यन्तर कोष (Corolla) का कटाव अंगुलियों की तरह होने से ऐसा नाम करण किया

ङ्र क्ते (प्रथम वर्ष मे तो यह एक ही डण्डी पर पत्-पता है- इसमे छत्राकार पत्र निकल कर फैल जाते हैं, दूसरे वर्ष मे फिर एक डण्डी निकलती है, जिस पर गुलाबी बैंगनी रग के उल्टे घण्टाकार तिल-पुष्प जैसे पुष्प दण्डी के एक ही ओर, नीचे से ऊपर तक बढते, फूलते चले जाते है), पत्र—धतूरे या तमाखू के पत्र जैसे, दीर्घायत अण्डाकार, ४-१२ इच लम्बे २-६ इच चौडे किनारे गोल दतुर, गोलाई लिये आरे जैसे कटे हुए, पृष्ठ भाग मे फीके हरे रग के खुरदरे, मृदु रोमश तल भाग पाडुधूसर वर्ण के व श्वेत वर्ण के रोमो से व्याप्त होते है। पत्तो मे हल्की चाय जैसी गध, स्वाद मे बहुत कडुवे होते है। शुष्क होने पर ये पत्र भगुर भूरे रग के होजाते हैं। औषधि-कार्यार्थ इसके शुष्क पत्र ही विशेष गुणयुक्त है। पुष्प—लगभग १४ इच लम्बे डण्डे पर प्राय एक ही ओर, नीचे से ऊपर तक, तिल के पुष्प जैसे किंतु कुछ बडे ६० से ७० तक घंटाकार श्वेताभ बेंगनी रग के, नीचे की ओर लटकते हुए आते हैं। फल—बहुत छोटे ½ इच तक लम्बे, द्विकोष्ठयुक्त आते हैं, ऊपर का आवरण फटने पर इसके अनेक नन्हे-नन्हे बीज छिटक पडते हैं। जून व जुलाई मास मे फूल फल लगते हैं।

इसके पौधे बालुकामय एव पथरीली भूमि मे ५-७ हजार फुट की ऊंचाई पर पैदा होते है। यूरोप व अमेरिका के अनेक प्रदेशो मे, तथा भारत के हिमालय के प्रदेशो मे काश्मीर, दार्जिलिग एव नीलगिरी की पहाडियो पर यह नैसर्गिक होता और बोया भी जाता है। औषधीय प्रयोजनार्थ काश्मीर की यह वनस्पति बहुत उत्तम मानी जाती है।

नोट न०१—इसकी कई जातियाँ हैं। उनमें से प्रस्तुत प्रसंग की डिजिटेलिस तथा डि० लेनाटा(D Lanata)मुख्य हैं। डि० लेनाटा यूरोप मे आस्ट्रिया एव बाल्कन देशों में स्वयंजात, नैसर्गिक होता। ब्रिटेन मे इसकी खेती की जातीहै। भारत मे भी काश्मीर में बढामुल्ला एव टनमार्ग आदि स्थानों में इसके लगाने का उपक्रम किया जारहाहै।

गया है। इसके पुष्प नीलरूप(Purple) रग के होने से इसमें परपरिया(purpurea) शब्द जोड दिया गया है। तिक्त-कुल का सचित्र वर्णन कुटकी मे देखें।

डिजिटेलिस
DIGITALIS PURPUREA LINN.
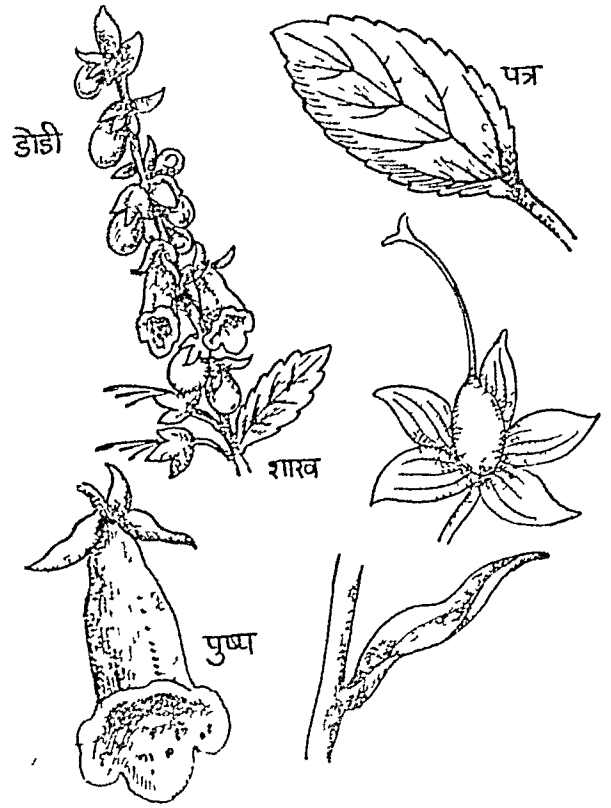
इसकी पत्ती २ या ५ से. मी से १५ या ३० सें. मी लम्बी तथा ० ४ या २ से मी से ४ ५ से मी चौडी, बाह्य रूपरेखा में आयताकार, भालाकार, वृन्तरहित, किनारों पर अखडित, आधार की ओर इन पर सूक्ष्म रोम होते हैं, शीर्ष की ओर लहरदार तथा अति अस्पष्ट दतुर होती है। ये पत्तिया तोडने पर मुरमुरी (शीघ्र चूरा होने वाली) होती है।

२ प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों मे इस महत्वपूर्ण वनौषधि का उल्लेख, शायद कहीं हो, किंतु कालचक्र के प्रभाव से कई ग्रन्थों के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने तथा हमारे अनुसधान के अभाव से आज हमे उपलब्ध नहीं है।

इस बूटी पर यूरोप के वैज्ञानिकों ने जो कुछ सफलतापूर्वक परीक्षणात्मक अनुसधान किया है। तथा आयुर्वेद के विद्वानों ने इस पर जो अपने अनुभवात्मक विचार प्रकट किये है,उसी का सार मात्र हम यहा देते हैं। एलोपैथी या आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली-साहित्य में इस वनस्पति को अपनी उपयोगिता एव उपादेयता के कारण विशेष सम्मान प्राप्त हुआ है।

३. भारत में इसका विशेष उत्पादन काश्मीर में किया जाता है। यहां यह बूटी प्रायः ग्रीष्मऋतु के प्रारभ से ही पुष्पित होती तथा पत्तियों का संग्रह व शुष्कीकरण कार्य पूर्ण ग्रीष्म काल भर चलता रहता है। इन्हे सुखाने के लिए बांस के मचानों पर ३६ घण्टे तक डाल देते हैं, तथा बीच-बीच मे उलट-पलट करते रहते हैं। फिर उनका ढेर लगाकर धूल तथा धूप से बचाने के लिए घांस की बाढ से ढक दिया जाता है।

४. इसी के कुल की जंगली तमाखू (Verbascum Thapsus) के तथा इस बूटी के पत्तों में बहुत कुछ साम्य होने से व्यापारी लोग प्राय. दोनों का मिश्रण कर दिया करते हैं।

नाम—

सं-हृत्पत्री (हृद्रोगों में विशेष प्रयुक्त होने से), तिल पुष्पी, वटवीणा आदि नाम आधुनिक विद्वानों के कल्पित हैं।

हि. म. गु—डिजिटेलिस। अं०—डिजिटेलिस (Digitalis), फाक्स ग्लोव्ह (Foxglove) ले.-डिजिटेलिस परप्युरिया डि फोलियम (D Folium)

रासायनिक सघटन-

इसमे हृदयोत्तेजक, स्फटिकाकार डिजिटाक्सिन (Digitoxin), जिटाक्सिन—(Gitoxin) व डिजि-टेलिन (Digitalin जो पत्र तथा बीजो मे भी होता है) ये सुराविलेय ग्लाइकोसाईड तत्व तथा जिटेलिन मिश्रित डिजिटेलिन और डिजिटान (Digiton जो वामक व उत्तेजक है) नामक जलविलेय तत्व पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग पत्र—

नोट-दूसरे वर्ष के क्षुप में पुष्प आने से पूर्व ही, इसके पत्र तोड कर, सम्हालपूर्वक, तुरन्त ही छाया में (विशेषत' २५ से ६० डिग्री कीउष्णता में) सुखाकर वायु रहित पात्र में सुरक्षित रखते हैं । अच्छी तरह शुष्क न होने, या अधिक धूप या गरमी या आर्द्रता से इसके गुण नष्ट हो जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु-विपाक, उष्णवीर्य एवं प्रभाव मे हृद्य व शामक है। यह कफवातशामक, पित्तवर्धक, मूत्रल, कफघ्न, वाजीकरण, गर्भाशयसकोचक, ज्वरघ्न है। नपुंसकता तथा रजोरोध मे प्रयुक्त है। तीव्र ज्वरो मे यह ज्वर कम करता एव हृदय भी सुरक्षित रखता है।

१ हृदय एव रक्तवहसंस्थान पर इसकी क्रिया प्रत्यक्ष होती है। वह हार्दिकी धमनी एव शरीर की अन्य धमनियो का सकोचन करता है। जिससे हृदय को अच्छा आराम एव पोषण प्राप्त हो नाडी व्यवस्थित भरपूर चलने लगती है, तथा आम को भी पोषण प्राप्त होता व मूत्र की मात्रा बढती है।

हृदयोदर तथा मूत्रपिंडोदर की अवस्था मे इसे किसी अन्य मूत्रल, विरेचक एव स्वेदल औषधि के साथ देने से मूत्र के द्वारा सचित जल बाहर निकल जाता है तथा हृदय को बल प्राप्त होता हैं। किंतु जहा तक हो सके रोगी को पूर्ण विश्राम देना चाहिये तथा पथ्य मे दूध, अनार आदि पौष्टिक पदार्थ देने चाहिए।

ध्यान रहे हृदयरोग जन्य शोथ, जलोदर आदि मे भी इसका प्रयोग से चमत्कारी गुण दृष्टिगोचर होता है, किंतु जिस रोगी की हृदयगति पहले से ही न्यून या मन्द हो उस पर इसका प्रयोग ठीक नही होता। यदि इसे देना आवश्यक ही हो तो इसे कुचले के साथ देवें। तथा यह भी ध्यान रहे कि विशेष उत्तम गुण होने पर भी इसका सतत दीर्घकाल तक सेवन कदापि नही करना चाहिए। आवश्यकतानुसार ७ या १४ दिन सेवन कर फिर ७ दिन के लिए बन्द करें। इस प्रकार कुछ अधिक समय तक भी इसका प्रयोग हो सकता है।

यह भी ध्यान रहे कि हृदय के लिये बल्य, मूत्रल एव रक्ताभिसरण पर क्रिया करने वाली जितनी भी औष-धिया (जैसे जगली तमाखू, कनेर, पीलीकनेर, जगली प्याज कपूर, ताम्र, यशद, अण्ड खरबूजा के पत्र, मकई के भुट्टे के बाल, कुटकी काली, काफी आदि) हैं, वे अधिक मात्रा मे देने से विपाक्त प्रभाव करती है। अत इन्हे अधिक मात्रा मे कदापि नही देना चाहिए।

डिजीटेलिस का प्रयोग हृदय के अनेक रोगो (जैसे हृदय की धड़कन, रक्तप्रत्यावर्त्तन, हृदय का प्रसार हृदय की अनियमितता, हृत्कार्यावरोध, हृदन्त शोथ आदि) मे लाभकर होता है। हृदय के मेदसापकर्ष मे इसका

प्रयोग नही किया जाता। यह शोथ रोग मे अतीव प्रशस्त माना गया है।

इसका प्रयोग हृद्दौर्बल्य जन्य शोथ (Cardiac-oedema) मे विशेष रूप से करते हैं। यों तो सामान्य रक्ताल्पताजन्य शोथ मे भी इससे लाभ होता है।

२ हृदय के उक्त विकारो पर—इसका चूर्ण १ भाग, शृङ्ग भस्म २ भाग दोनो एकत्र मिला, ३ घंटे खरल कर, १-१ रत्ती की मात्रा मे देने से हृदय की दुर्बलता, धड़कन तथा नाड़ी का वेगाधिक्य दूर होता है। हृद्रोगो मे उपद्रव रूप जलोदर या सर्वाङ्ग शोथ हो, तो इसका प्रयोग आरोग्यवर्द्धिनी के साथ मिलाकर देने से यथेष्ट लाभ होता है।

केवल हृदय की धड़कन ही विशेष रूप से होती हो तो इसके पत्र-चूर्ण के साथ प्रवाल पिष्टी, व अकीक भस्म खरल कर, मात्रा १ रत्ती शहद के साथ दिन मे २-४ बार देने से लाभ होता है।

—श्री प० यादव जी त्रिकम जी आचार्य

३ जीर्ण कास मे कफ चिपचिपा और अधिक गिरता हो, साथ मे हृदय की दुर्बलता भी हो तो इसके पत्र-चूर्ण के साथ शुष्क जगली प्याज का चूर्ण सम भाग मिला, १ या २ रत्ती की मात्रा मे सेवन करावें। यदि रोगी को हृल्लास व वमन भी हो तो इसका प्रयोग कुछ दिन के दिये बन्द करदें—

श्री पं. यादव जी त्रिकम जी आचार्य

इस प्रकार श्वास, कास, कफरोग, क्षय, फेफडो से रक्तस्राव आदि फुफ्फुस के विकारो पर इसका बहुत उपयोग किया जाता है। इन रोगो मे प्राय. हृदय के पर्दे शिथिल होकर शोथ-युक्त हो जाते है। उस शोथ को यह दूर करता है। वैसे ही हृद्-शोथ जन्य अत्यधिक रज स्राव मे भी यह बहुत लाभ पहुँचाता है।

४ हृद्य औषधि के रूप मे इसकी उत्तम प्रयोग-विधि यह है, कि इसके अतिसूक्ष्म पत्र-चूर्ण के १ भाग को २० भाग सत गिलोय के साथ किसी अच्छे खरल मे ६-७ घण्टे निरन्तर खरल कर लें, तथा आवश्यकतानुसार १ से २ रत्ती तक, दिन मे २-३ बार रोगी को किसी उचित अनुपान (अर्क गावजवान आदि) के साथ प्रयोग करें।

जिस रोगी के रक्ताल्पता के कारण हृत्स्पन्दन तथा अल्पाश मे सर्वाङ्गशोथ हो, उसे ताप्यादिलोह के साथ देने से विशेष लाभ होता है।

५ जलोदर और सर्वाङ्गशोथ मे—जो विशेषत हृद्विकार या वृक्क-विकार जन्य हो, इसे अल्पमात्रा मे आरोग्यवर्द्धिनी के साथ मिलाकर सेवन करावे और ऊपर से पुनर्नवा-क्वाथ अथवा आचार्य यादव जी कृत मूत्रल-कषाय[1] का सेवन कराते रहे। रोगी को केवल दुग्धाहार पर ही रखना चिकित्सक को यश व कीर्ति प्रदान करने वाला है। इसके अतिरिक्त ऐसा भी हो सकता है कि आरोग्यवर्द्धिनी के साथ डिजिटेलिस न मिलाकर अनुपान मे ही इसका फाट मिलाकर दिया जावे।

—प० श्री वासुदेव जी वैद्य आयुर्वेदाचार्य
(सचित्रआयुर्वेद से साभार)

६. पाचन-संस्थान या पाचन—यंत्र पर इसकी कोई विशेष क्रिया नही होती अधिक दिनो तक या अतिमात्रा में सेवन करने पर हृल्लास व वमन रूप मे इसका प्रभाव लक्षित होता है। यह भी सस्थानिक क्षोभ जन्य नही, प्रत्युत वमनकेन्द्र के उत्तेजित हो उठने से होता है। आन्त्र मे इसका शोषण शनै- शनै होता है, किंतु वह भी सिरागत रक्त-सचय मे बिलकुल मन्द हो जाता है। शोषण अतिमन्द होने से इसके कुछ कार्यकारी तत्व नष्ट हो जाते हैं। इसके सुरा तत्व या टिंचर का प्रभाव शीघ्र लगभग ४-६ घंटो मे नष्ट होजाता है। इस पर रसो का भी प्रभाव नही पड़ता। गुदामार्ग से वस्तिद्वारा देने मे इसका शोषण शीघ्र होता है।

७ मदात्यय पर—इसके फाट या टिंचर का प्रयोग कराने से रोगी को निद्रा आ जाया करती है तथा तज्जन्य उन्मत्तता की निवृत्ति हो जाती है।

---

[1] मूत्रल कषाय—पुनर्नवामूल, ईखमूल, कुशमूल, कासमूल, छोटे गोखुरु, सौंफ, धनिया, सागोन के फल, मकोय कासनी के बीज, खीरा ककडी के बीजों की गिरी, गिलोय, पाषाणभेद काकनज और कमलफूल समभाग जौकुट कर, २ तोला चूर्ण को १६ तो जल मे मिला चतुर्थांश क्वाथ कर छान कर पिला द।

नोट—मात्रा-चूर्ण चौथाई से आधी रत्ती तक। फांट के रूप में आधे से १ तो० तक। सुरातत्त्व (टिंचर) ५ से १५ बूंद तक।

फाट-विधि—इसके शुष्क चूर्ण १ भाग को परिस्रुत उष्ण जल १००० भाग में मिला, किसी आवृत पात्र में १५ मिनट तक रख कर कुछ उष्ण रहते ही वस्त्र द्वारा छानकर, स्वच्छ बोतल में भर लें। यह प्रतिदिन ताजा पिलाना हो, तो इसके मोटे पत्र-चूर्ण १५ ग्रेन को उबलते हुए २० ग्रांम पानी में मिला १५ मिनट तक ढक देवे। फिर उसे गरम दशा में ही छान ले। इस फाट के साथ गोखुरू, सारिवा, शोरा आदि मूत्रल औषधियो का सयोग करने से इसकी क्रिया में विशेष वृद्धि होती है। मात्रा—२ से ८ ड्राम तक। इसे १२ घटे तक सेवन कर सकते हैं। फिर नया बनाना चाहिये।

सुरातत्त्व या टिंचर-विधि—पत्र-चूर्ण (अति महीन चूर्ण) १०० ग्राम (२ ग्रांस) और मद्यार्क (७०%) १००० मिलिलिटर (२० ग्रांस) लेकर, अर्थात् १० भाग पत्र-चूर्ण को १०० भाग मद्यार्क में मिलाने के लिए, प्रथम चूर्ण को १०० मिलिलिटर मद्यार्क में भिगोते हैं, फिर पर्कोलेशन प्रक्रिया से टपकाते हैं, इस प्रक्रिया के समय बार-बार मद्यार्क डालते तथा १००० मिलिलिटर पूरा करते हैं। यही टिंचर डिजिटेलिस है। मात्रा—५ से १५ बून्द या ३० बून्द तक।

इसे प्राय टिंचर के रूप में अधिक प्रयोग में लाते हैं। उक्त टिंचर की मात्रा, दिन में ३ बार, जल मिला कर देते हैं। किंतु जल मिलाने से टिंचर की क्रियाशीलता अधिक स्थायी नहीं होती। तथापि किसी भी हालत में ६-६ घटे के क्रम अन्तर से इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए। अन्यथा वमन आदि उपद्रव होने लगते हैं। अत ऐसी स्थिति में इसका प्रयोग इंजेक्शन द्वारा किया जा सकता है। वमनादि अधिक होने से मुख द्वारा यदि इसका प्रयोग सभव न हो तो गुदामार्ग द्वारा इसका प्रयोग किया जा सकता है।

विशेष वक्तव्य—

ध्यान रहे रोगी, रोग, देश, काल आदि का विचार करने के पश्चात् ही डिजिटेलिस का प्रयोग करना चाहिए। क्योंकि यद्यपि कतिपय अवस्थाओं में यह बहुत उपयोगी है, तथापि अनेक अवस्थायें ऐसी भी हैं, जिनमे इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं होता, अथवा जिनमे (जैसे, आंशिक हृदयरोध, मस्तिष्कगत रक्तस्राव, अन्त शल्यता, हृदय का मेदस अपकर्ष Fattydegeneration आदि में) इसका प्रयोग निषिद्ध होता है।

सबसे सरल उपाय यह है, कि इसकी प्रयोगावस्था में ज्यो ही नाडी-मन्दता, उत्क्लेश, वमनादि उपद्रव होने लगें, त्यों ही इसका प्रयोग बन्दकर देवे। इसकी सस्थायी प्रवृत्ति के कारण औषधि के विषाक्त प्रभाव होने की सम्भावना बहुत कम रहती है।

तीव्र हृद्रोगी-शोथ (Acute Myocarditis), अथवा हृदन्त-शोथ (Endocarditis) और रक्तभाराधिक्य में इसका प्रयोग सतर्कता से करना चाहिए। क्योंकि ऐसी परिस्थिति में क्षुब्ध हृत्पेशी पर अनावश्यक दबाव पडने से घातक परिणाम होने की सम्भावना रहती है।

बालक और अतिवृद्ध को यथासम्भव इसका प्रयोग नहीं कराना चाहिए।

इसके विष लक्षण और चिकित्सा—

इसके अतियोग से हृल्लास तृषा, भ्रम, वमन (हरे रग का), अतिसार, मूत्राल्पता, शिर शूल, नाडीमन्दता, प्रलाप, हृदय की अनियमितता, आक्षेप, ठडा प्रस्वेद व बेहोशी आदि लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—

वामक-द्रव्यो से या आमाशय-नलिका से सशोधन करने के बाद हृदयोत्तेजक द्रव्य—काफी, मद्य, अमोनिया आदि देना चाहिए। शरीर का सेंक भी करें, तथा रोगी को लिटाकर ही रखें व पूर्ण विश्राम देवें।

इसकी घातक मात्रा—चूर्ण ३८ ग्रेन। टिंचर ६ ड्राम। घातक काल—४५ मिनिट से २४ घटा।

टिठोरी—दे०—करज। ढूकर कन्द—दे०—वाराही कन्द। डेला—दे०—करील।

डोडी—दे०—करेरुआ। टोटी शाक—दे०—जीवन्ती।

ढाक (Butea Frondosa)

वटादि-वर्ग एवं शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल के (Papilionaceae) इस मध्यमाकार के ५ से २० फुट ऊँचे प्राय. द्वादश वर्षीय वृक्षो का काण्ड–गाठदार, टेढे, छालफटीली, खुरदरी ३/४–१ इच मोटी, धूसर वर्ण की, तन्तुमय, पत्र–सयुक्त एक मे तीन गोलाकार पत्र प्राय ४-६ इञ्चलम्बे, असमान (मध्य पत्र बडा, पार्श्व के छोटे), पत्रपृष्ठ–खुरदरा, पुष्प–वसत मे, पत्र झड जाने पर, सुन्दर रक्त पीतवर्ण के, तोते की चोच जैसे, पुष्प-वृन्त–रोमश, काला, वक्र, फली–ग्रीष्म मे ५–८ इच लम्बी, ३/४ इञ्च चौटी, हिन्दी मे–ढक पन्ना नाम से प्रसिद्ध, बीज–प्रत्येक फली मे प्राय एक चपटा, वृक्काकार १-१३/४ इञ्च लम्बा १/२ से १ इञ्च चौडा, लगभग १३/४ से २ मि०मि० मोटा, बीजावरण–बाह्यत रक्ताभ गाढे भूरे रग का, अत्यन्त पतला होता है। बीज मे एक हल्की गध तथा स्वाद मे किंचित् तिक्त होता है। बीजो को–पलास-पापडा, पसदमा तथा लेटिन में ब्यूटिया सेमिना (B Semina) कहते हैं। पकी हुई फलियो के ये बीज भी विशेष औषधि-कार्य मे आते हैं।

वृक्ष के काण्ड की छाल मे क्षत करने से जो निर्यास निकलता है, वह जमने पर लाल गोद सा हो जाता है। इस गोद को हिन्दी मे कमरकस[1], चुनिया या चुन्नी गोद, अंग्रेजी मे ब्यूटिया गम या बंगाल किनो (Butea-gum or Bengal kino) कहते है। यह भी औषधि मे उपयोगी है।

ये वृक्ष भारत मे प्राय सर्वत्र, विशेषत रेह या क्षार मिश्रित भूमि मे या बालुकामय ऊसर भूमि मे बहुत पैदा होते है।

नोट १—चरक के वात-श्लेष्महर गण में तथा भिन्न-भिन्न रोगों के कतिपय प्रयोगों मे, वैसे ही सुश्रुत के रोध्रादि, मुष्कादि, अम्बष्ठादि व न्यग्रोधादि गणों मे

एवं पुष्पवर्ग, तैल वर्गादि मे भी इसका उल्लेख है। वाग्भट ने इसे असनादिगण मे दिया है।

२—ढाक का एक प्रकार और पलाश लता इसी जाति की होती है, जिसका वर्णन इसके आगे के प्रकरण में दिया गया है।

३—नीले तथा श्वेत पुष्प वाले ढाक का भी उल्लेख कही २ पाया जाता है। किन्तु ये प्राप्त नहीं होते। कहा जाता है कि साधारण ढाक के काण्ड का मध्य भाग खोखला कर उसमें १ सेर तूतिया भर, ऊपर से उसी के अन्दर से निकला हुआ बुरादा दाब कर, ऊपर बहुतसा गोबर रखकर बाध देने से आगे आने वाले चैत्र में इसके फूल नीले या काले रग के निकलते हैं।

श्वेत पुष्प वाले पलाश के विषय मे किम्वदन्ती है कि इसके योग से सुवर्ण बनाने की कीमिया सरलता से सिद्ध

---

[1] कमरकस नामक एक भिन्न बूटी होती है, जिसके बीज औषधि-कार्य में लिये जाते है। इसका वर्णन 'कमरकस' के प्रकरण (भाग २) में देखिये।
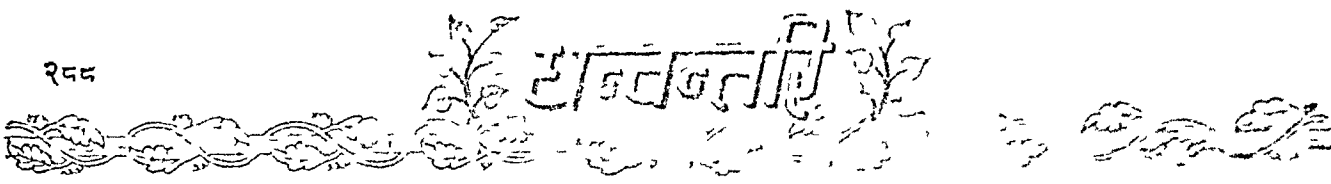
होती है। यह श्वेत पलाश कहीं-कहीं घने जंगलों में किसी सौभाग्यशाली को या सिद्ध योगियों को ही प्राप्त होता है। इसके योग से त्रिकालदर्शी होना आदि कई चमत्कारिक क्रियायें सिद्ध होती हैं।

४—एक भूपलाश नामक अन्य वृक्ष होता है। इसका वर्णन ढोल समुद्र के प्रकरण में देखें।

५—हलके पीत पुष्प वाले भी पलाश वृक्ष होते हैं। इनके तथा प्रस्तुत प्रसंग के पलाश के गुणधर्म में कोई विशेष अन्तर नहीं है।

नाम—

सं.—पलाश [मांसवत रक्तवर्ण पुष्प होने से, या पत्र प्रधान होने से], किंशुक (शुकतुण्ड सदृश लाल वक्र पुष्प होने से], रक्तपुष्पक, क्षार श्रेष्ठ, ब्रह्मवृक्ष [ब्रह्मचारी इसका काष्ठ दण्ड धारण करते हैं] समिद्वर [यज्ञ में प्रयुक्त होने से], इ०। हि०—ढाक टेसू, केसू, पलास, छिऊल इ०। म०—पलस। गु०—खाखरो। बं०-पलाश गाछ। अं—बास्टर्डटीक [astard teak], दि फॉरेस्ट फेम [The Forest fame]। ले०—ब्युटिया फ्रांडोसा, ब्यू मोनोस्परमा (B Monosperma)

रासायनिक संघटन—

छाल व गोंद में काइनो टैनिक एसिड (Kinotannic acid), और गैलिक एसिड ५०%, पिच्छिल द्रव्य तथा क्षार २%, बीजों में पीतवर्ण का स्थिर तैल १८% इसे मुडूगो या काइनो आयल (Moodooga or Kino oil) कहते हैं और लगभग १८% अल्ब्युमिनाइड तत्त्व (Albuminoids substance) एवं कुछ शर्करा पायी जाती हैं। पत्र में एक ग्लुकोसाइड और पुष्प में एक पीला रंजक द्रव्य होता है।

प्रयोज्यांग—छाल, पत्र, पुष्प, गोंद, फली, बीज, मूल, पञ्चाङ्ग, क्षार।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्ण-वीर्य, दीपन, ग्राही, वीर्यपुष्टिकर, रसायन, वाजीकर, उदरकृमिनाशक, मूत्रार्त्तवजनन, कफवातशामक, यकृदुत्तेजक, अस्थिसंधानक, संग्रहणी, अर्श, गुल्म, व्रण आदि पर उपयोगी है।

छाल—स्तंभन, शीत, रूक्ष, प्रमेहघ्न, संधानीय, व्रण, अर्श, योनिस्राव आदि में इसके क्वाथ से परिषेक करते हैं। अग्निमांद्य, ग्रहणी, अर्श आदि में इसके क्वाथ का सेवन कराते हैं। घोर तृष्णा शांति के लिये छाल के टुकड़े मिश्री मिलाकर चूसते हैं।

(१) श्वेत प्रदर, शुक्रप्रमेह एवं शुक्रतारल्य में इसके क्वाथ में साठी चावलों को भिगो एवं शुष्क कर तथा चूर्ण कर, शक्कर मिला, यथाविधि हलवा बना सेवन कराते हैं।

शुक्रतारल्य में जड़ की छाल के चूर्ण को दूध के साथ सेवन से पुरुषार्थ एवं कामशक्ति की वृद्धि होती है।

(२) प्रतिश्याय एवं कफप्रकोप पर—छाल-चूर्ण १ तो को १ पाव जल में, चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, छानकर, गरम-गरम ही, २-४ दिन दोनों समय सेवन से जुकाम नजला आदि दूर होता है। क्वाथ की अपेक्षा फाट-प्रयोग उत्तम है।

(३) अतिसार पर—छाल-चूर्ण १ भाग तथा दालचीनी चूर्ण आधा भाग एकत्र मिला, मात्रा १ रत्ती से १ मा तक, आयु के अनुसार सेवन से बालकों एवं स्त्रियों के अतिसार में शीघ्र लाभ हो पाचन-शक्ति का सुधार होता है।

(४) पांडु तथा श्वेत प्रदर पर—इसकी छाल के साथ, रुहेड़े की जड़ की छाल और पाठा समभाग एकत्र जौकुट कर, यथाविधि क्वाथ सिद्ध कर, शहद मिला सेवन से लाभ होता है। (यो चिं)

(५) अण्डवृद्धि और सर्प-विष पर—इसकी छाल का चूर्ण ७ मा. की मात्रा में जल के साथ सेवन करते तथा अण्डकोषों पर छाल की पुल्टिस बांधते हैं।

सर्प-विष पर—छाल और सोंठ को औटाकर, छानकर पिलाते हैं। अथवा—छाल को पीसकर ताजा रस निकाल, बलाबलानुसार ४ से १० तो तक पिलाते हैं।

पत्र—(विशेषत कोमल पत्र)—शीत, रूक्ष, संग्राही, शोथहर, वेदनास्थापक, अतिसार, योनिस्राव, शुक्रप्रमेह आदि पर उपयोगी है।

(६) योनिस्राव या योनिशैथिल्य पर—कोमल पत्र छाया-शुष्क कर, महीन चूर्ण कर, समभाग मिश्री मिला ३ मा से ५ मा तक प्रातः सायं ताजे जल के साथ

१४ दिन तक सेवन करें, तथा इसके गोंद की पोटली (गोंद के प्रयोगों में देखें) योनि में धारण करें। अधिक प्रसव के कारण या श्वेत स्राव से या अन्य किसी कारण से हुआ योनि का ढीलापन दूर होता है। गोंद की पोटली के अभाव में इसकी छाल के क्वाथ से योनि-प्रक्षालन करते रहने से भी लाभ होता है।

उक्त पत्र के चूर्ण के सेवन से पुरुषों का शुक्रतारल्य-विकार भी दूर होता है।

(७) गर्भस्राव-निवारणार्थ—गर्भ के प्रथम माह में इसका १ कोमल पत्र, महीन टुकड़े कर १ पाव या २ सेर गोदुग्ध (समभाग जल मिश्रित) में मिला पकावें। दुग्ध मात्र शेष रहने पर, छानकर, मिश्री मिला, दिन में सुखोष्ण १ बार पिलावें। इस प्रकार द्वितीय माह में दो पत्र, तीसरे माह में तीन पत्र, प्रतिमाह १-१ पत्र बढ़ाते हुए ६ वें माह में ६ पत्रों का सेवन करावें। दूध गाय का ही होना चाहिये तथा वह स्त्री की इच्छानुसार जितना चाहे उतना ले सकती है।

मेरी गारंटी है कि यह प्रयोग कभी असफल नहीं नहीं हो सकता। जिन स्त्रियों को १०-१० बार गर्भस्राव हो चुका था, इसके प्रयोग से संतान बनी हुई हैं।

(धन्वन्तरि, गुप्तसिद्ध प्रयोगांक में-
सम्पादक वैद्य श्री देवीशरण जी गर्ग।)

(८) बलवान एवं वीर्यवान पुत्रोत्पत्ति के लिए—गर्भस्राव का विकार हो, तो उक्त पत्र-सेवन का प्रयोग (नं० ७) नौ मास तक बराबर जारी रखने से व अन्य निम्न प्रयोग केवल ३ दिन के सेवन से ही पुत्रोत्पत्ति की मनोकामना अवश्य पूर्ण होती है, ऐसा हमारा खास अनुभव है। (लेखक)

गर्भिणी स्त्री ४ दिन लगातार प्रातः इसका १ कोमल पत्र दूध के साथ चाय जैसा बनाकर पीवे, फिर ५ दिन बन्द रक्खें। पुनः ४ दिन लेवे और ५-६ दिन बन्द रक्खे, (नित्य केवल १ पत्र, प्रातःकाल)। इस प्रकार ८-६ मास तक (अथवा सेवन के प्रारम्भकाल से ३ या ४ मास तक) लेने से बलवान पुत्रोत्पत्ति होती है। अथवा ऋतुस्नान के चौथे दिन से ३ दिन लगातार इसके १ मुलायम पत्ते को गाय के दूध में पीस छानकर पीने से भी श्रेष्ठ पुत्र की प्राप्ति होती है।

भावप्रकाशकार का कथन है[1] कि ढाक के १ पत्ते को गर्भिणी स्त्री दूध के साथ पीस कर सेवन करे तो निस्सन्देह वीर्यवान पुत्र को जन्म देती है यही प्रयोग वगसेन और योगरत्नाकर में भी दिया है।

(९) गर्भाशय के विकार तथा गर्भकष्ट-निवारणार्थ—इसके पत्तों के स्वरस का डूश देने से अर्थात् गर्भाशय में पत्र-स्वरस की वस्ति देने से उसके सर्व विकारों की शान्ति होती है।

यदि गर्भ के आठवें मास में गर्भ के अन्दर कोई कष्ट प्रतीत हो, तो इसका एक पत्र पानी में पीसकर कुछ दिन पिलाया करे।

(१०) वात-गुल्म तथा प्लीहा-शोथ व अर्श पर—इसके पत्तों के पास की घुण्डी २० नग तोड़कर, ताजे पानी में पीसकर गुल्म-विकार-पीड़ित रोगी को पिलादे और उसे चित्त लिटावे। आधे घन्टे में शान्ति प्राप्त होगी। यदि कुछ कसर रहे तो एक बार फिर पिलावें। फिर कभी भी आयुपर्यन्त इस रोग का दौरा नहीं होगा। (भा० ज० बूटी से)

प्लीहा-शोथ पर—पत्तों पर तैल चुपड़ कर बांधते हैं।

अर्श पर—विशेषतः वातार्श पर—पत्र पर तिल-तैल और घृत चुपड़ कर, कुछ गरम कर बांधते हैं।

वद की गांठ पर—पत्तों की पुल्टिस बनाकर बांधते हैं।

(११) कास, गलक्षत तथा मुख के क्षत पर—पत्र के डठल को, विशेषतः पत्र के डंठल के अग्रभाग पर जो घुण्डी होती है, उसे मुख में रख, धीरे-धीरे चबाते हुए रस को निगलते रहने से खांसी में लाभ होता है। इस प्रयोग से मुख के कई विकारों में भी शांति मिलती है। अथवा—

पत्र के क्वाथ से कुल्ले करें तथा थोड़ा-थोड़ा पीवें,

---

[1] पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी।
पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः॥

तो गले एवं मुख के क्षतों में लाभ होता है।

कान में मक्खी या कोई कीटक घुस गया हो, तो कोमल पत्र-रस को कान में डालते हैं।

(१२) अतिसार तथा ज्वर की दाह व रक्ताधिक्य पर—इसके पत्तों का क्वाथ विशेषतः आमातिसार में सेवन कराते हैं। अथवा पत्तों के अर्क या स्वरस का सेवन कराते हैं।

ज्वर-दाह शान्ति के लिये—ताजे पत्तों को पानी में पीस-छान कर पिलाते हैं।

यक्ष्मा में स्वेदाधिक्य हो, तो पत्र-क्वाथ देते हैं।

दोषों की शान्ति के लिये—पत्र-क्वाथ की बस्ति मलाशय में, तथा मूत्राशय में उत्तर बस्ति देते हैं।

(१३) रक्त-पित्त पर—इसके डंठलों का रस (८ सेर) तथा इन्हीं का कल्क (१० तो०) और घृत (१ सेर) लेकर सबको एकत्र मिला, घृत सिद्ध कर शहद मिला (मात्रा—घृत ३ तो० से १ तो० तक में शहद १॥ से ३ मा० तक) सेवन करने से रक्तपित्त नष्ट होता है।
(च० स० चि० स्था० अ० ४)

अथवा—पत्र-डंठलों के स्वरस को आग पर गाढ़ा कर उसमें शहद मिला सेवन से भी लाभ होता है।
—(ग० नि०)

(१४) नेत्र-विकार तथा व्रणों पर—नेत्रों के विशेषत कफज विकारों में इसके डंठलों को या अंकुरों को कांसे की थाली में दही के साथ घिस कर पतला पानी सा बनालें। इसकी २-३ बून्दें प्रतिदिन आंखों में डालते रहने से लाभ होता है, तथा पलकों के बाल (बरौनी) झड़ गये हों तो पुन जम आते हैं। (ग० नि०)

शरीर पर कहीं भी व्रणशोथ हो तो पत्तों को पीस-कर गरम कर प्रलेप करते या पुल्टिस बना कर बांधते हैं। इसके शुष्क पत्तों की राख १ तो० को ४ तो० घृत में मिलाकर लगाने से सर्व प्रकार के घाव ठीक होते हैं।

(१५) वीर्य-स्तम्भनार्थ—कोमल पत्तों का चूर्ण ७ तो० और पुराना गुड़ १ तो० दोनों को एकत्र पीस-कर १४ गोलियां बना नित्य १ गो० सेवन करते हैं।

नोट—पत्तों की पत्तलें आज बनाई जाती हैं। नागे पत्तों की पत्तल में भोजन रखकर खाने से पाचन-क्रिया ठीक होती तथा क्षुधा-वृद्धि होती है। बुद्धि एवं स्मरण-शक्ति बढ़ती है। किन्तु बाजारू पत्तलें और दोने जो इन पत्तों से बनाकर बिना धूप व हवा में सुखाए ही बांध दिए जाते हैं उनका लाभकारी अंश गल सड़ कर नष्ट हो जाता है तथा एक प्रकार के विषैले कृमि उनमें प्रविष्ट हो जाने से वे स्वास्थ्य के लिये हानिकर होते हैं।

पत्तों की बनाई हुई छतरी (जो कि प्राचीन काल में बनाई जाती थी, तथा अब भी देहाती लोग बनाकर उपयोग में लाते हैं,) नेत्रों तथा मस्तिष्क के लिये विशेष शान्तिप्रद एवं पुष्टिप्रद है।

पुष्प—(पुष्पों को टेसू, केसू कहते हैं) कटु, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, कफ-पित्त-नाशक, स्तम्भन, वात-वर्धक, तृष्णा-दाह शामक, मूत्रातिसार-जनक, सन्धानीय, कुष्ठ, ज्वर, रक्त विकार, अतिसार, रक्तपित्त, प्रदर, शोथ तथा चर्म-रोग आदि में उपयोगी है।

पुष्पों के रंग में रंगा हुआ कपड़ा पाण्डुरोगी को पहनाते हैं। फाल्गुन में होली व चैत्र में रंग पंचमी को इस रंग से होली खेलने से वसन्त में होने वाली खुजली आदि चर्मरोग एवं चेचक का प्रकोप नहीं होने पाता।

बस्तिशूल, बस्तिशोथ, जरायुशोथ, मूत्रकृच्छ्र, रुद्धार्तव एवं व्रणशोथ में—पुष्पों के क्वाथ में परिषेक कर, क्वाथ के गरम-गरम चोये को रुग्ण स्थान में बांधते हैं। रक्त-स्राव में—पुष्पों को शीत जल में १२ घंटे भिगो, छानकर मिश्री पिलावें, नक्सीर रक्त-मूत्रता में लाभ होता है।

(१६) मूत्रावरोध पर—पुष्पों को उबाल कर, गरम-गरम बस्ति-प्रदेश पर बांधते हैं उससे गुर्दे का शूल और शोथ भी दूर होता है।

अश्मरी (पथरी) के कारण मूत्र में रुकावट हो, तो फूलों को पकाकर, पोटली बना सेक कर उसे बांधते हैं।

यदि फूलों को, बिना उबाले ही, पानी के साथ पीस कर नाभि के चारों ओर लेप कर दिया जाय तो भी शीघ्र मूत्र की रुकावट दूर होकर, मूत्र खुलकर हो जाता है।

(१७) सुजाक (मूत्रकृच्छ्र), प्रमेह व पाण्डु व नारू

पर—इसके शुष्क पुष्प १ तो० मिट्टी के कोरे पात्र मे १ पाव पानी के साथ भिगो, प्रात छान कर पिलावें। शीघ्र लाभ होता है। चैत्र-वैशाख मे, इसमे थोडा शहद, तथा जेठ मास मे थोडी चीनी मिलाकर पीवे। यदि मूत्र मे अत्यधिक रुकावट हो, तो उसमे कलमी शोरा-चूर्ण ३ मा० तक घोल कर पिलावें। अथवा—

शुष्क पुष्प १० तो० धोकर, उसमे थोडा पानी, एक कलईदार पात्र या मटकी मे डाल, ऊपर कटोरा रख, कटोरे मे पानी भर, चूल्हे पर रख मद आच करे। भाप निकलने तक पकावें। फिर नीचे उतार फूलो को मलकर १ पाव-तक छानकर, २ मा० कलमी शोरा मिला पिलावे। शेष पानी मे, उक्त मलकर निचोडे गये फूलो को मिला रोगी के पेडू पर रखे। मूत्र खुलकर होगा।

(व० गुणादर्श)

इसके फूल और श्वेत जीरा ३-३ तो० चने की दाल २ तो० सबको १ सेर पानी के साथ, मिट्टी के पात्र मे ८ प्रहर तक भिगोकर, प्रात इसमे से १०-१० तो० पानी छानकर पिया करें। और जितना पिये, उतना ही ताजा पानी उसमे डाल दिया करें। मूत्र-कृच्छ्र के लिये विशेष लाभदायक है।

(ढाक के गुण व प्रयोग)

प्रमेह पर—फूलो के क्वाथ मे मिश्री मिलाकर पीते रहने से अनेक प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं।

(यो० र०)

पाडु रोग पर—पुष्प १ तो० रात्रि के समय १ पाव पानी मे भिगो, प्रात छानकर मिश्री मिला कर पिलाते है। विशिष्ट योग में योग न० ४८ देखें।

नारू पर—पुष्पो को पीस कर गुड मिला, ७ गोलिया बना रोज १ गोली खिलाते हैं।

(१८) अर्श तथा अण्डकोष-शोथ पर—रक्तार्श के क्वाथ मे शौच के समय गुद-प्रक्षालन करना लाभप्रद है।

अण्डकोषो मे साधारण शोथ हो, तो फूलो के क्वाथ मे परिषेक कर, क्वाथ के फोक को ऊपर से बाध देते है।

अण्डवृद्धि हो, तो फूलो को गोमूत्र मे उबाल कर, उसमे सेंधा नमक मिला, गरम-गरम क्षालन या परिषेक कर, उक्त उबले हुए फूलो को अण्डकोष के चारो ओर रख कर कपडे से लपेट देवे, यह अधिक गरम न हो। शोथयुक्त अण्डवृद्धि मे कुछ दिनो मे लाभ हो जाता है।

(१९) विषम-ज्वर पर—पुष्प और धनिया २१-२१ मा० और चने की भूसी ३ तो० सबको महीन कूट ७ मात्रा करें।

प्रतिदिन प्रात १ मात्रा ताजे पानी के साथ लेने के बारी से आने वाला ज्वर दूर हो जाता है। (ढाक के गुण)

(२०) रक्त-प्रदर पर—इसके पुष्प और दर्भमूल को समभाग मिलाकर महीन चूर्ण करें। नित्य प्रात ६-६ मा० जल के साथ देते रहने से १४ दिन मे पित्त प्रकोपज प्रदर (पतला व उष्ण रस-स्राव) एव रक्त-प्रदर दूर होता है। (र० त० सार)

गोद—ग्राही, स्तम्भक, वृष्य, वल्य, सधानीय, स्वेद-हर, अम्लता-नाशक है तथा मुख-रोग, कास, रक्तपित्त, प्रदर, शुक्र-दौर्बल्य, सग्रहणी, गुदभ्र श आदि मे प्रयुक्त होता है।

श्वेत प्रदर मे तथा योनि-सकोचनार्थ, मिश्री व दूध के साथ इसे खिलाते तथा इसकी वत्ती बना योनि मे धारण कराते है। इसे दूध व मिश्री के साथ सेवन करने से कमर मे बल की वृद्धि होती है, अत इसे कमरकस कहते है। यह पुरुष और स्त्री दोनो के लिये सेवनीय है। अम्लपित्त मे गोद को नारियल के पानी के साथ देते है। अतिसार पर—गोद का चूर्ण ५ से १५ रत्ती तक लेकर, उसके साथ दालचीनी-चूर्ण २॥ रत्ती और किंचित अफीम मिला कर पानी मे घोल कर पिलाते हैं। इसमे अफीम न भी मिलायें तो भी काम चल सकता है।

रक्तमूत्रता पर—गोद-चूर्ण २ मा० पानी के साथ देते है।

(२१) शुक्र-तारल्य पर—गोद का अति महीन चूर्ण नित्य ३ से १ तो० तक गाय के ताजे या उबाल कर ठडा किये हुए दूध मे मिला, थोडी मिश्री मिला सेवन कराने से वीर्य का पतलापन दूर होता है, उसमे सता-नोत्पादक शक्ति आती है।

उक्त चूर्ण के साथ यदि समभाग मुसली चूर्ण मिला कर दूध के साथ उक्त प्रकार से सेवन करे तो यथेष्ट

शक्ति एवं स्वास्थ्य की वृद्धि होती है। यह प्रयोग लगभग ४० दिन करे, तथा गरम मसाला, लालमिर्च आदि से परहेज करे।

(२२) नेत्रस्राव, जाला, फूला आदि नेत्र-विकारो-पर—गोद-चूर्ण ६ मा० को पानी ३ तो० मे रात भर भिगोकर प्रात छान कर नेत्रो मे कुछ बूदें, दिन मे कई बार डालते रहने से स्राव बन्द होता है।

गोद-चूर्ण ६मा० के साथ सेंधा नमक ३ मा० खूब खरल कर, सुर्मा जैसा बन जाता है। इसे सलाई से लगाते रहने से जाला, माडा, फूली, नाखूना आदि विकार दूर होते हैं।

(२३) गोद १० तो० को नारियल मे छेद कर भर दें, छिद्र बद कर, कपडमिट्टी कर पुटपाक-विधि से पाक कर, गिरी और गोद को खूब कूट कर उसमे समभाग चीनी मिलावें। ४-६ मा० प्रात साय दूध के साथ लेने से गर्भ सम्बन्धी विकार दूर होकर गर्भ पुष्ट होता है।

(२४) मूत्र-कृच्छ्र तथा मूत्राशय-शोथ एव क्षत पर—उत्तम ताजा गोद १० तो० को रात भर कोरी मटकी मे १ सेर पानी के साथ भिगोदे। प्रात छान कर स्वच्छ बोतल मे भर उसमे स्वच्छ चदन-तैल २ तो० एव बहरोजा-तैल ३ तो० डाल कर हिलावें। दवा पीते समय भी बोतल को हिला लिया करें। मात्रा २-२ तो० प्रात साय लेने से सुजाक या मूत्रकृच्छ्र मे यथेष्ट लाभ होता है।

मूत्राशयशोथ तथा मूत्राशय के क्षत पर—इसका गोद और फूल ३-३ मा० रात भर मिट्टी के पात्र मे भिगोकर, प्रातः छान कर मिश्री मिला पीने से उक्त शोथ मे शीघ्र ही लाभ होता है। यदि मूत्राशय मे क्षत हो, तो केवल १ रत्ती गोद का महीन चूर्ण फाक कर ऊपर से इस योग को पिलावें।

इससे पेशाब मे रक्त का आना भी बन्द होता है।

(२५) योनिशैथिल्य पर—गोद का महीन चूर्ण ६ मा० को पानी मे घोल लें। फिर फिटकरी २ तो० को किसी पात्र मे आग पर पिघलावें, तथा थोडा थोडा उक्त गोद का घोल उसमे डालते जावें। सब घोल का शोषण हो जाने पर, नीचे उतार कर, ठढा होने पर इस फिटकरी-फूले को १ तो० धाय के पुष्प के चूर्ण के साथ खरल करलें। यह मिश्रण-चूर्ण योनि मे रखने मे विशेष लाभ होता है।

(उक्त योग ढाक के गुण—उपयोग से साभार)

कृमिरोग पर—वि योग मे पलाश निर्यासासव देखें।

बीज, फली व तैल—

नोट०-बीजों को नमी से बचाने के लिये अच्छे ढके हुए पात्र में सगृहीत करना चाहिये। अन्यथा वे शीघ्र खराब हो जाते हैं। ध्यान रहे, यथा संभव ताजे नये बीजों को ही औषधि-कार्य में लेवें। पुराने बीज निष्क्रिय हो जाते हैं।

बीज कुछ विषाक्त होते हैं। इसी से ये हृल्लास, वमन, दाह आदि कारक हैं। और इसी से ये कुछ रेचक एवं कृमिनाशक भी हैं। किंतु यह कुछ हानिकारक नही हैं। इस हृल्लास आदि हानि-निवारणार्थ ही यह शहद, शक्कर आदि के साथ दिया जाता है।

ये कटु, स्निग्ध, लघु, लेखन, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वातानुलोमक, वातशामक, उत्तेजक, उत्तम भेदन, रक्त-शोधन, कृमि प्रमेह, कुष्ठ, रक्तविकार, वातरक्त, उदर-पीडा, अर्श, आदि में प्रयुक्त होते हैं। दद्रु आदि चर्म-रोग तथा नेत्र-रोगो मे बीजो को नीबू-रस मे पीस गरम कर लेप करते हैं। मधुमेह जन्य कड्डु तथा वेदना रहित क्षत एव भगदर पर भी यह लेप लाभकर है।

बिच्छू-दश मे—बीज को आक के दूध मे घिस कर लगाते है। अपस्मार मे बीज-चूर्ण का नस्य देते हैं। गर्भ धारण या गर्भाधान-निवारण का प्रयोग न० २६ नीचे देखें। मासिक धर्म बन्द करने के लिये बीजो के साथ गुलाब सफेद के पुष्पो को पीस कर घृत या पानी से कुछ दिन पिलाते, तथा फिटकरी की पोटली योनि मे धारण करते हैं। सिर-पीडा पर—बीजो का लेप कराते है, शीत-जन्य पीडा दूर होती है। पैरो की सधियो की जकडन पर—बीजो को पीस कर शहद मिला लेप करते हैं। छोटे बच्चो के शरीर पर उठी हुई छोटी-छोटी फुसियो पर—बीजो को नीमपत्र के रस या नीबू के रस मे पीस कर लगाते हैं। छाजन, उकवत पर—बीज चूर्ण को हरताल व बछनाग के चूर्ण के साथ खरल कर जूने घृत मे मिला लगाते है। आँखो की फूली के निवा-

रणार्थ-बीज-चूर्ण मे, इसके ताजे फलों का रस निचोड कर खरल करें। इस प्रकार ७ भावनाए देकर शुष्क कर सुरमा बना, उसमें लगाते समय किंचित् शहद व बकरी का दूध मिला सलाई से लगाते हैं। श्वेत कुष्ठ पर—बीज चूर्ण १०॥ मा०, तूतिया ३मा० और श्वेत कत्था १२ मा० नीबू-रस मे खरल कर गोली बना, दागो पर लगाते है।

ज्वर (चातुर्थिक ज्वर) पर—रोगी को प्रथम विरेचन देकर कोष्ठ-शुद्धि होने पर—इसके बीजो के साथ सम भाग करंजुवा की गिरी मिला, जल के साथ खूब महीन पीसकर चना जैसी गोलिया बना, एक-एक गोली प्रति दिन, तथा जिस दिन ज्वर आता हो उस दिन ज्वर-वेग के पूर्व देते हैं।

२६ [१] कृमि-रोग—(इस रोग पर यह सेन्टोनीन से श्रेष्ठ है) उदर-कृमि (Round worms) हो तो इसके बीज आग पर थोडे सेके हुए ५ तोला तथा कबीला, इन्द्रजौ, अजमोद, वायविडग २॥-२॥ तोले और भुनी हीग ६ माशा सबको खूब महीन चूर्ण कर नीमपत्ररस की ५ तथा अजमोद, वायविडङ्ग क्वाथ की दो भावनायें देकर शुष्क चूर्ण बना लें। मात्रा—२ से ४ रत्ती, दिन मे तीन वार जल के साथ देने से प्राय सर्व प्रकार के उदर-कृमि नष्ट हो जाते है। छोटे बालको को मात्रा कम देवें। अथवा—

इसके बीजो के चूर्ण मे समभाग चीनी या शहद मिला, १ से २ मा० तक, प्रात साय (या दिन मे ३ बार), तीन दिन पानी से देकर, चौथे दिन रेंडीतैल पिला दें। अथवा—

बीज और अजवायन का समभाग चूर्ण प्रात १ से ३ माशा तक, अवस्थानुसार पानी के साथ लेने से कृमि नष्ट होते तथा पाचन-शक्ति मे सुधार होता है।

अथवा—इसके बीज और वायविडग का समभाग चूर्ण ३ मा. तक, उसमे नीबूरस ३ माशा मिला शहद के साथ देने से, या बीजो का मोटा चूर्ण पानी मे भिगोकर मल, छान, शहद मिला पिलाने से भी यथेष्ट लाभ होता है। ध्यान रहे बीजो को छाल सहित कूटकर चूर्ण करे, अन्यथा उसका रेचक प्रभाव नष्ट हो जाता है।

छोटे बच्चो के कृमि-विकार पर—बीज को दूध मे घिसकर या इसके चूर्ण को शहद से चटाते हे। अथवा बीजो को कुछ सेक कर चूर्ण कर, मूंग जैसी गोली बना घृत के साथ देते ह।

आन्त्र-कृमि-नाशार्थ—बीज २ नग, चावल के माड के साथ पीसकर पिलाते हे।

२६ [२] गर्भ-निरोधार्थ—बीजो की भस्म १ भाग मे अर्ध भाग हीग मिला, १॥ से ३ माशा तक की मात्रा मे दूध या पानी के साथ, मासिक धर्म के बाद ३ दिन तक देते हैं। यह-प्रयोग और भी आगे के लगभग ३ मासिक धर्म के बाद भी दिया जाता है जिससे स्त्री की गर्भधारण-शक्ति नष्ट हो जाती है। अथवा—

इसके बीज और खीरा ककडी के बीज समभाग चूर्ण कर ३ माशा की मात्रा मे, ३ दिन तक, ऋतु-काल मे—पानी के साथ पिलाते हैं।

बाह्य प्रयोग—बीज का महीन चूर्ण १ तो, शहद २ और घी १ तोला एकत्र मिला, रुई मे भिगो, बत्ती बना प्रसग के ३ घटे पूर्व, योनिमार्ग मे रख लेने से या उक्त मिश्रण का योनि मे लेप कर लेने से भी गर्भ धारण नही होता। यह लेप का प्रयोग प्रसग के ३ घटा पूर्व अथवा ऋतुकाल (मासिक धर्म होने के दिनो) मे किया जाता है।

२७ नारु पर—इसके बीजो के १ भाग चूर्ण के साथ कुचला बीज, रस कपूर, सादा कपूर और गूगल आधा-आधा भाग, सब के चूर्ण को पानी के साथ महीन खरल कर, तथा एक पीपल (अश्वत्थ) के पत्ते पर उसको चुपडकर नारु के स्थान पर रख, पट्टी से बाध देवे। ३ दिन तक इसे नही खोले। नारु का कीडा शीघ्र ही नष्ट हो जता हे।

२८ योनिकन्द पर—बीजो का महीन चूर्ण आटे मे मिला, हाथ की हथेली के बराबर टिकिया बना, योनि पर रख, पट्टी बाध दे, तथा लगोट कस कर बाध दे। इस प्रयोग से योनिकन्द का गोला गलकर बह जवेगा। रुग्णा को पलाश, क्षार (क्षार विधि नीचे देखे) के द्वारा सिद्ध किये घृत को पिलावे—(अ तन्त्र)।

३०. शक्ति-वर्धनार्थ रसायन—बीजो को महीन पीस कर ताजे आवले के निचोडेहुए रसमे तर करें। सूखनेपर पुन रस मे तर कर धूप मे सुखावें। इस प्रकार ७ भावनाये देकर चूर्ण कर रखले। इसे २ से ६ माशे तक थोडे शहद के साथ चाट लिया करे। भोजन मे घृत, दुग्ध आदि सात्विक शक्तिप्रद वस्तुये लेवें। खटाई मिर्च आदि से परहेज करें। अथवा—

बीज-चूर्ण १ माशा, काले तिल ३ मा० और मिश्री ६ माशा मिला, नित्य प्रात (यह १ मात्रा है।) सेवन करे। पथ्य व परहेज से रहे। (ढाक गुण)

३१ आमाशय के विकारो पर—बीजो के समभाग सिरस-बीज-चूर्ण कर चूर्ण के समभाग मिश्री मिला लें। ३ से ६ माशे की मात्रा मे बलाबल के अनुसार, दूध के साथ सेवन करे। आमाशय के लिए शक्तिप्रद व विशेष गुणप्रद है। अथवा—

बीज-चूर्ण १ मा०, काले तिल २ मा, घृत ३ मा, और शहद ४ माशा, को एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) नित्य प्रति सेवन से भी विशेष लाभ होता है। अथवा— (ढाक गुण)

इसके बीजो के समभाग वायविडङ्ग लेकर दोनो का चूर्ण कर, यथायोग्य मात्रानुसार उसमे आमला-रस, शहद व घृत मिलाकर सेवन से आमाशय सशक्त होता व बल वीर्य की वृद्धि होती है। पथ्य पूर्वक १ मास तक सेवन करे। (राजमार्त्तण्ड)

बीज-योग मे गन्धक-द्रुति का प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखिये।

३२ कास पर—इसकी कोमल फली और गूलर के फल व काली मिर्च समभाग एकत्र कूट पीसकर, शुष्क चूर्ण करलें।

६ माशा तक की मात्रा मे शहद के साथ चाटने से रात्रि मे कष्ट देने वाली खासी नष्ट होती है।— (भा० भै० र०)

३३ योनिशैथिल्य पर—इसको और गूलर के फलो को पीस कर तिल-तेल मे चिकना कर शहद मिला, लेप करने से योनि की शिथिलता दूर होती है। (व से)

बीजो का तैल—यह तैल बीजो से पातालयंत्र द्वारा निकाला जाता है। यह मधुर, कषाय, कफपित्त शामक, वण्य, कुष्ठादिनाशक व पुंस्त्वशक्ति-उत्पादक है।

कुष्ठ म यह चालमोगरा तेल जैसा, प्रत्युत् उससे भी अधिक लाभदायक सिद्ध हुआ है। उसका विवरण इसे-बगन दिया जाता है।

अपस्मार मे इसका नस्य देते है। बिच्छू के दश-स्थान पर इसे लगाते हैं।

३४ शक्ति वर्द्धक रसायन रूप मे—यह तैल २ से ४ मा तक, घृत व शहद १ तोला के साथ १ मासतक सेवन करने से तथा मैथुन एव हानिकारक वस्तुओं से परहेज रखने से विशेष शक्तिवर्धक होता है। यदि इसमे ताजा ब्राह्मी का तेल भी सम्मिलित कर दिया जाय तो बुद्धि तीव्र हो जाती है। (ढाक-गुण, उपयोग)

३५ ध्वजभग एव नपुंसकता पर—तिला—इस तेल को रात्रि के समय शिश्न पर सीवन और अग्रभाग की सुपारी छोड कर धीरे-धीरे मालिश कर ऊपर से पान बाध कर, कच्चा सूत लपेटा करे। ७ दिन मे लाभ होता है। इस तिला मे जलन, छाला आदि कोई विकार नही होते। अथवा—

इसके बीज, कुचला, मालकागनी व जगली कबूतर की बीट प्रत्येक ७॥ तोला तथा लौंग, अकरकरा व दालचीनी १।-१। तोला सबको बकरी के दूध मे घोट सुखा कर पाताल यन्त्र से तेल निकाल ले। इसे भी उक्त प्रकार से इन्द्री पर मलकर ऊपर बगला पान बावें। २१ दिन के प्रयोग से हस्त क्रिया से उत्पन्न शिश्न दोष नष्ट हो जाते हैं। इन तिलो के प्रयोग काल मे इन्द्री को ठडे पानी से बचाना चाहिए। (भा भै र)

मूल—इसकी जड मे रासायनिक गुणो की विशेषता हैं।

३६—इसका स्वरस या अर्क सर्व नेत्ररोगहर, ज्योतिवर्धक व कामशक्तिवर्धक है। ताजी कोमल जडो को कूट पीस निचोड कर इसका स्वरस निकाल कर प्रयोग करते है। भवका यन्त्र से इसका अर्क खीच लेना और भी श्रेष्ठ होता है, यह बहुत दिनो तक बिगडता नही है।

यह स्वरस या अर्क नेत्रो मे डालते रहने से फूली,

भाक, मोतियाविन्द, रतौंधी आदि नेत्र-विकारो मे लाभ होता है। इसके अर्क की कुछ बून्दें पान के बीडे मे डाल कर खाने मे क्षुधावृद्धि होती, वीर्य-स्राव बन्द होता एव कामशक्ति प्रवल होती है।

३७. प्रमेह, शीघ्रपतन, नपुसकता आदि पर—जड का रस निकाल कर, उसमे ३ दिन तक गेहूँ को भिगो कर एव छाया शुष्ककर आटा वना, हलुवा कर कुछ दिन सेवन से प्रमेह, शीघ्रपतन तथा कामशक्ति की कमजोरी दूर होती हैं। (व च) अथवा—

मूल-स्वरस का घन क्वाथ—जड को छाल-समेत २० तोले लेकर ताजा ही कूट लें, तथा रात्रि को एक मटकी मे ३ सेर पानी मिला रखदें। प्रात मन्द आग पर पकावें। आधा सेर पानी शेष रहने पर छानकर इसे पुन मन्द आच पर गाढा कर चीनी या काच के पात्र मे रख लें। इसे ४-५ रत्ती की मात्रा मे, पान मे रख कर रात को सोते समय खा लिया करे। शिलाजीत से भी वढ कर गुणप्रद है अथवा—

उत्तम शुद्ध इस की मूल की छाल को कूट कर छाया-शुष्क कर महीन चूर्ण करलें। शीत काल मे ३-३ रत्ती चूर्ण मिश्री मिला १पाव गरम दूध के साथ लिया करे। दूध की मात्रा प्रतिदिन दो तोले से वढाकर १ सेर तक ले जावें। भोजन हलका एवं खूब भूख लगने पर लेवे। खटाई, मिर्च, गुड, तैल से परहेज करें। इसे ग्रीष्म ऋतु मे गर्मे दूध के साथ सेवन करना चाहिये, जो कि थन से निकाल कर जमीन पर न रखा गया हो।

(ढाक के गुण, प्रयोग)

अथवा—पलाश वृक्ष की जड मे क्षत कर, उसके नीचे खोद कर, एक चिकनी मटकी रख, ऊपर से अच्छी तरह ढाक कर (मटकी का मुख क्षत किये हुए स्थान से सटा रहे)। कण्डो की आच करे। ढाक वृक्ष का अर्क धीरे-धीरे सिमट कर मटकी मे आ जाने पर उसे छानकर शीशी मे भर रक्खे। पान के वीडे में इसे लगाकर, उसमे मराठी[1] की एक घुण्डी रख खाने से एक दिन मे ही पुरुषत्व की प्राप्ति होती है। अधिक वेचैनी होने पर स्त्री-प्रसङ्ग करें। (व० गुणादर्श)

प्रमेह, मधुमेहादि नाशक, पलाशमूलासव, त्रि० योग मे देखे।

(३८) वध्यत्व-निवारणार्थ—इसकी जड, छाया-शुष्क कर, महीन चूर्ण करले। मात्रा ३ मा० प्रात गोघृत मे मिला, मासिक धर्म के चौथे दिन से कुछ दिन चाट लिया करे। वाझपन दूर होता है।

(३९) सुजाक या औपसर्गिक मेह पर—इसकी जड का अर्क और गिलोय का स्वरस १-१ तोला, शहद ६ मा० व मिश्री ३ मा० मिलाकर (यह १ मात्रा है) प्रात-सायं सेवन करते रहने से, १५-२० दिन मे जो नया सुजाक विशेष न फैला हो, वह दूर हो जाता है। यह जीर्ण सुजाक के लीन विष को भी जलाकर नष्ट कर देता है। (रसतन्त्रसार से)

(४०) गलगड, कर्णशोथ, अपस्मार अर्श आदि पर—मूल को चावल के धोवन के साथ पीसकर कुछ गरम कर कान के पास लेप करते हैं।

अपस्मार के दौरे के समय—मूल को पानी मे घिस कर, या स्वरस निकाल कर नाक मे डालते हैं, तत्काल दौरा दूर होता है।

रक्तार्श या वातार्श पर—जड की भस्म के साथ अर्ध भाग काली मिर्च का चूर्ण मिला ३ से ७ मा० तक की मात्रा मे, पानी से, प्रात लिया करे।

श्लीपद (फील पाँव) पर—मूल के स्वरस को श्वेत सरसो के तैल के साथ सेवन करावें। (वृ० मा०)

(४१) ताम्र भस्म (मूल के योग से)—महीन ताम्र-पत्र के समभाग सुवर्णमाक्षिक लेकर, प्रथम माक्षिक को इसकी जड के रस मे खूब खरल कर, ताम्र-पत्र के दोनो ओर लेप कर दें। सूख जाने पर, उसकी एक मोटी जड को लेकर, उसमे छिद्र कर, पत्रो को उस मे रख, छिद्र को, उसी के बुरादे से दवा-दवा कर भर

---

[1] मराठी (महाराष्ट्र बूटी) का एक हाथ ऊंचा, अकरकरा के समान ही क्षुप होता है, जिसमें बड़ी मुण्डी के समान घुण्डिया लगती है। इसकी घुण्डी को मुख में रखकर चबाने से झुनझुनाहट होती है। इस क्षुप का उपयोग अकरकरा के स्थान पर किया जाता है। इसका विशेष वर्णन महाराष्ट्री के प्रकरण मे यथास्थान देखिये।

दें। पश्चात् कपड-मिट्टी कर ५ सेर कण्डों की आंच मे फूक दे। एक ही आंच मे भस्म हो जावेगी। यह नेत्र-विकारों मे विशेष लाभकारी है। इसे आंजने से आंखो के कई कठिन रोग आराम हो जाते हैं। इसे सुरमा मे भी मिलाया जा सकता है। (व० च०)

क्षार—

निर्माण-विधि—ढाक के छोटे-छोटे क्षुप या पञ्चाङ्ग को जलाकर, जो श्वेत राख हो, उसे १६ गुने पानी मे घोलकर मटकी मे भर, बीच-बीच मे लकड़ी से चलाते रहें। १२ घंटे बाद, उसके ऊपर के पानी को नितार, तेज आंच पर रख दें, पानी के न रहने पर जो श्वेत क्षार शेष रहे उसे सुरक्षित रख लें।

यह क्षार आनुलोमिक, भेदन, मूत्रल, उदर-विकार एवं गुल्म आदि नाशक है।

(४२) रक्त गुल्म पर—इसके क्षार मिश्रित जल ४ सेर के योग से १ सेर गोघृत सिद्ध कर लें। क्षारोदक से घृत को पकाते समय जब फेन आने लगे एवं घृत फटे हुए दूध जैसा दीखने लगे तो उसे सिद्ध हुआ समझना चाहिए। इसमे अन्य घृतो के समान फेन-शांति आदि लक्षण नहीं होते।

इस घृत की मात्रा—६ मा० तक सेवन करावें।

अथवा—उक्त क्षार की मात्रा ८ रत्ती से १ मा० तक थोडे गोघृत में मिला, प्रातः निराहार चटाने से शीघ्र लाभ होता है। इसका सेवन कुछ दिनो तक करावें। यदि घृत सेवन पश्चात् तुरन्त ही प्यास लगे तो, गरम पानी पिलावें।

यदि रुग्णा को घृत से घृणा हो, तो क्षार की मात्रा १॥ मा० तक आंवले के ताजे अर्क या स्वरस १ तो० के साथ सेवन करावें।

मासिक-धर्म के कष्ट-निवारणार्थ—यदि मासिक-धर्म कष्ट से आता हो, तो इस क्षार को ग्वारपाठा के छिले हुए पट्ठे पर छिडककर खिलाने से मासिक-धर्म खुल कर आने लगता है।

(ढाक गुण व योग से)

नोट—अभयामलक रसायन, क्षार के योग से बनाया जाता है। शास्त्रों में देखिये।

पंचाङ्ग—

(८३) अर्श व यकृत-विकार पर—इसके पञ्चाङ्ग की राख को ६ गुने पानी मे घोलकर, २१ बार स्राव कर स्वच्छ पानी निथार लें। यह पानी ८ सेर तथा त्रिकुट (सोंठ, मिर्च, पीपल) का समभाग मिश्रित कल्क २० तो० और घृत दो सेर, सबको मिला पकावें। घृत-शेष रहने पर छानकर रखें। मात्रा—६ मा० सेवन से अर्श शीघ्र नष्ट होते हैं। (ना० कौ० र०)

यकृत्-विकार पर—इसकी उक्त पञ्चाङ्ग की भस्म ५ तो० लेकर १ पाव पानी मे मिला रात भर रखें। प्रातः भुने हुए चने छीलकर १ मुट्ठी खिलाने के बाद, उक्त भस्म के निथरे हुए पानी को पिलावें। इस प्रकार कुछ दिनो तक करने से यकृत् के विकार शान्त हो जाते हैं। इस विकार की यह एक सिद्ध औषधि है।

(व० च०)

(८४) मूत्रकृच्छ्र पर—इसके पञ्चाङ्ग मे से विशेषतः गोंद, छाल, फूल और शुष्क कोंपलें एकत्र मिला चूर्ण करें। चूर्ण के समभाग ही मिश्री मिला, ६ मा० चूर्ण दूध के साथ प्रतिदिन लेने से लाभ होता है।

० (८५) बाल सफा पाउडर—पलाश की राख और अनार की लकड़ी की राख १-१ सेर के साथ हरताल ३ मा० खूब महीन पीसा हुआ मिलाकर सबको खूब खरल कर रखें। आवश्यकतानुसार पानी मे घोलकर बालों पर लेप करें। एक घन्टे पश्चात् बाल साफ निकल जावेंगे, किसी प्रकार की जलन आदि भी न होगी।

(ढाक गुण व योग)

विशिष्ट योग—

(४३) पलाश निर्यासासव—कृमिहरयोग—इसके गोंद का चूर्ण ५ तो०, ग्लैसरीन ७॥ तो० भाप का पानी १३ तो०, शुद्ध सुरा ३० तो० सबको एकत्र बोतल मे भर मुख बन्द कर ७ दिन तक रखा रहने देवें। बीच-बीच मे हिलाते रहें। फिर छानकर शीशी मे भर लेवें। मात्रा—२ या ३ मा० दिन मे ३ बार देने से कृमि, सग्रहणी आदि मे विशेष लाभ होता है। यह सकोचक व बलवर्धक है।

(४४) पलाश मूलासव—प्रमेह, मधुमेहादि-नाशक —इसकी जड की छाल के १ सेर स्वरस मे मद्य (रेक्टिफाइड स्प्रिट) २० तो० मिला बोतल मे भर रक्खे। मात्रा—१ से ५ बूंद तक, दुगुने जल मे मिलाकर लेने से प्रमेह एव मधुमेह मे लाभ होता है।

अन्य पलाशासव के योग हमारे 'वृहदासवारिष्ट-सग्रह' मे देखिये।

(४५) पलाशार्क प्रयोग—ताजे पलाश के मूल, वसत काल मे लेकर छोटे-छोटे टुकडे बनाकर वाष्पीकरण यत्र (भवका) द्वारा अर्क निकाल ले। फिर मूल से चौथाई भाग ताजे पलाश-बीज लेकर जौकुट कर उक्त अर्क मे रात भर भिगो रक्खें, दूसरे दिन इस अर्कयुक्त बीजो का पुन अर्क खीच लें। इसका प्रयोग निम्न प्रकार से भिन्न-भिन्न रोगो पर किया गया है—

(अ) कृमि-रोग पर—प्रथम रोगी को औषध देने के १ घटे पूर्व १ तो० गुड खिला कर, उष्ण जल के साथ उक्त अर्क ३ मा० से १ तो० की मात्रा मे दिन मे ३ बार देवें। रोगी को खाने के लिये गुड के सिवा कुछ भी न देवे। प्रात मल के साथ कृमि निकल जाते हैं। जब तक मल मे कृमि आना बन्द न हो, तब तक यह प्रयोग चालू रक्खें। कुल ३० रोगियो पर इसका प्रयोग किया, पूरा लाभ प्रतीत हुआ। इससे किसी प्रकार का दुष्प्रभाव नही हुआ।

(आ) रक्तस्राव बन्द करने के लिये—शरीर के किसी भी स्थान से, किसी भी कारण से खून बहता हो, उस स्थान पर उक्त अर्क का पिचु बनाकर लगाने से, १ मिनट मे स्राव बन्द हो जाता है। गुदा से अर्श की स्थिति मे रक्त आना, पेशाब मे खून आना, कफ के साथ खून आना, एव अत्यार्त्तव मे इस अर्क को देने से तत्काल ही रक्त आना रुक जाता है।

(इ) गर्भस्राव व गर्भपात मे—ऐसे विकार वाली स्त्रियो को रोज १० बूंद तक यह अर्क दूध व शर्करा के साथ ६ मास तक देते रहने से गर्भावस्था मे होने वाले हृल्लास आदि उपद्रव नही होते, तथा गर्भ पुष्ट होकर सुखपूर्वक पूर्ण मास मे गौर वर्ण का, पैदा होता है।

(ई) कॉलरा (हैजा) के प्रतिबन्धार्थ—कॉलेरा मे वेक्सीन के टीके लगाने के स्थान मे, इस अर्क के ही इजेक्शन से विशेष लाभ होता देखा गया है। जिन-जिन को इसका इजेक्शन दिया गया है, उन्हे कालरा नही हुआ।

(उ) क्षतो के रोपणार्थ—मर्क्यूरोक्यूम आदि एलोपैथिक दवाओ के स्थान मे इस अर्क का उपयोग उत्तम होता है।

(ऊ) उपदश मे—इस अर्क का प्रयोग बाह्य एव आभ्यन्तर दोनो प्रकार से किया जाय तो उत्तम लाभ होता है। —वैद्य श्री कान्तिलाल जी एस भट्ट जामनगर आयुर्वेद-विकास के लेख से साभार)

(४६) पलाश-योग मे आमलकी रसायन कल्प—एक मोटे पलाश वृक्ष को नीचे से दो हाथ रख कर काट दें। तथा मूल से ऊपर के इस शेष भाग के बीच मे कोल कर, अच्छा गहरा छिद्र कर, उसमे ताजे वजनदार आवलो को भर दें, तथा कोलने पर जो पलाश का बुरादा निकले उसी से अच्छी तरह दाब कर ढक दें। ऊपर से कमल वाले तालाब की मिट्टी लपेट दे और आस-पास वन्य-कडो को जलाकर आवलो को पकने दे। आग ठडी होने पर उन आवलो को निकाल, गुठली दूर कर, गूदे को पीस कर सुरक्षित रक्खें। इसे मधु व घृत के साथ यथेच्छ सेवन करें। केवल दूध पीकर त्रिगर्भरसायन-भवन मे रहे। प्रतिसप्ताह इसी तरह पलास वृक्ष से आवले तैयार कर लिया करें। ४५ दिन तक, रसायन-विधि से, सेवन करने से शरीर मे नई शक्ति का सचार हो, बुढापा नही आता एव दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है।

नोट—पलाश-कल्प के अन्य प्रयोगों को धन्वन्तरि-'कल्प एवं पचकर्म चिकित्सांक' में देखिये।

(४७) पलाश-बीज योग से गधक-द्रुति—इसके बीज ३० तो लेकर, टुकडे कर, बकरी के दूध मे ३ प्रहर भिगो रक्खें। फिर सुखाकर उसमे दो तो. शुद्ध गधक मिला, एक कांच की शीशी मे ६—७ कपरौटी कर, भर दें। तथा शीशी का मुख तार से बन्द कर दे। पाताल-

यत्र-विधि से उसमे तैल निकाल लें। इस तेल को २–३ रत्ती लेकर एक पान के पत्ते मे लगा, उसी मे २-३ रत्ती शुद्ध पारद (या रस सिन्दूर) डालकर, उगली से इस प्रकार मर्दन करें कि कज्जली बन जाय, उसे खाकर ऊपर से पान का बीडा खावे। प० हरिप्रपन्नाचार्य जी लिखते हैं कि दवा खाकर दूध पीवे और उसके ऊपर पान का बीडा खावे। शाक, अम्ल, उडद, नमक तथा ककारादि पदार्थों का सेवन न करे। इस प्रयोग से नपुसक मे पुरुषत्व आकर, वली-पलित, वातपित्त एव कफ के रोग, कुष्ठ आदि नष्ट होते है। इसके समान अन्य रसायन नही है। (अगद तत्र)

(४८) ढाक-पुष्प १ पाव व मिश्री ½ सेर दोनो का चूर्ण कर रक्खे। मात्रा–६ मा ताजे जल या दूध के साथ, सेवन से पाडु, रक्तपित्त, कोठ, उदर्द नष्ट होता है। अतिसार मे जल के साथ देते है। स्त्रियो को दूध के साथ १५ दिन देते रहने से शरीर-शैथिल्य दूर हो तारुण्य आता है।

मात्रा—छालचूर्ण—३ मा से १ तो तक।

छाल का क्वाथ—५ से १० तो।

पत्र—स्वरस—१-२ तो। कोमल पत्र-चूर्ण—३ मा से ५ तो। पुष्प-चूर्ण ½–१ तो।

गोद का चूर्ण लगभग १ से २ मा तक, यक्ष्मा एव उदर व वृक्को के रक्तस्राव युक्त व्याधियो मे २ से ४ मा तक की मात्रा मे देते है।

बीजचूर्ण—२ से ८ रत्ती तक, कृमिरोग मे १ से ३ मा तक की मात्रा मे।

ढाक (पलाश) लता (Butea Superba)

उक्त ढाक के ही कुल एव जाति की इस बहुत बढने वाली, एव वृक्षो पर बाई ओर से मुडकर फैलने वाली, मनुष्य के पैर के अगूठे से लेकर कही २ जाघ जैसी मोटी लता विशेष के पत्र–साधारण ढाक पत्र जैसे किन्तु आकार मे बहुत बडे, हाथी के कान जैसे, ३० से ४५ से. मी व्यास के, नूतन लता के पत्र कभी-कभी ५० से मी तक भी देखे जाते है। पुष्प–वसतऋतु मे, लता के तने से ही निकले हुए, पुष्प-दण्ड पर इसके पुष्प ४५ से ६ ३ से मी तक लम्बे, बहिर्व्यास की अपेक्षा पुष्प-दल ३ गुना लम्बे होते है। पुष्पो से पीला रग निकाला जाता जाता है। फली –लता के तने से ही निकले हुए लघुवृन्त पर, शीतकाल के प्रारम्भ मे लगती है।

इसकी लता पर भी निर्यास या गोद निकलता है। इसके छाल की मजबूत रस्सिया बनाई जाती हैं।

यह लता दक्षिण एव मध्य भारत के जगलो मे, विशेषत अवध, बुन्देलखड, छोटा नागपुर पश्चिम बगाल उडीसा, कोकण, कनाडा, बर्मा आदि प्रदेशो मे पाई जाती है।
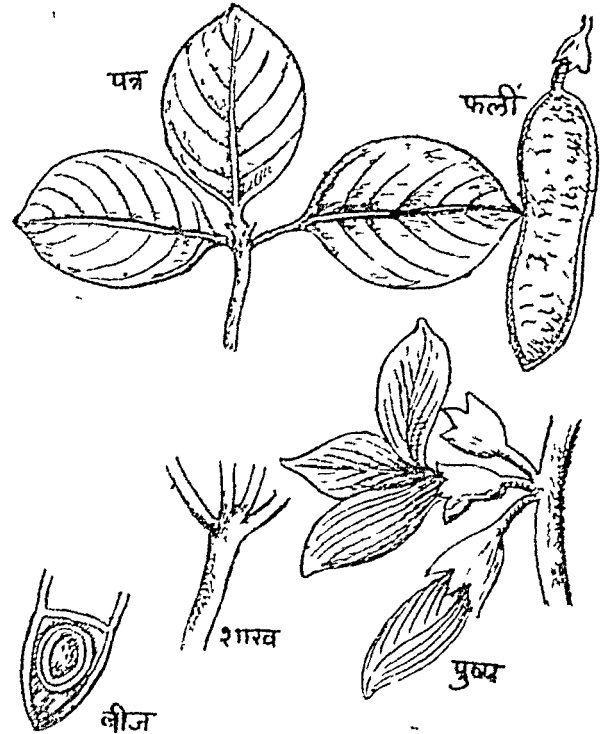
नाम—

सं.—लतापलाश, हस्तिकर्ण पलाश, पलाशी। हि.—ढाक (पलाश) लता, केसुलता। म.—पलसी, पलसबेल, गु.—वेलखाकरा। व.—लतापलाश, किशुकलता। ले.—ब्युटिया सुपेर्बा।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, पत्र और गोंद।

गुणधर्म व प्रयोग—

मधुर, अम्ल, पित्तप्रकोपक, विपघ्न, मुखदोष एव अरुचिनाशक है।

(१) बालकों की फुंसियो पर—पत्र-रस में दही और हल्दी मिलाकर लगाते है।

(२) बालकों के वक्ष-प्रदाह पर—कोंकण देश के वैद्यगण, इसकी जड के साथ समभाग धाय के फूल, काली कमोदी के बीज, बावची, लाल इद्रायण का रस और गोरोचन को एकत्र मिला प्रलेप करते हैं।

इसका गोंद धारक (ग्राही) होता है। बगदेश के कविराज इसका अनेक औषधिरूपेण व्यवहार करते है।

(३) आखो की भीतरी झिल्ली की विकृति से उत्पन्न आखो के घु धलेपन पर—इसका गोद ४ भाग, छोटी हर्र ३ भाग, सेंधानमक २ भाग और लाल चन्दन १ भाग एकत्र चूर्ण कर, पानी मे घोलकर लेप करते हैं।

नोट—इसकी जड़ के साथ कई अन्य औषधियों को मिलाकर सर्प आदि विषैले जीवों के दश से उत्पन्न विषबाधा निवारणार्थ प्रयुक्त करते है।

ढेंढस—दे०—टिंडे। ढेकवार—दे०—ग्वारपाठा। ढेरा—दे०—अकोल। ढोल—दे०—बोल।

ढोल-समुद्र (Leea Macrophylla)

द्राक्षा-कुल (Vitaceae) के इसके क्षुप १-३ फुट ऊचे, शाखाए हरितवर्ण की, पत्र—दन्तुर, कोमल, सूक्ष्म रोमश, निम्नभाग के पत्र २ इच एवं ऊपरी भाग के १ इच विस्तृत, पुष्प—छोटे श्वेत वर्ण के कोमल, फल—छोटे २ काले रग के, चिकने, कोमल, चेरी फल (prunus Serotina) जैसे, मूल—कन्दयुक्त होती है।

इसके कोमल पत्तों का शाक बनाते हैं। जडोसे एक रग निकाला जाता है जो रगाई के काम आता है। इसके क्षुप, छोटा नागपुर, विहार, बगाल, आसाम, तथा भारत के कतिपय उष्ण प्रदेशो के जगलोमे पाये जाते है।

ढोल समुद्र
LEEA MYCROPHYLLA ROXB

नाम—

म.—ढोल समुद्रिका, समुद्रक, रक्तैरण्ड, इ। हि.—ढोलसमुद्र, भूपलाश। म.—डिंडा। व.—ढोलसमुद्र। ले.—लीआ मेक्रोफिला।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, कन्द।

गुण धर्म व प्रयोग —

मूल ग्राही, व्रणरोपक, वेदनाशामक, व रक्तस्रावरोधक है।

दाद, खुजली आदि पर—जड को पीस कर लेप करते है।

नारू के शोथ पर—जड को पीस कर, गरम कर प्रलेप करते हैं। इस प्रकार के लेप से शरीर के किसी भी अंग की वेदना दूर होता है।

नाडीव्रण या नासूर मे—जड के रस मे, बत्ती भिगोकर अन्दर प्रविष्ट करते हैं।

किसी भी प्रकार से होने वाले (चोट, क्षत आदि से) वाह्यरक्तस्राव पर—इसके पत्तो को या जड़ को पीस कर लेप करते है। शीघ्र स्राव वन्द होता है।

तगर[1] देशी (Voleriana wallichii)

कर्पूरादि—वर्ग एवं मासी (जटामासी) कुल (Valerianaceae) के इस वहुवर्षायु, सुगन्धित, लोमश कन्दयुक्त क्षुप के काण्ड—१५—४५ से मी. ऊंचे, छोटे गुच्छेदार, पत्र—चौडे लट्वाकार, लोमश, दतुर या लहरदार, तीक्ष्णाग्र, नये पौधे के पत्र सघन १-३ इंच व्यास के, गोलाकार, किंचित् कगूरेदार, जैसे २ पौधे बढते है वैसे २ पत्तो का आकार बहुत छोटा, पत्र-वृन्त २-३ इंच लम्बा, पुष्प—लोमयुक्त लम्बे पुष्प-दण्ड पर इसके पुष्प गुच्छो मे, बारीक श्वेत या गुलाबी वर्ण के प्राय ५ पखुड़ीयुक्त, जुलाई मास मे, फल या बीजकोष नन्हे-नन्हे, प्राय लोमयुक्त, सितम्बर, अक्टूबर मे आते है।

मूल—मूलस्तभ मोटा, जमीन में नीचे दूर तक धसा हुआ, मोटे ततुओ से युक्त होता है। इसके मूलस्तम्भ या मूल का ही औषधिकार्य मे व्यवहार होता है। इसके गांठदार, टेढ़े मेढे, खुरदरे, हलके पीताभ बादामी रग के ४–८ से मी लम्बे, ५–१० मि. मि. मोटे टुकडे, कुछ चिपटे से, ऊपरी पृष्ठ पर टूटे हुए पत्तियो के चिन्ह, तथा अधोपृष्ठ पर टूटी हुई जड़ो के कारण बने हुए छोटे-छोटे गोल चिन्ह होते है। तोडने से ये टुकडे खट से टूट जाते हैं। मूल या जड़ें प्राय ६-७ से मी लम्बी तथा १-२ मि मि मोटी, बाहरी छिलका गाढ़े रग का, अन्दर का

[1] इस बूटी के विषय मे पहले बहुत मतभेद था। कई लोग 'गुलचादनी' (Tubernae montana Coronaria) को ही तगर मानते थे। जो एक श्यामवर्ण की मोटी, वजनदार, चन्दन जैसी लकड़ी, तगर नाम से बिकती है तथा जिसे सस्कृत में पिण्डतगर, कालानुसार्य आदि कहते हैं, उसे ही असली तगर मानते थे। इसका वर्णन-तगर-पिंडी के प्रकरण में आगे देखिये। कहीं २ जल में पैदा होने वाली एक प्रकार की घास को, तो कहीं २ एक प्रकार के पीले रग के काष्ठ को ही तगर कहते थे।

किंतु अब वैज्ञानिकों ने निर्विवाद रूप से सिद्ध कर दिया है। कि प्रस्तुत-प्रसंग का भारतीय तगर (जिसका वर्णन यहां किया जा रहा है), तथा एक विदेशीय तगर (V Officinalis and V, Hardwickii) ही असली तगर है। विदेशी तगर का वर्णन आगे (तगर विदेशी) देखें।

कई लोग सुगन्धवाला (नेत्र वाला) को ही तगर कहते हैं। वास्तव में सुगन्धवाला इससे भिन्न है। 'सुगन्धवाला' का प्रकरण यथास्थान देखिये।

काष्ठ-भाग फीके रग का होता है। इनकी सुरक्षा के लिये इन्हें ठडे स्थान मे रखते तथा नमी से बचाते हैं। अन्यथा उनका गुणधर्म न्यून हो जाता है।

इसके क्षुप हिमालय प्रदेश मे काश्मीर से भूटान तक ५ से १२ हजार फुट की ऊंचाई पर पर्याप्त रूप से स्वयजात तथा खासिया की पहाडियो पर और अफगानिस्तान में भी पाये जाते हैं, जो विशेष सुगन्धयुक्त होते है।

नोट—(अ) यद्यपि उक्त भारतीय तगर, पाश्चात्य विदेशी-तगर (व्हे० आफिसिनेलिस, जिसका वर्णन तगर विदेशी के प्रकरण में किया गया है, जो १९५२ तक ब्रिटिश-फार्माकोपिया में अधिकृत थी, किंतु अब निकाल दी गई है) के स्थान में उत्तम प्रतिनिधि है, और अपने यहाँ पर्याप्त मात्रा में होती है, तथापि यहाँ के बाजारों में अफगानिस्तान से आई हुई तगर का ही विशेष प्रचार देखा जाता है। भारत में विदेशी तगर बहुत थोडी मात्रा में काश्मीर के उत्तर की ओर सोनमर्ग स्थान पर (८ से ९ हजार फुट की ऊंचाई पर) पाया जाता है। बाजारों में इस असली तगर के साथ अन्य देशों की कृत्रिम जातियाँ मिलादी जाती हैं।

(आ) चरक के शीत-प्रशमन, तिक्तस्कन्ध तथा सुश्रुत के एलादि गणों में यह लिया गया है। इसके अतिरिक्त तगरादि कषाय, दशांगलेप, नतादि तैल आदि कतिपय प्रयोगों में तथा कुष्ठ, यक्ष्मा, उन्माद, वात रोग, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, शिरो रोग, नेत्र रोगादि के प्रयोगों में यह मिलाया गया है।

नाम—

स०—तगर, नत, वक्र, कुटिल, नहुष, इ०। म०—हि०-म०-गु०-व-तगर,। नंदी तगर,। टगर,। अं०—इडियन व्हेलेरियन Indian Valerian ले०—वेलेरियाना वालिचिआई, वे० ब्रुनोनियाना (V Brunoniana), वे राय-झोमा (V Rhizoma)

रासायनिक० संघटन—

इसके मूल मे एक महत्वपूर्ण उडनशील तैल ० ५—२ १२ प्रतिशत पाया जाता है। इस तैल मे मुख्यत से। स्किटर्पेन (SeSquiterpeneS), वेलरिक एसिड (Valoric acid) एव टर्पेन अल्कोहल (Terpene alcohol) तत्व होते हैं। इसके अतिरिक्त इसमे अराचिडिक एसिड (Arachidic Acid) आदि एवं स्नेहीय अम्लो के मिश्रण रहते हैं।

प्रयोज्यांग—मूल एव मूल स्तंभ

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, सर, तिक्त, कटु, मधुर, कषाय, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, त्रिदोषशामक, दीपन, शूलप्रशमन, सारक, मूत्रल, यकृदुत्तेजक, आर्त्तवजनन, कफघ्न मेध्य, हृदयोत्तेजक, वाजीकरण, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, चक्षुष्य, वेदनास्थापन, सकोचविकास—प्रतिवन्धक, व्रणरोपण, आक्षेपहर, निद्राजनक, मस्तिष्क के लिये वल्य व विषघ्न, है। तथा-रक्तविकार, अग्निमाद्य, उदरशूल, आनाह, यकृच्छोथ, कामला, जलोदर, प्लीहावृद्धि कुक्कुरकास, श्वास, मूत्राघात, क्लैव्य, कष्टार्त्तव, अर्दित, पक्षाघात, अपस्मार मधि-वास, आमवात, वातरक्त, कुष्ठ, विसर्प, जीर्णज्वर, भूतावेश आदि मे व्यवहृत होता है।

(७१) अस्थिभग, दूषित व्रण आमवातादि मे इसका लेप करते हैं। वेदना-शमनार्थ तथा शीघ्र रोपणार्थ इसके फाट का प्रयोग, उक्त व्याधियो मे और वात-नाडी विकृति युक्त मधुमेह, प्रमेह, कुक्कुर-कास, एव श्वासनलिका के सकोच-विकास मे प्रतिबन्ध जन्य श्वासरोग मे उदर सेवन, प्रक्षालन आदि के रूप मे उत्तम उपयोगी है। जीर्णज्वर जन्य—हृदय एव शारीरिक शैथिल्य तथा त्रिदोष की प्रवलता मे इसका फाट उत्तेजना व मानसिक प्रसन्नता के लिये दिया जाता है। इससे मन्द-मन्द प्रलाप व्याकुलता आदि शमन होकर नाडी मे सुधार हो जाता है। फाट—विधि नीचे देखिये। वात-नाडी-विकृति-जन्य मधुमेह- बहुमूत्र मे फाट के साथ सूक्ष्म मात्रा मे अफीम मिला कर देते हैं।

फाण्ट-विधि—अर्क-जल (डिस्टिल्ड वाटर) या ताजा जल लगभग आधा सेर लेकर, आग पर रखे। जब उबलने लगे, उसमे इसका जौकुट-चूर्ण १। तोला छोड दें, और ढाक दें। १५ मिनट बाद छान कर काम मे लावें। इसे प्रयोग करते समय ताजा ही तैयार करे। मात्रा—१। से २॥ तोला या १५ से ३० मि मि है।

यदि ताजा फाट तैयार करने की सुविधा न हो तो तगर का घनसत्व तैयार कर रक्खें। इसकी मात्रा—७ से ८ मि मि (३० से ६० बूंद) है। इसकी १ मात्रा मे ७ गुना जल मिलाकर, उक्त फाट के स्थान मे दिया जा सकता है।

(२) योषापस्मार (हिस्टीरिया) या अपतत्रक मे-भी उक्त फाट हितकारी है, इसके साथ जसद भस्म देने से और भी उत्तम लाभ होता है। इस फाट या जसद युक्त फाट के प्रयोग से जब रोगी को आलस्य, जमुहाई आने लगें तब मानना होगा कि औषधि ठीक कार्य कर रही है। इस प्रयोग से गठिया, पक्षाघात, गले के रोगो मे भी लाभ होता है।

अतत्वाभिनिवेश (Hypochondriasis), अशांति तथा इसी प्रकार की मानसिक विकृति में भी उक्त प्रयोग का बहुत उपयोग किया जाता है। कम्पवात मे भी कभी कभी यह दिया जाता है।

(३) विषम ज्वर मे—इसके चूर्ण के साथ मैनसिल, यशद भस्म, तथा भाग या अफीम को मिला, पान के रस मे खरल कर गोली १ या २ रत्ती की बना सेवन करने से ज्वर जन्य मानसिक व शारीरिक थकावट कम होती है। यदि इस ज्वर मे पारी न आकर केवल शिर शूल या उदर-शूल हो तो उक्त फाट मे यशद भस्म मिलाकर देते हैं।

नोट—हृदय दौर्बल्य में भी इसका प्रयोग किया जाता है, किन्तु अधिक मात्रा में देने से रक्तभार कम हो, नाडी मन्द होती है, प्रथम उष्णता सी मालूम देती है, फिर प्रस्वेद आने लगता है।

(४) प्रलाप पर—तगर के साथ अश्वगन्ध, पित्त पापडा, शंखपुष्पी, देवदारु, कुटकी, ब्राह्मी, निर्गुण्डी, नागरमोथा, अमलतास, छोटी हरें और मुनक्का सबका जौकुट चूर्ण कर क्वाथ बना कर सेवन से लाभ होता है—(योग चिंतामणि)

(५) बेहोशी तथा हृदय-कम्प (धड़कन) पर—तगर का तैल (यह पाताल यंत्र द्वारा निकाला जाता है) २ से ५ बूंद की मात्रा मे थोड़ा गोंद मिलाकर, दाल चीनी के फाट के साथ देते हैं।

(६) योनिशूल मे—नताद्य-तैल—तगर, बड़ी कटेली सेंधानमक, और देवदारु का समभाग मिश्रित कल्क १३ तो ४ माशा तथा इन्ही सब द्रव्यों का क्वाथ ८ सेर और तिल तेल दो सेर एकत्र मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान रक्खे। इस तैल मे फाया भिगोकर योनि मे रखने से योनि-शूल नष्ट होता है। यह योग विप्लुता योनि मे हितकर है— (भा भै. र)

(७) नेत्र आदि के विकारो पर—नेत्र विकार मे—इसके पत्रो का आखो पर लेप करते है।

शिर दर्द पर—तगर को पीस कर लेप करते है। विष-विकार, रक्त विकार, भूतोन्माद एवं नेत्र व मस्तक के रोगो पर—इसे ६ रत्ती से १॥ माशा तक की मात्रा मे देते हैं।

नोट—मात्रा—इसके सुगंधित मूल के टुकड़ों का चूर्ण-१ से २ माशा तक।

अधिक मात्रा मे यह भ्रम, हिक्का, वमन आदि विकारो को पैदा करता है। इनके निवारणार्थ-मुनक्का का सेवन कराते है।

तगर (विदेशी) (*VALERIANA OFFICINALIS*)

उक्त देशी तगर के ही कुल एवं जाति के इस बहु-वर्षायु क्षुप के काण्ड २-३ फुट ऊंचे, अग्रभाग मे गोलाकार शाखा प्रशाखायुक्त, पत्र—अण्डाकार, नीचे की ओर चौड़े, ऊपर को कुछ पतले, उपपत्र—३/८-२½ इंच लम्बे, किनारे दन्तुर, पुष्प-फीके लाल रंग के, छोटे छोटे रोमश, गुच्छों मे, पुष्पदण्ड-लम्बा एवं बहुशाखा प्रशाखायुक्त, फल-चौथाई इंच लम्बे, डिम्बाकृति, त्रिशिरायुक्त, बीज-प्रत्येक फल मे १-१, चपटे होते हैं। फूल व फल काल-अगस्त से अक्टूबर तक। मूलस्तम्भ-गोलाकार, फीका धूसरवर्ण का, सीधा, ३-४ इंच लम्बा, कुछ नरम होता है।

इंग्लैंड, हालैंड, बेल्जियम, फ्रांस तथा जर्मनी आदि यूरोपीय देशों मे—इसके स्वयजात पौधे पाये जाते है, इन देशो मे कहीं कहीं इसकी खेती भी की जाती है। संयुक्त

राष्ट्र अमेरिका मे भी इसकी खेती की जाती है। यह भूमध्य सागर के निकटवर्ती देशो मे, तथा पश्चिम एशिया, जापान आदि मे एवं भारत मे काश्मीर के उत्तर, सोनमर्ग-स्थान पर (८ से ६ हजार फुट की ऊंचाई पर) बहुत थोडे प्रमाण मे यत्र-तत्र पाया जाता है। सिंध, बर्मा व सीलोन मे भी यह होता है।

नाम-

हिं०-तगर विदेशी वालछर, मुश्कवाला। म०-कालावाला, विलायती जटामांसी। अं०-ट्रू व्हेलिरियन (True Valerian) ले०-वेलिरियन आफिसिनेलिस।

रासायनिक संघटन—

इसके मूलस्तम्भ एवं मूलो मे इसका प्रभावशाली उडनशील तेल ०.५ से ०.६ प्रतिशत तक (वसतकालीन मूलो मे यह तेल २.१२ प्रतिशत तक), तथा व्हेलेरिनिक एसिड (Valerianic acid) एव फार्मिक, एसेटिक व मेलिक एसिड्स, टेनिन, स्टार्च, शर्करा, राल, गोद, ग्लुकोसाईड आदि पदार्थ पाये जाते हैं। मूल की राख ८ से १० प्रतिशत होती है, जिसमे उत्तम मैंगनीज पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

उत्तेजक, आक्षेप एव पेशियो का आकुचन-निवारक है, अपस्मार, मानसिक-अवसाद वातविकार आदि मे लाभकारी है। इसके शेष गुण, धर्म, प्रयोगादि देशी तगर के जैसे ही है। अविराम ज्वर मे—इसे सिनकोना के साथ देते है। प्रबल वात विकार मे—इससे स्नान कराते या पीडित स्थान विशिष्ट पर इसका परिषेक करते है।

नोट—उक्त विदेशी तगर की ही एक उपजाति व्हेहार्डविकी (V,Hardwickii) है, जो साथ ही साथ भारत मे काश्मीर के उत्तर की ओर पायी जाती है। इसके वानस्पतिक परिचय, गुणधर्म आदि सब उक्त देशी तगर से मिलते जुलते से है। भारत के बाजारो मे ये विदेशी तगर-सुगन्धवाला या असारून नाम से बेची जाती है।

तगर पिण्डी (*TABERNAEMONTANA CORONARIA*)

कुटज या अर्क कुल (Apocynaceae) के इसके क्षुप रूपी पौधे ५-८ फुट ऊंचे, अनेक पतली कोमल शाखा युक्त, छाल-भूरे रग की दूध जैसे रस वाली, पत्र २-५ इंच लम्बे, १-२ इंच चौडे, लम्बगोल, नोकदार, हरे चमकीले (सूखने पर भी हरे), मूलभाग मे सकरे, किनारे तरगदार, छोटे वृन्तयुक्त, पत्रो मे भी दूधिया रस होता है। पुष्प-श्वेत, १-२ इंच व्यास के एकाकी या विभाजित तुर्रे मे १-८ पुष्प, वृन्त बहुत छोटा पुष्पाभ्यतर कोष नलिकाकार, कोमल होता है। चादनी रात मे ये पुष्प बहुत खिलते है, अत यह गुल चादनी कहाता है। इसमे नीलोफर जैसी साधारण महक होती है। फली—१-१/२ इंच लम्बी, १ इंच चौडी, सीग के आकार की चमकीली, त्रिशिरायुक्त, भीतर पीताभलाल वर्ण की, वृन्त रहित होती है। मूल—साधारण लम्बा स्वाद मे कडुवा होता है।

इसके पौधे गगा के उत्तरी प्रदेशो मे, गढवाल, पूर्व बगाल खासिया, अलमोडा आदि मे विशेष होते हैं। वैसे तो भारत मे प्राय सर्वत्र-बाग बगीचो से लगाये जाते हैं।

नाम—

स.—दण्डहस्त, बर्हिण नन्दीवृक्ष, पिण्डतगर। हिं०-पिण्डी तगर, चादनी (गुलचांदनी)। म०-गाव्या तगर, गोडे तगर, अनन्त। गु०—सागर तगर। बं०-चामेली तगर। अं०-व्याक्स फलावर (Waxflowerplant) ईस्ट इंडियन रोज बे (East Indian Rose bay), सीलोन-जेस्मीन (Ceylon Jasmine) ले०-टेबरनीमोन्टैना कोरोनेरिया। टे हीनियाना (T Heyneana), एरवाटेमिया कोरोनेरिया (Ervatamia Coronaria)

रासायनिक संगठन—

मूल मे राल, तिक्त क्षारोदक (Bitteralkaloid) पौधे के दूधिया रस मे-राल, और काट चाऊक (Caoutchoue) आदि तत्व होते है।

गुण-धर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, कटु, कषाय, तिक्त-विपाक, उष्ण वीर्य उत्तेजक, पित्त, कफ, विष एव रक्त-विकारो मे उप-

योगी। ऋतुस्राव-नियामक, कामोद्दीपक, ज्वरघ्न, हृद्य, शोथहर, व्रणरोपक, गर्भाशय-उत्तेजक, मृदुविरेचक, मस्तिष्क, यकृत व प्लीहा को बलवर्धक, पक्षाघात अपस्मार मे उपयोगी है। इसकी जड-स्थानीय वेदना शामक है। इसका लेप करते हैं। मूल-छाल-कृमिघ्न इसका दूधिया-रस शीत गुण प्रधान है, जख्मो पर शोथ निवारणार्थ एव रोपणार्थ इसे लगाते हैं।

दन्तपीड़ा मे-मूल या मूल की छाल को चबाते हैं।

नेत्रों के धुधलेपन पर-मूल को चूने के पानी मे घिसकर लगाते हैं। नेत्र के अन्य विकारो पर यह लाभकारी है।

नेत्रपटल के विकार मे-जड को नीम के रस में उबाल कर अंजन करते हैं।

प्रसूत ज्वर पर-विकृत वात के शमनार्थ-जडो को उबाल कर शरीर पर लेप करते, तथा भारगी-मूल के साथ इसकी जड का क्वाथ बनाकर पिलाते है। औषधि-प्रयोग काल मे रुग्णा को कुलथी का क्वाथ पिलाया जाता है। दक्षिण के कोकण प्रदेश मे यह प्रयोग बहुत प्रचलित है।

आन्त्र-कृमि पर-मूल को पानी मे पीसकर पिलाते हैं। आन्त्र व्रण पर-मूल के क्वाथ मे बादाम का तेल मिला कर पिलाते हैं।

उन्माद व हृदय की धडकन पर इसके फलो का गुलकन्द खिलाते हैं। अथवा इसके २ फूल प्रतिदिन ३ बताशो के साथ, १४ दिन खिलाते हैं। इससे उष्णता जन्य हृदय-दौर्बल्य भी दूर होता है।

त्वचा के रोगो पर-फूलो का रस, तैल मे मिलाकर लगाते है।

नेत्र-पीडा पर-इस क्षुप के दूधिया रस को तैल मे मिला मस्तक पर मलते हैं।

नेत्र-शोथ या आखो के आने पर-इसके पत्तो का दूधिया रस अन्दर लगाया जाता है, ऊपर से लेप भी करते है। व्रणो की जलन या दाह के निवारणार्थ भी यह रस लगाया जाता है।

पत्र-स्वरस-खटमल-नाशक है।

इस क्षुप की लकडी का कोयला नेत्र-शुक्ल (फूली) मे-लाभकारी है। इसका सुरमा बनाकर लगाते हैं।

इस तगर का तेल अपस्मार मे उपयोगी है।

नोट-मात्रा-२-७ माशा तक।

यह शीतप्रकृति वालों को कुछ हानिकर है। हानि-निवारणार्थ-मिश्री, बताशा या चीनी का सेवन कराते हैं।

तज-दे०-दालचीनी मे। तअक-दे०-रायतुग।

तमाखू[1] (Nicotiana Tabacum)

कण्टकारी कुल (Solanaceae) के उग्रगन्धी, रोमश, नलिकाकार, अनेक शाखायुक्त काण्डवाले क्षुप की ऊचाई

[1] प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थों मे इसका उल्लेख नहीं मिलता। अर्वाचीन राज निघटु में तथा योग रत्नाकर मे

लगभग १½-फुट, पत्र-अन्तर पर, मोटे बड़े, लम्बगोल, खुरदरे, ऊपर को सकरे, वृन्त-रहित, पुष्प—कलगीपर, १½-२ इच लम्बे, प्रारभ मे पीले, खिलते समय गुलाबी रंग के, बाह्यकोष ½इच लम्बा गोल, ५ विभाग-युक्त अन्तरकोष नलिकाकार ५ खड वाला, लगभग ⅓ व्यास का, फली-गुण्डाकार ½-¾ इच लम्बी, बीज—बहुत बारीक, रक्ताभ कृष्णवर्ण के, प्राय पुष्प की पखुड़ियो की खोल मे लिपटे हुए रहते हैं।

यह अमेरिका का आदिवासी पौधा, सम्प्रति भारत मे सर्वत्र, प्राय उष्ण प्रदेशो मे वर्षा तथा ग्रीष्मऋतु के प्रारभ मे बोया जाता है।

उक्त देशी तमाकू के अतिरिक्त इसकी विलायती या कलकतिया, पूरबी, सूरती, सुमात्रा, पीलिया, शामरू, कालिया, भोपाली आदि कई जातिया हैं।

विलायती (कलकतिया) के पत्ते, देशी से छोटे, कुछ गोलाकार एव मुड़े हुए से, मुलायम, वृन्तयुक्त होते है। पुष्प—देशी तमाकू के फूल से छोटे, हरे पीले रग के लगभग ¾ इच लम्बे होते है। इसे कलकत्ता तमाकू, कदहारी तमाकू, बगला मे विलायती तामाक, अंग्रेजी मे टर्किश या ईस्ट इडियन टोबे को (Turkish or East Indian Tobacco) व लेटिन मे निकोटियाना रस्टिका (Nicotiana Rustica) कहते है। यह मेक्सिको, टर्की आदि प्रदेशो का तमाकू पश्चिम पजाब, उत्तर प्रदेश, विहार, बगाल बलुचिस्थान आदि मे बहुत बोया जाता है।

सूरती तमाखू—इसके पत्ते छोटे-छोटे रोमश तथा गध उद्वेजक होता है। यह विशेषत सौराष्ट्र, सूरत इलाके मे पैदा होती है।

पूरबी तम्बाकू—इसका पौधा प्राय जमीन पर चारो ओर को झुका हुआ, फैला हुआ सा होता है। पत्ते अधिक चौड़े और कम लम्बे होते हैं।

एक जगली तम्बाकू होती है। इसका वर्णन 'तमाखु-जगली' के प्रकरण मे देखिये।

इसे तमाल पत्र नाम दिया गया है। किंतु तमाल पत्र प्रायःतेजपात को कहते हैं। अन्यान्य आधुनिक साहित्य ग्रन्थों में इसे तमाखु कहा गया है, जैसे 'तमाखु पत्र राजेन्द्र भजमाज्ञानदायकम्" (कूट श्लोक) आदि।

वस्तुत तमाखू अमेरिका, क्यूबा देश का निवासी है। सन १४९२ में कोलम्बस इसे यूरोप में लाया, फिर कुछ वर्षों बाद स्पेन देश के टबाका (Tabaca) नामक प्रान्त में इसका विशेष परिज्ञान होने से उस प्रांत के नाम से इस का टोबैको नामकरण हुआ, तथा इसी का अपभ्रंश तमाखु, तमाकू हुआ। एक फ्रांस निवासी जीन निकोट (Jean Nicot) नामक वैज्ञानिक ने इसके विषादजनक प्रमुख तत्व का पता लगाया, अत इस विषैले तत्व का निकोटिन या निकोटानिया (Nicotine or Nicotiana) पड़ा। इस प्रकार इसका पूरा शीर्षोक्त लेटिन नाम रखा गया है।

यूरोपियों ने ही इसका प्रथम दक्षिण भारत में प्रचार किया। फिर इसका उपयोग अकबर के समय से, लगभग १७ वें शतक से प्रारंभ हुआ। अब तो भारत में ही क्या, सारे विश्व में इसका खूब जोरों से प्रचार हो गया है।

तम्बाकू
NICOTIANA TABACUM LINN.

नाम—

स—तमाखु, धूम्रपत्रिका, क्षारपत्रा, ताम्रकूट, हि.—तमाखु, तम्बाकू, सुर्ती इ.। म. गु.—तमाकु,। व—तामाक। अ—इंडियन टोबैको (Indian Tobacco) ले.—निकोटियाना टेबाकम।

रासायनिक सघटन—

इसके मुख्य कार्यकारी, विषैले तत्व निकोटिन (Nicotine) और निकोटेने (Nicoteine) है। इनमे से प्रथम तत्व एक प्रवाही रगहीन, उडनशील क्षारोद (Alkaloid) है जो भिन्न २ जातियो की तमाखू मे, भिन्न २ प्रमाणो मे पाया जाता है, उत्तम जाति की तमाखू मे यह कम प्रमाण मे, तथा अन्य मे यह ७% तक पाया जाता है। तमाखु की प्रबलता का निश्चय इसी तत्व के प्रमाण से किया जाता है।

दूसरा उक्त तत्व भी उडनशील, रगहीन एक क्षार युक्त तैल सदृश (alkaline) होता है, जो उक्त प्रथम तत्व से भी अधिक विषैला होता है। तथा तम्बाकू की विशेष महक एवं स्वाद मे यही कारणीभूत है।

उक्त दोनो तत्वो के अतिरिक्त इसमे निकोटेलाईन (Nicotelline) नामक सूजा जैसा चमकदार तत्व निकोटियानिन (Nicotianin) नामक कर्पूर सदृश, उडनशील तत्त्व, राल, वसा, कुछ खनिजक्षार आदि पाये जाते हैं। इसके क्षार मे सल्फेट्स, नाइट्रेट्स, क्लोराईड फास्फेट, मालेटस (Malates), सायट्रेट पोटेशियम, अमोनियम, आक्झेलिक एसिड (Oxalic acid) आदि होते है। इसके बीजो से हरिताभ पीतवर्ण का तैल ३६% या इससे भी अधिक प्राप्त किया जाता है। यह तैल बाष्प यत्र द्वारा या अन्य प्रकारो से भी निकाला जा सकता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, डठल, क्षार, तैल आदि।

गुणधर्म व प्रयोग—

कटु, तीक्ष्ण, तिक्त विपाक, उष्णवीर्य, रूक्ष, पित्त-प्रकोपक, कफनिःसारक, वस्तिशोधक, वेदनास्थापक, छिक्काजनन, आध्मानहर, कृमिघ्न, मदकर, भ्रामक, वामक कुष्ठ मारक, दृष्टिमांद्यकर, वातानुलोमन, मूत्रल, लाला-नि सारक है तथा कफ, काम, श्वास, उदरवात, दतविकार आदि मे प्रयुक्त होता है। ताजे पत्तो का रस—शूलहर, आक्षेप (शरीर की ऐंठन, मरोड आदि) निवारक व कृमिघ्न है। शुष्कपत्र—मे आक्षेप-निवारण की अधिकता है, वामक व कभी २ सारक भी है। इसका मुख्य तत्त्व निकोटिन अति मादक एव विषैला है, किन्तु धूम्रपान के समय यह तत्त्व प्राय नष्ट सा हो जाता है। तथापि इसका धूम्रपान हितकारी नही।

इसके किसी भी प्रकार के सेवन से (औषधि-प्रयोग को छोडकर) लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है।

इसका धुआ हार्निया (आत्रवृद्धि) मे लाभकारी माना जाता है। ग्रथिरोग पर तथा कृच्छ्रश्वास पर इसके पत्तो को आग पर तपाकर वेसलीन या मक्खन मे मिलाकर लगाते है। पाडुरोग मे इसका धूम्रपान कराते है (किंतु यह धूम्रपान भिन्न प्रकार का है, आगे धूम्रपान-प्रसग मे देखिये)। श्वेतदाग पर—बीजो का तैल लगाते है।

(१) आध्मान (अफरा) मे—इसके खाने या धूम्र-पान से अफारा और उदरशूल मे कुछ लाभ तो होता है, किन्तु जब कोई अन्य उपचारो से लाभ न हो, तब इसका प्रयोग करें। अन्यथा इसका दास बन जाना पडता है।

उदरशूल पर—पत्तो को कुछ गरम कर उदर पर बाधते है, या पत्रचूर्ण को रेडी-तैल मे मिला, गरम कर नाभि-प्रदेश पर लगाते हैं।

(२) बालको के व बडो के कासश्वास आदि विकारो पर—पत्तो का डठल (काली तम्बाकू मिले तो उत्तम) या पत्र के मध्य की बडी मोटी सिरा २० तो साफकर (शाखा का कोई भाग आ गया हो, तो निकाल डालें) १-१ इच के टुकडे कर, मिट्टी के पात्र मे रखकर जलावे निर्धूम होने पर ऊपर ढक्कन लगा दें, जिससे श्वेत राख न होने पावे, कोयले हो जाय। फिर उसमे समभाग सेधा-नमक मिला, कूट कपडछान कर मजबूत डाटवाली शीशी मे भर रक्खें।

उक्त क्रिया को इसप्रकार करना और अच्छा है—पत्तो के डठल या सिराभाग के छोटे-छोटे टुकडे कर, उसके समभाग सेंधानमक पीस कर अलग रखें। फिर किसी मजबूत मटकी मे नीचे थोडे से टुकडे बिछा, उन

पर नमक का स्तर दें। एवं नीचे ऊपर दोनो का स्तर देकर मटकी को कपड मिट्टी कर, कण्डो की आग मे फूक दे। स्वाग शीत हो जाने पर तथा अन्दर के सब टुकडो का कोयला हो जाने पर, सबको निकाल कर महीन चूर्ण कर शीशी मे भर रक्खें। बाहर की आर्द्र हवा, पानी न लगने पावें, अन्यथा दवा निर्बल हो जाती है।

मात्रा—१ से ३ रत्ती तक, दिन मे ३ बार देवें। यह योग बालको की कुकुर खासी (हूपिंग कफ) मे विशेष लाभकारी है। अनुपान—नागरवेल के एक पके पान (खाने का पान) के साथ इलायची (छोटी छिलका सहित) २ नग लेकर थोडे पानी मे पीस छान कर थोडा गरम कर उसमे उक्त मात्रा (बालक की आयु के अनुसार) मिला, दिन मे २ या ३ बार पिलावें।

साधारण खासी हो, तो केवल शहद के साथ चटावें। शीघ्र लाभ होता है।

बालको के श्वास, ज्वर, आध्मान अतिसार हरे रग के दस्त आदि व्याधियो मे नागरवेल के १ पान और १ से २ रत्ती अजवायन-चूर्ण को ३-४ मा जल मिला महीन पीस, छान कर कुछ गरम कर उसमे उक्त योग की मात्रा मिला पिलावें।

यदि इसके पिलाने पर किसी बालक को वमन भी हो जाय तो घबडाने की बात नहीं, क्योकि इससे छाती मे जमा हुआ कफ निकल कर आराम ही होता है।

बडो की खासी मे इस योग की मात्रा ३ से ४ रत्ती तक दी जा सकती है। (गा औ र तथा व चन्द्र)

श्वासनाशक गोलिया—देशी तम्बाकू १ भाग मे ४ गुना पानी मिला रात भर रखें। प्रात मल, छान कर, उस छने हुए पानी मे, तम्बाकू से ४ गुना (४ भाग) अदरख का रस मिला मद आच पर पकावें। गोली बनाने योग्य गाढा हो जाने पर, उतार कर १-२ रत्ती की गोलिया बना ले। प्रतिदिन १ गोली ताजे शीतल जल से लेवे। - अथवा

उक्त योग मे अदरख-रस न मिलाते हुए, केवल तम्बाकू के ही पानी का घन क्वाथ बना उसमे सुहागे का फूला (यदि तम्बाकू १ पाव लिया हो, तो) ½ तो मिला गोलिया बनाले। प्रतिदिन प्रात १ गोली खाकर ऊपर से सौफ का अर्क पीवें। निरतर सेवन से ३ सप्ताह मे दमा समूल नष्ट होगा।

श्वास पर अन्य योग—तम्बाकू के हरे पत्तो का शीरा १ सेर, चीनी सफेद १॥ सेर मिला पकावे। शर्वत की चाशनी हो जाने पर शीशी मे भर रक्खें। ३ से ४ मा० यथाशक्ति सेवन करें।

(यह शर्बत पत्र-रस मे समभाग गुड मिलाकर भी बनाते हैं।)

श्वास-रोगी की छाती पर सुरती तम्बाकू के बीजो को कोल्हू मे पिरवा कर तैल निकलवा कर आवश्यकता के समय मालिश करें।

अन्य योग—नीला थोथा की भस्म, तम्बाकू के सूखे पत्ते १ पाव लेकर थोडा सा तर कर, उनके बीच मे १ तो० नीला थोथा की डली रख, किसी मिट्टी की प्याली (या सकोरो) मे रख, कपरौटी कर ३ सेर उपलो की आग मे फूक दें। श्वेत रग की भस्म होगी। १ से ४ रत्ती तक उचित अर्क के साथ दें।

उक्त गोलियो आदि के योग मौलवी मोहम्मद अब्दुल्ला साहब की पुस्तक से सकलित हैं।

अथवा—हुक्का पीने वालो के हुक्के की चिलम मे जो तम्बाकू की गुल जलकर शेष रह जाती है, उसे दुबारा जलाकर श्वेत भस्म हो जाने पर, उसकी उचित मात्रा सेवन कराते हैं। कास-श्वास मे लाभ होता है।

कास रोग मे कफ-निःसारणार्थ—खाने की तम्बाकू और काली मिर्च समभाग का महीन चूर्ण कर, उसे बीज निकाले हुए मुनक्को (तम्बाकू से दो गुना) के साथ खूब घोट पीसकर, एकजीव हो जाने पर ½ रत्ती की गोलिया बना इन पर काली मिर्च का महीन चूर्ण बुरक कर, शीशी मे भर रक्खें। १-१ गोली दिन मे ३ बार देने से कफ शीघ्र पक कर सरलता से निकल जाता है। यह गोली तम्बाकू के व्यसनी को विशेष अनुकूल रहती है। दूसरो को कुछ बेचैनी लाती है। बेचैनी हो, तो १-१ तो० घृत पिलावें। (र० तत्र सार से)

श्वास-कास मे तम्बाकू का क्षार भी १-२ रत्ती की मात्रा मे पान के साथ सेवन कराते है। आगे क्षार-विधि

तथा उसके प्रयोग देखिये।

श्वास पर इसके फूलो का एक उत्तम योग इस प्रकार है—इसके ताजे फूलो को लेकर, भीतर के तन्तु निकाल, अच्छी तरह साफ कर, उसमे ३ गुनी मिश्री मिला काच के पात्र मे डालकर, ढक्कन ढक कर ४० दिन पडा रहने दे। फिर मात्रा ४ से ६ मा० तक खिलाने से श्वास के तीव्र वेग, तथा काली खासी मे भी लाभ होता है। यह एक सन्यासी महात्मा का योग है।

(३) प्रलाप पर—सन्निपात मे रोगी विशेष प्रलाप (वकवाद) करता हो, निद्रा न आती हो तो इसके शुष्क पत्र के साथ कायफल, कौडिया लोहवान और हीग को पीस कर गुड मे मिला, तथा थोडा पानी मिला, गरम कर, कपडे की पट्टी पर लगा, रोगी के कनपटी, कपाल, और मस्तक परलेप लगे—इस रीति से कपडा वाध दें। लेप भी मोटा लगना चाहिये।

—(धन्वन्तरि)।

(तथा र० तत्र सार भा० १)

(४)अण्डकोप वृद्धि या गोथ पर—इसके पत्र पर शिलारस लगाकर, अथवा कट-करज के वीजो की गिरी को रेंडी-तैल मे पीस, पत्ते पर लगाकर अण्डकोप पर वाध देवें। अथवा तम्वाकू के साथ सुलतान चम्पा (पुन्नाग) की छाल व चूना एकत्र पीस कर लेप करें और ऊपर से कपडा वाध दें। अथवा—तम्वाकू का हरा पत्ता आग पर सेंक कर कोपो पर रख वाध दें। यदि हरे पत्ते न मिले तो सूखे पत्ते पर पानी छिडक, तथा तैल चुपड कर थोडा गरम कर वाध देवें। यह सब क्रिया रात्रि मे करनी ठीक होती हैं। प्रात वन्धन, लेप आदि निकाल डालें। प्राय २-३ वार के इस उपचार से ही लाभ हो जाता है। वात-प्रकोप से यह वृद्धि हुई हो, अण्डकोप मे वेदना हो, या उसमे कोई ग्रन्थि उत्पन्न हो रही हो, तो इन प्रयोगो से लाभ होता है। यदि जल वृद्धि हुई होगी, तो लाभ नही होगा, उस पर अन्य उपचार करे। उक्त प्रयोगो से किसी-किसी के सर्वाङ्ग मे उष्णता होकर वमन भी होती है, ऐसी दशा मे पत्ते को या लेप को निकाल डालें। पुन अन्य दिन प्रयोग करें।

(५) दात और मसूडो के विकार पर—तम्वाकू सुरती व काली मिर्च १-१ तो० तथा साभर नमक २ मा० एकत्र महीन पीस कर, इस मजन को दिन मे २-३ वार दात व मसूढो पर मलने से दातो की वेदना, मसूढो की सूजन दूर होती है, मसूढो का गदा पानी निकल जाता है।

यदि दाढ या मसूढो मे ही दर्द हो, तो तम्वाकू के सूखे फल, कपूर, काली मिर्च, चूल्हे की जली हुई लाल मिट्टी समभाग ले चूर्ण कर लें और मजन करें।

यदि दात हिलते हो, तो तम्वाकू ३ तो०, अकरकरा व खडिया मिट्टी ५-५ तो०, काली मिर्च ३ तो०, फिटकरी की खील २ तो० और कपूर देशी १ तो० सवको महीन पीस कर, प्रात-साय मजन करें। मसूढो की सूजन इसके पत्ते के चूर्ण से मलने मे भी दूर होती है।

(६) सिर-दर्द, नजला, तथा अर्धमस्तक-शूल पर—तम्वाकू १ तो०, लाग १४ नग तथा केशर, कस्तूरी १-१ मा० सवको महीन पीस, कपडछान कर, शीशी मे रखें। यह नस्वार ३ वार सुघावे और ३ घन्टे तक पानी न पीने देवे। यदि रात्रि का समय हो, तो समस्त रात्रि पानी न देवें। इससे शीघ्र ही सिर-दर्द दूर होता तथा नजले मे भी लाभ होता है। साथ ही साथ जुकाम (प्रतिश्याय) भी हो, तो—

इसके पत्तो के साथ नीम-पत्र, सूखा धनिया व सिरस के वीज प्रत्येक २ मा० लेकर सवको महीन पीस हुलास (नसवार) वनालें। और नस्य लेवे।

अर्धमस्तक-शूल (आधाशीशी) पर)—इसके पत्ते व लौंग समभाग पानी के साथ पीसकर मस्तिष्क पर गाढा लेप करते है।

अथवा—आवश्यकतानुसार हुक्के का मैल थोडे पानी मे घोलकर दूसरी ओर के नासिका-छिद्र मे केवल १ वूंद डाले।

अथवा—तम्वाकू सुरती ५ तो०, जायफल १ तो०, लौंग २ नग, छोटी इलायची २ नग के वीज, केशर २ मा० तथा सोठ, दालचीनी, सेधा नमक, श्वेत चन्दन-वुरादा, कायफल, काली मिर्च और वन्दाल १॥-१॥ मा० सवको अत्यन्त वारीक पीसकर यथाविधि नस्य करें। (हकीम मी० मोहम्मद अब्दुला साहव)

अथवा—तम्बाकू को पानी मे पीस-छान कर, इसकी २-३ बून्दे नाक मे टपकाते, तथा तालु पर इसी को मसलते हैं।

(७) सन्धि-पीडा, गठिया, मोच, धनुर्वात गुद-पीडा तथा अस्थि-विकारो पर—इसके पत्तो का रस, आक का दूध, धत्तूर-पत्र का रस १-१ पाव लेकर सबको दो सेर सरसो-तैल मे मिला मन्द आंच पर तैल सिद्ध कर ले। इस तैल को सन्धि-पीडा, गठिया पर मालिश करे।

अथवा शुष्क तम्बाकू ½ सेर लेकर, २ सेर पानी मे १२ घन्टे भिगोकर, मलकर निचोड छान ले। फिर इस पानी मे १ सेर तिल-तैल व ५ तो० वच्छनाग-चूर्ण मिला, तैल सिद्ध करलें, तथा इसकी मालिश किया करें। यह सर्व प्रकार के सन्धि-वात, गठिया, कटि-वेदना, कूल्हे या घुटनो के दर्द आदि पर लाभकारी है। यह योग हमारा अनुभूत है।

मोच पर भी उक्त तैल लाभप्रद है। अथवा तम्बाकू के हरे पत्तो पर तैल चुपड कर गरम कर मोच पर बाधने से सूजन दूर होकर आराम होता है।

धनुर्वात पर—रीढ की हड्डी पर इसके पत्तो की पुल्टिस बनाकर बाधते हैं, इससे रीढ की हड्डी का दर्द दूर होता है। अथवा इसके हरे पत्तो पर तैल लगा, कुछ गरम कर बाधते हैं। अण्डकोषो पर चोट लग जाने पर भी यह उपचार किया जाता है।

यदि मास-पेशियो मे आकुचन हो या हड्डियो मे खिचावट सी प्रतीत हो (जैसा कि धनुर्वात मे प्राय होता है) तो इसकी पत्तियो को १६ गुने पानी मे औटा-कर, चतुर्थांश शेष रहने पर, रोगी को इसका वफारा दिया जाता है। गुदा मे पीडा हो, तो—इसके हरे पत्र घी लगा कर, गरम कर बाधते हैं। या इसके शुष्क पुष्प को तिल-तैल मे मिला कर बाधते हैं।

(८) अपचन, अजीर्ण तथा प्लीहा-विकार पर—इसके पत्र-चूर्ण १ भाग के साथ—कत्था, दालचीनी, इलायची और त्रिकुट (सोठ, मिर्च, पीपल) आधा-आधा भाग मिला, सबके महीन चूर्ण को शहद के साथ खरल कर १—१ रत्ती की गोलिया बना लें। इन गोलियो को पान के बीडे के साथ सेवन करने से दीपन, पाचन हो क्षुधा-वृद्धि होती है।

प्लीहा-वृद्धि पर—इसके पत्तो को नीबू-रस मे पीस कर लेप करे।

(९) अर्श पर—कडवी तम्बाकू को थोडे पानी मे पीस कर रीठा जैसी गोलियाँ बनाले। प्रतिदिन १ गोली मस्सो पर बाध कर, लगोटा कस लिया करे। शौच के बाद इस प्रकार ३-४ दिन के उपचार से मस्से मुरझा कर स्वय गिर जायेगे। अथवा—

हुक्के के पीने व बदबूदार पानी से शौच किया करे। मस्से मुरझा कर गिर जाते हैं। अथवा—

तम्बाकू व भाग ५-५ तो० दोनो को महीन पीसकर ७ पुडिया बना ले, और १-१ पुडिया प्रतिदिन कोयलो की आग पर डालकर यथाविधि रोगी को धूनी देवे, तथा धुआ से मस्सो को सेके। इस प्रकार ७ दिन के निरतर सेवन से वे स्वय मुरझा कर गिर जाते हैं।

—हकीम मौ० मोहम्मद अब्दुल्ला साहब

अर्श के अन्य योग 'तम्बाकू जगली' मे देखे।

(१०) गज (इन्द्रलुप्त) तथा जू के नाशार्थ—इसके फूलो को करज के तैल मे पीसकर लेप करते हैं। अथवा फूलो की राख को तिल-तैल मे मिला सिर पर मलते हैं, अथवा हुक्के की गुल को कडुवे तैल मे पीस कर लेप करते है। गज मे लाभ होता है।

जू के नाश के लिये—तम्बाकू को पानी मे घोलकर बालो पर मसलते, और ऊपर कपडा बाध देते है। फिर ३ घटे बाद रीठे के पानी से धो डालते है।

(११) व्रणो पर—(ताजे क्षत पर)—इसके पत्तो को गरम कर तैल मे भिगोकर लगाते है। व्रण की पीडा पर—पत्तो को पीस कर लेप करते है। व्रण से रक्तस्राव होता हो, तो पत्र की भस्म को मिट्टी के तैल मे मिलाकर लगाते है। अथवा इसके पत्तो को गुलाबजल मे पीसकर लगाते हैं। व्रण मे कृमि हो गये हो तो हुक्के के पानी से धोते हैं। सर्व प्रकार के फोडो पर तथा नासूर पर—हुक्के की गुल को पानी मे पीसकर लगाते है।

विद्रधि पर—इसके पुष्पो को पीसकर पुल्टिस बना बाधने से वह शीघ्र पक कर फूट जाती है।

जानवरो के व्रणो मे कीडे पड गये हो तो—इसके पत्र को ठठल सहित महीन पीसकर, चूर्ण को व्रणो मे भर देते हैं।

नेत्र-विकारो पर—प्रारम्भिक मोतियाबिंद, रतौंधी, तथा धुन्ध पर—हुक्के की नै मे जो मैल एकत्र होता है, उसे सलाई से नेत्र मे लगाते हैं। अथवा—देशी तम्बाकू १ तो०, रेंडी-तैल ४ तो०, दोनो को १२ घन्टे खरल कर, रात्रि मे सोते समय एक सलाई प्रतिदिन नेत्रो मे लगाते है, इससे प्रारम्भिक मोतियाबिन्द पर लाभ होता है।

(हकीम मौ० मोहम्मद अब्दुल्ला साहब)

नेत्राभिष्यन्द मे—पत्र-चूर्ण का अंजन करते हैं। कीचड आना बन्द होता है।

रतौंधी पर अन्य योग—तम्बाकू का धुआ जो चिलम मे जम जाता है, उसे खुरच कर, उतना ही साबुन मिला गोली बना लें। रात को सोते समय यह गोली दो बूद पानी मे घिस, सलाई मे लगावें शीघ्र लाभ होता है। (धन्वन्तरि)

(१३) चर्म-विकार—खुजली गीली, छाजन, उकवत आदि पर—इसके १ तो० पत्र को ४० तो० जल मे १२ घन्टे भिगोकर, इस जल से प्रक्षालन करते हैं। अथवा—पत्र को गुलाबजल में घोटकर लेप करते हैं।

श्वेत कुष्ठ, छीप आदि पर—इसके बीजो के तैल की मालिश प्रतिदिन करते है।

उपदश के चट्टे या घावो पर—इसके बीजो के तैल की मालिश प्रतिदिन करते है।

उपदश के चट्टे या घावो पर—इसके फूल ६ मा०, गेहू २ तो०, सुहागा १ मा०, सज्जी १ मा० और आमला १ तो० सबको पीसकर लेप बनाकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है। (हकीम जी)

(१४) विष-विकार पर—सर्पविष पर लगभग ५ तो० तम्बाकू-चूर्ण को १० तो० पानी मे भिगोकर मसल कर छान कर, पिला दे। यदि सर्पदष्ट व्यक्ति बेहोश हो, तो मुख खोल कर गले मे डाल दे, यदि उसका मुख बन्द हो, न खुलता हो, तो इसे नासिका द्वारा अन्दर प्रविष्ट करें। लगभग ५ मिनिट के बाद वह वमन करना प्रारम्भ करेगा, और विष का असर दूर होगा, और लगभग १ घन्टे मे वह ठीक हो जावेगा। देहाती लोगो को ज्ञात है कि सर्प, तम्बाकू के खेत मे कभी नही जाता। अत तम्बाकू उसके विष का एक उत्तम अगद है। (नाडकर्णी)

अथवा—१ तो० (व्यसन न हो, तो ६ मा०) तम्बाकू को एक सेर पानी मे, मसल-छान कर आधा पानी पिलादें। आध घन्टे मे कोई असर न हो, तो शेष पानी पिलाने मे थोडे ही समय मे वमन विरेचन, मूत्र व स्वेद द्वारा रक्त मे भी लीन हुआ विष बाहर निकलने लगता है। रोगी फिर शीघ्र ही विष-मुक्त हो जाता है। सर्प के दश-स्थान को भी, हो सके तो तम्बाकू के पानी मे डुबो दें या तम्बाकू के पानी की पट्टी उस पर रक्खें—किन्तु यह उपचार काले नाग के विष पर व्यर्थ है। अन्य प्रकार के सर्प-विष पर हितकारी है। (गां० औ० र०)

हकीमजी अपनी तम्बाकू के गुण व उपयोग नामक पुस्तक मे लिखते हैं, कि एक गिलास पानी मे १ तोला तम्बाकू खाने की हो या पीने की कोई भी लेकर, अच्छी तरह मिलालें। जब पानी का रग लालिमायुक्त हो जाय, वस्त्र मे छानकर पिलादे। थोडी देर मे वमन द्वारा विष दूर हो जावेगा। तीन दिनो के सेवन से पूर्ण लाभ होता हैं। उक्त प्रयोग की मात्रा (प्रति मात्रा मे १ गिलास पानी मे १ तो० तम्बाकू) दिन मे ३ बार देवे। विष का प्रभाव कम होने पर केवल एकबार पिलावें। तथा सर्पदश-स्थान पर तम्बाकू की टिकिया बाध दें।

इस उपचार के समय मे रोगी को कोई तर भोजन खाने को न दे। तीसरे दिन गरम दूध मे सोडाबाईकार्ब ३ मा० मिला कर पिलावें।

बिच्छू के विष पर—थोडी सी खाने की तम्बाकू लेकर, थोडा पानी मिला, हाथ की हथेली पर मलें, और यदि शरीर के दाये भाग मे बिच्छू दश हो तो बायें कान मे, यदि बायें भाग मे डक हो तो दाये कान मे कुछ बू दे इसमें से टपकाये, ईश-कृपा से दर्द शीघ्र शात हो जायगा। (हकीम जी)

कोई-कोई इनका धूम्रपान मुख मे भरकर दश-स्थान मे इसका धुआ देते है।

(१५) भगंदर पर—तम्बाकू का गुल तथा साप की केंचुल की भस्म, दोनो को कडवे तैल मे मिला भगंदर या नासूर पर लगाने से अच्छा लाभ होता है।

(गृह-चिकित्सा)

भिड, शहद की मक्खी या बर्र के काटने पर—इसके हरे पत्ते कूट कर, रस निचोड कर, उसमे एक लोहे के टुकडे को घिसकर दंशित स्थान पर लेप कर दे। पूर्ण आराम होगा। (हकीम जी)

अथवा उस स्थान पर शुष्क तम्बाकू को पानी मे पीस कर लेप करने से भी विष नष्ट होता है।

कुत्ता काटने पर—इसे महीन पीस पानी मे घोल कर तथा थोडा गुड मिला पिलाते है। वमन द्वारा विष निकल जाता है। अथवा—हुक्के का पीला दुर्गन्धित पानी पिलाते हैं।

कुचले के विष पर—प्रारम्भिक अवस्था मे, जब कुचले का विष आमाशय मे ही हो, तो इसका हिम या फाट बनाकर पिलाते हैं। वमन द्वारा निकल जाता है। आत्र मे भी कुछ गया हो तो विरेचन द्वारा निकल जाता है। रक्त मे लीन होने के पूर्व ही यह उपचार लाभकारी है। (गा० अ० र०)

विशिष्ट योग—

(१) क्षार-तम्बाकू—देशी तम्बाकू जो बहुत कडवी हो, १ सेर लेकर, जलाकर, राख को ३ सेर पानी मे डाल रक्खें। उसे तीसरे दिन लकडी से हिला दिया करे। १० दिन बाद उसके पानी को निथार कर मद आच पर पकावे। सब पानी उड जाने पर, पात्र की तली मे जो श्वेत नमक सा जमा रहेगा उसे खुरच कर, महीन पीस, शीशी मे सुरक्षित रक्खे।

इसे १ रत्ती लेकर ४ नग लौंग के साथ पीसकर पीडा-स्थान पर लेप करने से आधाशीशी का दर्द शीघ्र दूर होता है।

इसे नियमपूर्वक प्रतिदिन सुरमा की भाति नेत्रो मे लगाने से नेत्रो की पीडा दूर होती है।

जीर्ण-कास श्वास पर—½ से १ रत्ती की मात्रा, पान मे रखकर खिलाया करे। शुष्क कास हो, तो इसे मक्खन मे मिला सेवन करे। (खटाई, तैल की वस्तुओ से परहेज रक्खे)

नासूर के घाव को नीम के पानी से धोकर प्रतिदिन इस क्षार को उसमे भर दिया करे।

तम्बाकू के फूलो का भी क्षार बनाया जाता है—शुष्क फूलो को पानी मे डालकर १० दिन पडा रहने दें, प्रति तीसरे दिन उसे हिला दिया करे। फिर मन्द आच पर रख क्षार बनाले। यह क्षार भी उक्त प्रकार से काम मे लिया जाता है।

अथवा—सूखे फूलो को एकत्रित कर २-३ बार जलाले। श्वेत रग की राख (या क्षार) हो जावेगी।

(हकीम जी)

२ तेल तम्बाकू—इसके बीजो का तेल, कोल्हू मे पेर कर निकाला जाता है; यह हरिताभ पीतवर्ण का गध रहित, उडनशील होता है। प्राय १०० तोले बीजो से ३५ तोले तेल निकलता है।

तम्बाकू-पत्रो को औटाने से भी एक प्रकार का गहरा भूरा, चर्परा, कुछ तम्बाकू सी गन्ध वाला तेल निकलता है, जो महान विषैला होता है।

किंतु साधारण कार्य के लिए—इसके हरे पत्रो को कुचल कर, रस निचोड लें। इस रस मे बराबर वजन तिल-तेल मिला, हल्की आच पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर शीशी मे भर रखे।

यदि हरे पत्ते न मिलें तो इसके सूखे पत्तो मे १६ गुना पानी मिला, रात भर रखें। प्रात पकावे। चतुर्थांश पानी शेष रहने पर छानकर, उसमे बराबर तिल-तेल मिला तेल सिद्ध कर ले।

पायरिया रोग पर—दातो व मसूडो पर यह तेल रात्रि समय लगाकर सो जावें। प्रात बहुत कुछ लाभ होगा। दात व मसूढो की पीडा भी दूर होगी।

सिर पर—जू, चिलुए या लीख हो जाने पर इस तेल की मालिश सिर पर करे।

बच्चो के सिर मे—बहुधा छोटी-छोटी फुंसिया हो

जाती है, इस तेल को फुरहरी मे लगा दिया करें।

रक्त-विकार के कारण यदि शरीर पर छिलके से जम गये हो, तो इस तेल से नष्ट हो जाते है।

गठिया पर इस तेल की मालिश से लाभ होता है। यह तेल गहरे से, गहरे पुराने जख्मो व नासूरो पर भी अच्छाकाम करता है।— (धन्वन्तरि)

फाट तम्बाकू–१ रत्ती तम्बाकू को १ पाव उबलते हुए पानी मे डाल, नीचे उतार कर ढक देवें। आध घटे वाद छानकर काम मे लावें। यह फाट आवश्यकतानुसार पिलाने, व्रण आदि के प्रक्षालन करने आदि मे उपयुक्त है।

मात्रा—शुष्क-पत्र आध से १ माशा। ताजे पत्रो का रस १/८ मे आध तोला तक। वमनार्थ-३ से ६ माशे तक सोच समझकर दी जाती है, क्योंकि इसकी पत्तियो का चूर्ण ४ मे ८ माशा तक की मात्रा मे घातक होता है। वैसे तो साधारणत १ से २ तोला तक की मात्रा मे यह घातक होता ही है।

इसका सत्व-निकोटिन १ से ४ बूद तक की मात्रा मे घातक है।

तम्बाकू की घातक मात्रा से होने वाले तात्कालिक लक्षण——

मुख व कठ मे दाह, अन्नप्रणाली-सहित आमाशय मे दाह-युक्त पीडा, अति लालास्राव, उत्क्लेश, वमन, अतिसार (किसी किसी को, सब को नहीं), भ्रम, मूर्च्छा, कम्प, शीताङ्गता, श्वास मे कष्ट, सज्ञानाश आदि होकर अन्त मे हृदयावसाद या हार्टफेल होकर मृत्यु। इस हृदयावरोध को टोबेको हार्ट (Tobaccc heart) कहते हैं।

इसके भक्षण, धूम्रपान आदि किसी भी प्रकार के अति प्रयोग मे शरीर मे प्रविष्ट हुआ विष रक्त, वात नाडियो एव अन्यान्य सूत्रो को और मासपेशियो को भी प्रभावित कर डालता है जिसे तम्बाकू का व्यसन नहीं है उसे लक्षण तो तत्काल होते है। किंतु अधिक दिनो तक इसके भक्षण या धूम्रपान करने वाले व्यसनी को इसके जीर्ण विष के लक्षण इस प्रकार होते है।

अग्निमाद्य, दाम, कम्पन, हृद्दौर्बल्य, मूर्च्छा, नाडी की तीव्रता या अनियमितता, स्मृतिभ्र श, अनिद्रा, मुखपाक, दृष्टिमाद्य, नपु सकता, शीघ्र ही बालो का पकना (पलित), वृक्क एव यकृत के रोग, ज्ञानेन्द्रिय-दौर्बल्य, दातो की मलिनता आदि। मनुष्यो की तो बात ही क्या? इसका धु आ वृक्षो व पौधो को भी भयङ्कर हानि पहुँचाता है। इसका धु आ जिस पौधे को लग जाता है। वह शीघ्र ही मुर्झा जाता तथा फिर पनपता नहीं है।

इसका धूम्रपान (भक्षण, सू घने आदि की अपेक्षा) अधिक अनिष्टकारी होता है। क्योंकि किसी भी विष के धूम्र का अनिष्ट परिणाम, जितना सर्व शरीर व्यापी होता है, उतना अन्य प्रकार मे नहीं होता, ऐसा वैज्ञानिको–का अनुभव युक्त कथन है। उक्त जीर्ण विष के लक्षणो के अतिरिक्त इससे (विशेषत धूम्रपान से) निस्सन्देह होठ, मुह, गला, श्वासनलिका एव फुफ्फुस आदि स्थानो मे कैन्सर होना है। इसीलिए अमेरिका की कैन्सर सोसाइटी के अध्यक्ष डा० आल्टन ओचस्नर ने घोषित किया था कि तम्बाकू के किसी भी प्रकार के उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा देना ही अच्छा है।

इसके धूम्रपान आदि से स्त्रियो को और भी अधिक हानि उठानी पडती है–जननेन्द्रियो की ग्रन्थियो असमय मे ही निर्बल होजाने से स्त्रीत्व-शक्ति का ह्रास, बन्ध्यत्व-होना, सौन्दर्य नष्ट होना तथा शीघ्र ही बुढापा आ जाना होता है। किसी-किसी को प्राय बार-बार गर्भस्राव, गर्भपात भी होता है। यदि कोई सन्तान हुई भी तो स्तनपान द्वारा उसके शरीर मे इसके विष के कुछ अ श पहुचने मे वह शीघ्र ही रोग ग्रस्त होकर अकाल मे ही काल कवलित हो जाता अथवा वह सर्व प्रकार से दुर्बल रहता है। डा० रिचार्डसन का कथन है, कि–जो माता-पिता-तम्बाकू का सेवन करते है, उनकी सतान अवश्य ही मानसिक व शारीरिक दुर्बलताओ से ग्रस्त रहती है।

तम्बाकू के उक्त अनिष्ट परिणामों से बचने के उपाय–

उक्त तात्कालिक विष-लक्षणो की स्थिति मे–तुरन्त ही मदनफल (मैनफल) के क्वाथ आदि वमन कारी द्रव्यो द्वारा वमन करा देना श्रेयस्कर होता है। टेनिन युक्त उष्ण जल से आमाशय-प्रक्षालन भी कराया जाता

है। आक्सिजन सुधारा जाता है। सिर पर भी शीतल उपचार करते है।

उक्त जीर्ण विष के अनिष्टो के निवारणार्थ—तम्बाकू का सेवन सर्वथा बन्द कर देना चाहिए या शनै शनै थोडा २ करते हुए इन बन्द कर दे। साथ ही ओज-वर्धक पदार्थ-घृत, दुग्ध (विशेषत ताजादुग्ध) आदि का सेवन अधिक मात्रा मे करते रहना चाहिए। इलायची, वच-किसमिस, बादाम आदि मेवा के चबाते रहने से भी इसका व्यसन छूट जाता है।

ध्यान रहे, यद्यपि इसके खाने पीने से, कभी-कभी हाजमा ठीक रहता है, किंतु व्यसन रूपमे अधिक सेवन से, फेफडे व आसो की खराबी आदि उक्त विकारो का शिकार होना पडता है। अत इसका त्याग ही परम श्रेयस्कर है। यह उष्ण प्रकृति वालो के लिए तथा हृदय व मस्तिष्क के लिए महाहानिकर है।

धूम्रपान विषयक आयुर्वेदीय सम्मति—

आयुर्वेद मे जिस धूम्रपान के विषय मे कहा है[1] कि आत्मवान पुरुष को स्नान भोजन, वमन के बाद तथा छीक-आने, दतधावन करने, नस्य लेने, अजन करने एव नीद के बाद धूम्रपान करना चाहिए,, वह धूम्रपान आधुनिक विषैले धूम्रपान से सर्वथा भिन्न है। उससे तो सिर का भारीपन, सिरदर्द, पीनस आधासीसी, कर्णशूल आदि कई व्याधिया दूर होती है, ऊर्ध्वजत्रुगत वातकफ जन्य विकारो की शान्ति होती है। शास्त्रोक्त धूम्रपान यथाविधि सयम-पूर्वक ही किया जाता है, अत आत्मवान शब्द की योजना की गई है।

ध्यान रहे, ऊर्ध्वजत्रुज वातकफात्मक विकार प्राय प्राण व उदान वात, साधक व आलोचक पित्त, तथा क्लेदक, बोधक व तर्पक कफ के दूषित होने से ही हुआ करते हैं। अत धूम्रपान मे उपयोगी द्रव्य इन दोषो के विकृति-नाशक होना आवश्यक है। तथा वे द्रव्य कषाय, कटु, मधुर व तिक्त रस प्रधान होते हुए चित्त प्रसन्न कारक एव सुगन्धित हो, मदकारी न हो, इसी दृष्टि से वसा, घृत, मोम, जीवक, ऋषभक (मधुरस्क-धोक्त) मधुर और श्रेष्ठ द्रव्यो द्वारा युक्तिपूर्वक स्नेहिनी वर्ति बना कर स्नेहनार्थ धूम्रपान करने के लिए तथा अपराजिता, मालकागनी, हरताल, मैंनसिल, अगर तेज-पत्र आदि गन्धयुक्त द्रव्यो का धूम्रपान शिरोविरेचनार्थ कहा गया है (देखिए चरक सू० अ० ५ श्लोक २२ से ३२ तक)

[1] स्नात्वा भुक्त्वा समुल्लिख्य क्षुत्वा दन्तान्निघृष्य च। नावनाजन निद्रान्ते चात्मवान् धूमपो भवेत्॥ तथा वातकफात्मानो न भवन्त्यूर्ध्वजत्रुजा। रोगा. इत्यादि (च० सू० अ० ५)

तम्बाकू-जंगली (*VERBASCUM THAPSUS*)

तिक्ता या कुटकी-कुल (Scrophulariaceae) के इसके पौधे, देशी तम्बाकू के पौधे जैसे किन्तु कुछ भूरे, पीतवर्ण के एव अधिक रोमश, पत्र- बर्च्छी जैसे, पाच खण्ड युक्त, ऊपरी भाग चिकना, निम्न भाग रोमश, पत्ते लुआबदार एव कडुवे, पुष्प—पीतवर्ण के पोहकरमूल जैसी गध वाले, फली—लम्ब-गोल, बीज-छोटे अति कडे होते है।

यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से भूटान तक पायी जाती है।

नाम—

सं०-अरण्य तम्बाकु। हि०-जगली या वन तम्बाकू गीदड तमाखु अं०—ग्रेट मुलियन (Great-mulein), ले०—व्हर्बेस्कम थेपसस।

रासायनिक सघटन—

इसके पुष्पो मे एक पीतवर्ण का उडनशील तेल, वसायुक्त क्षार, फास्फोरिक एसिड, फास्फेट लाईम, आदि व पत्तो मे—एक चमकीला मोम, किंचित् उडनशील तेल, राल ७८ प्रतिशत, कुछ टेटिन, एक कटुतत्व, व पिच्छिल द्रव्य आदि पाये जाते है।

प्रयोज्याग—पत्र, पुष्प, मूल और तेल।

गुणधर्म व प्रयोग—

कटु, तिक्त, रूक्ष, उष्णवीर्य, कफनाशक, मूत्रल, वेदनाहर, धातुपरिवर्तक है, तथा कास, आक्षेप, श्वासवात, सधिवात, अतिसार, यक्ष्मा आदि मे प्रयुक्त है। यह

यक्ष्मा की प्रारम्भिक अवस्था मे फुफ्फुसो के विकारो का प्रति-बंधक है।

पत्र—स्निग्ध, मृदुकर, वेदनाशामक, आक्षेपहर, मूत्रल व स्वापजनन है।

(१) इसके पत्र-चूर्ण को चिलम या हुक्के मे भरकर धूम्र पान करने से कास, श्वास, और क्षय मे लाभ होता है।

(२) कास, कृच्छ्रश्वास, एव दाहयुक्त पीडा पर—२ या २॥ तोला पत्तो को २॥ पाव गोदुग्ध मे उबाल कर आधा शेष रहने पर छानकर दिन मे दो बार या केवल एक बार रात्रि मे सोते समय, थोडा मीठा मिला कर पिलाते हैं। यक्ष्मा मे भी इससे लाभ होता है।

(३) श्वास पर—इसके पत्तो के साथ, देशी तम्बाकू, आक-पत्र और मुलैठी लेकर मटकी मे भरकर कपड मिट्टी कर ६० उपलो की आग मे फूककर, अन्दर की भस्म को आधा से १ रत्ती तक मक्खन के साथ सेवन कराते हैं।

(४) अर्श पर—इस के हरे पत्रो का रस और रसाजन (रसौत) २-२ तो, नीम की निबोली व एलुवा १-१ तो इन सबको खरलकर इसमे और भी इसका पत्र रस मिला खूब घोट कर गोली बनाने योग्य हो जाने पर १-१ माशा की गोली बना ताजे जल से सेवन कराते हैं। १४ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। सेवन-काल मे घृत व दुग्ध अधिक सेवन कराते हैं।

(५) शोथ पर—पत्रो को गरम कर, उस पर कुछ तेल चुपडकर बाधते है।

मूल—इसकी जड ज्वरनाशक है। इसका क्वाथ ज्वर, शिर दर्द और आक्षेप मे दिया जाता है।

तमाखू जगली
VERBASCUM THAPSUS LINN

बीज—सज्ञाहर, निद्राजनक, वाजीकरण तथा मछलियो के लिये मारक विष है।

तैल—और पुष्प—जीवाणुनाशक, कानो की पीडा, शोथ एव जलन को दूर करने वाला तथा बालको के मूत्रस्राव मे उपयोगी है।

तमाल—दे०—ओटफल और दालचीनी मे। तरज—दे०—नीबू बिजौरा। तरजबीन—दे०—जवासा मे।

तरबूज (Citrullus Vulgaris)

फल वर्ग एव कोशातकी—कुल (Cucurbitaceae) इसकी लता खरबूजे की लता जैसी किन्तु उससे भी अधिक दूर तक फैलने वाली, (कही कही यह ३०—४० फीट तक लम्बी), पत्र—हरिताभ श्वेत, रोमश, पचखड युक्त- चौडे अनीदार, किनारे कटावदार, पुष्प—हरिताभश्वेत रग के गोल, १ इच व्यास के, (कही कही हरे या काले रग के), फल, गोल, कोई कोई लम्बगोल, गहरे हरे रगके, धारी युक्त, साधारण १ से ३ सेर तक वजन के (कही कही ये फल १० से ३० सेर वजन के भी), कच्ची दशा मे इनका गूदा श्वेत होता है,ये प्राय शाक के काम आते

है। पकने पर गूदा लाल व किसी का श्वेत ही रहता है। जिस रग का फूल होता है, प्राय गूदा भी उसी रग का होता है। बीज—काले, लाल या श्वेत रग के चिपटे चमकीले होते है। काले बीज वाले फल का गूदा गुलाबी या पीले रग का, लाल बीज वाले का लाल, गुलाबी या पीला, श्वेत बीज वाले का गूदा श्वेत होता है।

फलो को ही तरबूज कहते हैं। मारवाड, राजपूताना के ये फल बहुत बडे एव अच्छे मीठे होते है। सिंध व गुजरात में भी उत्तम तरबूज होते है। वैसे तो प्राय सर्वत्र ही नदी के किनारे की रेतीली भूमि मे प्राय पौष, माघ मे इसके बीज बोये जाते हैं, फाल्गुन, चैत मे फूल आते, वैसाख मे फलता और ज्येष्ठ मे पक कर खाने योग्य हो जाता है। भारतवर्ष के अतिरिक्त यह अन्यत्र बहुत कम होता है। इसी से यह हिन्दवाना कहाता है।

इसकी एक जाति के फलो का ऊपरी छिलका चित्रित-वर्ण का, भीतर गूदा पीला, बीज काले होते हैं। यह कार्तिक, अगहन मास मे बोया जाता है।

एक जगली जाति भी होती, जिसे गुजरात मे दिल पसद, सिंध देश मे मेली, ढेढमी आदि कहते हैं। ये प्राय शाक के ही काम आते हैं। सिंध के इसी जाति के एक कडुवे तरबूज को किरवुट कहते हैं, यह दस्तावर होता है। रेचनार्थ इसका उपयोग करते हैं।

नाम—

सं०-कालिन्दक, कालिग, सुवर्तुल, मांसफल इ.। हि०-तरबूज, हिन्दोना, हिन्दवाना, मतीरा। म०-कलिंगड। गु -तरबुच, कालींगडु। ब.-तरमूज, चेलना। अं -वाटरमेलन (Water melon) ले० सिट्रलस व्हलगेरिस।

रासायनिक सघटन—

इसके बीज मे ३० प्रतिशत एक पीला, चिकना, स्थिर तेल, तथा सिट्रोलिन (Citrullin) और प्रोटीड्स (Proteids) पाये जाते है।

प्रयोज्याग—फल, रस और बीज।

गुण धर्म व प्रयोग—

मधुर, शीतवीर्य, पित्तशामक, पौष्टिक, सर, तृप्ति-

तरबूज

CITRULLUS VULGARIS SHARD.
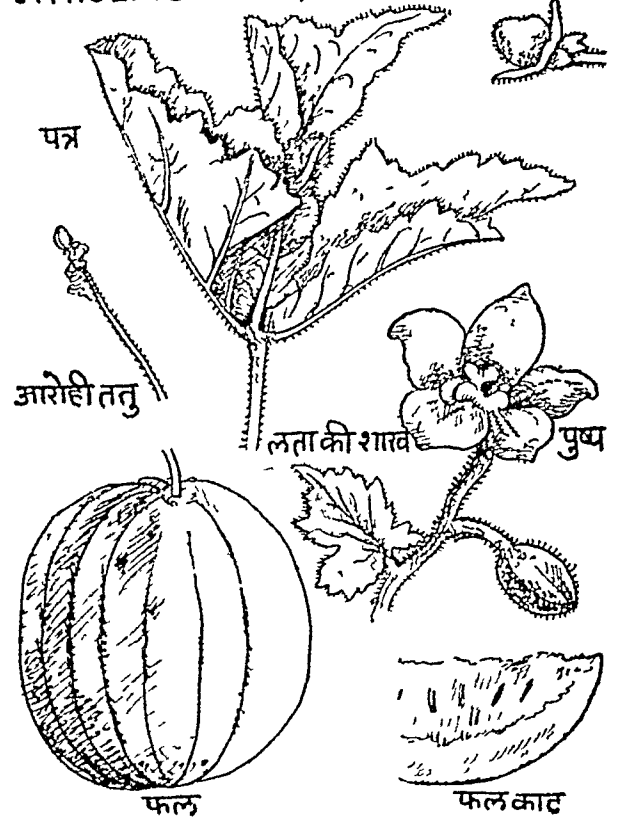
कारक, मूत्रल, कफ-वर्धक है, दाहशमनार्थ-विशेष उपयोगी है।

कच्चा फल—ग्राही, गुरु, शीतल, पित्त, शुक्र और दृष्टि-शक्तिनाशक है।

पका फल—उष्ण, क्षारयुक्त, पित्तकारक, कफवात-नाशक, वृक्काश्मरी, कामला, पाडु, पित्तज अतिसार, आत्रशोथ आदि मे उपयोगी है।

१ रक्तोद्वेग, पित्ताधिक्य, अम्लपित्त, तृष्णाधिक्य, पित्तज ज्वर, आत्रिकसन्निपात-ज्वर आदि मे पके फल का रस (पानी) पिलाते है।

२ मूत्र-दाह, सुजाक आदि पर—पके फल के ऊपर चाकू से चोकोर गहरा चीरकर एक छोटा टुकडा निकाल, उसके भीतर शक्कर भरकर फिर उसमे वह निकाला हुआ टुकडा पूर्ववत् जमाकर रात को बाहर ओस मे ऊपर खूटी आदि मे टाग देवें। प्रात उसके अन्दर के गूदे को

तरुलता (*QUAMOCLIT PINNATA*)

त्रिवृत् कुल (Convolvulaceae) की इस सूक्ष्म-लोमयुक्त लता के पत्र–पक्षाकार, ३-५ इञ्च लम्बे, २ इञ्च चौडे, पुष्प–१ इञ्च लम्बे पुष्पदण्ड पर पुष्प अल्प प्रमाण मे, लाल वर्ण के, नालिकार, ५ पखुडीयुक्त, ½ इञ्च व्यास मे, फल–४ खण्डयुक्त, ¼ इञ्च गोलाकार, चिकना, बीज–कृष्णवर्ण के होते है। वर्षा के अन्त मे फूल और फल आते है।

इस लता का मूल देश अमेरिका है। बगाल मे प्राय सर्वत्र बाग, बगीचो एव बजर भूमि मे पाई जाती है।

नाम—

सं०–कामलता। हि० व ब०–तरुलता (यह बगला नाम है)। कामलता। मराठी में बम्बई की ओर सीता चे केश। ले०–क्यामोक्लिट पिन्नाटा।

प्रयोज्याग—पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग—

बग देश के कविराज इसे अति स्निग्धकर मानते है। यह अर्श और व्रण-नाशक है।

अर्श पर—इसके पत्तो को पीस कर सेवन कराने से, या १ तो० पत्र-रस मे समभाग गोघृत मिला, दिन मे दो बार सेवन कराने से लाभ होता है।

पृष्ठ व्रण पर—पत्तो को पीस कर लेप करने से लाभ होता है। —भा० वनौषधि (बगला)

तरोई—दे०—तोरई।

तवाखीर[1] (*CURCUMA ANGUSTIFOLIA*)

हरिद्राकुल (Scitamınaceae) के इस छोटे गुल्म-जातीय क्षुप के पत्र–हल्दी-पत्र जैसे १-१½ फुट लम्बे, बरछी आकार के, तीक्ष्ण नोकदार, पुष्प–ग्रीष्म काल मे, १ फुट लम्बे, पुष्प-दण्ड पर पीत वर्ण के पुष्प, फल–

[1] यह अरारोट की ही एक जाति विशेष है, जिसका वर्णन भाग १ में है। इसका चित्र अरारोट के ही प्रसंग में दे दिया गया है। कई लोग उसे ही तवाखीर मानते हैं। इसकी C Leucorhıza, C Montana, C Aromatic आदि कई जातिया हैं।

तुगाक्षीरी—सुश्रुत के टीकाकार श्री डल्हण जी ने जिस तुगाक्षीरी के विषय मे—"वसलोचनानुकारी द्रव्य विशेष लिखा है, मालूम होता है प्राचीन काल में वस-लोचन के अभाव में यही प्रयोजित किया जाता था, सितोपलादि चूर्ण, च्यवनप्राशावलेह आदि मे यही डाला जाता था, जो वास्तव मे तवाखीर (तीखुर) ही है, जिसका वर्णन यहा दिया जा रहा है। तथा आधुनिक- काल मे भी असली वसलोचन के अभाव में इसे ही लेना विशेष लाभकारी है।

—सम्पादक
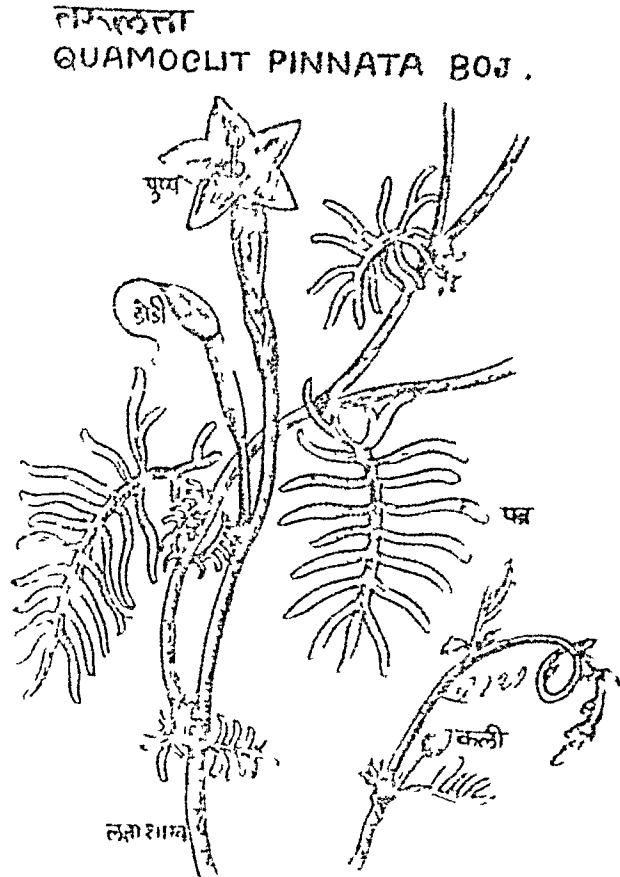
गोल अनेक बीजयुक्त होते है ।

इसके क्षुप पूर्व भारत मे अधिक होते है, तथा अरारोट के क्षुप पश्चिम भारत मे पाये जाते हैं ।

यह हिमालय के अयनवृत्त (Tropical) के प्रदेशो मे, तथा अवध, पश्चिमी विहार, उत्तर वगाल आदि मे पाये जाते है ।

यह हमारे भारत की एक खास सर्वमान्य प्रचलित वस्तु थी, और अब भी किंचित प्रमाण मे है । पाश्चात्यो ने अरारोट का ही विशेष प्रचार कर इसे तिरोहित सा कर दिया है । अरारोट भी एक प्रकार का तवाखीर ही है, जो कि अमेरिकन आरो नामक वनस्पति के कन्दो से सत्त्वरूप मे निकाला जाता है । वैसे ही प्रस्तुत प्रसग की तवाखीर भी उक्त वर्णित वनस्पति के कन्द या जड़ो के पास के मोटे भागो से सत्त्वरूप मे प्राप्त की जाती थी, जो कि अमेरिकन तवाखीर (अरारोट) की अपेक्षा कम शुभ्र, किंतु अधिक ग्राह्य गन्ध एव स्वादयुक्त होती थी । खेद है अब यह वाजार मे लुप्तप्राय हो गई है । जो कुछ प्राप्त होता है, वह भी मलावार और ट्रावनकोर से आयात होती है ।

नाम—

सं०—तवक्षीर, तुगाक्षीरी । हि०—तवाखीर, तवखीर, तवाशीर, तेखुर, तिकोरा । म०—तवाकीर, तवकीर । ब०—टिक्कुर । अ० करक्युमा स्टार्च (Curcuma starch), ईस्ट-इंडियन अरोरूट (East Indian arroroot)। लै०—कक्युमा आगस्टि फोलिया ।

रासायनिक सघटन—

इसमे स्टार्च, शर्करा, गोद और वसा होती है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, शीतवीर्य, मधुर, विपाक, सुगधित, स्निग्ध, पौष्टिक, कामोद्दीपक, वात-पित्त-शामक, ग्राही, हृद्य, मूत्रल, तथा क्षय, पित्त-विकार, कुष्ठ, दाह, अरुचि, अग्निमाद्य, तृषा, कास, श्वास, ज्वर, कामला, पाडु, वृक्काश्मरी, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, रक्तपित्त आदि मे पथ्यरूप मे प्रयुक्त होता है ।

(१) यह एक उत्तम शातिदायक, पौष्टिक पथ्य है । काजी, लपसी या रवडी बनाकर दी जाती है । कोष्ठगत वात, प्रवाहिका, ग्रहणी, हृद्रोग, अतिसार, शुक्र-दौर्वल्य मे तथा मथरज्वर, आत्र या मूत्र-नलिका के शोथ या व्रणो मे इसकी लपसी बनाकर देते है ।

(२) वार-वार मूत्र-प्रवृत्ति होती हो, किंतु मूत्र बहुत कष्ट से होता हो, तो इसकी बहुत पतली काजी (वार्ले-वाटर जैसी) वना, उसमे थोडा दूध व शक्कर मिला पिलाते है ।

(३) यह वालको के लिये, किसी भी रोग के वाद हुई कमजोरी को दूर करने के लिए, शक्ति-वर्धनार्थ उत्तम खाद्य है—इसे गोदुग्ध मे या जल मे पका, पतली रवडी जैसी वना थोडी मिश्री मिलाकर सेवन कराते है ।

(४) पित्त-विकारो पर—इसे घृत मे मिलाकर खिलाते है ।

(५) रक्त-प्रदर हर—इसमे राल और गेरू मिला, घृत के साथ सेवन कराते है ।

(६) दाह, अग्निमाद्य एव रूक्षता पर—इसमे थोडा इलायची-चूर्ण मिला शक्कर की चाशनी मे बनाई हुई वर्फी सेवन कराते है । यह शातिदायक, दीपन एव मार्दवकर पथ्य है ।

इसके शेष गुणधर्म अरारोट जैसे ही है ।

मात्रा—१-२ तो० विशेषत पेया के रूप मे दिया जाता है ।

ताड़ (*BORASSUS ELABELLIFERA*)

फलवर्ग एव नारिकेल-कुल (Palmae) के इस शाखाहीन, सीधे वृक्ष की ऊचाई ६०-७० फुट, काण्ड-स्थूल, गोल, २-३ फुट व्यास का, खुरदरा काला उत्सेध-युक्त, पत्र—काण्ड से निकले हुए ४-५ हाथ लम्बे, ३-६ इच चौडे, पत्र-दण्ड पर पत्र पखाकार ५-६ फुट लम्बे, उभरी हुई मोटी सिराओ से युक्त, चिमडे, कडे, धारीदार किनारी वाले, पुष्प—वसत ऋतु मे, कोमल, गुलावी व पीले रग के, एक लिंगी, पु जाति मे—अमलतास की फली

जैसे लम्ब गोल जटा या वालो के ऊपर ही ये पुष्प आते हैं। ये मोटी जटाये ही पुष्पदण्ड है। फल–शरद ऋतु मे, स्त्री जाति के वृक्षो के उक्त पुष्पदण्ड पर पुष्पो के स्थान पर, नारियल जैसे १५-२० फल, गोलाकार, कडे, कृष्णाभ धूसर, पकने पर पीताभ हो जाते हैं। कोमल कच्ची दशा मे फलो के भीतर कच्चे नारियल के दूधिया पानी के समान पानी होता है। पकने पर भीतर का गूदा सूत्र-बहुल, रक्ताभ पीत, मधुर होता है। बीज–प्रत्येक फल मे, अण्डाकार कुछ चपटे, कडे १-३ बीज होते है। ये फल प्राय वर्षाकाल मे पकते है।

ये वृक्ष भारत के उष्ण एव रेतीले प्रदेशो मे, तथा वर्मा व सीलोन मे अधिक होते है।

जिस प्रकार खजूरी वृक्ष से नीरा नामक रस (जो मदकर होने से ताडी भी कहाता है) प्राप्त किया जाता है, वैसे ही ताड वृक्ष से ताडी नामक रस प्राप्त होता है। इस पर पुष्पो के प्रारम्भ काल मे रस निकलना प्रारम्भ होकर वर्षा ऋतु मे वन्द हो जाता है। इस रस या ताडी को प्राप्त करने के लिये वृक्ष के शिखर पर पत्र-समूह के नीचे जो ताल-मजरी (Spadix) होती है उसके निम्न भाग पर लोह-शलाका से, शाम को ५-६ छेद करते है, जिससे यह रस स्रवित होने लगता है। उस पर मिट्टी का पात्र या कलईदार पात्र (चूने के जल से पोतकर) बाधते है। इस पात्र को प्रात उतार लेते हैं।

स्त्री-जाति के वृक्ष से नर-जाति की अपेक्षा १॥ गुनी अधिक ताडी प्राप्त होती है। प्रत्येक वृक्ष से प्रतिदिन कम से कम ७ सेर तक ताडी प्राप्त होती है। तथा प्रत्येक वृक्ष ६०-७० वर्ष तक इस प्रकार स्रवित होता रहता है। इस ताडी मे १३-१५% शर्करा होती है। अत इसकी गुड, शर्करा, दक्षिण भारत मे अत्यधिक प्रमाण मे बनाई जाती है।

वृक्ष के उगने के १०-१५ वर्ष के बाद इसमे फल आते हैं। इसकी आयु ८० वर्ष की मानी गई है, तथा यह अपने आयु काल मे एक ही बार फलता है। सीलोन की ओर उसकी एक ताड-पत्र नामक जाति होती है, जिसकी ऊचाई १५० फुट तक, तथा पत्रदण्ड सहित इसके पत्र १८-२० हाथ लम्बे होते हैं। ये पत्र कुछ मुला-

ताड़

BORASSUS FLABELLIFER LINN

यम होने से अब भी सिंहल द्वीप, कर्नाटक, द्रविड़ मे इन का उपयोग ग्रन्थ या मत्रादि लिखने मे किया जाता है। भूतकाल मे तो इन्ही पत्रो पर बडे बडे ग्रन्थ लिखे जाते थे। लिखने के पूर्व पत्रो को दूध, जल मे उबाल कर शुष्क कर, लोह-शलाका से, पक्की स्याही से लिखा जाता है। ये पत्र कागजो की अपेक्षा अत्यधिक वर्षों तक टिकते व सडते या गलते नही है। पत्रो से उत्तम पखे और छत्ते भी बनाये जाते है। ताड-पखो की वायु उत्तम त्रिदोपनाशक होती है।

ताड की ही एक जाति विशेष Metroxylon-Rumphii या Sagus Laevus लेटिन नाम के वृक्ष विशेपत वोर्नियो प्रदेश मे होते है। इनके पिण्ड के भीतरी भाग को खूब महीन कर बार-बार धोकर एव शुष्क कर साबूदाना (Sago) तैयार किया जाता है। इसमे स्टार्च की मात्रा प्रचुर परिमाण मे होती है। साबूदाना प्राय वोर्नियो मे विपुल प्रमाण मे तैयार किया

जाता और सर्वत्र भेजा जाता है। विशेष वर्णन माड़ूदाने के प्रकरण में यथास्थान देखिये।

चरक के मधुर स्कन्ध, कषाय स्कन्ध, पत्रासव में तथा कास, अश्मरी, शिरोरोग, क्षतक्षीण आदि के प्रयोगों में, तथा सुश्रुत के शालसारादि व शिरोविरेचन मधुरस्कन्ध में इसका उल्लेख है।

इसीकी एक जाति-विशेष माड़ी (माड) (Caryota urens) है। माडी का प्रकरण देखें।

नाम—

सं०-ताल, तृणराज, महोन्नत, लेख्य-पत्र इ०। हि० म० गु०-ताड़। बं०-ताल गाछ। अं०-पामीरा पाम (Palmyra palm)। ले०-बोरेसस फ्लेबेलिफेरा।

रासायनिक संघटन—

इसमें गोंद, वसा तथा अलब्युमिनाईडस पाये जाते हैं।

प्रयोज्यांग—मूल, पत्र, फल, पुष्पदण्ड, पुष्प, ताड़ी, बीज, छाल, क्षार।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, तथा वातपित्त-शामक, दाह-प्रशमन, वल्य बृंहण, ज्वरघ्न, त्वग्दोष-हर रक्त-शोधक व कफ-निःसारक है।

मूल—शीतल, कफ-निःसारक, सुगन्धित, मूत्रल, मूत्रकृच्छ्र वात, रक्तपित्त आदि में उपयोगी है। इसका स्वरस कुक्कुर-कास में देते हैं। कोमल मूल का रस हिक्का में देते हैं।

(१) मूत्राघात एवं पूयप्रमेह (सुजाक) जन्य मूत्र-दाह पर—इसके छोटे क्षुप के कोमल मूल की गोल गाठ या कंद को, चावल के धोवन में घिसकर या पीसकर, थोड़ी शक्कर मिला पिलाते हैं।

(२) उदर-कृमि पर—इसकी जड और सोंठ के समभाग चूर्ण को कांजी में पीसकर, थोडा गरम कर नाभि पर लेप करने से कृमि नष्ट होते हैं।

(भा० भै० र०)

(३) विषूचिका (हैजा) पर—इसकी जड को चावलों के धोवन के साथ पीसकर नाभि पर लेप करने से लाभ होता है। (भा० भै० र०)

(४) मूत्रातिसार पर—जड के साथ समभाग खजूर, मुलैठी, विदारीकन्द और मिश्री का चूर्ण कर (प्रातः-साय ३-३ मा०) शहद के साथ सेवन से लाभ होता है। (यो० र०)

(५) सुखपूर्वक प्रसवार्थ—वृक्ष के उत्तर दिशा की मूल को विधिपूर्वक लाकर कमर पर डोरे से बाधते हैं। कहा जाता है कि इसकी जड को मुख में रखकर चबाने से दांत स्वयं गिर पडते हैं, कोई कष्ट नहीं होता।

पत्र—कोमल-पत्र, रक्त-स्तम्भन, रक्त-शोधक, दाह-प्रशमन, कफ निःसारक, शोथहर, व्रण-रोपण, मस्तिष्क-बल-वर्धक है।

(६) रक्तस्राव, रक्तपित्त, दाह, उपदंश, रक्त-विकार, शोथ और व्रण में पत्रों का स्वरस दिया जाता है। उपदंश की द्वितीयावस्था में भी यह स्वरस लाभ-कारी है।

(७) सान्निपातिक ज्वरों में—पत्र-स्वरस का अनुपान रूप से प्रयोग करते हैं। इससे ज्वर, दाह, प्रलाप, आदि शांत होते तथा हृदय को शक्ति प्राप्त होती है।

(८) मेदो-वृद्धि पर—इसके पत्तों के क्षार को सम-भाग हींग मिला, चावलों के साथ सेवन करने से लाभ होता है। (वृ० नि० र०)

फल—मधुर, स्नेहन, पौष्टिक, मदकारक, मज्जा-वर्धक, कामोद्दीपक, कृमि-नाशक, त्वग्दोषहर तथा पित्त, दाह, तृषा, थकावट, वात-रोग, रक्त-विकार, मूत्र-दाह आदि नाशक है। अधिक मात्रा में विष्टंभी है।

कच्चा कोमल फल—गुरु, शीत, मधुर, स्निग्ध, पित्त-शामक, बृंहण, विष्टम्भी धातुवर्धक, तृप्ति कारक कफ-कारक, मांसवर्धक, तथा वात, श्वास, दाह, व्रण, क्षत, क्षय, रक्तदोष आदि में उपयोगी है। इसमें कच्चे नारियल जैसा अन्दर पानी होता है, जो पिया जाता है। यह दूधिया रस हिक्का में लाभकारी है। इसमें जोश देकर निकाला हुआ रस-पौष्टिक, मज्जावर्धक, कामो-द्दीपक, मादक, कफनिःसारक, तथा तृषा-दाहनाशक हैं।

९ कृशता पर—इसके गूदे के छोटे-छोटे टुकडे कर

तथा गुलाब जल मे तरकर मिश्री मिला, अल्प-मात्रा मे सेवन से दुर्बलता, कृशता तथा दाह तृषा, घबराहट दूर होती है। अधिक मात्रा मे यह दुर्जर है।

पका फल—वृष्य, हृद्दौर्बल्यनाशक, बहुमूत्रल, कफकारक, दुष्पच, तन्द्राकारक, पित्त, रक्तवृद्धिकर, अभिष्यन्दी, शुक्रकर है।

चर्मरोग मे—इसके गूदे का लेप करते है। मूत्रदाह मे-गूदा खिलाते है।

बीज—लघु, मधुर मूत्रल, मृदुरेचक, पित्तशामक, कफकारी, स्निग्ध, वातपित्तहर, रक्तपित्तनाशक, शुक्रवर्धक, कुछ मादक हैं। मूत्रकृच्छ्र मे हितकर है। ये सब गुण बीज की गिरी के है।

पुष्प-दण्ड जटा और पुष्प—प्राय इसके राख या क्षार की योजना की जाती है।

भस्म या क्षार-विधि—पुष्पदण्ड या जटाओ के टुकडे कर, मटकी मे बन्द कर, शराव सपुट एव कपड-मिट्टी कर, शुष्क हो जाने पर एक खड्डे मे रख कण्डो की आग मे फूंक दे। शीतल हो जाने पर अन्दर की भस्म को पीस छानकर शीशी मे भर रक्खे। यह लेखन, भेदन, आर्त्तवजनन एव उदर-विकार चर्म-रोगादि नाशक है।

१० उदर-सम्बन्धी विकारो पर—उक्त भस्म २ से ६ रत्ती तक, मुख मे डालकर ऊपर से बासी पानी पिलाते है। अजीर्ण, अम्लपित्त, अम्ल-वमन, भोजन के पश्चात् का उदर शूल, मदाग्नि आदि मे लाभ होता है।

पुष्पो की श्वेत राख या क्षार—शुष्क फूलो के गुच्छो को जलाकर श्वेत राख कर लेते है। या उक्त विधि से से जलाकर जो भस्म होती है, उसे क्षारविधि से क्षार निकाल कर काम मे लाते हैं।

११ हृदय की जलन पर या पित्त-विकार पर—इस राख या क्षार को पानी मे घोलकर पिलाते हैं।

१२ यकृद्दाल्युदर पर—उक्त राख या क्षार को थोडे पानी मे मिला पीडित स्थान पर लगाते है। छाला उठ कर लाभ होता है, प्लीहावृद्धि कम होती है।

१३ प्लीहावृद्धि एव गुल्म पर—उक्त राख या क्षार को गुड के साथ सेवन कराते है।

१४ जलोदर पर—पुष्प-गुच्छ को पेड से काटने पर जो ताजा रस निकलता है। जिसे ताडी भी कहते हैं उसे पिलाते है। इससे मूत्र-वृद्धि होकर लाभ होता है।

१५ मूत्र कृच्छ्र पर—पुष्प-मञ्जरी के उक्त रस मे दूध या घृत मिला कर सेवन कराते है।

ताडी—(ताजी) दीपन अनुलोमन, दाहप्रशमन, मूत्रल, वीर्यवर्धक, अग्नि-प्रज्वालनी, स्वाद मे कुछ खटमीठी है तथा—मूत्रकृच्छ्र, उदर कृमि, दौर्बल्य, शोथ आदि नाशक है।

इसे देर तक रखने से यह विशेष खट्टी एव मद और पित्तकारी तथा वात-नाशक होती है।

मूत्रकृच्छ्र पर—ताजी ताडी मे मिश्री मिला पिलाते है।

रोगोत्तर कालीन दौर्बल्य तथा नपुंसकता पर भी ताजी ताडी का सेवन करते है।

उदर-कृमिनाशार्थ—प्रात साय खाली पेट, इसे पिलाते है।

१६ पित्ताभिष्यन्द पर—पित्त-प्रकोप से आई हुई आखो मे ताजी ताडी से सिद्ध किये हुए घृत की बूंदें डालते है।

१७ प्रमेह पिटिका या जीर्ण क्षत पर—ताजी ताडी को चावल के आटे में मिला, मद आच पर पका पुल्टिस बना कर बाधते है।

१७ उर क्षत मे—इसे या कच्चे फल के रस को नित्य प्रात साय थोडा-थोडा सेवन कराते हैं।

१९ उन्माद पर—ताजी ताडी मे शहद मिला नित्य प्रात सेवन कराने से वातपित्त प्रकोप जन्य या मानसिक आधात जन्य उन्माद मे लाभ होता है। मन प्रसन्न रहता व अच्छी निद्रा आती है, नियमित उदर-शुद्धि होकर शरीर स्थूल व बलवान होता है। मानसिक निर्बलता दूर होती है।

(गा औ र)

२० रग-परिवर्त्तनार्थ—कुछ चिकित्सको का मत है कि सगर्भा स्त्री को दिन मे ३ बार ताडी को पिलाते रहने से काले माता-पिता की की सतान गोरी होती है।

नोट—मात्रा प्रतिदिन प्रातःइसे दो ग्लासों में उलट-पलट कर पीते रहने से यह सारक होती है। ताजी ताड़ी

जलोदर में लाभकारी है। बासी खमीर आई हुई, मधुमेही को हितकर, मूत्रल व जीर्ण सुजाक में भी लाभ करती है।

ताड-गुड, शर्करा या मिश्री—उक्त ताडी से जो गुड शर्करा या मिश्री निर्माण की जाती है, वह पित्त-शामक, पौष्टिक, विषनाशक, यकृद्विकार, जीर्ण सुजाक कालाज्वर, मथर-ज्वर (टाइफाईडज्वर) आदि मे लाभकारी है।

२१ काला ज्वर—जिसमे गले के भीतर छोटे-छोटे घाव हो जाने से रोगी खाने पीने मे असमर्थ होकर बहुत निर्बल हो जाता है, ऐसी दशा मे यह ताल मिश्री गरम पानी मे घोल कर सेवन कराने से अपूर्व लाभ होता है। इसमे—विटामिन 'बी' एव 'डी' पर्याप्त मात्रा मे होने से रोगी की निर्बलता शीघ्र दूर होती है।

२२. बालको की पुष्टि—बच्चा पैदा होने पर प्राय २-३ दिन माता का दूध नही पीता। तब उसे ग्लूकोज या गोदुग्ध दिया जाता है, जिससे कभी कभी उसे अतिसार हो जाता है। अत उसे यदि ताल मिश्री का घोल थोडा थोडा पिलाया जाय, तो अतिसार का भय नही रहता, तथा यथेष्टबल की वृद्धि होकर पुष्टि प्राप्त होती है। मधुमेह के रोगी के लिये यह लाभप्रद है।

छाल—ताड वृक्ष की छाल को जलाकर, उस कोयले या राख से मजन करने मे दात खूब स्वच्छ होते है।

छाल का क्वाथ बनाकर उसमे थोडा नमक मिला गण्डूष (कुल्ले) करने से मसूढे और दात सुदृढ हो जाते है।

विशिष्ट योग—

२३ ताड्यासव—शक्तिवर्धक, सग्रहण्यादि नाशक है।

ताजी ताडी ५ सेर ले, शुद्ध मटके मे भर, उसमे मिश्री ३ सेर और शहद १० सेर व धाय के फल आध सेर मिला, अच्छी तरह सधान कर लगभग ११ या १५ दिन रख कर छान ले।

मात्रा—१-२ तो तक, थोडा ताजा पानी मिलाकर सेवन करने से शक्ति बढता है, सग्रहणी एव तज्जन्य पाडु रोग, अफरा, अग्निमाद्य दूर होता है। क्षुधा वृद्धि होती एव शरीर मे जोश रह मन प्रसन्न रहता है।

अन्य आसवो के योगो को हमारे 'बृहदासवारिष्ट सग्रह' मे देखिये।

नोट—मात्रा—स्वरस—१-२ तो। ताडी—५-१० तो.। क्षार—१-२ माशा। गुड़ शर्करा या मिश्री १ तोला तक।

ताम्बरा कायमा) दे०—गेहूँ मे।

ताम्बूल (Piper Bettle)

गुडूच्यादिवर्ग एवं पिप्पली या मरिच-कुल (Piperaceae) की इस बहुवर्षायु, प्रसरणशील १५-२० फुट लम्बी लता का काण्ड—दृढ, कडा, ग्रथियुक्त स्थान पर मोटा, पत्र—३-८ इच लम्बे, अण्डाकार, या हृदयाकृति के प्राय ७ सिरा युक्त, चिकने, अग्रभाग मे नोकदार, पत्रवृन्त—लगभग १ इच का, पुष्प—काण्ड मे ही, अवृन्त गुच्छो, मे एक लिंगी, फल—गुच्छो मे छोटे २ लगभग ½ इच लम्बे, चपटे, मासल होते हैं। पुष्प—वसत मे तथा फल ग्रीष्म मे लगते हैं। फलो को पान-पिप्पली कहते है।

यह लता लकडी या बास के मडपो मे लगाई जाती है। इस प्रकार मडप या टट्टियो मे यह पालित लता ही प्राय सर्वत्र (भारतवर्ष मे) लगाई जाती है। किंतु कही-कही वृक्षादि के आश्रय से इसकी वर्द्धित लताए भी होती हैं, जिनके पान अत्यन्त कडुवे, बहुत छोटे, तथा सिराजाल से व्याप्त होते है। यह निकृष्ट कोटि के माने जाते हैं।

इसकी उपज भारत के उष्ण एव आर्द्र प्रदेशो मे विशेषत बिहार, मालवा, बनारस, महोबा, बगाल, उडी ा, दक्षिण भारत के बम्बई मद्रास आदि प्रान्तो मे तथा लका मे खूब होती है।

नोट (१)—देश-भेद से जैसे बगला, बनारसी (मगही) महोबा, साची (छपराही), महाराजपुरी, बिलोआ, कपूरी सुहागपुरी, फुलवा, रामटेकी (नागपुर के पास रामटेक

है) आदि इसकी कई जातियां हैं। तथा इन पानों के आकार, वर्ण, स्वाद, सुगन्ध और गुणधर्मों में भी न्यूनाधिक अन्तर पाया जाता है। राजनिघण्टकार ने श्री वाटी (सिरिपाडीपान), अम्लवाटी (अ वाटे पान), अम्लरसा (मालवा देशी पान), पट्टलिका (आध्र देशी पान), सतसा (सातसी पान) गुहागरे (गुहागर पान) और हंसणीया (समुद्रप्रान्ती पान) ऐसे इसके ७ भेदों तथा उनके भिन्न २ गुणों को दर्शाया है। बम्बई प्रान्त में काली श्वेत व वेलची (छोटी) नामक इसकी तीन मुख्य जातियां प्रचलित हैं।

(२) अपने यहां अतिप्राचीन काल से इसका व्यवहार मुखशुद्धि, सुगंधि एवं रुचिवृद्धि के लिये तथा देवपूजनादि शुभकर्मों एव उत्सवादि में सुस्वागतार्थ किया जा रहा है। प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रंथों में यद्यपि कोई खास औषधिप्रयोग में इसका उल्लेख नहीं है, तथापि चरक के सूत्रस्थान में मात्राशितीय अध्याय में रुचिसौगन्ध्य वर्धनार्थ जायफल, कस्तूरी, इलायची, कंकोल, सुपारी के साथ इसे मुख मे धारण करने का विधान है। तथा सुश्रुत के अन्नपान-विधि अध्याय मे भी इसकाउल्लेख है।

प्राचीन महाभारत, रामायण आदि ऐतिहासिक एव साहित्य-ग्रन्थो मे इसका प्रचुर उल्लेख मिलता है। इसकी उत्पत्ति के विषय मे वरई (तम्बोली, पान का धधा करने वाली जाति विशेष) लोगो मे यह कथा प्रचलित है, कि महाभारत-युद्धोपरान्त जब पाडवो को अश्वमेध प्रसग मे मागलिक कार्यार्थ इस प्रकार के विशिष्ट द्रव्य की आवश्यकता प्रतीत हुई, तब उन्होने पाताकलोक मे इसकी प्राप्ति के लिए वासुकी नाग के पास अपना एक दूत भेजा। वासुकी ने अपनी करागुली का अग्रभाग काट कर दिया और कहा कि इसे भूमि मे रोपण कर देने से पान की वेल उत्पन्न होगी, जिससे पाडवो को अभीष्ट पूर्ति होगी। पाडवो ने वैसा ही किया, और इसकी उत्पत्ति हुई। इसीसे इसे 'नागवल्ली' नाम दिया गया है।

फिर शनै २ इसके विशेप औपधि-गुणधर्मो के ज्ञान होनेपर वैद्यगण इसका व्यवहार औषधियो मे इसके रसकी भावनाएँ देने मे या अनुपान रूप मे करते रहे थे (जैसा कि अब भी किया जाता है) और वेश्याए या गाने बजाने के व्यवसायी लोग इसका खाने मे उपयोग करते थे। मुगल-काल मे इसका इस रूप मे अधिक प्रचार हुआ। यह एक ऐश आराम एव व्यसन की चीज हो गई। तब से दिन दूनी व रात चौगुनी इसकी इसी रूप में परिवृद्धि हुई, तथा आज समस्त भारत में, छोटे २ ग्राम, खेडो में भी इसका प्रचार हो गया है। और कुछ नही तो पानो की दूकान तो प्राय सर्वत्र ही देखी जाती हैं।
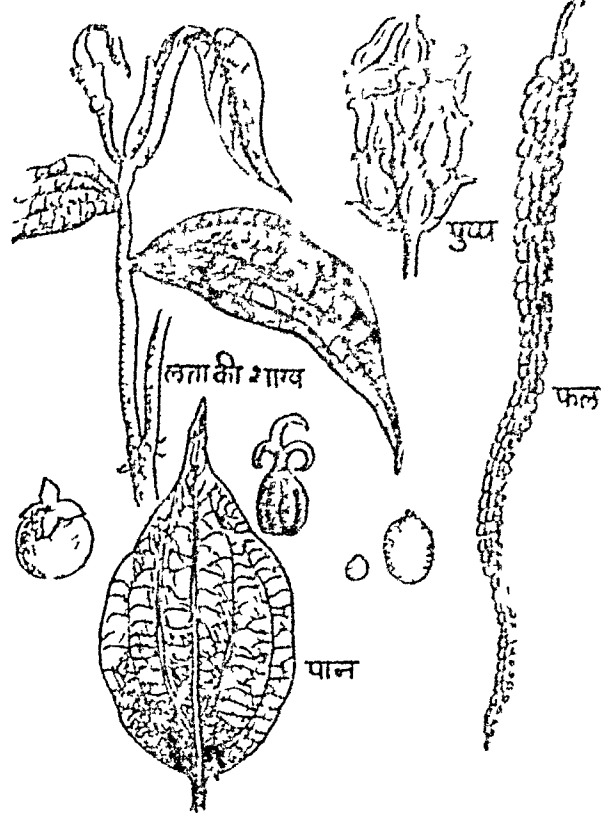
ताम्बूल (पान)
PIPER BETLE LINN.

नाम—

सं.-नागवल्ली, ताम्बूलवल्ली, ताम्बूली, पर्णवल्ली इ०। हि०—ताम्बूल, पान, नागरवेल इ०। म०-नागवेल, पानवेल, विडयाचेंपान। व —पान। गु०-नागरवेल। अं—बीटल लीफ (Betel leaf)। ले —पाइपर बीटल, चविका बीटल (Chavica Betle)

रासायनिक संघटन—

इसके पत्तो में एक सुगधित, हलके पीतवर्ण का, तीक्ष्ण वातनाशक, दाहकारक उडनशील तैल ४% तक होता

है। तथा इस तैल मे पत्तियो को विशिष्ट गधयुक्त करने वाला एव उनके व्यावहारिक महत्व को वढाने वाला फेनाल (Phenol), व एक अतिशीघ्र उडनशील, कार्वोलिक एसिड की अपेक्षा ५ गुना अधिक प्रतिदूषक (antiseptic) चविकाल (Chavicol), और पत्तो की तिक्तता व रूक्षता को अपनी मात्रा के अनुसार न्यूनाधिक प्रमाण मे रखने वाला सेस्क्विटर्पेन (Sesquiterpene) एव केडेनीन (Cadenene) नामक तत्व पाये जाते है। इसके अतिरिक्त कुछ स्टार्च, शर्करा एव कषाय द्रव्य भी पाये जाते हैं।

पुराने पानो की अपेक्षा नूतन पानो मे उक्त तैल, तथा डायास्टेस (Diastase) और शर्करा की मात्रा अधिक होती है।

उक्त उडनशील तैल कृमिघ्न है, तथा जुकाम, कठ-प्रदाह, स्वरनाली का भग, डिप्थीरिया (रोहिणी रोग) एव खासी मे लाभदायक है। डिप्थीरिया मे इस तैल की १ बूंद १०० ग्रेन पानी मे मिला कुल्ले कराने तथा इसका धुआ सूंघने से लाभ होता है। इस तैल के अभाव मे १ बूंद तैल के स्थान मे ४ पानो का रस लिया जा सकता है।

उक्त तैल एवं तत्वो के अतिरिक्त, सूक्ष्मान्वेषण से वैज्ञानिको ने ज्ञान किया है, कि प्राय. सब पानो मे न्यूनाधिक प्रमाण मे पियोरिन, पियोरिडिन, एरेकोलीन मरक्यूरिक आदि विषैले तत्त्व भी होते हैं। किन्तु वगला और मद्रासी पान मे इनकी मात्रा अधिक होती है। मद्रासी पान मे पियेरोवेटीन नामक विष की मात्रा अधिक होती हे, जो हृदय की गति को रोकती एव उसे शिथिल कर देती है। चूना, कत्था, सुपारी आदि के सम्मेलन से, विधिपूर्वक बनाए हुए, पान के बीडे मे उक्त विषैले तत्त्वो की मात्रा या उनका प्रभाव अधिकाश नष्ट हो जाता है। पान के डठल तथा अग्रभाग मे ये विषैले तत्त्व अधिक होते हैं। इसीसे भारत मे पान के डठल एव अग्रभाग को निकाल कर ही बीडा बनाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, फल और मूल। इसका फल पिप्पली के तथा मूल कुलिजन के प्रतिनिधि रूप से व्यवहृत होता है। कई लोग भ्रमवश इसकी मूल को हा कुलिजन मानते है। कुलिजन का प्रकरण देखिये।

गुण धर्म व प्रयोग—

पत्र—लघु, तीक्ष्ण विशद, कटु, तिक्त, कषाय, कुछ क्षार युक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य; तथा कफवातशामक, पित्तप्रकोपक, दीपन, पाचन, कातिकर, अनुलोमन, दुर्गन्धि-नाशक, मुखवैशद्यकारक, लालाप्रसेकजनन, हृदयोत्तेजक, वाजीकरण, शीतप्रशमन, कटुपौष्टिक, वशीकरण, व्रणरोपक, रक्तपित्तकर, वेदनाशामक हे। एव वातरक्त, पीनस, कास, क्लेद, कड्डू, कृमि, शोथ, ज्वर आदि मे प्रयोजित होता है। पान के १३ गुण नीचे श्लोक मे देखे[1]।

नवीन या अर्धपक्व पान—त्रिदोषकारक, दाहजनक, अरुचिकर, सारक, रक्तदूषक एव वमनकारक है।

जूना या पका पान ही जब कुछ दिन पानी से सिक्त करते हुए सुरक्षित रक्खे जाते है तब वे पक कर रुचिकर सुगधित कातिकर, बल्य, त्रिदोषनाशक, कामोत्तेजक हो अग्निमाद्य, विबन्ध, हृद्दौर्बल्य, हृदयावसाद, मुखरोग, प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभेद, उदरशूल, कृमिरोग, वहुमूत्र, ध्वजभग आदि मे उपयोगी होते है।

इसमे डायास्टेस (Diastase) की पर्याप्त मात्रा होने से, स्टार्च आदि पिष्टमय पदार्थो के पाचन मे इससे विशेष सहायता प्राप्त होती है। अत चावल आदि पिष्टमय पदार्थों के अधिक खाने वालो को इससे विशेष लाभ होता है।

इसमे जो सुगधित द्रव्य है, वह मस्तिष्क-केन्द्रो को उत्तेजित कर मन को प्रफुल्लित कर कामोत्तेजना करता है। फिर इसके साथ जायपत्री, कस्तूरी, कपूर, सुपारी आदि मिलाकर सेवन से कामोत्तेजना अधिक होती है।

---

[1] ताम्बूलं कटु तिक्तमुष्णमधुरं क्षारं कषायान्वितं,
वातघ्नं कफनाशनं कृमिहरं दुर्गन्धनिर्नाशनम्।
वक्त्रस्याभरणं विशुद्धिकरणं कामाग्निसंदीपनं,
ताम्बूलस्य सखे! त्रयोदश गुणाः स्वर्गेऽपि ते दुर्लभाः॥
अर्थ स्पष्ट है। ऊपर ये गुण आ चुके हैं। (ध. नि.)

जो निर्बल वीर्य वालो के लिये हानिकर होती है। कुछ व्यसनी लोग इसमे कोकेन रखकर खाते है, और अपनी कामवासना की पूर्तिकर शीघ्र ही मृत्यु के मुख मे जाते है।

कफ प्रधान रोगो मे यह विशेप लाभदायक होता है। तमक श्वास, नलिका-शोथ, स्वर यन्त्र-शोथ आदि मे—इसका रस पिलाते एव इसे ऊपर से बाधते है। सिर-दर्द पर पत्रो को कनपटी पर बाधते है।

ग्रंथि-शोथ, साधारण शोथ एव व्रणो पर पत्तो को गरम कर बाधने से शोथ व वेदना कम होती तथा व्रण अच्छा होता है। इससे दुर्गंध युक्त पूयमय व्रणो का शोधन होता है।

१ स्तन-शोथ—कभी-कभी प्रसूता स्त्री के स्तन्य-वेग की अतिवृद्धि होकर स्तन पर तीव्र वेदना-युक्त सूजन होती है। ऐसी दशा मे पानो को गरम कर बाधने से दुग्धवेग रुक जाता व सूजन कम होती है। अथवा पान के रस मे थोडा चूना मिला, गरम कर लेप करने या पान की लुगदी मे चूना मिला, पुल्टिस के रूप मे व्यवहार करने मे भी उचित लाभ होता है।

इसी प्रकार पार्श्वशूल आदि मे भी पत्तो को गरम कर या पुल्टिस रूप मे बाधने से लाभ होता है। किन्तु इस कार्य के लिए पके पान ही उत्तम होते है। क्योकि कच्चे पान मे जतुनाशक फेनाल की मात्रा अत्यल्प होती है।

२ बाल-रोगो पर—रोहिणी (डिप्थीरिया) नामक बालको को अधिक होने वाले घातक गले के विकार मे गरम पानी मे ४ पत्रो का रस मिला कुल्ले (गण्डूप) कराते है। अथवा ताम्बूल-तैल की १ बून्द की मात्रा को लगभग १० तो उष्ण जल मे मिला इसी प्रकार प्रयोग करते तथा उसकी वाष्प सुधाते है।

बालको के ज्वर, जुकाम और खासी पर, इसके रस का अनुपान रूप मे व्यवहार करते है। अर्थात् मुख्य औषधि के साथ इसके रस की २-४ बूदे मिलाकर सेवन कराते है।

बालक की छाती मे कफ भर गया हो तो पान पर रेडी-तैल चुपडकर, थोडा गरम कर छाती पर बाधने से कफ पतला होकर निकल जाता है।

बालक के अजीर्ण एव आध्मान मे इसके रस मे थोड़ा शहद मिला चटाने से अपानवायु की रुकावट दूर होकर शीघ्र लाभ होता है। शुष्क या कुकुर कास मे भी इससे लाभ होता है।

यदि कोष्ठबद्धता हो तो पान के डठल को रेडी-तेल मे भिगोकर या उस पर थोडा साबुन का फेन लगाकर गुदा मे प्रवेश कराने से मल निकल जाता है तथा उदर-शूल, अफारा और बेचैनी दूर होती है।

३ श्लीपद पर—प्रतिदिन इसके ७ पानो को पीस कर कल्क बना उसमे सेंधानमक (६ मा. तक) का चूर्ण मिला, जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

(वगसेन)

(यह प्रयोग २१ दिन सेवन कर, ३ दिन के लिये बन्द कर दे। यदि किसी कारण लाभ न हो तो भी हानि की कोई सभावना नही।)

४ नेत्राभिष्यन्द पर—पान के रस मे थोडा शहद मिला नेत्र मे डालने से नवीन विकार शीघ्र दूर होता है। रतौंधी मे भी लाभ होता है।

नेत्र की वात-पीड़ा पर भी उक्त प्रयोग अथवा पत्र-स्वरस की कुछ बूदें डालने से और पान पर घृत चुपड कर बाधने से लाभ होता है।

५ प्रतिश्याय पर—पान ३ नग और १०-१२ तुलसी-पत्र, इनके छोटे २ टुकडे कर या कतर कर १० तो पानी मे मिला पकावे। आधा शेष रहने पर छानकर उसमे १ तो शहद मिला दिन मे ३ बार पिलावें। प्रत्येक बार ताजा क्वाथ तैयार कर देने से उत्तम लाभ होता है।

अथवा—४ पानो का स्वरस निकाल, कुछ गरम कर पिलाने से भी लाभ होता है।

६ श्वास—श्वास का दौरा होने पर दो पानो का साधारण बीडा बनाकर उसमे काली मिर्च २ दाने और १ छोटी इलायची डालकर धीरे धीरे खूब चर्वणकर रस को निगलते रहने से श्वास का वेग कम होकर आराम मिलता है। वय एव प्रकृति के अनुसार काली-मिर्च २ से ५ तक डाल सकते है। वि योगो मे सर्वत ताम्बूल न १ देवे।

ताल मखाना (Asteracantha Longifolia)

गुडूच्यादि वर्ग एव वासा-कुल (Acanthaceae) के इसके द्विवर्षायु क्षुप २-५ फुट तक ऊ चे, जलासन्न स्थानो मे तथा धान के खेतो मे स्वय उत्पन्न होते हैं। काण्ड-ईख के सदृश, पर्वयुक्त, पतले, शखारहित (किसी मे समुखवर्ती शाखायें होती हे), चतुष्कोण, पत्र-पर्व-प थियो पर चारो ओर, गुच्छाकृति, दोनो ओर कुछ रोमश, तमाखू सदृश गंधयुक्त, स्वाद मे चरपरे, तथा पीतवर्ण के १ इच लम्बे, १-१ काटा प्रत्येक पत्र के नीचे होता है। कोकरण की ओर कोमल पत्रो का साग बनाकर खाते हैं।

पुष्प–उक्त पत्र व काटो के मध्य भाग मे या काड के चारो ओर नीले, भूरे या बैंगनी रग के, वृन्तहीन, आधा मे एक इच तक लम्बे, सहज मधुर गन्धयुक्त, फल–शीतकाल में पतले, चिपटे, ८ मि मि लम्बे, रेखाकार, कुछ नुकीले, चमकीले हरे, भूरे रग के ४ से ८ तक बीजयुक्त, बीज–चपटे, भूरे, विषमा कृति के, अन्दर से श्वेत, स्वाद मे फीके लुआबदार होते है। ये ही बीज-तालमखाना कहाते है। मूल-अ गूठे जैसीमोटी, भूरी, लाल, गध मे उग्र, स्वाद मे किंचित् कडुवी होती है। इसके क्षुप प्राय सर्वत्र, विशेषत बगाल, बिहार, कोकरण आदि मे प्रचुरता से पाये जाते है।

नोट--(१) इसकी एक जाति श्वेत पुष्प वाली भी होती है किंतु यह सर्वत्र प्राप्य नहीं है।

(२) चरक के शुक्रशोधन गण मे इसका उल्लेख है।

(३) आचार्य श्री वल्लभराम विश्वनाथ वैद्य जी इसे क्षीर-काकोली का एक उत्कृष्ट प्रतिनिधि मानते हैं। उनका कथन है कि यह अश्वगधा से अधिक शीतल एव पौष्टिक है। अत यह क्षीरकाकोली के नाम और गुण को भी विशेष सार्थक करता है। यूनानी--हकीम लोग इसका अधिक प्रयोग करते हैं- मै तो करता ही हू, तथा आख का तेज व स्मृतिशक्ति बढ़ाना, वीर्य का स्थिरीकरण करना आदि कई विशिष्ट गुण इसके बीजों म में देख भी चुका हू। (सचित्रायुर्वेद)

नाम—

सं०--कोकिलाक्ष (पुष्प के मध्य मे पीत विन्दु होने से), इक्षुगंधा (काण्ड में ईख जैसी गध आने से) इक्षुरक हि०- तालमखाना, कोलैया, गोखुला। म०--तालमखाना कोलसुन्दा, कालिस्ता, विखारा। गु० -एखरो। ब० कुले-खाडा काटाकलिका। अ --लाग लीव्हड बार्लेरिया (Long leaved barlaria) ले०--एस्टराकेंथा लागिफोलिया हायग्रोफिला स्पिनोसा (Hygrophila Spinosa)
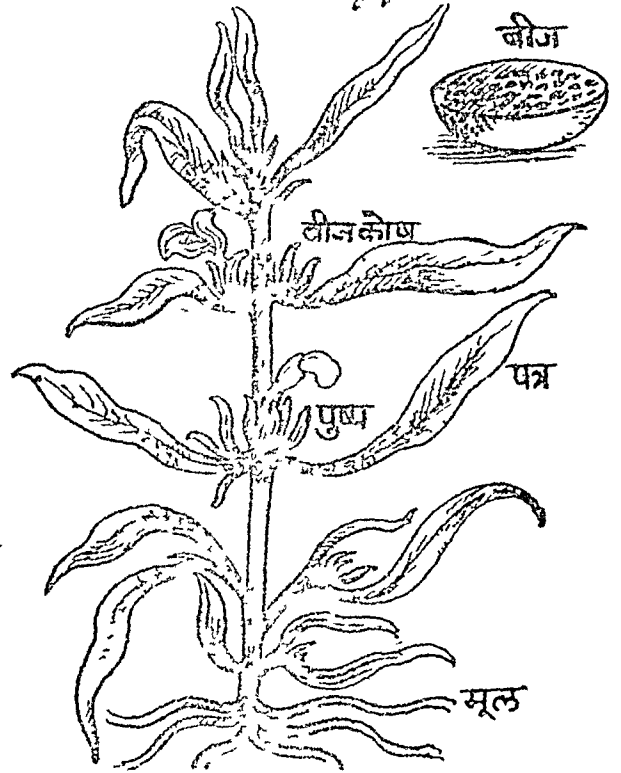
तालमखाना (कोकिलाक्ष)

Asteracantha Longifolia Nees.

बीज

बीजकोष

पत्र

पुष्प

मूल

रासायनिक सघटन--

बीजो मे–२१% मासल पदार्थ (अल्बुमिनाईड), कुछ क्षारतत्व तथा २१ से २३%एक पीताभ, मधुर, स्थिर तैल होता है।

प्रयोज्यांग— बीज, मूल, पत्र व क्षार या भस्म।

गुण धर्म व प्रयोग–

बीज—स्निग्ध, गुरु, पिच्छिल, मधुर, तिक्त, मधुर-विपाक, शीतवीर्य, वातपित्त-शामक, सतर्पक, शुक्रस्तम्भक,

वाजीकर, गर्भस्थापक, मलस्तंभक, यकृदुत्तेजक, मूत्रल, अनुलोमन, शोणितस्थापक, नाडी-बल्य, वृष्य व बृंहण है, शुक्रप्रमेह, स्वप्नदोष, आमवात, तृषा, नेत्रविकार, वातरक्त, दाह, पित्त, रक्तपित्त, रक्तातपता, मूत्र कृच्छ्र, अश्मरी व वस्तिशोथ आदि मे प्रयुक्त होते है।

प्रवाहिका मे—इसबगोल के समान इनका प्रयोग किया जाता है। नाडी-दौर्बल्य मे—बीजो का चूर्ण देते है।

प्रमेह मे—बीजो का क्वाथ मिश्री मिलाकर पिलाते है।

१ शुक्र-क्षय मे—बीज-चूर्ण १ भाग के साथ कौंच बीज का चूर्ण १ भाव और शर्करा २ भाग मिला, धारोष्ण दूध के साथ सेवन करे। यह उत्तम वाजीकरण योग है (सु चि अ २६) आगे योग न० ४ देखे।

२ वातरक्त मे—इसका क्वाथ या इसके पचांग का फाट पीने तथा इसके पत्तो का शाक खाते रहने से शीघ्र-लाभ होता है—(वा चि अ २२)

३ प्रमेह पर—बीज-चूर्ण के साथ, खरेटी, गगेरन, व गोखुरू का समभाग चूर्ण-लेकर, तथा सबके समभाग मिश्री मिला, ४ मा की मात्रा मे दूध से सेवन करते हैं। अथवा—बीजो को दूध मे पका कर सेवन करते हैं। आगे वि योगो मे प्रमेहान्तक चूर्ण देख।

४ धातुपुष्टि तथा कामशक्तिवर्धनार्थ—बीजो के साथ गोखुरू, शतावर, कौंच—बीज (छिलके रहित), नागवला (गुलशकरी), तिल व उडद समभाग चूर्ण कर, रात्रि के समय ४-६ मा तक, दूध के साथ सेवन करे (ग. नि)। अथवा—

बीज-चूर्ण के साथ श्वेत मुसली व छोटे गोखुरू का चूर्ण मिला, धारोष्ण दुग्ध के साथ, शक्कर मिलाकर सेवन करें।

अथवा—केवल इसीका चूर्ण शक्कर मिला सेवन करे। और ऊपर से धारोष्ण दूध लेवें। आगे वि योगो मे पाक देखे।

५ अतिसार पर—बीजो का कल्क मक्खन तथा दूध के छेने के पानी के साथ देते है। अथवा बीजो को दही मे पीसकर या इसके चूर्ण को दही के साथ देते हे।

६ योनिसंकोचनार्थ—बीजो के क्वाथ मे उसी का चूर्ण मिला भीतर लेप करते हैं।

७ शोथ पर—बीज २॥ तो को पानी १० छटांक मे १० मिनट तक उबाल कर, छानकर, मात्रा—५ तो दिन मे ३ बार पिलावें।

८ श्वास-विकार पर—बीज-चूर्ण को शहद और ताजे घृत के साथ देते हैं। यह योग भग्न-ताप पर भी लाभकारी है।

मूल—कटु, स्निग्ध, मूत्रल, वेदनाशामक, बल्य, काम, सधि-पीडा, सुजाक आदि मे उपयोगी है।

९ शोथ, मूत्रकृच्छ्र (सुजाक), अश्मरी सधिवात वस्तिशोथ, तथा यकृतोदर मे—मूल का क्वाथ पिलाते हैं क्वाथ के लिये ५ तोला मूल को जौकुट कर ५३ तो पानी मे (अथवा—१ भाग मूल को २० भाग पानी, मे) ढके हुए पात्र मे लगभग २० मिनट से ३० मिनट तक पकाकर छान लेते हैं। मात्रा—५ तोला तक, दिन में ३ बार पिलाते हे। जलोदर पर भी इसे देते हे। मूत्राशय एवं जननेन्द्रिय के विकारो पर यह लाभकारी हे।

१० जलोदर पर—मूल कोजौकुटकर २॥ तोला लेकर ५० तो पानी मे पकावें। लगभग ३६ तोला जल शेष-रहने पर, २॥ से ४ तोला की मात्रा मे प्रति-दो-दो घटे से पिलावे। इसकी जड के अभाव मे इसके पचांग की भस्म दी जाती है। आगे प्र० न १४ देखे।

११ प्रसवकालीन कष्ट-निवारणार्थ—मूल और शक्कर समभाग लेकर मुख मे रख चबाने से जो लार निकले उसे स्त्री के कान मे डालने से शीघ्र प्रसव हो जाता हे। (वगसेन)

१२ मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात व अश्मरी पर—मूल के साथ गोखुरू व रेंडी की जड को दूध मे पीसछान कर पिलावें— (चरक)

पत्र—स्वादु, तिक्त, मूत्रल है व शोथ, शूल आध्मान, उदर-रोग पाडु, कामला, गल-रोग, मूत्र-विकार, वाताष्टभ आदि नाशक हे। वातरक्त मे पत्रो का शाक खिलाते है।

१३ पाडु, कामला, जलोदर, मूत्र की जलन या दाह पर—इसके ताजे शुष्क पत्र ५ तो को २५ से ४० तो तक उत्तम परिस्रुत अंगूरी सिरके मे ३ दिन तक घोलकर

अच्छी तरह निचोडते हुए छानकर रक्खे। मात्रा -१। तोला से ३ तोला तक, प्रति दिन ३ बार सेवन कराने से प्रशस्त लाभ होता है। (डा० कनाई लाल डे)

अथवा पत्रो–का फाट (१ भाग पत्र को १० भाग उबलते हुए पानी में--) ३ दिन तक घोल, छानकर पिलाने से भी लाभ होता है।--

(नाडकर्णी)

क्षार और भस्म—इसके पचाग का क्षार अथवा भस्म-उदर-रोग, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी व यकृतोदर मे--प्रयुक्त होती है। प्राय गोमूत्र के साथ इसका प्रयोग करते है।

१४ जलोदर या यकृतोदर--इसके पचाग की राख कपडे से छानकर शीशी मे भर रक्खे, यह राख-एक चम्मच भर लेकर १० तोले पानी मे मिला अच्छी तरह हिलाकर, इस पानी को २॥ तो. की मात्रा मे २-२ घटे के अन्तर से पिलाने से उत्तम लाभ होता है--

(डा अन्सली)

(१५) पित्ताशय के शूल व अश्मरी पर—इसके पचाङ्ग की राख मे से बनाया हुआ क्षार ४ से ८ रत्ती शीतल जल के साथ १–१॥ घटे पर २—३ बार देने से भयकर शूल आदि लक्षणो युक्त पित्ताशय की अश्मरी का नाश होता है। यह क्षार अश्मरी कण को पिघला कर निकाल देता है। शूल शमन हो जाने पर यह क्षार दिन मे ३ बार, घृत के साथ कुछ दिनो तक लेते रहने से पित्ताश्मरी की उत्पत्ति मे प्रतिबन्धक हो जाता है। तथा पित्ताशय मे उत्पन्न पथरी गल जाती है। आगे वि० योगो मे क्षारविधि देखे। (रसतत्रसार)

(१६) बैल के कधे कट जाने पर–इसकी भस्म को तैल मे पका कर लगाते हैं।

नोट–मात्रा–पचाङ्ग का स्वरस २–५ तो०। क्वाथ ५ १० तो०। मूल का क्वाथ–४ तो०। बीज-चूर्ण १-४ मा०। क्षार- २-५ रत्ती। भस्म-१-२ मा० अधिक मात्रा में बीजों का सेवन आध्मानकर व दुर्जर होता है। हानि-निवारणार्थ –मिश्री, मधु या दूध देते हैं।

विशिष्ट योग—

(१) तालमखाना पाक न०१-(पुष्टिकर, वीर्यवर्धक) तालमखाना खूब साफ किया हुआ १ पाव लेकर, ताजे दूध मे ३ बार तर कर, शुष्क कर, एक या दो नारियल के गोलो मे भर कर, ऊपर आटा लपेट दे। फिर आग के सामने चूल्हे मे रखदे। जब धुआ निकल जाय, गोला सुर्ख होजाय, तब उसे निकाल, आटा दूर कर, पीस कर, उसमे तोदरी सुर्ख, तोदरी सफेद, गोखुरू छोटा व बड़ा, मूसली सफेद व स्याह, तथा गाजवा २–२ तो० सालम मिश्री, समुद्र सोख, इन्द्रजौ, मोचरस, इलायची छोटी, १–१ तो० दालचीनी ६ मा० सुरजान, शकाकुल मिश्री, बसलोचन १॥-१॥ तो० पिस्ता व चिलगोजा ५-५ तो० बादाम मिर्ग १० तो० इन सबको पीस कर मिलादे। १ सेर मिश्री की चाशनी मे सबको मिलाकर मोदक बना लें। २॥ तो० प्रात साय दूध के साथ सेवन करने से शरीर पुष्ट होता व प्रमेह और नपुसकता दूर होती है।

पाक न०२—तालमखाना के साथ गोखुरू, कौच-बीज, खरेटी-बीज, स्याह मुसली, शतावरी, सालम मिश्री पजाबी मिश्री, और चोपचीनी इन सबका चूर्ण कर, घृत मे साधारण भून कर, उसमे खोवा तथा मिश्री की चाशनी मिला, एकत्र घोट कर, बादाम–गिरी, चिरोजी, पिस्ता, किसमिस, और अखरोट, इलायची, केसर, लौंग, जायफल, जायपत्री, दालचीनी एव गिलोय-सत्त्व मिला मोदक बना ले। नित्य २ तो० खाकरऊपरसे धारोष्ण गौदुग्ध पीवे।

नोट—इसके पाक के अन्य प्रयोग हमारे 'बृहत-पाक सग्रह' ग्रन्थ में देखे।

(२) तालमखाना—चूर्ण—(प्रमेहान्तक चूर्ण)—तालमखाना ५ तो० तथा जायफल २॥ तो० इनका कपडछान चूर्ण कर, उसमे गिलोयसत २॥ तो० और मिश्री का चूर्ण १० तो० मिला, खूब खरल कर अच्छी डाट वाली शीशी मे भर रक्खे।

३ मा० से १ तो० तक यह चूर्ण लेकर उसमे प्रवाल-पिष्टी २ रत्ती मिला, दिन मे १ या २ बार गोदुग्ध के साथ सेवन से सर्व प्रकार के प्रमेह, विशेषत कफज व पित्तज मे लाभदायक है। यह वृक्कों को शक्तिप्रद है। रक्त को शुद्ध करता तथा मूत्र की वृद्धि कर शेष रहे दोषो को शीघ्र निकाल देता है। वीर्य को शीतल व गाढा

बनाता, मूत्राशय की उष्णता शांत करता एवं स्वप्न दोष मे भी लाभकरता है ।

ध्यान रहे इस चूर्ण मे प्रवाल-पिष्टी मिला, ५ तो० दूध मे डाल कर थोडा चलाकर तुरत पी लेवे, फिर शेष दूध धीरे धीरे पीवे; अन्यथा यह चूर्ण तालु मे चिपक जाता है । यदि पाचन-क्रिया अच्छी हो, तो मात्रा १ तो० ले सकते है । अन्यथा ३ या ६ मा० तक ही लेवे ।

मैदा, शक्कर, गुड वाले पदार्थ कम खावे । रात्रि का भोजन हल्का होवे । खटाई, मिर्च, गरम-चाय, बीडी सिगरेट आदि से परहेज करे । प्रात एवं साय १-२ मील या अधिक घूमते रहने से जल्दी लाभ होता है ।

—रसतत्रसार ।

(३) टिंचर तालमखाना—इसके पचाङ्ग के चूर्ण १ भाग मे ३ भाग मद्यार्क (अल्कोहल)—मिला, शीशी मे डाट वद कर (१ दिन रख) छान ले । मात्रा—२० से ३० बूद, दिन मे ३ बार सेवन से मूत्राशय के विकार, मूत्रकृच्छ्र, वारवार पीडा सहित मूत्र के होने आदि मे लाभ होता है । —(नाडकर्णी)

(४) क्षार ताल मखाना—इसके पचाग को काट कर, छायाशुष्क कर जलादें । फिर इसकी राख मे दुगुना पानी मिला, रात भर रखा रहने दे । प्रात निंतरा हुआ ऊपर का जल अलग नितार कर, नीचे की राख मे पुन दुगुना पानी डाल दे । दूसरे दिन प्रात उसे भी नितार कर, दोनो को एकत्र कर कढाई मे डाल कर मन्द आँच से पकावें । धीरे धीरे पानी जब शहद जैसा गाढा हो जाय, तब नीचे उतार अलग रखदें । कुछ देर बाद कढाई की तलैटी मे एक प्रकार का नमक जैसा क्षार प्राप्त होगा । यह पित्ताश्मरी एवं पित्तशूल की अमोघ औषधि है । मात्रा ६ रत्ती से १ मा० तक । इसे सहिजने की छाल के रस या शीतल जल से देने से शूल नष्ट हो जाता है । हृदय शूल मे भी यह लाभकारी है ।

—ब्रह्मचारी स्वामी रामकल्याणानन्द (धन्वन्तरि के-शूल-रोगाक से)

तालमूली दे०—मुसली स्याह । तालावी अनार दे०—कुमुद ।

तालिसपत्र नं० १[1] (Abies webbiana)

कर्पूरवर्ग एवं देवदारु-कुल (Coniferae) के इसके सदैव हरित, रोमश, धूमर वर्ण के मुकुट, पत्राच्छादित वृक्ष १५०-२०० फीट ऊचे, काण्ड की परिधि प्राय ३० फीट, छाल-भूरी या श्वेत वर्ण की, चिकनी शाखाए—सूक्ष्म भूरे वर्ण के रोमो से व्याप्त, झुकी हुई, पत्र—काण्ड से पेचदार क्रम से, किन्तु दीखने मे दो पक्तियो मे, रेखाकार नताग्रपत्र ¾ से १॥ इच लम्बे, १⁄१० इच चौडे, आमने सामने, मोटे, अग्रभाग मे तीक्ष्ण, कठोर नोकवाले, ऊपरीभाग मे फीके हरे, एक लम्बी रेखा द्वारा विभक्त, निम्न भाग चिकना, गहरे हरे रग का, वृन्त बहुत छोटा सा होता है । पुष्प—नरफूल-परतदार मजरी मे, पखुड़ियो से आच्छादित, पतनशील मादाफूल पतली पतनशील परतवाले, लम्बगोल नलिकाकार होते हैं । जो आगे फलो मे परिवर्तित होते हैं । फल—लम्बगोल २-४॥ इंच लम्बे, पकने पर बेगनी या नील वर्ण के, बीज-पक्षयुक्त ½ इंच लम्बे होते है ।

ये वृक्ष काश्मीर, भूटान, कुमायूं, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, पूर्वीपजाब आदि प्रान्तो के ऊचे पहाडी

[1] इसके विषय मे भी बहुत मतभेद है । उस-भेद से तीन प्रकार की बूटिया इस नाम से व्यवहृत होती हैं । (१) बगाल का ता पत्र जिसका वर्णन यहा किया जाता है । (२) मध्य देशीय (Taxus Baccate) । यह युक्तप्रात, उत्तरप्रदेश, राजपूताना, महाराष्ट्र, गुजरात आदि मे प्रयुक्त होता है । (३) नेपाली (Rhododendron Anthogon) इनके अतिरिक्त आसाम आदि मे एवं भारत के समुद्रतट वर्ती प्रान्तों मे होने वाला (Flacoatia Catapracta) । इन सब का सक्षिप्त वर्णन आगे क्रमश किया जावेगा । तामील व तेलगू प्रान्तों मे तमाल पत्र [Cinnamomum Tamal] ही ता पत्र नाम से व्यवहृत होता है । इसका वर्णन 'दालचीनी' मे देखिये ।

७ मुख-दौर्गन्ध्य पर—पान के बीडे मे चून , कत्था के साथ ही साथ शीतल मिर्च २ रत्ती, जावित्री तथा इलायची के दाने १-१ रत्ती, और कपूर १/४ रत्ती डालकर धीरे धीरे २ दिन मे २-३ बार चर्वण करे—

८ आमाशय की निर्बलता पर—इसके बीडे मे १ रत्ती सेधा नमक मिला, दिन मे ३-४ बार सेवन करते है। इससे क्षुधामाद्य, आम व कफ की वृद्धि, आलस्य आदि दूर होते है।

९ कठ मे कफ जन्य अवरोध, हो तो—पत्र-रस २तो मे ४ रत्ती कालीमिर्च-चूर्ण व ६ मा. शहद मिला प्रात साय सेवन करे। अथवा—२-४ पान के बीडा बना उसमे ५ नग काली मिर्च डालकर खावें। अथवा—

शीत जन्य स्वर-भग हो तो पान के बीडे मे मुलैठी-चूर्ण मिला सेवन करते ह।

नासास्राव अत्यधिक हो तो-दिन मे २-३ बार पान का स्वरस २-२ तो तक पिलाते है।

१० कर्ण-शूल पर—शीत वायु या शीत जल के आघात से कान का दर्द हो तो पत्र-रस को कुछ गरम कर कान मे डालकर ऊपर से सेक करे। कर्णपाक होकर पूयस्राव होता हो तो उसमें भी लाभ होता हे।

११ अण्डकोषो में पानी उतर आने पर—प्रारभिक अवस्था मे ५-६ बगला पान गरम कर बाधते रहने मे लाभ होता है। यदि इसमे अधिक गरमी मालूम पडे तो १-२ पान बाधें तथा १-२ दिन के अन्तर से बाधते रहें।

१२ हृद्दौर्बल्य पर—पत्र-स्वरस मे दूनी शक्कर मिला शर्बत बना कर सेवन से, निर्बलता जन्य हृदय की बार बार बढने वाली तीव्र गति (धडकन) मे सुधार हो पाचन—शक्ति बढती है।

आगे विशिष्ट योगो मे—शर्बतताम्बूल का प्रयोग देखे।

१३ व्रणो पर—शमन-शोधन कार्यार्थ इसके ताजे कोमल पत्रो पर घृत या तत्कार्यार्थ सिद्ध तेल को चुपड-कर, फफोलो एव वेदनायुक्त व्रणो पर बाधते ह।

मुख मे छाले हो जाने या मुख-पाक पर—पत्र-स्वरस को शहद से चटाते है।

१४ विषप्रतिकारार्थ—पारद के विष पर—इसके पत्तो के साथ भागरा, और तुलसी-पत्रो का स्वरस तथा बकरी का दूध मिला, शरीर पर ४-६ घटे तक मालिश कर, शीत जल मे स्नान कराते हे। इस प्रकार ३ दिन के उपचार मे विष-विकार शमन होता है।

कुचले के विष पर—इसके पत्र-वृन्त (पान के डठलो) का रस १०-२० तोला तक नित्य १ या २ बार, ३ दिन तक पिलाते है।

भाग, गाजा, अफीम एव मदिरा के मद-निवारणार्थ-पत्र-स्वरस को छाछ के साथ मिलाकर पिलाते ह।

सर्प, बिच्छू तथा छिपकली आदि के दश पर इसके पत्रो का लगातार प्रयोग करने मे विष का असर मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओ पर नही होने पाता, ऐसा कुछ अमेरिकन डाक्टरो ने सिद्ध किया हे।

बर्र, ततैया आदि के दश पर—पत्र-रस को मसलने से वेदना एव विष-प्रकोप की शाति होती है।

१५ गर्भ-निरोधार्थ—पान के रस मे कबूतर की बीट मिलाकर पिलाते हे।

१६ ज्वर पर—पान का रस ४ मा तक गरम कर, दिन मे २-३ बार पिलाते ह।

नोट—पान का बीड़ा भारतवर्ष मे अधिकतर पानों का सेवन—उसमे चूना, कत्था, सुपारी आदि लगाकर बीडे के रूप मे किया जाता है। इसमे चूना वातकफहर, कत्था पित्तहर और सुपारी कफपित्तशामक है। प्रात काल के समय सुपारी, दोपहर मे कत्था व रात्रि के बीडे मे चूना कुछ अधिक लेना हितकर होता है। किन्तु चूना अत्यधिक लगाने से दाँतो की जडे शिथिल हो जाती है। कई लोग इसमे तमाखू मिलाते है। किन्तु ध्यान रहे इससे बार २ थूकना पडता है, तथा लालास्राव जो पाचन-क्रिया मे अति हितकर है, उसकी बरबादी होती है, वह व्यर्थ जाती है, तथा लाला ग्रथिया शिथिल पड जाती है। पान के व्यसनी लोग इस प्रकार तमाख मिला हुआ पान दिन रात्रि मे अत्यधिक बार सेवन कर अपने स्वास्थ्य की हानि करते हैं।

अत इसका सेवन नियमित रूप मे ही करना, तथा उसमे तमाखू के स्थान पर, सौफ, लवग छोटी-इलायची पिपरमेन्ट क्रिस्टल, आदि सुगधित एव उडनशील तैल

वाली वस्तु मिलाना हितकर है[1]। इसमे अग्निप्रदीप्त होती है।तथा इसका असर रस रक्तादि धातुओ एव आमाशय, आन्त्र, फुफ्फुस, त्वचा, वात-नाडियो, मस्तिष्क आदि पर उत्तेजक, सशोधक व कीटाणु नाशक होता है।

भोजन के बाद पान खाने से मुख-शुद्धि होती है, तथा मुह मे रहे हुए कफ, मल, कीटाणु एव आहार के अणु आदि सब लाला-रस के साथ आमाशय मे चले जाते है। मानसिक प्रसन्नता होती है। आन्त्र की सगृहीत वायु बाहर निकल कर मल की पुरःसरण क्रिया बढती है, तथा शौच-शुद्धि नियमित होती है। विशेषत जिनके भोजन मे कारबोहाइड्रेट युक्त चावल आलू आदि पदार्थ अधिक आता है, उनके लिये पान के बीडे का सेवन अति लाभदायक होता है।

सेवनार्थ कृष्ण वर्ण के पान उत्तम नही होते, वे तिक्त, उष्ण, कसैले, दाह, मल एव वक्त्र-जाड्य कर होते है। शुभ्र या पका पान उत्तम होता है, यह कफ व वात के रोगो का नाशक, रोचक, दीपन, व पाचक होता है। कहा है—"कृष्ण वर्ण तिक्त मुष्ण कषाय धत्ते दाह वक्त्र जाड्य मलच। शुभ्र पर्ण श्लेष्म वातामयघ्न रुच्यवृष्य दीपन पाचनच॥—(अभिनव— निघण्टु।)

ताम्बूल-सेवन विधि मे आयुर्वेद का उपदेश है कि पान की मध्य सिरा को निकाल डाले, क्योकि यह बुद्धि-नाशक है। तथा पान के अग्रभाग एव मूल भाग को भी निकाल डाले, क्योकि ये पाप या रोग—कारक होते हैं। वाचस्पति मिश्र जी का कथन है कि पान खाते हुए जो प्रथम पीक हो उसे थूक देवे, क्योकि यह विष-तुल्य होती है, दूसरी पीक भेदी (मलभेदक) एव दुर्जर (देर से पचने वाली) होती है। (किंतु हमारे मत से-पान मे यदि तमाखू डाली गईहो तोये पीके थूकना ठीक है। अन्यथा पीक थूकना अनावश्यक है।

पान लगाते समय उन्हे अच्छी तरह पोछ कर पानी से धो डालना चाहिये। उसका सडा, गला भाग निकाल डाले। बाजारू बीडो से बचते रहना चाहिये, क्योकि ये शुद्धता से नही लगाये जाते, तथा इनमे सडी सुपारी पानी मे गलाया हुआ कई दिनो का कत्था, अधिक चूना आदि लगा होता है। ये बाजारू बीडे दातो मे कृमि, पायोरिया आदि कारक होते है। इनसे मुख

---

१ बीडे में उपयोजित द्रव्यों के सक्षिप्त गुणधर्म—चूना-उष्ण, दाहक है, किंतु पान के साथ यह हड्डियों एव दातो को दृढ करता व लाल रग की वृद्धि करता है। कत्था-रक्तशुद्धिकारक, अन्न-नलिका की श्लेष्मल कला को आकुचित करने वाला, मुख-व्रणनाशक, दातो का दृढ कारक है।सुपारी—हृदयोत्तेजक, मुख को स्वच्छ करने वाली है। सुपारी के मध्य का श्वेत भाग कुछ मादक है। लौंग—यकृत हितकारक, रक्ताभिसरण व श्वसन-क्रिया मे उपकारक व कृमि एव वातनाशक है। पाचन-क्रिया मे सहायक है। इलायची— यकृत-क्रिया सुधारक, आन्त्र के पाचक-रस का उत्तम स्रावक, पाचक, मूत्रमार्ग-दाहशामक है। नारियल-गिरी-पान मे चूने की तीव्रता-शामक, बीडे को मृदु करने वाली है। कबाव-चीनी (ककोल) -मुख दुर्गन्धनाशक, कठशोधक, उदर-वातनाशक एव पाचक है। कपूर-पाचक, जंतुनाशक, वातशामक, दातों का दृढकारक, दतशूल, शिर.शूल, आंत्रशूलशामक, श्रमहारक, मनप्रसन्न कारक, कफनाशक हृदय-रक्तभिसरण-उत्तेजक है। गुंजा पत्र-बीडे को मधुर करने वाला, श्वास-शुद्धि कारक है।

जायफल—आंत्र-वायु नियामक, पाचक, शुक्रस्तंभक, हृद्य, श्रम-परिहारक, उत्तम निद्राकारक है। मुलैठी—कठशोधक, शुक्रवर्धक व स्वर्य है। केशर, कस्तूरी, सुवर्ण वर्क आदि भी विशेष गुणवर्धक हैं, किन्तु आजकल इनकी योजना बीडे मेविरले ही श्रीमान लोग करते है।

२—प्रात कफ का समय होता है, सुपारी रूक्ष होने से कफ की वृद्धि को रोकती है। मध्यान्ह पित्त का समय है, कत्था पित्त व शीत को शांत करता है, तथा दातो को हितकर, कण्डू, कास, अरुचि आदि नाशक है। रात्रि वात का समय है, चूना उष्ण, क्षार, वातनाशक होता है। इस प्रकार ताम्बूल-सेवन से किसी प्रकार की हानि नहीं होती। ध्यान रहे, पान में रूखी सुपारी हानिकारक है। बिना पान के अकेली सुपारी कभी नहीं खानी चाहिये। तथा बिना सुपारी के पान खाना भी अहित-कर है।

का केन्सर जैसा भयकर रोग भी होना सभव है [1]।

दिन भर मे ३–४ बार से अधिक पान खाना अहितकर है। पान को मुख मे दाब कर सोना भी हानिकर है। यदि अधिक चूना होने से मुख जल जाय तो तुरन्त दूध मे शक्कर मिला कुल्ली करे, या लौंग और नारियल की गिरी चबाये। सुपारी लगने पर ठडा पानी पीना उत्तम है।

ताम्बूल-निषेध—ताम्बूल उष्ण एव पित्त प्रकोपक होने से रक्तपित्त, गर्भिणी स्त्री, बालक, उर क्षत, क्षय, मद, मूर्च्छा रोग, तीव्र नेत्र-विकार, विष प्रकोप—आदि पैत्तिक विकारो मे एव रूक्ष व्यक्ति के लिये तथा दन-दुर्बलता, व्रण पीडित, दुर्बल-ज्वर रोगी, मुख-शोषी आदि को हानिकर होता है।

फल—इसमे फल (पान पिप्पली) का चूर्ण शहद के साथ सेवन से,कफ निकलकर कास मे लाभ होता है।

मूल—इसकी जड को–स्वरशुद्धि के लिये, मुख मे रख कर चूसते हैं। सतान–निरोधार्थ–इसे कालीमिर्च के साथ सेवन कराते है। सर्प-विष पर—मूल को बीडे मे रख कर खिलाते है, इससे वमन होते हैं। यदि एक बार मे न हो तो ऐसे २-४ बीडे खिलाते है।

कुचला के विष-प्रतिकारार्थ—मूल का या पान के डठलो का रस १० तो० तक पिलाते है। वमन न हो, तो पुन १ घटे बाद पिलाते हैं। इस प्रकार २–३ दिन प्रात साय सेवन कराने से लाभ होता है।

नोट-मात्रा-पत्र-स्वरस आध से १ तो० तक (मूल का चूर्ण १–२ मा०।

विशिष्ट योग

(शर्बत ताम्बूल न १—बगला पान के स्वरस २० तो० मे मिश्री ½ सेर मिला एक तार की चाशनी तैयार कर उसमे वश लोचन, छोटी पीपल, तथा छोटी इलायची के बीज और सोठ प्रत्येक चूर्ण ६–६ मा० तथा लौंग, तज व केशर ३–३ मा० चूर्ण कर मिलाकर खूब घोट-कर, शीशियो मे भर रक्खें।

मात्रा—६ मा० से १ तो० तक, दिन मे ३ बार चाटने से दूषित कफ निकल कर कासश्वास मे लाभ होता है।

—स्व०श्री०प०भगीरथ स्वामी के आत्मसर्वस्व से।

न० २—उत्तम पके हुए ५० पानो के छोटे-छोटे टुकडे कर १। सेर (१०० तो०) पानी मे पकावे। अर्धा-वशिष्ट जल रहने पर छान कर, उसमे ५० तो० शक्कर मिला, एक तारी चाशनी पका कर नीचे उतार, ठण्डा हो जाने पर बोतल मे भर रक्खे।

२ से ३ तो० इस शर्बत मे समभाग जल मिला, दिन मे २ या ३ बार सेवन करने से हृदय बलवान होता व पाचन-क्रिया मे सुधार तथा हृदय-दौर्बल्य-जन्य श्वास का दौरा कम होता है। हृदय के विकारो पर यह विशेष लाभकारी है।

यदि इस शर्बत मे पाक-सिद्धि के बाद केशर, लौंग, व ज वित्री योग्य मात्रा मे चूर्ण कर मिला लिया जावे, तो यह और भी उत्तम गुणकारी हो वाजीकरण, तथा उत्तेजक एव हृदय को बलप्रद हो जाता है।

ताम्बूलासव न० १—प्रथम शुद्ध मटके को जामुन के नवीन हरे पत्तो के काढ़े से अच्छी तरह धोकर साफ कर, उसके भीतर लाख का लेप कर, सूख जाने पर, खाड व अगर की धूनी देकर जमीन मे ऐसा गाड दे कि आधा मटका जमीन के भीतर रहे। फिर उसमे १५०० पान कूट-पीस कर डाले तथा धायपुष्प २८ तो० सुपारी, कत्था-चूर्ण प्रत्येक ½ सेर, शहद ५ सेर, पानी ७½ सेर, ककोल व पीपल-चूर्ण ८-८ तो० एव हरड, बहेडा, आमला, जायफल, बडी इलायची तथा लौंग के फूलो का चूर्ण ४-४ तो० मिला, सबको ३ दिन तक स्वच्छ हाथो से बिलोडन (मलता) करना रहे। जब सब द्रव्य एक रस हो जावे, तथा उसमे सू-सू शब्द होने लगे, तब १५ सेर गुड को १३ सेर जल मे मिला, आग पर गरम कर, अच्छी तरह घोल कर उसी मटके मे डाल दे, तथा मुख-मुद्रा कर १ मास तक सुरक्षित रक्खे। फिर छानकर

[1] पान के बीडो मे चूना आदि प्रदाहक द्रव्यों के साथ ही तमाखू (जो केसर का उत्पादक माना गया है।) का मिलान होने से मुख की अन्त स्त्वचा में व्रण होकर उसका पर्यवसान केंसर जैसे भयानक रोगो मे हो जाना सभव है।

बोतलो मे भर रक्खे। इसका रग, सुगन्ध व स्वाद अत्यन्त उत्तम होगा। मात्रा–१ तो० सेवन से अर्श, सर्व प्रकार के कफज-विकार व अश्मरी मे लाभ होता है। यह बलवर्धक, कांतिकर व वीर्योत्पादक है। १ वर्ष तक नियमपूर्वक सेवन से आयुष्य की वृद्धि होकर, शरीर सदा स्वस्थ रहता है। यह उत्तम रसायन है।

(गदनिग्रह)

ताम्बूलासव न० २—कफविकारादि नाशक—उत्तम पानो का रस १ सेर निकाल कर काच की बोतल या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर, उसमे शहद २॥ सेर शुद्ध खाड १ सेर, मद्यार्क (४५ प्रतिशत वाला) ½ सेर तथा सोठ, अतीस, अकरकरा, दालचीनी, नागकेशर व तुलसी की मजरी का चूर्ण ४-४ तो० मिला, अच्छी तरह सधान कर १५ दिन सुरक्षित रख छानकर, काम मे लावे। १ मा० से १ तो० तक सेवन से कफज-कास आदि विकार शीघ्र दूर होते है। सन्निपात की अन्तिम अवस्था मे उत्तम कार्य करता है। अग्निदीपक, कामोद्दीपक, बल-कारक तथा ज्वर-नाशक भी है।

नोट–उत्तमोत्तम आसवारिष्टों के प्रयोग हमारे 'वृ० आ० अ० सग्रह ग्रन्थ' देगे।

(३) अर्क ताम्बूल—पका हुआ पान ७ ढोली (१ ढोली मे लगभग १७५ पान होते है), धाय के फूल १० सेर, गुड १० सेर, शहद ६ सेर, तथा जायफल का मोटा चूर्ण ५ तो० इन सबको १½ मन जल मे २४ घटे भिगोकर १० सेर अर्क खीच ले मात्रा ६ मा० से १ तो० तक। यह कामोद्दीपक, बलवर्धक, शोष-नाशक, पाचक एव शरीर के आभ्यतरिक अवयवो का पुष्टि-कारक है।

(वैद्यराज प० श्रीराम द्विवेदी, जौनपुर)

तारपीन-तैल—दे०—चीड मे व राल मे। तारामीरा—दे०—तोरी (सफेद सरसो)।

ताराली (*ZEHNERIA UMBELLATA*)

कोशातकी-कुल (Cucurbitaceae) कुल की इस लता के पत्रदण्ड छोटे, पत्र १-६ इञ्च लम्बे, मोटे, त्रिकोणाकार, नुकीले, वृन्त की ओर हृत्पिण्डाकृति, देखने मे हस्तागुली जैसे, तथा वृन्त पर चिकने लोम होते है। पुष्प–उभयलिंग, विशिष्ट, पु पुष्पदण्ड २-४ इञ्ची, स्त्रीपुष्पदण्ड छोटा, दण्ड पर १-१ छोटे पुष्प होते है। फल–वन-पटोल जैसे लम्बाकृति चमकीले लाल रग के, अग्रभाग की ओर क्रमश पतले। फल मे बीज २ से १२ तक होते है। पुष्प–ग्रीष्म व वर्षाकाल मे आते है। फलो के पकने मे २ मास लगते है। फल का स्वाद खटमीठा होता है।

यह लता प्राय सर्वत्र तथा कोकण व बगाल के जगलो के किनारे पर होती है। कोकण मे इसके फलो का साग बनाकर खाते है।

नाम—

स०–वनतुंडी, गुथी। हि०–तारली। ब०–कुदारी, बिलारी। म०–गोमेटी। ले०–झेनिरिया, अम्बेलाटा, मेलोथ्रिया हेटोरोफीला (Meothria Heterophylla)

गुणधर्म व प्रयोग—

मधुर, शीतल, लघु, उत्तेजक, मृदुकर, उत्साह-वर्धक है। आगन्तुक उष्णता पर—इसके मूल के रस मे ताजा गौ-दुग्ध, मिश्री व जीरा-चूर्ण मिला, दिन मे दो बार पीवे। भिलावे की सूजन पर–इसके पत्तो के रस का लेप करने से शीघ्र लाभ होता है। पुष्टि एव उत्साह-वर्धनार्थ–मूल के चूर्ण मे, भूना हुआ श्वेत प्याज, जीरा-चूर्ण और मिश्री मिला एकत्र महीन पीस कर उसमे थोडा घृत मिला सेवन करे। यह छोटे बालको को भी दे सकते है। अथवा—इसकी मूल को गोदुग्ध मे पीस कर उसमे घृत व मिश्री मिला पीवे। सुजाक व मूत्रकृच्छ्र पर भी इसे देते है।

स्वप्नदोष या शुक्रमेह पर–मूल के रस मे जीरा और शक्कर मिला, ताजे दूध के साथ सेवन करावें। पित्तप्रकोप पर–इसके फूलो का चूर्ण घृत व शक्कर के साथ देते हैं।

नोट–मूल का चूर्ण २ से ४ रत्ती या १ माशा तक।

तालीस पत्र
ABIES WEBBIANA LINDL.

प्रदेशो मे ८–१२ हजार फीट की ऊंचाई पर विशेषत होते है।

विशेषत बगाल एव पूर्वीभारत मे इसी के पत्र तालीस पत्र नाम से प्रयोग मे लाये जाते है। इसे चिला, चिलीराध भी कहते है।

नोट—सुश्रुत के शिरोविरेचन गण मे इसका उल्लेख है।

मोरिण्डा नामक (Abies Pindrow) एक वृक्ष इसी जाति का, तथा इसके सदृश ही होता है। ये वृक्ष जौनसार मे प्राय १० हजार फीट के नीचे (देववन, मुडाली आदि स्थानो) में पाये जाते है। इसकी नवीन शाखाए रोमरहित, पत्र–२–३ इच लम्बे, दो कतारो मे निकले हुए होते है। ये शाखाए दो दिशाओ मे फैली हुई होती है, तथा प्रस्तुत प्रसग के वृक्ष की शाखाए ऊपर की ओर हर दिशा मे फैली हुई होती ह। इसके फल भी कुछ छोटे व मोटे होते है।

नाम—

स —तालीस, पत्राढ्य, धात्रीपत्र इ.। हि०-तालीस पत्र, चिला, चिलिराध, बुदर इ०। म -गु बं-तालीस-पत्र, बर्मी। अं —सिल्वरफर, [Silverfir]। ले०—एबीज वेब्रीएना।

रासायनिक संगठन—

पत्र मे एक स्फटिकीय क्षारतत्व (Taxine), तथा एक उडनशील तल होता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र।

गुण-धर्म व प्रयोग—

लघु, तीक्ष्ण, तिक्त, मधुर-विपाक, उष्णवीर्य, कफ-वातशामक, रोचन, सकोचन, दीपन, वातानुलोमन, वेदनास्थापन, श्लेष्म-श्वासहर, मूत्रल, ज्वरघ्न व बल्य है। तथा अरुचि, अग्निमाद्य, आध्मान, गुल्म, कास, श्वास, हिक्का, वमन, स्वरभेद, रक्तपित्त, अपस्मार, यक्ष्मा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रवहस्रोत के शोथ व वातश्लेष्मिकज्वर आदि मे प्रयुक्त होता हे।

ब्राको-निमोनिया (Broncho Pneumonia) मे ताजे पत्तो का प्रयोग, ज्वर-शातिकर एव कफ-निस्सारक होता है। स्वरभग मे इसका फाट या क्वाथ देते है। इससे कठरोग, जीर्ण श्वास-नलिकाशोथ व यक्ष्मा मे भी लाभ होता है।

इसके वृक्षो का गोद, गुलाब तैल मे मिला कर पीने से विष-प्रकोप होता है, इसे सिर दर्द तथा वातनाडी-शूल पर लगाते है।

क्षय, श्वास, वातनाडीप्रदाह एव मूत्राशय के विकारो पर इसके शुष्क पत्तो को पीसकर अडूसारस व शहद के साथ देते हे। इससे कास, श्वास और रक्तष्ठीवन मे भी लाभ होता है।

प्रसूता स्त्री को—पत्ररस गोदुग्ध के साथ पुष्टि के लिये दिया जाता है। इससे प्रसूतिजन्य शक्तिपात में लाभ होता है।

आध्मान पर—पत्र-चूर्ण ने अजवायन-चूर्ण मिला सेवन कराते है।

उदर शूल मे—इसे काले नमक के साथ देते है।

अतिसार मे—इसे इन्द्रजव के साथ, या शर्बत के

साथ देते है।

बल-वृद्धि के लिये---इसे छोटी इलायची, बसलोचन तथा शहद के साथ देते हे।

अपस्मार पर—पत्र-चूर्ण में वच का चूर्ण मिला शहद से देते ह।

मूत्रातिसार मे---इसके साथ सोठ को पानी में पीस कर मूत्रनलिका पर लेप करते है।

(१) बच्चो के दन्तोद्भव के समय होने वाले ज्वर एव कफ-विकारो पर—इसके ताजे पत्तो का रस ५-१० बूद मातृदुग्ध या जल के साथ देते हैं।

(२) अरुचि पर---पत्तो का महीन चूर्ण कर, मिश्री की चाशनी मे मिला, तथा उसमे सुगन्धि-मात्र के लिये कपूर डालकर, छोटी २ वटी बना, सेवन कराने से विशेषत राजयक्ष्मा मे होने वाली अरुचि दूर होती है। (वाग्भट चि अ. ५)

(३) राजयक्ष्मा पर—पत्र-चूर्ण १ भाग मे, सितोपलादि चूर्ण दो भाग मिला, रोगी के बलाबलानुसार घृत व शहद (विषम भाग) मिला प्रात साय चटाते हे।

(४) कास, श्वास पर—कुकुर खासी हो, तो पत्रो को गरम जल मे भिगो मल छानकर अदरख का रस मिला, थोडा २ पिलाते हैं।

साधारण सूखी खासी पर—पत्रचूर्ण को शहद के साथ चटावे। वि योगो मे तालीसादि चूर्ण देखे।

श्वास पर—पत्रचूर्ण मे अडूसे का स्वरस और शहद मिला (दिन मे ३ बार) सेवन करने से तमक श्वास, स्वरभेद व रक्तपित्त मे लाभ होता है। (वृ मा)

पत्र-चूर्ण के साथ हल्दी-चूर्ण मिला चिलम मे भर कर धूम्रपान भी श्वास रोग मे कराते हे।

(५) प्रवाहिका तथा गुदभ्रश पर—इसके पत्र ५ तो तथा हरड, साफ, पोस्त के छिलके (डोडे), मु डी और अनार फल का छिलका १-१ तो लेकर सब का महीन चूर्ण कर व कडाही मे भून कर, उसमे अदाज से कालानमक मिला, ६ मा की मात्रा मे दूध या तक्र के साथ, दिन मे २-४ बार सेवन से अवश्य लाभ होता है।

—स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य।

(६) व्रणो पर—तालीसाद्य तैल—उसके पत्र, पद्माख, जटामासी, रेणुका (सम्भालू के बीज), अगर, चन्दन, हल्दी, दारु हल्दी, कमलगट्टा और मुलैठी, समभाग ½-½ तो० लेकर पीस कर कल्क बनावें, फिर उक्त प्रत्येक द्रव्य ४-४ तो० पानी ४ सेर ३२ तो० मे पका, चतुर्थाश क्वाथ सिद्ध करें, और तैल ३२ तो० मे कल्क व क्वाथ मिला तैल सिद्ध करलें। इस तैल को लगाने से शीघ्र ही व्रण रोपण होता है—(सु० स०)

(७) वध्याकरण-योग—इसके पत्र-चूर्ण के साथ सोना गेरु-चूर्ण समभाग मिला १ या २ तो की मात्रा मे, प्रात शीत जल से, स्त्री को रजस्वला होने के चौथे दिन से ४ दिन तक पिलाते है।

नोट—मात्रा-चूर्ण ४ रत्ती से २ मा० तक। अत्यधिक मात्रा में विषैला होता है।

विशिष्ट प्रयोग—

(१) तालीसाद्य चूर्ण—तालीस-पत्र १ तो०, काली मिर्च २ तो०, सोठ ३ तो०, पीपल ४ तो०, बसलोचन ५ तो०, इलायची ७ मा०, दालचीनी ७ मा० और मिश्री ३० तो०, लेकर चूर्ण करले अथवा मिश्री की चाशनी मे चूर्ण को मिला गोलिया बनाले।

मात्रा—२ से ४ मा० प्रात साय शहद के साथ लेवे। यह रुचिवर्धक व पाचक है। तथा कास, श्वास, ज्वर, वमन, अतिसार, शोथ, अफारा, सग्रहणी, प्लीहा व पाडु-रोग नाशक हे। (शा० स०)

उक्त चूर्ण बच्चो को १½ रत्ती की मात्रा मे, कस्तूरी वटी १ रत्ती मिलाकर ६ मात्राये बना प्रति ४-४ घटे से शहद के साथ देने से श्वसनी-फुफ्फुसपाक (ब्राको नियोनिया) जिसमे ज्वर-ताप १०१ से १०३ तक रहता है, लाभकारी है।

तालीसादि चूर्ण न० २—तालीस-पत्र, सोम, मुलैठी, अडूसे के फूल और पुष्करमूल समभाग, महीन चूर्ण कर ४-६ रत्ती की मात्रा से, दिनमे ३-४ बार शहद के साथ लेने से श्वास, कास, व जुकाम मे लाभ होता है।

(सिद्धयोग सग्रह)

इसके अन्यान्य पाठ यो० र०, ब० सेन आदि गन्थो मे देखे ।

(२) तालीसाद्य गुटिका—तालीसादि-पत्र, चव्य, काली मिर्च २-२ तो०, सोठ—चूर्ण ६ तो०, पीपल, पीपलामूल-चूर्ण ४-४ तो० नागकेसर, दालचीनी, तेजपात, खस १-१ तो० तथा इलायची ½ तो० इन सबके चूर्ण से ३ गुना गुड लेकर, एकत्र मर्दन कर १।-१। तो० के मोदक बना ले । इसे, मद्य, यूष, दूध या पानी के साथ लेने से, अर्श, शूल, पानात्यय वमन, प्रमेह, विषम-ज्वर, गुल्म, पाडु, शोथ, हृद्रोग, ग्रहणी, कास, हिक्का, श्वास, अरुचि, कृमि, अतिसार, कामला, अग्निमाद्य व मूत्रकृच्छ्र मे लाभ होता है ।

यदि उक्त द्रव्यो के चूर्ण मे ४ गुनी मिश्री मिला ले (गुड न मिलावे) तो यह पित्तज रोगो मे विशेष गुण-दायक हो जाता है ।

यदि शोथ, अर्श, ग्रहणी, पाडु व शूल रोग की विशेषता हो, तो उक्त गुटिका मे हर्र और त्रिफले का चूर्ण और मिला ले । (ग० नि०)

(३) तालीसादि पाक या मोदक—तालीसादि-पत्र, काली मिर्च २, सोठ ३, बसलोचन ४ (यदि रोग मे पित्त की प्रबलता हो, तो बसलोचन लेवे, अन्यथा इसकी आवश्यकता नही), पिप्पली ५ भाग, तथा दाल-चीनी व छोटी इलायची ½-½ भाग, इन सबका महीन चूर्ण कर मिश्री ४० भाग (यदि बसलोचन न मिलाया हो, तो पीपल ४भाग लेकर, उसमे मिश्री या खाड ३२ भाग) की चाशनी मे मिला पाक जमाले या मोदक बनाले ।

इसे १ से २ या ६ मा० तक सेवन से तालीसादि चूर्ण के समान ही लाभ करता है । यह अत्यन्त जठराग्नि दीपक है, एव मूढवात (रुके हुए मलवात) का अनुलो-मन कारक है । उक्त चूर्ण से यह विशेष लाभकारी है, कारण अग्नि-सयोग से पक्व होने इसमे विशेष लघुता आ जाती है ।

नोट—इसके तथा अन्य पाको के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे 'बृ० पाक संग्रह' मे देखे ।

तालीस-पत्र नं० २ (Taxus Baccata)

यह भी देवदारु-कुल (Coniferae) का है । इसके मध्यम ऊंचाई के सदा हरित वृक्ष कही-कही १०० फीट तक ऊचे, परिधि या गोलाई ५ से १२ फीट, शाखाए—सीधी, चारो ओर फैली हुई, छाल—पतली कोमल, किंचित् लाल, भूरे रग की, पत्र—दो पक्तियो मे, १-१½ इञ्च लम्बे, 1/10 इञ्च चौडे, रेखाकार, चिपटे, कडे, नोकीले, ऊपरी भाग गहरे हरे रग का, चमकीला, निम्न भाग हल्के पीतवर्ण का, सूखने पर एक प्रकार की विशिष्ट गंधयुक्त, पुष्प भी एकाकी, पत्रकोण से निकले हुए, पुष्प-वृन्त—परतदार, ⅓ इञ्च लम्बे, बेर जैसे गोल, उज्ज्वल लाल रग के, ऊपरी छाल बहुत कडी, बीज—हरिताभ, ऊपरी भाग मे खुला हुआ होता है ।

ये वृक्ष हिमालय के काश्मीर प्रान्त मे, तथा पजाब के पहाडी प्रदेशो मे, एव गढवाल, अफगानिस्तान, अपर वर्मा आदि स्थानो मे ६-१० हजार फीट की ऊचाई पर, तथा उत्तरी एशिया, उत्तर अफ्रीका, उत्तरी अमेरिका व यूरोप मे भी पाये जाते है ।

नोट—कुछ आचार्यो ने इसे थूनेर (स्थौणेयक) जो सुगधित होता है, तथा जो गठिवन या एक प्रकार का तगर विशेष माना है । यद्यपि थूनेर और इसके गुणधर्म कुछ अ श मे मिलते है, तथा पत्तों का आकार प्रकार भी बहुत कुछ मिलता-जुलता है, तथापि इसे थूनेर मानना उचित नही जचता । आगे थूनेर का प्रकरण यथा स्थान देखें ।

नाम—

हि०—तालीस-पत्र, बिर्मी आदि । व० बिर्मी । अं०—हिमालयन यू (Himalayan yew) । ले०—टेक्सस बेकाटा ।

रासायनिक सघटन—

बीज और पत्र मे एक विषैला द्रव्य होता है, तथा टेक्सीन (Taxin) नामक एक क्षाराभ, तत्व एव टैनिक एसिड, गैलिक एसिड पाये जाते हैं ।

गुणधर्म व प्रयोग—

ग्राही, अवसादक, वेदना-शामक, आक्षेप या उद्वेष्टन

निरोधी, आर्त्तवजनन, वातानुलोमन, कफ-नि सारक, गर्भाशय-सकोचक है। इसकी क्रिया कुछ-कुछ डिजिटेलिस के जैसी होती है। यह उतना हानिकर नही, उसका प्रभाव शरीर मे सचायी नही होता। अल्प मात्रा मे यह नाडी एव श्वास की तीव्र गति को कम करता है। मध्यम मात्रा मे श्वास को वढाता तथा हृत्स्पन्द करता है। इससे गर्भाशय का सकोच होता है, गर्भपात के लिये प्रयुक्त करने पर, गर्भपात तो नही होता, किन्तु मृत्यु होने की सम्भावना होती है। वडी मात्रा मे--चक्कर,वमन, आक्षेप, नशा, आखो की पुतलियो का विस्तार, मद श्वास एव श्वासावरोध होकर मृत्यु होती है, तथा आमाशय, आन्त्र एव वृक्को मे शोथ भी हो जाता है।

इसके पत्राकुरो का अर्क सिरदर्द, भ्रम, निर्वल नाडी, त्वचा की शीतलता, अतिसार, अरुचि आदि मे देते है।

ज्वर मे भी इसके पत्तो का प्रयोग करते हैं, किन्तु यदि ज्वर मे नाडी व हृदय अशक्त हो, तो इससे हानि होती है। कफ-विकार, क्षय, श्वास-नलिका का जीर्ण-शोथ, श्वास, कास एव फुफ्फुस के अन्य विकारो पर विशेषत घवराहट दूर करने के लिये इसका प्रयोग होता है।

पहाडी लोग इसके वृक्ष की चाय वनाकर पीते है। और फलो को खाते है।

तालीसपत्र नं॰ २
RHODODENDRON LEPIDOTUM WALL.

नोट—मात्रा—१ से २ रत्ती या १ मा॰ तक।
यह उष्णप्रकृति के लिये हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ सूखा धनिया दिया जाता है।

तालीस पत्र नं. ३ (Rhododendron-Anthopogon)

तालीशकुल (Ericaceae) के इसके सदाहरित सुगंधित छोटे २ क्षुप १-२ फीट ऊ चे, ¾ इ च व्यास के, शाखाएं सघन, खुरदरी, छाल--गुलावी वर्ण की, पत्र-विशेषत शाखा के अग्रिम भाग पर ½ से १¼ इ च लम्बे, ¼ से ½ इ च चौडे, अण्डाकार, मोटे, मुडे हुए किनारे वाले, दोनो सिरो पर कु ठित, ऊपरी भाग चमकीले, अधोभाग भूरे रोमश एव छोटे वृन्तयुक्त होते है। पुष्प-शाखाओ के अन्त मे, किंचित् पीली छटा वाले, ¼ से ¾ इ च व्यास के, छोटे वृन्तयुक्त, फली-¾ इ च लम्वी, गोल, परतदार, वीज अण्डाकार छोटे-छोटे होते है।

इसके क्षुप हिमालय मे काश्मीरसे भूटान तक ११ से १६ हजार फीट की ऊ चाई पर, तथा मध्यउत्तर एशिया मे विशेष पाये जाते हैं।

नोट—इसका उपयोग तालीसपत्र नाम से नेपाल और पंजाव मे अधिक होता है।

कहा जाता है कि प्राचीन आचार्यों का माना हुआ यही तालीसपत्र है।

इसके तथा इसकी उपजातियो के पत्र विषारी होते हैं।

तीसरे दिन वच्चे का सर्वांग जकड जाता, ऐठ जाता, वार-वार झटके (दौरे) आते, मुख से फेंम निकलता, मुट्ठिया वध जाती व श्वास वढ जाता या कष्ट से आता है। इस प्रकार प्राय वातप्रधान लक्षण होते हैं। इस रोग के अन्त मे सूखा रोग भी हो जाता है) पर—इस वूटी का निम्न सिद्ध तैल उत्तम कार्यकारी है वूटी का स्वरस १ सेर, कडवा तैल ½ सेर मे मिला तैल सिद्ध करले। इसे प्रथम मस्तक पर लगावे- फिर दोनो ओर कनपटियो के वीच (जहाँ नाडी चलती हैं) लगावे, फिर कान मे १-१ वू द डालदें। इस प्रकार यह प्रयोग दिन मे २-२ घटे मे करे तथा इसका चमत्कार देखें।

—वैद्य गदाधर वर्मा 'गन्तु' (आयुर्वेद सदेश से)

नोट—तितली वूटी गोजिह्वा (गोजिया) को भी कहते हैं, गोजिह्वा का प्रकरण भाग २ मे देखें। तथा सद्दाव (सिताव)को भी तितली कहते हैं सताव या सदाव का प्रकरण यथास्थान देखिये।[1]

[1]एक तितली वूटी वह है जिसे लेटिनमें (Euphorbia Dracunculoides) कहते हैं। यह सातला का या थूहर खुरासानी का एक भेद माना जाता है। इसका सक्षिप्त वर्णन थूहर प्रकरण के थूहर न ४ में देखिये। हमारे ख्याल से यही वह तितली है जिसका सक्षिप्त वर्णन उक्त लेटिन नाम से आगे थूहर नं ४ के १७४ प्रकरण मे किया गया है।

—लेखक

तितिडीक—दे०—समाकदाना।

तितपाती (Roylea Calycina)

तुलसीकुल (Labiatae) के इसके काष्ठमय छोटे-छोटे क्षुप होते है। पत्तिया विपरीत (आमने सामने) १-२ इच लम्वी, लट्वाकार, गोलदन्तुर, अध पृष्ठ सघन रुई सदृश रोमयुक्त, पुष्प—प्रत्येक पत्रकोणीयचक्र में गुलावी श्वेत वर्ण के ६ से १० तक होते है।

हिमालय के वाहरी भाग मे ५ हजार फीट तक (राजपुर, सइया आदि मे) इसके पौधे पाये जाते है। जौनसारी इसके पत्तो को ज्वरनाशक द्रव्य के रूप में व्यवहार करते है।

इस वूटी को करानोई भी कहते है। इसके पत्र अत्यन्त तिक्त होते हैं। (वनौषधि दर्शिका से साभार)

तितालिया दे०—दोडक। तिधारा दे०—निसोथ और थूहर मे। तिनपतिया दे०—चागेरी।

तिनिश (Ougenia Dalbergioides)

वटादि वर्ग एव शिम्वी-कुल के अपराजिता—उपकुल (Papilionaceae)के इसके वृक्ष २०—४० फीट ऊचे, काण्ड की गोलाई ५—६ फीट, छाल—चिकनी, धूमर, या भूरे रग की, पत्र—सयुक्त, पक्षाकार, त्रिपर्ण, नुकीले, पत्रक—किंचित् गोलाकार, पलाश—पत्र जैसे ३—६ इच लम्वे, आगे का पत्रक सवसे वडा, पुष्प—गुच्छों मे, रक्ताभ गुलावी, शिम्वी (फली)—२-३ इच लम्वी, मूंगफली जैसी, इसके भीतर २-३ चपटे वीज होते है। वसन्त मे पुष्प व ग्रीष्म मे फली आती है।

ये वृक्ष हिमालय के वनो मे प्रचुरता से होते है, तथा मध्यप्रदेश, गोदावरी के किनारे एव अवध आदि प्रान्तो के जगलो मे या खेतो के किनारे भी पाये जाते है।

वृक्ष के काड की छाल मे क्षत करने से दानेदार लाल रग का गोद निकलता हे।

नोट—सुश्रुत के सालसारादि गण मे इसका उल्लेख है। कोई कोई भ्रम से वंगाल की ओर होने वाले जरूल वृक्ष (LagerStroemia Flos Reginae) को तिनिश मानते हैं।

नामः—

स०—तिनिश, स्यन्दन, नेमि, रथद्रुम (लकडी मजवूत

होने से इसके पहिये आदि बनाये जाते है) इ० । हि०-तिनिश, छानन, तिरिच्छा,स्यन्दन, तिनसुना, अरिज इ० म०-तिवस, कालापलास, तिमसा इ० गु०—तणछ, हर्म्यो । बं०-तिनाश, सादन, गाछ० । ले०-ओंउजिनिया डेलवर्जिआइडिस, ऑऊ ऊजेइनेंनसिस(Ou OoJeinensis)

गुणधर्म व प्रयोग —

लघु, रुक्ष, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य (किसी के मत से उष्णवीर्य), कफ वात या कफ पित्त शामक, स्तम्भन, शोणितस्थापन, मूत्र सग्रहणीय, सकोचक, दाहप्रशमन, ज्वरघ्न, व्रण-रोपण और रसायन है।

रक्तातिसार, आमातिसार या प्रवाहिका, रक्तविकार, रक्तपित्त, पाडु, प्रमेह, कृमि-विकार, शोथ, कुष्ठ आदि मे यह उपयुक्त है।

ज्वर पर—छाल का क्वाथ देते है। यह क्वाथ मूत्र के बहुत पीला आने पर भी दिया जाता है। आमातिसार, रक्तातिसार आदि मे इसके गोद के साथ समभाग सोठ और मिश्री मिला कर चटाते है ।

नोट-मात्रा—क्वाथ-१-१० तो०। ५-१० रत्ती।

तिनिश(सन्दान)
OUGEINIA OOJEINENSIS (ROXB).
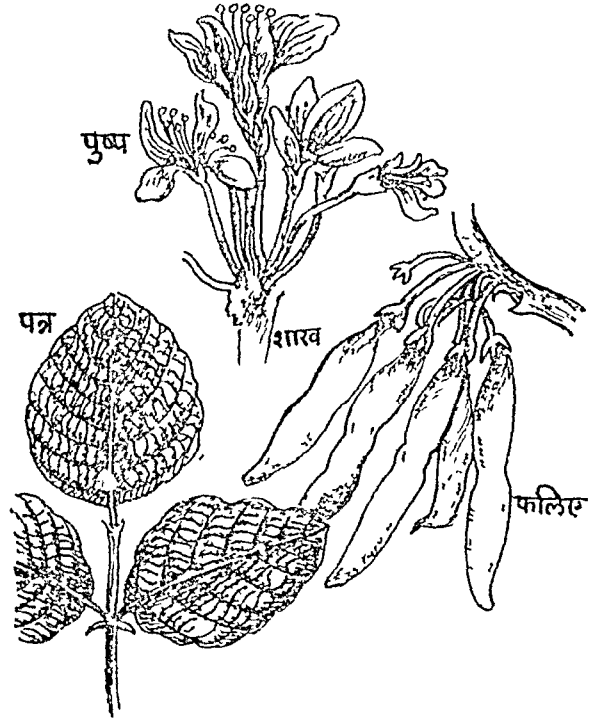
तिपाती (*NAREGAMIA ALATA*)

निम्बकुल (Meliaceae) की यह क्षुपलता खेतो या बागो की बाड पर तथा प्राय. मूग-फली के खेतो मे विशेष होती है। पत्र—त्रिदल, आकार मे मूंगफली के पत्र जैसे, पुष्प-पाच पखुडी युक्त, फल-कुछ लम्बगोल, बीज-छोटे छोटे दोनो सिरो पर मुडे होते हैं।

यह पश्चिम तथा दक्षिण भारत मे विशेष होती है।

नोट—यह विदेशी अनतमूल (Psychotria-Ipecacuanha) का ही एक भेद विशेष है (इपे के क्वाना का प्रकरण भाग१ में देखिए) इसे देशी अनन्तमूल (Couutry Ipe,) कहते हैं -

नाम—

सं०—त्रिपर्णिका, कन्दबहुला आदि। हि०-तिपाती म०-तिपाती, पित्तमारी। अ०-गोआनीज या कंट्री इपेका कुआना (Goanese or Country Ipecacuanha) ले०—नारेगेमिया एलेटा।

रासायनिक संघटन—

इसके मूल मे नरेगेमिन (Naregamin) नामक उपक्षार पाया जाता है। छाल मे वसा, गोद, स्टार्च आदि होते है। इसमे टेनिन नही होता।

गुणधर्म व प्रयोग—

मूल-मधुर, शीतल, विषहर, कफनि सारक, पित्त-शामक, व्रणरोपण है, तथा श्वास, वातनलिका प्रदाह, पित्त-प्रकोपक, तीव्रातिसार, कडु आदि मे प्रयुक्त है।

इसका मूल एव काड या डठल इपिकाक के समान ही १२ से २० ग्रेन की मात्रा मे, वमनकारक है। अल्प मात्रा मे कफनि सारक, एव जीर्ण फुपफुस शोथ मे हितकारी इसका अर्क ५ से २० बूद की मात्रा मे-कफनि सारक, धातुपरिवर्तक एव उपशामक होता है। इसकी १५ से ४० ग्रेन की मात्रा प्रवल वमनकारक है।
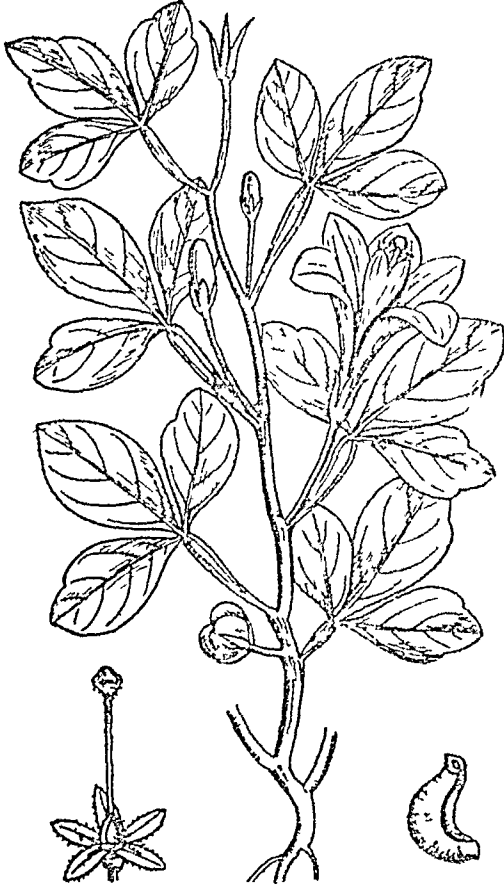
तिपाती (पित्तपापडा)
NAREGAMIA ALATA W & A.

पत्र एव काड के क्वाथ मे कडुवे सुगन्धि-द्रव्य मिलाकर पित्तप्रकोप मे देते है।

त्वचा पर जाडे, धब्बे एव खुजली हो तो इसका स्वरस नारियल के तेल मे मिला लगाते है।

व्रणो पर—पत्रो की राख को घृत मे खरल कर लगाने से शीघ्र ही व्रणरोपण होता है।

तिरकोल-दे०—कन्दूरी (कुन्दरू)

तिरनोई

CIBURNUM PRUNIFULIUM

इस तिलक कुल (Gaprifoliacoae) के क्षुपो[१] के पत्र २॥-४ इच लम्बे, १॥ इच तक चौडे, अण्डाकार, आयताकार, नोकीले एव तीक्ष्ण दन्तुर, फल—लाल रंग, के खट्टे स्वादिष्ट होने से चटनी बनाकर खाये जाते हैं।

इसकी छाल का औषधि-रूप मे व्यवहार नही सुना गया। किंतु स्थानीय नामो से इसके तिलक या तिल्वक होने का सदेह होता है।[२] अमेरिकन वाईवर्नम (V Prunifolium) की मूल की छाल का व्यवहार नष्टार्तव तथा श्वास मे होता है। यह रक्तस्राव तथा गर्भपात रोकने मे भी समर्थ माना जाता है। भारतीय वाईवर्नम (प्रस्तुत की तिरनोई बूटी) मे भी ये गुण सम्भवत हो सकते हे। तिलक बूटी को भी निघण्टुकारो ने "स्त्री-निरीक्षण दोहद" की सज्ञा दी है और चू कि तिरनोई और थेलका नाम तिलक तथा तिल्वक से मिलते है, इसलिए सम्भव कि तिरनोई शास्त्रीय तिलक या तिल्वक हो। ऐसा होने पर लोध्र और तिल्वक का पृथक्त्व भी सिद्ध होजायगा। प्राचीन समय मे इन दोनो को ग्रन्थकारो ने एक मानकर जो गडबड कर रखी है वह भी दूर हो जायगी।

श्री ठा बलवन्तसिह कृत वनौषधि-दर्शिका से साभार।

इसी कुल का एक पौधा नरवेल नामक होता है। "नरवेल" देखे।

नोट-तिलक या तिलकपुष्प-इस वृक्ष का पुष्प तिल के पुष्प जैसा होता है, किंतु इस मे सुगन्ध आती है। फल-पीपल के समान एव मधुर होता है।

इसे स०—तिलक, वासतसुन्दर, दुमरुह, पुन्नाग-हि०—तिलक पुष्प। गु०—तिलक वृक्ष। म०—तिल पुष्पक।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, पौष्टिक, बलवर्धक मेदजनक, हृद्य उष्णवीर्य, कटु विपाक, रसायन व तीक्ष्ण हैं, तथा दन्तरोग, कृमि, कुष्ठ, त्रिदोष, कडु, व्रण, रक्तविकार आदि नाशक है।

इसे किसी भी क्षार मे मिलाकर देने से यह गुल्म, व उदररोग दूर करता है।

इसकी छाल कसैली, उष्ण, पुरुषार्थ-नाशक, दंत-रोग, रक्तविकार, कृमि, व्रण व शोथ नाशक है— (व० च०)

तिरफल दे०—तुम्बरु मे।

[१] इस कुल के क्षुपों के पत्र अभिमुख, उपपत्ररहित, पुष्पबाह्यकोष के दल ३-५, आभ्यन्तर कोष के दल ५, पुंकेसर ४ या ५, बीजकोश २-८ कोष्ठयुक्त होते हैं।

[२] तिलक नाम की और एक बूटी होती है, जिसका वर्णन इसी प्रसग मे आगे देते है— —सम्पादक

तिल (Sesamum Indicum)

धान्यवर्ग एवं स्वकुल[1] (Pedaliaceae) के इसके वर्षायु क्षुप २-३ फुट ऊंचे, काण्ड—मृदुलोमश, पत्र—३-५ इंच लम्बे, छोटे बडे अनेक प्रकार के, ऊपर के पत्र कुछ लम्बे, नीचे के त्रिधाकृति, पुष्प—कोमल लोमयुक्त, लम्बगोल, नीचे से श्वेत, लाल या पीले चिन्हो से युक्त, बीज—छोटे, चिकने, वर्ण से श्वेत, लाल और काले, इन्ही बीजो को तिल कहते है। फली—प्रतिपत्र के मध्य में लगती है, इसीमे उक्त बीज होते है। काले या लाल तिल को रामतिल भी कहते है। यह अन्य कुल का है। इसका संक्षिप्त वर्णन आगे अन्त के नोट मे देखें।

समस्त भारत मे, विशेषत उष्ण प्रान्तो मे इसकी खेती की जाती है। यह प्राचीन काल से भारत का ही एक खास तिलहन धान्य है। अब तो कहीं-कहीं बाहर भी इसकी खेती होने लगी है।

नोट—(१) तिल के रंग भेद से श्वेत, लाल या भूरे और काले तीन प्रकार है। वनों में भी एक जाति के तिल होते है। उन्हें 'अरण्यतिल' कहते हैं।

इनमें से श्वेत तिलों से तैल अधिक निकलता है। लाल तिलों को 'रामतिल' भी कहते हैं, इसका क्षुप काले तिल के क्षुप जैसा, किंतु पुष्प—चित्रविचित्र, पत्र-कुछ बड़े होते है। काले तिल—धर्मग्रंथ की दृष्टि से, तथा होम पूजा आदि धार्मिक कार्यों के लिये प्रशस्त माने जाते है, औषधि-कार्य मे—इनका विशेष उपयोग होता है। श्वेत-तिल—मध्यम कोटि के, किन्तु वीर्यवर्धक होते हैं। वन्य तिल हलके, निकृष्ट कोटि के है।

(२) आजकल अपेक्षाकृत तिल-तैल महंगा मिलता है। अतः इसमे मिलावट भी बहुत होती है, इसमे प्राय मूंगफली, तीसी, बिनौला आदि का तेल मिला दिया जाता है।

शुद्ध तिल-तैल जैतून-तैल (Olive Oil) का एक उत्तम प्रतिनिधि है। अत लिनिमेंट, मलहम आदि के निर्माण कार्य मे, जैतून तैल के स्थान में इसका प्रयोग किया जा

सकता है। इसके अतिरिक्त इसका उपयोग अधस्त्वक् एवं पेशीगत इंजेक्शन द्वारा दी जाने वाली अनेक औषधियो के विलयन (सोल्यूशन) बनाने के लिये भी किया जाता है। अनेक प्रान्तो मे घृत के स्थान मे खाने के लिये भी इसीका उपयोग किया जाता है।

(३) सुश्रुत के सू अ ४५-४६ मे इसके गुणधर्मों का विवरण दिया गया है।

नाम—

स —तिल, पूत,होम धान्य, पितृतर्पण इ०। हि -म०-ब०—तिल, तिल्ली इ०। गु -तल। अं --सिसेम, जिंजिली (Sesamem, Jinjili)। ले —सिसेमम इंडिकम सिसेमम नायगरसीडस (SisamuM Niger Seeds)।

रासायनिक संघटन—

तिलो मे स्थिर तैल ५०-६०% (श्वेत मे ४८% लाल व काली मे लगभग ४६%) मासतत्व (Proteids)

---

[1] इस कुल के क्षुप, पौधे, या वृक्षों के पत्र-अभिमुख, अखड, उपपत्ररहित, पुष्पाभ्यतर कोष के दल ५, नीचे से जुडकर नलिकाकार पुकेशर ४ (दो छोटे २ बडे), बीजकोश दो खडों का, व बीज अनेक होते हैं।

२२%, कार्बोहायड्रेट (Carbohydrates) १८%, पिच्छिलद्रव्य (Mucilage) ४% इत्यादि, इसके अतिरिक्त लगभग १० तोले तिलो मे १०.५ मिलिग्राम लोहा, १.४५ ग्राम केल्शियम, और .५७ ग्राम फास्फोरस पाया जाता है। मनुष्य-शरीर के लिये जितने केलशियम की जरूरत है। उतना १॥ छटाक तिल मे प्रतिदिन प्राप्त हो सकता है। साथ ही साथ लोहा व फास्फोरस भी उक्त मात्राओ मे प्राप्त होते हैं। यदि तिलो को गुड मे मिलाकर मोदक बनाकर सेवन कर तो और भी अधिक लाभदायक होता है। क्योकि १¾ छटाक गुड मे ११ ४ मि ग्रा लोह, व ०४ ग्राम फास्फोरस अलग मिल जाता है। तिलो मे व्हिटामिन बी० (थियामिन) की भी अधिकता होती है, जो क्षुधावर्धक, पाचक, स्नायविक स्वास्थ्यरक्षक, एव बेरी बेरीनामक रोग-निवारक है।

प्रयोज्याग—तिल, तैल, पत्र पुष्प, पचाग तथा क्षार।

गुण धर्म व प्रयोग —

तैल, गुरु, स्निग्ध, मधुर, अनुरस मे-कषाय, तिक्त, मधुर (या कटु) विपाक, उष्णवीर्य व प्रभाव मे केश्य है तथा वातशामक, कफपित्तप्रकोपक व योगवाही होने से अन्य द्रव्यो के सयोग एव सस्करण से त्रिदोषशामक, दीपन, ग्राही, शूलप्रशमन, दातो को हितकर, वेदनास्थापक, सधानीय, व्रणशोधनरोपण, मेध्य, रक्तस्रावरोधक, श्वासनलिकागत रूक्षतानाशक, अल्पमूत्रकारक, वाजीकरण, आर्त्तवजनन, स्तन्यजनन, बल्य, वृष्य व त्वचा के लिये हितकर है। वात-विकार, मस्तिष्क-दौर्बल्य, अग्निमाद्य, हिक्का, श्वास आदि वातप्रधान रोगो मे इसका प्रयोग होता है। तैल मे कृमिघ्न गुण की विशेषता होने से प्राचीनकाल मे मृत शरीर सुरक्षित रखने के लिये उसका उपयोग किया जाता था। ध्यान रहे तैल का सरलार्थ 'तिलस्येद' तिलोत्पन्न ही है। तथा व्यवहार मे भी तिल-तैल अधिक श्रेष्ठ होता है। कहा है—सर्वेभ्यस्त्विद तैलेभ्यस्तिलतैल विशिष्यते।

(सुश्रुत सू स्था अ ४५)

तिल—स्नेहन, सारक, पौष्टिक, मूत्रल, रजस्थापनीय, दन्त्य एव स्तन्य है-दातो की दुर्बलता मे इसे चबाते हैं। अर्श-रोग मे, रक्तस्रावनिवारणार्थ मक्खन के साथ या अखरोट की गिरी के साथ खाते है। तथा—

(१) अर्श पर—तिल को पीस कर गरम कर अंकुरो पर बाधने या लेप करते है। तिल-तैल की बस्ती (एनिमा) देने से गुदा के अन्दर १-१॥ बालिश्त तक भाग स्निग्ध होकर मल के गुठ्ठे निकल जाने से इस रोग मे अच्छा सुधार होता रहता है। अथवा—

प्रतिदिन काले तिलो को ४-५ तो खाने व ठंडा जल पीने से दस्त साफ होकर भी लाभ होता है। रक्तार्श हो, तो २-३ तो तिलो को गरम पानी मे पीस कर, उसमे दो तो ताजा माखन मिला, नित्य प्रात पिलावे। और काले तिल ६ मा पीस कर, मक्खन दो तो मे मिला २१ या ४० दिन खावें। रक्तार्श मे लाभ होता है। अथवा उक्त काले तिलो के साथ समभाग खाड मिलाकर गाय के ताजे मक्खन के साथ चाटते रहने से पुराने, दुष्ट पित्तज अर्श नष्ट होते है (यो म) उक्त प्रकार से काले तिलो को चबाकर खाने एव ठंडा जल पीने से, अर्श मे तो लाभ होता ही है, साथ ही साथ दात सुदृढ व अग परिपुष्ट होते हैं। कहा है—"अग्रिताना तिलाना प्रकुञ्चे शीतवार्यनु खादतोऽर्शांसि नश्यति द्विज दार्ढ्यञ्च पुष्टिकम्—चक्रदत्त।

(२) गुल्म पर—रक्तगुल्म हो, तो-तिल के क्वाथ मे गुड, घी व त्रिकुट (सोठ, मिर्च, पीपल) तथा भारगी चूर्ण मिलाकर सेवन से, (अथवा-क्वाथ मे केवल पीपलामूल-चूर्ण मिलाकर देने से भी) लाभ होता है और नष्ट पुष्प (रजोदर्शन का न होना रोग) भी दूर होता है।

(व से)

कफजगुल्म हो, तो तिल, एरड-बीज अलसी व सरसो का लेप लगाकर सुखोष्ण लोहपात्र द्वारा स्वेदन करें।

(भै र)

(३) अनार्त्तव, कष्टार्त्तव, अत्यार्त्तव पर—काले तिल लिसोडा व सोफ का क्वाथ कर उसमे गुड मिला पीने से अथवा २॥ तो तिलो को कूट कर १० तो पानी मे पकावे, ५ तो पानी शेष रहने पर १ तो पुराना गुड मिला छानकर कुछ दिन इसी प्रकार प्रात साय पीने से ७ या १४ दिन मे मासिक धर्म खुलकर होने लगता व

कष्टार्त्तव मे भी लाभ होता है। अथवा काले तिल, सोठ मिर्च, पीपल, भारगी और गुड समभाग का क्वाथ, नित्य, प्रात सायं १५ दिन पिलावे। अथवा—

तिल के क्वाथ मे, वच, पीपलामूल और गुड मिला कर पिलाते है, तथा तिल के पत्तो के क्वाथ में रुग्णा को बिठाया जाता है। अथवा—तिल-चूर्ण-५ रत्ती तक दिन मे ३—४ बार खिलाते, तथा ५ तो तिल के कल्क मिले हुए गरम पानी में कटिस्नान (अवगाहन) कराते रहने से भी कष्टार्त्तव व नष्टार्त्तव-विकार दूर होता है।

अत्यार्त्तव मे—मासिकधर्म के समय अत्यधिक रक्त आता हो, तो तिल के क्वाथ मे, त्रिकुट, भारगी व लोध का चूर्ण मिला सेवन से वह बन्द हो जाता है। इस योग से रक्तप्रदर एव दाह भी शात होता है। (यो त.)

(४) कास पर—तिलो के क्वाथ मे मिश्री पकाकर पिलाने से शुष्क कास मे कफ निकल कर शाति प्राप्त होती है। अथवा—क्वाथ मे त्रिकुट-चूर्ण मिलाकर सेवन कराते है।

(५) गर्भस्राव तथा गर्भिणी या प्रसूता के रक्तस्राव के निवारणार्थ—तिल-चूर्ण १ तो पद्माख (पद्मकाष्ठ या लाल चन्दन) का चूर्ण ६ मा दोनो को सिलपर पीस, १० तो जल मे छानकर थोडी मिश्री मिलाकर, दिन मे १ या २ बार पिलाते रहने से, बार २ गर्भस्राव होने का कष्ट दूर होता है। ४० दिन सेवन करावे, सयम व पथ्य का पालन करना आवश्यक है।

गर्भिणी या प्रसूता को रक्तस्राव होता हो, तो तिल, जौ और शक्कर इन तीनो का चूर्ण शहद के साथ चटाते है।

(६) रक्तातिसार पर—काले तिल १ भाग और ५ भाग मिश्री को एकत्र पीस कर ४ भाग बकरी के दूध के साथ पीने से विशेष लाभ होता है। (ब०मे)

(७) वात रक्त पर—तिलो को भाड मे भून कर दूध मे डाल कर (रात्रि के समय दूध व भुने हुए तिलो को प्राय समप्रमाण मे प्रात) पीस कर लेप करने से लाभ होता है। अथवा शास्त्रानुसार—तिलो को भून कर दूध मे बुझा कर तथा पीस कर लेप किया जाता है

रामतिल (काला तिल)
GUIZOJIA ABYSSYNICA CASS.
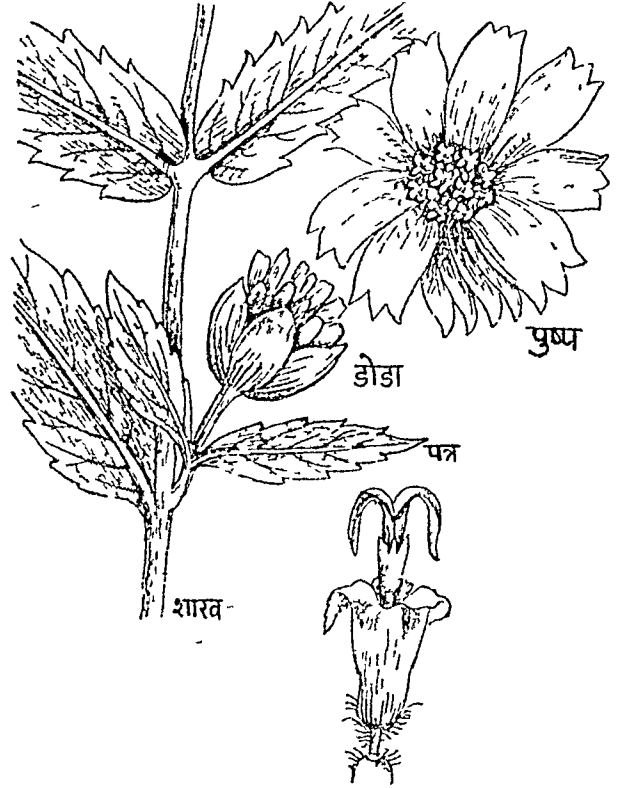
(भैं०र०) यह लेप भी पित्त प्रबल वातरक्त मे, जब दाह हो, स्पर्शासह वेदना हो, शोथ हो, लाली हो तथा आक्रान्त स्थान अतिउष्ण हो, तब लगाया जाता है। (टीका-भैं०र०)

(८) बहुमूत्र व प्रमेह पर—तिल ½ सेर, खसखस और अजवायन १—१ पाव, इनको कढाई मे मदाग्नि पर सेक कर (आवी कच्ची भून कर) खरल कर छान ले। मात्रा २ तो०। इस चूर्ण मे ६ मा० मिश्री मिला दोनो समय सेवन करे। —अथवा—

तिल और अजवायन ½—½ तो० प्रात साय खाने से भी लाभ होता है।

प्रमेह हो, तो—तिल १ भाग तथा अजवायन ½ भाग दोनो को एकत्र महीन कर, समभाग मिश्री मिला सेवन करें।

(९) उदरशूल पर-२-३ तो० तिलो को चवाकर, ऊपर गरम जल पिलावे। तथा-तिलो को पीस कर लम्वा—

कार गोला सा बना, इसे तवे पर सुहाता हुआ गरम कर पेट के ऊपर फिराने से अति दारुण, एव असह्य शूल शान्त होता है (भैं०र०)। उदर या किसी भी स्थान के शूल पर—तिलो के उष्ण क्वाथ की धारा देने से लाभ होता है।

(१०) सुजाक (पूयमेह) पर—काले तिल व मिश्री या खाड २-२ तो० महीन चूर्ण कर [यह १ मात्रा है) प्रात साय कच्चे गोदुग्ध की लस्सी के साथ सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

(११) राजयक्ष्मा, तथा धातु—शोष—जन्य क्षय (शोष) और पुष्टि के लिये—तिल, उडद व असगध, इन तीनो का समभाग चूर्ण कर (१॥ मा० से ३ मा० तक) बकरी के घी (१ तो०) और शहद (३ तो०) के साथ नित्य प्रात सेवन से राजयक्ष्मा मे लाभ होता है। (ग० नि)

शोष पर—तिल, बेर की गुठली की गिरी और धान की खीलो के समभाग मिश्रित चूर्ण को घृत (१ तो०) व शहद (४ तो०) के साथ (मात्रा २ तो० से ३ तो० तक) मिला कर चाट कर ऊपर से दूध पीने से १ मास मे शोष-रोग नष्ट हो जाता है। शोष पर यह एक अति-उत्तम योग है (यह चूर्ण वमन के लिये भी अत्युत्तम है) (भा०भै०र०)

पुष्टि के लिये—काले तिल १० तो० को कढाही मे सूखा भून कर कूट ले, फिर चावल का आटा १० तो० और घी १ पाव, तथा कूटा हुआ तिल—चूर्ण सबको एकत्र भून कर, दूनी शक्कर मिला कर रक्खे। मात्रा २½ तो० प्रात यह चूर्ण खाकर, ऊपर से १ पाव गो-दुग्ध गरम कर मीठा मिला हुआ पीवे। यदि धारोष्ण दूध प्राप्त हो तो बहुत ही उत्तम है। इससे वीर्य की वृद्धि होती, वीर्य गाढ़ा होता व बल बढता है।

तिल के बीज, पत्र, शाखा व पुष्प समभाग छाया शुष्क कर, महीन चूर्ण कर समभाग खाड मिलावे। ६ मा० की मात्रा से प्रतिदिन २१ दिन सेवन से स्तभन-शक्ति बढती है। इस योग को यूनानी मे 'दवाये असमस्तक' कहते हैं।

(१२) [illegible] पर—तिल [illegible] का समभाग मिश्रित चूर्ण, [illegible] नियम पूर्वक [illegible] वृद्धि होती है। (ग० नि०)

(१३) [illegible] २ भाग व [illegible] तेल गरम कर [illegible] पर [illegible] दूध मे गुड मिला कर पिलाने [illegible] ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(१४) मुख के दाह, [illegible] पर—मुख के भीतर किसी कारण [illegible] जाने से होती हुई दाह पर—तिल, लाल [illegible] ([illegible]), घी, खाड और लोध ४-४ तो० लेकर ८ गुने दूध मे मिला तथा दूध से ४ गुना जल मिला कर पकावे। [illegible] शेष रहने पर, छान कर कुल्ले करने से शान्ति प्राप्त होती है। (यो०र०)

मसूढो मे सूजन हो, तो तिल, [illegible] और श्वेत सरसो समभाग, चूर्ण कर गरम पानी मे मिला, कवल-धारण करने से परम लाभ होता है। (व०से)

(१५) व्रणो तथा भगदर पर—दाह एवं वेदनायुक्त वातज व्रणो (घावो) मे तिल और अलसी को भून कर, तुरन्त गरम गरम ही दूध मे बुझा कर तथा उसी दूध के साथ पीस कर लेप करने से लाभ होता है। (व०से)

व्रण-शुद्धि के लिये—पिसे हुए तिल, सेंधा नमक, हल्दी, दारुहल्दी, निसोत, मुलैठी एव नीम—पत्र का समान भाग चूर्ण लेकर, घृत मे मिला लेप करे (—यो०र०)। इसे तिलाष्टक योग कहते है। अथवा-काले तिल, हरड़, लोध, नीमपत्र-इन्हे एकत्र कर पीस कर लेप करने से दुष्टव्रण, नाडीव्रण, उपदशज व्रण एव भगदर का भी शोधन-रोपण होता है। (भै०र०)

रक्त एव वेदनायुक्त भगदर पर—तिल, अरण्ड की

जड, और मुलैठी को कच्चे दूध मे पीस कर, ठंडा ठडा लेप करने मे लाभ होता है । (व०से)

तिली की पुल्टिस बना बाधने से भी व्रणो मे लाभ होता है ।

(१६) अग्निदग्ध पर—काले तिल ५ तो० और चावल २॥ तो० दोनो को शीतल जल से पीस, महीन लेप करे । दाह व पीडा तत्काल दूर होती है । ३ दिन लगातार लेप करते जावे । उस स्थान को धोने की आवश्यकता नही । उसी लेप पर लेप करते जावें । आराम होने पर इन लेपो की पपडी स्वयं दूर हो जाती है ।

यदि भिलावा, जयपाल (जमाल गोटा), या अर्क दुग्ध का विष त्वचा पर लग जाने से दाह आदि पीडा हो, तो उस पर तिलो को बकरी के दूध मे पीस कर लेप करने मे शीघ्र लाभ होता है ।

(१७) गर्भाशय की पीडा पर—तिलो को पीस कर इसी के तैल मे मिला, गरम कर नाभि के नीचे धीरे-धीरे मर्दन या लेप से, शीत जन्य पीड़ा दूर होती है ।

(१८) वायुनाशार्थ एव नेत्रो के हित के लिये—तिलो को उबटन जैसा पीस कर, शरीर पर मर्दन कर स्नान करना चाहिये (यो०र०) ।

मोच पर—शरीर पर कही मोच आ जाने पर तिलो को महुओ के साथ पीस कर बाधने से लाभ होता है ।

तिलो के विशिष्ट योग—

१६ तिल सप्तक चूर्ण—तिल, चित्रक, सोठ, मिर्च, पीपल, वायविडङ्ग, और हरड के चूर्ण को (६ मा तक की मात्रा मे) गुड (६ मा) के साथ, गरम पानी से सेवन करने मे—सर्व प्रकार के अर्श, पाडु, कृमि, कास, अग्निमाद्य ज्वर और गुल्म रोग नष्ट होते है ।— (यो० स०)

तिलाष्टक का योग ऊपर प्रयोग न० १५ मे देखे ।

२० तिल कुट्टम, या गजक, रेवडी, पापड़ी आदि-जो पदार्थ तिलो को धोकर सेकने, छिलके उतार कर कूटने के उपरात शक्कर या गुड के साथ बनाये जाते है, वे वृष्य, वातनाशक, कफपित्तकारक, स्निग्ध एव मूत्र को कम करने वाले माने गये हैं । शर्करा से बने हुए वे पदार्थ-विशेष रुचिकर, स्वादिष्ट तथा विशेष हानिकर नही होते । नये गुड के साथ बने हुए वे विष्टम्भी एव दोष-प्रकोपक होते हैं । पुराने गुड के बने हुए सब से उत्तम होते है । जिनमे गोद मिलाया जाता है—वे विशेष रूप से वीर्यवर्धक, रसायन व वाजीकरण गुणो को प्रदान करते है ।

तिल के वडे, शुष्क शाक, पापड आदि दोष-प्रकोपक होते है ।

नोट—तिल-चूर्ण ३ से ६ मा. तक । ध्यान रहे तिल गुरु होने से अधिक मात्रा में देर से पचता तथा आमाशय को शिथिल कर देता है ।

हानि-निवारणार्थ—प्याज या नीबू का रस देते है । तिलो से सुगंधित चमेली आदि का तेल बनाने के लिये तिलो को उन विशेष महकदार पुष्पो के स्तरों के मध्य मे १०-१२ घटे रखकर कोल्हू मे पेर कर तेल निकाल लेते हैं ।

तैल—इसके विशेष गुण ऊपर प्रारम्भ मे ही देखे । तिल के तेल मे दो परस्पर विरुद्ध गुण पाये जाते हैं—एक तो यह कृश व्यक्ति को पुष्ट करता है दूसरे पुष्ट या स्थूल को कृश करता है । इसके इसी चमत्कारिक गुण विशेष के कारण चिकित्सा-कर्म मे इसका विशेष उपयोग होता है । यह योगवाही होने से जिस द्रव्य का इसके साथ संस्कार किया हो, उसी के गुणधर्मो को एक दम ग्रहण कर लेता है । यह स्वय तीक्ष्ण, व्यवायी-(शीघ्र ही शरीर मे फैल जाने वाला) और सूक्ष्म से सूक्ष्म स्रोतो के अन्दर प्रवेश कर जाने वाला होने के कारण औषधीय तैल सिद्ध करने के लिये प्राय इसी का उपयोग किया जाता है ।

किन्तु ध्यान रहे तेल का प्रयोग बगैर शुद्ध किये हुए करने से अनिष्ट परिणाम होना सभव है । कारण—विष के तीक्ष्ण, उष्ण, व्यवायी आदि उक्त लक्षण उसमे भी कुछ प्रमाण मे होने से विष के समान (सज्ञानाश को छोडकर) इसका प्रभाव शरीर पर शीघ्र ही होता है[1]

[1] किसी का कथन है—"विषस्य तैलस्य च न किंचिद-न्तरम्, मृतस्य सुप्तस्य न किंचिदन्तरम् । तृणस्य दारस्य न किंचिदन्तरम्, मूर्खस्य काष्ठस्य न किंचिदन्तरम् ।'

अत जैसे युक्तिपूर्वक विषकी योजना करने से वह अमृत के समान गुणकारी होता है, वैसे ही रोगनाशार्थ तैल की योजना बुद्धिमान वैद्यशास्त्रनिपुण वैद्यो को करनी चाहिए। प्रयोग बाह्याभ्यन्तर किया जाता है, ऐसे तैलो को सिद्ध करने के पूर्व तिल-तेल को इस प्रकार शुद्ध कर कार लेना आवश्यक है—

एक मटकी को पेन्दी मे छिद्र करके उसमे शुद्ध कोयला (लकडी का) अर्धभाग भर कर, उसके नीचे दूसरा कलई दार पात्र रखकर, कोयले वाली ऊपर की मटकी मे तेल डाल देवें। यह तेल कोयलो मे से छनकर नीचे के पात्र मे शुद्ध रूप मे प्राप्त होगा। बाह्य प्रयोगार्थ, सुगधित केश-तेलादि या मालिश आदि के लिए तो इसका ही उपयोग उत्तम होता है। यदि बाह्याभ्यन्तर दोनो ही कार्यो के लिये उपयोग करना हो तो उक्त शुद्ध तेल को पीतल की कलईदार कढाही मे डालकर आग पर रक्खें, और उसमे तेल का सोलहवा भाग मजीठ तथा मजीठ का चौथा भाग हल्दी, लोध, नागरमोथा, बहेडा, हरड, आवला, केवडे के फूल, दालचीनी व वड की जटा का कल्क डाल दें। इनमे से मजीठ व हल्दी का कल्क अलग अलग करें तथा शेष द्रव्यो का मिश्रित कल्क करें। जब चूल्हे पर रक्खा हुआ उक्त तेल गरम होकर झाग रहित हो जाय, तब नीचे उतार, उष्णता थोडी-कम होने पर उसमे प्रथम हल्दी का कल्क, फिर मजीठ का, पश्चात् शेष द्रव्यो का कल्क, तथा तेल से चौगुना पानी मिला पुन मदाग्नि पर पाक करें। थोडा पानी शेष रहने पर उतार कर ७ दिन तक सुरक्षित रखे, पश्चात् तेल को छानकर तैल-पाक मे कही हुई औषधियो से सिद्ध करे।

उपरोक्त केवल शुद्ध मात्र किये गये तेल का अभ्यग त्वचा की रूक्षता को शीघ्र दूर करता है। छिन्न-भिन्न, भग्न, क्षत आदि मे इसका परिषेक, अवगाह आदि के रूप मे प्रयोग होता है। इसका घृत की भाति आहार मे भी उपयोग होता है। यह शरीर को पुष्ट करता एव तरी पहुँचाता है।

२१ यदि उत्तम गुणदायक अभ्यगादि के लिए सुगन्धित तेल बनाना हो तो 'रसतन्त्रसार' का 'विश्व-विलास-तेल इस प्रकार बनावें—

काले तिल का तेल ७ सेर तथा गन्ध (एक सुगधित द्रव्य) लग, छरीला, श्वेत चन्दन, तगर अगर व जटा-मासी ५-५ तो लेकर प्रथम तेल को खूब गरम करे। झाग रहित होने पर—उतार कर २-२॥ तो. साभर-नमक डाल दें, शीतल होने पर गाद नीचे जम जावेगी, व ऊपर का स्वच्छ जल सदृश तेल पतला हो जावेगा। उसे नितार कर अमृतवान या टीन के पात्र मे भर कर उपरोक्त वस्तुओ का जौकुट चूर्ण डालें, तथा मुख-मुद्रा कर ७ दिन धूप मे रखे। रोज २-४ बार पात्र को हिला दिया करें। यदि सुगन्ध व रग मिलाना हो तो ८ वें दिन तेल को निकाल छान ले। फिर हरा रग (Oil Colour green) १ तोला तथा विशेष सुगन्धार्थ जैस-मिन (Jasmine) ½ औंस मिला, बोतलो मे भरले।

मस्तिष्क पर मर्दनार्थ यह तेल अति हितकारक है। यह विद्यार्थी-वर्ग एव मस्तिष्क से श्रम लेने वालो के लिए अति हितावह है। मस्तिष्क की उष्णता को शात कर मगज को सबल एव मन को प्रसन्न रखता है। उष्णता के कारण बाल गिरते रहते हो, अधिक नही बढते हो, मुख निस्तेज रहता हो तो इससे लाभ होता है। असमय मे बाल श्वेत नही होने पाते। इसे सारे शरीर पर मालिश करने से त्वचा मुलायम एव तेजस्वी बनती हैं—

(र० तन्त्रसार)

२२ बलवृद्धि के लिए—उक्त शुद्ध तेल १। सेर मे गोरखमुण्डी के ताजे पचाग का (मुडी के पचाग को कुछ जल के छींटे देकर कूटकर) लगभग ५ सेर रस निकालकर औटावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रखें। इसे ६ मा. से २ तोले तक खाली पेट प्रात साय सेवन ४१ दिन तक करने से बल-वृद्धि होती है। वीर्य पुष्ट होकर नपु सकता भी दूर होती है। प्रयोग-काल मे प्रसगादि कुपथ्य से बचना विशेष आवश्यक है।

२३ वातरोगनाशार्थ—४ सेर शुद्ध तेल मे, ४ सेर गोखुरू का रस, ४ सेर दूध तथा अदरख १२॥ तो तथा गुड आध सेर इनका कल्क मिला मन्दाग्नि पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखे। यथोचित मात्रा मे सेवन करने तथा वस्ति लेने से गृध्रसी, पाद-कपन, कटिग्रह, पृष्ठग्रह, शोथ एव अन्य वातरोगो का नाश होता

है। यह तेल वध्यत्व, वीर्यविकार व मूत्रकृच्छ्र मे भी लाभकारी है।

२४ वध्या के गर्भधारणार्थ—शुद्ध तेल, दूध, फाणित (पतली राब) दही व घृत समभाग लेकर, हाथ से भलीभाति मथकर, उसमे पीपल-चूर्ण मिला, सेवन से वध्या स्त्री गर्भ धारण करती एव उत्तम पुत्र को जन्म देती है— (यो० र०)

ध्यान रहे—तेल-अल्पमात्रा मे—ऋतु-नियामक है और बडी मात्रा मे—गर्भपात-कारक होता है।

२५. गलगण्ड पर—काले तिल के तेल १ सेर मे ४ सेर भागरे का रस तथा जटामासी, वच, गिलोय, त्रिफला, चित्रक, देवदारु और पीपल समभाग मिश्रित कल्क १० तो मिला मदाग्नि पर पकावे। तेल मात्रशेष रहने पर छान रक्खे। ६ मा से १ तो की मात्रा मे, शहद मिला सेवन करे, तथा ऊपर से इसी तेल की मालिश करे।

२६ प्लीहा पर—शुद्ध तेल १ सेर मे—केले का व ताल-मखाने का और तिल के पचाग का क्षार, तीनो क्षारों का समभाग मिश्रित कल्क १० तो. और पानी ३ सेर एकत्र मिला तैल सिद्ध कर ले। १ से ५ तोला तक प्रात. साय (खाली पेट) पिलाने से प्लीहा, विशेषत कफवात जन्य) नष्ट होती है।

२७ मुख रोग-नाशार्थ—शुद्ध तेल दो सेर मे, खैर (कत्थे) का क्वाथ ८ सेर, तथा कल्क-द्रव्य—चन्दन अगर, केशर, मोथा, सुगन्धवाला या खस, देवदारु, लोध, दाख, मजीठ, दालचीनी, वायबिडग, तगर, कायफल, और छोटी इलायची-१-१ तो सबको पानी के साथ एकत्र पीस, मिलाकर तेल सिद्ध कर ले। इसके पीने, नस्य लेने एव गण्डूष धारण करने से मुख के समस्त रोग नष्ट होकर दृष्टि एव श्रवण-शक्ति तीक्ष्ण होजाती है।

मुख-पाक के कारण दात हिलते हो तो तेल मे सेधा नमक मिला कुल्ले कराते है।

२८ टामिल्स (गलशुण्डिका) पर—तेल आधा सेर मे श्वेतसारिवा, वायविडग, दतीमूल और सेधानमक १॥-१॥ तोला का एकत्र कल्क कर मिलावे। तथा इन्ही द्रव्यो का क्वाथ दो सेर मिलाकर पकावे। तैल सिद्ध होजाने पर छान ले। इस तेल के गण्डूष (कवल) धारण करने एव नस्य लेने से विशेष लाभ होता है।

२९ अपस्मार पर—तेल १० तो मे १ कनखजूर (कनसरिया, शतपदी कृमि विशेष) को डालकर पकावे। जब वह जल जाय तब तेल ठडा होने पर छानकर शीशी मे रख लें। रोगी के नासिका व कान मे इसकी कुछ बू दें छोडने से विशेष लाभ होता है।

३० अग्निदग्ध पर—तेल मे चूने का पानी समभाग मिला, खूब घोटकर, उसमे वस्त्र को भिगोकर उसे दग्ध स्थान पर धीरे धीरे बाध कर उस पर उक्त मिश्रण को थोडा २ डालते जाने से तत्काल शाति मिलती है। अथवा इस मिश्रण को मोर के पख से लेप करते रहे, लाभ होता है।

३१ सिर-दर्द पर—तेल २० तोले मे कपूर, चन्दन का तेल और दालचीनी का तेल ३-३ माशे अच्छी तरह मिलाकर सिर पर मर्दन करे।

३२ त्वचा के विकारो पर—तेल १०० भाग तथा वच्छनाग, करज का तेल, हल्दी, दारुहल्दी, अर्कमूल, कनेरमूल, तगर, लाल चन्दन, मजीठ, सभालू, सतौना (सप्त वर्ण) की छाल ४-४ भाग लेकर शुष्क द्रव्यो का चूर्ण कर उसमे तेल और गोमूत्र मिला पकावे तथा छान कर शीशी मे भर रक्खे। इसके लगाते रहने से त्वचा पर लाल चकत्ते पडना, खुजली (कडू), श्वेत कुष्ठ आदि पर लाभ होता है।

(नाडकर्णी)

पित्तजन्य त्वचा पर फोडो के होने पर—तेल १-२ मा अफीम, १ मा और साबुन १ रत्ती एकत्र मिला, थोडा गरम कर फोडो पर लगावे। (व० गु०)

नागफनी का काटा गड गया हो, निकलता न हो, पीड़ा देता हो, तो तेल को बार-बार लगाते रहने से कुछ समय मे सहज ही निकल आता है।

३३ कुत्ते के विष पर—तिल-तेल मे तिलो का चूर्ण, गुड तथा अर्क दुग्ध समभाग एकत्र कर पिलाते हैं। (व० गु०)

धतूरे के विष पर—तेल और गरम पानी एकत्र कर

पिलाते है। (व० गु०)

पत्र—तिल के पत्तों मे लुआब (पिच्छिलता) अधिक होने से आमाशय, बालकों के अतिसारादि उदर सम्बन्धी विकारो पर आन्त्र-विकारो मे उपयुक्त होते है। सुजाक, प्रमेह आदि पर इनका प्रयोग उत्तम होता है। व्रणों पर इनकी पुल्टिस का शामक प्रभाव होता है। बालों को धोने के लिये इसके पत्तो और जडो का क्वाथ उपयोगी है, इससे केशो की वृद्धि होती तथा वे काले होते है।

३४ अतिसार आदि पर—पत्तों के लुआब को जल मे घोल, छान कर बार-बार पिलाने से अतिसार, आमातिसार तथा विसूचिका मे लाभ होता है। इससे मूत्र-नलिका के विकारो मे भी लाभ होता है। आमातिसार मे इस लुआब मे किंचित् अफीम मिलाकर देने से विशेष प्रभाव होता है।

(३५) सुजाक व शुक्रमेह पर—जगली तिलो के पत्तो को छाया-शुष्क कर, चूर्ण कर रक्खे। नित्य रात्रि के समय ६ मा० चूर्ण को, काच के पात्र मे ५ तो० जल मे भिगोकर, प्रात अच्छी तरह मसल कर छान ले, फिर उसमे श्वेत जीरा-चूर्ण ३ मा० व १ तो० मिश्री मिलाकर, दिन मे केवल एक बार ७ दिन पिलाने से सुजाक मे विशेष लाभ होता है। अथवा—

श्वेत तिल की ताजी पत्री ५ तो० लेकर आध सेर पानी मे हाथो से मर्दन कर, रसहीन फुजले को बाहर फेक दे, फिर उस पानी मे, २ मा० कालीमिर्च व १ तो० मिश्री मिला दो बार मे पिलावे। १५ दिन मे विशेष लाभ होता है।

शुक्रमेह या वीर्यपात पर—पत्तो को जल के साथ पीस (१ से ५तो० पत्तो के साथ २० तो० तक जल हो), तथा उसमे १ से २॥ तो० तक मिश्री मिला, उसी समय पिला दे। देरी करने से पानी कुछ गाढा हो जाता व अच्छी तरह पिया नही जाता। प्रतिदिन १ बार इस प्रकार ७ दिन सेवन करावे। पूर्ण लाभ होता है।

(३६) अश्मरी पर—कोमल पत्र या कोपलो को छाया-शुष्क कर, भस्म करले। इसे ७ से १० मा० तक जल के साथ देते रहने से पथरी गल जाती है।

(३७) कुक्कुर-कास पर—पत्तों की मात्रा में ..., सूखी खासी मे ताजे फलो का हिम पिलाते है।

(३८) सिर-दर्द पर—पत्तों को सिरके मे या गरम पानी मे पीस कर लेप करते है।

पुष्प—तिल के पुष्प शीतवीर्य व मूत्रल है, तथा सुजाक, गरमी, नेत्र-विकार आदि पर महान उपयोगी है।

(३९) सुजाक या मूत्रकृच्छ्र एव मूत्राघात पर—ताजे फूलो को सायकाल मे लाकर, १० तो० पानी मे लगभग ४०-५० फूलो को भिगोकर, प्रात उन फूलो को स्वच्छ लकडी से अच्छी तरह हिलावे। पानी गाढा या लुआबदार होने पर फूलो को निकाल दे। और उस पानी (लगभग ४ तो०) मे मिश्री मिला पिलावे। इसे नित्य बनाकर ताजा लुआबदार पानी पिलाते रहने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। (व० गु०)

(४०) नेत्र-विकार पर—श्वेत तिलो के पौधो पर, शीतकाल मे जो ओस पडती है, उसमे से विशेषत पुष्पो पर पडी हुई ओस को प्रात एकत्र कर स्वच्छ शीशी मे भर रक्खे। इसकी १-२ बून्दे नेत्रो मे डालते रहने से, लालिमा, गरमी, खुजलाहट, दाह आदि विकार शीघ्र ही शात होते है।

अथवा—तिल-पुष्प ८० नग, पिप्पली के कण ६० नग, चमेली के फूल ५० नग तथा श्वेत मिर्च १६ नग, उन्हे छाया-शुष्क कर खूब महीन चूर्ण कर, महीन कपडे मे से छान कर, उसमे सफेदा (Zinc Oxide) १ तो० तथा भीमसेनी कपूर ३ मा० मिला, पलाश-पुष्प के रस के साथ खूब खरल कर लम्बी-लम्बी वर्तियाँ बनाकर सुखा कर रख ले। उन्हे जल मे घिस कर आजने से तिमिर-फूला, मास-वृद्धि, अर्जुनरोग (नेत्र के श्वेत भाग मे एक लाल दाग सा होना—Ecchy mosis), ललाई आदि विकार शीघ्र ही नष्ट होते हैं।

शा० स० के उत्तरखण्ड अ० १३ मे जो कुसुमिका-वर्त्ति नामक प्रयोग है, उसमे 'कणाकणा' शब्द है, अर्थात् पिप्पली पर जो उभरे हुए दाने से होते हैं, उन्हे ६० नग लेना चाहिए। केवल तिल-पुष्प, पीपल के कण चमेली-पुष्प व काली या श्वेत मिर्च इन चारो को लेकर

जल मे पीस वर्तिका बनाले। इसके प्रयोग की मात्रा १॥ सम्हालू बीज के बराबर कही गई है।

(४१) इन्द्रलुप्त (खालित्य Alopecia) या गज पर—काले तिल के पुष्प जब फूलने लगे तब प्रतिदिन दिन मे ४ बार तथा रात्रि मे सोते समय धीरे-धीरे उस स्थान पर मले जहा खालित्य हो, बाल झडते हो, तथा इन्ही फूलो का रस निकाल कर उसी स्थान पर लगावे। काले तिल-पुष्प के अभाव मे, श्वेत तिल के पुष्पो को ले सकते है। अथवा—

तिल-पुष्प, घोडे के खुर का कोयला, घी और शहद समभाग घोटकर सिर पर लेप करने से गज नष्ट होता है। (वृ० मा०)

(४२) विपादिका (बिवाई, पग-तलो का फटना, खाज, दाह-वेदना होना (Chilblain) तिल-पुष्पो के साथ सेंधा नमक, गोमूत्र, कडुवा तैल (सरसो तैल) एकत्र लोह-पात्र मे मर्दन कर धूप मे शुष्क करले। इसके लेप से लाभ होता है। (भै० र०)

(४३) अश्मरी पर—पुष्पो की राख या क्षार, शहद और दूध एकत्र कर, ३ दिन तक पिलावे।

(व० गु०)

क्षार—तिल के पचाङ्ग को मूल सहित जला कर, राख को पानी मे घोलकर, स्थिर पडा रहने देवे। सब राख नीचे बैठ जाने पर, पानी को नितार कर, आग पर पकावे। रबडी जैसा हो जाने पर उतारकर सुखाले।

केवल पुष्पो का क्षार भी इसी विधि से बना ले।

(४४) मूत्रकृच्छ्र या सुजाक पर—क्षार को दूध या शहद के साथ देने से जलन कम होती तथा मूत्र साफ आता है।

(४५) मूत्राश्मरी पर—क्षार को शहद मे मिलाकर ३ दिन तक दूध के साथ सेवन से पथरी नष्ट हो जाती है।

(यो० र०)

अथवा—इसके क्षार के साथ अपामार्ग, केला, पलाश और यव का क्षार समभाग एकत्र मिला, यथोचित मात्रानुसार (१ या १॥ मा०) भेड के मूत्र के साथ सेवन से अश्मरी तथा शर्करा नष्ट होती है।

(वृ० मा०)

(४६) प्लीहा, यकृत् व गुल्म पर—इसके क्षार के साथ अरण्ड का क्षार, शुद्ध भिलावा और पीपल समभाग चूर्ण बनाकर उसमे सब के समभाग गुड मिला, पाचन-शक्ति के अनुसार (१॥ मा० तक, गरम पानी के साथ) सेवन से अति प्रवृद्ध-प्लीहा, यकृत् व गुल्म का नाश होता, तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है। (व० से०)

मूल—उष्णवीर्य है, तथा पुष्परोध व गुल्मादि नाशक है।

(४७) वातज गुल्म, तथा पुष्पावरोध पर—तिल-पौधे की जड के साथ, सहेजने की जड की छाल, ब्रह्म-दण्डी की जड और त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल) इन सबके चूर्ण के (३ मा० की मात्रा मे, तिल के क्वाथ या गरम पानी से) सेवन से वातज गुल्म तथा पुष्परोध (मासिकधर्म की रुकावट) दूर होती है।

(यो० र०)

पंचाङ्ग—

(४८) उदर-विकार पर—तिल के पचाङ्ग को, मटकी मे भरकर गजपुट मे भस्म कर, तथा महीन चूर्ण कर रखे। नित्य प्रात ३ मा० की मात्रा मे, ताजे जल के साथ सेवन से—अजीर्ण, शूल, आमाश, पेट की ऐंठन आदि विकार दूर होते हैं।

(४९) तिल-पौधे पर होने वाले कृमि-विशेष—खटमल भगाने के लिये—इसके पौधो पर एक प्रकार के कृमि होते हे, जो इतस्तत फुदकते रहते है, जिस पौधे पर ये कृमि विशेष हो, उसे उखाड कर, तथा एक कम्बल मे बाध कर, घर मे लाकर, खोलकर रख देने से ये कृमि सब खटमलो को चट कर जाते हे। उनसे मनुष्यो को कुछ भी हानि नही होती।

खली (खल)—तिलो से तल निकाल लेने के बाद जो खल प्राप्त होती हे वह मधुर, रूक्ष, रुचिकर, मल-स्तम्भक तथा कफ, वात, प्रमेह, नेत्र-विकार आदि नाशक है। भावमिश्र जी ने इसे दृष्टिदूषक लिखा है।

(५०) मूत्राघात तथा दाह पर—खली को जला-कर उसकी भस्म को गोदुग्ध के साथ, यथोचित मात्रा मे मिलाकर, तथा उसमे थोड़ा शहद मिला पिलाने से

विशेष लाभ होता है।

(५१) तारुण्य पिटिका (मुहासा) पर—खली को गोमूत्र मे घोटकर लेप करने से लाभ होता है।

(५२) नारू पर—खली को काजी मे पीसकर लेप करते हैं।

(५३) लूता (मकडी) के विष पर—खली को हल्दी के साथ पानी मे पीसकर लेप करते हैं।

भिलावे की शोथ पर—इसे मक्खन मे पीस कर लेप करते है।

(५४) अरुपिका पर—इसकी पुरानी खल व मुरगे की विष्टा को गोमूत्र मे पीस लेप करने से सिर की छोटी-छोटी फुन्सिया शीघ्र नष्ट होती हैं।

(शा० स०)

नोट—इस खली में ३० प्रतिशत अल्बुमिनाइड्स (Albu minoids) नामक पौष्टिक तत्त्व होता है। यह गाय, भैंस आदि जानवरों को चरी के साथ देने से उन्हें पुष्ट कर दूध की वृद्धि करती हैं। दुष्काल के समय में यह गरीबों का एक उत्तम खाद्य होती है।

विशिष्ट वक्तव्य—

काले तिल (Guizojia Abyssy nica) भृङ्गराज-कुल (Compositae) के इसके वर्षजीवी क्षुप का पौधा कोमल, रोमश, पत्र—३-५ इञ्च लम्बे, दन्तुल, पुष्प—विस्तारित, मोटे, ५ पखुडी वाले, हरित या हरिताभ श्वेत वर्ण के होते है।

इस अफ्रीका-देशवासी तिल की खेती भारत के कई प्रान्तो मे, विशेषत बगाल, बम्बई तथा दक्षिण मे की जाती है।

नाम—

स०—कृष्ण तिल, होम धान्य, पितृतर्पण इ०। हि०—काला तिल, करिया रामतिल, बं०—रामतिल, सरगुजा, गु—खारसनी, केसानी, रामतल। अ०—नायगर सीड (Niger Seed), केरसानि सीड (Kersani seed), ले०—गुई झोजिया एबि सिनिका, गुई० ओलीफेरा (G, Olcifera)।

रासायनिक सघटन—

बीजो मे ४१ से ४५% स्वच्छ चमकीला, पीतवर्ण का, पतला तैल होता है। इसके अतिरिक्त कुछ क्षारीय तत्त्व (Albuminoids), कार्बोहाइड्रेट्स, [illegible] खनिज द्रव्य आदि पाये जाते है। इसकी खली मे लगभग ८८% अल्बुमिन होने से यह खली दूध देने वाले जानवरो के लिये, बहुत उपयुक्त होती है, तथा इसमे ४% नाइट्रोजन (Nitrogen) होने से ईख के खेतो मे खाद के लिये भी विशेष उपयोगी होती है।

गुणधर्म—

इसका तैल साधारण तिल तैल की अपेक्षा साधारण व्यवहार के लिए, तथा औषधि-कार्यार्थ बहुत काम मे लिया जाता है, वैसे ही इसके बीज भी औषधि-कार्य मे विशेष उपयुक्त होते है। ये बडी धनि के साथ चटनी आदि के रूप मे खाने के भी काम मे आते हैं। इसके तथा इसके तैल व पत्रादि का औषधि-रूप मे व्यवहार ऊपर के तिल के प्रकरण मे दिया जा चुका है।

तिलपर्णी—दे०—हुलहुल। तिलपुष्पी—दे०—डिजिटेलिस।

तिलिया कोरा

(Tilia Cora Racemosa)

गुडूची कुल (Menispermaceae) की इस पराश्रयी, विस्तृत, पत्राच्छादित, धूसर वर्ण की लता विशेष के पत्र—कोमल, रोमश, २ से ६ इञ्च लम्बे, ३ इञ्च चौडे, डिम्बाकृति या गोल, अग्रभाग मे क्रमश पतले नोकदार, पुष्प—लगभग ½ इञ्च लम्बे, ६ पखुडीयुक्त, त्रिकोणाकार, मूल—१ इञ्च लम्बा होता है। फल—½ इञ्च लम्बा, पकने पर लाल रग का होता है।

यह लता बग देश, पूर्व बगाल से लेकर उडीसा तक तथा कोकण, सिगापुर, जावा, कोचीन, चायना आदि मे विशेषत पाई जाती है।

नाम—

तिलिया कोरा इस बगला नाम से यह प्रसिद्ध है। हिन्दी में—बगमूशदा, रगोई केरात, ले०—टिलिया कोरा रेसेमोसा, टि०—एक्यु मिनाटा (T Acuminata) इसमें

तिलिया कौरा

TILIACORA REACEMOSA COLEBR

तिलिया कोराईन (Tilia Corine) नामक एक उपक्षार पाया जाता है।

गुणधर्म—

सर्पदंश पर—इसकी जड को पीस कर पानी मे घोल छानकर पिलाते है।

●

तीतपाती—दे०—अफसतीन। तीता—दे०—त्राय-माण। तीमूर—दे०—तुम्बरु। तीसी—दे०—अलसी। तुङ्ग, तुङ्गला—रायतुङ्ग। तुम्बा—दे०—गूमा। तुम्वी, तुम्वडी—दे०—कद्दू न० १। तुख्म रेहा—दे०—तुलसी ववई मे। तुख्म वालगा—दे०—वालगा (तुलसी भेद)। तुम्री—दे०—पिंडार। तुगाक्षीरी—दे०—तवाखीर के प्रकरण मे पाद टिप्पणी।

तुम्बरू (नेपाली धनियां)

(*ZANTHOXYLUM ALATUM*)

हरीतक्यादि वर्ग एव जम्वीर-कुल (Rutaceae) के सदैव हरेभरे रहने वाले, इस छोटे क्षुप की शाखाए चिकनी, हरी, छाल-फीकी वादामी रग की, पत्र—प्राय धनिया के पत्र जैसे, फल—फीका-वादामी रग का, देखने मे धनिया जैसा, किंतु अग्रभाग मे आधा तक फटा हुआ, छोटा वृन्त-युक्त, इसके भीतर छोटा सा गोल काला एव चमकीला वीज होता है। इसी फल या वीज को तुम्बरू, मोहफट आदि कहते हैं। इसकी गध एव रुचि भी धनिया जैसी, किंतु तीक्ष्ण एव तात्र तथा सुगधित होती है। नेपाल की ओर से आने वाला ताजा फल (वीज) कुछ हरे रग का होता है, तथा इसका चटनी पीसकर भोजन के साथ खाते हे, स्वाद मे यह अम्लता-युक्त, तीक्ष्ण एव थोडा सुगधित होता है। नेपाल की ओर अधिक होने से इसे नेपाली धनिया कहते है।

यह हिमाचल मे जम्वू से भूटान तक खासिया पहाड, टेहरी, गढवाल आदि मे ५-७ हजार फीट तक की ऊचाई पर पैदा होता है। तथापि सूडान व जेरवाद से इसका आयात विशेप होता है।

नोट -न ०१—तेजवल (zanth Hostile) नामक कट कित गुल्माकार वृक्ष के फलों को भी तुम्बरू (तोमर) कहते हैं। गुणधर्मों मे प्राय साम्य है। तेजवल का प्रकरण देखे।

न २-तिरफल-दक्षिण भारत विशेपत गोवा, कर्नाटक और कोंकण में तुम्वरू का ही एक भेद तिरफल, चिरफल, तिसडी (zanthoxylum Rhetsa) नामक होता है। इस कटकयुक्त झाडी की छाल धूसर वर्ण की, काटे खूब चौडे, पत्र-कटे हुए किनारे वाले, पुष्प-छोटे, पीले या पीत वर्ण के तुर्रो से युक्त, गुच्छों के रूप में, फल-तुम्वरू से कुछ बडे गुच्छों मे, कच्ची अवस्था में हरे, वाद में रक्ताभ काले से, स्वाद मे प्रथम कडुवे फिर अकरकरे के समान तीक्ष्ण एव चिरमिराहट करने वाले सुगन्धित होते है।

इसमें तुम्वरू के समान ही तैल, राल आदि पदार्थ रासायनिक सगठन के रूप मे पाये जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुण धर्मो मे वह प्राय तुम्वरू के समान ही

हैं। फल कुछ चरपरे, उष्ण, दीपन, उत्तेजक, वातनाशक, तथा कुछ मलरोधक हैं। जड़ की छाल सुगंधित, कड़वी, मूत्रल व पौष्टिक है। शिथिलताजन्य कुपचन मे छाल का फाण्ट देते है। जीर्ण आमवात मे भी यह लाभकर है। आम प्रधान विकारों मे इसे शहद के साथ देते हैं। दंत-शूल मे तथा लकवा से जिह्वा का कार्य ठीक न होता हो, तो छाल को चबाने के लिये देते है।

फलो का व्यवहार आध्मान, अजीर्ण, एव अतिसार मे किया जाता है। मछली खाने वालो के लिये यह विशेष हितकर है। शरीर की वातवेदना पर—फल-चूर्ण शहद के साथ देते हैं। अजीर्ण मे फल-चूर्ण को गुड मे मिला १–१ रत्ती की गोलिया घृत के साथ सेवन कराते हैं। वातजन्य भ्रमरोग पर—फल-चूर्ण व कालीमिर्च-चूर्ण एकत्र नारियल तैल मे मिला मस्तक व कनपटियो पर मालिश करते हैं। मात्रा—बीज निकाले फल का चूर्ण १–२ रत्ती, मूल—छाल १–२ तो० (फाट के लिये।)

नं०२-तुमरा, ताम्बुल (zanth Acanthopodium, zan-Hamiltonianum, zan Oxyphyllum) आदि इसी की अन्य जातियां हैं। इनके गुण धर्म प्रयोगादि भी प्रस्तुत प्रसंग के तुम्बरू जैसे ही हैं।

नाम—

सं०—तुम्बरु, सौरभ, सौर० इ०। हिं० तुम्बरू, तुम्बुल, तोमर, मोहफट, नेपाली धनिया, तीमर, तूमरू, कबाबा ई०, बं०—तम्बुल, नेपाली धनिया। म० नेपाली धने, चिरफल। गु०—तम्बरू फल। ले०-जेथोक्साइलम एलेटम।

रासायनिक संघटन०—

इसके फलो मे एक उडनशील तैल, जो यूकलिप्टस (Eucalyptus) तैल जैसी गंध एवं गुण से युक्त होता है, इसके अतिरिक्त राल, एक अम्ल पदार्थ तथा एक रवेदार पदार्थ झन्थोक्साइलिन (Znathoxylin) पाये जाते हे। छाल मे एक कडुवा-पदार्थ, उडनशील तैल व राल रहती है। छाल का यह कडुवा पदार्थ दारूहल्दी मे पाये जाने वाले वर्बेरिन (Berberine) के सदृश होता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल (बीज), तैल, पत्र और छाल।
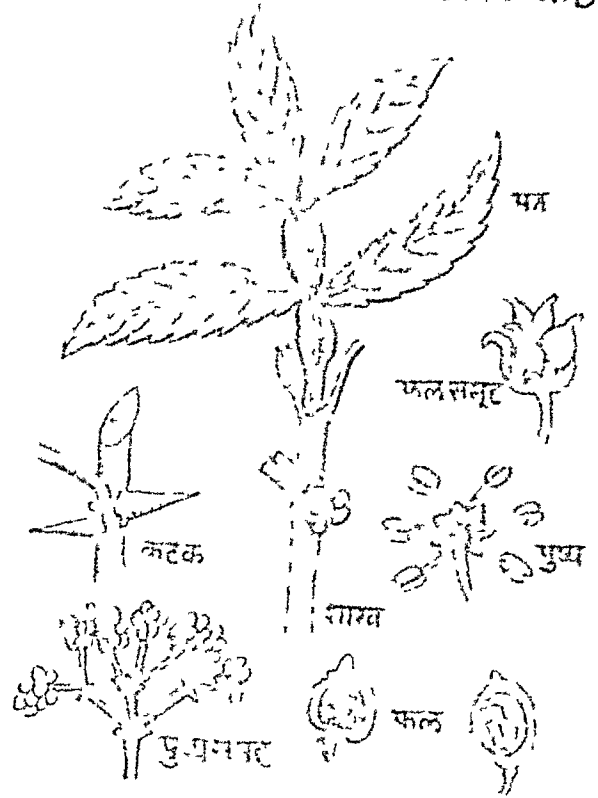
गुणधर्म व प्रयोग—

फल- लघु, मधुर, तिक्त, रूक्ष, उष्ण, रोचक, सुगन्धित, विपाक मे तिक्त, दीपन, पाचन, ग्राही, पौष्टिक, वातनाशक, क्षुधा-वर्धक, उत्तेजक, तृष्णानाशक, कृमिनाशक है तथा कफ, वात, अर्बुद, शूल, उदर-रोग, अजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, मूत्ररोग, अतिसार, मस्तिष्क-विकार, उन्माद, सिर का भारीपन, रक्त-विकार, प्लीहा, हैजा, धवल रोग, श्वास, आध्मान, एव नेत्र, कर्ण, ओष्ठ और छाती के विकार मे प्रयोग किये जाते हैं।

इसका उत्तेजक गुण विशेषत ताजे पत्रो मे, फलो मे व शुष्क मूल-छाल मे होता है।

फल (बीज)—

(१) उदर तथा मस्तक-शूल पर—इसके बीज (फल) २तो०, लौंग, सेंधा नमक, भूना हुआ जीरा १-१ तो०, काला नमक ६ मा० और भुनी हींग १॥ मा० लेकर, अलग-अलग कूट-पीस एवं कपड़छान कर, एकत्र

मिला रक्खे । ३ मा० की मात्रा मे, गरम पानी के साथ, ३-३ घंटे के अन्तर से सेवन करावें, जब तक दर्द बन्द न हो। (अ० योग भा० १) शूल गुल्मादि पर वि० योग देखिये।

(२) दन्त-पीडा पर—फल २॥ तो० धूप मे खूब सुखा कर, लोहे की तार वाली चलनी मे छानकर (कपडे मे छानने से इसका तृतीय भाग वस्त्र में ही लग जाने से वह उतना गुणदायक नही होता) इस चूर्ण का मंजन करने, तथा लार को टपकाते रहने से, दातो का दर्द शीघ्र दूर होता है थोडे से इस चूर्ण को अथवा बीजो को दातो के नीचे दबाये रहे। (अ० योग० भाग१)

इसके बीजो को पीस कर भी दन्त-मजन मे डालते हैं।

(३) पित्तजन्य मदाग्नि एवं पित्तातिसार पर—फल अथवा बीजो को मिश्री के साथ पीसकर सेवन कराने से मदाग्नि दूर होती है।

फलो के चूर्ण को बेल के शर्बत के साथ सेवन से पित्तातिसार मे लाभ होता है।

(४) व्रणो पर—फलो को खिलाते, तथा चूर्ण को व्रणो पर बुरकते और छाल के क्वाथ मे धोते हैं।

(५) श्वास पर—बीजो को हुक्के मे रखकर धूम्र-पान कराते है।

पत्र, छाल, आदि—

इसकी छाल दारु हल्दी जैसी गुणकारी व उत्तेजक है। छाल का क्वाथ अथवा पत्र-रस के सेवन से उत्तेजना सी होती है। आतरिक-विकार त्वचा के रास्ते, पसीने के साथ निकल जाता है। ज्वरो की शाति के लिये, एव श्लेष्मल त्वचा और व्रणो की शुद्धि मे विशेष लाभ होता है। छाल का या फलो का फाण्ट उत्तेजक व वल्य है। औषध के रूप मे ज्वर, कुपचन, अतिसार, हैजा, मदाग्नि आदि मे दिया जाता है। गठिया (सन्धिवात) पर छाल का क्वाथ पिलाते हैं।

(६) कठशोथ पर—ताजे पत्तो को पीस कर, चावल के आटे के साथ गरम कर बाधने से गले की सूजन दूर होती है।

(७) दन्त-पाक पर—इसकी शाखा तथा काटो को औटाकर कुल्ले कराते है। शाखा की दातून करते रहने से दात निर्मल होते हैं। दन्त-मजन मे बीजो (फल) का चूर्ण मिलाते हैं।

तैल—इसके तैल की क्रिया शरीर पर गधा-विरोजा या यूकेलिप्टस तैल की जैसी होती है। यह प्रतिदूषक, कीटाणु-नाशक एवं दुर्गन्धिहर है। विषैली छूत की बीमारी मे यह तैल लगाते हैं।

विशिष्ट प्रयोग—

(१) तुम्बुर्वादि चूर्ण—इसके फल के साथ सेंधा-नमक, सोचर या बिड नमक, अजवायन, पोहकर-मूल, यवक्षार, हरीतकी, हींग (भुनी) व बायविडग समभाग का चूर्ण बनाले। इसमे निसोत चूर्ण (श्वेत निसोत) ३ भाग मिला ले। मात्रा—३ मा० तक गरम पानी, या जव के क्वाथ के साथ सेवन से सर्वप्रकार के शूल, आध्मान, उदर-रोग नष्ट होते है। अथवा—

इसके फलो के साथ हरड, हींग (भुनी) पोहकर-मूल, सेंधा नमक, बिड लवण और काला नमक, समभाग ले चूर्ण बना ले। इसे जौ के पानी के साथ पीने से वातज-शूल, और गुल्म नष्ट होते हैं। (च० स०)

कफज-शूल हो, तो इसके साथ पीपलामूल, अरण्ड-मूल, त्रिकुटा, हर्र, अजमोद, यवक्षार व सेंधा नमक का समभाग चूर्ण बना, गरम पानी से सेवन करे। मात्रा—२—३ मा०। (हा० स०)

नोट—मात्रा-चूर्ण २ से ४ रत्ती या २ मा० तक। छाल-मात्रा—१ से २ तो० तक, प्राय फाट बनाकर दिया जाता है। अधिक मात्रा मे यह सिर-दर्द पैदा करता है। हानि-निवारणार्थ नीलोफर और कपूर देते है। इसका प्रतिनिधि कबाबचीनी है।

तुरजबीन —दे० जवासा मे।

तुरमुस (*LIPINUS ALBUS*)

शिम्बीकुल (Leguminoceae) के वर्षायु प्रसिद्ध बीजों को यूनानी मे तुरमुस कहते हैं। ये बाकला जैसे चपटे गोल, स्वाद मे तिक्त होते हैं। औषधिकार्य मे ये ही बीज लिये जाते हैं।

ओ. टोमेन्टोसम (O Tomentosum) ओ. विरिडे (O. Viride)

रासायनिक संघटन—

इसमे एक पीताभ हरितवर्ण का, उडनशील तैल होता है, जो कुछ समय तक रखा रहने से स्फटिकाकार हो जाता है, जिसे तुलसी कपूर (Basil camphor) कहते हैं। कपूरी-तुलसी से यह कपूर अधिक प्रमाण मे निकाला जाता है। आगे कपूरी-तुलसी देखें।

प्रयोज्यांग—पत्र, मूल, बीज, मजरी, पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, कटुविपाक व उष्णवीर्य है। श्वेत और काली दोनो के गुणधर्म प्राय समान है, किन्तु काली अधिक प्रभावशाली है श्वेत तुलसी-उष्ण, स्वेदजनन व पाचक है। बालको के प्रतिश्याय व कफ–विकारो मे विशेष प्रयुक्त होती है। काली तुलसी-शीत स्निग्ध, कफनि सारक, ज्वरनाशक, फुफ्फुसो के भीतर से कफनि - सारणार्थ इसे कालीमिर्च के साथ देते है, इसका शुष्क पत्र-चूर्ण पीनस एव कफ-विनाशार्थ दिया जाता है।

जीर्णव्रण, शोथ, पीडा मे दोनो का लेप आदि किया जाता है। अवसाद की अवस्था मे इसे त्वचा पर मलते है। अग्निमाद्य, छर्दि, हिक्का, उदरशूल, कृमि, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, प्रतिश्याय, कास, श्वास, पार्श्व-शूल मे ये उपयोगी है।

वैसे तो दोनो (श्वेत व काली) कफवातशामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, हृद्य (हृदयोत्तेजक), रक्तशोधक, कफघ्न, स्वेदजनन, ज्वरघ्न (विपमज्वर) कुष्ठघ्न व कृमिघ्न हैं।

आमाशय एवं आत्र मे इनका प्रभाव वातशामक होता है। इनका ताजा रस वमनावरोधक एव कृमि-नाशक है। पत्ररस मे दालचीनी-चूर्ण मिला वमन-निरोधार्थ पिलाते है। अतिसार मे शुष्क पचाङ्ग का क्वाथ उत्तम दीपक औपधि है। इससे लाभ न हो, तो पचाङ्ग के फाण्ट मे जायफल-चूर्ण मिला पिलाते हैं। प्रवाहिका (डिसेंट्री) एव अजीर्ण मे १ तो ताजे पत्तो के रस को नित्य प्रात पीने से लाभ होता है। उदरशूल मे इसका तथा अदरख का रस समभाग लेकर १ छोटे चम्मच भर कुछ गरम कर २-३ वार पिलाते हैं। दुपहर के भोजन के बाद इसके ४-५ पत्ते चवा लिया करने से मदाग्नि, अरुचि, वमन, एव कृमिविकार मे लाभ होता है,-मुख की दुर्गन्ध दूर होती, श्वास स्वच्छ होती व पाचन-क्रिया मे सुधार होता है।

केन्सर मे—इसके २५ या इससे अधिक ताजे पत्तो को पीस ५ से १० तो तक तक्र के साथ ८ दिन पिलाने मे लाभ होता है।

शीतकाल मे ठड लग जाने से जुकाम, छीके, सिरदर्द एव ज्वर हो, तो पत्र-रस को शहद के साथ देते हैं। यह प्रयोग प्रारम्भ से ही करने पर आगे विशेष रोग-प्रकोप मे रुकावट होती है। ऐसी अवस्था मे कालीमिर्च के महीन चूर्ण मे इसके पत्ररस की २१ भावनाये देकर, इसे ४-६ रत्ती तक शहद से या उष्ण जल से देते है।

कफ प्रकोप-जन्य अनेक अवस्थाओ मे तथा श्वास-स्थान के रोगो मे इसका पत्र-रस, कफनिस्सारणार्थ अदरक, प्याज के रस और शहद के साथ देते हैं। कास एव कफ-प्रकोप से गला रुध गया हो, वोला न जाता हो, तो इसके ताजे पत्तो को आग पर सेक कर नमक के साथ चवाते हैं। पोहकरमूल आदि कासहर द्रव्यो के चूर्ण के साथ इसे मिलाकर देते रहने से स्वरभेद, कास, श्वास एव पार्श्वपीडा मे लाभ होता है। मूर्च्छा या वेहोशी को दूर करने के लिये पत्र-रस मे थोडा नमक मिला नाक मे टपकाते हैं।

ग्रधसी एव वातजन्य मूल शोथ (Sciatica) आदि मे पत्र-क्वाथ से रोगग्रस्त वातनाडी को वफारा (नाडी-स्वेद) देते है। उरुस्तभ मे इसके पत्तो को पीस कर लेप करने से लाभ होता है (च चि अ २७)। अथवा इसके पचाङ्ग के उष्ण क्वाथ से रुग्ण भाग को धोकर, इसके बीजो को पीसकर लेप करते है।

इसमे पोपक एव वाजीकरण गुणो के होने से, यह वीर्य को गाढा कर पुंस्त्वशक्ति को वढाती है। इसके लिये प्राय इसके बीजो का प्रयोग किया जाता है। नपुंसकता-नाशार्थ वने हुए प्रयोगो मे इसके बीज डाले

जाते है। आगे बीजो के प्रयोग देखे। इसके बीजो के या जड के चूर्ण मे समभाग पुराना गुड मिला १।। स ३ मा तक प्रात साय दूध के साथ लेने से वीर्य के विकार दूर होते है। स्वप्नदोष-नाशार्थ जड को पीस, पानी मे छान कर पिलाते है। इसके पत्र-स्वरस मे थोडी इलायची और १ तो सालममिश्री के चूर्ण को प्रतिदिन सेवन करने से, यह एक पोषक वृष्य पेय का कार्य करता है।

इसके पत्तो का फाण्ट दीपक एव पाचक द्रव्य के रूप मे बालको के आमाशयिक रोगो मे तथा यकृत के विकारो मे दिया जाता है। पत्र-रस मे शहद मिला चटाने से बच्चो के दस्तो तथा खाँसी मे लाभ होता है, शीतकाल मे इसे कुछ गरम कर पिलाते हैं। अथवा—पत्रो के रस का शर्बत बनाकर १-२ तो तक देते रहने से बच्चो के सर्दी, जुकाम, खासी, वमन, अतिसार, पेट का फूलना आदि विकार दूर होते है।

पत्र—क्वाथ या फाण्ट से व्रणो को धोना लाभदायक है। कृमि दूषित व्रणो पर शुष्क पत्र-चूर्ण बुरकने से कीडे नष्ट हो जाते है। नेत्र-रोगो पर—इसके स्वरस को नेत्रो मे आजते है। यदि नेत्र लाल हो गये हो, तो इसके स्वरस को शहद मे मिला नेत्र-बिन्दु के रूप मे नेत्र मे डालते रहने से लाभ होता है।

प्रयोग-पत्र—

१ ज्वरो पर—(अ) विषम (मलेरिया) ज्वर के शमनार्थ—इसके ताजे हरे पत्रो मे उनकी तौल से अर्धभाग कालीमिर्च का चूर्ण मिला, खूब, खरल कर छोटे बेर जैसी गोलिया बना, छाया शुष्क कर, २-२ गोलिया ३-३ घटे से देवे। अथवा—

काली मिर्च के महीन चूर्ण को तुलसी-पत्र-स्वरस की ७ भावनायें देकर छाया शुष्क कर चने जैसी गोलिया बना ज्वर आने मे पूर्व-१-१ घटे के अन्तर मे १-१ गोली, ऐसी ३ गोलिया उष्ण जल से देवे। अथवा—

इसके छाया-शुष्क पत्रो को मन्द आग पर तवे पर थोडा भून कर चूर्ण करले। ३ से ६ माशे तक की मात्रा मे—छोटी इलायची के दाने, दालचीनी, लवग तथा मुलैठी का चूर्ण ३-३ रत्ती मिला (यह १ मात्रा है), १० तो उबलते हुए पानी मे छोड कर २ मिनट बाद उतार कर ५ मिनट बाद छान उसमे दूध शक्कर मिला पिलाने मे मलेरिया का विष, ज्वर, कास, तृष्णा व वमन मे शाति प्राप्त होती है।

यदि विषम ज्वर मे वात प्रधान हो शीत या कम्प के साथ ज्वर का वेग हो तो—काली तुलसी के पत्र ६ तो काली मिर्च, धतूर-मूल की छाल तथा आक के मूल की छाल का चूर्ण १-१ तो. सबको एकत्र पानी के साथ पीस कर, मटर जैसी गोलिया बनाले। वय व कालानुसार ज्वर के ३ घटे पूर्व १-१ घटे के अन्तर मे इसे जल से देवे।

यदि ज्वर की दशा मे वमन और रेचन होते हो तो इसकी २१ पत्तियो के साथ ५ लौंग, तथा बेल का गूदा ६ माशा पीसकर १० तो पानी मे पकाकर ५ तो शेष रहने पर छान कर पिलावे, जिस ज्वर मे कोष्ठबद्धता हो उसमे इसे नही देना चाहिए। यदि रोगी को कोष्ठबद्धता या कब्ज हो तो—

इसके २१ पत्रो के साथ, ७ मुनक्का, छोटी हर्र ४ तथा कालीमिर्च ७ नग लेकर ५ तो पानी मे पीस छान कर गरम कर उसमे १ तो मिश्री मिला पिलावें। इस प्रकार प्रात साय देवे। यदि दस्त अधिक होने लगे तो इस योग मे से हर्र को निकाल दे।

पित्त की प्रधानता से यदि ज्वर मे पीले वमन हो, तृषा अधिक हो, घबराहट विशेष हो तो इसके ताजे पत्र-रस मे थोडी मिश्री मिला थोडी-थोडी देर बाद देते रहे।

(आ) कफप्रधान या इन्फ्लुएजा आदि ज्वरो मे—इसकी २१ पत्तियो के साथ, लौंग ५ नग तथा अदरक-रस ३ माशा लेकर ५ तो पानी मे पीस छानकर गरम करे, फिर १ तो शहद मिला पिलावे। प्रात साय इसी प्रकार देवे।

इस ज्वर मे भुना हुआ मुनक्का, थोडा कालानमक व श्वेत जीरा मिलाकर, थोडा थोडा खिलाते रहे। अन्न न दे। दूध, मुनक्का तथा फल या फलो का रस गरम कर देते रहे। ध्यान रहे ज्वर--वेग की दशा मे दवा न दें। अथवा—

इसके १ तोले पत्र को २० तो जल मे पकावे १० तो शेष रहने पर उतार कर छान कर सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर सुहाता सुहाता पान कराने से भी इन्फ्लुएंजा मे लाभ होता है। अथवा–

पत्र-चूर्ण के समभाग सोंठ-चूर्ण व अजवायन-चूर्ण एकत्र मिला, २-३ मा तक शहद के साथ चटाते रहने से भी लाभ होता है।

(इ) मंथर ज्वर (टायफायड) पर––काली तुलसी, बन तुलसी और पोदीना समभाग का स्वरस निकालकर ३ या ७ दिन तक सेवन करावे। अथवा––

रससिंदूर, अभ्रक भस्म, प्रवाल भस्म, मुक्ता भस्म, उत्तम केशर, जायफल, जावित्री व लौंग ४-४ मा असली कस्तूरी १ मा. सबको यथाविधि घोट, तुलसी-रस मे ३ दिन निरतर घोट कर मूग जैसी गोलिया बना ले। मात्रा–१ से २ गोली तक, तुलसी या पान के रस और शहद से दिनरात मे ३ बार देने मे बच्चो के मौक्तिक ज्वर की सर्वावस्थाओ मे लाभ करता है। तथा ज्वर, खासी श्वास, अतिसार, वमन, दाह ज्वर का तीव्र-वेग, नाडी-क्षीणता, प्रलाप आदि दूर होकर दाने शीघ्र बाहर होते है। बल वर्ण की रक्षा होती है। बडी मात्रा मे बडो को भी लाभकारी है–

–डा० के एम लाल सक्सेना-मीरगज
बरेली यू पी

(ई) जीर्ण-ज्वर मे–पत्र-स्वरस ३ माशे मे काली-मिर्च ३ नग का चूर्ण मिला (यह १ मात्रा है) कर कुछ दिनो तक सेवन करने से लाभ होता है।

(उ) साधारण, सर्व प्रकार के ज्वरो पर–इसकी २१ पत्तियो के साथ श्वेत जीरा ३ माशा, छोटी पीपल ३ माशे एकत्र कर ५ तो. शक्कर मिला प्रात तथा इसी प्रकार शाम को पिलावे।

(वि० योगो मे तुलसी-वटक देखे)

२ बालको के विकार पर–पत्र-रस का शर्बत बना, ३ माशा तक चटाते रहने से सर्दी, जुकाम, खासी, वमन दस्त, पेट के फूलने आदि मे लाभ होता है।

अतिसार अधिक हो, तो पत्र-स्वरस मे धाय के पुष्पो को पीस कर के मा के दूध से पिलाते है। अथवा पत्तो का फाण्ट या चाय जैसी बना जायफल घिसकर पिलाते है। हरे पीले दस्त होते हो, तो पत्र–स्वरस मे थोडा भुना हुआ सुहागा मिला, पीस कर मूग जैसी गोलियां बना, १-१ गोली पानी से देने से लाभ होता है।

बालको के डिब्बा रोग पर–(बाल निमोनिया) पसली चलने के रोग मे जब कब्ज अधिक हो, ज्वर कम हो उस समय–काली तुलसी का स्वरस १ तो गाय का ताज़ा घृत-१ तो दोनो को एक कटोरी मे रख कर आग पर थोडा गुनगुना कर ले। यह एक मात्रा है। इसके पिलाने से पसली चलने का रोग दूर होता है। इसे प्रात साय २-३ दिन देवे। यदि ज्वर साधारण हो, पेट तना हो व कब्ज हो तो इसे दे सकते है। तीव्र ज्वर मे नही देवे। अथवा–

तुलसी के पचाङ्ग और अमलतास की साबुत फली, दोनो जला कर भस्म कर ले। मात्रा २ रत्ती तक शहद या दूध से देवे।

बालको के नेत्र-विकारो (कुथई, रोहे आदि) पर–

इसके ५० पत्र, भुनी फिटकरी १ माशा अफीम १ रत्ती, बकरी की लेंडी जलाई हुई १० नग, लौंग ५ तथा हर्र १ लेकर, प्रथम हर्र को स्त्री के दूध से पीतल की थाली मे घिसे, फिर लौंग व शेष द्रव्यो को मिला महीन घिस ले। अन्त मे गोघृत समभाग मिला घोटकर काजल सा बना काच की शीशी मे रख ले। इसे लगाते रहने से बच्चो के नेत्र-विकार दूर होते हैं।

यकृत-विकार पर––पत्र का क्वाथ देते है।

तुलसी-पत्र १ तो को २० तो पानी मे चतुर्थांश क्वाथ कर, छानकर, दिन मे २-३ बार पिलाते रहने से यकृद्वृद्धि एव अन्य यकृद्रोग दूर होते है।

उदर-कृमि-नाशार्थ––इसके ११ पत्रो को वायविडङ्ग १ मा के साथ पीसकर दो गोलिया बना लें। प्रात साय १-१ गोली ताजे जल से ५दिन तकदेवे। यह योग बडो के लिये भी लाभकर है।

३ वमन पर––इसके पत्र, बेर की गुठली व खाड ३-३ मा तथा काली मिरच १ मा, पानी मे पीस कर गोलिया बना सेवन करावे।

अथवा––पत्र रस मे दालचीनी-चूर्ण मिला पिलावे।

यह योग बडो के लिए भी लाभकर है। अथवा—

पत्र-स्वरस मे शहद मिला चटावे। या पत्र-स्वरस १ तो मे छोटी इलायची के बीजो का चूर्ण १ मा व शक्कर १ तोला मिला सेवन करें। इसमे वात-पित्त का द्वन्द्वज वमन भी नष्ट होता है। त्रिदोषज-वमन मे—पत्र-स्वरस १ तो मे केवल छोटी इलायची बीज-चूर्ण ५ रत्ती तक मिलाकर चटाते है। पित्तज वमन मे—पत्र-स्वरस और अदरक रस १-१ भाग मे नीबू-रस २ भाग डाल, मिश्री-चूर्ण मिला पिलाते हैं।

कास, श्वास, हिक्का पर—पत्तो का फाण्ट या चाय पीने से कास, छाती की पीडा व प्रतिश्याय विकार दूर होते है। कास के साथ ही ज्वर हो, तो पत्र-रस १½ तो० शुद्ध शहद २½ तो० व अद्रक रस ½ तो० एकत्र मिला, एक मात्रा मे ३० से ६० बून्द सेवन करावे। श्वास भी हो, तो पत्रो के साथ, सोठ, कटेरी, ब्रह्मदण्डी व कुल्थी समभाग लेकर क्वाथ बना सेवन करावे।

हिक्का और श्वास पर—पत्र-स्वरस १ तो० शहद ½ तो० दोनो मिला पिलावें।

(५) प्रसव-पश्चात् होने वाले शूल मे—पत्र-स्वरस मे पुराना गुड, मद्य और खाड मिला स्त्री को प्रसव के पश्चात तुरन्त ही पिलाने से शूल नष्ट होता है।

(६) कर्णशूल तथा सूजन पर—पत्तो का ताजा रस गरम कर कान मे टपकाने से शीघ्र बन्द होता है। कान के पीछे सूजन हो, तो पत्तो के साथ रेंडी की कोपले और थोडा नमक पीसकर पानी मिला, गरम कर लेप करने से लाभ होता है।

(७) दद्रु, वातरक्त (कुष्ठ) आदि चर्म-रोग पर—दाद पर—पत्तो को नीबू के रस मे पीसकर लगावें। अथवा—पत्र-स्वरस, गोघृत और पत्थर का चूना, कांसे के पात्र मे घोट कर लगाते हैं। गजकर्ण कुष्ठ पर—पत्र-स्वरस, घृत, चूना व पान का स्वरस एकत्र घोट कर लगाते रहे। शरीर के श्वेत दाग, चेहरे की झाई, कीले, चेहरे के कुरूप हो जाने आदि पर—इसके रस के समभाग नीबू रस, काली कसौंदी का रस इन तीनो को एक ताम्रपात्र मे २४ घंटे रख कर, धूप मे रख दें। कुछ गाढा होने पर लगाते रहने से झाई, काले दाग, कीले आदि नष्ट होकर चेहरा सुन्दर हो जाता है। इसे निरतर लगाने से श्वेत कुष्ठ मे भी लाभ होता है।

(८) रतौंधी (नक्तान्ध्य) पर—पत्र-रस मे छिलका रहित काली मिर्च-चूर्ण को घोटकर वटी बना, छाया-शुष्क कर, शहद मे घिस, सायकाल अजन करे। अथवा—पत्र-रस को दिन मे कई बार नेत्रो मे लगाते रहे। काली तुलसी-पत्र-रस शीघ्र लाभ करता है।

(९) सर्प के विष पर—पत्र-स्वरस को बार-बार अत्यधिक मात्रा मे पिलाते, तथा इसकी मजरी एव जडो का लेप दश-स्थान पर बार-बार करते है। बेहोशी की दशा मे कान, नाक और नेत्रो मे रस को टपकाते है।

(१०) बिच्छू के विष पर—पत्रो को नीबू-रस-तथा गोमूत्र मे पीस कर लेप करे। या पत्र-रस मे जायफल को घिस कर लगावे। या मूली के रस मे ½ पत्र-रस को मिलाकर लेप करे। या पत्र-रस मे सेधा नमक मिला लगावे। पत्तो को चतुर्गुण जल मे पीस कर ५-५ मिनट के अन्तर से पिलाने व लगाने से शाति प्राप्त होती है।

(११) चूहे के विष पर—पत्र-रस मे अफीम घोट-कर लगाने से, अथवा—पत्र-रस मे हरताल, नीलाकमल व मैनसिल-चूर्ण की बहुत सी, भावनाए देकर, सुखाए हुए चूर्ण को इसके स्वरस मे घोलकर पिलाने से चूहे का बहुत तेज विष भी नष्ट हो जाता है।

(तुलसी पुस्तक मे)

बीज-प्रयोग—

तुलसी (श्वेत या काली) के बीजो को यूनानी मे "तुख्म रेहा" कहते है। कोई-कोई बबई या जगली तुलसी के बीजो को ही तुख्म रेहा कहते है।

ये बीज—स्निग्ध, पिच्छिल (लुआबदार), शीत-वीर्य, स्वाद मे फीके, मूत्रल, बल्य तथा प्रवाहिका, पूय-मेह (सुजाक), मूत्रकृच्छ्र, बस्तिशोथ, अश्मरी, जननेन्द्रिय एव मूत्र-सस्थान के विकारो मे प्रयुक्त होते है।

(१२) प्रवाहिका मे बीजो को शक्कर के साथ देते है। यह शुष्क कास, गले की खरखराहट मे भी लाभ-प्रद है।

(१३) सुजाक, बस्ति-शोथ, मूत्र-दाह तथा वृक्क की अश्मरी पर—बीजो का हिम (शीत-कषाय १ से २ तो० तक बीजो को कूटकर ६ गुने पानी में, मिट्टी, कांच या कलईदार पात्र मे ढाक कर रात भर भिगो, प्रात मल-छानकर) उसमे श्वेत जीरा, शक्कर और दूध मिलाकर ४ से ८ तो० तक की मात्रा मे, दिन मे ३ वार पिलाने से लाभ होता है।

(१४) रक्तातिसार मे—केवल उक्त हिम को (उसमे कुछ भी न मिलाते हुए) ही कुछ दिन पिलाने से लाभ होता है। अथवा—वीज १ तो० प्रात गाय के दही के साथ ७ दिन तक सेवन कराते है।

(१५) वालको के अतिसार और वमन पर—एक साल के बच्चो के लिए, बीज १ से १½ रत्ती की मात्रा मे पीसकर थोडे गोदुग्ध मे घोलकर पिलाते है। इसी मात्रा से यह योग दिन मे ३ या ४ वार तक दिया जा सकता है। बडे बच्चो को उक्त मात्रा के प्रमाण से कुछ अधिक मात्रा मे देते है।

(१६) कास तथा फुफ्फुस के विकारो पर—बीजो के साथ समभाग गिलोय, सोठ तथा छोटी कटेरी की जड लेकर, महीन चूर्ण बना, मात्रा—२ मा० तक दिन मे २-३ वार उत्तम शहद के साथ देते है।

(१७) नपुसकता एव वीर्य के विकारो पर—इसके बीजो के (या जड के) चूर्ण मे समभाग पुराना गुड मिला कर १॥ से ३ मा० तक की मात्रा मे, प्रात-साय गाय के दूध (दूध ताजा हो या धारोष्ण हो, तो उत्तम) से लेते रहने से, ५-६ सप्ताह मे, वीर्य-विकार दूर होकर पुंस्त्व-शक्ति की यथेष्ट वृद्धि होती है। अथवा—

वीज ५ तो० के साथ पोस्त के डोडे ४ तो०, गोखुरू ५ तो०, कौंच के वीज ३ तो० और मूसली (काली) ४ तो० तथा मिश्री ६ तो० सबका महीन चूर्ण कर, १० रत्ती की मात्रा मे गाय के दूध से सेवन करने से, काम-शक्ति प्रवल हो जाती है। वीर्य गाढा होता तथा उसकी वृद्धि होती हे।

स्तम्भन के लिए इसके बीज (या जड) के चूर्ण को पान मे रखकर सेवन करते है। इससे वल की भी वृद्धि होती है।

(१८) योनिभ्रंश (Prolapsus Vaginae) पर—बीज और नई आमाहल्दी समभाग चूर्ण कर योनि मे बुरकते हे।

मजरी—

(१९) शुष्क-कास तथा वालको के श्वास-विकार पर—तुलसी की मजरी, सोठ और प्याज को एकत्र कूट-पीस कर, शहद के साथ चटाते है।

खासी के रोगी को—मजरियो मे थोडा घृत मिला, निर्धूम अगारो पर रख, उठते हुए धुए को नासिका द्वारा पिलावे।

या उक्त घृत-लिप्त मजरियो की बीडी बना पिलाने से भी उचित लाभ होता है।

कुकुर खासी (हूपिंग कफ) पर—मजरी के साथ वच, छोटी पीपर, मुलैठी १-१ तो० तथा मुनक्का व शक्कर ५-५ तो० लेकर जौकुट कर, १ सेर पानी मे क्वाथ करें। १ पाव शेष रहने पर छानकर यथोचित मात्रा मे सेवन करे। वालको को भी यह दिया जा सकता है। अथवा—

मजरी, मुलैठी, छोटी कटेरी की जड, अडूसा-पत्र, वडी वच १-१ तो०, आक के फूल व लेंडी पीपल ½-½ तो०। इन सवका महीन चूर्ण कर, वडो को ½ से ३ मा० तक, तथा बच्चो को ३ रत्ती से ६ रत्ती तक की मात्रा मे, उत्तम शहद के साथ चटाते रहने से सर्व प्रकार की खासी तथा कफ-विकार दूर होते है।

(२०) तृष्णा, अरुचि अम्लता आदि आमाशय के विकारो पर—मजरी, सोठ, छोटी पीपल, मुनक्का, लौंग, ताम्बूल-पत्रो के डठल, दालचीनी व खजूर १-१ तो० तथा लोंग ½ तो० लेकर क्वाथ कर, थोडा-थोडा पीते रहने से तृष्णा आदि विकार दूर होते हैं। यह तीनो दोषो को शात करता है। (यो० र०)

(२१) शीतला (चेचक) के ज्वर—मजरी १ तो० तथा कूठ ३ मा० दोनो को चतुर्गुण जल मे क्वाथ करे चतुर्थांश शेष रहने पर, छानकर पिलाने से, अथवा—मजरी, अजवायन व अद्रक-रस समभाग, पीस कर थोडा-

थोडा चटाने से ज्वर की शान्ति होती है।

जड (मूल)--स्तम्भन, वीर्य शक्तिवर्धक है।

(२२) स्तम्भन के लिये--जड के चूर्ण मे, थोडा जिमीकन्द का चूर्ण मिला, १ मे २ रत्ती तक पान मे रखकर खाने से वीर्य स्तम्भन-शक्ति बढती है। ब्रह्मचर्य एव पथ्यपूर्वक लगभग १ मास तक सेवन करे। अथवा—केवल जड का चूर्ण ही २-४ रत्ती की मात्रा मे पान मे रखकर सप्ताह मे दो दिन सेवन करे। इन योगो के सेवन से (स्वप्न मे वीर्यपात होना) दूर होता है।

(२३) नाहरू पर—नाहरू (नारू) के मुख पर तथा शोथ पर, जड को पानी मे घिसकर लेप करते है। थोडी ही देर मे २-३ इञ्च नारु निकल आता है। इसे बाधकर पुन उसी प्रकार लेप करते रहने मे २-३ दिन मे ही सारा नारु बाहर निकल आता है, सूजन कम हो जाती है। पश्चात् २-४ दिन और लेप करने से रोग समूल नष्ट हो जाता है। (तुलसी पुस्तक से)

(२४) प्रमेह पर—जड का चूर्ण १ तो० रात्रि मे १ पाव जल मे भिगोकर, प्रात खूब मर्दन कर पान करने से लाभ होता है।

(२५) कुष्ठ पर—जड के चूर्ण मे थोडी सोठ मिला कर उष्णोदक के साथ, प्रात नित्य पिलाते रहने से लाभ होता है।

(२६) बिजली के उत्पात से बचने के लिये जड को ताबे के तावीज मे बन्द कर बाधे रहने से, बिजली लगने का भय नही रहता है।

पचाङ्ग—

(२७) इसके शुष्क-पचाङ्ग के १ तो० जौकुट चूर्ण का १० तो० पानी मे क्वाथ कर पिलाने से जुकाम और खासी मे लाभ होता है।

(२८) मन्दाग्नि व अजीर्ण पर—इसके शुष्क पचाङ्ग के चूर्ण के साथ काली मिर्च का चूर्ण मिला, उष्णोदक मे सेवन करने से मदाग्नि एव अन्यान्य उदर-विकार नष्ट होते हैं।

विशिष्ट योग—

१ तुलसी की चाय—छाया-शुष्क तुलसी पत्र १॥ सेर, दालचीनी १ पाव, तेजपत्र ½ सेर, सौफ आध सेर, इलायची आध सेर, तृणचाय (अगिया घास) १॥ सेर, बनफशा आध पाव, ब्राह्मी बूटी आध सेर तथा लाल चन्दन १ सेर इनको जवकुट कर ले। १ सेर स्वच्छ उबलते हुए पानी मे १ तोला डालकर उतार ले। ढाककर रख दे। थोडी देर बाद यथेष्ट दूध व मीठा मिलाकर पान करें। यह गुरुकुल कागडी की चाय बहुत ही उत्तम है। लिपटन आदि चायो की अपेक्षा यह अति उत्कृष्ट है। विदेशी चाय के स्थान मे इसका उपयोग करना स्वास्थ्य के लिए अति हितकारी है।

(तुलसी पुस्तक से साभार)

सर्दी, जुकाम, खासी आदि पर—तुलसी-पत्र ११, कालीमिर्च ५, तथा थोडी अद्रक या सोठ मिला कर बनाई हुई चाय मे शुद्ध गुड या देशी शक्कर मिला कर पीने से प्रतिश्याय, खासी, श्वास, जूडी, ताप व अङ्गो की ऐठन आदि दूर होती है।

वात-श्लेष्मज ज्वर। (इंफ्लुएंजा) की दशा मे तुलसी २ भाग, बेल-पत्र, बनफशा दालचीनी, इलायची और कालीमिर्च १-१ भाग, तेजपत्र आधा भाग, तथा मिश्री ८ भाग एकत्र जौकुट कर फाट या चाय बनाकर पीने से परम लाभ होता है।

२ तुलस्यासव—(प्रसव-वेदना एव सूतिकाशूल-नाशक)—तुलसी-पत्र-स्वरस २॥ सेर शुद्ध चीनी मिट्टी के पात्र मे भर उसमे पुराना गुड १ सेर, मद्य ४० तोले तथा खाड १ सेर मिला, १५ दिन तक सधान कर रक्खे। पश्चात् छानकर शीशियो मे भर ले। मात्रा—१ माशे से १ तो तक। यह प्रसव की तीव्र वेदना तथा सूतिका के शूल को शीघ्र शमन करता है।

आसव न० २—(जीर्ण—ज्वर तथा कास—नाशक) तुलसी-पत्र १ सेर, सोठ, काली मिरच व पीपल १-१ पाव तथा अजवायन आध पाव लेकर सबको कूटकर १० सेर पानी मे भिगो रक्खे। पश्चात् भबके द्वारा अर्क खीचकर शीशियो मे भर रखे। मात्रा—आधा से १ तो तक, सेधव लवण युक्त उष्ण जल से सेवन करे। इसमे थोडा-हरड चूर्ण मिला लेने से शीघ्र लाभ होता है।

नोट--शेष तुलस्यासवारिष्ट तथा अन्य प्रयोगों को हमारे 'बृहदासवारिष्ट संग्रह' ग्रंथ में देखें।

३ शर्बत-(अवलेह) तुलसी—(शुक्रप्रमेह आदि नाशक) तुलसी १० तोला, मोचचीनी, तालमखाना, पीपरामूल, नागकेशर, अकरकरा २-२ तो, पुराना शहद २० तो, मिश्री या चीनी ५० तो लेकर प्रथम काष्ठद्रव्यो का महीन चूर्ण कर शहद मे मिला १४ घटा रख दे। बादमे शक्कर की चाशनी बना शीतल होने पर, उक्त मधु मिश्रित द्रव्यो को मिला पुन' केसर, छोटी इलायची बीज तथा जावित्री का चूर्ण १-१ तो मिला, स्निग्ध पात्र या शीशी मे रख दे। मात्रा—१-२ तो तक, गोदुग्ध के अनुपान से (दूध में थोड़ी मिश्री मिला ले) सेवन करने से शुक्र प्रमेह, धातु-क्षीणता आदि वीर्यविकार दूर होते हैं। सेवन-काल मे ब्रह्मचर्य एवं पथ्यापथ्य का ध्यान रखे।

४. तुलसी का रासायनिक योग—(कुष्ठ, विसर्पादि-नाशक)—तुलसी का स्वरस, शुद्ध पारद, शुद्ध अफीम १-१ तो. तीनो को लोह-खरल मे एकत्र नीम के डण्डे से ६ घण्टे तक खरल कर, उसमे—शुद्ध सुहागा १ तो. मिला, पुन. तुलसी-स्वरस से ३ घटे घोटकर-जावित्री, जायफल, अकरकरा, खुरासानी अजवायन का चूर्ण २॥-२॥ तो मिला पुन तुलसी के पर्याप्त रस से ३ घटे मर्दन कर वंशलोचन और खैर प्रत्येक २४ तो. के महीन चूर्ण को मिला, पुन पर्याप्त तुलसी रस से १ घटा तक घोट कर चने जैसी गोलियां बना छाया-शुष्क करे। मात्रा—२-२ गोली के नित्य सेवन से विसर्प, उपदश, गलित कुष्ठ, विस्फोटक आदि विकार नष्ट होते है। सेवन-काल मे प्रत्येक चरपरी चीज, खटाई व गुड आदि का परहेज रखें। इसके सेवन से पूर्व कोष्ठ-शुद्धि करलेना आवश्यक है—

(तुलसी विज्ञान से साभार)

५ तुलसी—तेल—शुद्ध तिल-तेल अथवा शुद्ध सरसो तेल २॥ सेर तक लेकर उसमे तुलसी-स्वरस ५ से १० तोला तक मिलाकर बोतल मे भर मजबूत डाट लगा कर ७ दिन तक तेज धूप मे रखे। फिर छानकर उसमे यथो रुचि सतरा या गुलाब का रूह या इत्तर मिला ले। इसे लगाने या नस्य लेने मात्र से पुरानी सिर-पीड़ा दूर होती है। सिर मे जूं, लीख हो तो इसे लगाने से नष्ट होते व मच्छर पास नही आते है। चेहरे पर लगाते रहने से कांति बढ़ती है। इसे शरीर मे भी लगा सकते हैं।

६ तुलसी-वटक—तुलसी पत्र २ तो, गिलोयसत्व १ तो, लौंग, वंशलोचन, धनिया, कासनी बीज छोटी इलायची दाने ६-६ मा, सबके महीन चूर्ण को तुलसी-स्वरस मे १२ घटे खरल कर आधी रत्ती की गोलिया बनालें। बच्चो को ज्वर मे २ से ४ वटी जल से या अमृतारिष्ट सजल से दे। ज्वर अधिक हो तो प्रवाल भस्म आरंभिक दिनो मे एव प्रवाल-पिष्टी अंतिम दिनो मे १-२ रत्ती मिला कर दे। अतिसार हो तो लक्ष्मी नारायण रस आध-आध रत्ती साथ मे देवे। यह वटी मोतीज्वर के विष को बाहर निकालने मे अति उपयोगी है।

(डा० के एम लाल सक्सेना मीरगंज बरेली)

नोट—वैसे तो तुलसी के कई प्रयोग हैं, किंतु हमने यहां पर चुने हुए एव अनुभूत प्रयोगो को ही लिखा है।

मात्रा—स्वरस १-२ तो। बीज-चूर्ण १ से २ या ६ मा तक। क्वाथ—२ से ५ तो तक। कल्क—१ से ४ तो तक।

ध्यान रहे—कार्तिक मास मे तुलसी का सेवन नही करना चाहिये। तुलसी के साथ पान (ताम्बूल) नही खावे। तुलसी खाकर दूध नही पीवे, क्योकि इससे त्वचा के रोग, कुष्ठ आदि होने का भय रहता है।

बीजों का अधिक मात्रा मे प्रयोग करना मस्तिष्क के लिये कुछ हानिप्रद है। हानि-निवारणार्थ-गुलाब या गुलकन्द का सेवन करे।

तुलसी-कपूरी

OCIMUM KILIMANDSCHARICUM

कपूर विश्व की सभी चिकित्सा-पद्धतियो मे प्रचुरता से प्रयुक्त होने वाली औषधि ही नही, बल्किहर कुटुम्ब मे किसी न किसी रूप मे प्रयोग होने वाली वस्तु है। परन्तु दुर्भाग्यवश आज जो कपूर हमे बाजार मे मिलता है वह कपूर वृक्ष (Cinnamomum

Camphora) या कर्पूर-उत्पादक अन्य वृक्षों से प्राप्त न न कर तारपीन के तेल से तैयार किया जाता है। तारपीन के तेल से निर्मित कृत्रिम कपूर भले ही धार्मिक कृत्यो मे धूप-दीप के काम आ सकता हो या अधिक से अधिक अभ्यङ्ग मे भी हानि न पहुचाता हो, परन्तु अन्त प्रयोगार्थ अर्थात् खाने की औषधियो मे इसका प्रयोग अवश्य ही हानिकारक है। शुद्ध कपूर Cinnamonum Camphora) के अतिरिक्त अन्य कई क्षुपो से भी प्राप्त होता है। जिनमे औसिमम् किलिमन्दरचैरिकम् (तुलसी-कपूरी) के क्षुप सब से अधिक महत्वपूर्ण है।

तुलसी कपूरी—तुलसी–कुल की ही वनस्पति है, परन्तु पवित्र तुलसी (Ocimum Sanctum) जो भारतीय घरो मे पूजा अर्चना के काम आती है उससे सर्वथा भिन्न है। तुलसी कपूरी के क्षुप बहुवर्षीय, सर्वथा विदेशी ४ से ५ फीट ऊचे होते हैं। पुष्प-मजरी-रूप मे गुच्छो मे आते हैं। पुष्प-काल भाद्रपद-अश्विन होता है। इसी समय इस पर पत्तो का भी बाहुल्य होता है। इन पत्तो से ही कपूर का निर्माण किया जाता है। स्थानान्तर के अनुसार क्षुप पर से पत्ते आश्विन के प्रथम पक्ष, मार्गशीर्ष और चैत्र मास मे अर्थात वर्ष मे तीन बार सग्रह किए जाते हैं। सग्रह करते समय क्षुप की सभी शाखाओ-प्रशाखाओंको काट लिया जाता है। केवल क्षुप के काण्डो को जमीनसे ४-६ इच ऊपर तक प्रस्फुटन के लिए छोड दिया जाता है। फिर इनको धूप मे सुखाकर डडे द्वारा धीरे-धीरे ताडन कर पत्तो को कपूर निर्माण के लिए पृथक कर लिया जाता है। और शुष्क शाखाओ को ईधन के काम मे ले लिया जाता है। वर्ष भर के सगृहीत पत्तो से कपूर शिशिर ऋतु मे जबकि कडाके की सर्दी पडती है निर्माण किया जाता है। क्योकि इन महीनो मे पानी बहुत ठण्डा होता है और वाष्पीकरण के समय पानी जितना अधिक ठण्डा होता है उतना ही अधिक कपूर प्राप्त होता है, अन्यथा कपूर-तेल अधिक रहता है। १५ सेर शुष्क पत्तो से एक से सवा पौड कपूर तथा कपूर-तेल प्राप्त हो जाता है। सभी योगो मे जिनमे कपूर डालना इष्ट हो, यह कपूर या कपूर-तेल निस्सकोच प्रयोग मे लिया जा सकता है।

सर्वथा विदेशी उपज होने के कारण इसके गुणधर्मो का आयुर्वेद मे वर्णन उपलब्ध नही होता परन्तु कपूर और कपूर के सभी भेदो के गुणधर्मो का विशद वर्णन आयुर्वेद मे मिलता है (जिसके लिए वनौषधि विशेषाक भाग २ देखे)। क्षुप के भिन्न भिन्न अङ्गो का औषधार्थ प्रयोग तथा अध्ययन सिद्ध करता है कि गुणधर्म मे यह कटु-तिक्त, उष्ण तथा दीपक है।

(१) इसके पत्तो का प्रयोग पाचन-क्रिया के लिए अति उत्तम है।

(२) पके शोथ का विदारण करने के लिए इसके पत्तो को सिरके मे पीसकर लेप करना ही काफी है।

(३) पसली के दर्द को इसके पत्तो का लेप देखते ही देखते शात कर देता है। इस कार्य के लिए पत्तो को पानी मे पीसकर कुछ गर्म कर लेना चाहिए।

(४) कर्ण-पीडा तथा अन्य वात व्याधियो पर-इसके पत्तो की लुगदी को तिल के साथ मन्दाग्नि पर पकाकर तेल मात्र रहने पर निथार कर रखले। कर्ण-पीडा तथा अन्य किसी भी स्थान की वात-जनित पीडा के लिए यह लाभकारी है।

इसके पत्तो से कपूर–निर्माण करते समय अन्त मे जो जल शेष रहता है, वह 'अर्क कपूर' होता है। जो पेट के सभी विकारो मे विशेषकर अजीर्ण, शूल तथा वमन आदि मे लाभप्रद होता है।

आयुर्वेदाचार्य श्री कृष्णचद जी भूषण, बी, ए आनर्स,
आयुर्वेदरत्न, चण्डीगढ।

तुलसी बुबई
(*OCIMUM BASILICUM*)

तुलसी के ही कुल (Labiatae) की इस वनस्पति वर्षायु के पौधे,सीधे, मृदु, बहुशाखायुक्त २-३ फीट ऊचे, स्निग्ध, सुगधित, तना तथा शाखाओ का रग हरा या जामुनी रग की आभायुक्त, पत्र–१-३ इच लम्बे, तीक्ष्ण, चिकने, हरे, अखडित कुछ दानेदार, मीठी प्रिय गधवाले,

पत्रवृन्त—३–१ इंच लम्बे, फूल—गोल, श्वेत, वैंगनी रंग के गुच्छों मे बहुसुगन्धित मंजरी २–४ इंच तक लम्बी, बीज—छोटे, $\frac{1}{16}$–$\frac{1}{12}$ इंच लम्बे, अण्डाकृति, एक ओर को थोडे उभरे हुए, दूसरी ओर चपटे, गहरे काले वर्ण के होते हैं। बीजो मे सुगंध नहीं होती, स्वाद म तेलिया व कुछ चरपरे से होते है। पानी में बीजो को भिगोने पर लुआब बहुत निकलता है। इन्हे 'तुख्म रैहा या तुख्म मर्जंवी' कहते हैं। कहीं-२ लोकमारी भी कहते हैं।

कोई २ इसे ही वन तुलसी, तथा मरुआ मानते हैं। किन्तु यह इन से कुछ भिन्न है। आगे के प्रकरणों मे वन तुलसी, मरुवा आदि देखें। वैसे तो फूल और शाखाओं आदि के भेद से तुलसी की कई जातियां हैं ही। इसके प्राय. गोमत क्षुप १-२ फुट ऊंचे बहुत पाये जाते हैं।

यह पर्शिया, सिंध द्वेश व दक्षिण पूर्व एशिया का मूल द्रव्य है। किन्तु भारत के उष्ण प्रदेशों मे प्राय सर्वत्र बाग, बगीचों मे बोई जाती है। सिंध, पंजाब आदि देशों के कम ऊंचे पहाडों पर यह निसर्गत उपजती है। बंगाल मे यह बोई जाती है। बंबई मे इसके पौधो का विक्रय सैल्वा (Salba) नाम से होता है। वहां मुसलमान प्रति शुक्रवार को इसे कब्रो पर चढाते हैं।

जैसे हम श्वेत या श्यामा तुलसी को बहुत मान्यता देते हैं। वैसे ही इसे मुस्लिम लोग विशेष मानते हैं। धर्म-कर्मो मे तथा विवाहोत्सव मे एवं दुख के अवसरो मे भी इसका प्रयोग करते है। तथा अपने घरो मे मस्जिद, कब्रिस्तान मे इसे लगाते है। उनके सामाजिक कार्यो मे इसकी शाखाएं अवश्य रक्खी जाती है। इसके पौधो को घर मे लाकर लटका देने से मक्खी, मच्छर आदि का विशेष उपद्रव नही होने पाता। सूखने पर इसकी गन्ध बढ जाती है।

भावमिश्र ने इसे ही 'वनतुलसी' मानकर, जिसके पुष्प श्वेत होते है, उसे अर्जक, जिसके कृष्ण (नीलाभ या वैंगनी) होते है, उसे काली, कठिंजर या कुठेरक, जिसके पत्र वट (बरगद) पत्र जैसे, किन्तु छोटे होते हैं उसे वट पत्र, इस प्रकार इसके तीन भेदो का उल्लेख किया है।

तुलसी बबुई (न्याज़बो)
OCIMUM BASILICUM LINN.
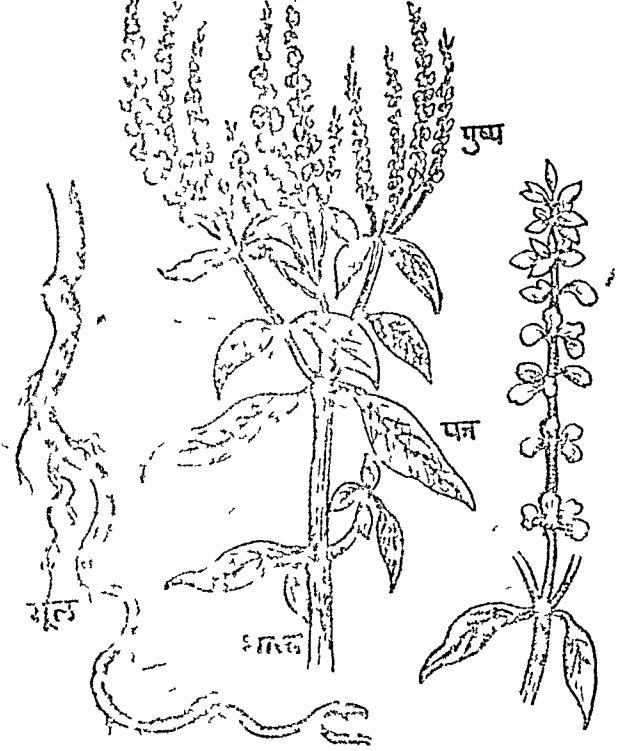
नाम—

सं -विस्वातुलसी, बर्बरी, वन तुलसी सुरभी इ०। हि०-बुवई, बबई, बबरी, बाबुल, रीहा, मालतुलसी, सबजा, ममरी, नियाजबो इ०। म०-सबजा। गु०-सब्जा, उमारी। बं -बाबुईतुलसी। अ'.-स्वीटबेसिल [Sweet Basil]। ले०-ओसिमम बेसिलिकम, ओ एनिसेटम [O Anisatum]।

नोट-फूल आने के बाद, पौधे एकत्र कर अच्छी तरह शुष्क कर सूखे स्थान पर रखने से वे बहुत दिनो तक विकृत नहीं होते।

रासायनिक संघटन—

पत्तो को पानी के साथ वाष्पीकरण (Distill) करने से पीताभ, हरितवर्ण का उडनशील, पानी से भी हल्का, तीव्र गंध वाला तेल प्राप्त होता है, जो रखा रहने पर स्फटिक जैसा ठोस हो जाता है। इसे अजगंधा कपूर (Basil Camphor) कहते हैं इस तैल मे एक प्रकार का तारपीन (Terpene) होता है। जिसे ओसिमीन

(Ocimine) कहते हैं। बीजो मे पिच्छिल द्रव्य प्रचुर परिमाण मे होता है।

प्रयोज्य अग—पत्र, बीज, मूल, फूल एव पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग---

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, कटुविपाक, उष्ण-वीर्य, कफवातशामक, पित्तवर्धक, रोचन, दीपन, विदाही, वातानुलोमन, कृमिघ्न, हृदयोत्तेजक, रक्तशोधक, कफनि-सारक, मूत्रल, आर्त्तवजनन, स्वेदल व ज्वरघ्न है, व अरुचि, अग्निमाद्य, विष्टभ, कास श्वास, शोथ कण्डू आदि त्वग्दोषो मे उपयोगी है।

पत्र—वेदनास्थापन, शोथहर, शिरोविरेचन हैं। इनमे मसाले जैसी तीव्र सुगध होने से, इन्हे मसालो मे डालते हैं। इनकी चटनी भी बनाते है।

शोथ-वेदनायुक्त स्थानो मे इनका लेप करते है। मूर्छा, शिरोरोग व पीनस मे इनका नस्य देते है।

नकसीर मे—पत्र-रस नाक मे टपकाते हैं। बच्चो के गले के विकारो मे एव कुक्कुर खासी मे—पत्र-रस मे शहद मिला गरम कर चटाते हैं। दाह तथा विच्छू के दश पर—पत्र-रस लगाते हैं। कर्णपीडा एव कुछ कम सुनने पर—पत्र-रस को कान मे टपकाते है। अजीर्ण, उदरशूल एव उदरकृमिनाशार्थ पत्र-स्वरस पिलाते है। आध्मान मे इसे पिलाने से उदरवायु निकल जाती है, तथा रोगी सुविधा से सास ले सकता है। विषमज्वर मे—पत्र-रस मे अदरख, सोठ या काली-मिर्च का चूर्ण मिला, ज्वर की विरामअवस्था मे देते हैं। उदरशूल मे—पत्र-रस को शक्कर के साथ भी देते है। वातनाडियो के शूलो मे पत्तो का क्वाथ दिया जाता है। जोडो की पीडा-सन्धिवात मे पत्र का हिम, शीत निर्यास या फाट देते हैं। मोच पर—पत्र-रस मलते है। दाद पर—पत्र-रस के लगाने से लाभ होता है। (दिन में कई बार लगावे)। दूषित व्रणो मे कृमिनाशार्थ-शुष्क पत्तो का चूर्ण छिडकते हैं। दूषित व्रण एव नाडीव्रण (नासूर) पर—पत्तो की पुल्टिस बना कर लगाते है। नेत्राभिष्यन्द पर (आख आने पर)—पत्र-रस, नेत्रबिन्दु की तरह नेत्रो मे डालने से आराम होता है। अग्निदग्ध पर—पत्र-रस लगाते है। दन्त-कृमि—नाशार्थ—इसके पत्र-रस को कान मे डालते है।

(१) ज्वरो पर—पत्र २१, छोटी पीपल ३ नग, कपूर १ रत्ती लेकर, ५ तो पानी मे पीसकर, गरम कर, उसमे १ तो, शक्कर मिलाकर प्रात साय इसी प्रकार बनाकर सेवन से, ज्वर नष्ट होता है।

कासयुक्त ज्वर हो, तो उक्त फाट मे कपूर के स्थान पर लवग ७ नग मिलावें तथा शक्कर उक्त प्रमाण मे मिला, प्रात साय सेवन करे।

(२) जीर्ण ज्वर पर—पत्ते ५ तो अतीस, १ तो कपूर १ तो, कालीमिर्च ६ मा लेकर पानी मे महीन पीस कर मटर जैसी गोलिया बना छाया शुष्क कर रक्खे। ४-४ घटे से १-१ गोली दिन मे ४ बार मिश्री मिलाकर सेवन करे, तथा ऊपर से गाय या बकरी का गरम दूध १० तो तक पीवे। जीर्ण ज्वर दूर होता है।

जीर्णज्वरी को पत्र—क्वाथ से स्नान भी करावे। विधि—पत्र डठल सहित १० तो लेकर ५ सेर पानी मे उबाल ले। तथा ३ मा कपूर मिला गरम-गरम स्नान करावे तो अस्थिगत ज्वर भी निकल जाता है। साथ ही उक्त गोलियो का भी सेवन जारी रक्खे। १ मास मे पुराने से पुराना ज्वर दूर होता है।

जिन बुखारो को चढे हुए कुछ दिन ही हो गये हो या ऐसे ज्वर जिनमे शरीर टूटता हो, तथा अगो मे वेदना होती हो, उनमे पत्र-स्वरस को गरम कर पिलाने या इसके पचाङ्ग के क्वाथ को पिलाने से पसीना आकर रोगी को आराम मिलता है।

(३) आत्र के जीर्ण विकारो पर—इसके ताजे पत्ते तथा अदरख या सोठ २॥—२॥ तो मिलाकर अच्छी तरह पीस कर, ४८ गोलिया बना, प्रात साय पानी के साथ दो दो गोलिया देते है।

—(४) मूत्र एव आर्त्तव-प्रवर्त्तनार्थ—पत्र-स्वरस को उबाल व छानकर पिलाते है। इससे आमाशय को भी बल मिलता है।

(५) बालको के सूखारोग पर—पत्र-स्वरस ५ तो मे कछुवा का खपरा, अतीस, वायविडग ६-६ मा., हीग

कच्ची १।। मा, कपूर देशी ३ मा लेकर प्रथम कछुवा के खपरे को पत्र-रस मे घिस कर, उसमे उक्त द्रव्य तथा घोघा की भस्म १ तो मिलाकर बच्चे को दिन रात मे ४ बार पिलावें। अवश्य लाभ होता है।

घोघा तालावो मे बहुत होते है, उन्हे जिन्दा पकड कर मिट्टी की हाडी मे १०-१२ रखकर, गजपुट मे फूक दे तथा इसकी पत्तियो को ताजी हरी पीस कर टिकिया बना, सिर पर तालु के गड्ढे मे, थोडा गुड रख कर ऊपर से उक्त टिकिया रख कर, कपडे से कस दे, तो जब तक सूखा रोग है, गुड गायब हो जायगा। जब गुड गायब न हो, तो जान ले कि सूखा रोग दूर हो गया।

(६) पीनस पर—पत्र-स्वरस १ तो कपूर १ मा एकत्र घोट कर प्रात साय ५-५ बूद नाक मे टपकाते है।

बीज—स्निग्ध, मधुर, कसैले, वातपित्तशामक, स्नेहन, स्तभन व रक्तशोधक हैं। वनतुलसी के बीजो की अपेक्षा ये अधिक शीतवीर्य है। तृषा, दाह, शोथ, सुजाक वाजीकरण, अतिसार, जीर्णातिसार आदि मे इनका प्रयोग किया जाता है।

जीर्ण मलवन्ध (कब्जी) मे इनका फाण्ट देते है- या शर्वत के साथ इनका घोल पिलाया जाता हे। आत्र के क्षोभ की शाति के लिये इनका प्रयोग ईसब गोल की तरह किया जाता हैं। बीजो को (४ से ८ मा० तक) थोडे से पानी मे भिगोकर, इनके लुआब या शीतनिर्यास मे खाड मिलाकर प्रवाहिका, अतिसार, विवन्धक, तेज पदार्थो के भक्षण से हुए आत्रक्षोभ आदि मे यह पिलाया या खिलाया जाता है। यह प्रयोग रक्तार्श मे भी लाभकारी है। छोटे बालकों को ४ से ८ रत्ती तक बीजो का चूर्ण शर्वत के साथ देते रहने से मरोड, अतिसार विशेषत दन्तोदद्भव की पेचिश पर लाभ होता है। कफप्रधान रोगो व ज्वर मे बीजो का शर्वत बना कर देते हैं, इससे पेशाव साफ होता हैं। सुजाक या मूत्रसस्थान के विकारो मे तथा मूत्राशय की शोथ मे उक्त प्रकार से बनाया हुआ बीजो का शीतनिर्यास या शर्वत विशेष लाभदायक है। वाजीकरणार्थ बीजो का चूर्ण ४ से ११ मा० की मात्रा मे दिया जाता हे। प्रसवोत्तरकालीन वेदना की शाति के लिये इनका शीत-निर्यास दिया जाता हे। दूषित व्रणो एव पाददारी पर लगाये जाने वाले लेपो मे बीजो को डालते हैं। दूषित व्रणो एव नासूरो पर इनकी पुल्टिस लगाते है। व्रण-शोथ पर लेप किया जाता है। बीजो के लसदार रस को नेत्रो मे टपकाते रहने से नेत्र-ज्योति बढती है। ये वीर्य को गाढा एव खुश्क करते है, अत स्तभन के योगो मे ये डाले जाते है। दाह पर-बीज १ तो० तक रात्रि के समय शीत जल मे भिगोकर प्रात उसमे ५—६ तो० तक दूध व थोडी शक्कर मिलाकर पिलाते है।

फूल-उत्तेजक, अग्निदीपक, मूत्रल, एव शाति-दायक हैं।

मूल या जड—ज्वरघ्न है। विशेषत बालको के आत्र-विकारो मे उपयोगी है। तथा विषाक्त अवस्थाओ मे इसका प्रयोग होता है।

नोट· मात्रा-पत्र क्वाथ—४ तो० तक। बीज-१ मा० से ७ मा० तक। पत्र चूर्ण--६ मा० से १ तो० तक। पत्र-लौंग के प्रतिनिधि रूप मे बरते जाते है।

अधिक मात्रा मे ये दृष्टि दौर्बल्य-कारक है। हानि-निवारणार्थ-सिरका, खीरा या कुलफा का सेवन करते है।

इसके अभाव मे कलोजी-प्रतिनिधि रूप मे ली जाती है।[1]

---

[1] इस तुलसी की ही एक जाति विशेष को यूनानी में 'नगधबावरी' कहते हैं। यह तृष्णा व वातनाशक है। सुजाक मे इसके चूर्ण को दही में मिला पिलाते हैं। विषम ज्वर में इसे दूध के साथ देते हैं। अर्श शोथ पर--इसे १ तो० कालीमिर्च १० दाने के साथ पीस कर ३ दिन सेवन कराते है। जीर्ण ज्वर मे इसे १ मा० की मात्रा में, नीबू-पत्र व कालीमिर्च के साथ पीस कर देते है। रक्त--विकार मे इसे पित्तपापड़ा के साथ देते हैं। श्वेत-कुष्ठ पर-इसे ७ मा० की मात्रा में १५ दाने कालीमिर्च के साथ पीस, २० दिन सेवन कराते है। (व० च०)

तुलसी अर्जकी (वन तुलसी) (OCIMUM-CANUM)

यह उक्त ववई तुलसी का ही एक जगली भेद है। पौधा–वहुशाखी, छोटा, सीधा १॥–२ फुट ऊचा, सुमधुर किंतु तेज गन्ध-युक्त, पत्र– कटावदार किनारे वाले, पुष्प–श्वेत रग के, चक्राकार गुच्छो मे, आस-पास लगे हुए, प्रति गुच्छ मे प्राय ६ पुष्प होते है। बीज–किंचित् गुलावी आभायुक्त काले-रग के, पोस्त बीज (खस-खस) के आकार वाले होते है।

वास्तव मे तो यह उक्त वर्णित ववई-तुलसी है, तथा इसीलिये भावमिश्रजी ने इसे ववई (वर्वरी) के अन्तर्गत ही माना है, किन्तु यह जगली शुष्क वातावरण मे उगने से, उससे भिन्न नाम, रूपादि वाली हो गई है। इसके पत्र एव विशेपत पुष्प ववई से वहुत छोटे होते है। ववई (ववंरी) की अपेक्षा इस पर छोटे छोटे खुरदरे रोम अधिक छाये रहते हे। तथा इसकी गन्ध वहुत तेज होती है। इसके पत्रादि अधिक सूखने पर शीघ्र ही चूर चूर हो जाते हैं, किंतु ववई के पत्रादि सूखने पर भी शीघ्र चूरा नही होते।

यह तुलसी वगाल, विहार, आसाम, मध्यभारत से दक्षिण (South Deccan) मे सीलोन तक के मैदानो मे, तथा छोटे पहाडो पर अधिक पायी जाती है। वाग वगीचो के आस-पास प्राय जगली या अर्द्ध जगली-अवस्था मे वहुत उगती है। पजाव के मैदानो के सूखे प्रदेशो मे निसर्गत जगली स्वय उत्पन्न होती है। देहली के आस पास पहाडियो पर वहुतायत से उगी हुई है–(श्री रामेशवेदी की तुलसी पुस्तक से) इसके दो भेद है, काली व श्वेत। श्वेत का वर्णन तुलसी रामा मे देखे।

नाम–

सं०–अर्जका, अर्जकी, क्षुद्र तुलसी, उग्रगधा, गभीरा (गभीर रोगो मे उपयोगी होने से), तु गी (पुष्प मजरी चक्राकार वडी होने से), खरपुष्पा (पुष्प, पत्रादि विशेष रोमश होने से), इ०। हि०–तुलसी अर्जकी, वन तुलसी, काली तुलसी, वावरी इ०। म०–रान-तुलस। व०–वावुई तुलसी। अ०–हौरी वेसिल (Horry asil)। लै०–ओसिमम केनम, ओ० एल्वम (O Album)।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, वीज, पुष्प, मूल एव पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, मधुर, रोचक, हृद्य, पित्तवर्द्धक, स्वेदल, कास-श्वास-हर व ज्वरघ्न है। क्षय, आमवात, नेत्र रोगादि मे प्रयुक्त होती है। शेष गुणधर्म व प्रयोग ववई या घर की सफेद तुलसी जैसे ही है।

पत्र-प्रयोग—

चर्म-रोगो पर—ताजे पत्रो को पीस कर लेप करते है। वात-शोथ मे–रोगी को पत्र-क्वाथ का वफारा देते है, पसीना आकर शोथ मे लाभ होता है। फिर रोगी को धूप मे बैठाकर गरम जल से स्नान कराते है। सुजाक की प्रारम्भिक अवस्था मे—पत्तो का ताजा रस पिलाते है। कास मे पत्र-स्वरस मे समभाग अडूसा-पत्र स्वरस मिला सेवन कराते है। श्वास मे—पत्र-स्वरस शहद मिला कर चटाते हैं। अपस्मार मे पत्र-रस मे सेधा नमक मिला नाक मे टपकाते हैं। पार्श्व-पीडा मे—पत्र-स्वरस मे, अद्रक-स्वरस तथा पोहकर-मूल का चूर्ण मिला, गरम कर लेप करते है। वाधिर्य मे—पत्र-स्वरस को छानकर कान मे डालते है। दन्त-कृमि मे—पत्र स्वरस को कान मे छोडते है, दात के कीडे नष्ट होते हे। उन्माद (वातज या कफज) मे पत्तियो को खिलाते, सु घाते तथा स्वरस लगाते हैं।

(१) ज्वरो पर—शीताङ्ग, ज्वर मे, हाथ-पैरो के ठडे पड जाने पर–पत्र-स्वरस को या कल्क को, हाथ-पैरो पर, उ गलियो एव नखो पर लगाते है। अथवा—इसके कल्क के साथ पत्र-स्वरस मिला, तैल सिद्ध कर इस तैल की मालिश की जाती हे।

(२) विषम-ज्वर पर—पत्र ३ नग, काली मिर्च २ नग लेकर पानी के साथ पीस शहद मिला कर, या विना शहद के, किंचित् उष्ण कर ज्वर वेग के पूर्व ही ५ या ६ वार चटाते है।

आन्त्रिक-ज्वर (Typhoid), मसूरिका आदि विस्फोटक ज्वरो मे—आगे विशिष्ट योगो मे 'इन्दुकला वटी' देखें।

(३) विपूचिका (हैजा) पर—इसके पत्तो के साथ करज-बीजो की गिरी, नीम की छाल, अपामार्ग के बीज, गिलोय और इन्द्र जौ का मिश्रित जौकुट चूर्ण २ तो० लेकर, ६४ तो० जल मे अर्द्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर, छानकर, थोडा-थोडा बार-बार पिलाते रहने से बहुत तेज हैजा भी ठीक हो जाता हे। (चक्रदत्त)

(४) अतिसार, आमातिसार एव ग्रहणी मे—इसके पत्तो के फाण्ट मे जायफल का चूर्ण मिला कर पिलाते हैं। आमातिसार मे—उक्त पत्र-फाण्ट मे, घृत मे भुनी हुई सौफ का चूर्ण और मिश्री मिला कर सेवन कराते हैं। ग्रहणी-विकार मे—पत्र-चूर्ण मे समभाग मिश्री मिला सेवन करते है।

(५) अजीर्ण, मन्दाग्नि आदि उदर-विकारो पर—पत्र-स्वरस, सोठ-चूर्ण १-१ तो० लेकर दोनो को घोटकर, उसमें पुराना गुड २ तो० अच्छी तरह मर्दन कर छोटे बेर जैसी गोलिया बना, दिन-रात मे ३ बार सेवन से अजीर्ण, मन्दाग्नि तथा अन्यान्य उदर-विकार नष्ट होते है।

मन्दाग्नि के निवारणार्थ—इसके पत्र ४ मा० और काली मिर्च ५ या ७ नग लेकर, थोडे पानी के साथ पीस-कर पिलाते है।

(६) सूतिका-रोग मे—१ पाव इसके पत्रो के कल्क के साथ, १ सेर मूर्च्छित तिल-तैल को सिद्ध कर मालिश करने से सूतिका की शारीरिक पीडा आदि की शाति होती है।

(७) नेत्र-विकारो पर—पत्र-रस को नेत्रो मे टप-काते है। नेत्राभिष्यन्द हो तो, पत्र-स्वरस मे शहद मिला कर आजने से शीघ्र लाभ होता है। (शोढल)

बीज—

ग्राही, पौष्टिक, पानी मे डालने से लुआबदार, प्रति-श्याय नाशक, सन्धि-पीडा आदि पर उपयोगी है।

(८) गर्भिणी स्त्री की छाती तथा पेट की खुजली पर बीजो को पीस कर मर्दन या लेप करने से लाभ होता है।[1]

(९) कोष्ठ की उष्णता एव मूत्र-दाह पर—बीजो को रात्रि के समय शीत जल मे भिगो, प्रात उसमे गाय का ताजा दूध १ पाव दूध तथा मिश्री २ तो० मिला लकडी से हिलोर कर (हाथो से नही) पिलावे। इससे मूत्राघात मे भी लाभ होता है। इसे कुछ दिन सेवन से मूत्र एव वीर्य-सम्बन्धी अन्य रोग भी नष्ट होते है।

शारीरिकदाह की शाति के लिये बीजो के चूर्ण का सेवन करने से, या इसके लुआब मे शर्करा मिला पिलाने से दाह शमन होता है।

(१०) अतिसार पर—बीज भाग १ और ईसबगोल ४ भाग, दोनो के चूर्ण मे समभाग सोफ का चूर्ण मिला, इन तीनो का जितना वजन हो उतनी ही उसमे शक्कर मिला, नित्य १ तो० तक जल या दूध के साथ शक्ति अनुसार सेवन करे। इससे आन्त्रिक उष्णता का भी शमन होता है।

रक्त-प्रवाहिका पर—बीजो को पानी मे भिगोकर मिश्री या शक्कर का चूर्ण मिला, दिन मे दो बार देवें।

(११) वृक्क के रोगो पर—बीजो का फाण्ट सेवन कराते है।

व्रणो पर—बीजो को पीसकर गरम कर बाधते है। इससे व्रणशोथ मे भी लाभ होता है।

फूल—

सिर दर्द पर—शुष्क फूलो को काली मिर्च के साथ, कोयलो की आग पर छोडने से जो धूम्र उठता है, उसे सुघाते है, इससे प्रतिश्याय मे भी लाभ होता है।

मूल—

अपस्मार की दशा मे—कठान्तर्गत कफ को निकालने के लिये, इसकी जड का क्वाथ पिलाते हैं।

पचाङ्ग—

ऊर्ध्वाङ्ग-वात, अर्दित-वात, ग्रन्थि-वात तथा पारद-दोषजनित वात पर—इसके पचाङ्ग के क्वाथ का बफारा (वाष्प-स्वेद) देते है।

---

[1] गर्भावस्था में पेट की दीवार के खिंच जाने से त्वचा की निचली स्तर फट जाती है, जिससे पेट पर दरारें सी दिखाई देती है। ये दरारें उर स्थल के नीचे पड जाती है, इन्हे किक्किस (Stria gravidarum) कहते है। इनमे खुजली बहुत होती है। उस पर पत्रों—को या बीजों को पीस कर मर्दन या लेप करते है।

दीर्घकालीन ज्वर या अन्य रोगो की अवस्था मे, खाट पर पडे रहने से शय्याव्रण हो जाते हैं, उन्हे दूर करने के लिये, क्वाथ का स्पज करते हुए, पत्र के महीन चूर्ण को बुरकते है।

अतिसार मे पचाङ्ग का रस उपयोगी माना जाता है।

विशिष्ट योग—

(१) इन्दुकला वटिका—आन्त्रिक-ज्वर तथा मसूरिका, विस्फोटक एव लोहित-ज्वर तथा सर्व प्रकार के व्रणो मे उपयोगी है।

इसके पचाङ्ग के रस या पत्र-रस मे शिलाजीत, लोह-भस्म और स्वर्ण भस्म (समभाग) मर्दन कर १-१ रत्ती की गोलिया छायाशुष्क कर रक्खे।

इसके प्रयोग से आन्त्रिक (Typhoid) ज्वर मे विशेष लाभ होता है। यह ½ से १ रत्ती की मात्रा मे, दिन मे २ वार शहद के साथ चटायी जाती है। इनमे मुक्ता मिलाकर देने से निरन्तर रहने वाला ज्वर उतर जाता है। (भै० रत्नावली)

(२) सैंधवादि चूर्ण—क्षय पर—इसके ४ तो० पत्तो के साथ सेंधा नमक, सोठ कालीमिर्च तथा श्वेत जीरा १-१ तो०, काला नमक व धनिया २-२ तो० लेकर महीन चूर्ण कर, उसमे १२ तो० खाड मिला ले।

इस चूर्ण मे अम्लवेतस या आम्रातक तथा अनार-दाना ४–४ तो० मिला लेने से यह स्वादिष्ट वन जाता है। इसे ४ मा० तक की मात्रा मे क्षय के रोगियो को खाने-पीने के पदार्थो मे प्रयोग कराते है। इससे रोगी की भोजन मे रुचि बढती व जठराग्नि प्रदीप्त होती है। खासी, सास लेने मे कठिनाई एव पसलियो के दर्द को दूर कर यह रोगी को वल प्रदान करता है।

(च० चि० अ० ११)

नोट—इसकी मात्रा आदि का विचार तुलसी-वबई के समान ही है।

तुलसी रामा
(*OCIMUM GRATISSIMUM*)

यह उक्त तुलसी-श्रेणी की ही श्वेत जाति है। इसके पौधे उक्त वर्णित सब तुलसियों की अपेक्षा बडे १-६ फुट ऊचे, बहुशाखायुक्त, झाडीदार होते हैं। तना या काण्ड—चौकोर, रोमश; शाखाए—नूतन रोमश, पत्र—खुरदरे, २–४ इञ्च लम्बे दानेदार, बडे-बडे रोमश एव सब तुलसियो की अपेक्षा अधिक सुगन्धित, पुष्प—लम्बे तुर्रों या मजरियो मे श्वेत, पीताभ बहुत छोटे-छोटे, बीज—हरिताभ पीतवर्ण के, तिकोने, लगभग $\frac{1}{12}$ इञ्च लम्बे, जीरे के आकार के, तथा मूल—लम्बी एव सुगन्धित होती है। वर्षा व शीत ऋतु मे पुष्प आते है। शीतकाल मे बीज पक जाते है।

रामतुलसी
OCIMUM GRATISSIMUM LINN.
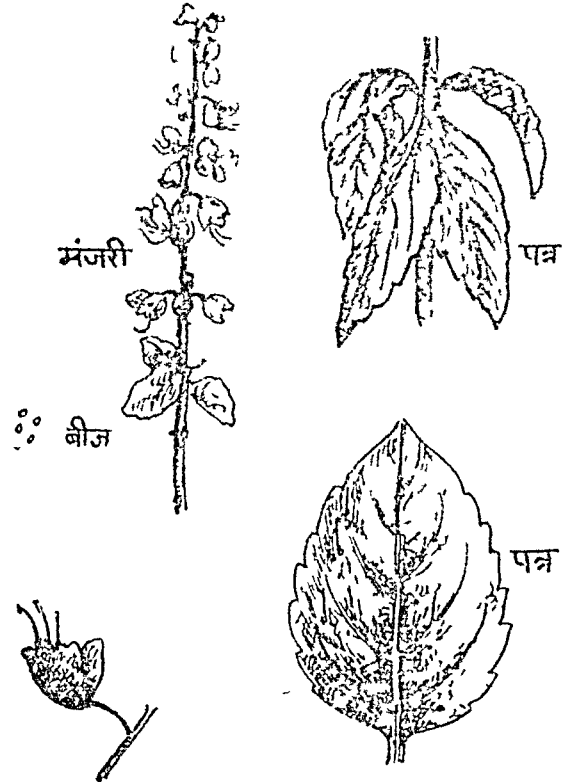
नोट—कोई-कोई इसे ही मरुवक या मरुवा मानते हैं। किन्तु मरुवा इससे भिन्न है। आगे तुलसी-मरुवा का प्रकरण देखिये।

यह सीलोन तथा दक्षिणी सामुद्रिक द्वीपो की निवासिनी है। किंतु बंगाल, नेपाल तथा भारत के दक्षिण-प्रदेशो के जलासन्न स्थानो में नैसर्गिक होती तथा बोई भी जाती है।

नाम—

सं०-अजेका, अमरी, राम-तुलसी। हिं०-तुलसी-रामा, राम तुलसी, बजारी, अजवला इ०। म०-मालि-तुलस, अजवला इ०। गु०-अजवला, गुग्गेले। बं०-राम-तुल ी। अं०-श्रबी बेसिल (Shrubby basil)। ले०-ओसिमम ग्रेटिसिमम; ओ० सायट्रोनेटम (O Citronatum)।

रासायनिक संघटन—

इसमें पतला, पीला उडनशील तैल, तथा थामयल (Thymol), यूजीनाल (Eugenol), मेथिल चेविओल (Methyl Chavieol) पाये जाते है।

प्रयोज्याग—पत्र, बीज तथा पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्णवीर्य, उत्तेजक, मृदुकर, मूत्रल, रोचक, पित्तकर, वातानुलोमन, रजोरोधक व यकृदामाशय को बलदायक है तथा वात, कफ, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, मदाग्नि, कास, नेत्र-रोग, व्रण आदि पर प्रयोजित होती है।

जहा इस तुलसी की विपुलता है, वहा इसी का उपयोग साधारण तुलसी जैसा ही, सर्व कार्यो मे किया जाता है। खासी के मिश्रणो मे यह सामान्यत कफनि सारकद्रव्यो के साथ मिलायी जाती है।

पत्र—

सुजाक, मूत्रदाह, तथा प्रदर रोग पर—पत्र-स्वरस को चावल के धोवन के साथ पिलाते हैं। उदर-शूल मे—पत्र-स्वरस देते है। वीर्य की निर्वलता मे—पत्तो का क्वाथ या फाण्ट सेवन कराते हैं। मंदाग्नि मे—पत्र स्वरस देते हे, इससे वात और रक्त की भी शुद्धि होती है। आध्मान मे—पत्र-स्वरस मे साभर नमक मिलाकर पिलाते हैं। यकृत प्लीहा और अर्श-विकारो मे—स्वरस पिलाते तथा लगाते हैं। क्लान्ति (अनायास थकावट Asthenia) मे—पत्तो का फाण्ट बनाकर उसमे गोदुग्ध और शक्कर मिला पिलाते है। वालग्रह व पीनस पर—शुष्क पत्र-चूर्ण का नस्य देते है। घ्राण-दुर्गन्धि मे—पत्र-स्वरस का नस्य देते है।

(१) ग्रन्थिक (प्लेग आदि) ज्वरो पर—इसकी पत्तियो के साथ दवना (आगे दवना देखे) पत्र तथा छोटी पीपल का चूर्ण समभाग १-१ तो. और शुद्ध कपूर ३ मा लेकर सबको एकत्र कर नीम की कोमल पत्तियो के स्वरस के साथ खरल कर ४-४ रत्ती की गोलिया बनाले। साधारण ज्वर मे ३-३ घटे पर ४ गोली देवें, तथा तीव्र ज्वर मे १-२ घटे पर ४ गोलिया देवे। इससे ग्रन्थिक ज्वर नष्ट होता है। (तु विज्ञान)

चढ़े हुए ज्वर को उतारने के लिये पत्र-स्वरस मे काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पिलाने से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

(२) वमन (वातज या पित्तज)—पत्र-स्वरस १ तो मे छोटी इलायची-दानो का चूर्ण १ मा मिलाकर पिलाते है।

(३) वात-रोगो पर—पत्र-स्वरस १ तो मे काली मिर्च-चूर्ण १ मा तथा गोघृत ३ मा मिला सेवन कराते हैं।

(४) बालग्रह (बच्चो का आक्षेप (Infantile convulsions) पर—पत्र-चूर्ण के साथ मीठा वच का चूर्ण समभाग मिला, शहद से चटाते हैं।

बीज—पुष्टिकर होने से, पौष्टिक पदार्थो के रूप मे खाये जाते है। इससे सिरदर्द तथा वातनाडियो की पीडा मे भी लाभ होता है।

(५) स्तभनार्थ—बीज-चूर्ण १-४ रत्ती तक पान मे रखकर खाते हैं। वीर्य-स्तभन होता है।

(६) सुजाक, मूत्रदाह आदि मूत्र-सस्थान के विकारो पर—बीजो का फाट या शीत-निर्यास २॥ तो तक पिलाते है।

(७) बालको के वमन पर—बीज चूर्ण शहद से चटाते है।

मूल—इसकी सुगधित जड का उपयोग वेदनाहर

मरहमो (Balms)मे किया जाता है। जड को पत्थर पर पीसकर वेदना-स्थान पर लगाने से भी लाभ होता है।

पचाग--

(८) गठियावात या पक्षाघात पर—इसके पचाग के क्वाथ मे बफारा (वाष्प-स्वेद) देते हैं, तथा इसी क्वाथ से रुग्ण-स्थान का प्रक्षालन भी किया जाता है।

खटमलो को भगाने के लिये पचाङ्ग के रस को चारपाई आदि मे डाला जाता है।

नोट-मात्रा—बीज का या पत्र का क्वाथ ५-१० तो तक। चूर्ण १-६ माशा तक। अतिमात्रा मे—यह सिर-दर्द पैदा करता ह। निवारणार्थ-गुलबनफशा और सिकज बीन देते है।

तुलसी-मरुवा

[Origanum Majorana]

यह उक्त राम तुलसी का ही एक भेद विशेष है। क्षुप—१-२ फुट तक ऊचे, पत्र-मेथी-पत्र सदृश, किंतु लम्बे अण्डाकार, किंचित् लालिमायुक्त श्वेत सुगधित, पुष्प—मजरी मे उक्त तुलसी जैसे ही होते हैं।

औषधियो मे प्राय उक्त राम तुलसी ही ली जाती है। यह अन्य कार्यो मे उपयुक्त है।

यह हिमालय के सम शीतोष्ण प्रदेशो मे तथा पाश्चात्य एशिया मे प्रचुरता से होती है। यह प्राय भारत के बाग वाटिकाओ मे सुगध के लिये बोई जाती है।

नाम —

सं०—मरुबक, मारुत, फणिज्जक, समीरण, मरु। हि०—तुलसी मरुवा, गेदरेत। म०—मरवा। गु०—मरवो। बं०—मरुवा, मुरु, गंधतुलसी। अं०—स्वीट मारजोरम (Sweet Marjoram) ले०—ओरीगनम मारजोराना, ओ व्हलगेरे (O Vulgare) ओसिममक्यारियो फिलेटम (Ocimum Caryophllatum)

रासायनिक सघटन--

इसमे एक उडनशील तेल (Oleum Marjoranae) होता है।

गुणधर्म व प्रयोग —

लघु, कटु, तिक्त, कटु तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, तीक्ष्ण, हृद्य, [illegible] प्रवर्त्तक है तथा [illegible], वात, कुष्ठ, कृमि, [illegible], [illegible], कण्डू, शूल आदि नाशक है।

पत्र और बीज [illegible], तीव्र उदर-शूल-नाशक है। इसके प्रयोग प्राय राम तुलसी [illegible]।

इसके ताजे पचाग का शीत निर्यास [illegible] की विकृति से होने वाले मस्तिष्क-शूल मे दिया जाता है तथा इसका सेक और बफारा वेदनायुक्त सूजन, सधिवात आदि पर किया जाता है। [illegible]—इसका फाट देते है। सर्दी मे इसके फाट से प्रस्वेद आता है, तथा शरीर मे उत्तेजना होती है। शीत के कारण होने वाला रजोरोध इस फाट से दूर होता है। इसका [illegible] या इसकी राख व्रण-शोधक और वेदना-नाशक है, जीर्ण व्रणो पर विशेष लाभदायक है।

तैल—तीव्र उदरशूल, उदर, मस्तक, कर्ण और दातो के शूलो पर तथा सधिवात पर रुग्णस्थानो पर मेथल तेल जैसे ही लगाया जाता है। यह अजीर्ण, मदाग्नि, स्थौल्य एव रजोरोध मे पानी के साथ पिलाया भी जाता है।

नोट-मात्रा तेल की [illegible]-५ बूद।

पचाग— का फाट—१ से २॥ तोला तक। पजाब की ओर कही-कही इसका उपयोग पुदीना के सदृश चटनी आदि बनाने मे किया जाता है।

किसी शस्त्र से कट जाने, रगड लग जाने तथा बर्र, बिच्छू आदि के डक मे बने हुए छिद्र मे इसका स्वरस भर देने से, जख्म विषेला (Septic) नही होने पाता, तथा विष नही चढता। यह उस स्थान के दूषित कृमियो का नाशक है। (राजमार्त्तण्ड)

तुलसी दवना[1]

(Artimesia Indica)

इसके क्षुप तुलसी से बहुत कुछ रूप आकार मे छोटे

---

[1] यह-तुलसी कुल से भिन्न भृगराज या सेवती-कुल की है। यह अफसतीन विलायती की ही एक जाति विशेष है। (देखें भाग १ में) देशी अफसतीन है। तथा

वर्षायु, झाडीदार १-२ फुट ऊंचे, काड-भूरा, रोमश, सीधा, शाखायें व पत्र-अल्प प्रमाण मे, पत्र व पुष्प उग्रगंधयुक्त, पुष्पमजरी-चवर के आकार की नीचे मोटी, ऊपर को पतली, पत्र-लम्बे, नोकदार गाजर के पत्र-जैसे वृन्तरहित, मध्य मे दो विभाग युक्त, दोनो ओर रोमश भूरे वर्ण के होते है।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है। कही कही बोया भी जाता है। इसकी एक जगली जाति पश्चिमी हिमालय मे ८ से १० हजार फुटकी ऊंचाई तक पाई जाती है।

नाम—

स०-दमनक, तपोधन, गन्धोत्कट ब्रह्मजट, पुष्पचामर। हि०-दवना, दौना। म -दवणा, रानदवना। गु -डमरो। ब०-दोना। ले०-आर्टिमिसीया इ डिका; आ. सिवर्सियाना (A Sieversiuna)

रासायनिक सघटन—

इसमे एक तिक्त तत्व, हरिताभ कर्पूरगधी उडनशील तैल तथा प्रचुर मात्रा मे यवक्षार होता है। यह इसके पौधो को राख कर क्षार विधि से निकाला जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, पुष्प, पचाङ्ग, तथा क्षार—

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कषाय, कटु विपाक, उष्ण वीर्य (इसे शीतवीर्य भी माना जाता है।) दीपन, पाचन, अनुलोमन, पित्तसारक, कटुपौष्टिक, वेदनास्थापन, वातहर, मस्तिष्क पर कपूर जैसी क्रिया वाला, हृदयोत्तेजक शोथहर, रक्तशोधक, कफघ्न, त्रिदोष शामक, मूत्रल, गर्भाशय-सकोचक, ज्वरघ्न, कृमिघ्न है। वात-व्याधि, अग्निमाद्य, विष्टम्भ, आध्मान, उदरशूल, यकृद्विकार, पित्ताधिक्य, हृद्दौर्बल्य, कास, श्वास, रजोरोध, भूतबाधा, शोथ वेदनायुक्त-विकार, एव व्रणशोथ आदि पर इसकी योजना की जाती है। इसका लेप किया जाता है।

जगली दौना 'वीर्यस्तम्भक' वल्य तथा आम दोष नाशक है।

अग्निमाद्य मे इसका स्वरस देते है। उदरशूल, अफरा मे पत्र व पुष्पो का चूर्ण देते हैं, अपानवायु निकलकर वेदना, मलावरोध दूर होता है। मल का रग पीला होता है।

(१) आम ज्वर पर—इसका फाट देते है, मूत्र खुल कर होता, स्वेद आकर शात निद्रा आती व पीडा-सह ज्वर दूर होता है।

(२) कष्टार्त्तव एव रजोरोध पर—इसका अर्क या फाट-पूर्ण-मात्रा मे पिलाने से पीडा कम होकर मासिक-धर्म साफ होता हे। आवश्यकतानुसार यह फाट—पुन २-३ घटे से दिन मे २-३ बार देते है।

जीर्ण ज्वर के बाद पाडु हो गया हो तो इसका चूर्ण लोह-भस्म के साथ सेवन कराते है। ज्वर सहित पाडु दूर होकर, क्षुधाप्रदीप्त होती है।

जलोदर, हृदयोदर पर—इसका क्षार ४-८ रत्ती घृत के साथ दिन मे दो बार देते तथा ऊपर से सारिवा का फाट पिलाते हे। मूत्र साफ होकर रक्तान्तर्गत अधिक जल को बाहर निकल जाता है।

कफ-कास मे—क्षार को घृत के साथ चटाते है। उदर-रोगो पर तथा मूत्रकृच्छ्र मे भी इसका क्षार दिया जाता है।

विस्फोटक-दूषित व्रणो पर—इसका रस लगाने या पुल्टिस बाधते रहने से लाभ होता है तथा अन्यान्य चर्म-रोगो पर भी लाभकर है।

नोट—जिस स्थान पर इसका पौधा होता है। वहां सर्प नही आने पाता। सर्पदश पर—पशुओं को इसका रस पिलाते तथा मनुष्यों को भी पिलाते हैं।

मात्रा—फाट के लिए १-२ तोला तक।

स्वरस—आधा से १ तोला तक। क्वाथ या फाट २-५ तो तक।

बीज-चूर्ण—१-३ माशे। पत्र-चूर्ण-५-१० रत्ती।

क्षार—५ से १० रत्ती। अर्क—४ से ८ माशे तक।

इसके फाट के पीने के बाद दूध या चाय नही पीना चाहिए। अन्यथा शीत पित्त जसे ददोरे शरीर पर उठते है। गरमी के विकारो पर—मरुवा तथा दवना का रस दिया जाता हे।

भावमिश्र जी ने इस तुलसी के ही प्रकरण मे रक्खा है। अत हमने भी इसे इसी प्रकरण में देना उचित समझा है। ध्यान रहे यह नागदौना नही है, जैसा कि कई लोग भ्रमवश इसे नागदौना ही मानते हैं। नागदौना तालमूली कुल का है। आगे नागदौना देखें।

तुलसी-मूत्रल

(Ocimum Grandiflorum)

यह तुलसी कुल का पोधा, १-२ फुट ऊचा, तथा पत्रादि दवना जैसे होते है। यह दक्षिण भारत मे, तथा आसाम, वर्मा आदि प्रदेशो मे पाया जाता है।

नाम—

हि०-तुलसी-मूत्रल। म०-मूत्री-तुलस । ले०-ओसिमम ग्रेन्डिफ्लोरम, ओ लांगिफ्लोरम (O Longiflorum) अर्थोसिफान स्टेमिन्यूस (Osrthoiphon stamineus) अ -जावाटी (Java tea)

रासायनिक संघठन—

इसमे एक आर्थोस्फोनिन (Orthosphonin) नामक ग्लूकोसाईड तथा एक प्रभावशाली तेल होता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके प्रयोग से मूत्र खूब खुलकर साफ होता तथा मूत्र सम्बन्धी एव वृक्क विकारो मे विशेप लाभकारी है। उक्त विकारो पर इसके पत्रो की चाय या फाट बनाकर पिलाया जाता है। जननेन्द्रिय के रोगो मे यह लाभ दायक है।

तुलसी बालंगा (तुख्म बालंगा)

(Lallemantia Royleana)

तुलसी-कुल के ही इसके छोटे बहुशाखी क्षुप होते है। पत्र-साधारण तुलसी-जैसे किनारे कटावदार लम्बे, नोकदार, पुष्प-तुलसी की मजरी जैसी मजरियो मे अनेक लगते है। बीज-इसबगोल के जैसे किंतु काले रग के तिकोने, चिकने, १/८ इच लम्बे होते है। इन्हे तुख्म-बालगा, तथा कही कही तुख्म-रेहा भी कहते हैं। पानी मे भिगोने से ये शीघ्र ही चिपचिपे लुआबदार हो जाते है। ये बीज भारतवर्ष मे प्राय पर्शिया से तथा मेक्सिको और कैलिफोर्निया से आते है, जहा इसके पौधे बहुतायत मे पैदा होते हैं।

इसकी ही जाति का एक भारतीय तुलसी का पौधा देहला से पश्चिम की ओर के तथा पजाव के मैदानो एव टेकाडियो पर व सिंध मे होता है। इसे लेटिन मे सालव्हिया ईजिप्टियाका (Salvia Aegyptiaca) कहते हैं। इसके बीज भी उक्त तुख्म बालगा के जैसे ही गुणकारी है। तथा प्रतिनिधि रूप मे ये उपयोग मे लाये जाते हे। ये बीज स्वाद मे अलसी (तीसी) जैसे होते है।

नाम—

हि०--बालंगा, घारी, घरेई करमालू, तुख्मबालंगा (मलंगा) म०—बालगा। बालगू। गु०—तूतमलगा, तोक मलगा। ले०---लालेमेंटिया राय लियना।

इसके बीज ही औषधि-कार्यार्थ लिये जाते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

बीज सग्राही, पौष्टिक-अतिसार, प्रवाहिका, सुजाक,व रक्तार्श आदि मे उपयोगी हैं। ये हृदय की धडकन, हृद्दौर्बल्य, रक्तातिसार मे विशेप प्रयुक्त होते है।

तुलसी बालगा
LALLEMANTIA ROYLEANA BENTH
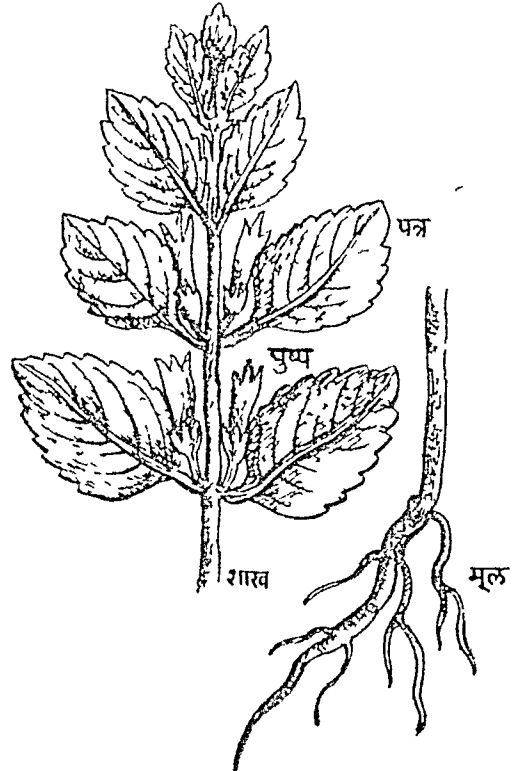
बीजो को भून कर, जौकुट कर उसमें पानी और शक्कर मिला कर एक पेय पदार्थ बनाया जाता है, जो परम शाति दायक, तृषाहर होता है। व्रण, विद्रधि आदि पर बीजो की पुल्टिस बना कर लगाते हैं। प्रमेह पर—बीजो को ६ मा० की मात्रा मे गोदुग्ध और खाड मिला कर सेवन कराते हे।

नोट-मात्रा-४ ७ मा० । अधिक मात्रा मे यह आमाशय को हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ चीनी या मिश्री देते हैं। इसके अभाव मे साधारण तुलसी के बीज लिये जाते हैं।

तुलातिपति—दे०—टकारी। तुवरक—दे०—चालमोगरा। तुवरी—दे०—तोरी (सफेद सरसो)
तूत—सहतूत। तून मलगा—तुलसी बालगा।

तून (*CEDRELA TOONA*)

वटादि वर्ग एवं निम्ब-कुल (Meliaceae) के इसके सघन शाखा युक्त, बड़े बडे वृक्ष ६०-७० फुट तक ऊचे: काण्ड का व्यास ६-१० फुट तक, काष्ठ-लाल वर्ण का, नरम, चमकीला, सुगधित, छाल-½ इच मोटी, गहरे भूरे रग की, जिससे एक प्रकार का निर्यास (गोद) प्राप्त किया जाता है। पत्र—लम्बी सीको पर अभिमुख, नीम-पत्र जैसे, किंतु बहुत बडे, भालाकार, नोकदार लम्बे-१–३ फुट तक, वसत मे ये झड जाने पर कोमल पत्रक २–७ इच लम्बे, ¾–२ इच चौडे आते है। पुष्प—वसत मे श्वेत रग के, अच्छे मनोहर, गुच्छो मे, सुगधित, ¼—१ इच तक लम्बे आते हैं। फल—लम्बे, लाल रग के झुमको मे मधु जैसे गध वाले; पकने पर फल के छिलके ५ भागो मे विभक्त हो जाते है। बीज—पतले, कोणाकार होते हैं।

हिमाचल प्रदेश मे सिंधु नदी से पूर्व की ओर, सिक्किम, बर्मा तथा मध्य एव दक्षिण भारत के पहाडी जगलो मे, बगाल तथा अवध मे भी ये लगाये हुए बहुतायत से पाये जाते है। देहरादून और सहारनपुर के जगलो में ३॥ हजार फीटकी ऊचाई तक पर्वतो व वाटिकाओ मे तथा बागो एव सडको पर लगाए हुए मिलते है।

नाम—

स०—तणी, नन्दा, नन्दीवृक्ष, आपीन इ०। हि०—तून। म०—नादरूख। गु०—तूणी। ब०—तूनगाछ, तूणी। अ० Red toon, Indian Mahogany tree (रेडटून, इडियन महोगनी ट्री)

रासायनिक सघटन—

इसकी छाल तथा निर्यास मे एक कटु तत्व निकटेनथिन (Nyctanthin) नामक पाया जाता है।

प्रयोज्याग—छाल, पत्र, फूल, बीज और गोद।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, तिक्त, मधुर, कषाय, कटु, विपाक, शीतवीर्य, वीर्यवर्धक, कटु-पौष्टिक, मलरोधक, तथा व्रण, कुष्ठ, रक्त पित्त, कड्डु, पित्त विकार, रक्त-विकार दाह आदि मे
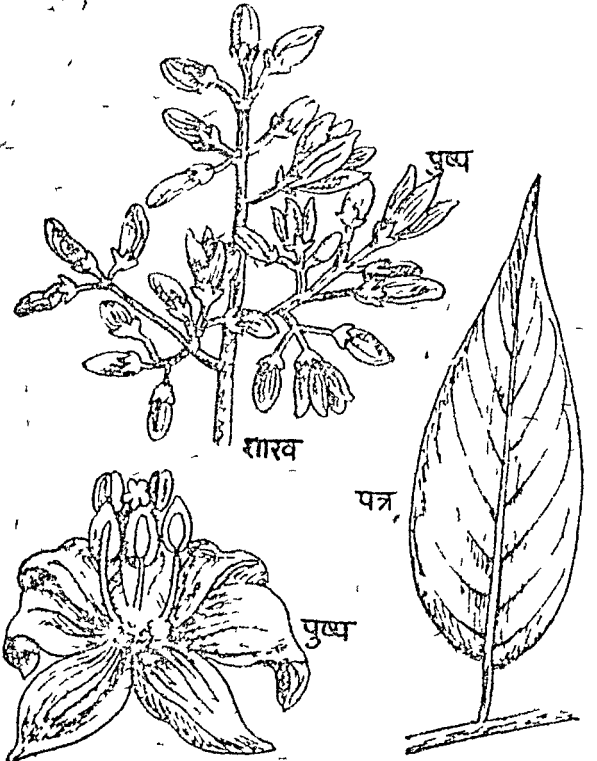
उपयोगी है।

छाल–अति सकोचक (ग्राही), ज्वरघ्न, पौष्टिक, व थोडी मात्रा मे ज्वर नाशक है। बालकोके जीर्ण अतिसार मे तथा व्रणादि पर इसकी पुल्टिस बनाकर लगाते है।

(१) विषम ज्वर के साथ अतिसार हों, तो छाल का फाण्ट देते है। छाल का चूर्ण भी पानी के साथ दिया जाता है। यदि छाल के साथ लताकरज के बीजो को जौ कुट कर फाण्ट बना सेवन कराया जाय तो, विषम ज्वर शीघ्र दूर होता है, तथा पौष्टिक परिणाम होता है।

(२) बालकों की प्रवाहिका या आमातिसार पर भी छाल का फाण्ट या क्वाथ ½ से २ या २।। मासे तक देते हैं। या छाल का घन क्वाथ बना कर ५—७ रत्ती की मात्रा मे दूध के साथ शहद से चटाते हैं। जीर्ण ज्वर पर-छाल का क्वाथ सेवन कराते है।

नोट–छाल के स्थान मे इसके गोंद से भी यही लाभ होता है। छाल के सब गुण धर्म गोंद मे है।

(३) योनि–कन्द (Vaginal polypus) पर–छाल के साथ पठानी-लोध समभाग कूट पीस कर, तथा गरम कर लेप करते रहने से लाभ होता है।

(४) मस्तक के वातिक शूल पर–उसकी अन्तर–छाल के साथ इनके पत्तो को जौ कुट कर बफारा देने तथा सुहाता हुआ इसे वस्त्र मे लपेट कर मस्तक पर बाधने से लाभ होता है।

(५) गर्भाशय के शैथिल्य पर—छाल तथा इसके फूलो का फाण्ट सेवन कराते है।

(६) व्रणो पर—छाल का चूर्ण बुरकते है।

पुष्प–गर्भाशय-सकोचक तथा रज स्थापक है। स्त्रियो की मासिक धर्म की विकृति पर पुष्पो का फाण्ट देते हैं।

पत्र—वेदनास्थापन एव शोथहर है।

(७) अन्डवृद्धि पर—वृद्धि मे शूल या टीस मारती हो, तो इसके पत्तो के रस के साथ [illegible] तुलसी पत्र-रस मिला, तथा उसमे उतना ही घृत मिला पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर उतार कर, पुन दोनो पत्र-रसो को मिला पकावे। इस प्रकार २१ बार घृत को सिद्ध कर छान कर रख ले। इस घृत की धीरे २ मालिश कर वृद्धि रोग पर, दिन मे ४-५ बार कर, जूनी ईट को गरम कर वस्त्र मे लपेट कर सेक करते रहने से शीघ्र लाभ होता है। (व गुणादर्श)

(८) अर्श पर–पत्र-रस पिलाते है।

बीज–अर्श पर—इसके बीज ½ सेर लेकर सिलपर पत्थर से रगडने पर जब छिलका दूर हो जाय, तब २½ पाव पानी मे पकावे। १½ पाव पानी रहने पर, उतार कर छान लें, तथा उसमे से आध पाव पानी लेकर उसमे ७ तो बुझा हुआ चूना घोलकर आग पर चढादें। ज्यो-ज्यो पानी कम होता जाय त्यो-त्यो ऊपर से उक्त बचा हुआ पानी धीरे २ उसमे डालकर पकाते जावे। जब सब पानी जल कर गाढा अवलेह सा हो जाय, तब उतार कर बेर के बराबर गोलिया बनाले। इनमे से १ गोली रोज खिलाने से खूनी और बादी दोनो प्रकार की बवासीर ७ दिन मे आराम हो जाती है। यदि ३-४ मास बाद पुन यह रोग हो जाय तो ७ दिन पुन ये गोलिया खिला देने से हमेशा के लिये रोग-निवृत्ति हो जाती है। (व. च)

नोट—मात्रा-क्वाथ-५ तो० तक। फाट-१० तो० तक। छाल का सार या गोंद-१ से ३ मा तक।[1]

---

[1] गुजरात एवं महाराष्ट्र का एक तून (तूणी) वृक्ष इससे भिन्न होता है, जिसे लेटिन मे (Ficus Retusa) बगला में कामरूप, गु०-नांदरुखीवड, पिवड आदि कहते है। यह क्षीरीवृक्ष वट कुल (Urticaceae) का है। संभव है भावप्रकाश जी ने इसी का वर्णन किया हो।

इसका वृक्ष प्रस्तुत प्रसग के तून वृक्ष से छोटा, मध्यमाकार का, छायादार, शाखा छोटी छोटी दूरी पर सधियुक्त, पत्र—वटपत्र जैसे २-४ इंच लम्बे, अन्तर पर, लम्बगोल चिमडे, मोटे, चमकदार, पत्रवृन्त आध इंच लम्बा, फल–वृन्तरहित, छोटे, गोल, लगभग चौथाई से आध इंच व्यास के, पकने पर श्वेत या बैगनी रग के होते हैं।

यह बिहार, मध्यप्रदेश, दक्षिण, मद्रास, पूर्व हिमालय, बम्बई व आसाम मे पाया जाता है। इसके वृक्ष मे बड के जैसे नये मूल लटकते हैं, जो नीचे जमकर वृक्षाकार मे हो जाते हैं।

यह त्रिदोषघ्न, बल्य, कामोत्तेजक तथा कण्डू, कुष्ठ, व्रणादि-नाशक है। इसकी जड व पत्रों को पानी के साथ

तृण चाय (*ANDROPOGAN CITRALUS*)

इस यव-कुल (Graminae) की घास का-वानस्पतिक वर्णन आदि हम इस ग्रन्थ के भाग १ मे अगिया के प्रकरण मे सचित्र दे चुके है। तथापि इसके विषय मे बहुत सी बाते वहा नही दे सके। उसकी पूर्ति यहा की जाती है।

इसका उपयुक्त अङ्ग—पत्र और तैल है।

ज्वर पर—पत्र के साथ तुलसी पत्र तथा बेल-पत्र मिला, चाय या फाण्ट बना पीने से ज्वर कम हो जाता है। साथ ही साथ एक बडे पात्र मे पानी मे इसे डालकर उबाले और रोगी को खाट पर सुलाकर, नीचे से इसका बफारा देवे। इस से प्रस्वेद आकर ज्वर दूर होता है। इसी बफारे से गले को अन्दर व बाहर से सेक देने से शीत से बैठी हुई आवाज या स्वरभग मे सुधार होता है।

प्रतिश्याय (जुखाम) पर—इसके साथ अदरख, दालचीनी अथवा पोदीना मिला फाट तैयार कर, उसमे थोडा गुड मिला कर, रात्रि मे सोते समय पीकर गरम कपडा ओढकर सोने से तीन दिन मे चाहे जैसा जुखाम हो दूर हो जाता है।

हृच्छूल, उदरशूल, आध्मान व सर्दी आदि लगने पर—इसके साथ सोठ, कालीमिर्च, पोदीना और दालचीनी मिला, फाण्ट बना, थोड़ी शक्कर मिला पिलावे।

छोटे बालको के लिये दीपन, पाचन तथा वातकफ-नाशक यह एक उत्तम औषधि है। इसके सेवन से बच्चो का उदर स्वच्छ रहता तथा आक्षेप-विकार भी दूर होता है। इसके फाण्ट मे केवल सोठ, दालचीनी और शक्कर मिलाकर पिलाते रहे।

नष्टार्त्तव, अल्पार्त्तव, पीडितार्त्तव के विकारो पर—इसे ताजा, गीला २॥ से ३ तो की मात्रा मे तथा काली मिर्च ३ मा लेकर उसमे १० तो. पानी मिला पकावें। ७॥ तो शेष रहने पर छानकर उसमे थोडा गुड या शक्कर मिला जब मासिक धर्म के समय उदर मे शूल हो तब अथवा नित्य भोजन के पूर्व लेते रहने से लाभ होता है। यदि इस फाण्ट या क्वाथ से विशेष उष्णता की प्रतीति हो, तो उसमे थोडा दूध मिला लेवे।

इसका तैल—इस घास का विशेष महत्व इसके तैल के कारण है। भिन्न २ प्रकार के इत्र तथा सेंट तैयार करने मे आवश्यक आयोनोन (Ionone) नामक विशिष्ट सुगन्धि-द्रव्य की प्राप्ति इस तैल से की जाती है।

तैल निकालने की विधि —इसके पत्तो को काट कर शुष्क होने के पूर्व ही, उन्हे भबके मे (वाष्प यत्र) मे भर कर, जिस प्रकार खस का अर्क निकाला जाता है, उसी प्रकार यह निकाला जाता है। अर्क पात्र से निकले हुए अर्क या जलाश मे इसका तैल ऊपर ही छाया हुआ रहता है। उसे धीरे से कपास के द्वारा निकाल कर शीशियो मे भर रखते है।

यह तैल इसके पत्तो से भी अधिक तीक्ष्ण, उष्ण, उत्तेजक तथा वातनाशक है। उदरशूल, अफरा, वमन, आर्त्तव-शूल आदि पर यह तैल ३ से ६ बूद की मात्रा मे बतासे पर डालकर उस बतासे को चूर्ण कर जल के साथ पीते हे।

सर्दी लगने या जुखाम से हुए सिर दर्द पर, तथा आमवात, सधिवात-जन्य पीडा पर, पैरो मे मोच आने आदि पर इस तैल मे दुगुना मीठा तैल मिला मालिश करने से लाभ होता है। केवल इस तैल के ही लगाने से त्वचा लाल होकर आग या दाह होने लगती है। दाद पर भी यह तैल लगाया जाता हे।

पीस, ४ गुना तैल मे उबाल कर तैल को घाव व चोट पर लगाते हैं। दतपीडा पर-छाल का रस १ तो० दूध मे मिला नित्य प्रात पिलावें, भोजन, लघु शीघ्रपाकी हो तथा घृत व शक्कर बहुत कम देवें।

आमवातज सधिशोथ पर-पत्र व छाल को जल मे पीस गरम २ मोटा लेप करते एवं पुल्टिस बाधते हैं।

आध्मान पर-पत्र-रस ४ सेर, काली तुलसी-पत्र रस ४ सेर और रेंडी-तैल १ सेर मिला, तैल सिद्ध होने पर तुरत छान लें। इस तैल की उदर पर हलके हाथों से ५ ७ मिनट मालिश कर, ऊपर कपडा रख सेक करने मे उदरशूल और अफारा दूर होता है। (गावों मे औ. र. के आधार से।)

लकवा (अर्द्धांगवात) पर सफल योग—इसका तैल २॥ तो, महुवा-तैल व कुसुम तैल १०–१० तो, सेंधा-नमक महीन पीसा हुआ १ तो मिलाकर मालिश करें, तथा लहसुन १ जवा भूनकर प्रात साय खावे। इसी प्रकार बढाते हुए (प्रथम दिन १, दूसरे दिन २, एव २१ दिन तक बढा २ कर) खावे और ऊपर से दूध का सेवन करे तो लकवा मे विशेष लाभ होता है। किन्तु इस योग का सेवन शक्ति के अनुकूल करना ठीक होता है। साथ ही प्रकृति का भी विचार करना चाहिए। गरम प्रकृति वालों को एव गरम मौसम मे ऐसे गरम योग अनुकूल नहीं होने व लाभ के स्थान मे हानिकर होते है।

तेंदू (काला) (*DIOSPYRUS EMBRYOPTERIS*)

फलादिवर्ग एव अपने ही तिन्दुक-कुल[1] (Ebenaceae) का यह मध्यम प्रमाण का, बहुशाखा प्रशाखा युक्त २५ से ४० फुट तक ऊचा, सघन, सदा हरित पत्रो से आच्छादित वृक्ष जगलो मे बहुत होता है। काण्ड—मजबूत व सीधा होता है। काण्ड या मोटी डालियो की लकडी कडी, काले रग की, साधारण सुदृढ होती है[2]। काण्ड की छाल—गाढी धूसर या काले रग की, पत्र—हरे, स्निग्ध आयताकार, दो पक्तियो मे क्रमवद्ध, ५-७ इच लम्बे १॥ से २ इच चौडे, चमकीले, पुष्प—श्वेतवर्ण के सुगधित, फल—गोल, लड्डू जैसे कडे, सिर पर या मुख पर पचकोण युक्त ढक्कन से लगे हुये, कच्ची दशा मे मुरचई रग के, अति कसैले, पकने पर लालिमायुक्त पीले मधुर, होते है। इसके भीतर चीकू के समान मधुर, चिकना गूदा रहता है, जो खाया जाता है, इन्ही फलो को तेंदू कहते हैं। बीज—प्रत्येक फल मे, वृक्काकृति के बीज ३-४ रग के चमकीले गूदे के अन्दर होते हैं।

इसके वृक्ष पजाब और सिंध को छोडकर, भारत वर्ष मे प्राय सर्वत्र जगलो में पाये जाते है। इन वृक्षो से सरकारी जगल-विभाग को बहुत आमदनी होती है। इनके पत्तो का ठेका बीडी तैयार करने वाले व्यापारी लोग लिया करते हैं। लकडी से अलग ही बहुत आमदनी होती है। वृक्ष की छाल चमडा रगने के काम में आती है।

नोट (१)—चरक के उदर्द-प्रशमन तथा सुश्रुत के

---

[1] इस कुल के वृक्षों के पत्र—एकान्तर, पुष्प वाह्यकोष के दल ३-७, पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल भी ३-७ नलिकाकार दाहिनी ओर को मुडे हुए, पु केसर ४, बीजकोष ४-१० कोष्ठयुक्त, फल—गोलाकार, पुष्प वाह्यकोष से आवृत्त होते हैं।

[2] यह लकडी आवनूस के समान चिकनी, काले वर्ण की होने से यह फर्नीचर बनाने के काम मे आती है। कोई २ इसे ही आवनूस मान लेते है। वास्तव में आवनूस इसी कुल का है, किंतु इससे भिन्न है। आवनूस का प्रकरण इस ग्रन्थ के भाग १ मे देखिये। चित्र इसी प्रकरण में दिया जा रहा है।

न्यग्रोधादि गणों में इसकी गणना की गई है।

(२) काकतिन्दू आदि इसकी भिन्न २ जातियों का वर्णन आगे के प्रकरणों में देखिये।

नाम—

सं०-तिन्दुक, स्फूर्जक, कालस्कन्ध, असितकारक इ०। हि०-तेंदू, तिन्दू, कदू गाव इ०। म०-टेंभुरणी। गु०—टींबरयो। बं०-गाव। अं०--इंडियन पर्सिमन (Indian Persimon) ले०-डायोस्पाइरस एम्ब्रियोप्टेरिसडायोस्पाइरस ग्लुटिनोसा (D Glutinosa), डा. कार्डिफोलिया (D Cordifolia)।

रासायनिक संघटन--

फलो में विशेषत. कच्चे फल और छाल मे कषाय द्रव्य (Tannin) प्रचुर मात्रा मे होता है। तथा पेक्टिन (Pectin) और द्राक्ष-शर्करा (Glucose) भी पाया जाता है।

प्रयोज्य अङ्ग--छाल, फल, बीज काष्ठ आदि।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफपित्त-शामक, स्तभन, शोथहर, रक्तप्रसादन, वीर्यपुष्टिकर, मूत्र-सग्रहणीय है। उदर्द, ज्वरघ्न, शीघ्रपतन, प्रदर, कुष्ठादि चर्मविकारो मे उपयोगी है।

पका फल–मधुर, स्निग्ध, गुरु है तथा वात, प्रमेह, एव रक्तविकार-नाशक है।

छाल का क्वाथ या फाट प्रवाहिका, अतिसार, प्रमेह, कुष्ठ, उदर्द आदि में दिया जाता है। कास में–छाल का घनसत्व या गोलिया बनाकर चूसते है। विषम ज्वर मे—छाल के क्वाथ मे मधु मिला कर पिलाते हैं।

(१) लकवा (अर्द्धांग या अर्दित) के कारण जिह्वा के लडखडाने या हकलाने पर–इसकी जड का क्वाथ पिलाने से, तथा छाल ६ मा. और कालीमिर्च २ तो पानी में पीस कर जीभ पर मलने से लाभ होता है।

(२) अग्नि दग्ध पर–छाल के क्वाथ मे तिल मिला कर, दग्ध-स्थान पर लगाने से शाति प्राप्त होती हे।

(३) सिर के जूं आदि के नाशार्थ–छाल को गोमूत्र मे पीस कर लेप करते है।

विस्फोट तथा ग्रंथियो पर–छाल को पीसकर लेप करते हैं।

फल–कच्चा फल-शीत, रूक्ष, कसैला, कडुवा, ग्राही अरुचिकारक, मलस्तभक, वातकारक है।

(४) शस्त्रादि लगने से जखम हो जाने तथा रक्त-स्राव होने पर, कच्चे फलो को पीस कर लेप करने से तत्काल ही रक्त-स्राव वन्द होता तथा रोपण शीघ्र होता है। अथवा-कच्चे फलो को छेदने से जो एक प्रकार का गाढा, कसैला रस निकलता है, उसे लगाते रहने से भी लाभ होता है। या शुष्क फलो के छिलको का चूर्ण जखम पर छिड़कने से भी शीघ्र सुधार होता है।

(५) मुख-पाक, उपजिह्विका-शोथ पर–फलो के क्वाथ का गण्डूष धारण कराते है।

(६) श्वेत प्रदर पर–फलो का रस ७॥ मा० १ पाव पानी मे घोल कर योनि मे पिचकारी देते है। अथवा फलो के क्वाथ की योनि मे वस्ति देते है, जिससे स्राव तथा गर्भाशय की श्लेष्मल-कला का शोथ भी शमन हो जाता है।

(७) प्रवाहिका, अतिसार पर–कच्चे फलो के रस का सेवन कराते हैं। वसे ही रक्त विकार एव रक्त-पित्त मे इसके रस, या क्वाथ या फाण्ट की योजना करते तथा पके-फलो का सेवन कराते हे।

(८) श्वास पर—कच्चे या पके फलो की छाल का शुष्क चूर्ण ३ मा० तक चिलम मे भर कर धूम्रपान कराते है।

काष्ठ (लकडी) (९) नेत्रस्राव पर–लकडी को पानी के साथ पत्थर पर घिस कर आखो मे आजने से ढलका (नेत्रस्राव) बन्द होता है।

(१०) भिलावे की सूजन पर—भिलावे के धुए से शरीर पर होने वाली सूजन पर लकडी को घिस कर लेप करते हैं।

(११) लकडी का काला सार या अर्क हैजा पर लाभ करता है। पित्त के फोडे फुसियो पर भी यह लगाया, तथा पिलाया जाता हे।

बीज तथा बीजों का तैल—

प्रवाहिका तथा अतिसार मे उपयोगी हे। अतिसार

मे बीजो का चूर्ण पानी के साथ देते है।

विशिष्ट योग

(१२) फलो का सत्—इसके अर्धपक्व फलो को हाथो से मसल कर रस निचोड़ कर, उसे पकावे। अच्छा गाढा हो जाने पर जो भूरा लाल रंग का घनसत्त्व तैयार होता है, वह अतिसार एवं जीर्ण-शूल पर विशेष लाभकारी है। ध्यान रहे इसे तैयार करते समय लोहे का कोई पात्र काम मे नहीं लेना चाहिये। कलईदार पात्र मे इसे मंद आग पर पकाना चाहिये। जीर्ण संग्रहणी मे १ से ८ रत्ती तक यह सत् पानी के साथ दिन मे २ बार देने से विशेष लाभ होता है।

(१३) तेंदू का हलवा—अच्छे पके फलो का गूदा १ सेर, बिनौले की गिरी (मगज) तथा पिस्ता १०-१० तो०, बादाम का तैल ४ तो०, श्वेत छोटी इलायची-बीज २ तो०, केशर ३ मा०, गुलाब का शुद्ध अर्क ½ सेर और मिश्री दो सेर लेकर इन सबका यथाविधि हलवा बना ले। इसे २ से ४ तो० तक की मात्रा मे प्रतिदिन सेवन करने से काम-शक्ति बहुत बढती है, वीर्य पैदा होता तथा पीठ व गुर्दे को ताकत मिलती है।

(व० च०)

नोट—मात्रा-क्वाथ ४ ८ तो० तक। बीज-चूर्ण-१-३ मा० तक। तैल-१०-२० बून्द। अधिक मात्रा मे यह आन्त्र और आमाशय के लिये हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ दूध और स्निग्ध-पदार्थों का सेवन करें।

ध्यान रहे—भोजन के बाद तुरन्त ही इसके फल नहीं खाने चाहिए, तथा इन्हे खाकर तुरन्त ही पानी भी नहीं पीवे। अन्यथा जी मिचलाना व वमन होने की सम्भावना होती है।

तेंदू-काक (काकतेंदू)

(Diospyros Tomentosa)

तेंदू की ही एक उपजाति है। इसके वृक्ष, पत्र, फल आदि तेंदू वृक्ष जैसे ही होते हैं।

वृक्ष की छाल—श्यामाभ कृष्णवर्ण की, तथा इसका नवीन भाग श्वेत, रोमश या मुरचई रंग का होता है। पत्र—प्राय विपरीत, ३-६ इंच लम्बे, २-५ इंच चौड़े आयताकार, फल—गोल, व्यास मे १-१½ इंच, चिकना, पकने पर पीला, तथा भीतर का गूदा पीला, मधुर एवं गंधयुक्त होता है।

ये वृक्ष बंगाल मे कई भागो के तथा यू० पी० मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर, बिहार आदि के जंगलो मे अधिक पाये जाते हैं। सहारनपुर शिवालिक के पश्चिम भाग मे भी ये वृक्ष अधिक होते हैं।

नाम—

सं०—काकतिन्दुक, काकेन्दु आदि। हिं०—काकतेंदू, तुमल, मकर तेंदुआ। म०—टेमरू।

गुण-धर्म व प्रयोग—

फल—लघु कडुवा, कसैला, शीत-वीर्य, मलरोधक, आन्त्र-संकोचक, पका फल—पित्त वात-शामक। इसके पत्र मूत्रल, मृदु विरेचक, आध्मान-नाशक, रक्तस्राव रोधक। वृक्ष की छाल संकोचक, छाल का क्वाथ मंदाग्नि, रक्तातिसार तथा जीर्ण आम मे उपयोगी है।

नोट—इसी का एक उपभेद विषतिन्दुक (Diospyros Montana) है, जिसे हिन्दी मे-पिन्ना, लोहारी, बंगला में-बनगाब, मराठी मे-कुचलु कहते है। इसका फल विषैला होता है। इसका प्राय: प्रत्येक भाग कडवा और दुर्गन्धयुक्त होता है। इसके कई भेद-उपभेद हैं, जो विस्तार-भय से यहा नहीं दिये जा सकते।

तेऊडी—दे०—निसोथ। तेखुर—दे० तबाखीर।

तेजपात[1] (*CINNAMOMUM TAMOLA*)

कर्पूरादि वर्ग एवं कर्पूर कुल (Lauraceae) की दालचीनी की ही जाति का यह भारतीय भेद है। इसके

[1] यह चीनी एवं सिंहली (सीलोन-लंका) दालचीनी (दारुसिता) का ही एक विशेष भेद भारतीय-दालचीनी है। भावप्रकाशकार ने क्षीर-नीर विवेक न्याय से इन दोनो का भिन्न-भिन्न वर्णन कर उपयुक्त कार्य किया है। आगे दालचीनी का प्रकरण देखिये।

वृक्ष सदैव हरे-भरे, मध्यमाकार के, लगभग २५ फुट ऊचे, कुछ सुगन्धयुक्त होते है। छाल—पतली किन्तु खुरदरी, शिकनदार, गहरे भूरे रग की कुछ कृष्णाभ, दालचीनी जैसी ही किन्तु कम सुगन्धित, बगैर स्वाद की होती है। यह सिलोनी दालचीनी की अपेक्षा कुछ मोटी, तेजी मे न्यून तथा पानी मे पीसने से पिच्छिलतायुक्त (लुआवदार) हो जाती है। यह छाल बाजारो मे सिलोनी दालचीनी के स्थान पर या मिलावट के रूप मे बेची जाती है।

इन दोनो छालो के गुणधर्म मे कोई विशेष अन्तर नही है। यह फीके रग की, स्वाद मे फीकी एव निर्गन्ध होती है। इसे ही 'तज' कहते हैं।

पत्र—वट (बरगद) के पत्र जैसे, प्राय ५-७ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौडे, लट्वाकार, आयताकार या भालाकार, नोकदार, चिकने, चर्मवत्, शाखाओ पर विपरीत या एकान्तर, नीचे से ऊपर तक ३ सिराओ से युक्त, सुगन्धित एव स्वाद मे तीक्ष्ण (चरपरे) होते है। नूतन-पत्र कुछ गुलाबी रंग के होते है।

बाजारो मे ये ही सूखे पत्र तेजपात या तमाल-पत्र के नाम से बेचे जाते है। ये गरम मसाले के काम मे आते हैं। चीनी या सिहली दालचीनी के पत्र भी आकार-प्रकार मे ऐसे ही होते हैं, किन्तु स्वाद मे इसके समान चरपरे नही होते। इसके अतिरिक्त इस वर्ग के और भी ३-४ जाति के पत्र इसमे मिला दिये जाते है, किन्तु वे कम गुण वाले होते हैं।

फूल—¼ इञ्च लम्बे, हल्के पीत वर्ण के, फल—½ इञ्च लम्बे, अण्डाकार, मासल तथा काले रग के होते है। अपक्व शुष्क फलो का 'काला नागकेशर' के नाम से दक्षिण-भारत मे व्यवहार किया जाता है। अर्श के रोगो पर इस नागकेशर का उपयोग विशेष हितकर होता है।

इसके वृक्ष हिमाचल के उष्ण कटिबन्ध स्थित भागो मे, ३ से ८ हजार की ऊचाई तक तथा उत्तर प्रदेश, पूर्वी बगाल एव खासिया, जेन्तिया पहाडियो पर, और ब्रह्मा आदि के जगलो मे पाये जाते हैं।

काश्मीर मे एक ऐसा ही वृक्ष होता है, जिसके पत्र तेजपात के जैसे ही किंतु उससे बडे व मोटे होते हैं। इसे काश्मीरी-पत्र कहते है। पत्तो का महीन चूर्ण नस्य-रूप मे शिर शूल, प्रसेक तथा जुकाम मे प्रयुक्त होता है। यूनानी मे इन पत्तो को वरगतम्त कहते है।

तेजपात (तमालपत्र)
CINNAMOMUM TAMALA NEES

नाम—

स०—पत्रक, पत्र, तमाल-पत्र, पत्र नामक (पत्र-वाचक सभी शब्द इसके पर्यायवाची है)। हि०—तेजपात, पत्रज, सज। म०—तमाल-वृक्ष, तेजपात, रानाआदल। गु०—तमाल-पत्र। बं०—तेजपात, तेजपाता, नालुका। अ०—फोलियो मालाबाथी (Folio Malabathye), Indian Cinnamum। ले०—सिनेमम-तमाल, सि० आब्टयूसिफोलियम (C Obtusifolium), सि० निटिडम (C Nitidum)

रासायनिक सगठन—

पत्तो मे लौग के समान गन्ध वाला, एक उडनशील तैल, यूजीनाल (Eugenol) टर्पीन (Terpene), तथा सिनमिक अल्डीहाइड (Cinnamic aldehyde) होता है।

प्रयोज्याग--पत्र और छाल।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, मधुर रसयुक्त, किंचित् तीक्ष्ण, उष्ण वीर्य, स्वेदल, मूत्रल, मलशुद्धिकर, स्तन्यवर्धक, कफ, वात, अर्श, हृल्लास (उबकाई), अरुचि तथा पीनस पर उपयोगी है। पत्रो का विशेष उपयोग आम प्रकोप तथा कफ-प्रधान रोगो मे होता है। अपचन, उदर-वात, शूल, अतिसार आदि पचनेन्द्रिय के विकारो पर, सर्व प्रकार के कफ-रोगो मे तथा गर्भाशय की शिथिलता दूर करने मे किया जाता है। इसमे आगे गर्भस्राव या गर्भ-पात नही होने पाता।

प्रसवावस्था मे गर्भाशय मे से सब विकार बाहर न आया हो, गर्भाशय शैथिल्य के कारण भीतर रुक गया हो, तो त्रिजात (तेजपात, दालचीनी और छोटी इला-यची) का चूर्ण या क्वाथ दिया जाता है।

यह बालको के वातज, कफज एव आम प्रकोपज सब प्रकार के रोगो मे प्रयुक्त होता है।

(१) ज्वर की पूर्वावस्था मे इसका फाण्ट पिलाने से आम विष दूर होकर, पसीना आता है, मूत्रवृद्धि होती, एव ज्वर की सम्प्राप्ति रुक जाती है। यदि मद ज्वर आता हो तो पत्रो के साथ लताकरंज के भुने हुए बीज का चूर्ण देने से ज्वर-शमन हो जाता है।

(२) कुष्ठ पर—पत्र, कालामिर्च, मनसिल और कमीला समभाग लेकर तैल मे घोटकर ताम्र-पात्र मे भर कर रख दें। ८ दिन बाद इसका लेप कर, थोडी देर तक, प्रतिदिन धूप मे बैठने से ७ दिन मे सिध्म कुष्ठ (सेहुआ, सफेद छीप Pityriasis Versicolor), और १ मास मे किलास कुष्ठ (श्वेत कुष्ठ Leucoderma) दूर हो जाता है। (चरक चि० अ० ७)

(३) श्वास पर—पत्र और छोटी पीपल के चूर्ण को, शहद या मुनक्के की चाशनी मे मिलाकर चटाते है।

(४) मूत्र तथा आर्तव-प्रवर्तनार्थ—पत्तों का सिरका मे पीसकर उदर तथा पेडू पर लेप करने और आभ्यन्तरिक उपयोग भी होता है।

(५) नेत्र-रोगों पर—फूली, धुंध, दृष्टिमांद्य और अर्म (नाखना) पर पत्तो को अकेले या अन्य औष-धियो के साथ सुर्मा जैसा महीन पीसकर नेत्रो मे लगाते है।

(६) काख और जाघ (वक्षणस्थ) दुर्गन्ध दूर करने के लिए पत्रो के महीन चूर्ण को सिरका मे मिला लेप करते हैं। वस्त्रो को सुवासित करने या कीटो से रक्षा करने के लिये उनमे पत्तो को रखते हैं। मुख-दौर्गन्ध्य निवारणार्थ इसे मुख मे रखकर चबाते है।

छाल—शोथघ्न एव कफ-विकार, कास, श्वास तथा सधि-पीडा नाशक है।

(७) शोथ पर—देशी एन्टीफ्लोजिस्टन–छाल को पानी मे पीस कर, खूब लुआबदार हो जावे, तब मोटा लेप कर, ऊपर से वस्त्र-पट्ट बाध देने से सूजन उतर जाती है। ग्रन्थी या गाथ जो पकती न हो, उस पर उक्त रीति से बाधने से शीघ्र पक जाती है। यदि गाठ पक्व हो या फूट गई हो, तो इसका प्रलेप उसके मुख पर न कर, मुख के निम्न-भाग पर चारो ओर करने से मुख द्वारा राध बह कर गाठ बैठ जाती है। इस प्रकार पक्व, अपक्व व अर्धपक्व चाहे जैसा ग्रन्थिशोथ हो यह प्रलेप उत्तम लाभकारी है। सधिपीडा पर भी यह लेप लगाया जाता है।

(८) सिर-दर्द पर—पत्तो की डठल पर या छाल ६ मा० पानी के साथ महीन पीस कर (यह १ मात्रा है) सिर मे जहा दर्द हो, वहाँ मोटा लेप चढादे। ३/२ घटे बाद, जब लेप सूखने लगे, उसे हटा दे।

(९) कास, प्रतिश्याय और श्वास पर—इसकी छाल और छोटी पीपल के चूर्ण को शहद के साथ सेवन करने से खासी मे लाभ होता है, दुष्ट कफ की उत्पत्ति रुक जाती है, एव प्रतिश्याय भी दूर होता है।

श्वास-प्रकोप हो, तो उक्त दोनो के चूर्ण के मिश्रण को अदरक के रस और शहद के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

नोट—पत्र-चूर्ण या माजून के रूप में २-४ मा० तक। क्वाथ के लिये ३ से ४ मा० तक।

अधिक मात्रा मे ये बस्ति और फुफ्फुस को हानि-कर हैं। हानि-निवारणार्थ-मस्तंगी और बिही का शर्बत देते हैं।

तेजबल (*ZANTHOXYLUM HOSTILE*)

तेजवल
— ZANTHOXYLUM ALATUM ROXB

जम्बीर-कुल (Rutaceae) के होते हुए भी इसके कुछ वडे मध्यमाकार के वृक्ष होते हैं। इसके तने और छोटी वडी शाखाओ पर मोटे मोटे काटे से होते है। ये कांटे तीक्ष्ण नोकवाले नही होते। छाल–काली, पीताभ व पतली होती है। पत्र–गूलर-पत्र जैसे किंतु छोटे छोटे होते है। पुष्प—नींबू के पुष्प जैसे श्वेत वर्ण के गुच्छो मे फल–बहुत छोटे गोल, कालीमिरच जैसे गुच्छों मे आते है।

नोट-(१) इसकी लकडी बहुत सुदृढ़ होती है। इसके ही छोटे बडे डडे, गोल, चिकने बनाकर हरिद्वार के वाजारों में बेचे जाते है। बद्रीनाथ के यात्री इन डडों को लेकर यात्रा करते हैं। औषधि घोटने के खरल के मूसल भी इसके बनाते हैं।

(२) इसके फलों को तुम्बरू (नेपाली-धनियां) तथा छाल को तेजवल कहा जाता है, उसके वृक्ष इनकी अपेक्षा बहुत छोटे झाडीदार होते है। उन्हें भी तेजवल कहते हैं। उनका वर्णन तुम्बरू के प्रकरण मे पीछे देखिए।

इसके वृक्ष हरिद्वार एव बद्रीनाथ के बीच के जगलो मे पाये जाते हैं। वृक्ष से एक प्रकार का निर्यास (गोद) भी निकलता है।

नाम—

सं०-तेजोवती, तेजस्विनी। हि०-म०-ब०-गु०-तेजबल। अं०-टुथएकट्री (Toothache tree)। ले०-झैंथोक्सायलम होस्टाइल।

गुणधर्म व प्रयोग–

तीक्ष्ण (चरपरी) कडुवी, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, अरुचिकर, कठ-शुद्धि-कारक, त्रिदोष-नाशक, तथा कास, हिक्का, मन्दाग्नि, अर्श, मुख-रोग व दन्त-रोग आदि मे उपयोगी है।

इसकी छाल लाल मिरच जैसी चरपरी होने से बद्रीनाथ की ओर के ग्रामवासी इसे लाल मिरच जैसे ही उपयोग मे लाते हे।

अफीम के विप पर–इसकी छाल या लकडी को पानी मे घोट छानकर, उस पानी को १ पाव तक, वार वार पिलाते है।

जख्मो पर—इसके गोद को पीसकर बुरकते रहने से व्रण-रोपण होता हे।

दन्तशूल पर–इसकी छाल का मजन करते है। या ताजी लकडी की दातौन करते हे। शीघ्र ही शूल नष्ट होता है। इस विषय मे इसकी वडी प्रशसा की जाती है। इसीसे अग्रेजी मे दतशूल-वृक्ष (टुथ एक ट्री) नाम दिया गया है।

वातव्याधि पर इसके छालके चूर्ण १ सेर को गोदुग्ध ८ सेर मे पकावे। जब खोया (मावा) हो जाय तो उसमे त्रिकटु हर्र, सोया, वायविडङ्ग, चित्रक, पीपलामूल अजमोद, वच, कूठ, असगध व देवदारु का चूर्ण तथा

घृत ५-५ तो मिला गोलिया बना लें। मात्रा—६ मा तक, घृत व मधु के सेवन से सर्व वातव्याधिया नष्ट होती है। (भा. भै र)

विशिष्ट योग—

छाल के योग से नपुंसकता-हर पारद भस्म का एक प्रयोग वनौषधि-चन्द्रोदयकार ने दिया है। उसे हम साभार यहा सक्षेप मे उद्धृत करते हैं—

एक लोहे की चम्मच मे ४ तो सरसो तेल, कोयले की आच पर—खूब गरम कर उसमे १ तो शुद्ध पारा, डाल नीचे उतार कर उसे पत्थर के खरल मे डाल दें। इसी समय एक दूसरी चम्मच मे १ तो बग रख,कोयले की आच पर रख पिघल जाने पर उसे भी खरल मे डाल, बहुत शीघ्रता के साथ अच्छी तरह घोटें। दोनो एक रूप डली के समान होजाने पर उसे साफ कपडे से अच्छी तरह पोछ ले।

फिर इसकी ताजी छाल २० तो० को लुगदी बना उसमे उक्त डली को रख, ऊपर से श्वेत कपडे की दो सेर तक कतरन लपेट कर गोला सा बना, रात्रि मे निवात स्थान मे रख उसमे आग लगा दे। तीसरे दिन, गोले का जला हुआ कपडा हलके हाथ से धीरे-धीरे दूर कर अन्दर की भस्म को निकाल लें। इस क्रिया मे बग कच्ची रहकर अलग बैठ जाती है, और पारे की बतासे जैसे सिली हुई भस्म अलग जम जाती है। इस निकाल कर सुरक्षित रक्खें।

सेवन-विधि—एक छुहारे को बीच मे से चीरकर, गुठली निकालदे, तथा १ रत्ती भस्म को छुहारे मे भर, उस पर कच्चा सूत लपेट कर, २ सेर गोदुग्ध मे, दोलायन्त्र की विधि से पकावें। दूध रबडी जैसा हो जाने पर, उसमे ३ तो देशी शक्कर डालकर उतार ले। पारद भस्म वाले छुहारे को खाकर, ऊपर से वह दूध पीलें। इस प्रकार २१ दिन तक यह प्रयोग करे। जब तक यह प्रयोग चले, स्नान, तैल, मिरची, खटाई व नमक का परित्याग करें। घी दूध का सेवन विशेष करे। साथ ही निम्नाकित तिला की, प्रति दिन रात्रि मे हलके हाथ से इन्द्रिय पर मालिश करें, ऊपर से, खाने का पान, गरम कर बाध दिया करे

तिला—उत्तम कस्तूरी, केशर १-१ मा, कालीमिर्च, जुन्दवेदस्तर, हीग, बीर बहूटी ५ ५ मा और बिनौले की मगज ७ मा सबको खूब खरल कर, उसमे ५ तो. चमेलीतैल को मिलाकर रख लें। उसमे से १०-१५ बूदो की मालिश करे। २१ दिन तक इन दोनो प्रयोगो को करने के बाद, पूर्ण चन्द्रोदय या सिद्ध मकरध्वज के समान किसी पौष्टिक रसायन का सेवन कर लेने मे कष्ट-साध्य नपुंसकता भी दूर हो जाती है। कामशक्ति अत्यन्त वेगवती हो जाती है।

तेलिया गर्जन—दे०—गर्जन मे। तेलिया देवदार—दे०—चीड मे। तैलपर्णी—दे०—यूकेलिप्टिस मे।
तोडिस—दे०—तोरी (सरसो मे, सफेद सरसो)

तोदरी (Lepidium Iberis)

राजिका या सर्षप-कुल (Cruciferae) के एक क्षुद्र क्षुपो के क्षुद्र फलियो के ये प्रसिद्ध बीज श्वेत, लाल और पीले भेद से तीन प्रकार के पाये जाते है।

(१) इनमे पीली तोदरी, तीनो मे सर्वश्रेष्ठ गुण-वाली मानी जाती है। ऊपर के शीर्षक मे इसीका लेटिन नाम (लेपिडियम इबेरिस) दिया गया है। इस खडे वर्षायु क्षुप के, पुष्प—छोटे, श्वेत, फलिया छोटी तथा फलियो मे पीले बीज होते है। ये विशेषत पर्शिया से आते है। आजकल पजाब मे भी यह बोयी जाती है। इसे अग्रेजी मे पेपर ग्रास (Pepper grass) या पेपरवर्ट (Pepper wort) कहते है। दक्षिण यूरोप से साईबेरिया तक तथा ईरान और पजाब मे भी यह बोई जाती है।

(२) तोदरी-सफेद के क्षुप खडे, सामान्यत बहु-वर्षायु १ से २ फुट ऊचे आभार स्थान पर न्यूनाधिक काष्ठमय, काण्ड कठोर, किंचित फैली हुई शाखाओ से युक्त; पत्र—लम्बगोल, रेखाकार, नोकरहित, अखण्ड,
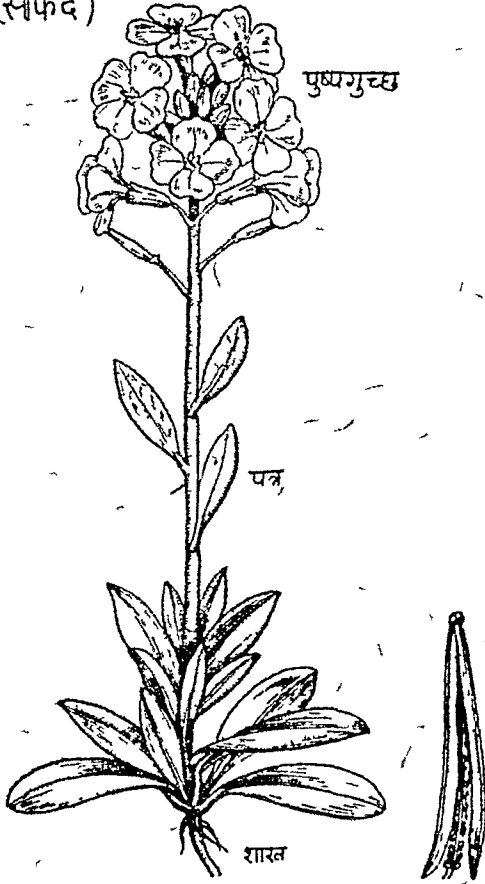
MATTHIOLA INCAVA ROXB

मुलायम, दोनो ओर सफेद धूसर वर्ण के, पुष्प—बैंजनी या रक्ताभ गुच्छो मे,प्राय बडी पखुडिया, सिर पर चौडी; फली—दोनो ओर से खुलने वाली ३–४ इंच लम्बी, जिनमे श्वेत बीज छोटे २ भरे रहते है। ये बीज मसूर के दाने जैसे और चपटे चौडे स्वाद मे कडुवे होते है।

यह पश्चिमी भूमध्य सागर की ओर विशेष होती है। अब भारत के बाग बगीचो मे भी बोई जाती हैं। इसे अंग्रेजी मे Giliflower (गिलीफ्लावर) तथा लेटिन मे मेथिओला इन्केवा (Mathiola Incava) कहते है।

यह सफेद तोदरी, निम्नाँकित लाल तोदरी की अपेक्षा रग मे केवल कुछ हलकी लाल होती है। यह तीनो तोदरियो मे आकार मे कुछ बडी और अधिक चपटी होती है। इसका एक भूरा भेद कभी कभी तोदरी स्याह (काली तोदरी) के नाम से बाजार मे मिलता है।

(३) तोदरी लाल या सुर्ख—इसके झाडीदार क्षुप, तना कोमल, शाखाए कुछ रोमश, ऊपर को चढने वाली, पत्र—अखण्ड, नुकीले, बरछी के आकार के, पुष्प—बडे, मधुर, सुगन्ध युक्त, मजरी मे, नारगी जैसे पीले रग के, फली—दोनो ओर से खुलने वाली, १॥–२॥ इ च लम्बी होती है, जिनमे सुर्ख बीज भरे रहते है।

यह यूरोप की है, वर्तमान मे भारत के बागो मे बोई जाती है।

इसे बंगला मे–खुएंगी, अंग्रेजी मे—(Bleeding heart) तथा लेटिन मे—(Cheiranthus Cheiri) चिरैंथस-चेरी कहते है।

रासायनिक सघटन—

उक्त प्राय तीनो प्रकार के बीजो मे एक तिक्त तत्व (Lepidin) तथा उडनशील तैल और गधक होता है। लाल तोदरी मे चेरी-नाईन (Cheirinine) नामक एक उपक्षार ग्लुकोसाईड आदि पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—बीज।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, मधुर, तिक्त, मधुर विपाक, उष्णवीर्य, वातपित्तशामक, कफनि सारक, वृष्य, वृ हण, वल्य, वाजीकरण, स्तन्यजनन व मूत्रल है।

इन तोदरियो के विशेष प्रयोग यूनानी हकीम लोग किया करते हैं। कफनि सारक एव पौष्टिक गुणो के कारण ये अन्यान्य प्रयोगो मे मिलाई जाती है। कही २ वैद्यलोग भी इनका प्रयोग करते है।

(१) वाजीकर, वृष्य, वृ हण एव स्तन्य–जननार्थ अकेले इसका चूर्ण, या इसके साथ अन्य औषधि-द्रव्य मिलाकर दूध के साथ देते हैं। शतावरी के समान यह उत्तम स्तन्य जनक हैं। स्तन्य या माता की दुग्धवृद्धि के लिये बीज-चूर्ण और शक्कर ६-६ मा एकत्र मिला, दूध के साथ भी सेवन कराते है। वृष्य एव वाजीकरणार्थ इसे पोटली मे बाधकर दूध मे डाल देते है, फिर दूध को पकाकर, मिश्री मिला पिलाते है। इससे शुक्रवृद्धि, कामोत्तेजना होती, क्षुधा बढती तथा वात-विकार भी दूर होता है। शुक्रवर्धक, वृष्य आदि औषधिया प्राय.

विवन्धकारक होती है, किन्तु इसमे यह दोष नही है। इसके प्रयोग से मल की भी शुद्धि होती है।

(२) शुष्क कास, तथा कृच्छ्र श्वास एव श्वास नलिका-प्रदाह मे—इसका उपयोग फाट के या अवलेह के रूप मे किया जाता है। इसमे छाती मे जमा हुआ शुष्क कफ ढीला होकर निकल जाता है, मूत्र का परिमाण बढता है। यदि ज्वर हो, तो वह भी कम हो जाता है। बीजो के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से भी उपरोक्त लाभ होता है।

शोथ, व्रण एव सविवात पर—स्थानीय या सर्वांग शोथ पर तथा कारवकल जैसे फोडो पर इसका लेप लाभकारी होता है।

(४) विषप्रकोप पर—विषैले जतुओ के एव पुराने विष-प्रकोप पर—१ तो बीज का फाट शराव मिलाकर पिलाते है। इसी प्रकार यह फाण्ट कर्कस्फोट (केंसर Cancer) मे भी व्यवहृत होता है। (गा औ र)

नोट—मात्रा ६ मा से १ तो० तक अधिक मात्रा मे यह आमाशय के लिये कुछ हानिकर तथा दाह एवं घबराहट पैदा करती है। हानिनिवारणार्थ जरिश्क (दारुहल्दी देखें) का फाण्ट देते है।

पीली व सफेद तोदरी के लिये सफेद बहमन, तथा लाल के लिये लाल बहमन प्रतिनिधि रूप मे लिये जाते है।

इसके फूल हृदय के लिये पौष्टिक एव ऋतुस्राव-नियामक माने जाते है। फूलो को जैतून या तिल के तैल मे पकाकर, उस तैल का उपयोग मालिश एवं बस्ति के रूप मे किया जाता व पक्षवध और नपुंसकता मे भी व्यवहृत होता है।

तोरई (Luffa Acutangula)

शाक-वर्ग एव कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की इस खूब फैलने वाली लता के पत्र पचकोण विशिष्ट, दन्तुर, लगभग ६ इच व्यास के, पुष्प—हलके पीतवर्ण के, फल—३-५ इच लम्बे, ऊपरी पृष्ठ भाग पर उभरी हुई धारीदार रेखाओ से युक्त, गुच्छों मे या अलग भी लगते है। कडवी तोरई के फलो का अपेक्षा यह फल बडे होते हैं। इसे खर्रा तोरई भी कहते हैं।

यह भारत के अनेक भागो मे, शाक के लिये, बागो मे या खेतो मे भी, ज्वार, मक्का के साथ, वर्षारभ मे बोई जाती है।

नोट—इसकी तीन जातियों में से कडवी तोरई (Luffa Amura) और घिया तोरई (Luffa Aegyptiaca) का वर्णन यथास्थान इस अङ्क के दूसरे भाग में दिया जा चुका है। यहां प्रसगानुसार इसकी तीसरी जाति का जो विशेषत शाक रूप से व्यवहृत होती है, उसी का वर्णन किया जाता है।

नाम—

स०—धामार्गव राजकोशातकी, धाराफला इ०। हि०—तोरई तरोई, तोरी, झिगा। म०—दोडकी, शिराली। गु०—तुरिया। ब०—घोपालता। अं०—(Ribbed luffa)
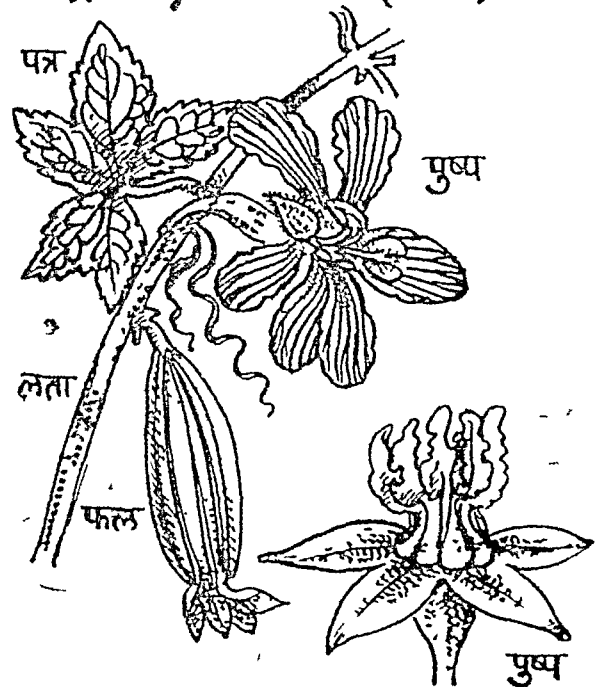
झिंगा तोरई

Luffa acutangula Roxb.

रिब्डलूफा, (Towel gourd) टाबेलगार्ड ले०—लूफा, एक्युटेंगुला।

गुण धर्म व प्रयोग –

मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, पित्तशामक, कफवात-वर्धक, हृद्य, मृदुरेचक, दीपन, कुछ मूत्रल, कृमिनाशक, तथा रक्तपित्त, ज्वर, कुष्ठादि-विकारो मे पथ्यकर व उपयोगी है।

उष्ण प्रकृति वालो को एव पित्तजव्याधियो मे, तथा सुजाक, श्वास, रक्तमूत्र, अर्श आदि मे इसका शाक विशेष पथ्यकर एव हितकर है। घिया तोरई की अपेक्षा यह शीघ्र पाकी होती है। शाक बनाते समय इसके ऊपर का मुलायम छिलका नही निकालना चाहिये। तथा बाष्प पर उबाल कर इसे बनाना उत्तम होता है।

इसके जो कडे बीज हो उन्हे निकाल देना चाहिये। वे विरेचक एव वामक होते है। इसके पत्तो का मरहम बनाकर व्रणो पर लगाते हे, उनका शीघ्र रोपण होता है। इसकी जड को रेडी-तैल मे पकाकर, उसे बगल एव जाघ की सधियो मे होने वाली बदगाठ पर लगाते है। पत्तो को पीस कर अर्श पर लगाते है। अश्मरी (पथरी) पर—इसकी जड को गोदुग्ध मे या शीतजल मे पीस छान कर प्रात पिलाते है। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। नेत्र-पलको की फुंसियो पर पत्तो का स्वरस नेत्रो मे डालते हैं।

तोरी–दे०—सरसो मे (सफेद सरसो)

त्रायमाण नं० १ (*GENTIANA KURROO*)

गुडूच्यादिवर्ग एव भूनिम्ब--कुल (Gentianaceae) के इसके छोटे-छोटे क्षुप ६-७अ गुल ऊ चे, पहाडी चट्टानो के बीच-बीच के गड्ढो मे मोटे मूलस्तभ (Root Stock) वाले होते हैं। पत्र—मूल से निकले हुए या मूलीय कोष-मय आधार वाले, ३-५ इंच लम्वे, रेखाकार, कम चौडे होते है। जड के समीप के पत्र, काण्डपत्रो की अपेक्षा वडे होते हैं। पुष्प—शरद ऋतु मे, मध्य भाग से निकले हुए लगभग ६ इच लम्वे पुष्पदण्ड पर नीले रग की श्वेत चित्तिया या बिन्दुओ-युक्त सुन्दर २-३ लगते है। फलिया—१८-मि मि लम्वी, ५ मि मि चौडी, सामान्यस्फोटी प्रकार की (Capsules) होती है। बीज—चौडाई की अपेक्षा दुगुने लम्वे होते है। भौमिक-काण्ड (Rhizoma) बेलनाकार, व्यास मे २ से २।। से मी अग्रभाग पर वलयाकार रेखाओ से युक्त होता है।

मूल—हलके पीले रग का, चतुष्कोण, जमीन मे ४-६ अ गुल गहरा जाता है। इसकी जड़ पर तथा भौमिक काड के अग्रिम भाग को छोड कर, शेष भाग पर लम्वी झुर्रीदार रेखाये होती है। उक्त भौमिक काड एव मूल बाह्यत हलके पीले या भूरे रग से लेकर गाढे भूरे रग के होते है। चिकित्सा मे इसके भौमिक कांड या तने तथा मूल का व्यवहार किया जाता है। इनके छोटे-छोटे टुकडे बाजार मे मिलते हैं।
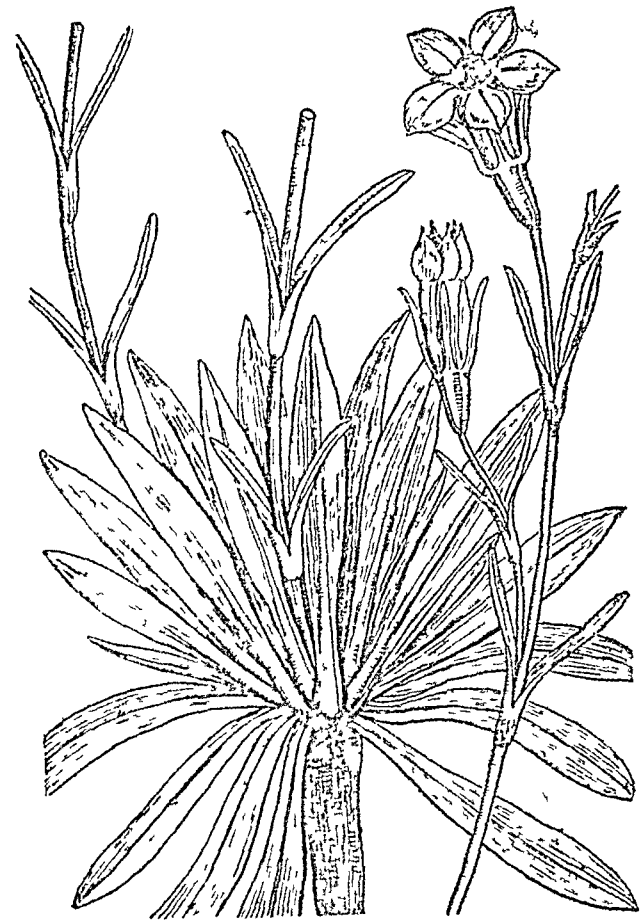
गाफिस देशी
GENTIANA KURROO ROYLE

त्रायमाण बूटी के विषय मे बहुत मतभेद है। सुप्रसिद्ध विज्ञ चिकित्सको द्वारा स्वीकृत त्रायमाण के विषय का ही वर्णन हम प्रस्तुत प्रसङ्ग मे कर रहे है। भिन्न-भिन्न बूटिया जो त्रायमाण नाम से व्यवहृत हैं उनका भी वर्णन प्रसगानुसार यही पर आगे किया जाता है।

प्रस्तुत प्रसङ्ग का त्रायमाण ही कुटकी तथा ईरानी विदेशिय जेंशियन (गाफिस) नाम से ईरान मे होने वाला जेंशियाना डेहारिका (Gentiana Daharica) या डेलफीनम जलील-(Delphinium zalil) के स्थान पर बहुधा प्रयोग मे लाया जाता है। वस्तुत यह बूटी ईरान मे पाई जाने वाली हकीमो की प्रसिद्ध बूटी गाफिस की भारतीय उपजाति है। अत इसे भारतीय या देशी गाफिस कहा जाता है। काश्मीर मे इसका स्थानिक नाम 'त्रामाण' है। तथा यही आयुर्वेदोक्त 'त्रायमाण' कहा जा सकता है। पजाब के बाजारो मे यह इसी नाम से प्राप्त होता है।

यह बूटी काश्मीर एव उत्तर पश्चिम हिमाचल प्रदेशो मे ५ से ११ हजार फुट की ऊचाई पर, पहाडी ढालो पर बहुतायत से पाई जाती है।

तिक्त, सारक आदि गुण तथा ज्वर, गुल्म-आदि मे विशेष लाभदायक होने के कारण एव पर्वतीय स्थानो पर होने से इस अत्यन्त उपयोगी द्रव्य ही के प्राचीन त्रायमाण होने की अधिक सभावना है।

चरक के तिक्तस्कन्ध मे तथा सुश्रुत के लाक्षादि गणों मे इसका उल्लेख है। तथा चरक के चि स्थान अ ३ मे ज्वर पर, अ ४ मे रक्तपित्त पर, अ ५ मे गुल्म पर, अ ७ मे कुष्ठ पर, अ ८ मे राजयक्ष्मा पर, अ ९ मे उन्माद पर, अ, १५ मे ग्रहणी पर, अ १६ मे पाडुरोग पर, अ १८ मे कास-रोग पर, अ १९ मे अतिसार पर, अ २१ मे विसर्प पर व अ ३० मे स्तन्य-शुद्धि के लिये इसका योजना अन्यान्य द्रव्यो के साथ की गई है।

नाम—

स —त्रायमाण, त्रायन्ती, गिरिसानुजा, बलभद्रा। हिं०—त्रायमाण, करू, नीलकठ, तीता, कडू इ। यूनानी—गाफिस। म त्रायमाण। अ.—Indian Gentian root। ले०-जेंशियाना कुरू।

रासायनिक सघटन—

इसमे एक तिक्त द्रव्य, तथा एक राल के समान पीले रङ्ग का स्वादहीन पदार्थ २० / पाया जाता है। इसमे जेंशियोपिरिन (Gentiopierin) नामक तिक्त द्रव्य, जो विदेशी जेंशियन मे पाया है, वह नही होता। इसके ताजे मूल से वह शायद प्राप्त हो सकता है।

इसके अतिरिक्त इसमे जेंशियानिक एसिड, पेक्टिन आदि पाये जाते हैं। इसमे टेनिन नही होता।

प्रयोज्याग—पचाग और मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफवात-शामक, पित्तसशोधक, दीपन, आमपाचन, पित्त-

सारक, अनुलोमन, रक्तशोधक, कृमिघ्न, शोथहर, कटु-पौष्टिक, ज्वरघ्न, मूत्रल, स्तन्यशोधन, स्वेदल, कुष्ठघ्न, व्रण शोधन व रोपण आदि गुणधर्म विशिष्ट है।

अग्निमाद्य, आमदोष, यकृद्विकार, अर्श, आध्मान, शूल, गुल्म, उदर-रोग, रक्तविकार, श्रमविकार, मूत्र-कृच्छ्र, कष्टार्त्तव, पाडु तथा उत्तरोत्तर दौर्बल्य मे प्रयुक्त होता है।

यह कटुपौष्टिक है। तथा इससे आमाशयिक रसो की अभिवृद्धि होने से क्षुधा वढती है। अधिक मात्रा मे यह विरेचक है। स्वाद और गन्ध मे अप्रिय न होने से अनेक बल्य एव पाचक औषधियो के साथ इसका प्रयोग किया जाता है। टेनिन इसमे न होने से यह ग्राही भी नही है। अत. ज्वर मे यह विशेष लाभकारी है।

१ ज्वर पर—इसके साथ कुटकी, मोथा, लाल-चन्दन-खस, सारिवा, पटोलपत्र, मुलैठी और महुये के फूल १-१ तो. लेकर, क्वाथ वनाकर, ठडा कर उसमे शहद मिला पीने से कफपित्त ज्वर नष्ट होता है। (ग० नि०)

२. हारिद्रक सन्निपात—(पाण्डु ज्वर)—इसके साथ मुलैठी, पीपलामूल, मोथा, अडूसा, गिलोय, नीम की छाल और चिरायता, इनके क्वाथ को ठडा कर शहद मिला, सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है। (ग० नि०)

३ संततादि ज्वरो—मे वातादि दोषो की शांति के लिये इसके साथ कुटकी, अनन्तमूल और सारिवा-क्वाथ सेवन करावे। (व० से०, यो र)

४ पैत्तिक ज्वर पर—इसके साथ, पित्तपापडा, खस, कुटकी, नीम की छाल और धमासा, मिला क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला पिलाने से लाभ होता है। (यो० चि०)

इसके साथ—मुलैठी, पिपरामूल, चिरायता, मोथा, महुए के फूल और वहेड़ा, मिला, क्वाथ सिद्ध कर उसमे खाड मिला सेवन करावें। (भै० र०)

५. पैत्तिक गुल्म पर—इसे ८ तो की मात्रा मे लेकर लगभग १॥ सेर पानी मे पकावें। पाव सेर तक पानी शेष रहने पर छान लें। रोगी को प्रथम विरेचनादि द्वारा शरीर-शुद्धि करा देने के पश्चात् उक्त क्वाथ मे समभाग दूध मिलाकर मन्दोष्ण पिलाकर ऊपर से यथा शक्ति उष्ण दूध पिलावे। पित्तज गुल्म की निवृत्ति होती है। (वा भ चि स्था १४, च चि. अ० ५)

६ पैत्तिक शूल पर—इसके साथ पीपरामूल, निसोत, मुलैठी, सोठ, अमलताम हरड, मुनक्का और पियावासा मिला क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावे। (वृ नि. र)

७ विसर्प पर—इसके साथ पटोल-पत्र, पित्तपापडा, धमासा और कुटकी को जवकुटकर रात को पानी मे भिगो दे। प्रात मन्दाग्नि पर पकाकर छानकर सेवन करे। द्वन्द्वज, विषम एवं अन्य सर्व प्रकार के विसर्प नष्ट होते है। यदि इसमे शुद्ध गूगल मिला लिया जावे तो और भी अधिक गुणकारी होता है। (भा भै र)

८ स्तन्य-शुद्धि के लिए—यदि बालक की माता का दूध भारी हो तो उसे इसके साथ गिलोय, नीम की छाल, पटोल, एव त्रिफला मिला क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावे। (च० स० चि० अ० ३०)

विशिष्ट योग—

९ विद्रधि, गुल्म, विसर्प आदि पर—त्रायन्त्यादि क्वाथ—इसके साथ त्रिफला, नीम-छाल, कुटकी और मुलैठी १-१ भाग निसोत और पटोल ४-४ भाग तथा छिलके रहित मसूर ८ भाग लेकर क्वाथ कर घृत मिला सेवन से विद्रधि, गुल्म, विसर्प, दाह, मोह, मद, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, वमन, हृद्रोग, रक्तपित्त, कुष्ठ और कामला का नाश होता है। (वा० भ० चि० अ० २३)

१०. त्रायमाणाद्य घृतम्—त्रायमाण १६ तो को १० गुने जल मे पका ३२ तो जल शेष रहने पर, छान ले। कल्कार्थ-कुटकी, मोथा, त्रायमाण, धमासा, मुनक्का, भुई आमला, खस, जीवन्ती, लाल-चन्दन, और नीलोफर १-१ तो. जल के साथ पीस लें। पश्चात् उक्त क्वाथ मे यह कल्क तथा गोघृत, आमले का रस और गोदुग्ध ३२-३२ तो मिला, यथा-विधि घृत सिद्ध कर लें।

मात्रा-३ तो. सेवन से पित्तज व रक्तज-गुल्म, विसर्प, पित्त-ज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठ नष्ट होता है। (च०स०चि०अ० ५०)

११ तिक्तक घृतम्-त्रायमाणा, पटोल पत्र, कुटकी, नीम-छाल, दारु हल्दा, पाठा, धमासा, पित्त पापडा, ४-४ तो जौकुट कर ६३ सेर जल मे पकावे, ६४ तो पानी शेष रहने पर, छान कर उसमे त्रायमाण, मोथा, चिरायता, इन्द्रजौ, पीपल, और चन्दन १-१ तो का कल्क तथा ५० तो घृत मिला कर घृत सिद्ध कर ले। यह घृत-पित्त कुष्ठ, वीसर्प, पिटिका, दाह, तृष्णा, भ्रम, खुजली, पाडु, नाडीव्रण (नासूर) अपची (गण्डमाला), विस्फोटक, विद्रधि, गुल्म, शोथ, उन्माद, मद, हृद्रोग, तिमिर, व्यग, ग्रहणी, अर्श व रक्तपित्तादि नाशक है। (ग नि)

१२ त्रायमाणासव–कास, श्वासदिनाशक। त्रायमाण, कायफल, दन्ती, पोहकरमूल, कटेरी, (छोटी), धमासा, रसौत (रसाजन), वडी कटेरी, पीपलामूल, आमला, वायविडग, भारगी, मकोय, एलुवा, हरड, कचूर व इन्द्रायण प्रत्येक ३२-३२ तो जौकुट कर, १ मन १२ सेर जल मे पका, १३ सेर क्वाथ जल शेष रहने पर छान कर, शुद्ध सधान-पात्र मे भर, ठंडा होने पर उसमे शहद १५ सेर, धाय के फूल १ सेर, छोटी-पीपल १६ तो तथा इलायची (वडी), दालचीनी, तेजपात और नाग केसर ८-८ तो चूर्ण कर मिलावें। मुख-सधान कर, १ मास पश्चात् छान ले। १ से २ तो तक समभाग जल मे मिला सेवन से कास, श्वास, हृद्रोग, गुल्म, अर्श और सन्निपात ज्वर नष्ट होता है। आसवारिष्ट के अन्य रोग हमारे वृ०आसवारिष्ट सग्रह मे देखें।

१३ घनसत्व–इसका घनसत्व (Ext gent Ind.) भी निकाला जाता है। इस सत्व की सुरक्षा के लिये इसे ठडे स्थान मे रखते तथा नमी से बचाते है। मात्रा-२ से ८ ग्रेन (१ से ४ र०) है। यह भी उक्त विकारो मे पूर्ण लाभ पहुचाता है।

नोट – मात्रा-चूर्ण ४ से १२ रत्ती तक। स्वरस १-२ तो०। अधिक मात्रा मे देने से यह अधिक दस्त लाता तथा प्लीहा को भी हानिकारक है। विदाहयुक्त शोथ पर इसे जौ के साथ पीस कर लेप करे।

त्रायमाण नं० ९ (*GENTIANA DAHURICA*)

यह भी भूनिंब-कुल (Gentianaceae) का है। इस क्षुप के पत्र छोटे, पीताभ, पुष्प–चमकीले, पीतवर्ण के, मृदु रोमश तथा निम्न पृष्ठ भाग पर कोमल कटकयुक्त, फल-छोटे-छोटे, त्रिकोष्ठयुक्त, सिरा जाल से व्याप्त, नोकदार, डंठल युक्त, बीज-हलके-भूरे रग के, कोण युक्त होते हैं। मूल–लम्बी होती है।

यह बूटी विशेषत अफगानिस्तान, तथा पर्शिया के वदगीज, खोरासान आदि देशो मे बहुतायत से पैदा होती है। भारत के काश्मीर तथा पजाब की ओर भी यह पैदा होती है।

इस बूटी का अन्य भेद वत्सनाभ-कुल (Ranunculaceae) का है। नाम उक्त न २ के और इसके प्राय समान ही हैं–

हिन्दी मे–त्रायमाण, गाफिस, असवर्ग, गुल जलील आदि, किंतु लेटिन मे उक्त न० २ का जशियाना डाहुरिका और इसका डेलफीनियम जलील (Delphinium zalil) है।

इस बूटी के बहुवर्षायु क्षुप १–२ फुट ऊचे, कुछ जमीन पर फैले हुए से होते है।

पत्र–मूल से सम्वन्धित २ से ६ इच व्यास के ५ से ९ विभाग-युक्त, पुष्प–हलके नीले, लगभग ३/४ इच लम्बे, अनेक शाखा युक्त मजरी मे, फल–त्रिकोष्ठयुक्त होते है।

वाजार मे इसके तथा उक्त न० २ के भी पचाङ्ग के मिश्रित टुकडे मिलते है। इनका रग किंचित् हरिताभ पीतवर्ण का, पुराना होने पर श्याम वर्ण का होता है। ताजे टुकडो मे शहद जैसी सुगध आती है। इन्हे पानी मे डालने से पानी पीला व कडुवा हो जाता है। पहले रगरेज लोग इसे कपडे रगने के काम मे लाते थे। विशेषत रेशमी कपडे इससे रगे जाते थे।

एक अन्य विदेशीय त्रायमाण और होता है, उसे भी गाफिस तथा लेटिन मे जेशियाना ओलिव्हिएरी Gentiana Olivieri कहते है। कोई कोई इसे ही वा–
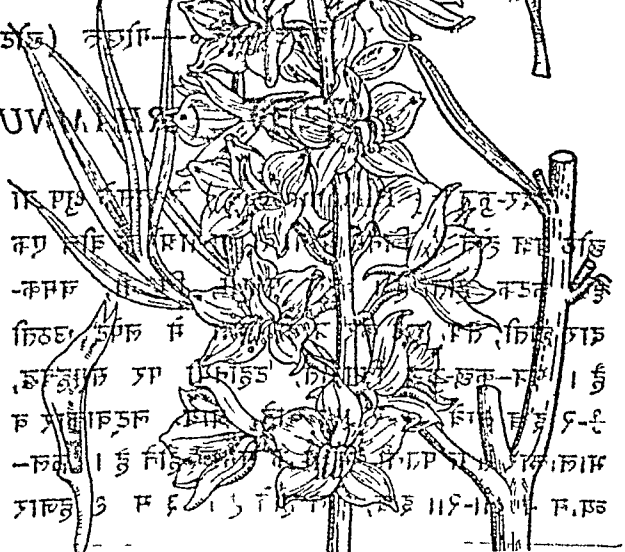
उष्ण-वेदनायुक्त शोथ पर—इसके क्वाथ में जौ का आटा मिला, पुल्टिस बनाकर बांधते हैं।

प्लीहा-वृद्धि, जलोदर तथा कामला-रोग पर—इसे मुनक्का के साथ उबाल कर, ३ दिन पिलाते हैं लाभ होने पर और भी अधिक दिन तक इस प्रयोग को जारी रखते हैं। अथवा—इसे २। तो० की मात्रा में पीसकर शहद के साथ चटाते हैं।

रक्तपित्त पर—इसके क्वाथ तथा इसी के कल्क में गोघृत को सिद्ध कर उसे सेवन कराते हैं। घृत में कल्क चतुर्थांश तथा क्वाथ ४ गुना लिया जाता है। ऊर्ध्व-रक्तपित्त में—इसके चूर्ण में शहद और मिश्री अधिक प्रमाण में मिला विरेचनार्थ देते हैं।

ज्वर और विसर्प में—इसे दूध के साथ विरेचनार्थ देते हैं।

पैत्तिक गुल्म पर—इसे १ तो० तक लेकर क्वाथ सिद्ध कर उसमें समभाग गरम दूध मिला, सुखोष्ण पिलाने तथा ऊपर से और भी दूध पिलाने से विरेचन होकर दोष निवृत्ति हो रोग शमन होता है।

पैत्तिक अतिसार में भी इसे इसी प्रकार देते हैं।

दुष्ट-व्रणों पर—जो शीघ्र रोपण नहीं होते, उन पर इसे सूकरवसा (सूअर की चर्बी) में मिला कर लेप लगाते हैं।

इसके पचाग की भाग मात्रा एवं शोथानुलोमक है। इसके शेष प्रयोग त्रायमाण नं० १ के अनुसार ही किये जाते हैं।

मात्रा—क्वाथ या फाण्ट के लिये १½ मा० से ३ मा० या १½ तो० तक। चूर्ण—४ से १० मा० तक।

अधिक मात्रा में देने से प्लीहा तथा फुफ्फुसों के लिये हानिकर है। हानि-निवारणार्थ अनीसून (सौंफ) का अर्क देते हैं। अधिक मात्रा में यह शिर-दर्द भी पैदा करता है—इस पर सिकंजबीन देते हैं। इसका प्रतिनिधि मजीठ है।

कुछ वैद्यगण ममीरी (Thalictrum Foliolosum) जो वत्सनाभ कुल का ही है, त्रायमाण मानते हैं। इसका विस्तृत विवरण यथास्थान पियारांगा या ममीरी में देखिये।

कुछ बंगीय वैद्यगण तथा डॉ० चोपड़ा ने भी उदुम्बर जाति के Ficus Hetrophylla को ही त्रायमाण मान रक्खा है। वे उक्त उदुम्बर जातीय—जलोदुम्बर, भूम्युदुम्बर या इसके भेद 'पाग़ुर' का प्रयोग त्रायमाण के नाम से करते हैं। इसका विशेष खुलासा 'पाग़ुर' के प्रकरण में देखें।

त्रिकटक—दे०—गोखुरु (छोटा)। त्रिवृत्—दे० —निशोथ।

थंथार (*RHAMNUS VIRGATA ROXB.*)

बदर-कुल[1] (Rhamnaceae) के इसके क्षुप या छोटे वृक्ष होते हैं, जिनमें प्राय दो शाखाओं के बीच एक दृढ कंटक होता है। छाल पतली, चिकनी, चमकदार होती, तथा छूट कर आडी दिशा में लपेट उठती है। पत्र—कुछ-कुछ विपरीत, टहनियों पर समूहबद्ध, ½-२ इञ्च लम्बे, १-२ इञ्च चौडे, प्राय लट्वाकार व भालाकार तथा पतली झिल्ली के समान होते हैं। फल—व्यास में १॥-२॥ इञ्च, गोल होते हैं। ३ से ९ हजार फीट ऊंचाई के बीच जौनसार जिले में तथा देहरादून के बिदाल नाला पर भी ये वृक्ष पाये जाते हैं। 'थथार' जौनसार का हिन्दी नाम है।

इसके फल कटु वामक व रेचक होते तथा प्लीहा-विकार में दिए जाते हैं।

नोट—दक्षिण भारत में इसकी दूसरी जाति Rhamnus Wightii (लेटिन नाम की) होती है- जिसकी रक्त-त्वचा रक्तरोहिडा नाम से बिकती है।

इसकी कुछ विलायती जातियां भी होती हैं, जिसकी रक्ताभ छालों का पाश्चात्य-चिकित्सा में कैस्केरा सैग्रेडा

[1] इस कुल का विवरण 'उन्नाब' भाग १ में या आगे 'बेर' के प्रकरण में देखें।

थथार (चडुवा चेदवेला)
RHAMNUS DAHURICUS PALL

(Cascara Sagrada) और एल्डर बकथार्न (Alder-Buckthorn) के नाम से रेचक रूप मे प्रयोग होती है । (व० दर्शिका से साभार उद्धृत)

इसका विशेष विवरण यथास्थान 'रक्त-रोहिड़ा' के प्रकरण मे देखिये ।

●

थनैला

(*GARDENIA TURGIDA*)

मजिष्ठ कुल (Rubiaceae) के इसके छोटे-छोटे कांटेदार वृक्ष होते हे । शाखाए मोटी और पत्र कोणीय (पत्रकोण मे स्थित Axillary) कांटे सीधे सख्त तथा प्राय पत्रयुक्त (Leafy) होते है । छाल चिकनी व नीलाभ श्वेत, पत्ती १-४ इञ्च लम्बी एवं विभिन्न आकार की होती है । फल–कपित्थ (कैथ) फल के समान, व्यास मे १-३ इञ्च, गोल व चिकना होता है । फल प्राय स्तनपाक मे लिया जाता है, इसीसे इसका थनैला नाम पडा है । कुछ लोगो का कहना है कि यदि गर्मी के दिनो मे काण्ड को एक स्थान पर पकड लिया जाय तो वृक्ष तथा पत्तियो मे कम्पन पैदा हो जाता है ।

इसके वृक्ष देहरादून मे कम परन्तु सहारनपुर व शिवालिक मे अधिक पाये जाते है ।

(व० दर्शिका से साभार उद्धृत)
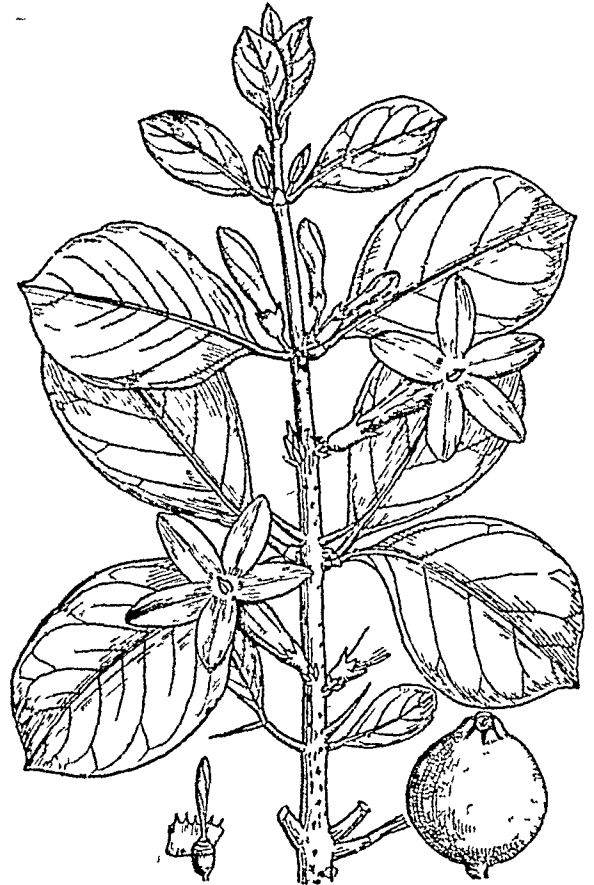
थनैला
GARDENIA TURGIDA ROXB

बम्बई की ओर इसे खुरपेड़ा तथा लेटिन मे गार्डेनिया टुरगिडा कहते है ।

यह बालको के अजीर्ण-रोग मे भी उपयोगी है । स्तनपाक मे फल के गूदे की पुल्टिस बाधते है ।

थूनेर—दे०—गठिवन मे ।

थकार¹ (Thakar)

यह मनुष्य के आकार का एक वृक्ष है, जो बंगाल में अधिक होता है। शाखाएं गठीली व छिलकों होती हैं। इसकी प्रत्येक गांठ पर एक या दो बारीक शाखाएं होती है, जिन पर छोटे छोटे पत्र लगे होते हैं। स्वाद मे ये तिक्त एवं किंचित् कषाय (कसैले) होते है। फूल छोटा, श्वेत वर्ण का होता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह दूसरे दर्जे मे उष्ण एव रूक्ष है। स्वेदन और वेदनाहर है।

श्लेष्म-ज्वर और अगवेदना (विशेषत हाथ-पैर की वेदना) मे इसके पत्र ७ से १० मा० तक थोडी सी अद्रक के साथ पीसकर सेवन कराते है। इससे खूब खुलकर स्वेद आता, व कफ-ज्वर तथा अग-वेदना नष्ट हो जाती है। इसके पत्तो को जल मे क्वाथ कर अंग-घात और अग-वेदना के रोगियो को उसका बफारा देते है, जिससे पसीना आ जाय।

मात्रा—७ से ९ मा० तक। उष्ण-प्रकृति को अहितकर है। हानि-निवारणार्थ शीतल और तर द्रव्य देवे।

---

१ इस बूटी के कुल, जाति तथा विशेष नामों का पता नहीं चलता। जैसा कुछ 'यूनानी द्रव्यगुण विज्ञान' मे इसके विषय में लिखा है, वही यहा साभार उद्धृत करते हैं। (लेखक)

थूहर (सेहुण्ड¹) नं. १ (Euphorbia Nerifolia)

एरण्ड कुल (Euphorbiacoae)

थूहर (काला)
EUPHORBIA NERIIFOLIA LINN

पुष्प

---

१ इसके कई प्रकार हैं। एक प्रमुख सेहुंड यह है, जिसका कांड या दण्ड मोटा एवं गोल तथा विशेष कटक युक्त होता है। उसी का वर्णन प्रस्तुत प्रसंग मे किया जाता है। दूसरा सेहुंड वह होता है, जिसके दण्ड मे तीन ओर धारियाँ या कोर तथा जो पतला एव सामान्य कांटों से युक्त होता है। इसे थूहर त्रिधारा (E Antiquorium) कहते है, यह प्राय. रस कर्म में विशेष उपयोगी होता है। इस त्रिधारा थूहर का भी एक भेद और होता है, जिसे E Trigona कहते है। तीसरा थूहर वह है जो उक्त नं १ का ही एक खास भेद है, जो मोटाई में उससे कुछ कम तथा चारों ओर उभार या कोर तथा वैसा ही विशेष कंटकयुक्त होता है। इसे चौधारा थूहर (सेहुण्ड) (E Nivulia) कहते हैं। (चौधारा नामक एक अन्य बूटी तुलसी कुल की है उसका वर्णन चौधारा में देखिए)। इन तीनों से दूध निकलता है। चौथा वह है जिसे थूहर खुरासानी या अगुलिया थूहर (E Tirucalli) कहते हैं। पाचवा थूहर पचधारा (E. Ligularia) है। तथा छठवां एक सेहुंड भेद-थोर, सुरु (E. Royleana) है। ७ वां थूहर नागफनी है। इन सबका वर्णन क्रमश. आगे के प्रकरणों में देखिये। अस्तु से थूहर शब्द से प्राय ये उक्त ७ थूहर विवचित होते ह। ये थूहर परस्पर नागफनी को छोडकर प्रतिनिधि रूप से लिये जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त और भी कई थूहर हैं जो विदेशों में होते है। —सम्पादक

कटु, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफवातहर, दीपन, रेचन, (तीक्ष्णविरेचक द्रव्यो मे यह उत्तम माना गया है[१]), रक्तशोधक, कफनिःसारक, त्वग्दोषहर व व्रणशोधक है। मेद-रोग, उपदंश, आमवात, वात-रक्त, शोथ, शूल, आमदोष आदि पर यह प्रयोजित है। इसके काड और पत्र वेदना-स्थापक हैं।

दूध—लघु, कटु, स्निग्ध, उष्णवीर्य एव-लेखन, क्षोभक है। त्वचा पर लगने से दाह होकर छाला या फोडा हो जाता है। इसे दद्रु आदि चर्म-रोगो मे लगाते है। क्लैब्य (ध्वजभग) पर इसे अन्य औषधियो के साथ मिलाकर शिश्न पर लगाते हैं। अर्शांकुरो पर इसका लेप करते अथवा दुग्ध भावित सूत्र से अकुरो को बाधते हैं। अकुर नष्ट होजाते हैं, किंतु तीव्र वेदना सहनी पडती है। आगे विशिष्ट योगो मे क्षार-सूत्र देखें।

दंत-शूल मे—जहा शूल हो उसी स्थान पर इसे रुई के फाहे मे लगाकर रखते हैं। दातो को शीघ्र उखाडने के लिए दातो पर दूध टपकाया जाता है। व्रणो पर इसे घी के साथ मिलाकर लगाते हैं।

अग्निमांद्य, उदर रोगादि मे दुग्ध-प्रयोग-विधि—ध्यान रहे, सर्व विरेचन द्रव्यो मे यह तीक्ष्णतम विरेचन है। यह दोषो के सघात को शीघ्र ही तोडता है, किंतु इसका सम्यक योग न हो तो अत्यत कष्ट होता है। (बार बार पानी जैसा मल त्याग व वमन होता है) अत मृदुकोष्ठ वाले पर इसका कभी प्रयोग न करना चाहिए। यदि दोष सचय अल्प ही हो तो भी इसका प्रयोग निषिद्ध है। यदि अन्य किसी भी उपाय से काम न चलता हो तथा इसका प्रयोग करना परम आवश्यक ही हो तो इसका प्रयोग निम्नविधि से पाडु रोग, उदर, गुल्म, कुष्ठ, दूषीविष, शोथ, मधुमेह, दोष जन्य उन्माद, अपस्मार आदि चित्त-विभ्रम आदि रोग ग्रस्त सबल रोगियो पर ही इसका प्रयोग करे। यदि ठीक प्रकार से इसका प्रयोग हो तो यह दोषो के महान सचय को भी शीघ्र दूर करता है।

(चरक क० स्था० अ० १०)

रोगी को सेवनार्थ देने के पूर्व इस दुग्ध की शुद्धि [illegible] अनुसार इस प्रकार है—

[१] सुधापयस्तीक्ष्ण विरेचनानाम् (च० सू० अ० २५)

बृहत्पंचमूल (बेल, गभारी, पाढल, अरनी व अरलू वृक्षो के मूल) तथा कडी कटेरी और छोटी कटेरी, इन ७ द्रव्यो मे से किसी भी एक के क्वाथ मे, समभाग इसका दूध मिला, आग पर शुष्क करले। और छोटे बेर जैसी (आधुनिक काल में चने जैसी) गोलियां बनाले। इनमे से १–१ गोली, सुविधानुसार काजी या सतुष यवकृत काजी या बेर का रस या आवले के रस या सुरा या दही के जल या बिजौरा नीबू के रस के साथ (उक्त रोगो मे) विरेचन कराने योग्य रोगी को पिलावें[१]। (च० क० अ० १०)।

अथवा—सोठ कालीमिर्च, पिप्पली, हरड, बहेडा, आवला, दन्तीमूल, चित्रक तथा निसोथ (चना, लौंग) इनमे से किसी भी एक के महीन चूर्ण को इसके दूध मे गूंथ कर (दूध की भावनाए देकर चना जैसी गोलिया बनाकर) रोगी के बलानुसार गुड के शर्बत के साथ पिलावे। अथवा—

निसोथ का क्वाथ, इसका दूध, घृत और राब इन्हे एकत्र कर लेहपाक कर विरेचनार्थ व्यक्ति को मात्रानुसार चटावे (अन्य रोग आगे दिए हुए प्रयोग मे देखे)।

(च० क० अ० १०)

नोट—वैसे तो इसके विशुष्क दूध की मात्रा १ रत्ती से ८ रत्ती तक है। किन्तु यथायोग्य मात्रा निश्चित् करना बड़ी टेढ़ी खीर है, इसीलिये उक्त प्रकार से इसका प्रयोग करना श्रेयस्कर है। उक्त चना, कालीमिर्च आदि द्रव्यों के चूर्ण को इसके दूध की ६ या ७ बार भावनाएं देकर छायाशुष्क कर लिया जाता है। इसे देने से विरेक होकर रोगजनक-दोषों का उत्सर्जन होता है। यह कफज-कास, श्वास, फिरंग, आमवात, जलोदर में एवं दीर्घ-कालीन रोग-ग्रस्तों को हितकारक है। अथवा—

दशमूल-क्वाथ और यह दूध समभाग लेकर आग पर पकावें। गाढ़ा हो जाने पर चने जैसी गोलियां बना लें। १-१ गोली गरम जल से देवें। अथवा इसके दूध मे

[१] हमारे अनुभव से रसेन्द्रसार-सग्रह में दी हुई इसकी शुद्धि उत्तम एवं सरल है—८ तो० इसके दूध में, इमली के पत्तो का वस्त्रपूत रस १ या दो तो० तक मिट्टी के पात्र में मिलाकर धूप में रख दें। शुष्क हो जाने पर उक्त चरकोक्त अनुपान के साथ सेवन करायें।

(सम्पादक)

समभाग सेंधा नमक मिला, धूप मे शुष्क कर ले। मात्रा २-३ रत्ती तक, जल के साथ देवें।

गावो मे औ० र० कार लिखते हैं कि "कई चिकित्सक बडे मोटे थूहर या कटथूहर के तने मे खड्डा कर उसमे लौग या कालीमिर्च को महीन कपडे मे बाधी हुई पुटली को रखकर ऊपर से खड्डे को बन्द कर देते हैं। १४ दिन के बाद जब लौग या मिर्च नरम हो जाती है, तब निकाल कर छाया-शुष्क कर लेते हैं। इसके सेवन से उदर-शुद्धि होती है।" इसके दूध की १ या २ बून्दे गुड मे मिला कर देने से भी उदर-शुद्धि होती, क्षुधा बढती है।

(१) उदर-रोग पर—छोटी पीपलो को इसके दूध की भावना देकर सुखा ले। नित्यप्रति २, ५, ७ या अधिक पीपलो को दूध मे पका, दूध पीना चाहिए और वे दुग्ध-पक्व पीपल भी खा ले। भूख-प्यास मे केवल दूध ही पीवे। शक्ति अनुसार पीपलो की सख्या बढाते जावे। इस कल्प प्रयोग से उदर-रोग नष्ट होता है।

स्नुहि-घृत योग—४ सेर गोदुग्ध मे १ सेर इसका दूध मिला, पकाकर, दही जमावे तथा उसे मथकर घृत निकाल ले। एक भाग इस घी मे दूध, गोमूत्र, गाय के गोबर का रस, दही और स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) का रस १—१ भाग मिला कर पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान ले। मात्रा—यह घृत ३ मा० की मात्रा मे उदर-रोगी को विरेचनार्थ पिलाने से उदर-रोग नष्ट होता है। (भा० भै० र०)

उदर-रोगो पर चरक चि० अ० १३ के प्रयोग इस प्रकार हैं—

१२ सेर ६४ तो० गौ के दूध मे ३२ तो० इसके दूध को मिला, पका कर तथा जमा कर घृत निकाले। इस घृत मे चतुर्थांश निसोथ का कल्क और घृत से ४ गुना पानी मिलाकर पकावें। घृत-मात्र शेष रहने पर, छान २ या ३ मा० की मात्रा मे सेवन कराने से—अथवा—

उक्त प्रकार से दूध को जमाकर निकाले हुए ६४ तो० घृत मे गोदुग्ध ४ गुना और कल्कार्थ इसका दूध ४ तो० और निसोथ २४ तो० एकत्र मिला यथाविधि घृत सिद्ध कर मात्रा—३ मा० तक सेवन से—अथवा—

गव्य-घृत १२८ तो०, दही का पानी ६ सेर ३२ तो० और इसका दूध ४ तो० एकत्र मिलाकर घृत सिद्ध कर ले। मात्रा—३ मा० तक सेवन (उक्त तीन घृत योगो मे से किसी भी एक योग का सेवन कर) अनुपान रूप मे, प्रकृति, अग्निबल आदि का विचार कर पेया, दूध या मधुर मास-रस को पीवे। घी के जीर्ण एव उसके द्वारा रोगी को विरेचन हो जाने पर प्रथम दिन रूक्ष देह पुरुष लघु आहार के पश्चात् सोठ का क्वाथ अथवा उससे षडङ्ग पानीय[1] विधि के अनुसार साधित सुखोष्ण जल पीवे। दूसरे दिन इसी प्रकार घी के पच जाने पर और यथायोग्य विरेचन हो जाने पर लघु आहार के बाद पेया[2] पीवे। तीसरे दिन भी पचने पर और विरेचन होने पर लघु आहार के बाद कुलथी का यूष पीवे। इस प्रकार ३ दिन सेवन करे। यदि दोष अधिक हो, और रोगी बलवान हो, तो ३ दिन से अधिक भी इसी क्रम से पुन-पुन घृतपान कराया जाता है। कुशल वैद्य को चाहिए कि उक्त लाभकर घृतो को यथाविधि साधित कर गुल्म, उर-दोष एव अन्य उदर-रोगो की शाति के लिये रोगियो को प्रयोग करावे। (च० चि० अ० १३)

२ जलोदर पर—इसके दूध मे भुने हुए चनो की दीली फुला देवे, तथा २—२ मा० पीस कर शहद के साथ, प्रात-साय सेवन करा, ऊपर से गरम दूध पिलावे। इससे मल-मूत्र द्वारा उदर का दूषित जल निकल कर पेट मुलायम होकर रोगी ठीक हो जाता है। इससे कभी-कभी वमन भी हो जाया करती है, गर्मी विशेष मालूम देती है, ऐसी दशा मे दूध पीना परमावश्यक होता है। (भा० गृ० चिकित्सा)

---

[1] २ तो० सोंठ-चूर्ण को ४ सेर जल मे पकावें। आधा जल शेष रहने पर छानकर पीने के काम मे लावें। यही षडंग जल है। यह सोंठ का षडङ्ग जल हुआ। इसी प्रकार अन्य द्रव्यों का बनाते हैं।

[2] पेया—द्रव्य में ६ गुना अथवा १४ या १५ गुना जल मिला कर पतली फेन जैसी कुछ गाढ़ी लसदार चावल सहित औटाई हुई चीज को पेया कहते हैं। यह पचने में बहुत हलकी, मलमूत्रादि का स्तम्भन करने वाली है, और बल्य है। (लेखक)

३. मूत्रदाह पर—मूत्रप्रसेक-नलिका में सूजन आने पर, मूत्र की रुकावट होती, मूत्र बून्द-बून्द होता या जलन होती है, सूजन पक जाने से पेशाब में पीप भी आता है। ऐसी दशा में चने के चूर्ण (बेसन) में इसका दूध मिला गोली बनाकर यथोचित मात्रा में दी जाती है। इससे मलमूत्र की शुद्धि होती, एवं मूत्रदाह दूर होता है। (मा० औ० र०)

४. कामला पर—इसका दूध को बूंद गुड़ में मिलाकर प्रातः देने से कामला शमन हो जाता है। भोजन में दूध-भात दें। आवश्यकतानुसार यह प्रयोग २-३ दिन तक देना चाहिये। (ग्रा० औ० र०)

५. छाजन (इसब, ब्युची, उकौत) खाज, व्रण आदि पर—छाजन जो बहुत पुरानी हो गई हो, उसमें भयंकर खुजली चलती हो, तो उसके कीटाणुओं के नाशार्थ, उस पर प्रथम इसका दूध लगाते हैं जिससे वह पक जाता है, फिर रसकपूर, कत्था और शतधौत घृत एकत्र मिलाकर बनाया हुआ मलहम लगाते हैं।

मस्से (Wart)—शरीर के किसी भी स्थान में हुए हों, उन पर इसे सावधानी से (अन्य स्थान पर न लगने दें) लगाने से वह गिर जाते हैं।

खाज (कण्डू) पर—इसका दूध, आक का दूध और धत्तूर-पत्र १-१ भाग लेकर सबको एकत्र गोमूत्र के साथ महीन पीस लें। इसे तैल में मिला कर लेप करने से खाज तथा सिर के व्रण नष्ट होते हैं। (क० से०)

६. अर्श, भगन्दर, नाडी-व्रण आदि पर—इसका दूध और हल्दी का चूर्ण समभाग एकत्र गोमूत्र के साथ पीस लेप करने, तथा गो-दुग्ध में, चित्रक-मूल का चूर्ण मिलाकर पीने और उसीके साथ पथ्य भोजन करने से अर्श नष्ट होता है। (भा० भै० र०)

भगन्दर, नासूर आदि पर—१ तो० इसके दूध के साथ, दारु हल्दी का चूर्ण १ तो० खरल करें, घोटते समय सब दूध में रहे। इसी प्रकार ७ दिन तक प्रतिदिन एक तो० दूध डालकर उसे खरल करें। ७ दिनों तक उसी में प्रतिदिन १ तो० अर्कदुग्ध डालते हुए खरल कर पतली सलाई जैसी बत्तियां बना छायाशुष्क कर लें। इस बत्ती को कठिन भगन्दर में, नासूर, नाडीव्रण में भीतर प्रवेश करें। इससे शीघ्र घाव शुद्ध होकर रोग आराम होता है। (अ० तन्त्र)

लिङ्ग की शिथिलता पर—इसके दूध और प्याज के अर्क (रस) में महीन मलमल के कपड़े को तीन बार भिगोकर सुखा लें। फिर उसे अलसी के तैल में अहोरात्र (२४ घण्टे) पड़ा रक्खें। पश्चात् कामेन्द्रिय पर सुपारी वाले भाग को छोड़ कर मक्खन लगाकर, उसी कपड़े को लपेट दें। इस पट्टी को ३ घण्टे तक बंधी रखकर खोल दें। इस प्रयोग से शिथिलता नष्ट होकर इन्द्रिय पुष्ट होती है। (व० चं०)

७. मूढगर्भ (योनिमार्ग में अयोग्य रीति से आया हुआ सर्वविपर्यव संपन्न गर्भ—Mal-presentation of the Foetus) पर, तथा पशुओं के सींग या हड्डी के टूट जाने पर—मूढगर्भ वाली स्त्री के सिर पर जरा सा यह दूध लगा देने से गर्भ तुरन्त निकल आता है। (भा० भै० र०)

किसी पशु का सींग या हड्डी टूट गई हो, तो उसे यथापूर्व स्थिति में रख के इस दूध में सन कर लेप कर ऊपर से पट्टी बांध देते हैं।

पाददारी (बिवाई, Rhagades, cracks in the sole or hands) पर—इसका दूध ४ तो० और सरसों-तैल २० तो० एकत्र मिला पकावें। तैल-मात्र शेष रहने पर छान लें। इस तैल में सेंधा नमक मिला लगाने से पैरों की बिवाई नष्ट होती है। कैसी भी भयंकर पाददारी हो शीघ्र ही लाभ होता है। (भा० भै० र०)

आगे नोट में—फरफियून देखिये।

काण्ड (तना या शाखा)—

—इसको आग पर गरम कर निकाला हुआ रस भी रेचक है, किन्तु दूध जैसा तीव्र रेचक नहीं है। कफ-विकार नाशक है। आमवात, वातरक्त तथा वात-विकारों में इसे देते हैं।

१० कफ-विकारो मे—काण्ड के टुकडो को पुटपाक-विधि से आग के भूभल मे गाडकर भून ले। नरम हो जाने पर उसका रस निचोड ले। यह रस २ से ८ बून्द तक तथा अडूसे का रस ३ मा० और भुना सुहागा १ या २ रत्ती तक एकत्र शहद मिलाकर चटाने से कफ पतला पडकर निकल जाता है, तथा कास, श्वास, प्रतिश्याय आदि विकारो की शाति होती है।

इसका १ फुट लम्बा डडा लेकर, चाकू से बीच का गूदा निकालकर खोखला कर, उसमे ५ तो० फिटकरी के टुकडे डालकर पुन निकाले हुए गूदे से उसे बन्द कर, कपरौटी कर १५ सेर कण्डो मे फूक दें। शीतल होने पर उसे निकाल कर पीस ले। १ रत्ती की मात्रा मे शहद मे मिला दिन में ३ बार चटाते रहने से श्वास, कास मे अपूर्व लाभ होता है।

अथवा—इसकी, काड या शाखा या चौधारा थूहर की शाखा का रस २-४ बून्द मक्खन या शहद मे मिला कर देने से अन्दर जमा हुआ कफ सरलता से निकलकर विकारो की शाति होती है। जीर्ण श्वास रोगी के लिये मात्रा अधिक देनी पडती है। कफ-प्रकोप सामान्य हो, तो इसकी शाखाओ को जलाकर, काली राख कर वह भी शहद के साथ दी जाती है।

छोटे बालको के कुकुर-कास आदि कफ-विकारो पर—इसका काण्ड लगभग ६-इञ्च लम्बा तोडकर, ऊपर के काटे निकाल डाले, तथा चूल्हे पर मद आच पर या गरम राख (भूभल) मे थोडी देर रखकर, उसका रस निचोड ले। फिर छानकर ३ मास से १ वर्ष तक के शिशु को चाय पीने के छोटे चम्मच मे आधा भर कर इस रस मे उतना ही माता का दूध मिला प्रात -साय पिलावे। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

१ से ३ वर्ष के बालक को १ पूरा चम्मच रस, सभभाग जल मिला, प्रात -साय ६ दिन तक पिलावें। ३ वर्ष के ऊपर की अवस्था वाले युवा व वृद्धो के लिये यह रस २ चम्मच भर, समभाग जल के साथ ३ दिन तक, प्रात -साय पिलावे। अवश्य ही पूर्ण लाभ होता है। हमारा अनुभूत प्रयोग है। बच्चे का गला कफ मे रुधा हो, तो उक्त स्वरस की ३ बून्दे व मधु ६ बून्दे एकत्र मिला, मुख के तालु व जीभ पर रगडे।

(११) आमवात, वातरक्त, गृध्रसी, पक्षवध, अर्दित आदि वात-विकारो पर—कोमल काण्ड या शाखा के टुकडो से पुटपाक विधि से निकाले स्वरस मे समभाग तिल-तैल सिद्ध कर मर्दन करते है।

जीर्ण आमवात-जन्य सधि पीडा हो, तो उक्त स्वरस मे नीम के फलो (निबोली) का तैल मिला मर्दन करते है।

कर्णशूल मे—उक्त स्वरस की २-४ बून्दे कान मे डालते है। कान को शीत वायु एव जल से बचाना चाहिये।

(१२) जाघे जुड जाने या जकड जाने पर—इस थूहर या चौधारे थूहर की शाखा के टुकडे कर १६ गुने जल मे उबाले। पीडित व्यक्ति के शरीर पर तैल की मालिश कर उसे बद कमरे मे खाट पर १-२ बोरा बिछा कर सुलावे या बैठावे। शिर को खुला रखे, शेष भाग कम्बल से ढक देवे, फिर उक्त थूहर के जल के घडे को खाट के नीचे रख कर बफारा देवें। इससे पसीना आकर जाघो की जकडन दूर होती, तथा रक्त मे रहा हुआ विष जल जाता है। स्वेदन के पश्चात् कण्डो की राख शरीर पर लगा देवे। (गा औ र।)

नोट—उक्त बफारे से शरीर के रोमरन्ध्र खुल कर जकडन एवं शरीर की रुधी हुई गर्मी निकल जाती है। शरीर पर ठण्डी हवा न लगने दें, ठण्डा जल न पीवें। घृत और चावल का पथ्य लेवें।

(१३) कामला पर—इसके ३ मा स्वरस मे ६ मा अदरख-रस और १ तो घी मिलाकर (शक्ति एव आयु के विचार से मात्रा घटा बढा कर) पिलाते हैं।

(१४) जलोदर पर—१० तो इस थूहर की महीन-पीसी हुई चटनी मे, पानी निकाला हुआ दही (दही को मोटे कपडे मे बाध कर लटका देने से पानी टपक २ कर निकल जाता है) ४० तो, सूक्ष्म पीसी हुई राई ६ मा, सेधा नमक १ तो, देशी कलमी नौसादर २ रत्ती लेकर, प्रथम उक्त थूहर के कल्क को पानी मे उबाल, कपडे मे डालकर निचोड लें। पानी फेंक दें और निचुडा हुआ कल्क दही मे मिला दे, तथा शेष सब चीजे भी मिला रायता सा

बना ले। इस सब रायते को गेहूँ की रोटी के साथ एक बार मे खाले (एक बार मे न खा सके तो २-३ बार करके खाले), फिर भूख लगने पर दही और रोटी खावे। घी, दूध, चीनी या अन्य कुछ भी न खावे। इस प्रकार नित्य सेवन करें, दस्त लगे तो रोटी बन्द कर दे, तथा उक्त रायते को सेंधानमक युक्त खिचडी के साथ खावे। इस प्रकार ७ दिन (या इससे न्यूनाधिक दिन) सेवन करने से लाभ हो जाता है। थोडी बहुत कसर रहे तो बीच मे ३-४ दिन उक्त रायता खाना बन्द कर, केवल बिना घी की खिचडी खाते रहे, और चौथे दिन से पुन. उक्त रायते वाला प्रयोग प्रारभ कर दे। फिर पेट साफ होने और रोग मिटने तक इसे जारी रखे। इस प्रकार करने से जलोदर रोग का पानी मल व मूत्र-मार्ग से निकल कर रोगी-स्वस्थ हो जावेगा, और फिर रोग के होने का भय भी नही रहेगा। इस प्रयोग को पूरा करने के बाद एक सप्ताह तक दही और खिचडी के सिवाय और कुछ भी न खाना चाहिये। (भा ज बूटी)

(१५) नाडीव्रण, दुष्ट व्रण तथा अर्बुद पर—इसी थूहर (न कि चौधारा थूहर) के काण्ड को ऊपर से छील कर अन्दर की मज्जा ५ तो के छोटे २ टुकडे कर कडाही मे खूब गरम किये हुए २० तो सरसो-तैल मे डाल देवे। जब वह पक कर लाल हो जाय तब उतार कर तैल छान लेवे।

इस तैल को भयकर व्रण, नाडी व्रण, असाध्यव्रण मे कच्चा या पका हुआ कैसा भी हो, लगाने से लाभ होता है। किंतु व्रण को पानी से बचाना आवश्यक है। उस पर पानी न पडने पावे। अन्यथा वह ठीक नही होता। कर्णमूल-शोथ पर—इस तैल को दिन-रात मे ४ बार कान मे डाले तथा इस तैल की मालिश करें। वात-ज्वर, पित्त-ज्वर, वात-पित्त ज्वर मे इसकी मालिश से पसीना आकर ज्वर उतर जाता है।

व्रण से अति दुर्गन्ध आती हो, कीडे पड गये हो, तो इसके काण्ड के कल्क को कुछ गरम कर बाधने से कृमि नष्ट होकर वह शुद्ध हो जाता है।

अर्बुद (शरीर के किसी भी भाग मे उठी हुई गोलाकार, अल्प पीडा वाली, गहरी, बहुत दिनो बाद बढने वाली ग्रथिरूप शोथ-Tumour) पर—काण्ड के टुकडो को पानी मे उबाल कर बफारा देवे। उस प्रकार भाप की सहायता से बार बार अर्बुद को गरम या स्वेदित कर, उस स्थान पर उन टुकडो को रख कर बाध देवें। इस प्रकार स्वेदित करते रहने से उसका नाश हो जाता है। श्लीपद पर भी यही क्रिया की जाती है।

(व०मे०)

(१६) पागल कुत्ते के विष पर—इसके काण्ड के, गरम कर निकाले हुये स्वरस को १० तो तक पिलाने से विष का असर बहुत कुछ कम हो जाता है। पुन १-२ बार इसी प्रकार पिलाते तथा साथ ही साथ दही का घोल भी पिलाने से विष पूर्ण तया नष्ट होकर, रोगी स्वस्थ हो जाता है।—अथवा—

इसके डण्डे का गूदा, (काण्ड के भीतर की मज्जा) मे अदरख मिला कर खिलाने से भी लाभ होता है।

पत्र—इसके पत्ते अरुचिकर, चरपरे, दीपन, कुष्ठ, अष्ठीला, आध्मान, वात-शूल, शोथ, उदर-रोग, कफ-विकार, आम-वात आदि नाशक होते है। पत्र-रस-मूत्र-जनन हैं।

शोथवेदना-युक्त स्थान पर—पत्तो को गरम कर बाधते है। इससे सिद्ध किये हुए तैल का अभ्यग वात व्याधियो मे करते है। कर्णशूल मे-पत्र-रस को गरम कर सुहाता हुआ डालते है। तमक श्वास मे—पत्र-रस शहद के साथ चटाते है। उदर-रोगी को विबन्ध होने पर, भोजन के पूर्व पत्तो का शाक खिलाते है। आम-वात मे भी इसके कोमल पत्तो को कतर कर, साग बना कर खिलाते हैं। इससे जीर्ण रोग जन्य वेदना व सधि-स्थानो का शोथ दूर होता है। किंतु रोगी को गुड शक्कर नही खाना चाहिये।

(१७) कफ-विकारो पर—पत्तो को आग पर सेक कर ½ तो रस निकाल उसमे भुना सुहागा २ रत्ती और शहद ४ तो० तक मिला, थोडा थोडा चटाते रहने से, कफ ढीला होकर निकल जाता है।

(१८) डिब्बा रोग (बालको की पसली चलना) पर इसके (विशेषत चौधारी थूहर के) पत्तो को आग पर गरम कर, रस निचोड कर उसमे थोडा एलुवा, बोल

छोटी हर्र अथवा रेवन्द चीनी या उसारे रेवन्द का चूर्ण मिला, आग पर पका कर, सहन करने योग्य इसका लेप पेट पर करे, नाभि पर इसे न लगावे । इससे कफ पतला होकर दस्त या मुख के रास्तो से निकल कर विकार की शांति होती है ।

बडी अवस्था का रोगी निर्बल हो, तथा कफ-प्रकोप मे इसके काण्ड का उक्त प्रयोग न०१० का सेवन उसके लिये यदि असह्य हो, तो इसके पत्र-रस के साथ अडूसा-पत्र-रस तथा सुहागे का फूला मिलाकर सेवन करे । अवश्य लाभ होता है ।

बालको के कुक्कुर-कास (काली खासी, हूपिंग कफ) पर—इसके दो कोमल पत्तो को आग पर गरम कर रस निकाल, उसमे थोडा सेधा नमक मिला पिलाते है ।

(१६) कुष्ठ, दाह आदि पर—इसके पत्तो के साथ आक, चमेली करज और धतूरा के हरे पत्ते समभाग लेकर सबको गोमूत्र मे पीस कर लेप करने से श्वित्र कुष्ठ, दाह, और व्रण का नाश होता है । —(व०से०)

(२०) उदर-पीडा पर—कोमल पत्तो को महीन कतर कर, उसमे सेधा नमक मिला कर खिलाने तथा उदर पर पत्तो को पीस मोटी रोटी सी बना, कुछ गरम कर बाधने मे उदर नरम हो जाता है । आध्मान एव मलावरोध दूर होता और वेदना शात होती हे ।

(२१) व्रणो पर—नवीन तथा पुराने कठिन व्रणो पर पत्तो को उबाल कर, पीस कर लेप करते रहने से वे ५-६ दिन मे नष्ट हो जाते है ।

(२२) अर्श पर—पत्तो को आग पर सेक कर तथा मल कर गुदा पर बाधने से कृमि, खाज, शोथ एव पीडा-युक्त अर्श मे लाभ होता है । (भा०भै०र०)

अर्श पर पत्तो का साग भी निम्नविधि से बना कर खिलाते है—कोमल पत्र ½ पाव कतर कर पानी से अच्छी तरह धो कर रक्खे । फिर पात्र मे गोघृत १ तो को गरम कर उसमे जीरा-चूर्ण ३-मा० डाल कर, उक्त पत्तो को छोक दें । ऊपर से सोठ, हरड, काला नमक ३—३ मा० तथा कालीमिर्च १½ मा० और धनिया-चूर्ण १ तो० मिला साग पकाले । यह साग रुचि के अनुसार थोड़ा थोड़ा दोनो समय भोजन के साथ खिलाते ह ।

मूल—इसकी जड का रस उत्तेजक तथा उद्वेष्टन-निवारक है । जागम विषो का प्रतिरोधी है । जागम विषो पर इसका अन्त व बाह्य प्रयोग किया जाता हे । जड को कालीमिर्च के साथ पानी मे पीस व छान कर सर्पदंश पर पिलाते तथा दंश-स्थान पर लेप भी करते हे । यह सूतिकाज्वर पर भी काली मिर्च के साथ पिलाया जाता है । निद्रानाश मे इसका चूर्ण गुड के साथ खिलाते है[1] ।

२३ नारू पर—नारू का कृमि यदि बाहर को कुछ निकल आया हो, तो जड को पीसकर पुल्टिस बनाकर बाध देने से वह शीघ्र ही बाहर निकल जाता है । वेदना दूर होती है। यह पुल्टिस सूजन, घाव और दाह पर भी लगायी जाती है । (गा औ र)

क्षार—इसके पचाग को काटकर तथा शुष्क कर जला लेते हे, और क्षार-विधि से इसका क्षार निकाल लेते है ।

यह क्षार हृद्रोग, यकृत, प्लीहा के विकार, उदर-रोग तथा कास-श्वासादि कफ के विकारो मे विशेष लाभकारी है । इन विकारो मे इसे शहद या जल के साथ सेवन कराते हे । अर्श मे इसे लेप करते हैं ।

(२४) खुजलीयुक्त जीर्ण किटिभ (क्षुद्र कुष्ठ Psoriasis) रोग पर, क्षार को रेडी-तेल मे मिलाकर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है । (भा भै र)

(२५) कफज शोथ पर—क्षार को पानी मे मिला, इस क्षार युक्त पानी मे छोटी पीपल को भिगोकर सुखा ले । इस प्रकार ११ बार भिगोकर सुखा कर चूर्ण कर लें । उचित मात्रा मे शहद के साथ इसका सेवन करने से कफज सूजन दूर होजाती है । (व० से०)

साधारण कफ-प्रकोप पर—इस थूहर के काडो को जलाकर काली राखकर शहद के साथ चटाते हे ।

कफ को निकालने के लिए उक्त श्वेतक्षार को

---

[1] क्षारविधि—इसके पचाग अथवा शाखाओं को जला कर श्वेत राख कर उसे ४ या ८ गुने पानी में मिला खूब घोल दे । कुछ देर बाद ऊपर के पानी को सम्हाल-पूर्वक निथार ले और इसी पानी को आग पर रख दें । पानी निःशेष हो जाने पर नीचे जमे हुए श्वेत क्षार को खुरच कर सुरक्षित रक्खें ।

२ से ४ रत्ती की मात्रा मे थोडा घृत मिलाकर खाते है।

अर्श के मस्सो पर यह क्षार लगाने से वे गिर जाते हैं। (गा औ. र)

यकृत व प्लीहावृद्धि पर, इसे मधु या मूली के रस से देते है।

विशिष्ट प्रयोग—

(१) वज्रक्षार—इसका दूध और आक का दूध ४०-४०, तोला पाचो नमक (सेधा, काला, विड, काच, सामुद्र), जवाखार, पलाशक्षार, सज्जीखार, तिलक्षार २५-२५ तोला, इसी थूहर के पत्र २० तो० तथा आक के पत्र १०० नग लेकर कूटने योग्य चीजो को कूटकर सबको सुदृढ मृत्पात्र मे बन्दकर, गजपुट देवें। स्वाग शीतल हो जाने पर, भीतर का क्षार निकाल उसमे त्रिकटु और हीग ४-४ तो मिला महीन चूर्ण कर रखे।

मात्रा—१ मा० तक, तक्र के साथ सेवन से गुल्म, अग्निमाद्य, विसूचिका, अरुचि, पाडु, कास, श्वास, वातव्याधि, कफ-विकार नष्ट होते है। यह क्षार मास जैसे गुरु द्रव्यो को भी २ घडी मे गला देता है, फिर अन्न की तो बात ही क्या है? (यो० त०)

क्षार-गुटिका—इसका काड १६ तो, सेधा, सौचल विड-नमक १२-१२ तो. बडी कटेली (या बैंगन) १६ तो, आक की जड ३२ तो और चित्रक ४ तो इन्हे अन्तर्धूम दग्ध कर बैंगन के रस मे घोट गोलिया बनाले। (मात्रा-४ रत्ती से १ मा०) ये गुटिका जितनी बार भी भोजन किया जाय शीघ्र पचा देती है। कास, श्वास, एव अर्श के रोगी के लिए हितकर है। विसूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग को शात करती है। (चरक स. चि अ. १५)

(२) स्नुह्यादि तेल (खालित्यनाशक)—इसका दूध, आक का दूध, भागरा, कलिहारी, घुघची, इन्द्रायण मूल, श्वेत सरसो १-१ तोला लेकर सबको एकत्र पानी के साथ पीस कल्क बनाले।

सरसो तेल १ सेर मे यह कल्क तथा बकरी का दूध व गोमूत्र २-२ सेर मिला, मद-आग पर तेल सिद्ध करले। इसकी मालिश से गज दूर होता है। (भै र)

(३) [illegible] तैल -(कुष्ठ नाशक)—इसका दूध [illegible] ४-४ तो., [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] तथा तिल-तैल २५ तो. और गोमूत्र १ सेर मन्द आग पर तैल सिद्ध करले। इस तैल मे [illegible], [illegible], मैनसिल, हरताल, वायविडङ्ग, अतीस, [illegible], [illegible], कूठ, वच, [illegible]-भागी, त्रिकटु, दारुहल्दी, मुलैठी, मजीठ, [illegible], चीता और देवदार का महीन चूर्ण ४-४ मा० मिला अच्छी तरह घोट बोतल में रखें। इसकी मालिश से सर्व प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं—(शा स.) (उक्त गन्धकादि-चूर्ण को तैल पाक की अवस्था मे ही मिलाकर तैल सिद्ध हो जाने पर नीचे उतारकर छानकर रख लेना उत्तम है।

(४) सुधा-तैल—इस थूहर की (अथवा वटथूहर या खुरासानी थूहर) शाखाओ के टुकडे १ सेर लेकर कल्क करलें, उसमे तिल तैल ८ सेर और मट्ठा या दही का जल ३२ सेर मिला मद आग पर तैल सिद्ध करलें। इसकी मालिश से सधियो की जकडन, खुजली, जहरी जन्तु के काटने से हुई सूजन दूर होती है। (गा. औ र)

(५) सुधावटी—इस थूहर का काड १६ तो सैंधा-काला, और विड् नमक ४-४ तोला, बडी-कटेरी १६ तो अर्कमूल ३२ तो, तथा चित्रक-मूल ८ तोला, (कटेरी के स्थान मे पका हुआ सूखा बैंगन ले सकते हैं), सबको मटकी मे भर बन्दकर के जलावे। फिर बारीक चूर्ण कर उसे कटेरी या बैंगन के रस मे घोटकर गोलिया बनावें। भोजन के पश्चात् (१ मा) खाने से आहार शीघ्र पच जाता है। यह कास, श्वास, अर्श, विषूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग मे लाभकारी है। (वा० चि० अ० १०)

उक्त कुछ योगो के अतिरिक्त—उदरारि लौह, कफकुजर रस, काचन लौह, कास, श्वासावधूनन रस, गन्धकादि पोटली, जलोदरारि रस, ज्वर कालकेतु रस, पानीय भक्त वटी, प्रभावती वटी, प्लीहोदर-गुल्म हृद्रस, वडवानल रस, शखद्राव, सूर्यावर्त रस, शीत-ज्वरारि आदि रस प्रयोगो मे इसके दूध या क्षार का योग दिया जाता है।
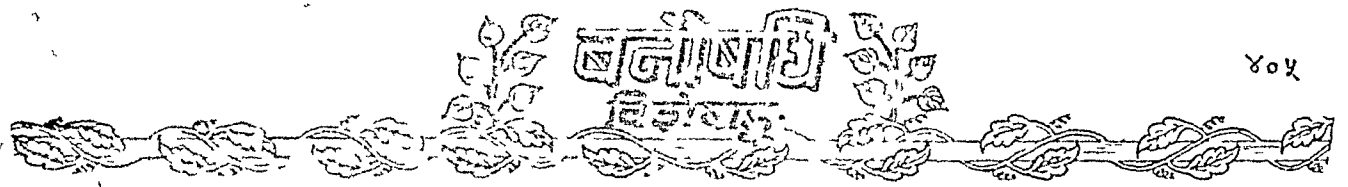
मात्रा—मूल चूर्ण–२-४ रत्ती। काड-स्वरस १ तो. तक। दूध ½-१ बूद। पत्र-स्वरस–२-५ बूद। क्षार—१-२ रत्ती।

यह उष्ण प्रकृति वालो को हानिकर है। हानि-निवारणार्थ दूध का सेवन कराते हैं।

विपाक्त प्रभाव—इस थूहर या उसके भेद कटथूहर (जिसका वर्णन आगे थूहर न० २ मे दिया है) या नागफनी थूहर (इसका वर्णन आगे के प्रकरणो मे देखिये) के दूध या रस की मात्रा अधिक हो जाने से दाह वमन या रेचन (जुलाब) होते है। साधारणत इसमे मृत्यु नही होती, किन्तु अधिक दस्त आने से कभी २ दस्तो के साथ खून भी आता, तथा अन्य उपद्रव बढ कर मृत्यु भी हो सकती है।

उक्त विपाक्त प्रभाव प्रकट होते ही इमली के पत्ते पीसकर सारे शरीर मे लेप करे, तथा इमली का पना पिलादे। साथ ही साथ शीत जल मे चीनी का शर्बत बनाकर पिलादे। या गाय के ताजे दूध मे मिश्री और घी मिला पिलावे। अथवा–मक्खन, मिश्री, वशलोचन, और छोटी इलायची का चूर्ण मिश्रित कर चटावे। अथवा—स्वर्ण गेरू या सादा शुद्ध किया हुआ गेरू पानी मे घोलकर पिलावे, इससे थूहर और मन्दार का विष नष्ट होता है। यदि थूहर का दूध या रस शरीर मे पडने से छाले आ गये हो, और दाह होता हो, तो बकरी के दूध मे काले तिल पीसकर बार २ लेप करे या इमली-पत्र पीसकर बार २ लेप करे। (अ तत्र)

फरफियून या अफरवियून (Euphorbium) अरबी नामो से बाजार मे, विशेषत यूनानी-चिकित्सा मे प्रसिद्ध यह मोरक्को देश के सेहु ड थूहर (Euphorbia Resinfera) का सुखाया हुआ दूध है। ताजी अवस्था में पीताभ भूरे रग के, रालदार, चमकीले, मोम जैसे, किंतु तीक्ष्ण गध व तिक्त चरपरे स्वाद वाले, छोटे-छोटे बेढगे इसके टुकडे बाजार मे मिलते है। पुराने हो जाने पर, लगभग ४ वर्ष बाद ये काले या पीताभ लाल वर्ण के एव प्रभावहीन हो जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह उष्ण रूक्ष, लेखन, विस्फोटजनक, उत्तेजक, विरेचक तथा अर्दित, पक्षवध, कम्पवात, गृध्रसी आदि वात एव कफजन्य रोगो पर प्रयोजित है। जैतून-तैल मे मिलाकर इसका लेप या अभ्यग किया जाता है। जलोदर तथा शूल मे विरेचनार्थ इसे देते है। इसका आभ्यतरिक प्रयोग बहुत ही कम किया जाता है। रजोरोध-निवारण तथा गर्भपात कराने के लिये इसे रोगन गुलाब मे मिला पिलाते है। अथवा विशेषत इसकी बत्ती बना योनि-मार्ग मे धारण कर ते है। किन्तु इसकी १ रत्ती की मात्रा मे बनाई गई वर्तिका योनि मे धारण कराने से गर्भाशय का मुख सकुचित होकर गर्भपात नही होने पाता, अधिक मात्रा की बत्ती अवश्य गर्भपातकारक एव रजोरोध-निवारक होती है।

वाजीकर तिलाओ मे यह मिलाया जाता है। पूययुक्त नेत्राभिष्यन्द पर इसे शहद मे मिलाकर लगाते है।

मात्रा–२ से ४ रत्ती है। यह विशेषत रोगनगुलाब, मुलेठी का घन क्वाथ, कतीरागोंद के घोल आदि मे मिलाकर सेवन कराया जाता है। अधिक से अधिक १०½ मा की मात्रा मे यह तीव्र मारक है। आमाशय व पक्वाशय मे व्रण पैदा कर देता है। इसके विषाक्त प्रभाव के निवारणार्थ खट्टा मट्ठा, खट्टे अनार का रस, और कपूर का सेवन कराते हैं।

थूहर नं० २ (चौधारा)

(*EUPHORBIA NIVULIA*)

यह थूहर नं० १ का ही एक विशेष भेद है। इसके वृक्ष १०–२० फुट तक ऊचे, काण्ड—सीधा, गोल, ३-४ फुट व्यास का चारो ओर किनारेदार, शाखाए—सीधी, कुछ ऊपर को मुडती हुई, खडमय, चक्राकार, चारकोर वाली, क्रम से निकली हुई, दो-दो एक साथ निकले हुए सीधे कटक युक्त उपपत्रो से युक्त होती है। पत्र—उक्त प्रकार के सयुक्त काटो के बीच से निकले हुए, मासल, अस्थायी, ६ इच लम्बे, २½ इञ्च चौडे मुद्राकार, कु ठिताग्र एव वृन्तरहित होते है। शीत और ग्रीष्म काल मे पत्ते नही रहते। पुष्प—शलाकाओ पर

३–३ फूल पीतवर्ण के, बीच मे नरपुष्प तथा ऊपर नीचे द्विजातीय पुष्प होते है, तन्तु शीर्ष बैगनी और परागा पीला होता है। फल—त्रिदोषयुक्त ¼ इञ्च चौडा होता है।

इसके वृक्ष उत्तर पश्चिम हिमालय के शुष्क एव पहाडियो के निम्न भागो मे, तथा गुजरात, सिन्ध और दक्षिण भारत म अधिक पाये जाते है।

नाम—

स–वज्रवृक्ष वज्री, सेहुण्ड आदि उक्त नम्बर १ के ही नाम है। हि०-चौधारा थूहर, कटथूहर, एटके, सिज आदि। म०-काटे निवडुग। गु०-काटालोथोर। लै०-यूफोरबिया निव्हुलिना।

इसका रासायनिक सगठन तथा गुणधर्म-प्रयोगादि प्राय थूहर न० १ के ही सदृश है।

थूहर नं०३ तिधारा

EUPHORBIA ANTIQUORUM

इसके झाडीदार वृक्ष या क्षुप १२–२५ फुट तक ऊचे कटकयुक्त (काटे छोटे छोटे इसके अग्रभाग मे, सर्वांग मे नही होते), काण्ड—छोटे २ खण्डयुक्त, (ऊपर के काण्ड के ये खण्ड प्राय उतने ही लम्बे होते हैं, जितने कि वे मोटे), शाखाए—नरम, पतली, गहरे हरे रग की, तथा तीन (कभी कभी चार या ५) धारो या पक्षो वाली, जिन पर कटक प्रचुर उपपत्र छोटे-छोटे (प्राय सब वृक्षो पर ये पत्र नही भी होते हैं), पुष्प—प्राय ⅓ इञ्च बडे हरिताभ पीत या लाल रग के, द्विलिंगी, फल—⅓ इञ्च व्यास के गोल होते है।

इसके क्षुप प्राय सभी उष्ण, शुष्क स्थानो मे पाये जाते है। ये प्राय खेतो की बाडो मे लगाये जाते है।

नोट–इसका एक भेद और होता है, जिसे लेटिन में यू. ट्रायगोना (E. Trigona) कहते हैं।

कहा जाता है कि जिस घर की छत पर तिधारा थूहर के गमले होते है, उस घर पर बिजली नही गिरती।

नाम—

स०–वज्रकटक, वज्री इ०। हि०–तिधारा थूहर (सेंहुड)

म०–तीनधारी निवडुग। गु०–त्रणधारियो थूहर। बं०–तेकाटासिज, तेशिरा मानसा, नारसिज। अं–ट्रायगुलर स्पर्ज (Triangular spurge)। ल०–युफोर्बिया एंटिकोरम।

रासायनिक सगठन—

इसमे यूफोर्बिन २५%, दो प्रकार की राल (एक राल ईथर मे घुलनशील व दूसरी न घुलने वाली), गोद एव रबड जैसा पदार्थ १५% आदि द्रव्य पाये जाते है।

नोट--थूहर की जाति में पाया जाने वाला दाहजनक द्रव्य इसमें बहुत अल्प मात्रा मे होने से यह अन्य थूहरों की अपेक्षा कष्टदायक है।

प्रयोज्याङ्ग—दूध या रस, मूल, काण्ड या शाखा।

गुण धर्म व प्रयोग—

रेचन, कफघ्न, ज्वरघ्न, रक्तशोधक, उष्णवीर्य, कफ को पतला कर मुख एव गुदमार्ग से निकालने वाला, प्लीहावृद्धि, कामला, कुष्ठ, आमवात, कृमिविकार, गाठ

शोथ आदि पर इसका प्रयोग किया जाता है। दूध का लेप करने से शोथ दूर होकर गाठ बैठ जाती है।

दूध या काण्ड का रस तीव्र विरेचक है, इसे आमवातिक पीडा, दतशूल एव मरमे आदि मे लगाते है। दाद पर इसे लगाने से मोटा चमडा निकल कर लाभ होता है।

मुखपाक पर—चने के बेसन को दूध या रस मे मिला आग पर कुछ पका कर, गोलिया बना सेवन कराते है।

जीर्ण विषमज्वर जन्य जलोदर मे, तथा विस्फोटक रोगो मे इसका रस काम मे लिया जाता है।

बाधिर्य—बहरेपन मे इसके दूध मे तैल को सिद्धकर कानो मे डालते है।

(१) कास पर—इसके रस मे अडूसे के पत्तो को पीसकर छोटी २ गोलिया बना चूसते रहने से खासी मे लाभ होता है। यदि काली खासी (हूपिंग कफ) हो, तो १-१ बूंद इसका दूध मक्खन मे मिला, चटाने से कफ निकल कर शाति प्राप्त होती है।

(२) बालको के कफ प्रकोप और डिब्बा रोग पर—इसके काण्ड या शाखा के टुकडो को गरम राख मे दबा कर, नरम हो जाने पर निकाले हुए स्वरस मे फुलाया हुआ सुहागा, अडूसा रस और शहद मिला कर उचित मात्रा मे दिन मे २-३ बार देने से विशेष लाभ होता है। इससे कोई हानि नही होती। यदि मात्रा अधिक हो जाय तो १-२ वमन और दस्त होकर कोठा साफ हो जाता है। यह प्रयोग बडी अवस्था वालो को भी हितकारी है।

(३) प्लीहा या यकृद्वृद्धि पर—३-४ दिन तक नित्य प्रात इसका दूध लगभग ५ बूद तक, शक्कर के साथ मिला, सेवन कराने से, विरेचन होकर उदर शुद्धि क्षुधावृद्धि, प्लीहा या यकृत का ह्रास तथा ज्वर शमन हो जाता है। किन्तु रोगी को भोजन मे खिचडी या दही भात देवे। यदि यकृत्वृद्धि हो तो घृत, शक्कर अति अल्प प्रमाण मे या बिलकुल ही नही देवें। (गा औ र)

प्लीहा वृद्धि के साथ हुई यकृत वृद्धि या यकृद्दाल्युदर (Enlargement of the spleen with enlarged liver) हो या कफोदर हो, तो इसके दूध मे चावलो को भिगोकर सुखाकर, उसकी यवागू (कांजी बनाकर ७ दिन तक प्रात सेवन करावें। इससे जल सदृश पतले दस्त होकर रक्त मे से बहुत दूषित जल कम हो जाता है, तथा उदर्याकला और शोथ का जल रक्त मे आकर्षित हो जाने से जलोदर एव शोथ दूर हो जाता है। इस प्रकार उदर शुद्धि हो जाने से उक्त रोगो मे लाभ होता है। (गा औ र)

(४) सधिवात तथा गठिया पर—इसके दूध को नीम की निबोली के तैल मे मिला लेप करते रहने से पीडा और शोथ दूर होती है।

गठियावात पर—इसके दूध या काड के रस को तेलनी मक्खी के सत्व (Cantharidin)[1] के साथ मिला प्लास्टर बनाकर लगाते हैं। किन्तु इसमे सावधानी की आवश्यकता है, क्योकि यह बहुत दाहजनक है। दाह होते ही प्लास्टर को निकाल डाले और पुन थोडी देर बाद लगा दे। ऐसा करने से लाभ हो जाता है।

सधिपीडा और शोथ मे इसके दूध या रस को सुहागे का फूला और नमक के साथ पीसकर लेप करने से भी लाभ होता है।

(५) श्वास पर—मन्दार के फूल, अपामार्ग-मूल, गोकर्णी (श्वेत विष्णुकाता) की जड इन तीनो को सम-

[1] तेलनी मक्खी लगभग १ इंच लम्बी होती है। तथा काले रंग के इसके दो पर होते, जिन पर नारंगी रंग के बिन्दु होते हैं। यह मक्खी काश्मीर एव उत्तरी भारत मे वर्षा काल में पाई जाती है। युरोप मे इसकी विदेशी जाति (Cantharis Vesicatoria) का प्रयोग किया जाता है।

इस मक्खी में कैन्थराइडिन नामक उक्त सत्व २.९ प्रतिशत तथा उडनशील तेल, कषाय द्रव्य और वसा होती है।

इसका बाह्य प्रयोग रक्तोत्क्लेशक व निस्फोट-जनन है। इसका लेप वाजीकरणार्थ, तिल तेल मे मिला शिश्न पर करते है। तथा श्वित्रकुष्ठ, वात व्याधि, व्यग व खालित्य में भी यह लेप करते हैं। आभ्यन्तर प्रयोग से यह वाजीकरण, मूत्रल व आर्त्तवजनन है। मात्रा—आध से २ रत्ती तक।

अंगुलियाथूहर खुरासानी

Euphorbia tirucalli Linn
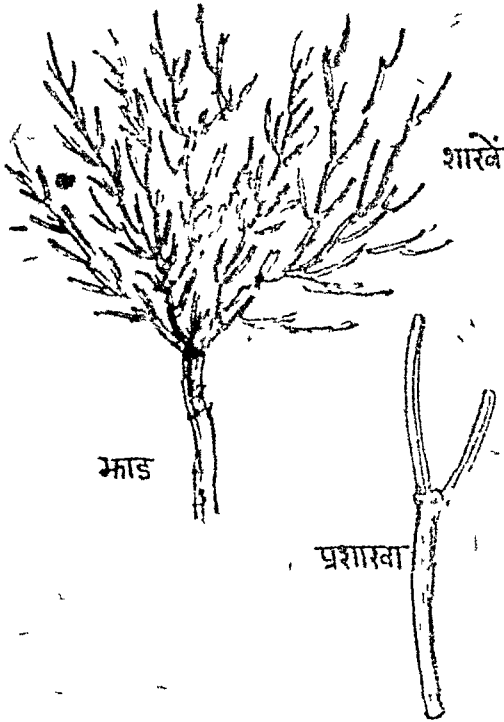
इसके विषय मे वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा लिखते है कि यह झाड जमीन से १० फीट ऊचा होता तथा तने के ४ फीट ऊपर केर वृक्ष के समान विना काटो की शाखा प्रशाखाओ का फैलाव होजाता है। इसकी सबसे पतली प्रशाखा भी मोटाई तथा लम्बाई मे पेंसिल के समान होती है। यह सदा हरा-भरा रहने वाला झाड है। इसकी कोमल शाखा प्रशाखाओ मे लम्बाई के रुख मशीन के टोरे जैसे-उभार और गहराइया होती हे। राजस्थान के उदयपुर जिले मे राजसमन्द, नाथद्वारा, उदयपुर, देलवाड़ा आदि कस्बो के आस पास के खेतो के बन्धो पर अक्सर इस थूहर के झाड़ लगे हुए देखे जाते है।

नामः—

ससला, सातला, मारा बहुक्षीर, चर्मकषा इ०। हि.-खुरासानी थूहर, अगुलिया-थूहर, कौंपाल सेह ड वारकी थोहर छिमिया सेहुड इ०। म.—शेर काडवेल, चिकाडा। गु—खरमाणी थोर। ब.-लंका सिज। अ. मिल्कहेज-(Mill hedge)। ले०-यूफोर्बिया टिरुकाल्ली।

रासायनिक संघटन—

थूहर न० १ के जैसा ही है।

प्रयोज्यांग—दूध, पत्र और छाल।

गुणधर्म व प्रयोग —

कटु, तिक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य, लघु, प्रभाव मे रेचक, तथा शोफ, आध्मान, पित्त उदावर्त्त, रुधिर विकार आदि नाशक है। यह मछलियो के लिये मारक होता हे।

दूध—विरेचन, दाहक एव विषाक्त है। त्वचा पर लगने से यदि तुरत पोंछा न जाय तथा तैलादि स्निग्ध पदार्थ न लगाया जाय तो छाला पड जाता है। इसे सेवनार्थ मधु या नमक के साथ देते है, अथवा काली-मिरच या चावल या चने की दाल मे इसकी कई भावनाए देकर उसका प्रयोग वमन-विरेचनार्थ किया जाता है।

१. वातनाडी एव मज्जातन्तुओ की पीड़ा मे इसके दूध का लेप तिल तेल मिलाकर किया जाता है।

२ चर्मकील या मस्सो पर ताजा दूध २-३ दिन तक लगाने से वे सूखकर गिर जाते है।

३ न्यूरेलजिया एव-वात विकार मे त्वचा पर छाला लाने के लिए इसका दूध लगाते है। बिच्छू के दश-स्थान पर यह दूध लगाते हे।

४ शुष्क खाज पर—इसके झाड के नीचे जो इसकी कलमे सूखकर नीचे गिरी हो उन्हे जलाकर तेल मे खरल कर मालिश करे।

५ उपदश-विकार जन्य-सधि पीडा मे इसके ताजे दूध मे नीम-पत्र-रस और शहद मिला कर देवे।

६ हिक्का व श्वास मे इसका दूध शक्ति के अनुसार २ बूद से १०-१२ बूद या आवश्यकता हो तो २-३ मा. तक मक्खन मे मिलाकर (मक्खन १ से ५ तो तक) देवे। इससे वमन-रेचन होकर पेट साफ होकर, दोष शात होते एव हिक्का बन्द होती हे। पथ्य मे दही और चावल देवे।

७ दाद पर—कैसा ही दाद हो केवल एक बार इसका दूध लगा देना ही काफी हे। वह स्थान जलेगा नही

दूसरे दिन वहा ललाई पैदाकर फफोला उठाकर दूषित पदार्थ एव कीटाणु आदि को नष्टकर, २-३ दिन मे पुन प्रदाह और ललाई को मिटाकर रोग को विल्कुल निर्मूल कर देगा। निजी परीक्षित है।

—वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा देवगढ (उदयपुर)

८ पामा पर—अगुलियो के मूल पर या चूतड पर जो पीले पूय वाली पामा (छाजन, उकवत) होती है, जिसमे खूब खुजली होती है, उस पर इस थूहर की कलमो या शाखाओ को जलाकर काले कोयले कर (धुआ निकलने पर पात्र को ढक देने से काले कोयले हो जाते हैं) उसे पीसकर तेल या धोया हुआ घी मिलाकर लगाने से पामा दूर हो जाती है। (गा औ र)

९ विषम ज्वर पर—इसकी पकी हुई कलमो को केले के हरे पत्ते मे लपेट कर आग मे सेक कर रस निकाल, उसमे खपरे के टुकडे को आग मे रख लाल होने पर डालदे, फिर उस टुकडे को निकाल डाले और उस रस मे भुनी हीग मिला कर लगभग ४ तो. तक (या ३ माशे से १ तोला तक) पिलावे। (व गुणादर्श)

१० नाभि टलने पर—नाभि के आस-पास इसके दूध का लेप करे। (व. गु)

११ कर्णशूल पर—इसकी शाखाओ का निकाला हुआ रस कान मे डालें, अथवा इस रस मे समभाग बकरी का गरम किया हुआ दूध मिलाकर कान मे डाले। (व० गु०)

१२ विषखपरा के विष पर—इसके रस को तलुवो पर तथा दश-स्थान पर मलें। साथ ही २ चम्मच यह रस (या १ तो तक) पिलावे। (व गु)

१३ उदर-पीडा पर—इसके कोमल पत्तो को कतर-कर उसमे नमक को खूब अच्छी तरह मसल कर खिलाते है अथवा इसके कोमल काड या मूल का क्वाथ पिलाते हैं।

मात्रा—दूध १ से २ बूद तक। अधिक मात्रा मे देने से जो इसका विषाक्त प्रभाव होता है, उसके निवारणार्थ पानी मे शहद मिलाकर पिलावे, या मक्खन खिलावें तथा मक्खन का लेप भी करें।

इसकी लकडी के कोयलों का उपयोग बारूद बनाने मे किया जाता है। इसके दूध मे पारद को ७ दिन तक खरल करने से वह स्थिर हो जाता है। उसकी चचलता कम हो जाती है। (व गु.)

थूहर नं. ५ (तितली-सातला) (Euphorbia Dracunculoides)

ऊपर के प्रकरण (थूहर न ४) के प्रारम्भ की पादटिप्पणी मे जिस तितली के सातला थूहर होने की संभावना की गई है। उसके एक वर्षायु क्षुप प्राय. ४-८ इञ्च लम्बे, चिकने, सामान्यत धूसर वर्ण के होते हैं। इसमे पीताभ क्षीर होता है (चरक के कुछ प्राचीन टीकाकारो ने पीतदुग्ध सेहुण्ड को सातला माना है, शायद वह यही तितली हो—लेखक)। शाखाए प्राय द्विविभक्त क्रम मे निकली हुई रहती हैं। पत्र—अभिमुख (नीचे कुन्तल—प्रवृन्त, प्रासवत् या आयताकार रेखाकार, एव ० ७-२ इञ्च लम्बे, पुष्प—पुष्पाकार-व्यूह एकाकी और द्विविभक्त काण्ड के बीच मे होते हैं।

इसे कुछ लोग यवतिक्ता भी मानते हैं, क्योकि जव आदि के साथ खेतो मे ही इसके क्षुप अधिकतर पाये जाते हैं। (किन्तु यवतिक्ता कालमेघ को भी कहते हे। कालमेघ का प्रकरण देखिये-लेखक) श्री ठा बलवन्तसिंह जी ने इसे सप्तला या शखिनी (यवतिक्ता को भी शखिनी कहते है-लेखक) होने की ओर विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया है, तथा उनके मत से इसकी सातला होने की अधिक सम्भावना है।

नाम—

हिन्दी—तितली, यावची, कांगी। व०—छागल पुपटी, जायची। ले०—युफोर्बिया ड्राकनक्युलायेड्स।

गुण धर्म व प्रयोग—

चर्म-रोगो मे यह उपयोगी बतलाया जाता है। ग्रामीण लोग इसके बीज के तैल को जलाने के काम मे लेते हैं। (भा. निघटु के विमर्शकार श्री कृष्णचन्द्र चुनेकर ए एम एस)

हमारे मत से यह वही तितली बूटी है, जो बालको

के जमौधा रोग पर आश्चर्यकारी कार्य करती है, जिसका वर्णन पीछे के प्रकरण में किया गया है। —लेखक

थूहर नं ६ (थोर, सुर)

EUPHORBIA ROYLEANA

इसके बडे-बडे काटेदार क्षुप वाहरी हिमालय तथा जौनसार की घाटियो मे ५ हजार फीट की ऊंचाई तक (कालसी व सैया मे) पाये जाते हैं। काण्ड—५-७ कोणो से युक्त रहता है। पत्तिया विशाल (वृन्तरहित) ४-६ इन्च लम्बी, अग्रभाग पर चौडी एव नीचे की ओर क्रमश पतली होती है। —ठा. बलवन्तसिहजी के व. दर्शिका से साभार
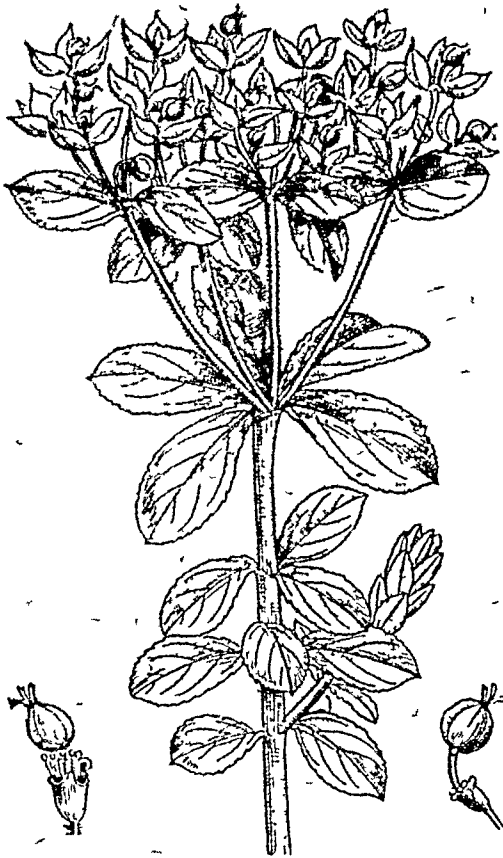
थूहर (हिर्स स्याह)
EUPHORBIA HELIOSCOPIA LINN

इस थूहर को हिन्दी व बगला मे शकर पितान, थोर, सुरु, सुराई आदि और लेटिन मे यूफोर्बिया रायलिएना कहते है।

इसके सर्वांग में दूध रहता है।

गुण धर्म—इसका दूध विरेचक, कृमिनाशक है।

थूहर नं. ७ (हिर्स सियाह)

EUPHORBIA HELIOSCOPIA

इसके भी छोटे २ पौधे सर्वाङ्ग, दुग्धपूर्ण होते है। यह पजाव मे सर्वत्र तथा नीलगिरि एव पश्चिमी हिमालय के प्रदेशो मे विशेष पाया जाता है। इसके पौधे आकार मे कुलफा जैसे होते ह।

नाम—

हि॰--हिरु सियाह, महुवी, गड्डालवुटी, दुदई, कुल्फा डोडक, चतरी वाल आदि ये प्राय पजाबी नाम है। ले॰--यूफोर्बिया हे लयोस्कोपिया।

इसमे सेपोनिन फेसिन (Saponin pha°ni) नामक एक सत्त्व होता है।

गुणधर्म व प्रयोग---

यह मूत्रल ह। इसका दूधिया रस त्वचा पर हुए फफोलो व छालो पर लगाया जाता है। तथा इस रस का लेप सविवात एव स्नायुशूल पर किया जाता है।

हैजा (कालरा) पर---इसके बीजो को भुनी हुई काली मिर्च के साथ देते है।

इसकी जड कृमिनाशक एव विरेचक है।

थूहर नं० ८—नागफनी

(*OPUNTIA DILLENII*)

यह अपने ही फनी कुल[1] (Cactaceae) का

[1] इस कुल के पुष्पवाहक द्विबीजपर्ण विभक्त दल, मासल काण्ड, एकहरा फूल, वृन्तरहित, फल ५ न या दल के बगल मे आते हैं। पुष्प को पखुडिया और नर-केसर अनियमित, बीज-कोष अधरस्थ, कई बीजयुक्त होता है। हाथतल के या सांप के फण के समान दल होते हैं, जिन्हे चाहे पत्ते समझें या काण्ड। दल पर दल होते जाते एव क्षुप का विस्तार होता जाता है। दल महीनों पड़ा रहता एव थोड़ा पानी पाकर बढ़ने लग जाता है।

नागफनी थूहर
OPUNTIA DILLENII HAW.

प्रधान क्षुप है, जो चारो ओर फैलने वाला घना तीक्ष्ण कटकमय, विशेष ऊचा नही होता। पत्र या काण्ड के बीच-बीच का भाग काटो के रूप मे परिणत होता है। ये काटे, सीधे, सुदृढ, तीक्ष्ण, नोकदार ½-१ इञ्च लम्बे, श्वेताभ होते, तथा बडे काटो के आस-पास छोटे-छोटे काटे होते है। काटा शरीर मे चुभ जाने से घाव हो जाता है, जो शीघ्र अच्छा नही होता। पुष्प—लाल आभायुक्त पीले या नारगी रग के, स्त्री-पुष्प के नीचे कच्ची दशा मे हरा एव पकने पर लाल, चमकीला रस-युक्त फल आता है। इस पर भी वारीक काटे होते है। फल का रस स्वादिष्ट, मीठा होता है।

थूहर की यह एक भिन्न जाति अमेरिका से भारत-वर्ष मे पोर्चुगीज लोगो से लाई गई थी, जो यहा नैसर्गिक होगई है। चारो ओर इसे खेत की वाडो मे वो देते है। अत्यधिक विस्तीर्ण होकर कष्टदायक हो जाने से इसका मूलोच्छेद करने के लिये, इसके भक्षक कीटाणु में या मारक विषो का प्रयोग इस पर किया गया, तथापि इसका विस्तार यत्र-तत्र प्रचुरता मे है। औषधि दृष्टि से यह बहुत ही लाभदायक है।

नोट—प्राचीन ग्रन्थों में तो इसका उल्लेख या उपयोग नही मिलता। भावप्रकाश आदि आधुनिक निघण्टुओं में भी इसका उल्लेख नही के बराबर है। इसे कोई सातला का ही एक भेद मानते हैं किन्तु ऐसा मानना भ्रमपूर्ण है।

इसी स्नुही–फणी (नागफनी) का एक भेद पत्र-कोणी थूहर है, जिसका वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये।

नाम—

स–कथारि, कंथार, कुमारी इ०। हि०–नागफनी थूहर, हत्ता या थापा थूहर। म०–फणी निवडुंग। गु०–दखणी थोर, हाथला थोर, नागन वेल। बं०–फणि मन्सा, नागफना। अ०–प्रिक्ली पियर (Prickly-pear)। लै०–ओपशिया डिल्लेनाय।

रासायनिक सघटन—

इसमे मेगनीज का उपक्षार (Malate of Manganese) एक वसामय क्षार, कुछ सायट्रिक एसिड (Citric acid), मोम, रालमय-द्रव्य, शर्करा आदि हैं।

फल मे—शर्कराजन्य-द्रव्य (Carbolic-hydrates) ४१ २९%, गूदा या ततु ३२%, मासघटक-द्रव्य (Albuminoides) ६ २५%, वसा ३.६३%, जलाश ५ ६७%, जलाने पर इसकी राख १७ ५६% होती है। किसी-किसी पके फल मे शर्कराजन्य द्रव्य भाग केवल ३०% और जल भाग २६% होता है) इसका क्षार लालिमा-युक्त श्याम वर्ण का होता है, जिसमे अयस्कात लौह का भाग अधिक रहता, तथा जम्बीराम्ल (सायट्रिक एसिड) और सेव का भी तुरसी मिश्रित रहती है। यह जल मे घुलनशील है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, पत्र, मूल, पचाङ्ग व क्षार।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्णवीर्य, दीपन, रोचन, रक्तदोष, कफ, वात, श्वास, हृद्रोग, आध्मान, ग्रन्थि, व्रण, शोथ, स्नायुक (नारू), अर्श आदि पर प्रयोजित होता है।

फल—फलो का रस दाहशामक, कफहर, आक्षेप-निवारक, जलोदर, अर्बुद, उदरशूल, मुजाक आदि नाशक, अधिक पित्तस्राव-कारक है। इस रस के सेवन से मूत्र लाल होता है।

(१) कास-श्वास पर—इसकी कली या अधपका या कच्चा फल आग पर सेक कर, ऊपरी छाल अलग कर, फल को मसल कर, कपडे मे डाल रस निचोड कर उसमें चीनी या मिश्री मिला पिलाने से, विशेषत बालको की कुकुर खासी (काली खासी) मे अच्छा लाभ होता है।

उक्त रस १ तो० मे मधु २ तो० और सुहागे का फूला ३ रत्ती मिला सेवन से श्वास एव कास मे लाभ होता है।

उक्त प्रयोगो से कास की घवराहट कम होती, कफ का विशेष प्रकोप नही हो पाता है। जीर्ण कफ-प्रधान रोगो मे इससे विशेष लाभ होता है। यह सगर्भा स्त्री को भी दे सकते है। उक्त प्रयोग के स्थान पर इसका शर्वत भी दे सकते है। आगे विशिष्ट योगो मे शर्वत और वालामृत देखे।

(२) कष्टार्त्तव पर—मासिक-धर्म वडे कष्ट से, अति पीडा-पूर्वक आता हो, तो—इसके फलो को कुचल कर १० तो० रस निकाल, उसमे समभाग कूप-जल मिलाकर पकावे, उवाल आने पर उतार कर उसमे से आधा गरम-गरम रात्रि के समय पिलावे। शेष आधा क्वाथ फेक दे। इस प्रकार कुछ दिन पिलाने से आराम हो जाता है। (भा० ज० बूटी)

(३) यकृत् की विकृति पर—इसके कच्चे या अधपके फलो को वारीक कतर कर, आग पर ढाक कर थोडी देर रख, नीचे उतार कर उसमे दही, भुनी हीग, भुनी राई, खाने का सोडा, सेधा नमक पीसकर मिलावे, व पत्थर या मिट्टी के पात्र मे रखे। इस रायते को नित्य थोडा-थोडा सेवन करे। यकृत् का सुधार होगा। (गृ० चिकित्सा)

नोट—कच्चे फलों को छेदने से जो पीताभ श्वेत रस निकलता है, उसे ५ से १० बून्द की मात्रा में शक्कर के साथ विरेचनार्थ देते है।

पत्र या काण्ड—

(४) ग्रन्थि, विद्रधि या छोटे-वडे जो पकते न हों और न फूटते हो, उग्र शोथ, नारु आदि पर—इसके मोटे पत्तो का गूदा निकाल, उसमे हल्दी-चूर्ण और थोडा नमक मिला, एकत्र पीस कर मोटा-मोटा लेप चढादे, तथा ऊपर से रेडी के या वड के पत्ते रखकर, कपडे से बाध दें, और ऊपर से सेंक करे। यदि ग्रन्थि नयी उठी हो, तो बैठ जावेगी, और पुरानी हो, तो कुछ दिन के उपचार से फूटकर बह जावेगी।

काख मे होने वाली (वगल विलाई) या जाघ मे होने वाली सदाह, शोथयुक्त ग्रन्थि, प्लेग ग्रन्थि आदि पर भी उक्त उपचार करे, अथवा—मोटे पत्ते को आग मे डाल दे, उसके काटे जल जाने पर बीच से चीर कर या काटकर, उस पर हल्दी-चूर्ण लगाकर, कपडे मे बाधकर, दो पोटली बना आग पर रख कर सेंक करे। इस प्रकार के सेक से भी ग्रन्थि फूट कर वहने लग जाती है।

प्लेग की अति पीडादायक ग्रन्थि हो, तो पत्र के काटे अलग कर, बीच से चीरकर, दोनो चिरे हुए पत्रो के बीच के पूरे भाग मे यथा प्रमाण—राई, हल्दी, अजवाइन और हीग भर दे। फिर इन पत्रो को बन्द कर, लोहे के तवे मे रख, आग पर रख दे। जब उपर्युक्त द्रव्य उन पत्रो के दोनो ओर के भागो मे भिद जावे तब सुहाते-सुहाते ग्रन्थि या गिल्टी वाले स्थान पर बाध दें। आध घटा के भीतर ही गिल्टी बैठ जावेगी। यदि कुछ शेष रहे तो फिर यही क्रिया करे। (धन्वन्तरि भाग २२ अङ्क ११ का परीक्षित प्रयोग)

ध्यान रहे उक्त उपचार एक प्रकार के नैसर्गिक-आपरेशन के सदृश है। इससे उदर या आत्र की विद्रधि भी फूटकर बह जाती है। किंतु पक्वापक्व को देख देना आवश्यक है। अपने हाथो के पृष्ठभाग से स्पर्श कर देखें, यदि वहा का स्थान कुछ गरम प्रतीत हो, तो समझे कि अन्दर पक्व दशा है। तब उक्त उपचारो को करे, तो शीघ्र पक कर रोग या विकृति वह जाती है। ग्रन्थि के फूट कर बहने तथा उसके मुख के खुल जाने पर उस पर असली शहद की पट्टी (वस्त्र या कपास को शहद

मे भिगोकर) उस पर रख, खाने का पान ऊपर से रख बाधते है। ग्रन्थि के घाव पर फिर सिन्दूरादि मलहम बाधते रहे। शीघ्र ही आराम हो जाता है।

घुटनो की शोथयुक्त पीडा या गृध्रसी पर भी उक्त प्रकार से इसके सेक की क्रिया से शीघ्र लाभ होता है। उक्त ग्रन्थी, विद्रधि, शोथ आदि की दशा मे रोगी को पथ्यापथ्य का पालन करना आवश्यक है। (सम्पादक)

नारू-जनित शोथयुक्त विद्रधि पर--पत्तो का गूदा निकाल पुल्टिस बना कर बाधने से लाभ होता है।

(५) रक्त-गुल्म (Fibrosis Uteri) पर—पत्तो का गूदा ५ तो० को थोडे पानी मे पकाकर उसमें सेधा नमक, भुनी हीग, भुनी राई, अन्दाज से मिला शाक की भाति बना, रुग्णा को खिलावें। प्रात-साय ऐसा करने से रक्तगुल्म दूर होगा। साथ ही साथ लेपार्थ--एलुआ (मुसब्बर, काला बोल) १ तो०, कडू जीरा ६ मा०, इन्द्रायन-मूल ६ मा०, हीग कच्ची व सेधा नमक १-१ मा० सबका चूर्ण गौमूत्र मे पीस, कुछ गरम कर गुल्म स्थान पर लेप कर ऊपर से बरगद का कोमल पत्र कडुवा तैल चुपड कर कुछ गरम कर बाध दो। ३ घटे बाद गरम-पानी से धोकर, कपडे से पोछ दो। प्रात-साय लगभग २१ दिन के इस उपचार से विशेष लाभ होगा। खाने मे वातकारक कोई चीज न खावे। (गृ० चिकित्सा)

(६) अर्श पर--पत्र को आग मे भूनकर, उसके भीतर का गूदा १ से २ तो० तक, प्रात-साय खाकर, ऊपर से गेंदे का पत्र-रस दो तोले तक पीवें। यदि मस्से निकलकर पीडा करते हों तो गेंदा के पत्तो को पीस, घी मे भून कर टिकिया सी बना कुछ गरम-गरम ही पट्टी से बाध दे, तत्काल आराम मालूम होगा।

(श्री मदनसिंह जी शिक्षक, वैद्यभूषण पानागढ जिला बिलासपुर)

वातार्श के मस्सो पर--काटे निकाल, पत्ते को बीच से चीर, दो भाग कर, दोनो पर हल्दी-चूर्ण बुरक कर, मस्सो को सेक दें। १ या ३ घटा सेक कर गुदा पर इसी पत्ते को बाध दे। इसका १० दिन प्रयोग करने से वातार्श नष्ट होता है। (स्व० प० भागीरथ स्वामी)

पत्तो को शुष्क कर, आग पर डालकर इसकी धूनी देने से भी लाभ होता है।

(७) सर्प-विष पर--काटे अलग कर पत्तो को कुचल कर रस निचोड कर पिलाते है। इसकी जड को भी पीसकर देते, तथा जड को पीस कर दंश स्थान पर लगाते है।

(८) नेत्र-पीडा पर—पत्तो के गूदे को गरम कर नेत्रो पर बाध कर रात्रि मे शयन करे। पीडा व लालिमा दूर होती है।

(९) प्लीहा-वृद्धि पर—पत्र को छीलकर छोटे-छोटे टुकडे कर १-१ तो० प्रात-साय नमक के साथ सेवन करने से, मलेरिया-ज्वर आदि के कारण बढी हुई प्लीहा शीघ्र ही कम हो जाती है।

मूल—

रक्तशोधक, शोथ-पीडा, विष-विकार नाशक है—

(१०) जीर्ण आमवात एव सधि-पीडा पर—इसकी जड का क्वाथ बनाकर पिलाते, तथा पत्र को आग पर भून, बीच से चीर कर, उस पर हल्दी व नमक बुरक कर, आग पर खूब गरम कर, बाधते हैं। शोथयुक्त पीडा दूर होती है। (व० गु०)

(११) छोटे बालको की फुन्सी या गाठ पर—प्रथम चन्दन घिसकर लगावे, फिर उसके ऊपर इसकी जड पीस कर लेप करदें। (व० गु०)

(१२) निद्रानाश पर—बराबर निद्रा न आती हो, तो जड के चूर्ण को गुड के साथ खावे। (व० गु०)

(१३) नारू पर—इसकी जड को गोमूत्र मे पीस कर लेप करे। (व० गु०)

(१४) मूषक-विष पर--चूहा काटने पर जो विकार होते है, उनके शमनार्थ—जड को गौदुग्ध मे पीसकर दोनो समय, ७ दिन तक पिलावे। नमक या नमकीन कोई भी पदार्थ न खावे। (व० गु०)

पुष्प—

इसके फूल कफ-विकार, कास-श्वास नाशक है।

पचांग—

इसके पचाङ्ग के स्वरस की क्रिया हृदय पर सामान्यत तिलपुष्पी (डिजिटेलिस) के समान होती

है, तथा यह रेचक है। यह रस हृदय की तीव्र धडकन को शमन कर, उसकी गति मे सुधार करता है। किन्तु यह तीव्र धडकन (स्पन्दन) किसी अन्य रोग के उपद्रव या लक्षण-स्वरूप मे पैदा होती हैं। यदि हृदय के ही विकार से यह स्पन्दन-वृद्धि हो, तो इससे लाभ नही होता।

(१५) पचाङ्ग की भस्म (या क्षार)—रेचक, मत्रल तथा हृद्य है। हृद्विकार के पश्चात् होने वाले हृदयोदर, आध्मान तथा जलोदर मे—पचाङ्ग को जवकुट कर मटकी मे भर, कपड़-मिट्टी कर, गजपुट मे भस्म करलें। यह भस्म १ मा० तक, शहद के साथ देते हैं।

पंचाङ्ग को सुखाकर जलावे, तथा क्षार-विधि से, इसका क्षार निकाल ले। यह क्षार भी हृदय-रोग, यकृत्, प्लीहा, उदर-रोग एव अर्श मे लाभदायक हैं। मात्रा—१ मे ४ रत्ती।

विशिष्ट योग—

(१६) शर्वत फणी—इसके पके फलो का रस ३/४ सेर, स्वच्छ शक्कर १ १/४ सेर, इन दोनों को मिलाकर मन्द आग पर पकावे। शर्वत की चाशनी हो जाने पर नीचें उतार कर ढक्कनदार पात्र मे रख दे। १२ घटे वाद उस पात्र को धीरे से विना हिलाये, ऊपर जो पपडी आगई हो उसे अलग कर दे। और शेष शर्वत को दूसरे पात्र मे छान ले, नीचे की जमी हुई गाद को फेक देवे। इसे दिन मे ३-४ वार अवस्था एव रोग के विचार से ६ मा से १ तो तक की मात्रा मे देने से कुक्कुर कास, श्वास आदि मे विशेप लाभ होता है। यह कफनिस्सारक है। यदि तुरन्त लाभ न हो तो कुछ दिनो तक इसके लगातार सेवन से अवश्य कार्य सिद्धि होती है। आवश्यकतानुसार इसके साथ प्रवाल-भस्म, शुक्ति या शख-भस्म या सितोपलादि-चूर्ण मिला कर चटावे। यह क्षय की खासी एव किसी भी कफ-विकार मे दिया जा सकता है। गर्भवती स्त्री को भी यह दे सकते है। मूत्रकृच्छ्र या सुजाक पर—इसका शर्वत मात्रा ४ मा मे चन्दन-तैल की १५ बूद मिला कर पिलाने से लाभ होता है।

(१६) फणी मद्यार्क या आसव—इसके अथवा पचकोणी फणी के फूल और कोमल पत्रो को कुचल कर १ भाग लेवे, तथा १०% वाली स्पिरिट या मृतसजीवनी सुरा ५ भाग उसमे मिला एक बोतल या कडे ढक्कनदार शीशी के पात्र मे वन्द कर ७ दिन रहने दे। फिर छानकर शीशियो मे भर लेवे। मात्रा ५ से २० बूद तक। हृद्रोग एव उदर-रोगो मे लाभकारी है। गलगण्ड और गण्डमाला को भी नष्ट करता है। पचकोणी फणी थूहर का वर्णन आगे के प्रकरण मे देखे।

(१७) फणी वालामृत—इसके लाल पके फलो का रस तथा कली चूने का नितरा हुआ जल ३०–३० तो लेकर (चूने की कली ५ तो एक बोतल मे डाल ऊपर से जल भर दे, चूना गल जाने पर, बोतल को खूब हिलाकर रखदे। २४ घटे वाद चूने का नितरा हुआ जल अलग निकाल कर नीचे के चूने को फेक दे या अन्य कार्यो के लिये रख ले। केवल इस नितरे हुए जल को ही प्रयोगार्थ लेवे) प्रथम वायविडग, सौफ और सतावर ५-५ तो. को एकत्र जौकुट कर १ १/२ सेर जल मे भिगोदे, १४ घटे वाद चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर, छानकर, उसमे उक्त फल-रस व चूने का जल तथा साफ चीनी २ १/४ सेर मिला, शरवत की चाशनी तैयार करले।

मात्रा १ तो प्रात साय (यह १ साल के वच्चे की मात्रा है, छोटे वच्चे को १/२ तो) चटावें, या दूध मे मिलाकर देवे। इससे वच्चो का वढा हुआ यकृत्, साधारण वढी प्लीहा, दूध के अजीर्ण से होने वाले वमन, पतले दस्त, मदाग्नि, उदर-कृमि, दौर्वल्य एव हड्डियो की कमजोरी दूर होती हे। (अनुभूत योग)

अथवा—इसके फलो का रस (फलो को थोड़े घृत मे भून लें, जिससे ऊपर के तीक्ष्ण रोम जल जावें, फिर उन्हे पानी से धोकर, प्रत्येक फल मे छिद्र कर रस निकाल लें, या कपड़े मे मसल कर रस निचोड ले) १ सेर लेकर उसमे समभाग शक्कर या मिश्री मिला, मंद आग पर पकावें। शर्वत की चाशनी आ जाने पर, नीचे उतार कर उसमे पिपरमेंट, कपूर, अजवाईन का सत प्रत्येक २ १/२ मा मिला, शीशी मे सुरक्षित रक्खें।

वालको को १ तो तक की मात्रा मे दिन मे २-३ वार चटाते रहने से ज्वर, हरे पीले दस्त, अजीर्ण, उदर-

शूल, अफरा, सर्दी, खासी, दूध डालना एव दात-निकलने समय के विकार दूर होते है। बालक बलवान होता है।

—श्री डा शिवकुमार शर्मा, सागर म प्र

थूहर नं. ९ पंचकोनी (नागफणी)

(*CEREUS GRANDIFLORUS*)

यह नागफनी के समान फैलने वाली एक प्रकार की जगली थूहर है जो शुष्क जमीन मे पैदा होती है। यह नागफनी की ही एक जाति है।

डा देसाई ने औषधि-सग्रह मे लिखा है कि इसके पत्ते नही होते। इसकी जडे काण्ड के बाजू मे होती, तथा जैसे-जैसे ये जडें आगे को जमीन मे जमती ह, वैसे-वैसे इसकी बेल बढती जाती है। काण्ड या दण्ड जो सीधे उठते ह उनमे सधि (जोड) होते तथा दण्डाकार मे काटे होते है, अर्थात् काण्ड मे जगह २ पर जोड होते और उनके किनारो पर काटे होते है। पुष्प—अत्यन्त सुन्दर बडे एव सुगन्धित, रात्रि मे खिलने तथा दिन मे सिकुडने वाले होते है। फूल का भीतरी भाग पीला एव ऊपरी भाग जामुनी रग का होता है। रात्रि के समय विकसित होने पर ये फूल तारो की तरह दिखाई देते हे। वर्षा के प्रारम्भ मे ये फूल लगते है। फल नही आते।

नाम—

स -रात्रिप्रफुल्ल, उत्तम पुष्प, महापुष्प, त्रिसपिन। हि०—थूहर पचकोनी। म०—पाचकोनी निवडुंग। अं-केकटस (Cactus)। लै०-सेरियस ग्रेंडिफ्लोरस।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह मूत्रल और हृद्य है। हृदय के लिये बलदायक है। हृदय पर इसकी क्रिया साधारणत डिजिटेलिस की जेसी होती हे। धडकन (स्पदन विशेष) मे यह उत्तम उपयोगी है। हृदय की एक पीडा ऐसी होती है, जिसमे बिजली के करेण्ट जैसी पीडा की लहर उठती है, उसमे भी इसका अच्छा उपयोग होता है। गलगण्ड (गाइटर) और हृदयोदर मे इसकी पूर्ण मात्रा देनी चाहिये। मात्रा—५ से २० बूद तक हे।

इस थूहर का अग्रेजी, लेटिन नामादि युक्त सक्षिप्त वर्णन स्व. डा वा ग देसाई कृत औषधि-सग्रह नामक पुस्तक के आधार पर यहा किया गया है। हमे ज्ञात हुआ है कि यह थूहर भारत म क्वचित् ही प्राप्त होती है, मैसूर व कुर्ग प्रान्त के घने उज्जड जगलो मे कही २ देखी गयी है। इसके काण्ड कुछ अस्पष्ट पच-कोणयुक्त होने से ही यह पचकोणी नही जाती है।

पचधारा थूहर (E Ligularia), चौधारा थूहर के समान ही, थूहर न० १ का एक भेद विशेष है, जो प्राय. भारत मे नही पाया जाता। —सम्पादक।

थूहर नं. १० (हडजोड़)[1]

(*VITIS QUADRANGULARIS*)

गुडूच्यादि वर्ग एव द्राक्षाकुल (Vitaceae) की इसकी चिरायु लता, अन्य लताओ जैसी वृक्षो पर उनके काण्ड एव डालियो से लिपटते हुए नही चढती, किन्तु वृक्ष आदि का सहारा मात्र लेकर उन पर चढती और लटकती रहती है। काण्ड—अगुष्ठ समान मोटा चौपहल हरा, बीच-बीच मे सधियो से युक्त एव मासल होता तथा देखने मे शृखला (साकल) सदृश मालूम होता है। इसके काण्डो मे कुछ अप्रिय गध आती है, स्वाद मे कुछ खट्टापन होता है। इसे जीभ पर लगाने से यह तुरन्त मोटी एवं खुरदरी बनती है। पत्र—अल्प सख्या मे, साधे की गांठ की बाजू से निकले हुए, मोटे, एकान्तर, हृदयाकृति के चिकने, दातेदार, ३–५ भागो मे विभक्त, ¾ से २ इञ्च तक लम्बे, ½ से १¼ इञ्च तक चौडे, लसदार, खट्टे रस वाले, अग्रभाग पर नीली छाया वाले, ¼ से ¾ इच लम्बे वृन्तयुक्त, पुष्प—छोटे, हरिताभ श्वेतवर्ण के, रोमश, बाह्य एव आभ्यन्तर कोष की ४-४ पखडी वाले, फल—गोल सिर पर चौडे, रसयुक्त, लगभग ६ मि मि बडे

---

१ यह द्राक्षाकुल का होता हुआ भी साधारणत थूहर ही माना गया है। तथा कई लोग इसे थूहर की ही एक जाति विशेष मानते हैं। अत. थूहर के साथ ही यह प्रकरण यहा दिया जाता है। तिधारी थूहर से बिलकुल मिलती हुई ४ या ६ अ गुल की छोटे २ पोर या ग्र थियुक्त यह लता होती है। —लेखक।

हाड़जोड
VITIS QUADRANGULARIS WALL.
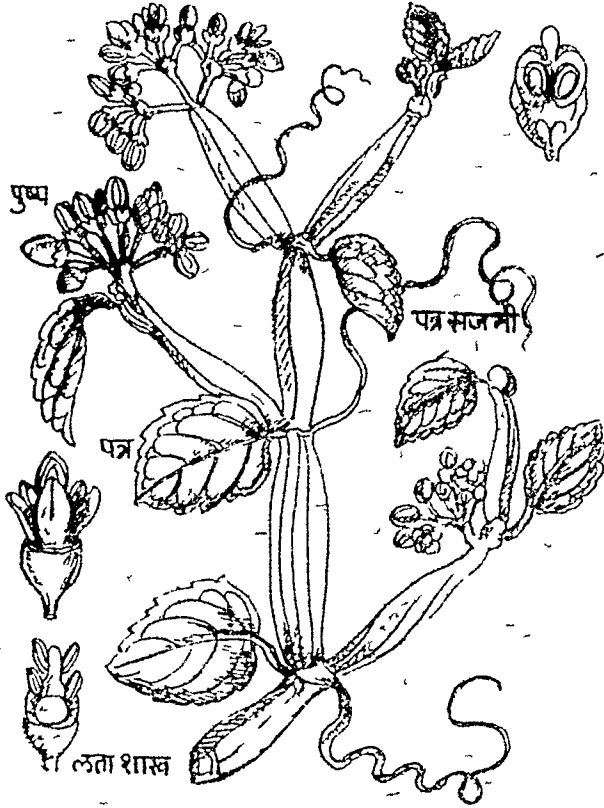
मटर जैसे पकने पर लाल वर्ण के, एव एक बीज युक्त, तथा बीज—हल्के भूरे रग के ५ मि मि बडे एव चिकने होते है।

लता की एक ग्र थि जमीन मे गाड देने से लता उग ग्राती है। दक्षिण मे तथा लका मे इसके कोमल पत्र एव काण्डो का शाक बनाकर खाते है। काड या प्रशाखा तोड़ने पर बहुत रससाव होता है।

यह समस्त भारत के प्राय उष्ण प्रदेशो मे सीलोन तथा मलाया-द्वीप-समूह ग्रौर अफ्रीका मे पाया जाता है।

प्राचीन ग्रायुर्वेदिक गन्थो मे इसका उल्लेख नही मिलता। भावप्रकाश तथा चक्रदत्त के समय से इसे निघण्टु-ग्रन्थो मे स्थान प्राप्त हुग्रा है।

नाम—

सं—ग्रस्थिसहारी, ग्रन्थिमान, काण्डवल्ली, वज्रवल्ली, ग्रस्थिशृंखला (ग्रस्थि-हड्डी) को साकल जैसी जोड़ने वाली होने से, या ग्रस्थि जैसी कडी शृंखला रूपी लकड़ी ग्रन्थि द्वारा जुडी रहने से)। वज्राङ्गी (वज्र के ग्राकार से मिलती हुई सी लता विशेष)। हि०—हडजोड, हरजोरा। म०-कांडवेल। गु०—हाडसांकला, वेदारी। वं०—हाडभांगा। ग्र ०—एडमांट क्रीपर (Admant creeper) ले०—ह्विटिस क्वाड्राग्युल्यारिस। सिसस क्वाड्रा गूलरिस (Cissus Quadrangularis)।

रासायनिक सघटन—

१०० ग्राम ताजे पौधे मे १६७ मि ग्रा केरोटीन (Carotene), तथा विटामिन सी ऊपरी काण्ड मे ३९८ मि ग्रा. निम्न भाग मे २३२ मि ग्रा ग्रौर ताजेस्वरस मे ४७९ मि ग्रा., पाया जाता है। कुछ केल्सियम ग्राक्जलेट (Calcium oxalate) भी होता है।

प्रयोज्याङ्ग—काण्ड ग्रौर पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, मधुर, तिक्त, कटु, ग्रम्लविपाक, उष्ण-वीर्य, वातकफशामक, रेचन, दीपन, पाचन, पित्तकारी, वीर्यवर्धक, कामोद्दीपक, रक्तशोधन व रक्तस्तभन, तथा कृमि, उदरविकार, ग्रग्निमाद्य, प्लीहा, शूल, वातविकार, व नेत्रविकारो ग्रादि पर उपयोगी है। चारधार युक्त काडवाली लता ग्रत्यन्त उष्ण, ग्राध्मान, तिमिर, वातरक्त, ग्रपस्मार, वातव्याधि, शूल तथा भूतोन्माद नाशक होती है।

(१) वातविकार पर—काण्ड की ऊपरी छाल को छीलकर भीतर के गूदे मे ग्रर्धभाग छिलकारहित उर्द की दाल मिला, जल के साथ सिलपर पीसकर, तिलतैल मे पकौडी पकाकर खिलाने से लाभ होता है। (भा प्र.) ये पकोडिया ऊरुस्तभ मे भी लाभदायक है।

(२) ग्रस्थिभग्न ग्रभिघातज शोथ ग्रादि पर—हड्डी मुड गई हो, तो इसके काण्ड को कूट पीस कर, गरम कर, पुल्टिस बना कर बाधते इसका गरम-गरम लेप करते हैं। इसके जड के चूर्ण की पुल्टिस बना बाधते है। तथा इसके रस द्वारा सिद्ध तेल की मालिश करते ग्रौर काड के स्वरस मे घृत पकाकर पिलाते है। शीघ्र लाभ होता है।

ग्रभिघातज वेदना तीव्र हो, तो इसका कल्क १ पाव

व इसके स्वरस ४ सेर मे १ सेर तिल तैल मिला तैल सिद्ध कर मालिश करे ।

रीढ की हड्डी मे विशेष पीडा हो, तो इसके कोमल काण्डो का विछौना बना, उस पर रोगी को सुलाते हैं। कटिवेदना-निवारणार्थ इसकी पुरानी शाखाओ को कूटकर कमर पर बाधते हैं।

(३) उपदश-विकार जन्य शारीरिक स्थायी ऊष्मा पर—काड को आग के भूभल मे गरम कर, मसल कर निकले हुए २-२ तो रस मे समभाग गोघृत मिला दिन मे १ या २ बार, ७ दिन तक पिलावे । नमक से परहेज करें। (व गु)

फिरग (उपदश) पर—इसके उक्तरस को वाकेरी-कन्द (Caesalpinia Diyyna) के साथ ७ दिन तक सेवन कराया जाता है। (ओ सग्रह)

(४) अनियमित मासिक धर्म पर—१ मास मे कई बार ऋतुस्राव होता हो, तथा कई दिनो तक जारी रहता हो, तो उक्त (प्र०३) गोघृत युक्त रस मे गोपी चदन या सेलखडी और मिश्री-चूर्ण १-१ तो मिला पिलावे। (व०गु०)

(५) उदर-विकारो पर—इसके नरम काण्ड या कोपलो को आग पर थोडा सेक कर चटनी बना खिलाने से क्षुधा-वृद्धि होती है ।

मदाग्नि पर—काड का चूर्ण सोठ के साथ सेवन कराते हैं।—आगे विशिष्ट योगो मे मुरब्बा देखे।

उदर-शूल पर—काड को चूने के पानी मे उबाल कर पिलाते हैं।

अजीर्ण तथा कुचपन हो, तो—काण्ड के टुकडो को मटकी मे भर, गजपुट से काली भस्म तैयार कर ३-३ मा० जल के साथ दिन मे दो बार देते रहने से जीर्ण अजीर्ण-विकार दूर हो जाता है । कष्टदायक अतिसार, बार बार थोडा थोडा दस्त होता हो, तो वह भी इस भस्म के प्रयोग से शात हो जाता है।

हाजमा ठीक न हो, कुचपन हो, तो इसके कोमल काण्डो का या पत्तो का शाक बनाकर खिलाते हैं।

इसके छोटे छोटे कोमल काण्ड तथा पत्र वातुपरिवर्तन एव अजीर्ण जन्य अतिसार आदि आत्र विकारो पर हितकारी है । इन कोमल काण्डो तथा पत्रो को सुखाकर, चूर्ण रूप मे भी दिया जाता है।

विद्रधि या दुष्ट व्रण को शीघ्र पकाने के लिये इसके पत्तो को कूट कर, तैल मे पका कर पुल्टिस जैसी बना बाधते हैं।

(६) कर्णस्राव तथा नासारक्तस्राव (नकसीर) पर—कान से राध (पीव) निकलती हो, तो काण्ड का रस कान मे डालते है । नाक से रक्तस्राव हो, तो इसके रस का नस्य कराते है ।

(७) वाजीकरणार्थ—वज्रवल्ली लेप—इसके कोमल काण्ड, वच, असगन्ध, जलशूक (जल की काई, सिवार या सिरवाल) तथा कटेरी के पके फलो का चूर्ण समभाग लेकर, सबको पानी के साथ पीस कर लेप करने से लिङ्ग अत्यन्त स्थूल हो जाता है। (भा०भै०र०)

विशिष्ट योग—

(१) मुरब्बा हडजोड—इस लता के नवीन और कोमल प्रकाण्डो के छोटे छोटे टुकडे कर, उनको आवलो की तरह कोचनी से छेद डालें । फिर पानी मे डाल कर मुलायम होने तक उबाल कारबोनेट आफ सोडा मिश्रित जल से धोकर, शक्कर की चाशनी मे डाल दे । ७ दिन के बाद काम मे लावें । लगभग ८ मा० से १६ मा० की मात्रा मे दिन रात में २ या ३ बार सेवन करने से चिरकाल का हठीला अजीर्ण रोग, लगभग ४० दिन मे दूर हो जाता है। —डा०मुहिउद्दीन शरीफ।

(२) वज्रवल्यादि-गुग्गुल—हडजोडी, अर्जुन छाल, अडूसे के जड की छाल, इन्द्रायन की जड, लोह भस्म, सुहागे की खील, शुद्ध पारद, शुद्ध गधक और सेंधा नमक, सब समभाग एव शुद्ध गूगल सबसे ३ गुना लेकर प्रथम पारे गन्धक की कज्जली बनावें, फिर गूगल मे थोडा थोडा घृत डालते हुए कूट ले । जब गूगल पतला हो जाय तो उसमे शेप द्रव्यो का महीन चूर्ण मिला, अच्छी तरह कूट कर, सुरक्षित रक्खे ।

मात्रा—१ मा० सेवन से अनेक प्रकार का अस्थि-भग्न ठीक हो बल, वीर्य एव अग्नि की वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त यह गूगल, कृमि, कुष्ठ, नेत्र-विकार,

ग्रन्थि (शरीर मे गाठे उठना) कटि-वेदना, हृद्रोग, और आमवात को भी नष्ट करता है । —(र०र०)

नोट-मात्रा-स्वरस १-२ तो० । चूर्ण ११ से २० रत्ती तक।

ददना-दे०—गदना । दपेल—दे०—ग्रोटफल । दग्धरुहा-दे०-रामेठा ।
दडवल-दे०—गूमा । दन्तबीज- दे०—अनार या जमालगोटा ।

दन्ती (छोटी) (Baliospermum Montanum)

गुडूच्यादि वर्ग एव एरण्ड कुल (Euphorbiaceae) के इसके गुल्म ३-६ फुट ऊ चे, प्राय मूल से ही निकली हुई अधिक शाखा वाले, शाखाए श्वेत, हरित, सुदृढ, पत्र-शाखाओ पर विपमवर्त्ती, विभिन्न आकार के, ऊपर के पत्र प्राय २-३ इ च लम्बे गूलर पत्र जैसे भालाकार शिराजाल से युक्त, नीचे के पत्र अ जीर-पत्र जैसे ६-१२ इ च लम्बे, लट्वाकार या करतलाकार, ३ से ५ भागो मे विभक्त, किञ्चित नुकीले, पत्रवृन्त -४-५ इ च लम्बे, पुष्प—वसत ऋतु मे, हरिताभ, गुच्छाकार, एक लिगी, फल-½-१ इ च लम्बे, गोल, कुछ रोमश, एरण्ड-फल (रेडी) के आकार के, त्रिकोणीय, बीज—फल के प्रत्येक कोण या कोष्ठ मे १-१ तथा प्राय एक रत्ती वजन के, रेंडी-बीज से छोटे होते हैं ।

मूल—ऊगली जैसी मोटी, सीधी, कही कही टूटी हुई, मूल-छाल—भूरे रग की, खुरदरी, भीतरी काष्ठ भाग श्वेत, पीताभ, मुलायम किंतु चीमडा होता है । इसमे घुन शीघ्र ही लग जाता हे ।

छोटी और बडी भेद से दन्ती दो प्रकार की मानी गई है । छोटी दन्ती जिसका प्रस्तुन प्रसग है इसके विपय मे कोई द्विमत नही है । किंतु बडी दन्ती (द्रवन्ती) के सम्बन्ध मे मतभेद है । आगे दन्ती (बडी) का प्रकरण देखे ।

वीजो के विपय मे, भावप्रकाश कार ने जो लिखा है कि "जयपालो दन्ति बीज विख्यात तितडी-फलम्-इ" यहाँ वीज शब्द से बडी दन्ती के बीज मानना उपयुक्त जचता है, कारण जयपाल (जमालगोटा) यह बडी दन्ती के एक भेद (Croton Tiglium) का बीज है, न कि प्रस्तु-

त प्रसग की छोटी दन्ती (जगली जमालगोटा) का-विशेष वर्णन जमाल गोटा के प्रकरण मे देखें ।

ध्यान रहे Croton Polyandrum यह लेटिन नाम प्रस्तुत प्रसग की छोटी दन्ती के वृक्ष का, या इसका ही एक पर्यायवाची माना जा सकता है, न कि बडी दन्ती (या जयपाल वृक्ष) का जैसा कि कई लोगो ने मान रक्खा है ।

चरक के विरेचनीय, मूलिनी एव मूलासव, तथा

कुष्ठघ्न के अन्तर्गत है और श्यामादिगण मे इसकी गणना है।

इसके गुल्म विशेषत काश्मीर से भूटान तक तथा आसाम व खासिया पहाड से चटगाव तक, बगाल, बिहार, दक्षिण मे कोकण से ट्रावनकोर तक, तथा गुजरात के पावगढ और आबू के जगलो मे, आर्द्र या छायेदार स्थानो मे अधिकता से पाये जाते है।

नाम—

सं०-दन्ती (हाथी दात जैसी स्थूलमूल वाली होने से) उदुम्बरपर्णी, एरण्डफला (रेंडी के फल जैसे फल वाली), शीघ्रा (तीक्ष्ण आशुकारी), घुणप्रिया (शीघ्र घुन लगने से), निकुम्भा (कुम्भाकार फल होने से), प्रत्यक्श्रेणी (क्षुप समूह-बद्ध होने से)। हि०-दंती छोटी, जमालगोटा, निरफला हाकनी इ०। म०-दाती, जातर। गु०-दांती मूल। बं०-हाकुन, दन्तीगाछ। ले०-बेलिओस्पर्मम मान्टेनम जेट्रोफा मॉन्टेना (Jatropha Montana), बेलि एक्सिलारे (B. Axillare) क्रोटॉन पोलिएन्ड्रम (Croton Polyandrum)।

रासायनिक संगठन—

मूल मे राल और स्टार्च, बीजो मे—तीक्ष्ण तैल होता है।

नोट—बाजारो मे इसकी जड के स्थान मे लाल रेंडी की जड बेची जाती है अतः सावधानी से परख कर इसे लेना चाहिए।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, बीज और पत्र।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण, मधुर, विपाक मे कटु उष्ण-वीर्य, [illegible], [illegible], पित्त-नाशक, [illegible], [illegible], [illegible] व विकासी है तथा आमदोष, [illegible], [illegible], उदर रोग, अर्श, कृमि, [illegible], [illegible], [illegible] विकार, [illegible], [illegible] पर प्रयुक्त किया जाता है।

[illegible] (छोटी), मोटी, [illegible] इस प्रकार अग्नि एव धूप से इसका विकासी गुण[1] नष्ट हो जाता है। (च० क० अ० १२)

चरक आदि प्राचीन ग्रन्थो मे दन्ती (छोटी) और द्रवन्ती (बडी दन्ती) इन दोनो के योग प्राय एक साथ ही दिये गये है। इनकी जडो के कल्प प्रयोग विस्तार से चरक कल्प स्थान अ० १२ मे देखने योग्य हैं। उनमे से कुछ सरल योगो को हम यहा उद्धृत करते है—

१ पाडु-रोग तथा पित्तज कास पर—मूल ८ तो और मुनक्का ३२ तो. इनका क्वाथ (अथवा—क्वाथ करने के बाद आसव-प्रणाली से आसव तैयार कर सेवन) पाडु एव पित्त-कास पर शोधनार्थ (विरेचनार्थ) प्रशस्त है। (च० क० अ० १२)

पाडुरोग पर—निम्न दन्त्यादिघृत भी परम लाभकारी है।

इसकी जड १६ तोला लेकर जौकुट कर २५६ तो जल मे पका, चतुर्थांश शेष रहने पर छान ले। फिर उसमे इसकी जड और बेलगिरी का समभाग मिश्रित कल्क (कोई कोई बेलगिरी नही लेते केवल जड का ही कल्क लेते है। बेलगिरी या बेलवृक्ष की जड लेने से यह घृत सौम्य होता है। मूल मे 'दन्तीशलाटुभि'' ऐसा पाठ है, जिसका अर्थ दन्ती मूल तथा दन्ती और बेल दोनो होता है) १६ तो और गोघृत ६४ तो (क्वाथ के समभाग ही यहा लेना ठीक है) मिला—मद आग पर घृत सिद्ध करलें। घृत को और भी सौम्य करने के लिए पाक करते समय इसमे घृत से ४ गुना जल मिला लिया जाता है।

रोगी को यथोचित मात्रा मे इसका सेवन कराने से यह पाडु, प्लीहा और शोथ को दूर करता है। (च० चि० अ० १६)

यदि रोगी केवल कामला से पीडित हो तो दन्ती-मूल के कल्क मे समभाग गुड मिलाकर, उचित मात्रा मे, शीतल जल के साथ पिलावें। यह उत्तम विरेचक एव

[1] जो द्रव्य धातुओं को हानि पहुंचा कर, सन्धिबन्धनों को खोल देता है, उसे विकासी कहते हैं। अग्नि और सूर्य द्वारा इसका विकासी गुण नष्ट कर देने से हानि की सम्भावना नहीं रहती।

कामलानाशक है ।

इस प्रयोग को आसव-विधानानुसार जल मे दन्ती-मूल का कल्क और कल्क के समभाग गुड डालकर आसव प्रस्तुत कर लेना और भी उत्तम है। तथा चरक का पाठान्तर 'शीतपारासुत' भी है।

२ परिणाम शूल पर—इसकी जड के चूर्ण के साथ निसोत, काली निमोत, सेवती के फूल, कुटकी, नील का पचाग और सोठ का चूर्ण अर्ध-अर्ध भाग मिलाकर (वलवान पुरुष के लिये चूर्ण ६ माशा तक की मात्रा मे) अण्डी के शुद्ध तेल (मात्रा ४ तो तक) मे मिलाकर देने से विरेचन होकर शूल तुरन्त नष्ट होता है। (से)

३ विपूचिका पर—दन्ती, चित्रक और पिप्पली समभाग, पत्थर पर जल के साथ पीसकर मन्दोष्ण जल से पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। (व से)

४ दतकृमिनाशार्थ—दन्ती, सत्यानाशी-मूल, कसीस, बायबिडङ्ग और इन्द्र जौ का समभाग चूर्ण बनाले। इस चूर्ण को कृमि वाले दात मे भरने से कृमि नष्ट हो जाते है। (व से.)

५. श्लीपद पर—इसकी जड और निसोत ४-४ तो., त्रिफला, अतीस, चित्रक और बायविडङ्ग २-२ तो सबको जल के साथ पीसकर ४० तोला घृत मे यह कल्क और सेहुण्ड (थूहर न० १) का दूध २० तोला (तथा पानी दो सेर तक) मिलाकर घृत सिद्ध करलो। इस घृत को १ से ४ बूद की मात्रा मे सेवन से विरेचन होकर दुस्साध्य श्लीपद रोग भी नष्ट हो जाता है। (व. से)

६ कुष्ठ रोगी के विशोधनार्थ—इसकी जड़ २५६ तो जौकुट कर १०२४ तोला पानी मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर, छानकर उसमे २५६ तोला घृत और ६४ तो तोरई का कल्क मिला घृत सिद्ध करलें। (मात्रा २ से ४ तो तक) पिलाने से वमन विरेचन द्वारा रोगी का विशोधन होकर रोग का प्रभाव कम हो जाता है। (वा भ)

७ अर्शाकुर नाशार्थ दन्त्यादि तेल—इसकी जड के साथ कनेर की जड, कसीस, बायविडङ्ग, इलायची, चित्रक व सेधा नमक समभाग मिला मिश्रित २० तो कल्क कर उसे सरसों तेल २ सेर, आक का दूध २ सेर (कोई-कोई अर्क दुग्ध कल्क के समभाग लेते हैं) और ८ सेर पानी मे मिला, तेल सिद्ध कर लेवे। इस तेल की मालिश से गुदा के मस्मे नष्ट होते है।

८ भगन्दर पर—इसकी जड, हल्दी और आमलो को जल के साथ पीस कर लेप करते रहने से दुस्साध्य भगन्दर भी शीघ्र नष्ट हो जाता है। (भा भै र)

९ कृमि, कुष्ठ एव कफदोष पर शिरोविरेचन-नस्य—दन्ती मूल, सेधानमक, मुलैठी, तुलसी (मरुवा) के बीज, पिप्पली, बायविडङ्ग और करज-फल का समान भाग महीन चूर्ण कर रोगी को नस्य देने से उक्त विकारो मे लाभ होता है। (च. चि अ ७)

कफज कास व श्वास वेग के शमनार्थ-जड का धूम्रपान भी कराते है।

१० ज्वर मे—मूल को तक्र के साथ पीस छानकर पिलाने से यकृत-क्रिया ठीक होकर, शौच द्वारा दूषित पित्त के निकल जाने से ज्वर हलका पड जाता है।

११ जलोदर, यकृतोदर, हृदयोदर, वृक्क विकृतिजन्य-उदर, कामला आदि पर, एव त्वचा के प्राय समस्त विकारो पर—मूल के साथ सौफ आदि सुगधि द्रव्यो को मिला क्वाथ रूप मे विरेचनार्थ देते है। मूल के चूर्ण को ३ मा तक की मात्रा मे गरम जल के साथ और यदि ताजी जड मिले तो १ तो तक की मात्रा मे शीत जल मे पीस छानकर विरेचनार्थ पिलाते है।

मूल का लेप शोथहर एव वेदना-स्थापक है।

बीज—रस और पाक मे मधुर, मल-मूत्रनिसारक है। विष, शोथ, तथा कफ-रोग-नाशक, जमालगोटा या उससे भी अधिक तीक्ष्ण एव तीव्र-रेचक व अधिक मात्रा मे प्राणघातक है।

बीजो का लेप शोथहर, उत्तेजक व वेदनास्थापक है। सर्प-विष पर—बीजो का नेत्रो मे अजन लगाते है।

१२. पिटिका या फुसियो पर—बीजो के साथ अण्डी के बीजो को पानी के साथकर लेप करने से सभी दोषो से उत्पन्न पिटिकाये अति शीघ्र नष्ट हो जाती है।

(भा भै र)

तैल—बीजो का तेल वात व्याधि मे अभ्यङ्ग के लिए प्रयुक्त किया जाता व रोग एव अवस्था या आवश्यकतानुसार पिलाया भी जाता है। कुष्ठ मे इसका लेप करते हैं। गठिया पर इसका मर्दन किया जाता है। यह जलोदर और पित्त नाशक है।

पत्र—श्वासहर, एव व्रण रोपण है। श्वास पर—पत्रो का क्वाथ देते है। व्रण रोपणार्थ पत्रो का प्रलेप करते हैं।

१३ शरीर मे कही छिन्न-भिन्न होने से रक्त-स्राव होता हो तो इसके कोमल पत्तो का रस लगाने तथा ऊपर से इसके पत्रो को बांध देने से रक्तस्राव बन्द होकर पूय-निर्माण या पकाव नही होने पाता तथा वेदना आदि उपद्रव शीघ्र ही दूर हो जाते है।

विशिष्ट प्रयोग—

(१) दन्ती हरीतकी—१ द्रोण (१२ सेर ६४ तो) जल मे दन्तीमूल १ सेर २० तो तथा उतना ही चित्रक, दोनो का जौकुट-चूर्ण पकावे। साथ ही उसमे बडी हरड २५ नग एक पोटली मे बांध कर डाल दे। अष्टमाश क्वाथ शेष रहने पर हरड की पोटली निकाल कर अलग रख दें और क्वाथ मे १ सेर २० तोला गुड घोल कर छान लेवें। उक्त हरडो को पोटली से निकाल, १६ तोले तिल-तैल मे भूनकर गुडयुक्त क्वाथ मे डालकर पाक करें। जब यथावत् लेहवत् पाक होजाय तब निसोत-चूर्ण १६ तोले, पिप्पली, सोठ का चूर्ण २-२ तो, इनका प्रक्षेप देकर उतार ले। शीतल होने पर उसमे चातुर्जात (दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, नागकेशर) का चूर्ण ४ तोला और शहद १६ तोला मिला दे। इस अवलेह मे से हरडो को अलग निकाल कर काच की बरणी मे रख ले।

मात्रा—१ से २ तोला तक लेह को चाट कर ऊपर से आधी या १ हरड के खा लेने से सुखपूर्वक विरेचन होता है तथा कुछ दिन के सेवन से प्लीहा, शोथ, गुल्म, अर्श, हृद्रोग, पाडु, ग्रहणी, उत्क्लेश (जी-मिचलाना), विषम-ज्वर, कुष्ठ, अरुचि (कामला, अफरा) आदि रोग नष्ट होते हैं। (भै० र०)

(२) दन्ती मोदक—दन्ती मूल और चित्रक-४-४ तो, हरड २० नग, निसोत, पिप्पली २-३ तो इनके चूर्ण को एकत्र मिला ३२ तो गुड के साथ घोटकर १० मोदक बनाते। १०-१० दिन के बाद १-१ मोदक खावे, ऊपर से गरम जल पीवे। इससे सब रोग नष्ट होते है।

ग्रहणी, पाडु, अर्श, कण्डू, कुष्ठ और वात-विकृति पर विशेष लाभप्रद है। सेवन-काल मे उष्ण पदार्थ सेवन करे। अन्य किसी प्रकार के पथ्य परहेज की आवश्यकता नही हैं—च० क० अ० १२ और व० से०। इस योग को अगस्ति मोदक भी कहते हैं।

(३) दन्त्यादि गुटिका—(रक्तगुल्म व कष्टार्त्तव निवारक)—दन्तीमूल, हीग, यवक्षार, कड़ुवी तुम्बी बीज, पिप्पली और गुड समभाग चूर्ण कर, उसे सेहुण्ड (थूहर न० १) के दूध मे घोटकर १-१ तोला की (आधुनिक मात्रा १½ मा तक की) गोलिया बना ले। इसके सेवन से रक्त गुल्म नष्ट होता तथा रुका हुआ मासिक-धर्म खुल कर होने लगता है। (यो० र०)

प्रति दिन प्रात साय अथवा केवल एक बार साय काल मे १ या २ गोली खाकर ऊपर से गरम जल पीवे। शीत पदार्थ का सेवन न करे।

(४) दन्ती (गुडाष्टक)—दन्तीमूल, सोठ, मिर्च, पिप्पली, निसोत, चित्रक मूल की छाल और पीपलामूल समभाग का महीन चूर्णकर सबको समभाग उत्तम गुड मिलाकर सुरक्षित रखे।

३ से ६ माशे की मात्रा मे गरम जल से प्रात सेवन करने से बल, वर्ण, अग्नि की वृद्धि होती तथा शोथ, उदावर्त्त, शूल, प्लीहा, पाडु, मेदोरोग आदि का नाश होता है। (भा० भै० र०)

(५) दन्त्यरिष्ट (अर्श, ग्रहणी आदि नाशक)—दन्ती-मूल, चित्रक-मूल, दशमूल, सरिवन, पिठवन छोटी व बडी कटेरी, गोखुरू, बेल, सोनापाठा, कुम्भेर, पाटल और अरनी इन सबकी जडे) तथा हरड, बहेडा, आमला प्रत्येक ४-४ तो लेकर सबको जौकुट कर १३ सेर जल मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर, छान कर, ठडा हो जाने पर उसमे ५ सेर गुड मिला चिकने मटके मे

(प्रथम धाय के फूल और लोध को पीसकर लेप करदे, लेप के सूख जाने पर इस मटके मे) भर, अच्छी तरह मुखसंधान कर १५ दिन सुरक्षित रक्खे। फिर छानकर बोतलो मे भर रक्खे। १ से २॥ तो तक समभाग जल मिला, सेवन से अर्श, ग्रहणी, पांडु, कब्जी, अरुचि आदि नष्ट होते है। मल व वायु का यथोचित निस्सरण होकर जठराग्नि दीप्त होती है। (चरक)

नोट—अन्य आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट संग्रह मे देखिये।

नोट—मात्रा—मूलचूर्ण १-२ मा.। मूल-क्वाथ २॥ तो. तक। पत्र-क्वाथ ४-८ तो. तक। बीज आधे से १ रत्ती तक।

अतिमात्रा मे यह क्षोभक, मादक और कभी २ घातक भी है। हानि निवारणार्थ—मधुर, स्निग्ध पदार्थ, शर्बत, दूध आदि तर द्रव्यो का सेवन करावे।

दन्ती (बड़ी) Jatropha Glandulifera

गुडूच्यादिवर्ग एवं एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके झाड़ीनुमा क्षुप अण्डी (मुगलाई एरण्ड) के क्षुप जैसा ही होता है, पत्र—लाल रंग के, पुष्प—हरिताभ पीतवर्ण के, फली—१-३ से मी लम्बी गोल, चिकनी, तथा बीज—काले, चमकीले होते हैं। मूल—गुच्छबद्ध अनेक होते हैं।

इसके क्षुप भारत के दक्षिण प्रान्तो मे, तथा बंगाल मे भी पाये जाते है।

कई लोग मुगलाई एरण्ड (Jatropha Curcas) को बड़ी दन्ती मानते हैं। किन्तु इसके मूल मे विरेचक गुण की विशेषता न होने से स्व. श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य तथा अन्य विद्वानो ने इसे बड़ी दन्ती स्वीकार नही किया है। आगे दन्ती (बड़ी) भेद नं० २ मे इसका वर्णन देखिये।

हमारे विशेष अनुसंधान से हमे ज्ञात हुआ है कि बड़ी दन्ती (द्रवन्ती) यह जमालगोटे (जयपाल) की ही एक जाति विशेष है, जिसका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत प्रसंग मे किया जा रहा है। भद्रदन्ती इसीका एक भेद है, इसका विवरण इसी प्रसंग मे आगे देखिये।

चरकसंहिता मे दन्ती के एक अन्य भेद नागदन्ती का उल्लेख है। इसका वर्णन पीछे द्वितीय खण्ड के घनसार के प्रकरण मे देखें।

नाम—

सं—बृहद्दन्ती, द्रवन्ती, शतमूलिका इ०। हिं०—बड़ी दंती, जङ्गली अरण्डी, चन्द्रजोत, लाल भाडा इ०। म०—रानएरंडी विलायती, एरण्डी उन्दरबीबी। बं०—लाल भेरंड। लै०—जेट्रोफा ग्लैंडयूलिफेरा।

गुणधर्म व प्रयोग—

पत्रादि तोड़ने पर इसके क्षुप से जो एक प्रकार का रस निकलता है, वह दाहकारक है, त्वचा पर लगने से जलन एवं छाला उठ आता है, खुजली होती है।

मूल—प्रदाह, श्वास, वातनलिका प्रदाह, गुल्म, अर्श कटिवात, पक्षघात आदि मे उपयोगी है।

(१) गुल्म पर—दन्ती गुग्गुल—

इसकी मूल के साथ छोटी दन्ती मूल, शुद्ध गूगल, निसोत, सेंधानमक और वच का चूर्ण समभाग लेकर, सबको एकत्र मिला उसमे थोड़ा घृत मिला, खूब कूटकर १-१ मा की गोलियां बनाले। दोषानुसार इसे गोमूत्र मद्य, दूध या द्राक्षारस के साथ (१ से ३ गोलियां तक) सेवन से गुल्म रोग दूर होता है। (व से)

नोट—इसके मूलों की संग्रहविधि, छोटी दन्ती के मूल संग्रहविधि के अनुसार ही है। संग्रहणार्थ—ताम्रवर्ण की उत्तम मोटी जड़ें लेनी चाहिये। प्राचीन छोटी और बड़ी दोनों दन्तियों के मूलों के प्रयोग प्राय एक साथ ही मिलते हैं।

(२) बालको की प्लीहा या यकृत या दोनो की वृद्धि पर—मूल को जल के साथ पीस और रस निचोड कर १ से ४ मा तक की मात्रा मे पिलाने से जुलाब होकर वृद्धि दूर होती है। आध्मान दूर होता है, संधिशोथ पर भी लाभ होता है।

(३) नेत्रो की स्वच्छता के लिये इसके उक्त रस को लगाते हैं। कीचड आदि दूर होता है। शेष प्रयोग छोटी दंती मूल जैसे ही है।

बीज—तीव्र रेचक है। इसके तैल को जीर्ण-व्रण,

दाद, सधिवात, पक्षाघात आदि पर लगाते है। बीजो के प्रयोग जमालगोटे (जैपाल) के बीजो के प्रयोग जैसे ही है। ये दोनो परस्पर प्रतिनिधि है।

पत्र—इसके पत्तो का स्वाद अरुचिकर है। पत्रो का उपयोग विशेषत ऋतुस्राव–नियमनार्थ एव वेदनास्थापनार्थ किया जाता है। विच्छू के विष पर पत्रो को पीस कर लेप करते है।

(४) गण्डमाला पर—पत्तो को पीसकर, वस्त्र से निचोड़कर स्वरस निकाल ले। फिर इस रस को छाया मे सूखने के लिये रख दे। जब कुछ गाढा हो जाय, बडी बडी गोलिया बना ले। इसे पानी मे पीस लेप लगाते रहने से लाभ होता है (व गु)

नोट—बडी दन्ती के शेष प्रयोग आगे के प्रकरण मे (दन्ती भेद न० १)मे देखें। उसका भी उपयोग बडी दन्ती मानकर किया जाता है -

भद्र दन्ती—यह प्रस्तुत प्रसग की बडी दन्ती का ही एक छोटा भेद है। इसके सुन्दर छोटे २ शोभायमान क्षुप होते है, जो प्राय बाग-बगीचो मे शोभा के लिये लगाये जाते है। पत्र आदि उक्त दन्ती के जैसे ही, बीज-दती बीज की अपेक्षा बहुत छोटे होते हे।

इसे स० हि० म० और व० मे भद्र दन्ती अग्रेजी मे कोरल ट्री (Coral tree) तथा ले०—जेट्रोफा मल्टिफिडा (Jatroha Multifida) कहते है।

इसके बीजो मे वसायुक्त स्थिर तैल तथा कुछ तिक्त द्रव्य पाये जाते है। यह तीव्र-रेचन व वामक है। इसका एक ही बीज घातक हो जाता है। इसे अंग्रेजी मे स्माल फिजिक नट (Small physic nut) कहते हैं। औषधि–कार्यार्थ प्राय इसका उपयोग नही किया जाता है।

दन्ती (बड़ी) भेद नं. १ [चन्द्रजोत, रतनजोत]
(Jatropha Curcas)

उक्त दन्ती की ही जाति के इसके क्षुप, सदैव हरे-भरे, शाखा-प्रशाखायुक्त १०-२० फुट तक ऊचे, रेडी के वृक्ष जैसे, तना या काड–अनियमित, सीधा या टेढा-मेढा छाल-धूमर वर्ण की चिकनी, चमकीली, भीतर का काष्ठ-श्वेत वर्ण का पोला या छिद्रयुक्त, पत्र-चिकने, बडे, गोल, चित्र-विचित्र रङ्ग के ४-६ इच व्यास के, ३ या ५ भागो मे विभक्त, प्राय रेडी पत्र जैसे, पुष्प-पीताभ-हरित वर्ण के, पुष्प-दण्ड पर अनेक पुष्प, फल-हरे रङ्ग के १-१॥ इंच, रेडी के फल जैसे, सूखने पर कुछ काले पडकर बहुत दिनो तक पेड मे लगे रहने वाले, बीज-रेडी के बीज जैसे होते हैं। प्राय ग्रीष्म काल मे फूल व फल आते है।

इसके पत्तो को तोडने मे श्वेत या ताम्र वर्ण का बहुत दूध निकलता है।

यह दक्षिण अमेरिका का आदिवासी पौधा, प्राय भारत के सब प्रान्तो मे नैसर्गिक रुप मे पाया जाता है। यह ग्रामो के निकट या बाग-बगीचो की मेडो पर भी लगाया जाता है। विशेषत दक्षिण के कारोमडल कोस्ट, ट्रावनकोर, बंगाल, बिहार, पश्चिमोत्तर प्रदेश आदि प्रातो मे अधिक पाया जाता है।

नोट—इसका एक भेद चन्द्रजोत-लाल (J. Gossypifolia) है। आगे के प्रकरण मे इसका वर्णन देखिए।

नाम—

स०—व्याघ्रैरण्ड, कानन एरण्ड दुग्धगर्भा, बृहद्-दन्ती आदि। हि०—चंद्रजोत, रतनजोत, विदेशी अरण्डी, जंगली-अरण्डी इ०। म०—मोगली एरण्ड। गु०—मोगली एरण्डो रतनजोत नेपाल। बं०—बाघ भेरड, वनभेरड। अ०—पर्जिंग नट (Purging nut) ले०—जेट्रोफा कर्कस।

रासायनिक सघटन—

बीजो मे हलके पीले रङ्ग का स्थिर तेल ३०% तथा शर्करा, स्टार्च, कर्सिन (Curcin) नामक एक विषैला-पदार्थ, केसीन (Caseine) आदि पाये जाते है। उक्त तेल मे इसका मुख्य कार्यकारी तत्व जेट्रोफिक एसिड (Jatrophic acid) होता है।

JATROPHA CURCAS LINN.
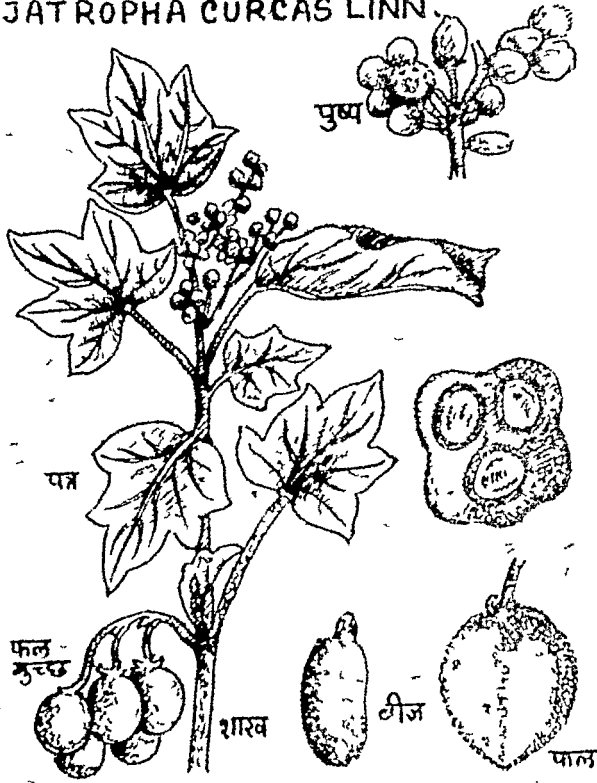
गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, कटु, उष्ण, दीपन व अर्श, व्रण, शूल आदि नाशक है।

दूध—पौधे से जो ताम्रवर्ण का रसस्राव होता है, वह रक्त साग्राहिक एव व्रण रोपक है। इस चिपचिपे दूध को जखम, व्रण या शरीर मे कही छिन्न-भिन्न होने से रक्तस्राव को बन्द करने के लिए लगाते है। इसके लगाने से उस स्थान का सकोच होता, तथा उस पर दूध सूखकर कोलोडियन (Collodion) के समान पतला पर्दा छा जाता है, जिससे वायु एव वायु मे रहे हुए कीटाणुओ से व्रण की रक्षा होती रहती हे। अत व्रण, जख्म आदि शीघ्र भर जाता है। इससे किसी प्रकार की हानि नही होती है। (डा० देसाई)

(१) गरमी या उपदश के चट्टे या व्रणो पर—दूध को लोहे के तवे पर लेकर उसमे बासी मुख का थूक मिलावे और थोडा रसकपूर घिसकर लेप करे। दो दिन मे लाभ हो जाता हे। (व० गु०)

उपदश जन्य शुष्क चट्टो पर—प्रथम रीठे के पानी से चट्टो को धोकर, पोछ डाले। फिर इसके दूध मे थोडा मक्खन मिला लेप करे। (व० गु०)

(२) बिच्छू के विष पर—दूध को हाथ मे लेकर उ गलियो से रगडने पर जब वह गाढा हो जाय तब उसे ४-५ बार दग्ध स्थान पर लगावे। (व० गु०)

(३) मसूढो की सूजन तथा दत-रोग पर—दूध को दिन मे २-३ बार लगावे। तथा इसकी ताजी लकडी की दातौन करे।

बीज—मधुर, गुरु, स्निग्ध, रेचक, वामक, कफपित्त-प्रकोपक, दाहजनक, वात-रोग गुल्म, कास आदि पर उपयोगी हे।

बीज या उसका तेल जमालगोटे जैसा या कुछ कम तीव्र-रेचक है, किंतु इसकी क्रिया अनियमित होने (कभी तो इससे तीव्र विरेचन होता हे, और कभी बहुत ही कम रेचन होता हे) से इसका आन्तरिक व्यवहार नही किया जाता है।

"विशेष कर बीज के अ कुर मे चरपरी, वामक, एव अतिरेचक शक्ति है। यदि ये अ कुर निकाल दिये जांय तो इसके ४-५ बीजो से साधारण निरुपद्रव विरेचन हो सकता है। इसके साबित बीज विष के समान हानिकारक होते है। इनके खाने से मुख मे दाह, पेट फूलना, उदर-पीडा, हृल्लास, वमन, तीव्र विरेचन, हाथ-पैरो मे दाह, छाती मे कफ का जम जाना, प्रलाप, मूर्च्छा आदि उपद्रव होते है। (स्व लाला रूपलाल जी-वैश्य के एक लेख से)

इसके तेल की १० से २० बू दो का रेचन-प्रभाव २॥ तोले रेंडी-तेल के बराबर हे। किंतु यह तीव्र वेदना, ऐंठन पैदा करता है। नीबू का रस पिलाने पर शाति प्राप्त होती है।

खुजली, चर्म कुष्ठ, विसर्प, छाजन एव अन्य चर्म-रोगो पर तथा आमवात मे इसे लगाते हे। व्रण-शोधनार्थ भी यह तेल उपयोगी है।

(४) शीत-पित्त तथा भगन्दर आदि व्रणो पर—बीजो के अन्दर की गिरी निकाल कर पीसकर जल मे मिला पात्र को आग पर रखे। जल जब थोडा रह जावे

तब नीचे उतार कर, पानी पर जो तेल उतराता है, उसे धीरे से कपास के फाये से निकाल शीशी में भर रक्खे। शीत पित्त पर इसे व्रणों पर कपास के फाये से लगावे। शीत पित्त पर इसे शरीर पर दिन में ४-५ बार लगावे। (व० गु०)

(५) ग्रंथि या बद आदि के फूटने पर जो क्षत होता है उसके पूरणार्थ—बीजों का तेल (जितना पुराना मिले उतना उत्तम) लेकर कपास की जाडी पट्टी बना कर, तेल में भिगोकर क्षत पर रक्खे, तथा उस पर बार-बार उक्त तेल की बूंदें डालते रहें। इस प्रकार प्रातःकाल की क्षत पर जमाई हुई पट्टी को सायंकाल निकाल कर दूर करे, तथा पुनः नवीन पट्टी जमा दे। कुछ दिन इसी क्रम से उपचार करने पर व्रण भर कर ठीक हो जाता है। (व० गु०)

(६) आमवात जन्य सन्धि-पीडा पर—इसके तैल में २ से ४ गुना सरसों तैल मिलाकर मालिश करते रहने से लाभ होता है।

मूल—वातानुलोमक, पाचक और ग्राही है।

(७) अजीर्णजन्य अतिसार या विसूचिका तथा उदर-शूल पर—इसकी एक अंगुल लम्बी ताजी जड को ७ नग कालीमिर्च और थोडी (१ रत्ती तक भूनी हुई) हीग के साथ पीस कर तक्र में घोल, छानकर पिलाते हैं। यह प्रयोग कोंकण की ओर बहुत प्रचलित है।

(८) वमन, रेचन बन्द करने के लिए—शक्ति के अनुसार मूल को, तक्र या चावल के धोवन में लगभग १ तो तक घिसकर पिलावे।

(९) बालकों के उदर-शूल पर—छोटे या बड़े बालक के पेट में दर्द हो, तो मूल को तक्र के जल में पीसकर उसमें थोडी हीग मिला पिलावें। (व० गु०)

(१०) गठिया (आमवात) पर—मूल की छाल पानी के साथ पीसकर, गरम कर लेप करते हैं।

पत्र—स्तन्यजनन, संकोचक व्रण-रोपक हैं। पत्तों के क्वाथ से व्रणों को धोते रहने से वे शीघ्र ठीक हो जाते हैं। क्वाथ से कुल्ले करने से मसूढ़ों से होने वाला रक्तस्राव बन्द होकर मसूढ़े व दांत मजबूत होते हैं।

(११) दुग्ध-वृद्धि के लिए—स्तनों पर पत्तों के क्वाथ का वफारा देकर, उन्हीं उबले हुए पत्तों को बांध देते हैं। अथवा—ताजे पत्तों को कुछ गरम कर स्तनों पर बांधते हैं। कुछ दिनों के इस उपचार से स्तनों में दूध का परिमाण बढ़ जाता है।

(१२) व्रण या फोडे को पकाने के लिए—पत्रों पर रेंडी-तेल चुपड कर गरम कर बांधते हैं।

दन्ती [बड़ी] भेद नं० २ (लाल चन्द्रजोत)

(Jatropha Gossypifolia)

उक्त दन्ती की ही जाति के इसके क्षुप ३-६ फुट ऊंचे, पत्र—३-४ लम्बे गोल, ३-५ खण्डों में विभक्त, पुष्प—लाल रङ्ग के, फल—छोटे, चिकने, गोल ½ इंच व्यास के प्रायः त्रिखण्डयुक्त, बीज—चिकने, कुछ लम्बे, काले रङ्ग के, चमकीले होते हैं। फूल और फल प्रायः वर्षाऋतु में आते हैं।

इस क्षुप की शाखाओं, पत्रों, [illegible] या उपपत्रों पर, पिच्छिल रसोत्पादक सूक्ष्म ग्रंथियां रोमों के रूप में रहती हैं, जिससे यह पौधा अति चिपचिपा हो जाता है। पत्र आदि तोड़ने पर इसका चिपचिपा पीताभश्वेत रस निकलता है। इसकी जड़ में कपूर जैसी गंध आती है।

नाम—

सं—रक्त व्याघ्रैरण्ड, निकुंभ। हि०—लाल चन्द्रजोत। ब०—लाल भेरण्डा। ले०—जेट्रोफा गॉसिपिफोलिया।

यह भी अमेरिका का मूल निवासी है। भारत के उष्ण प्रदेशों के जंगली रास्तों के किनारे या ऊसर भूमि में बहुतायत से पाया जाता है। इसका रासायनिक संघटन उक्त भेद नं० १ के ही अनुसार है।

बीज उन्मादकारक और वामक होता है। इसकी

दन्तीबड़ी नं० २

JATROPHA GOSSYPIFOLIA LINN.
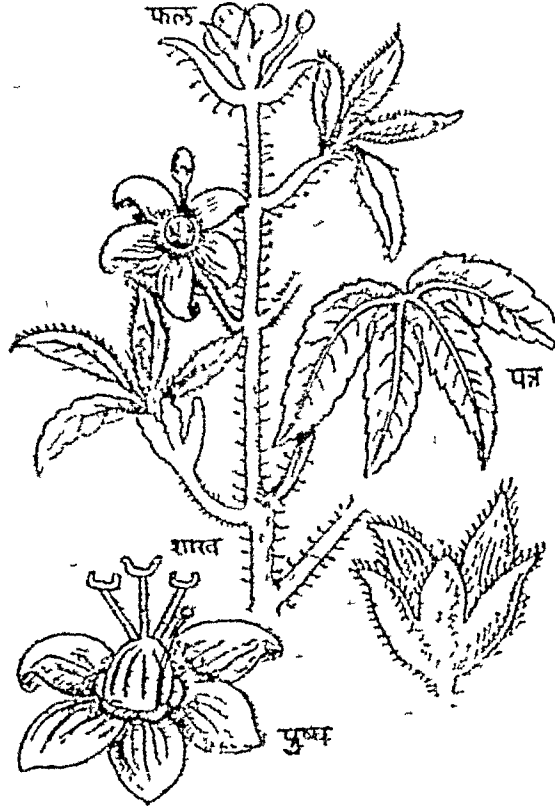
छाल का क्वाथ ऋतु–स्राव नियामक है । पत्तो का प्रयोग व्रणों पर तथा छाजन, खुजली आदि चर्म-रोगो पर किया जाता है । शेष गुण धर्म व प्रयोग उक्त दंती भेद नं० १ के अनुसार ही हैं ।

दमजरी—दे०—अजगर । दमनक—दे०—तुलसी दौना । दमन पापडा—दे०—पित्त पापडा दम्मुल अखवैन—दे०—खूनखराबा (हीरादोखी)

दरियायी नारियल

(*LODOICEA SECHEUARUM*)

नारिकेल-कुल (Palmae)के इसके वृक्ष नारियल के वृक्ष जैसे, किंतु उनसे बहुत ऊचे, सीधे, ताटवृक्ष जैसे ५५-१०० फुट ऊचे, पत्र-नारियल वृक्ष के पत्र जैसे खूब बडे-बडे, पत्ते परिपक्व होकर शुष्क हो जाने पर, तने पर लगे हुए लम्बे वृन्त सहित नीचे गिर पडते है, पुष्प—छोटे-छोटे, पु केशर प्राय ६ दो कतारो मे, फल-आकृति मे नारियल के फल जैसे किंतु उससे अत्यधिक बडे, लम्बे, जुडवा या दो खड वाले, बहुत बडे, स्थूल, भारी लगभग २०-२५ सेर वजन के होते है । फलों का ऊपरी कवच भी बहुत कडा होता है, इसे तोडने पर भीतर जो गिरी (गोला) निकलता है, वह प्रथम गीला रहता है, स्निग्धाश या तैल का अ श इसमे नही होता । यह गिरी सूखने पर पत्थर जैसी कडी हो जाती है । इस के कटे हुए, श्वेत रग के बेडौल टुकडे बाजार मे मिलते हैं । यह गिरी के टुकडे भी बहुत बडे एव २ अ गुल तक मोटे होते हैं । इन्हे औषधि-कार्यार्थ रेती से रेतवा कर चूर्ण किया जाता है । इसके फल वृक्ष पर १० वर्ष तक आते है । फल के ऊपरी कवच या कडे काष्ठमय भागो के कमण्डल बनाये जाते ह, जो प्राय जल–पात्र के रूप मे सन्यासी अपने पास रखते है ।

समुद्र–तट पर होने वाले ये वृक्ष पूर्व आफ्रिका के सिकेलीज Seychelles नामक टापू (द्वीपकल्प जिसे लेटिन मे सिचेलेरम Sechellarum कहते ह) एव अमेरिका के समुद्र तट के आदिवासी है । कुछ वर्षो से ये मलाबार और भारत के पश्चिमी समुद्र तट व बम्बई के निकट के समुद्र के किनारे पर भी होने लगे है ।

नाम—

हि० दरियायी नारियल । म०--दर्याचा नारल । गु०--खेरी नारियल, दरियाभू नारल । अ ०-सी कोकनट Sea coconut ले०--लोडॉयसिया सिचेलेरम् ।

प्रयोज्य अ ग–गिरी (गोला या मगज)

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, कटु, मधुर, विपाक मे कटु, उष्णवीर्य, कफवात–शामक-तृष्णा-निग्रहण, वामक, हृदयोत्तेजक, शोथहर, वेदनास्थापन, विषघ्न, मूत्रगत शर्करा न्यून-कारक,शीतप्रशमन,प्राकृतदेहाग्निसरक्षक है । तथा अजीर्ण अतिसार, विसूचिका, मधुमेह (इक्षुमेह) शीतज्वर आदि मे विशेष उपयुक्त है ।

इसकी गिरी मधुर, मजेदार होती है । सूखी

पुरानी हो जाने पर फीकी, कड़वी तथा जितनी-अधिक पुरानी होती है, उतनी ही अधिक उष्णताकारक व रूक्ष हो जाती है ।

(१) वमन, हृल्लास, अतिसार तथा विसूचिका मे इसे गुलाब जल मे घिस कर पिलाते हैं, इससे जब तक शरीर मे रोग का विष रहता है, तब तक वमन, अतिसार होते रहते है, किंतु तृष्णा शान्त हो जाती है, तथा रोगी का सुधार होता है । केवल वमन होते हों, तो इस का चूर्ण २ रत्ती तक मुनक्का मे रख कर खिलावे, शीघ्र लाभ होता है ।

(२) हृद्दौर्बल्य मे—हृदय की गति विशेष बढ जाने पर— इसे अर्क गुलाब अथवा अर्क बेदमुश्क मे घिस कर पिलाते रहने से शीघ्र ही हृदय स्वस्थ हो जाता है । इस विकार मे इसे जहर मोहरा खताई के साथ भी देते हैं ।

यकृत-दौर्बल्य मे इसे अनार के रस के साथ सेवन कराते हैं ।

(३) ज्वरो पर—कफ ज्वर या शीत ज्वर आने के पूर्व इसे १-२ रत्ती की मात्रा मे पीस कर गुलाबजल के साथ देने से, ज्वर नही आता ।

मोतीझरा (मथर ज्वर) मे इसे स्त्री के दूध मे घिस कर दिन मे दो बार देते हैं ।

पित्त जन्य विकारो पर इसके कच्चे फल का पानी अथवा ताजी गिरी खिलाते हैं ।

(४) विषो पर—अफीम या वत्सनाग के विष मे, इसे ताजे दूध मे घिस कर, बार बार पिलाते हैं । इससे जब तक शरीर मे विष का असर रहता है, तब तक बराबर वमन होते हैं और रोगी स्वस्थ हो जाता है ।

इसे १ मा० की मात्रा मे पीसकर पिलाते रहने से सर्व प्रकार का विष-विकार दूर हो जाता है ।

सर्प, बिच्छू, ततैया, कनखजूरा आदि के दंश पर—इसे अर्क गुलाब मे घिस कर मोटा लेप करते हैं, पीड़ा व जलन की शान्ति होती है । इसे गुलाबजल के साथ ही पिलाने से विष का असर दूर हो जाता है ।

(५) ग्रंथि, वृद्धि, ग्रंथि-शोथ-तथा उपदंश के व्रणो पर—इसे साभर शृंग के भस्म के चूर्ण तथा कुचला-चूर्ण के साथ पीसकर प्रलेप बनाकर लगाते रहने से ग्रंथि, वृद्धि एवं शोथ दूर होते हैं ।

उपदंश के व्रणो पर इसे गुलाबजल मे घोट कर लेप करते हैं ।

(६) मधुमेह मे—इसका क्वाथ ५ तो० से ७॥— तो० की मात्रा मे, दिन मे २-३ बार देते है ।

(७) बालकों के उदर शूल पर—इसे कुचले की जड के साथ पीस कर पिलाते हैं ।

अर्श पर धूम्र—इसके साथ सटी सुपारी और कुचला समभाग कूट कर, आग पर डालने से जो धुंआ निकले, उससे अर्श-कष्ट दूर होता है ।

मात्रा—चूर्ण २ से ४ रत्ती, अधिक से अधिक ८ रत्ती तक । यह उष्ण प्रकृति तथा उष्ण व्याधियो मे अहितकर है । हानिनिवारणार्थ गुलाब पुष्पो का अर्क, ताजा दूध और कालीमिर्च उपयुक्त है ।

विशिष्ट योग—

जवाखार मोहरा के योग मे यह डाला जाता है ।

इसे यदि सप्ताह मे १ या २ बार १ रत्ती से ८ रत्ती तक की मात्रा मे, गुलाबजल के साथ घोटकर पी लिया जाय, तो शीतज्वर, विषमज्वर, गठिया, लकवा आदि के आक्रमण नही हो पाते । क्योकि यह खराब दोषो को तथा रोग-विष को वमन द्वारा बाहर निकाल देता है । यदि शरीर मे विकृत दोष या कोई भी विष न हो, तो इससे बिल्कुल वमन नही होती । (व. च०)

इसका सेवन प्राय खाली पेट नही किया जाता ।

दरूनज अकरबी (Doronicum-Roylei)

भृंगराजकुल (GomPositae) के इसके बहुवर्षायु, बहुशाखायुक्त, सदैव हरे भरे पौधे सीधे, खडे २-४ फुट ऊ चे, कुछ रोमश होते हैं । पत्र—गोल, ४-५ इ च लम्बे तीक्ष्ण नोकवाले, बादाम के पत्र जैसे कुछ पीताभ, दंतुर, नीचे के पत्ते जमीन पर बिछे हुए पत्र-वृन्त ४-६ इंच लम्बे, कोमल वृन्त पर कुछ फूली हुई सी घुंडीदार पीले

दरूनज अकरबी (प्लेगनाशक जडी)
DORONICUM ROYLEI.DC.
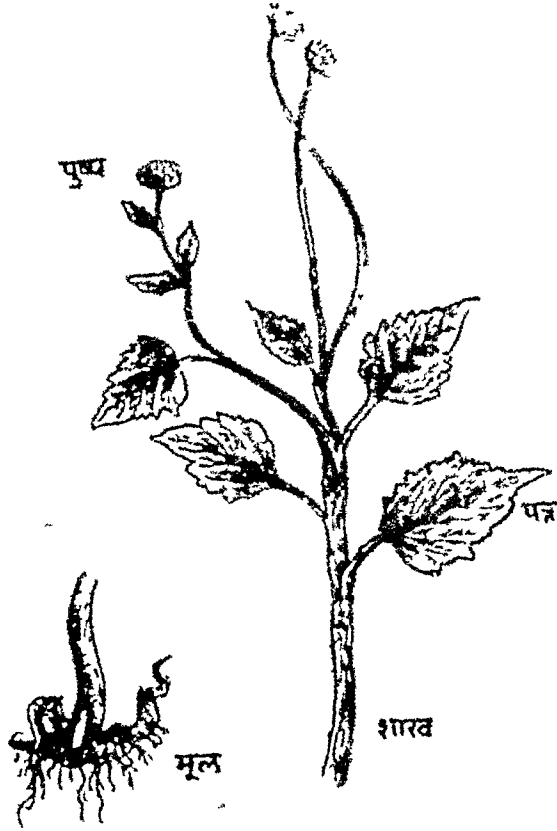
रग की ग्र थिया १-२ इंच व्यास की होती हैं। पुष्प—छोटे २ पीले रग के, पुष्प की पखुडिया लगभग ½ इच लम्बी, नोकदार पीतवर्ण की होती हैं। मूल—विच्छू के आकार की (अरबी भाषा मे अकरबी का अर्थ विच्छू होता है) छोटी, गाठदार, ऊपर से भूरी या मटियाली, भीतर श्वेत रग की, स्वाद मे फीकी, उष्णता व चुनचुनाहट कारक होती है। यह जड १० वर्ष तक हीनवीर्य नही होती।

नोट-रूमी और फारसी भेद से इसके दो भेद हैं। रूमी जो कडुवी व सुगधित होती है, उत्तम मानी जाती है। औषधिकार्यार्थ ऐसी जडी लेनी चाहिये जो कुछ कडुवी, सुगंधित, कडी व अन्दर से श्वेत हो।

भारतवर्ष मे इसके पौधे पश्चिमी हिमालय मे काश्मीर से गढवाल तक १० हजार फीट की ऊचाई पर पैदा होते है, तथापि इसकी जडें पर्शिया से यहा के बाजारों मे आती है। पर्शिया के अतिरिक्त यूरोप, सीरिया, श्याम व अफ्रीका मे यह अधिक पैदा होता है। इस विदेशी जडी का लेटिन नाम डोरोनिकम पेरेडेलिएन्चेस (Doronicum Paradalianches) है। प्रस्तुत प्रसग मे भारतीय जडी का वर्णन किया जाता है। विदेशीय जडियों मे इसकी अपेक्षा मादक अम्ल द्रव्य (Narcotic acid) का परिमाण अधिक होता है।

नाम—

सं —वृश्चिकाली (वृश्चिकाकार मूला)। हि०-दरुनज (दरूनज) अकरबी, प्लेगनाशक जडी। अं०-ल्युपार्डसबेन (Leopards bane)। ले०-डोरोनिकम रायली, डो. हूकेरी (D, Hookeri)।

प्रयोज्याग—मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्ण, रूक्ष, पौष्टिक, हृद्य, दीपन, कफवातशमन, प्लेग-नाशक, बुद्धिशक्तिवर्धक, गर्भाशय एव गर्भरक्षक, उदरवातहर, वेदनानियामक, विषनाशक है। व कास, पुष्पकुमविकार, सिरपीडा छाती की जलन, उदरशूल, वद, प्लेग-ग्र थि, यकृत व आमाशय की दुर्बलता आदि मे प्रयुक्त होती है। तथा वातकफजन्य अर्दित, पक्षवध, वातिकउन्माद, अपस्मार आदि व्याधियो मे विशेष लाभकारी है।

हृत्स्पन्द, हृद्दौर्बल्य, हृच्छूल, अवसाद आदि प्राय सर्वप्रकार के हृद्रोगो पर यह एक प्रधान औषधि मानी जाती है। हृद्विकार सम्बन्धी दवाल यस्क आदि कई यूनानी प्रयोगो का यह एक उपादान है।

(१) प्लेग-(ग्र थिक सन्निपात) निवारण की इसमे अद्भुत शक्ति है। प्लेग की ग्र थि पर इस जडी को अजीर के रस, या अगर या पानी के साथ घिसकर लेप करते हैं, गाठ बैठ जाती है। कहा जाता है कि घर के दरवाजे पर इसे लटका देने से घर मे प्लेग का प्रवेश नही हो पाता तथा इसे गले पर लटका लेने, एव थोडा थोडा इसके सेवन करते रहने से प्लेग का आक्रमण नही हो पाता। इस बात का समर्थन स्वर्गीय प्रसिद्ध

वनस्पति-अन्वेषक श्री भगीरथ स्वामी जी ने किया है। इसीलिए उन्होंने ही इसका नाम प्लेग नाशक जड़ी रखखा है।

२ जिस स्त्री को गर्भपात होने की तथा गर्भाशय में अनियमित सकोच या शूल होने की शिकायत हो, उसे इसका सेवन कराते है। कष्टकर प्रसव के समय इसे स्त्री की जाघ पर बाध देने से शीघ्र ही प्रसव सरलता से हो जाता है। गर्भाशय की पीडा—निवारणार्थ इसे गर्भाशय में धारण करते है।

३ उन्माद की दशा मे मस्तिष्क की उष्णता शात करने के लिए इसे कपूर के साथ देते हैं। दुःस्वप्न-नाशार्थ इसे सिर पर बाधते है।

४ सर्प, बिच्छू, छिपकला या अन्य विषैले जतु के विष पर इसे पानी मे पीसकर पिलाते तथा दश-स्थान पर इसका लेप करते है।

नोट—मात्रा—१ से ३ या अधिक मे अधिक ७ मा तक। उष्ण प्रकृति वालो को यह हानिकारक है। सिरदर्द आदि पैदा करता है। हानि-निवारणार्थ सोफ, इलायची, मिश्री या गेहू का निशास्ता[1] देते हैं।

इसके प्रतिनिधि रूप मे—नरकचूर, अकरकरा, मीठी कूट, सुरजान या लौंग इनमे से कोई भी द्रव्य लिया जा सकता है।

स्व श्री भगीरथ स्वामी जी ने लिखा था कि—कलकत्ता मे इस जडी को कविराज ठा मक्खन सिंह जी ११३ हरिसन रोड मुफ्त बाटते है। जिन्हे आवश्यकता हो उक्त पते से मगा सकते हैं।

दवना—दे—तुलसी मे तथा नागदौन मे।

---

१ गेहूँ को पानी में भिगोकर प्रात सिल पर पीस पानी के साथ कपडे मे छान, आग पर घी मे सेकना चाहिए। सेंकते समय उसमें ककडी, खरबूजा, तरबूज और बादाम की गिरी को पीसकर डाल देवें। जब खुशबू आने लगे तब मिश्री मिला हलवा बना लें। यही निशास्ता कहलाता हैं। (व० चं०)

दशमूली

(DAEDALAC ANTHUSROLUS)

वासाकुल (Acanthaceae) के इसके पौधे ४-५ फुट ऊंचे, शाखायें चतुष्कोण, पत्र—अभिमुख, पुष्प—नीले, नीली रंग के तीक्ष्ण परिदलपुंज, फली—[illegible] इंच लम्बी होती है। मूल—मूल लम्बी १० भागों में विभक्त होने से यह दशमूली कहलाती है।

यह घनी झाड़ियों या झरनों के किनारे एवं पहाड़ी स्थानों पर [illegible] आदि [illegible] के नीचे विशेषत पश्चिम भारत [illegible] आदि तथा दक्षिण में कोंकण आदि प्रदेशों में पाई जाती है।

नाम—

हि०—दशमूली, गुलजाम। म०—दशमूलि। लै०—डिडालेकन्थस रोसियस।

गुणधर्म व प्रयोग—

शीत, पौष्टिक कुछ उष्ण व स्वादु है तथा प्रदरादि नाशक है।

श्वेतप्रदर पर— इसकी [illegible] ४ मा तक की मात्रा में दूध के साथ उबाल कर सेवन कराते हैं।

ज्वर, सन्निपात आदि रोगों पर जड़ का क्वाथ देते हैं।

स्तनों मे दुग्धवृद्धि के लिए, विशेषत गाय, भैंस आदि जानवरो को दुग्ध बढाने के हेतु गर्भधारण होने पर इस जड़ी के चूर्ण को हलवा, दूध, दली या नरी के साथ खिलाते है।

दहिला—दे—सिहोरा

दाख

[Ribes Rubrum]

पाषाणभेद-कुल (Saxifragaceae) के इसके छोटे-छोटे क्षुप होते है। पत्र—अनार-पत्र जैसे हलके हरे रग के कोमल, फल—गोल, चिकने, बाह्यवर्ण हरिताभ लाल तथा अन्दर से गहरे नील वर्ण के चेंपदार एव सुचिक्कण होते है।

यह वनस्पति लाल और काले फलों के भेद से दो प्रकार की होती है तथा उत्तरी एशिया में विशेषतः सेव, नाशपाती, बलूत (मज) आदि वृक्षों की जड़ों के पास देखी जाती है।

बाजारों में दाख के नाम से एक प्रकार के दाख (द्राक्षा) के सूखे फल बेचे जाते हैं। अतः सावधानी से देख-भालकर इसे लेना चाहिये।

प्रयोज्य अङ्ग—फल।

नाम—

हिं०-दाक (यह पजाबी नाम है)।
अं०-रेड व ब्लेक करेंट्स (Red and black Currants)

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, शोथहर, पौष्टिक, शीतवातहर, वात-कफ शमन, आन्तरिक दोष हर व कटु है।

फलों को पीसकर लेप करने से शोथ या व्रणान्तर्गत विकृत दोष, मवाद आदि बाहर निकल जाते हैं।

दूषित वात-कफ के विकारों पर—इसे गरम जल मे भिगो, बीजो को दूर कर अखरोट या अरण्डी की गिरी के साथ पीसकर सेवन कराते है।

फलो का लेप—वात जन्य शोथ, कफ प्रधान-शीत-पित्त, सन्धिवेदना, व चेहरे की झाई पर किया जाता है। सिर के गज पर—इसे मेहदी-पत्र के साथ पीसकर लेप करते हैं। केशवृद्धि के लिए इसे रोगन गुल मे मिला कर लगाते हैं। प्लीहा वृद्धि पर—इसे चूने के पानी के साथ पीसकर लेप करते हैं।

नोट—मात्रा—२ मा तक।

अधिक मात्रा मे यह सिर पीडा, उदर-शूल पैदा करता तथा हृदय के लिए हानिकर है।

हानि-निवारणार्थ—जल मिश्रित शहद मे बार-बार वमन कराते, वस्ति (एनिमा) देते और बाद मे शिकजबीन पिलाते हैं। बिल्लीलोटन, गावजवा, और नरकचूर भी इसके हानि-निवारक है।

दाख—दे०—अगूर मे। दाडिम—दे०—अनार।

दाद मर्दन

(*CASSIA ALATA*)

शिम्बीकुल (Legyuminosae) के पूतिकरजादि उपकुल (Caesalpiniaceae) की इस बूटी की बडी झाडिया होती है। शाखायें उगली जितनी मोटी, अवनत एव कोमल, पत्र—लगभग १ से २ फुट तक लम्बे स्वाद मे ननाय जैसे, पुष्प—३ से १ फुट लम्बे पुष्प-दण्ड पर कुछ बडे पीतवर्ण के पखुडीदार-फूल अक्टूबर मास मे आते है। फली—लगभग ४ इच से ८ इंच लम्बी, ½
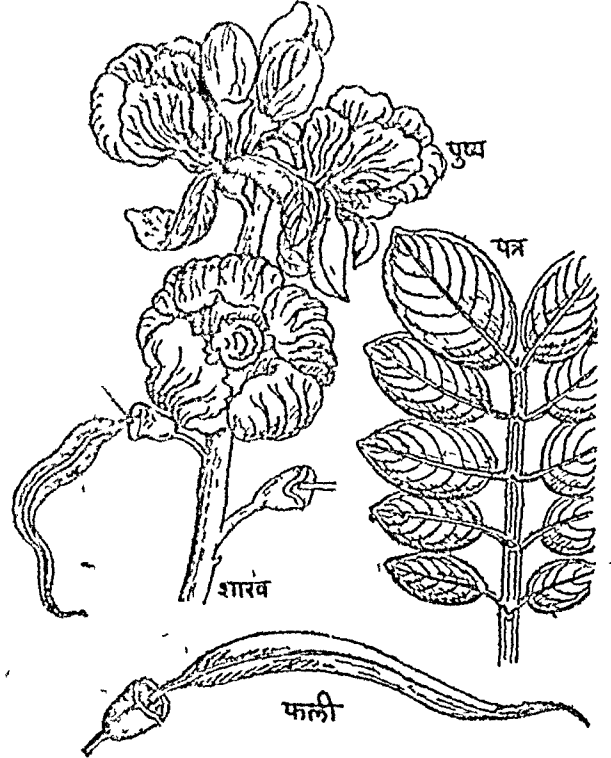
इञ्च चौडी, ४ से ८ इञ्च लम्बी, ½ इञ्च चौडी, चपटी, कुछ पीतवर्ण की चमकीली तथा प्रत्येक फली मे गोल चपटे छोटे-छोटे बीज, भूरे रग के ५० से भी अधिक होते है। फली फरवरी मास मे आती है।

यह अमेरिका देश का मूल निवासी, भारत के बगाल एव दक्षिणोत्तर प्रान्तो मे विशेष पाया जाता है।

वर्मा मे भी यह खूब होता है।

नाम–

सं०–दद्रुघ्न। हि० म० बं०–दादमर्दन। बम्बई की ओर विलायती आगटी। अं०–रिंगवर्म श्रब (Ringworm Shrub)। ले०–केसिया एलेटा, के० ब्रेकटियाटा (C Bractea), के० हरपेटिका (C Herpetica)।

इसमे क्रायसोफेनिक एसिड (Chrysophanic acid) पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग––

पत्र-कृमिघ्न, कण्डू, दद्रु आदि चर्मरोग-नाशक एव रेचक है। बीज-कसैले, रेचक, वात-कफ नाशक, व कुछ मूत्रल हैं।

१ दाद, खुजली, छाजन आदि पर—पत्तो को कूट-पीस कर नीबू का रस मिला लेप करने से नवीन चर्मरोग शीघ्र दूर होते है। अथवा—पत्तो को पीस कर समभाग मुहागे की खील मिलाकर लगाते हैं।

२ मुख के छालो पर––पत्र-क्वाथ के साथ अडूसा-पत्र मिलाकर धीरे-धीरे चवाते हुए चूसते हैं।

३ शुष्क-कास पर—पत्तो के साथ अडूसा-पत्र मिला कर धीरे-धीरे चवाते हुए चूसते है।

४ कोष्ठबद्धता पर—पत्र-चूर्ण जल के साथ देते हैं।

५. कष्ट-प्रसव पर—पत्र-क्वाथ पिलाते हैं।

६ श्वासनलिका शोथ-जन्य कास, श्वास पर—इसके पत्र और फूलो का क्वाथ देते है, बेचैनी दूर होती व कफ छूटने लगता तथा मल-मूत्र साफ होता है।

दादमारी नं० १ (*XYRIS INDICA*)

दद्रुघ्न-कुल (Xyridaceae) की २-३ बूटियो मे प्रधान इस वर्षायु बूटी के पत्र सीधे-लम्बे, पुष्प–लम्बे पुष्प-दण्ड पर गहरे लाल या बादामी रग के चमकीले पुष्प बडे शोभायमान, फल–छोटे-छोटे गोल होते है।

यह बूटी बगाल, वर्मा, आसाम, दक्षिणी कोकण तथा पश्चिमी प्रायद्वीप मे विशेप पाई जाती है।

नाम—

हि०–दादमारी, दावी दुली। ब०–चिनावास, दावी दूबी। ले०–क्सायरिस इ डिका।

इसमे चर्मरोग नाशक क्रायसोफेनिक एसिड जैसा ही एक लाल रग का द्रव्य पाया जाता है, जो शराब मे घुलनशील है

गुणधर्म—

यह खाज और दाद की एक श्रेष्ठ, सरल एव रामबाण औपधि मानी जाती है। पत्तो को पीस दाद या खाज पर लगाते हैं।
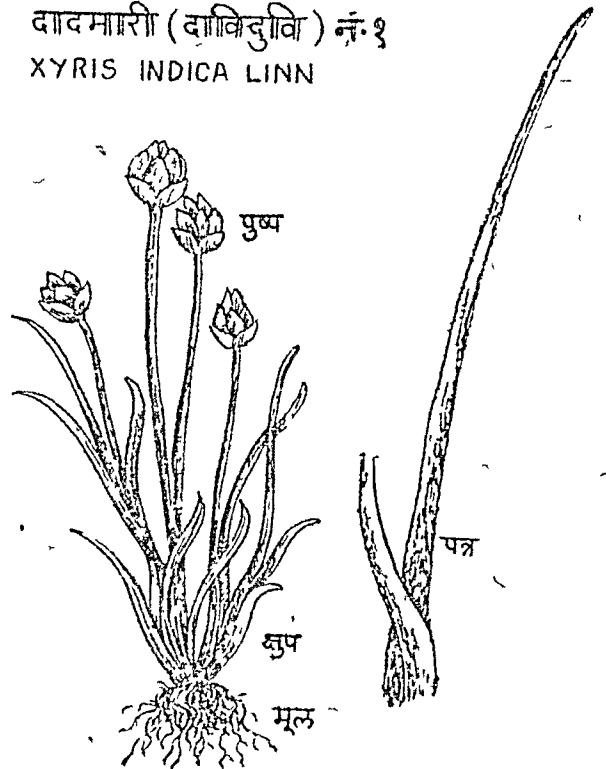
दादमारी नं० २ (*AMMANNIA BACCIFERA*)

मदयन्तिका कुल[1] (Lythraceae) के वर्षजीवी ये पौधे छोटे-छोटे ६-८ इञ्च ऊ चे कही-कही दो फुट तक ऊ चे, पत्र—अभिमुख, चमेली या कन्नेर-पत्र जैसे १–२½ इञ्च तक लम्बे, कुछ गोल, पतले, अग्रभाग व किनारे पर कुछ कडे, पत्र-मूल से नीलाभ गुलावी डण्डी निकलती है, जिस पर छोटा घुण्डीदार, चिपटा सा वीज-कोप होता है। वीज—नन्हे-नन्हे गोल काले होते है। पुष्प—गुच्छों मे रोमश, श्वेत रग के छोटे-छोटे होते हे। वर्पा ऋतु के अन्त मे फूल व फल आते हैं।

इसके पौधे जलाशय के समीपवर्त्ती स्थानो मे, विशेपत बगाल आदि प्रान्तो मे अधिक होते है।

नोट—इसके पत्तों का स्वाद लाल मिर्च जैसा चर-परा, किन्तु अधिक जलन पैदा करने वाला होता है।

प्रथम भाग मे जिस अगिया (अगिन) बूटी का वर्णन है, वह इससे भिन्न हे।

नाम—

सं०-अग्निगर्भ, अग्निपत्री इ०। हि०-दादमारी, कुरयड, जगली मेंहदी, अगिया इ०। म०-आग्या, भुरा-जांबोल इ०। गु०-जल आग्यो। द०-आग्या, दादमारी, बनमिरच। लें०-अमेनिया बेसिफेरा, अ हैं सिकेटोरिया (A Vesicatoria)।

प्रयोज्य अग—पत्र।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, कटु, विवन्ध नाशक व उष्ण-वीर्य है।

पत्र—अति दाहजनक, पीसकर त्वचा पर लगाने से, शीघ्र ती जलन होकर आधे घटे के अन्दर छाया या फफोला उठ आता है।

वात-प्रधान सन्निपात ज्वर मे इसके द्वारा पीठ या छाती पर छाला (Blister) उठाकर, दूषित पानी निकाल देने वैसे पीडा दूर होती हे। से ही ज्वरयुक्त आमवात और प्लीहा-वृद्धि पर भी इसके द्वारा छाला उठाकर पानी निकाल देने से लाभ होता है। सरलता से छाला उठाने के लिये पत्र-कल्क को ईथर मे मिला टिंचर बनाकर लगाना उत्तम होता हे। केवल पत्रो को ही पीस कर लगाने से कभी-कभी छाला नही भी उठता, व्यर्थ मे जलन होती रहती है।
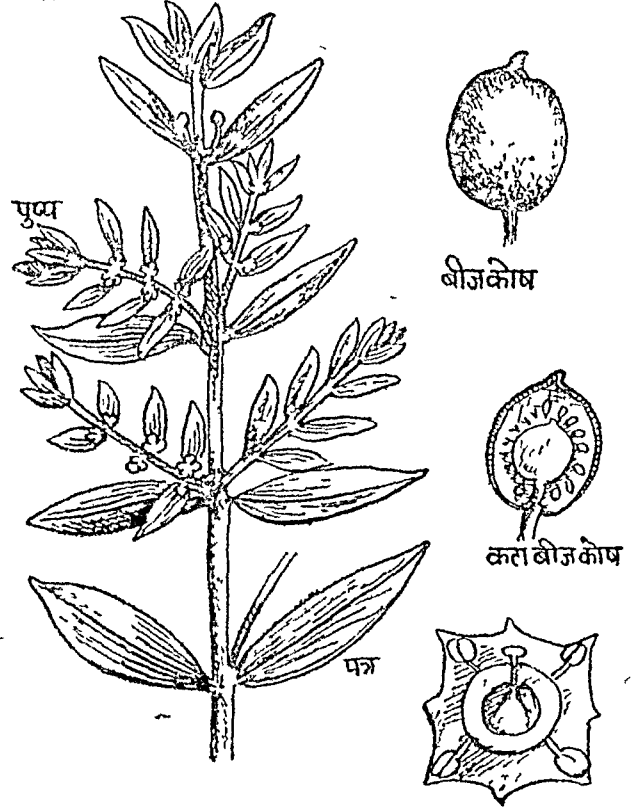
१ विपम-ज्वर एव प्लीहा-वृद्धि पर—इसके ताजे पत्र या शुष्क पचाङ्ग के जौकुट चूर्ण के साथ समभाग (लगभग ४-४ मा०) नागरमोथा व सोठ लेकर क्वाथ बनाकर देते है। शुष्क-चूर्ण १ भाग मे २० भाग जल मिला चतुर्थांश क्वाथ बना १¼ तो० की मात्रा मे सेवन कराते हे।

२. ज्वरयुक्त आमवात तथा सतत् ज्वर पर—इसके साथ समभाग नागरमोथा का चूर्ण मिला, क्वाथ बना कर सेवन कराने से पीड़ायुक्त शोथ दूर होती है, तथा

[1] इस कुल का वर्णन मेहदी (मदयन्तिका) के प्रकरण में देखें।

ज्वर की शांति होती है।

३ जिन विकारो मे शीतपित्त जैसे या लूता (मकडी) के विष के लगने से ददोरे से शरीर पर उठ आते है, उनपर इसके पत्र-चूर्ण को या इसकी पचांग की राख को तैल मे मिलाकर लगाते है। जिस दाद पर ददोरे उठ आते हैं उस पर भी यह इसी प्रकार लगाया जाता है। अथवा—इसके शुष्क पत्र-चूर्ण के साथ कुलथी-पत्र का चूर्ण और अनार (वथा) पत्र-चूर्ण समभाग मिला, मट्ठे मे भर, गजपुट मे फूंकी राख बनाकर, उसे कुसुम के तैल मे मिलाकर लगाने से विशेष लाभ होता है।

नोट—किन्तु दाद आदि चर्मरोगों पर इसका कोई प्रभावशाली योग हमें नहीं प्राप्त हुआ। मालूम नहीं इसे दाद्मारी क्यों कहा गया है।

दाब—दे०—कुश। दारचीनी—दे०—दालचीनी।

दारुहल्दी (Berberis Aristata)

हरीतक्यादिवर्ग एव अपने ही दारुहरिद्रा-कुल[1] (Berberidaceae) के इसके सदा हरे भरे, कटकित गुल्म ४-८ या १५ फुट तक ऊचे, काण्ड ८ इञ्च व्यास के चिकने, चमकीले, छाल—ऊपर से धूसर वर्ण की अन्दर से पीली, अन्त काष्ठ-गहरे पीत वर्ण का, तथा कडा होता है। पत्र—चर्मवत् मोटे, कडे, मजबूत, सूक्ष्म सिरा-जाल युक्त, सरलधार वाले, टहनियो पर दो-दो या ३-३ इञ्च के अन्तर पर, आकार मे इगुदी या तालीस-पत्र जैसे नोकदार या कुछ कटे हुए कगूरेदार तथा कगूरो के चारो ओर सूक्ष्म काटे होते है, १ से १½ इञ्च लम्बे ¾ इच चौडे। पत्र-गुच्छ के निकट टहनियो पर ३ काटे होते है और इन गुच्छो मे एक छोटा सा पुष्प-घोप (घुमचा) निकलता है। पुष्प—छोटे २ निम्बपुष्प जैसे पीतवर्ण के उक्त २-३ इच लम्बी पुष्प-घोप या मजरी मे वसन्त ऋतु मे आते है (किसी २ का पुष्प वडे आकार प्रकार का भी होता) है। फल—ग्रीष्मारभ मे पुष्पो के झड जाने पर फल हरे रग के आते है, जो फिर क्रमश नीले या लाल रग के रजावृत्त, किशमिश जैसे हो जाते है। यूनानी मे ये फल जरिश्क नाम से प्रसिद्ध है। ये फल विशेष गूदेदार नही होते। मूल—मोटी तथा स्थान-स्थान पर बहुत शाखाओ मे विभक्त होती है। ये मूल की शाखाए एक ओर को विशेषत भूमि की ओर झुकी रहती है। इस पौधे की ताजी लकडी (अन्त काष्ठ) सुगधित, स्वाद मे कडुवी और कसैली होती है। इसे कितना भी उबाले तो भी यह पीली ही रहती है।

[1] इस कुल के पौधे विभक्त दल द्विबीजपर्ण पत्र सादे या सयुक्त, पुष्पबाह्यकोष एव आभ्यन्तरकोष के दल दो चक्रो मे, अव स्थबीजकोश, बीजकोश एक फल मासल होते है, इस कुल मे यह तथा इनकी कुछ उपजातिया तथा गिरिपर्पट (Podophyllum Emodi) हैं।

हिमालय प्रदेश मे काश्मीर व गढवाल से लेकर आसाम तक तथा नेपाल मे अधिक होने वाली (५ से १२ हजार फीट की ऊंचाई पर पैदा होने वाली, जितनी अधिक ऊंचाई पर पैदा हो, उतनी ही अधिक गुणवाली) प्रस्तुत प्रसग की दारुहल्दी (पहाडी भाषा मे चौतरा) के अतिरिक्त निम्नाकित इसकी कुछ उल्लेखनीय प्रसिद्ध जातिया उक्त प्रदेशो में तथा पारसनाथ, भूटान, नीलगिरी अफगानिस्तान आदि मे पाई जाती है। वैसे तो कई उपजातिया है, किन्तु चिकित्साकार्य मे प्रायः प्रस्तुत प्रसग की दारुहरिद्रा एव संक्षेप मे वर्णित निम्न जातियो का ही विशेष उपयोग किया जाता है। रासायनिक सघटन एव गुणधर्म की दृष्टि से इनमे कोई विशेष अन्तर न होने से सभी के गुणधर्म प्रयोग आदि यहा आगे एक साथ दिये जा रहे है।

(A) किलोमोरा, किंगोरा, चित्रा आदि (B Asiatica) नामक दारुहल्दी के क्षुप लगभग ८ फुट ऊंचे, शाखाए धूसरवर्ण की, पत्र—आयताकार १-३ इंच लम्बा चर्मवत्, घन एव दृढ सिराजाल युक्त, पुष्प—उक्त दारुहरिद्रा जैसे ही मजरियो मे तथा फल भी वैसे ही काले या नीले होते है।

(B) जिसे गढवाली भाषा मे चलरोई, काशमल तथा लेटिन मे (B Lycium) कहते है, उस दारुहल्दी के क्षुप प्राय छोटे-छोटे समूहबद्ध होते हैं। पत्र—प्राय पतले, लम्बे, पुष्प—एप्रिल मास मे, मजरिया आती है, फल—उक्त जैसे ही होते तथा विशेष मासल या गूदेदार नही होते। ये क्षुप पश्चिम हिमालय प्रान्त के शुष्क एव उष्ण स्थानो मे गढवाल से हजारा तक पाये जाते है।

(C) B Chitria लेटिन नामकी दारुहल्दी उक्त न A का ही एक भेद विशेष है। इसे जौनसार मे काशमोई तथा गढवाल मे किंगोरा कहते है। यह हिमालय प्रान्त मे ६-६ हजार फुट की ऊंचाई पर पाई जाती है। शाखाएं गहरे लाल रग की चिकनी एव चमकीली, पत्र—चर्मवत्, अस्पष्ट सिराजाल युक्त, दोनो पृष्ठ चमकदार, पुष्प—उक्त न B, के पुष्प की अपेक्षा बडे, झुकी हुई मजरियो मे, फल—लाल रग के, रगहीन, विशेष गूदेदार, सूखने पर काले अगूर जैसे दिखाई देते है। किन्तु ये अधिकाश मे बीजरहित और अगूर से छोटे, स्वाद मे खट्टे या खटमिट्ठे होते है। वास्तव मे ये ही यूनानी जरिष्क है।

(D) B Vulgaris पजाब मे झिरिसी, काशमल, चोहार आदि तथा अंग्रेजी मे ट्रू बारबेरी True Barberry नामकी यह दारुहरिद्रा भी उक्त न॰ A की ही जाति की, तथा वैसे ही रूप रग की है। विदेशो मे तथा भारत के हिमालय प्रान्त के नेपाल, तिव्वत से लेकर अफगानिस्तान तक इसके क्षुप पाये जाते हैं।

(E) B Nepalensis—पजाब मे आमुडाडा, चिरोर तथा नेपाल मे चत्री, मिलकिसी नामवाली इस दारुहरिद्रा के क्षुप हिमाचल के वाह्य प्रदेशो मे रावीनदी के पूर्व की ओर खासिया और नागा पहाडियो पर, तथा नीलगिरि पर भी पाये जाते है। रूप रग मे प्राय उक्त न॰ B के अनुसार है।

एक गुडूच्यादिवर्ग की लता दारुहरिद्रा (झाड की हल्दी) होती है, जिसका मिश्रण असली दारुहल्दी मे कर दिया जाता है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण मे (दारुहल्दी लता) मे देखिये।

चरक के अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, लेखनीय गणो मे तथा सुश्रुत के हरिद्रादि, मुस्तादि और लाक्षादि गणो मे इसकी गणना की गई है।

नाम—

स॰—दारुहरिद्रा (हल्दी जैसी पीली लकड़ी होने से), दार्वी, पजन्या, पीत दारु। हि॰—दारुहल्दी, काशमोई, किंगोरा, चौतरा इ॰। म॰—दारुहलद। गु॰—दारुहलदर। ब॰—दारुहरिद्रा। अ॰—Indian or Nepal or opnthalmic berberry, False Calumba। ले॰—बर्बारिस एरिस्टेटा।

रासायनिक सघटन—

इसकी जडो मे तथा काण्डभाग मे एक पीतवर्ण का तिक्त सारतत्त्व बर्बेराईन[1] (Berberine) नामक पाया

[1] यह अत्यन्त विषैला नहीं, किंतु अधिक मात्रा मे यह घातक भी हो जाता है। अधिक मात्रा मे देने से फुफ्फुसों में रक्ताधिक्य का सचय होता एव हृदय की धमनी का विस्फारण होकर मृत्यु होती है। अल्पमात्रा मे १-१० मिलिग्राम तक इंजेक्ट करने से आन्त्र, गर्भाशय एव श्वास नलिकाओ, को व अनैच्छिक मासपेशियों को उत्तेजित करता है।

जाता है। फल मे–चिचाम्ल (Tartaric acid) और सेवाम्ल (Malic acid) होता है।

उक्त सारतत्त्व काष्ठ एव छाल की अपेक्षा जड मे अधिक होता है, तथा यह और भी कई वनस्पतियो मे पाया जाता है। यह जल मे घुलनशील है मद्यसार मे कम घुलता है। इस क्षाराम्ल के अतिरिक्त इसमे कुछ कषाय द्रव्य, गोद एव स्टार्च भी होता है।

प्रयोज्याङ्ग—मूलत्वक, अत काष्ठ भाग, फल, व घनसत्व (रसाजन)।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कषाय, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफपित्तशामक, दीपन, पित्त-सारक, वर्ण्य, यकृदुत्तेजक, मृदुरेचन, कटुपौष्टिक, रक्तशोधक, स्वेदल, शोथहर, वेदना स्थापन, चक्षुष्य, विषमज्वर-प्रतिबधक, तथा अग्निमाद्य प्रवाहिका, कामला, प्रमेह, यकृद्विकार, कास, प्रदर, व्रण, नेत्रकर्णविकार, गर्भाशय का शोथ व स्राव, उपदश, कडू विसर्पादि चर्मविकारो पर यह उपयोगी है।

इसके गुणधर्म प्राय हल्दी के जैसे ही हैं, किन्तु आख, मुख, व कान के रोगो मे विशेष हितकर है। यथोचित साधारण मात्रा मे यह कटुपौष्टिक (सामान्य दौर्बल्य-निवारक), दीपक तथा सौम्यग्राही एव हृदयोत्तेजक है।

यह पित्त एव मूत्रमार्ग की विकृति मे लाभकर है। शोथ-वेदनायुक्त स्थानो पर इसका लेप किया जाता है। बस्तिशोथ तथा प्रमेह आदि पर आवले के रस व शहद के साथ इसे देते हैं। गर्भाशय शैथिल्यजन्य रक्त या श्वेत-प्रदर मे इसका क्वाथ शहद मिला सेवन कराते है। कामला मे भी यह इसी प्रकार दिया जाता है।

मूल-त्वक् एव काष्ठ—

(१) ज्वर पर—पित्तप्रधान ज्वर एव विषमज्वरो मे जबकि हृल्लास, वमन, विरेचन, शिर शूल तथा थकावट अधिक होती हो, तो इसका क्वाथ चिरायता मिला कर देवें, किंतु क्वाथ देने के पूर्व सौम्य विरेचन द्वारा रोगी की कोष्ठशुद्धि कर लेना ठीक होता है। इसके क्वाथ सेवन से पसीना आकर ज्वर शात हो जाता है, कुनेन की तरह हृदयावसाद, बाधिर्य आदि उपद्रव इससे नही होते, तथा प्लीहा वृद्धि कम हो जाती है। क्षुधा की वृद्धि होती है। इसके घनसत्त्व या क्षाराम्ल का भी इस प्रकार के ज्वरो पर प्रयोग किया जाता है किंतु क्वाथ को उपयोग उत्तम होता है। आगे घनसत्त्व (रसाजन) के प्रयोग देखें।

क्वाथ-योग—इसकी जड का यवकुटचूर्ण १५ तो. का १ सेर जल मे अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर, छान कर, २॥ तो से ५ तो तक की मात्रा मे देते हैं और रोगी के शरीर को ढाक कर सुला देते है। प्रस्वेद आकर ज्वर उतर जाता है। यह चढ़े हुए ज्वर मे भी दिया जा सकता है। ज्वर के पूर्व देने से ज्वर चढने नही पाता।

सतत या सतत ज्वर की दशा मे इस क्वाथ के सेवन से ज्वर उतर उतर कर आने लगता है। इसे २॥ तो की मात्रा मे २-२ या ३-३ घटे के अन्तर से ज्वर की बारी के दिन देने से बहुत पसीना आकर ज्वर छूट जाता है। शोथयुक्त ज्वर मे भी यह लाभदायक है। दूषित वायु जन्य ज्वर को भी यह दूर करता है। इस क्वाथ से प्लीहा या यकृत-वृद्धि मे भी लाभ होता है।

सन्निपातजज्वर की मूर्छा-निवारणार्थ—इसके साथ नागरमोथा, चिरायता, त्रिफला, छोटी कटेरी-मूल, पटोलपत्र, हल्दी और नीम की छाल मिला, क्वाथ बना कर पिलाने से मूर्छा जाती रहती है। (यो र)

(२) नेत्रविकारो पर—इसके ४ तो मोटे चूर्ण को ६४ तो. जल मे पकावे, अष्टमाश पानी शेष रहने पर वस्त्र से छान ले। इसमे उत्तम शहद १–२ तो मिला, बारीक धार से नेत्रो के भीतर थोडा २ डालते हुए, प्रक्षालन करे। क्वाथ थोडा गरम ही हो, जिससे नेत्रो मे सुखोष्ण सेक हो। प्रात साय इस प्रकार आखो के प्रक्षालन से समस्त विकार दूर होते है। आई हुई आखो (नेत्राभिष्यन्द) के लिये विशेष हितकर है। अथवा—

इसके साथ त्रिफला, और नागरमोथा समभाग मिला क्वाथ सिद्ध कर, उसमे खाड, शहद और स्त्री का दूध थोडा-थोडा मिलाकर, उसका बूदे नेत्रो मे बार-

ार डालते रहने से पित्तज, रक्तज व वातज नेत्राभिष्यद
ो लाभ होता है। (ग नि)

इसके साथ समभाग मुलैठी, गिलोय और त्रिफला लेकर क्वाथ करे (प्रत्येक द्रव्य १-१ तो , जल ४८ तो शेष क्वाथ १२ तो) प्रात साय यह क्वाथ ६-६ तो पीने से सर्वदोपज नेत्ररोग नष्ट होते है। (यो र)

पित्तज तिमिर तथा नेत्रपीडा पर—इसके साथ त्रिफला और मुलैठी का चूर्ण १-१ भाग लेकर, आठ गुने नारियल के पानी मे मदाग्नि से पकावे। अष्टमाश शेप रहने पर छान कर, पुन पकावे। अच्छा गाढा हो जाने पर नीचे उतार कर उसमे सेधानमक, कपूर व सुवर्णमक्षिक भस्म १-१ भाग मिला, खूब घोटकर काच की शीशी मे रख ले। इसे नित्य प्रात साय आजने से तिमिर (रात्र्यन्ध) नेत्र पीडा, नेत्र-व्रण मे लाभ होता है। (यो. र.)

आगे विशिष्ट योगो मे 'नेत्राभिष्यन्द और दार्व्यादि रसक्रिया' देखिये।

(३) कामला व पाण्डु-रोग पर—इसके मूल की छाल के साथ त्रिफला, त्रिकुट, बायविडग और लोहभस्म समभाग लेकर, एकत्र खूब खरल कर इसमे शहद व घृत मिला, सुरक्षित रक्खे, अथवा चूर्ण को (४ रत्ती की मात्रा मे) शहद व घृत के साथ चटाने से कामला व पाडु मे विशेप लाभ होता है। (च स चि अ १६)

अथवा—इसके साथ त्रिफला, हल्दी, कटुकी, और लोहभस्म समभाग एकत्र खरल कर (४ रत्ती की मात्रा मे) शहद व घृत के साथ चटाने से कामला का नाश होता है। अथवा—

रक्त मे गये हुए पित्त के निवारणार्थ तथा पित्तस्राव को व्यवस्थित करने के लिये इसके सिरका का या इसके क्वाथ मे हल्दी मिला कर सेवन करावें, कामला-विकार दूर हो जाता है। अथवा—

इसकी छाल का ताजा रस शहद के साथ या इसके क्वाथ मे शहद मिलाकर नित्य प्रात सेवन करावे।

(४) प्रमेह और प्रदर पर—इसके साथ देवदारु, त्रिफला और नागरमोथा समभाग लेकर जौकुट कर चतुर्था श क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने मे प्रमेह दूर होता है। (च स. चि अ ६)

यदि पिष्टमेह-या शुक्लमेह—(Chyluria) हो (यह कफ-प्रमेह का एक भेद है, जिसमे-मूत्रत्याग के समय शरीर मे रोमाच होकर पिष्टयुक्त जल के समान पेशाब होता है) तो रोगी को इसके साथ हल्दी मिला, क्वाथ बनाकर सेवन करावे (पिष्ट-मेहिने हरिद्रा दारुहरिद्रा कपाये पाययेत्—सुश्रुत चि० अ० ११) दिन मे दो बार प्रात साय, पथ्य-पूर्वक इस क्वाथ के सेवन से थोडे दिन मे लाभ हो जाता है। प्रात साय शुद्ध वायु मे घूमना एव लघु भोजन करना आवश्यक है। अथवा—

हल्दी और दारुहल्दी का मिश्रित चूर्ण ४ मा. मात्रा मे शहद के साथ चटाकर, ऊपर से आवले का रस या हिम आधा तो प्रातः साय पिलावे।

प्रदर पर—इसके क्वाथ मे शिलाजीत १ मा तक मिला ७ दिन तक सेवन करावे।

मूत्रकृच्छ्र पर—इसके चूर्ण के साथ ककडी बीज और मुलेठी का चूर्ण-मिला ३ मा की मात्रा मे चावल के धोवन के साथ पीने से, अथवा केवल इसीके चूर्ण को आमले के रस मे मिला उसमे शहद डालकर पीने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। (यो र)

(५) अतिसार पर—इसके साथ इन्द्र जौ, पिप्पली, सोठ, दाख और कुटकी का समभाग मिश्रित कल्क ६तो ८ मा तथा इन ६ द्रव्यो के समभाग मिश्रित जौकुट-चूर्ण का क्वाथ (२ सेर चूर्ण मे १६ सेर पानी मिला सिद्ध किया हुआ चतुर्था श क्वाथ) और १ सेर घृत एकत्र मिला घृत सिद्ध करले। इस घृत को पेया या मण्ड के साथ पीने से त्रिदोपज अतिसार भी नष्ट हो जाता है। (च० स० चि० अ० १६)

इस घृत योग को 'पडङ्गघृत' भी कहते है।

वातज तथा पित्तज अतिसार के निवारणार्थ—इसके साथ वच, लोध, इन्द्र जौ और सोठ समभाग का मिश्रित चूर्ण ३ या ४मा की मात्रा मे अनार के रस के साथ सेवन करावे। वात-पित्तज द्वन्दातिसार मे भी यह लाभकारी है। (यो र)

(६) अण्डवृद्धि पर—इसके चूर्ण को (३ मा की मात्रा मे) गोमूत्र के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। (भा. भैं. र.)

अथवा—इसके क्वाथ मे गोमूत्र मिलाकर सेवन कराते है।

(७) बालको के कर्ण-विकार एव मुख-पाक पर—इसके चूर्ण के साथ मुलैठी व हरड का समभाग महीन चूर्ण एकत्र खरल कर उसमे चमेली-पत्र रस और शहद मिला, कपडे से छानकर कान मे डालने से स्रावयुक्त कान का व्रण ठीक होता है। तथा इसी कल्क को मुख के भीतर लेप करने से मुख के छाले जाते रहते हैं। (यो र)

(कर्ण-रोगो पर दार्व्यादि तेल) वि योगो मे देखे।

मुख-पाक पर—बडो के लिए—उक्त योग का क्वाथ कर उसमे शहद मिला कुल्ले (गण्डूषधारण) करावे। (यो० र०)

अथवा—इसके स्वरस मे (या क्वाथ मे) शहद मिला गण्डूष करावें, तथा इसके घन क्वाथ मे (या रसौत में शहद मिला मुख मे लेप करने से मुख-रोग, रक्त-विकार एव मुख का नाडी व्रण नष्ट होता है। (भा प्र)

अथवा—इसके गाढ़े क्वाथ मे गेरू का चूर्ण मिला ले। फिर इसमे थोडा शहद मिला मुख मे रखने से मुख पाक, एव मुख का नाडीव्रण (नासूर) दूर होता है। (वा० भ० उ० स्था० अ० २२)

(८) मुख-रोग एवं दत विकारो पर—इसकी जड की छाल २½ सेर, कूटकर १२ सेर ६४ तो पानी मे पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर, छानकर उसमे चिरायता, दारुहल्दी, खैर की छाल व इरिमेद (दुर्गन्धित खैर) की छाल प्रत्येक का जौकुट चूर्ण १६-१६ तो मिला, पुन. पकावें, चतुर्थांश (लगभग ६४ तो) पानी शेष रहने पर छानकर उसमे १६ तोला गेरू का चूर्ण मिला मन्दाग्नि पर गाढा कर उसमे ६४ तो शक्कर मिला दे। ठडा हो जाने पर थोडा शहद मिला घृत मे चिकनी की हुई मटकी मे सुरक्षित रक्खें।

अनेक प्रकार के दारुण मुख रोग, दातो की निर्बलता, दातो के दूषित व्रण (पायोरिया) आदि मे इसे प्रयुक्त करने से लाभ होता है। (ग नि)

(९) व्रणो पर—इसकी जड की छाल, मुलैठी, लोध, नागकेशर, पटोल-पत्र और त्रिफला प्रत्येक २-२ तो लेकर पानी के साथ पीसकर कल्क बना उस मे १½ सेर घृत तथा घृत मे चौगुना पानी मिला घृत सिद्ध कर लें। अथवा—उक्त छाल आदि ८ द्रव्यो के चूर्ण को लगभग दो सेर पानी मे मिला अर्धावशिष्ट क्वाथ कर छान कर उसमे १० तो घृत और १ तो ८ मा मुलैठी का कल्क मिला घृत सिद्ध कर ले। इस घृत के लगाने से व्रण शीघ्र ही भर जाते हैं। (ग नि)

इसकी जड की छाल का क्वाथ कीटाणुनाशक होने से जीर्ण व्रणो मे प्रक्षालनार्थ विशेष उपयोगी एव लाभदायक है।

(१०) उपदश पर-इसकी छाल, शख की नाभि, रसौत, लाख, गाय के गोबर का रस, तेल, शहद, घृत और दूध सब समभाग लेकर पीसने योग्य चीजो को महीन पीस सबको एकत्र मिला रक्खे। इसे उपदश के व्रणो पर लगाने से वे तथा उनकी सूजन नष्ट होती है। (यो र)

रोगी को साथ ही साथ इसकी छाल का क्वाथ भी सेवन कराते रहना चाहिए।

निम्न 'दार्व्यादि तेल' भी उपदश-व्रणो के लिए उत्तम है—

इसका स्वरस अथवा क्वाथ ८ सेर, तिल-तेल २ सेर, कल्कार्थ द्रव्य—मुलैठी, घरका धुवा और हल्दी समभाग मिश्रित १० तो यदि क्वाथ के साथ पकाना हो तो १३तो ४मा मिलाकर तेल सिद्ध करले। (भा भै र)

नोट—उक्त तैल योग मे—पाकार्थ पानी तेल से ४-गुना मिलाना आवश्यक है। यह तेल वास्तव मे शूक-दोष[1] आदि शिश्न-रोगो मे अभ्यंजन तथा अन्त प्रयोग के लिए उपयोगी है।

(११) वातजन्य शूल पर—जड की छाल का क्वाथ गुड मिलाकर सेवन कराते हैं।

(१२) उन्माद पर—पुष्यनक्षत्र के दिन इसकी जड

---

[1] लिंगवृद्धि या नपुसकता नाशार्थ जो मल्ल-तैल या जमालगोटा भिलावा आदि तीक्ष्ण द्रव्यों का लेप लिंग पर लगाया जाता है, इससे सर्पिका, अष्ठीलिका, शतपोनक, मांसपाक आदि व्याधिया लिंग या अण्डकोष पर पैदा हो जाती है। ये ही शूकदोष या शूक व्याधि कहलाती है।

को शहद मे घिस कर अ जन करने से उन्माद का नाश होता है । (भै० र०)

(१३) शखक रोग पर[1]—दारुहल्दी, मजीठ,नीम-छाल, खस और पद्माख समभाग लेकर पानी के साथ पीस कर लेप करने से यह रोग शात होता है ।

कामला व पाडु पर—दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु और वायविडग का चूर्ण १-१ भाग तथा लोहभस्म, सब चूर्ण के बराबर लेकर एकत्र खूब घोटकर रखले । मात्रा २-३ मा० इसमे घृत ६ तो० व शहद २ तो० मिला सेवन से लाभ होता है । (यो० र०)

रसाजन (रसौत) —वर्षा के अन्त मे[2] इसके क्षुपो को काट कर कोई कोई पचाङ्ग के, तथा कोई मूल भाग एव निचले काण्ड भाग के छोटे छोटे टुकडो को कूट कर १३ गुने जल मे चतुर्थांश क्वाथ कर, छान कर मन्द आग पर गुड जैसा घन क्वाथ कर, पत्तो के दोनो मे भर देते हैं, जो ठडा होने पर दृढ होजाता है । यही बाजारू रसौत है, जिसमे छोटी २ लकडी, मिट्टी आदि मिली रहती है ।

शास्त्रो मे औषधि कार्यार्थ उक्त छने हुए क्वाथ मे समभाग गौदुग्ध या अजादुग्ध मिलाकर, घन क्वाथ कर रसाजन निर्माण का विधान है । किंतु व्यापारी-लोग बाजारू विक्रयार्थ रसाजन को दुग्ध मिला कर नही बनाते । इसमे उनके हित की हानि होती है, तथा दुग्ध मिलाकर बना हुआ बाजारू रसौत अधिक टिकाऊ भी नही होता, शीघ्र ही विकृत होता, एव उसमे सूक्ष्म कीटाणु पैदा हो जाते है ।

अत बाजारू रसौत को कूट कर ४ गुने गरम जल मे घोल कर कपडे से छान कर, उसे कुछ देर स्थिर रक्खे, जिससे मिट्टी नीचे बैठ जावे । फिर धीरे धीरे ऊपरी जल को नितार, शुद्ध कलई दार पात्र मे भर, ऊपर पतला कपडा बाध कर सूर्य के ताप मे रख देवे । प्रतिदिन इस पात्र को धूप मे रखने से कुछ दिनो मे यह घन बन जाने पर, इस विशुद्ध रसाजन को चिकित्सा कार्य मे लावे । अच्छी विशुद्ध रसौत अफीम के समान काले रग की नरम होती है, पानी मे सब घुल मिल जाती एव पानी को एक दम पीला कर देती है ।

शास्त्र-विधान के रक्षार्थ उक्त ४ गुने गरम जल मे घोल कर, छने हुए, एव नितारे हुए जल मे दुग्ध मिला-कर मन्द आच पर घन क्वाथ कर लेवे या उक्त प्रकार से धूप मे सुखा लेवे ।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रसायन, कफ, विष एव नेत्र-विकारो को दूर करने वाला स्वेदल, रक्तशोधक छेदक (पिण्डी भाव को प्राप्त हुए कफादिको को काट कर अलग करने वाला), व्रण सम्बन्धी दोषो को नष्ट करने वाला है,तथा अर्श, शोथ, ज्वर, पित्तप्रकोप, हिक्का, श्वास, आदि एव मुख-रोगो पर प्रयुक्त किया जाता है।

ज्वर, यकृत-प्लीहा वृद्धि, कामला, अर्श एव आमा-शय या पक्वाशय के व्रणो आदि पर इसका आन्तरिक प्रयोग लाभकारी है तथा नेत्र-विकार, अर्श, प्राच्यव्रण (Oriental Sore), फोडे, फु सिया, कटे हुए भाग एव पुराने व्रणो आदि पर बाह्य-प्रयोग लाभदायक होता है । नये या पुराने-नेत्राभिष्यन्द मे इसे अफीम, या सेधा-नमक या फिटकरी मिला कर लगाने से या अकेले इसी को पानी घोलकर पलको पर मे लगाने से बहुत लाभ होता है । रक्तार्श मे इसे २ से ८ रत्ती की मात्रा मे मक्खन के साथ खिलाते हैं, तथा इसके घोल से अर्श को धोते है । कपूर एव मक्खन के साथ इसे मिलाकर बनाया

---

[1] रक्त, पित्त व वात दुष्ट होकर शङ्ख प्रदेश (कन-पटी)मे पहु च कर तीव्र पीडा,दाह, राग एवं दारुण शोथ पैदा कर देते है । यह शोथ विष की तरह बडे वेग से सिर मे व्याप्त होकर शीघ्र ही गले को रोक तीन दिन के बाद प्राणों को हर लेता है। किंतु इसके पूर्व पादचतुष्टय के ठीक होने पर रोगी बच भी जाता है। किंतु इन तीन दिनों से भी जवाब देकर ही चिकित्सा करनी चाहिए-- (मा०नि० शिरोरोग)

[2] दारुहल्दी के किस क्षुप से रसौत निर्माण किया जाताहै इस विषयमे मतभेद है । कई लोगकहते है कियह केवल चतरोई (B Lycium) के क्षुपों से ही प्राप्त किया जाता है । कोई किलमोरा (B Asiatica)के क्षुप से तथा कई इन दोनों क्षुपों से इसका निर्माण होना कहते है ।

हुआ मलहम फोडे, फुंसियो, कटे हुए भाग कठमाला एव जीर्ण दूषित व्रणो पर लगाते हैं। मुख के भीतर के व्रणो पर तथा अन्य व्रणो पर भी इसे शहद के साथ मिलाकर लगाते हैं। मुख रोग मे इसके घोल से गण्डूष कराते हैं। शोथ पर इसका लेप करते हैं। प्रदर मे इसके घोल की उत्तरबस्ति देते हैं। व्रणो को इसके द्रव से धोते है। रक्तविकार स्तनशोथ, फिरग-उपदश, गड-माला भगदर विसर्प आदि मे उसका लेप करते हैं। रक्त-पित्त, रक्तार्श, तथा रक्तप्रदर मे उसे अकेले या अन्य स्तम्भन द्रव्यो के साथ देते हैं, इसमे रक्त की रुकावट होती है। कुष्ठ पर भी यह हितकर है। विशिष्ट योगो मे दार्व्यादि कपाय़ाष्टक देखे।

बालको के लिए यह अति हितकर है। इसमे दूध ठीक-ठीक पचकर शौच शुद्धि होती, उदर कृमि नष्ट होते, व नवीन कृमियो की उत्पत्ति नही होने पाती, तथा स्वास्थ्य बढता है।

गर्भाशय शैथिल्य, योनि-प्रदाह एव गुद भ्रश रोगो मे इसकी उत्तरबस्ति तथा पिचकारी लगाने से गर्भाशय सकुचित, सुदृढ होता, योनि-प्रदाह शात होकर भीतर की दुर्गन्ध दूर होती तथा काच निकलना (गुदभ्रश) बन्द हो जाता है।

(१४) विषमज्वर पर—विषमज्वर के प्राय सर्व प्रकारो मे इसकी २-२ रत्ती की ४ गोलिया जल के साथ दिन मे ३ बार देने से आमाशय की उष्णता दूर होती, क्षुधा लगती, शौच-शुद्धि होती, व प्लीहा वृद्धि कम होती है। विशेषत तृतीयक या चातुर्थिक ज्वर हो, तो इसके देने के पूर्व रेडी-तैल, पचसकार आदि अन्य विरेचन औषधि देकर उदर–शुद्धि कर लेना आवश्यक है। फिर प्रात खाली पेट इसकी मात्रा १५ रत्ती तक (या १ से २ मा० तक) दिन मे ३ बार जल के साथ देवें, और रोगी को खूब कपडे ओढाकर लेटा दे। कुछ देर बाद उसे अति तृषा लगती एव बेचैनी होती है, तथापि उसे जल न पीने देवे। लगभग १ घण्टा बाद उसे पसीना आने लगता व कमजोरी मालूम देती है, तब शरीर पोछकर लाजमण्ड या चावल का माण्ड या गरम दूध या साबूदाना या मोसम्बी का रस देवें। पश्चात् थोडे समय मे उसे बहुधा निद्रा आ जाती है। सोकर उठने पर उसकी प्रकृति स्वस्थ हो जाती है, तथा ज्वर की पाली टल जाती है।

इस प्रकार रसाजन के प्रयोग मे एक दोष यह है कि, जिस रोगी को पहले रक्तातिसार या रक्तस्राव सहित पेचिश हुआ हो, तो वह फिर उमड आता है। अत. जिसे रक्तातिसार, आमातिसार बार-बार दस्त होने की शिकायत हो उसे रसांजन की अपेक्षा दारु हल्दी का क्वाथ (देखो प्रयोग न० १) देना ठीक होता है।

रसाजन या दारु हल्दी के क्वाथ के सेवन से यकृत् स्थित दूषित जीवाणु, जिन पर कुनैन का कुछ भी प्रभाव नही होता, वे नष्ट हो जाते हैं, कमजोरी नही होने पाती, प्लीहा या यकृत् वृद्धि दूर होती, तथा बल-वृद्धि होती है। तृतीयक या चातुर्थिक-ज्वरो मे ३-४ दिन तक लगातार दिन मे ३ बार इसका सेवन कराना चाहिये।

आगे 'दार्वी अर्क' विशिष्ट योगो मे देखिये।

१५ नेत्र-विकारो पर—नेत्राभिष्यन्द, नेत्रपाक, नेत्र-शोथ मे इसे २ रत्ती की मात्रा मे—२॥ तो० गुलाब-जल मे मिलाकर नेत्रो मे बार-बार टपकाते हैं। तथा इसके साथ अफीम[1], फिटकरी का फूला और शुद्ध जल मिलाकर, पीसकर थोडा गरम कर आखो पर लेप करते है। अफीम फिटकरी व रसाजन को गुलावजल मे घोलकर शीशियो मे रक्खे। यह विलायती अक्रीफ्लेविन का कार्य करता है। इस आयुर्वेदिक मिश्रण को डॉक्टर लोग प्रथक्करण द्वारा कहते है कि यह अक्रेफ्लेविन ही है। इसकी कुछ बून्दे नेत्रो मे टपकाने से नेत्राभिष्यन्द, शोथ, नेत्र-पीडा, लालिमा आदि मे शीघ्र लाभ होता है। या इसे गौदुग्ध मे मिला आखो मे टपकाने से भी लाभ होता है। नेत्रो पर प्रदाहयुक्त सूजन हो, तो इसे अफीम,

---

[1] ध्यान रहे, रोग-वृद्धि की दशा में अफीम का उपयोग करना ठीक नही होता। नेत्रपाक या नेत्राभिष्यन्द में शीत जल एव शीत वायु से नेत्रो को बचाना चाहिये। नेत्रों को गरम पानी मे पतला कपड़ा या रुई भिगोकर धोना चाहिये।

सेंधा नमक व पानी के साथ पीस कर लेप करनेसे शाति प्राप्त होती है। नेत्राभिष्यन्द मे इसे फिटकरी का फूला और मक्खन के साथ मिलाकर नेत्रो पर लेप करने से भी लाभ होता है।

पोथकी (ट्रैकोमा Trachoma) या कुकरे, रोहे, कुथुआ का विकार हो, तो—रसौत, शखनाभी, सहिजना के बीज, एलुवा, केशर, मैनसिल और चीनी समभाग जल के साथ पीसकर, बत्ती बना, छाया-शुष्क करले। इसे शहद मे घिसकर नेत्रो मे आजे। अथवा—

रसौत, बहेडा की मीगी, शखनाभी, मेनसिल, सहिजना-बीज, पिप्पली और मुलहठी समभाग, बकरी के दूध मे पीस, बत्ती बना, छाया-शुष्क कर, जल से घिस आजने से भी लाभ होता हे।

हिताजन—रसौत १ भाग, त्रिफला क्वाथ मे घोलकर उसमे १-१ भाग काला व श्वेत सुरमा महीन पीस कर मिलादें, तथा ४ तो० की टिकिया बना धूप मे सुखा ले। फिर उसे कपडे मे लपेट, नीम की जड मे एक गढा कर उसमे टिकिया रख, जड के गढ्ढे से जो बुरादा निकले उसीसे उसे भरकर गोबर से बन्द कर दे। ६ मास बाद टिकिया निकाल, केले की जड मे गाढ दे। १ मास बाद निकाल छाया-शुष्क कर, महीन पीस उसमे चतुर्थाश कपूर तथा कपूर से छठा भाग कस्तूरी मिला महीन सुरमा बना लें। इसे आख मे लगाने से अन्धता नही आती। —रसायनसार

१६ भगन्दर, दुष्ट नाडी-व्रण पर—दीर्घकाल से हुए, पूयस्रावयुक्त भगन्दर एव नाडी-व्रण मे रसाजन को डडा थूहर व आक के दूध मे मिला (रसाजन के अभाव मे दारु हल्दी की मूल-छाल का महीन कपड-छन चूर्ण लेवे), बारीक बत्तिया बना, छायाशुष्क कर रक्खें। एक या दो या जितने छिद्र हो उनमे एक-एक बत्ती डालकर ऊपर से रसौत का लेप लगा पट्टी बाधते रहने से पूय सह सडा-मास निकल जाता है, कीडे नष्ट हो जाते तथा थोडे ही दिनो मे व्रण भर जाते हैं। (गा० औ० र०)

प्राच्य व्रण पर—विशिष्ट योगो मे—दार्वी-सत्त्व देखिये।

१७ कर्णपाक, मुखपाक तथा शोथ पर—कर्णपाक हो, उसमे से दूषित पूय-स्राव होता हो, तो इसका महीन चूर्ण कान मे डालते है, पूयस्राव बन्द होकर रोग दूर हो जाता है। ध्यान रहे—कानो को ऐसी दशा मे शीत जल एव शीत वायु से बचाना आवश्यक है, तथा मिष्ट-पदार्थ अधिक नही खाना चाहिये।

मुखपाक हो, मुख मे पीडादायक छाले हो गये हो, तो इसमे जल मिला (घोल बना) या दारु हल्दी के क्वाथ से दिन मे ३-४ बार कुल्ले करे।

शोथ—यदि साधारण हो, तो इसके लेप से ही शीघ्र नष्ट हो जाता है। तीव्र ग्रन्थि-शोथ (Boil) हो, तो इसे कपूर के साथ पीसकर मक्खन मिला मोटा-मोटा लेप करें। ग्रन्थि-व्रण यदि फूट गया हो, तो अकेले रसाजन को पानी मे घोलकर मोटा लेप करने से शीघ्र घाव भर जाता है।

कर्णस्राव मे इसे स्त्री के दूध मे घिसकर, शहद मिला कान मे डालते है।

अर्श पर देखे विशिष्ट योगो मे—दार्व्यादि वटी।

फल (जरिश्क या जरश्क)—यद्यपि भारतीय दारुहल्दी के क्षुपो मे भी ये फल आते है (इसका सक्षिप्त वर्णन प्रकरण के प्रारम्भ मे कर आये है) तथापि इन फलो का विशेष आयात ईरान, खुरासान आदि देशो से यहा होता है। ये जरिश्क कुछ रक्ताभ-श्याम या काले रग के होते है, तथा ये ही उत्कृष्ट माने जाते है। पीताभ लाल रग का निकृष्ट माना जाता है।

यूनानी-चिकित्सा मे यह एक प्रसिद्ध घरेलू औषधि रूप से विशेष प्रयुक्त होता है।

यह मधुराम्ल, शीतवीर्य, रोचक, पित्तशामक, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, रक्तशोधक, दीपन, पाचन, दाहशामक, हृद्य, कफकर, रक्तोद्वेग-सशमन तथा वमन, अतिसार, नाडीव्रण, त्वग्रोग आदि निवारक है।

फलो का सिरका, शर्बत आदि बनाया जाता है। सिरका का प्रयोग पित्त-ज्वर, अरुचि, कामला, कफज-अतिसार, मोतीझरा एव अन्य विषैले ज्वरो पर तथ रक्तपित्त (स्कर्वी) आदि मे किया जाता हे।

१८ शर्बत का प्रयोग—कब्ज, कण्ठशोथ एव स्वरभङ्ग पर लाभकारी है। फलो का स्वरस या शुष्क फलो को पानी मे भिगोकर निचोडा हुआ रस भोजन के शाक-दाल आदि मे स्वाद के लिये या पैत्तिक रोगो की शाति के लिये डाला जाता है। इसके रस मे शहद तथा थोडा-नीबू का रस और शक्कर मिला, शर्बत की चाशनी कुछ गाढी अवलेह जैसी तैयार कर, दिन मे २-३ बार, १-२ तो० की मात्रा मे चटाते हैं, पित्तज अतिसार आदि उपद्रव एव पित्तज हृद्विकार मे भी यह लाभकारी है। आगे विशिष्ट योगो मे शर्बत जरिश्क देखें।

१९ पित्त-ज्वर, वमन आदि पर—फलो को जल या अर्क-गुलाब मे पीस छानकर पिलाते हैं। इससे यकृदामाशय की उष्णता, सताप दूर होकर वे सशक्त होते हैं। यकृत्काठिन्य मे इसे केशर के साथ देते हैं।

२० रक्तार्श, अत्यार्त्तव या प्रदर पर—इसे दालचीनी और शहद के साथ देते हैं। या उक्त शर्बत का सेवन कराते है। यह रक्त-प्रदर के वेग को शात कर, आर्त्तव का अवरोध करता है। दूसरे या तीसरे मास मे जिन स्त्रियो को गर्भपात हो जाता है, उन्हे भी इसके सेवन से लाभ होता है।

नोट—मात्रा-मूलत्वक् या काण्ठ या काण्ड की छाल की मात्रा-३ से ५ मा० तक। मूलत्वक् स्वरस या पानी में पीसकर निचोड़ा हुआ रस १ से ३ तो० तक। मूलत्वक् का चूर्ण-१० से १५ रत्ती तक, सुगन्धित द्रव्यो के साथ। क्वाथ-५ तो० तक, ४-४ घण्टे मे। अर्क-आधे से १ ड्राम तक दिन में २-६ बार।

यह उष्ण प्रकृति के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ—विरोजा या नारगी का रस देते हैं। प्रतिनिधि-हल्दी है।

ध्यान रहे—असली दारुहल्दी के स्थान मे व्यापारी लोग विधारा या समुद्र-शोष की लकडियो को हल्दी मे उबाल कर बेचते है, या आगे के प्रकरण मे वर्णित लता दारु हल्दी के काष्ठ के टुकडे देते हैं।

असली दारु हल्दी बडी कडी होती है, आसानी से नहीं टूटती। खूब कूटने पर इसका चूर्ण हल्दी के चूर्ण जैसा होता है। इसे या इसकी लकडी को चाहे कितना ही उबाला जाय इसका पीलापन दूर नही होता। यही इसकी पहिचान है।

रसाजन—मात्रा-१ से २ मा० तक। यह प्लीहा-विकार मे हानिप्रद है। हानि-निवारणार्थ अनीसून या सौंफ का सेवन कराते हैं। अतिसार या यकृत्प्रदाह की अवस्थाओ मे रसौत का उपयोग नहीं करना चाहिये।

फल (जरिश्क)—मात्रा-३ से ७ मा० तक। रस-६ तोले तक।

यह गुल्म-विकार के रोगी तथा कफ या वात-प्रकृति वालो के लिये हानिप्रद है। हानि निवारणार्थ—लौंग, विशेषत कफ-प्रकृति वालो के लिये तथा शक्कर या गुलकद वात या खुश्क प्रकृति के लिये देते हैं।

इसका प्रतिनिधि—गुलाब के फूलो का जीरा और श्वेत चन्दन है।

विशिष्ट योग-

१ दार्वी सत्त्व (Berberine Sulphate)—नामक क्षारोद या अल्कलायड का एसिड सल्फेट लवण दारु हल्दी के त्वक्, काण्ड आदि से रासायनिक क्रिया द्वारा प्राप्त किया जाता है। चमकीले पीले रग के क्रिस्टल्स या गहरे पीले रग के चूर्ण रूप मे यह अत्यन्त तिक्त सत्त्व होता है। यह जल तथा अल्कोहल (९०%) मे अत्यल्प मात्रा मे घुलता है।

इसका मुख्य उपयोग उष्णकटिबन्धीय लीशमन पिण्ड (Lishmania tropina) के उपसर्ग से होने वाले प्राच्यव्रण[1] (Oriental sore) या उष्ण कटिबन्धज-व्रण (Tropical Sore) या देहली व्रण (Delhi Boil) मे किया जाता है। यह त्वचा के नीचे की धातुओ एव श्लैष्मिक कला के लिये स्थानिक रूप से सौम्य स्वापजनक होने के कारण वेदना स्थापनार्थ इजेक्ट किया जाता है। इससे इस व्रण को उत्पन्न करने वाले कीटाणु बढने नही पाते। इस सत्त्व के ० ५-१%

[1] इस व्रण के आस-पास तथा ऊपर भी, छोटी छोटी ग्रन्थिया लाल, पीली वर्ण की उठती है। यह एक प्रकार का शतपोनक (भगदर) है। अन्तर इतना ही है कि शतपोनक गुदा के ऊपर होता है, और यह उष्णताजन्य पित्त-प्रकोप से शरीर मे कहीं पर होता है।

घोल की १ से २ सी० सी० मात्रा व्रण के किनारो पर अत्यन्त महीन सूचिका द्वारा ४, ५ जगह दी जाती है। यह इजेक्शन ७ दिन मे एक बार किया जाता है। एतदर्थ ६ सी० सी० मे ⅓ से १ ग्रेन इस सत्त्व का विलयन (घोल) प्रयुक्त होता है। किन्तु कभी-कभी अन्य उपद्रवो के कारण कई सप्ताहो मे यह अच्छा होता है। यदि एक से अधिक व्रण हो, तो एक दिन मे दो व्रणो से अधिक एव ७ दिन मे ४ व्रणो से अधिक (विशेषकर जब व्रण बड़े हो) इजेक्ट नही करना चाहिये। इस इजेक्शन का का तैयार घोल ओरसॉल (Orisol) नाम से बिकता है। चिकित्सा-काल में व्रण का बन्धन (व्रणोपचार Dressing) उचित रूप मे Hypertonic saline नामक लवण जल से करना चाहिये।

मेटेरिया मेडिका (डॉ० रामसुशीलसिंह)

२ दार्वी अर्क (टिंचर)–दारुहल्दी का चूर्ण १० भाग, मद्य (शराब) ६० %वाली ६० भाग दोनो को मिलाकर बोतल मे भर एक सप्ताह तक रहने दे। दिन मे ३-४ या अधिक बार बोतल को हिला दिया करे। फिर उसे छान लें। मद्य १०० भाग मे जितनी कम हो उतनी और मिलाकर छान ले। इस प्रकार २ ओंस चूर्ण से १ पिण्ट (२० ओंस) टिंचर या अर्क तैयार होता है। इसे (Tinct Berberidis) कहते है। यह कटु पौष्टिक (आमाशय पौष्टिक) रूप से ½ मे १ ड्राम तक, तथा शीत ज्वर की पारी रोकने के लिए ६ ड्राम शीत लगने के २-३ घण्टे पहले दिया जाता है। इससे आम-शोधन होकर विष का निवारण होता है, एव ज्वर सरलता से दूर हो जाता है।

सगर्भा की वमन पर इसके अर्क का या रसौत का सेवन कराते है। इससे वमन की निवृत्ति होती है। (गा० औ० र०)

३ दार्वीक्वाथ–इसके जौकुट चूर्ण १५ तोले को १२० तो० जल मे मिला बन्द पात्र मे भर मदाग्नि पर उबालें। लगभग–५० तो० जल शेष रहने पर, छानकर बोतलो मे भर ले।

पित्त प्रधान ज्वर (बार बार हल्लास, वमन, अतिसार, सिरदर्द, अति थकावट, प्रस्वेद आना, बेचैनी एव प्यास अधिक लगना आदि लक्षण हो) मे यह क्वाथ विशेष लाभकारी है। यदि रोगी को कब्ज हो, तो दारुहल्दी के उक्त चूर्ण के साथ मे चिरायता (या चिरायता और कुटकी) मिला देना चाहिए।

अत्यार्त्तव–विशेषत गर्भाशय शैथिल्य तथा प्रदर जन्य अत्यार्त्तव मे उपयुक्त औषध के साथ अनुपान रूप से इस क्वाथ को देने से रोग का निवारण होने मे अच्छी सहायता मिल जाती है। (गा औ र)

४ दार्वी प्रदरारि क्वाथ–रसौत, नागरमोथा, शुद्ध-भिलावा (भिलावे के वृक्ष की छाल लेना ठीक है), बेलगिरी, अडूसा की छाल और चिरायता, इनके क्वाथ को ठडा कर उसमे शहद मिला सेवन करने से शूल-युक्त, पीला, श्वेत, काला व लाल प्रदर नष्ट होता है। (यो र)

इस योग मे रसौत २ भाग, (अथवा दारुहल्दी-मूल ५) मोथा ३ भाग, भिलावा २ भाग, बेलगिरी ५ भाग, अडूसा ५ भाग तथा चिरायता ५ भाग लेकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, शहद ४ भाग मिलाते है। यदि भिलावा मिलाया हो तो क्वाथ को पीने से पूर्व मुखकुहर को घृतलिप्त कर ले। यदि भिलावा असह्य हो, तो उसके स्थान मे लालचन्दन ले। (यो र)

अथवा–रसौत, चिरायता, अडूसा, नागरमोथा, बेलगिरी, लाल चन्दन और आकड़े के फूल समभाग लेकर क्वाथ सिद्ध कर ठण्डा होने पर शहद मिला सेवन करने से पीडा युक्त श्वेत रक्त प्रदर नष्ट होता है। (भा प्र)

५ दार्व्यादि कषायाष्टक–१ रसौत, २ नीम छाल व पटोल पत्र, ३ खैर सार, ४ अमलतास व कुडे की छाल, ५ त्रिफला, ६ सतौना (सप्तपर्ण) की छाल, ७ तिनिश या सादन वृक्ष की छाल, और ८ कनेर मूल यह आठ योग कुष्ठ नाशक है। इसका क्वाथ सेवन करे, इनसे पके हुए पानी से रोगी को स्नान करावे तथा इनसे सिद्ध किये हुए घृत और तैल का सेवन करना चाहिए। इनका ही लेप करे, इनके चूर्ण को देह पर मले, कुष्ठ पर इसका ही अवचूर्ण (Dusting) करे, तथा तैल-पाक

एव घृत पाक के योगो मे कुष्ठ की शांति के लिए इन्हे प्रयुक्त करे। (च० स० चि० अ० ७)

६ दार्व्यादि वटी (अर्श नाशक)—रसौत २॥ रत्ती, नीम-बीज की गिरी १ रत्ती, और बीज रहित मुनक्का ५ रत्ती इन्हे एकत्र घोट पीसकर ३ गोलिया बनावें। अर्श-नाशार्थ १ गोली प्रतिदिन रात्रि मे सोते समय सेवन करे। अथवा—

रसौत ६ तो और देशी शुद्ध कपूर ६ माशे लेकर एकत्र मूली के स्वरस मे ६ घण्टे तक खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बनाले। इन्हे बनाते समय दालचीनी के चूर्ण मे डालते जावें तथा पात्र को बार-बार हिलाते जाय, जिससे गोलिया परस्पर चिपके नही। २ से ४ गोली, दिन मे ३ बार जल के साथ देते रहने से रक्तार्श का रक्तस्राव बन्द होता, तथा नाडीव्रण, सगर्भा का वमन और ज्वर मे भी लाभ होता है।

७ दार्व्यादि रसक्रिया—दारुहल्दी, पटोलपत्र, मुलैठी नीम-छाल, पद्माख, नीलोफर, पुण्डरिया काष्ठ सबका जौकुट चूर्ण ४० तो को २ सेर जल मे पाक करे। चतुर्थांश (आधा सेर) शेष रहने पर छानकर पुन पकावें। गाढा होने पर नीचे उतार ले। शीतल हो जाने पर उसमे ८ तोला शहद मिला ले। उसके प्रलेप से नेत्र-दाह, अश्रुपात, लालिमा, नेत्रशोथ तथा शूल नष्ट होता है। (भैं० र०)

८ दार्वी-नेत्रामृत—दारुहल्दी का मोटा चूर्ण ५ तो को २ सेर जल मे पकावे। आधा शेष रहने पर छानकर ५ तो शुद्ध शहद मिला यथाविधि फिल्टर करले। स्वच्छ बोतल मे भर ऊपर से उत्तम तुत्थ २ रत्ती पीसकर मिला दे।

यथाकाल २-२ बून्द नेत्रो मे टपकाने से नेत्रो के विकार—स्राव, कण्डू, आरम्भिक परवाल, कुकरे, रक्तिमा आदि दूर होते हैं। नूतन और चिरकालीन पोथकी (कुकरे, रोहे) रोग की यह श्रेष्ठ औषधि है। कास्टिक लोशन से जो दोष होते हैं और जिनसे रोगी आजीवन मुक्त नही होता, वे दोष इस प्रयोग से नही होते। (गु० सि० प्रयोगाक धन्वन्तरि)

९ रसाजन मधु योग—(नेत्र विकारो पर)—आवला १६ तो० को १२८ तो० जल मे डाल, मिट्टी के पात्र मे उबाले। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर मटकी मे भर इसमे रसौत और घृत २-२ तो० मिलाकर पुन पाक करें। गाढा होने पर उतार ले। शीत होने पर मधु मिला दें। यह वातज, पित्तज, वात पैत्तिक नेत्र रोगो मे, तथा तिमिर व पटल के रोगो मे उत्तम है।

(श्री सत्यप्रसाद निर्भीक, आयुर्वेदाचार्य सचित्रायुर्वेद से साभार)

१० दार्व्यादि तेल (कर्ण रोगो पर)—दारुहल्दी का जौकुट चूर्ण-५ सेर मे जल २५ सेर ४८ तो (२ द्रोण) मिला अर्धावशिष्ट क्वाथ कर अलग रखे। फिर दशमूल मिलित ५ सेर का मोटा चूर्ण, तथा जल २५ सेर ४८ तो का अर्धावशिष्ट क्वाथ कर अलग रखे। वैसे ही मुलैठी चूर्ण ५ सेर का उक्त प्रमाण से क्वाथ करे। केले की जड़ का रस ६ सेर ३२ तो तथा कल्कार्थ कूट, वच, सहिजना की छाल, सोया या सोफ, रसौत, देवदारु, यवक्षार, सर्जिका क्षार, विडनमक, सेधानमक मिलित ३२ तो का कल्क करे। उक्त तीनो-क्वाथ केले का रस और कल्क मे तिल तेल १२७ तो मिला तेल सिद्ध कर लें। इसे कान मे डालने मे कर्णशूल, कर्णनाद, वहरापन, पूतिकर्ण, कर्ण-क्ष्वेड, कृमिकर्ण, कर्णपाक, कर्ण कण्डू, कर्ण प्रतिनाह, शोथ, स्राव आदि नष्ट होते हैं। (भैं० र०)

नोट—दारुहल्दी के शेष प्रयोग हल्दी के प्रकरण मे देखें।

दारुहल्दी (लता) मलाबारी (*COSCINIUM-FENESTRATUM*)

गुडूची कुल (Menispermaceae) की यह लता, वृक्ष के आश्रय मे ऊपर को अपना विस्तार करते हुए वढती है, काड या तना काष्ठल, वेलनाकार १-४ इच व्यासका, जिस पर पीत वर्ण की खुरदरी, मोटी, नरम
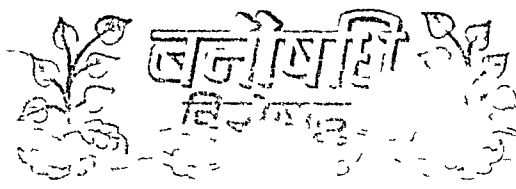
छाल होती है। भीतर काष्ठ हरिताभ पीत वर्ण का कुछ चमकीला, दारुहल्दी की अपेक्षा बहुत कम कडा और पीतवर्ण मे भी उससे हलका होता है। पत्र—करतलाकार खडित होते हैं।

यह लता मलाबार के पर्वतो पर तथा पश्चिम भारत के जगलो एव पहाडो पर एव सीलोन मे प्रचुरता से पाई जाती है। वैसे तो थोडी बहुत प्राय समस्त भारतवर्ष मे यह उपजती है।

इसका स्वरूप और गुणधर्म बहुत कुछ बिलायती-(Calumba, Colombo root) के समान होने से यह उसकी उत्तम प्रतिनिधि है। कलम्बा का सचित्र विस्तृत वर्णन इस ग्रथ के द्वितीय खड मे देखिये।

दक्षिण भारत के बडे शहरो मे यह मलाबारी दारुहल्दी, या सीलोन कलम्बा नाम से सहज प्राप्त होती है। इसके गुणधर्म असली दारुहल्दी की अपेक्षा हीनदर्जे के है। यथापि यह असली दारुहल्दी के स्थान मे या उसमे मिश्रण कर दक्षिण के बाजारो मे बेची जाती है।

नाम—

स०—लतादार्वी, कालीयक, कलम्बक इ। हि—दारुहल्दी। मलाबारी, झाड की हल्दी। म.–झाडी हलद ब०–हल्दीगाछ। अं०–ट्री टरमेरिक (Tree Turmeric) फाल्स कलम्बा (False Calumba) ले०—कोसीनियम फेनेस्ट्रेटम; मेनिस्परमम फेने स्ट्रेटम (Menispermam Fenestratum)

रासायनिक सघटन—

इसमे बरबेरीन (Berberine) दारुहल्दी की अपेक्षा अल्पमात्रा मे, तथा सेपोनीन (Saponin) नामक सत्व पाये जाते है।

गुण धर्म व प्रयोग —

तिक्त, दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, वातनाशक, सडने गलने की क्रिया को रोकने वाली, उदरजकृमिनाशक, खाने से मुखगत लाला स्राव एव आमाशयिक रस को बढाने वाली ज्वर प्रतिषेधक है।

सामान्य सतत एव विषम-ज्वरो तथा ज्वरोत्तरकालीन सार्वदैहिक दौर्बल्य व कई प्रकार के अजीर्ण मे इसका शीतकषाय क्वाथ, फाट या टिंचर अति गुणकारी है।

इसके १ औंस जौकुट चूर्ण को १ पाइन्ट (लगभग ५३ तोला) शीतल जल मे (जल परिस्रुत डिस्टल्ड लेना चाहिए) आध घण्टा तक भिगोये रखकर (या रात को रख कर प्रात) छान लेवे। यही शीत कषाय है। मात्रा ४-१२ ड्राम तक।

टिंचर के लिए १ भाग, इसके चूर्ण मे १० भाग मद्यार्क मिला ३-४ दिन बाद छान ले। मात्रा आधा से १ ड्राम तक।

क्वाथ चतुर्थांश की मात्रा १। से २।। तो तक शीत-लतादायक औषधि की भाति शिर मे इसका प्रलेप करते है तथा घृष्ट, पिष्ट क्षतो पर भी इसका लेप लगाते है।

दालचीनी (Cinnamomum Zeylanicum)

कर्पूरकुल (Lauraceae) के इसके वृक्ष हरे-भरे, मध्यमाकार के, तज या तेजपात के वृक्षो से कुछ बडे, छाल—धूसरवर्ण की रक्ताभ, लगभग ½–१ इञ्च मोटी, चिकनी तेजपात की छाल से अधिक पतली, अधिक पीली एव अधिक सुगधित होती है। इसी छाल को चीनी, सिलोनी (सिंहली) दालचीनी कहते हैं। यह तज (दालचीनी) या भारतीय दालचीनी की अपेक्षा गुणधर्मो मे श्रेष्ठ है। भीतरी काष्ठ—हलके लाल रग का, पत्र—अभिमुख, चर्मवत्, कडे, ३–८ इञ्च लम्बे, १।।–३ इञ्च चौडे, भालाकार, नुकीले, ऊपर से चिकने चमकीले, सूक्ष्म रोमश, ३ या ५ प्रधान सिराओ से युक्त जिनके बीच महीन जालीदार सिराए रहती हैं[1] पर्णवृन्त ½-१ इञ्च लम्बा, ऊपर से चपटा, पुष्प—बसतऋतु मे, लम्बे पुष्पदण्ड पर, गुच्छो मे, धूसर या श्वेत वर्ण के पुष्प, गुलाब पुष्प जैसे सुगधित, फल—बसत मे गहरे बेगनी

[1] ये तज के पत्ते (तेजपात) जैसे ही, किन्तु उनसे बडे होते है। सूखने पर इनमे लवङ्ग के समान सुगन्ध आती है।
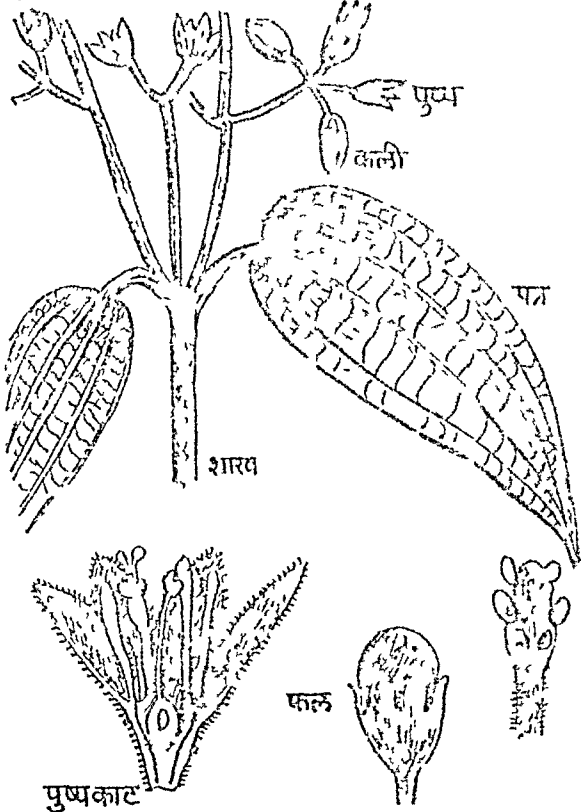
रग के, गोल, लगभग १ इ च लम्बे, करोदा जैसे किंतु छोटे, शुष्क या किंचित मासल होते हैं।

इन वृक्षो का आदि प्रमुख स्थान सीलोन तथा कोचीन, चीन, सुमात्रा, जावा है। किंतु दक्षिण भारत के मद्रास, मैसूर आदि स्थानो मे भी ये पाये जाते है।

इसकी कई जातिया हे, किन्तु देश-भेद से निम्नाङ्कित तीन प्रकार की व्यवहार मे आती है—

(अ) सिंहली (सीलोनी)—सीलोन (लका) से आने वाली दालचानी पतली छाल वाली सबसे श्रेष्ठ होती है। इसी के वृक्ष का ऊपर शीर्पस्थान मे दिया हुआ लेटिन नाम है। इसका तथा निम्न चीनी दालचीनी का मिलित वर्णन प्रमुखता से यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।

(आ) चीनी-दालचीनी—चीन, कोचीन, सुमात्रा आदि देशों से आता है। इसके वृक्ष को लेटिन मे सिनेमोमम् केशिया (Cinnamomum Cassia), छाल को हिन्दी मे तज, स. ब. मे दालचीनी, अ.—कैसिया सिनेमोन (Cassia Cinnamon) या चाइनीज कैसिया (Chinese Cassia) कहते है।

इसका वृक्ष सदाहरित, चिकना, पत्र—आयताकार या भालाकार पत्ते ६–८ सि मि लम्बे, त्रिशिराप्रयुक्त, चर्मवत्, अस्पष्ट शिराजाल से युक्त, पुष्प—छोटे, कुछ पीले लम्बे पतले, पुष्प वृन्त से युक्त, पत्र के अक्ष मे या छोटी शाखाओ के अन्त मे लगते है। फल—निर्मल, अण्डाकार मटर के बराबर, कुछ रसदार होते है। इसकी सूखी हुई छाल को चीनी दालचीनी कहते है, जो २–४० से. मि लम्बी एव मुडी हुई, बाहर से हलके भूरे रग की, प्राय चिकनी तथा कुछ आडी झुर्रियो से युक्त, अन्दर से रक्ताभ भूरे रग की, रेशेदार होती है। इसकी गन्ध मनोहर, स्वाद मधुर एव उष्ण होता है (जीभ पर कुछ उष्णता प्रतीत होती है) इसमे उडनशील तैल ०.८%, जल एव रंजक पदार्थ आदि पाये जाते है।

यह गुणधर्म मे उष्ण, वातानुलोमक, आमाशय-उत्तेजक, ग्राही एव अति आल्हादकारक है। इसमे सार्वदैहिक की अपेक्षा स्थानिक उत्तेजनाशक्ति अधिक है। इसका स्वतन्त्र प्रयोग कम किया जाता है, तथापि इसके फाण्ट या चूर्ण से हल्लास दूर होता है, तथा आध्मान मे भी लाभ होता है। अतिसार मे अन्य ग्राही औषधि के साथ एव अन्य अनेक मिश्रणो मे सहायक द्रव्य के रूप मे इसका व्यवहार किया जाता है। मात्रा—२½ से १० रत्ती तक।

(इ) भारतीय दालचीनी—यह हिमालय प्रदेश मे ५–६ हजार फीट की ऊचाई पर मिलती है। यह उक्त चीनी दालचीनी की ही जाति की है। केवल स्थान भेद से इन दोनो मे कुछ अन्तर पाया जाता है। अन्यथा इन दोनो मे कोई विशेष भेद नही प्रतीत होता। इसे लेटिन मे सिनेमोमम तमाल (Cinnamomum Tamala) कहते है, जिसका वर्णन हम पीछे तेजपात के प्रकरण मे कर आये हे। भाषा मे इसकी छाल को कही २ दालचीनी या तज ही कहते हे। यह सबसे मोटी, कम तीक्ष्ण तथा जल मे पीसने से लुआबदार हो जाती है। इसका

मिश्रण प्राय असली सिंहली दालचीनी मे कर दिया जाता है। क्योकि, सिंहली या सिंगापुरी दालचीनी बहुत महगी होने के कारण बाजार मे बहुत कम आती है। प्राय मोटी छाल को तज या तालुका (इसका लेपादि मे बहुत व्यवहार किया जाता है) और पतली छाल को दालचीना कहते है। तेजपत्र और तज एक ही वृक्ष के पत्र और छाल है। पत्र का वर्णन तेजपात के प्रकरण मे देखे।

इसके अपक्व फलो को अग्रेजी मे केशिया बड्स (Cassia buds) कहते हे। इन फलो मे भी छाल (तज) जैसा ही किन्तु अधिक चरपरा स्वाद होता है। यूनानी मे इन्हे काला नागकेशर कहते हैं।

जगली दालचीनी–उक्त भारतीय दालचीनी की ही जाति के अन्य पेड कोकण तथा मलाबार कोष्ट पर पाये जाते है, जिन्हे लेटिन मे सिनेमोमम् मलाबाथरम (C Malabathrum), अग्रेजी मे कट्री सिनेमन (Country Cinnamon) तथा भापा मे जगली या कडू दालया करुआ कहते हैं। इसका आदिस्थान वास्तव मे दक्षिण व उत्तरी कनाडा प्रदेश हे। इसकी छाल काली दाल के नाम से तथा फल जो उक्त दालचीनी के फल की अपेक्षा बडा होता है, काला नागकेशर नाम से बिकता है। इसके सुगन्धित पत्र और छाल से एक प्रकार का तैल निकाला जाता है, जो सिरपीड़ा आदि मे उपयोगी है। इसके शुष्क अपक्व फलो को या बीजो को पीसकर शहद या शक्कर के साथ बालको के अतिसार या कास आदि कफ विकारो मे देते हैं। अन्य उपयुक्त द्रव्यो के साथ यह ज्वर पर भी दिया जाता है। छाल का उपयोग कढी, साग आदि मे मसाले के रूप मे विशेष किया जाता हे। इसकी ताजी अन्तर छाल उत्तम सुगध एव स्वादयुक्त होती है।

सुश्रुत के एलादिगण मे तथा शिरोविरेचन मे प्रस्तुत प्रसग की दालचीनो का उल्लेख है।[१] त्रिजातक व चातुर्जात की कल्पना, जिसमे दालचीनो की प्रधानता है, भावप्रकाशकार की यथायोग्य की गई है।

छाल सग्रह—इसका वृक्ष ३ वर्ष का हो जाने पर इसकी छाल को निकाल कर सुखाई हुई अथवा इस वृक्ष की शाखाओ को या झाडियो को काटने के बाद उत्पन्न नवीन प्ररोहो की सूखी हुई अन्दर की छाल को ही सिंहली या सीलोनी दालचीनी कहते है। यही सर्वोत्तम एव औषधिकार्यार्थ ली जाती है। यह छाल एक दूसरे पर इकहरी या दुहरी लिपटी हुई, ३-४ फुट तक लम्बी तथा १ से मी तक ब्यारा की, बाह्य भाग मटमैला पीताभ भूरे रग का अनेक हल्की लहरदार धारियो (सूक्ष्म रेखाए) से एव इतस्तत छोटे २ चिन्ह या छिद्रो से युक्त होता है। अन्तस्तल उक्त बाह्य तल की अपेक्षा गाढ़े रग का एव अनुलम्ब दिशा मे सूक्ष्म रेखाओ के जाल से युक्त होता हे। यह छाल प्राय ½ मिलिमिटर मोटी तथा तोडने पर आसानी से टूट जाती है। तज की अपेक्षा पतली गदले लाल रग की, मधुर, सुगधित एव तीक्ष्ण होती है। इसका सग्रह सूखी एव ठडी जगह मे किया जाता है।

इसका चूर्ण भी मटमैला पीताभ भूरे रग का होता है। इसमे कम से कम ० ७% उडनशील तैल होता है। इसे अच्छी तरह डाट बन्द पात्र मे रखना चाहिए, जिससे इसका प्रभावशाली तैल उडने न पावे। चूर्ण के पात्र को भी ठडी जगह मे सुरक्षित रखना चाहिये। एलोपैथी मे यह चूर्ण अनेक सुगधित औषधिप्रयोगो मे (जैसे Aromatic powder of chalk, Aromatic powdered chalk with opium आदि) पडता है।

नाम–

सं०–त्वक् (छाल का ही विशेष प्रयोग होने से), उत्कट (तीक्ष्ण होने से), गुडत्वक, त्वक्स्वाद्वी (मधुर रस होने से) तनुत्वक (पतली छाल वाली), दारुसिता इ०। हि०–दालचीनी, तज, कलमी दारचीनी, किर्फा इ०। म गु०–दालचीनी, तज। ब०–दारुचिनि, गुडत्वक। अ–Cinnamon bark सिनामान बार्क। ले०–सिनेमोम् जिलेनिकम् (वृक्ष का नाम), छाल का नाम-सिनेमोमी कोरटेक्स (Cinnamomi cortex)।

रासायनिक सङ्गठन–

छाल मे एक उडनशील तैल ० ५ से १% टेनिन,

---

[१] दालचीनी तेजपात व इलायची इन तीनों के सम भाग मेल को त्रिजात या त्रिसुगध कहते है। इनमे नाग केशर मिलाने से चातुर्जात कहाता है।

पिच्छिल द्रव्य गोंद आदि पाये जाते है।

उक्त तैल को दालचीनी का तैल, रोगन दालचीनी अंग्रेजी मे सिन्नेमम आयल (Cinnamom oil) तथा लैटिन मे ओलियम सिन्नेमोमाई (Oleum Cinnamomi (ol cinnam) कहते है। यह तैल परिस्रवण (Distlillation) द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसमे ५५ से ६८% तक सिन्नेमिक एल्डिहाइड (Cinnamic aldehyde), लगभग १०%, यूजेनाल (Eugenol), तथा अल्प मात्रा मे मेथिल-एन-अमिल कीटोन methyl-n-amyl ketone), पी साइमीन (p cymene) आदि रसायनिक द्रव्य पाये जाते है। यह तैल ताजी अवस्था मे हलके पीले रग का रहता है, जो पुराना होने पर लाली लिए हुए भूरे रग का हो जाता है। इसका स्वाद व गंध दालचीनी जैसा ही होता है। इस तैल को अच्छी तरह डाट बन्द पात्रो मे ठडी जगह पर रखना चाहिये तथा प्रकाश से बचाना चाहिए। इस तैल का आपेक्षिक गुरुत्व १०-३० तक होता है, यह पानी मे डालने से डूब जाता है। ८० पौंड दालचीनी से २½% उडनशील तैल तथा ५½% स्थिर तैल प्राप्त किया जाता है।

छाल (दालचीनी) के अतिरिक्त इस वृक्ष की पत्तियो और मूल से भी तैल प्राप्त किया जाता है। पत्तियो का तैल किंचित गहरे रग का उडनशील होता है। यह उक्त छाल के उडनशील तैल से बिलकुल भिन्न है, इसमे कुछ लवग जैसी तीव्र गध आती है, तथा इसमे ७०-९५% यूजेनाल रहने के कारण दालचीनी तैल मे इसकी मिलावट की जाती है, जिसकी पहचान उसमे बढी हुई यूजोनॉल की मात्रा एव घटी हुई सिन्नेमिक-एल्डिहाइड की मात्रा से की जा सकती है। इस परीक्षण के असफल करने के लिये, इसमे रासायनिक विधि द्वारा निर्मित सिन्नेएल्डि को मिला देते है, तथापि इसकी पहचान उसके हरितवर्ण (क्लोरीन की उपस्थिति), एव बढे हुए विशिष्ट गुरुत्व आदि से हो जाती है। यह पत्तो का तैल लौंग के तैल जैसा उपयोग मे लाया जा सकता है, तथा आमवातादि मे मालिश के लिये विशेष उपयोगी है।

मूल का तैल पीले रंग का तथा पानी से हलका होता है। यह पानी पर फैल जाता है, या ऊपर ही उतराता रहता है। इसके फलो का तैल काला रग का होता है। पुष्पो से अर्क तथा इत्र निकालते है।

प्रयोज्याङ्ग—त्वक (छाल) पत्र और तैल।

गुण-धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, मधुर, कटु-विपाक, उष्णवीर्य, कफवातशामक, पित्तवर्धक (किंतु-जिस छाल मे मधुरता अधिक होती है, वह पित्त शामक है), दीपन, पाचन, वातानुलोमन शुक्रजनक, यकृदुत्तेजक, साधारण ग्राही, वस्तिशोधक, स्तभन, रक्तोत्क्लेशक (रक्त मे श्वेत कण वर्धक) वेदना स्थापन, लेखन, कठ शोधक, मूत्रल, यक्ष्मानाशक, गर्भाशय-सकोचक, वाजीकर, कामोद्दीपक, तथा नाडी दौर्बल्य, आध्मान, आक्षेप, हिक्का, कास, श्वास, हृद्रोग, पक्षाघात, अरुचि, अग्निमाद्य, मुख-शोष, तृषा, आमदोष, उदर शूल, ग्रहणी, अर्श, आन्त्रिक ज्वर, कृमि, पीनस, कण्डू, मूत्रकृच्छ, पूयमेह, रजोरोध, गर्भाशय-शैथिल्य, नपुसकता, कैंसर आदि विकारो मे यह प्रयुक्त होता है।

त्वक (छाल)—उक्त गुण धर्म प्राय छाल के ही है। यह उत्तम दीपन, पाचन होने से आमाशय के विकारो पर विशेष हितकारी है। इससे आमाशय की श्लैष्मिक कला को उत्तेजना मिलकर आमाशयिक रस की वृद्धि होती, आहार का ठीक पाचन होता, सचित वायु निकल जाती उदर मे वायु की विशेष उत्पत्ति नही होने पाती है।

यह अपने ग्राही वातानुलोमन आदि गुणो से जीर्णातिसार, ग्रहणी आदि आन्त्र विकारो पर उपयोगी है। इसे उपयुक्त अन्य द्रव्यो के साथ सेवन से वात का सचय या वृद्धि नही हो पाती, तथा शौच क्रिया नियमित होने लगती है। जीर्णातिसार, आध्मान एव अन्त्राक्षेप आदि मे यह अफीम और चाक मिट्टी के साथ दी जाती है। इसमे एव इसके तैल मे सिनेमिक एल्डिहाइड नामक एसिड के होने से यह कफ कास, कठ रोग, राजयक्ष्मा तथा तज्जन्य कीटाणुओ से उत्पन्न विकारो मे इसका सत्वर असर पडता है, तथा रक्तपित्त मे भी लाभकारी है, एतदर्थ ही सितोपलादि चूर्ण का सेवन कराया जाता है। इसका क्वाथ रक्तस्राव को बन्द करता है; फुफ्फुस

तथा गर्भाशय के रक्तस्राव मे इसका प्रयोग करते है।

मुख शोधन, मुख दुर्गन्ध नाशन एव दातो की मजबूती के लिये इसे मुख मे रखते व चबाते है। इससे वमन एव उत्क्लेश मे भी लाभ होता है।

इसका लेप न्यच्छ व्यङ्ग, आदि चर्म रोगो मे तथा नाडी शूल, शिर शूल, तथा शोथ वेदना युक्त स्थानो पर किया जाता है।

वाजीकरणार्थ इसे अन्य उपयुक्त द्रव्यो मे मिला कर तैल निकाला जाता है, जिसे शिश्न पर मर्दन करते है। तथा इसे अन्य वाजीकर द्रव्यो के साथ पीस कर लेप भी करते हैं।

(१) अतिसार पर—त्वक चूर्ण व रात चूर्ण १॥-१॥ माशा, वेलगिरी चूर्ण ३ मा० इन तीनो को गुड मिले दही के साथ देने से शूलसहित नूतन आमातिसार में सत्वर लाभ होता है। अथवा उदर मे दूषित मल सग्रहीत न हो, तो दस्त वद करने के लिये त्वक चूर्ण और श्वेत कत्थे का चूर्ण ६-६ रत्ती मिलाकर दस्त लगने पर शहद या जल के साथ दिन मे २-३ वार दे। अतिसार बन्द हो जाता है। यदि मधु के साथ देना हो, तो मात्रा ३-३ रत्ती वारवार देवें। (गा० औ०र०)

अथवा त्वक चूर्ण ४ मा० और कत्था १ तो० मिला कर पीस कर उसमे २५ तो० खौलता हुआ जल मिला ढाक कर रक्खे। २ घटे बन्द, छान कर २ या ३ भाग कर दिन मे २-३ वार पिलावे।

मन्दाग्नि, अजीर्ण व कोष्ठबद्धता पर—भोजन के पूर्व त्वक्, सोठ और इलायची ५-५ रत्ती पीस कर खाते रहने से मदाग्नि व अजीर्ण मे लाभ होता है।

कोष्ठबद्धता विशेष हो, तो त्वक् चूर्ण ४ मा० और हरड का चूर्ण १६ मा० इन दोनो को एकत्र कर, १० तो० पानी मिला १० मिनट तक आग पर पका कर, छान कर पिलावे। दस्त साफ होकर कोठा साफ हो जाता है। आध्मान हो तो रात्रि के समय त्वक् का क्वाथ पिलावें।

(३) वमन पर—पित्त प्रकोप जन्य वमन या उत्क्लेश हो, तो-त्वक् का फाण्ट या अर्क दिया जाता है। अथवा त्वक् और लौग का क्वाथ या फाण्ट देते है। या त्वक् चूर्ण को ही थोडा मधु मिलाकर चटाते हैं।

(४) शिर शूल पर—कफ या शीतजन्य सिर दर्द हो, तो त्वक् को जल के साथ पीस कर, कुछ गरम कर सिर पर लेप या उसके तेल का मर्दन करे। एक कटोरी पर झीना वस्त्र बाध कर उस पर त्वक् चूर्ण को रख चूर्ण पर अभ्रक का पत्रा रक्खे और उस पर आग रख देने से कटोरी मे जो इसका अर्क या तैल सगृहीत हो उसे शीशी मे रख ले। इसे सिर पर लगाने से शीघ्र ही दर्द दूर होता है —(व०गु०)

(५) इन्फ्लुएजा पर—त्वक् ४ मा०, लौग ५ रत्ती, और सोठ १५ रत्ती इन तीनो को जो कुट कर, १ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थाश शेष रहने पर छान कर ५-५ तो० की मात्रा मे ३-३ घटे से पिलाने से शरीर की धडकन, वेचैनी, सिर पीडा आदि दूर होकर ज्वराश हल्का पड जाता है। रोगी को आराम मिलता है।

(६) कास आदि कफ-विकार-पर—त्वक् चूर्ण ४ मा०, सोफ चूर्ण २ मा०, मुलैठी चूर्ण, बीज रहित मुनक्का ८-४ मा०, मीठे वादाम गिरी १ तो०, कडुवे वादाम की गिरी और शक्कर ४-४ मा० इन सबको एकत्र थोडे जल के साथ खूब घोट, पीस कर ३-३ रत्ती की गोलिया बनाले। दिन रात मे कई वार १-१ गोली मुख मे रख कर चूसते रहे। इससे शुष्क कास पर शीघ्र लाभ होता है। प्रतिश्याय की प्रारभिक-अवस्था मे चाय के साथ त्वगादि चूर्ण (आगे विशिष्ट योगो मे देखे) १॥-१॥ माशे डाल कर पिलाने से विशेष लाभ होता है।

७ प्रसूति रोग, तथा अत्यार्त्तव आदि गर्भाशय के विकारो पर—प्रसव-काल मे पीडा बढने पर तथा गर्भाशय शैथिल्यजन्य अति रज स्राव मे गर्भाशय की मासपेशियो के शैथिल्य को दूर करने के लिये त्वक्चूर्ण, पीपलामूल और भाग के साथ दिया जाता है। अत्यार्त्तव मे इसे अशोक छाल के क्वाथ या फाण्ट के साथ देते है। सूतिका को प्रारम्भ मे, वात-प्रकोप से एव दूषित कीटाणुओ से बचाने के लिये कुछ दिनो तक इसके चूर्ण मे पीपलामूल-चूर्ण मिलाकर सेवन कराते

है। गर्भाशय की मासपेशियो के क्षीण हो जाने से प्रसव-काल मे विलम्ब हो जाने पर इसका अर्क का सेवन कराते है। आगे विशिष्ट योगो मे त्वगर्क देखें।

नोट—आगे प्रयोग न० १४ से त्वक् के शेष प्रयोग देखिये।

तैल—

वातानुलोमक, उत्तेजक, वेदना-नाशक, वातहर, रक्तस्रावरोधक, आध्मान, अरुचि, वमन, अतिसार मे लाभकारी, व्रणशोधक एव रोपक, यक्ष्मानाशक, कृमि-नाशक है।

८ राजयक्ष्मा मे इसे कैपसूल मे भरकर खिलाते या इजेक्ट करते है। तैलान्तर्गत सिनेमिक एसिड क्षय के दण्डाणुओ को नष्ट कर देता है। यक्ष्मा के इन कीटाणुओ से उत्पन्न व्रण पर तैल का फाया या तैलयुक्त पुल्टिस को बाधते रहने से वह शुद्ध होकर शीघ्र आराम होता है।

९ आध्मान, मरोड, आमाशयिक शूल तथा वमन पर इस तैल को मिश्री के साथ खिलाते है।

१०. आन्त्रिक-ज्वर (टायफाईड) मे आत्र प्रतिदूषक औषध के रूप मे, अन्य औषधो के साथ सेवन कराते है।

११ प्रतिश्याय तथा इन्फ्लुएन्जा मे इसे मिश्री के साथ या कैपसूल में भरकर खिलाते है, तथा रूमाल पर इसे डालकर सूघने को देते है।

१२ वाजीकरणार्थ—इस तैल १ भाग मे ३ भाग जैतून तैल मिला इन्द्री पर मर्दन करते है, तथा शीत-जल से उसे बचाते है।

१३ कृमिदन्त आदि पर—तैल के फाये को कृमि-दूषित दात के गढ़े मे रखने से, उस स्थान की शुद्धि होकर दर्द दूर होता है।

कफज सिर-दर्द पर—तैल को ललाट व कनपटी मे मर्दन करते हैं।

आत्र सकोच पर—इसे पेट के नीचे मलते हैं।

कर्णबाधिर्य पर—इसे कान मे टपकाते है।

वात के विकारो पर—इसकी मालिश करने से लाभ होता है।

मासिक धर्म मे—अधिक रज स्राव के निरोधार्थ तैल को मिश्री के साथ सेवन कराते हैं।

त्वक् के शेष प्रयोग—

१४ हैजे मे होने वाली हाथ-पैरो की ऐठन पर—त्वगाद्युद्वर्तन त्वक्, तेजपात, रास्ना, अगर, सहेजना-छाल, कूठ, वच, और सोये का समभाग मिश्रित चूर्ण काजी मे पीस मलने से विपूचिकाजन्य ऐठन दूर होती है। इन औषधियो से सिद्ध किया हुआ तैल भी ऐसा ही गुण-कारी है। —भा० भै० र०

१५. पित्तज शिरोरोग—त्वक् पत्रादि नस्यम्-त्वक्, तेजपात और खाड को चावलो के धोवन के साथ पीस-कर नाक मे टपकाने से लाभ होता है। —व० से०

१६ वातरोग पर—त्वगाद्या गुटिका-त्वक्, इलायची, शुद्ध गधक इनका चूर्ण तथा शुद्ध गूगल समभाग लेकर, अण्डी के तैल मे घोटकर १ से ३ मा० तक की गोलिया बना ले। १-१ गोली गरम जल से सेवन करने से वात रोग नष्ट होता है। —भा० भै० र०

१७ गले की काग वृद्धि पर—प्रातःकाल मे शौच मुख-मार्जन आदि क्रिया से निवृत्त होने के बाद त्वक्चूर्ण ६ रत्ती को पानी के साथ खूब महीन पीसकर, इसका लेप, दाहिने हाथ के अगूठे से काग पर करे, तथा मुख खोलकर लार टपकने दे। दो दिन ऐसा करने से कागवृद्धि दूर होती व कास नष्ट होती है।

(१८) अरुचि पर—त्वक्, नागरमोथा, इलायची और धनिया इनका चूर्ण, अथवा—त्वक्, अजवायन और दारु हल्दी इनका चूर्ण जिह्वा पर मलने तथा शहद मे मिला कर चाटने से मुख का शोधन होता तथा सर्व प्रकार की अरुचि दूर होती है।

(१९) श्वेत-प्रदर व प्रमेह पर—त्वक् ६ मा०, सालम मिश्री १ तो० और सीप भस्म २ तो०, महीन चूर्ण ६ मा० की मात्रा मे, जल से देवे।

—यूनानी ग्रन्थ से

नोट—पत्तो के गुणधर्म व प्रयोग तेजपात मे देखिये।

विशिष्ट प्रयोग—

१. त्वक्पानीय (Aqua Cinnamomi) या

अर्क—त्वक्-चूर्ण को १० गुने जल मे मिला नलिका यंत्र द्वारा अर्क खीच लेवे। तैल से भी यह तैयार किया जाता है—इसका तैल १६ बून्द, मेगनेशिया कार्बोनेट ५६ ग्रेन और बाष्प जल ६० औंस लेकर, प्रथम तैल को मेगनेशिया के साथ खरल मे मिलाले। फिर शनै-शनै जल मिला, चलाकर त्वक् पानीय बनाले। उसे छानकर उपयोग मे लावे। मात्रा—१ से २ औंस।

गर्भाशय की मासपेशिया क्षीण हो जाने से प्रसवकाल मे विलम्ब होने पर यह अर्क ४-४ घटे के अन्तर से देते रहने से गर्भाशय संकुचित होकर लाभ होता है।

—गा० औ० र०

वमन, अतिसार आदि कई विकारो पर यह दिया जाता है।

२ त्वगादि चूर्ण—त्वक्, छोटी इलायची के दाने, और सोठ समभाग महीन चूर्ण करलें। मात्रा—५ से ३० रत्ती। अग्निमाद्य, आमप्रकोप एव कीटाणु नाशक तथा मथर ज्वर मे लाभप्रद है।

नूतन प्रतिश्याय मे यह चूर्ण १½ मा० की मात्रा मे चाय के साथ पिलाने से विशेष लाभ होता है।

—गो० औ० र०

३ त्रिजात चूर्ण—दालचीनी (त्वक्), तेजपात और छोटी इलायची के मिश्रण का चूर्ण ३ मा० की मात्रा (बालको को ½ से १ मा० तक) मे भोजन के पूर्व शहद के साथ लेते रहने से अग्निमाद्य, अरुचि दूर होकर क्षुधा प्रदीप्त होती, आमता नष्ट होती एव वमन, हृल्लास (जी मिचलाना) और अपचन की निवृत्ति होती है। इस चूर्ण से मजन तथा इसके क्वाथ से कुल्ले करने से दात की पीडा शमन होती, जिह्वा की जडता या शून्यता, मुख का वेस्वादपन दूर होता तथा मुख व कण्ठ की शुद्धि होती है। नित्य दन्त-मजन मे इस चूर्ण को मिला देने से, दातो की दूषित कीटाणुओ से रक्षा होती है।

इस त्रिजात या त्रिगन्ध चूर्ण मे नागकेशर मिला देने से चतुर्जात कहाता है। यह रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, कुछ पित्तकारक, वर्ण्य (शरीर की कान्ति को बढाने वाला), रुचिकारक और पित्त-कफ नाशक है।

—शा० स०

त्रिजात के कई उत्तमोत्तम प्रयोग शास्त्रो मे देखने योग्य है।

४ त्वगासव—त्वक्-चूर्ण १ भाग मे मद्य (७० से ९०%) ५ भाग मिला, बोतल मे भर मजबूत कार्क बन्द कर रक्खें। ७ दिन बाद अच्छी तरह फिल्टर कर शीशियो मे भर ले। ½ से ४ मा० तक की मात्रा मे, जल मिश्रण कर सेवन करने से अतिसार, आमातिसार, अग्निमाद्य, अजीर्ण तथा अन्य उदर-रोग दूर होते है। अथवा—

त्वक् का मोटा चूर्ण ७ तो० और रेक्टिफाइड-स्प्रिट ५० तो० उक्त विधि से मद्यासव निर्माण कर लें। यह भी उक्त प्रकार से लाभदायक है। मात्रा—३० बूंद तक। यह उत्तेजक, वातहर, पाचक और स्तम्भक है।

और भी अन्य प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह मे देखिये।

नोट—मात्रा—त्वक-चूर्ण ५-१५ रत्ती। तैल—१-५ बूंद। पित्त-प्रकृति वालों को अधिक मात्रा मे यह सिर-दर्द पैदा करता, तथा वृक्क व मूत्राशय को हानिदायक है। हानिनिवारणार्थ, कतीरा, श्वेत चदन, खमीरा-बनफशा आदि देते हैं।

गर्भवती स्त्री को भी इसे अधिक मात्रा मे नही देना चाहिये। गर्भपात होने की सभावना है।

बडी मात्रा मे इसका उपयोग केसर के उपचार मे किया जाता है।

दालमी (*FLUEGGEA MICROCARPA*)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके क्षुप, १॥ फुट ऊचे, छाल श्वेत या बादामी रग की, पत्र—पतले लम्बे गोल २ ५ से० मी० तक चौडे, पुष्प—पु व स्त्री केशरयुक्त, कुछ गुलाबी छटा लिये हुए छोटे-छोटे, फल—छोटे-छोटे जिसमे श्वेत सरसो जैसे श्वेत बीज होते हैं। ये बीज पशुओ को खिलाये जाते है। दुष्काल

के अवसर पर मनुष्यो ने भी इन बीजो की रोटी बनाकर खाया है।

ये क्षुप भारत मे प्राय सर्वत्र वर्षाकाल मे उगते है।

नाम—

सं०-चक्षरी पांनुफली इ०। हिं०-डालमी, पटाला। म०-पाढरफली। गु०--भाभावी। ले०--फ्ल्यूगिया माइ-क्रोकार्पा।

इसमे एक क्षारतत्त्व होता है, जो मछलियो के लिए विष है।

गुणधर्म व प्रयोग—

शीतवीर्य, मधुर, वृष्य, पौष्टिक है, तथा मूत्राघात, पित्त-प्रकोप, मूत्रकृच्छ्र, कृमि एव रक्त-विकार नाशक है।

कुचले के विष पर—इसके पत्तो का रस पिलाते है। दुष्ट व्रण के शमनार्थ—पत्तो को या पत्र-रस को तम्बाकू के साथ मिलाकर एक लेप तैयार किया जाता है, व्रण के दूषित कृमि को नष्ट कर व्रण को ठीक कर देता है।

दियार--दे०--देवदारु। दीर्घपत्रा--दे०--बेंत।

दुकू (*PEUCEDANUM GRANDE*)

गर्जर या मण्डूकपर्णी कुल (Umbelliferae) के इसके क्षुप सोया या सौफ के क्षुप जैसे पत्र एव पुष्पयुक्त होते है। बीज (फल)—गुच्छो मे, कुलथी जैसे कुछ चिपटे, भिन्न-भिन्न आकार के $\frac{1}{6}$ इञ्च लम्बे, $\frac{1}{8}$ इञ्च चौडे, किनारे दतुर, मध्य मे कुछ उन्नतोदर, रक्ताभ पीतवर्ण के, पृष्ठभाग पर उभरी हुई ७ रेखाओ से युक्त, स्वाद मे तीक्ष्ण (गाजर जैसे किंतु अधिक तीक्ष्ण), गध मे नीबू के गध जैसे होते है। इन बीजो को ही दुकू कहते हैं। औषधि कार्यार्थ बीज ही लिये जाते है। ताजे, पीले बीज श्रेष्ठ माने जाते हैं। क्षुप की जड गाजर के समान ही मोटी होती है। इसे जगली-गाजर कहते हैं।

ये क्षुप पश्चिम भारत की पहाडियो, पश्चिम घाट, कोकण आदि मे तथा ईरान मे विशेष पाये जाते है।

दक्षिण के कोकण आदि प्रान्तो मे इसके कोमल पत्तो को तथा फलो को कतर कर पानी मे बफारते है, तथा उसमे चने की दाल, नमक व मिर्च मिला छौंक देते हैं। यह साग स्वादिष्ट होती है। ताजे बीजो को पीसकर तक्र की कढी या रायते मे मिलाने से वह सुगधित, स्वादिष्ट होता है। बीजो को अचार मे भी डालते है।

नाम—

सं०--हिंगुपत्री। हिं०--दुकू, दूकू, दाकू, जगली गाजर। म०--त्रफली। अ०--वाईल्ड कैरट (Wild Carrot)। ले०--प्युसीडनम् ग्रंडी।

बीजो मे एक हलका पीतवर्ण का प्रभावशाली तैल होता है।

गुणधर्म व प्रयोग--

तीक्ष्ण, कषाय, उष्ण, रूक्ष, रोचक, सुगन्धी, दीपन, पाचन, मूत्रल, कफ-वात शामक, आमनाशक, पथ्य, वातानुलोमन, मूत्रार्त्तव जनन, वाजीकर तथा वस्ति-पीडा, विबन्ध, अर्श गुल्म, अश्मरी, प्लीहा, शोथ, मेदो-रोग आदि विकारो मे प्रयुक्त होता है।

१ मेद या वात की फुलावट मे वातापकर्षण, दीपन एव उत्तेजनार्थ बीजो का फाण्ट—१ भाग बीज-चूर्ण मे १० भाग खौलता हुआ जल मिलाकर बनाया हुआ $1\frac{1}{4}$ तो० से $2\frac{1}{2}$ तो० की मात्रा मे दिया जाता है। इससे आध्मान, आमविकृति एव ग्यास्ट्रिक पीडा मे भी लाभ होता है।

२ बच्चो के उदर-विकारो मे—विशेषत जिसमे पेट फूलता हो, पीडा होती हो—बीजो को दूध मे या पान के रस मे या जल मे पीस कर पिलाते हैं।

३ वात-विकार नाशार्थ तथा वाजीकरण के लिये—बीज-चूर्ण को शहद के साथ सेवन करते है।

४ कास, अजीर्ण और उदर-शूल पर—इसका तैल लगभग ५ बूद तक शक्कर के साथ देवे।

बीजो का तथा अजवायन का चूर्ण एकत्र मिला

जल के साथ देने से उदर-पीडा शीघ्र दूर होती है।

५ कृमि पर—बीजो को दूध के साथ पीसकर पिलाते है।

६ कफज-शोथ एव कफज पार्श्वशूल पर—बीजो को पानी मे पीसकर, गरम कर प्रलेप करते है।

मात्रा—बीज चूर्ण ३ से ५ मा० तक। अधिक मात्रा मे विशेषत उष्ण प्रकृति वालो को, एव यकृत् और वृक्को के लिये हानिकारक है। यह उष्ण प्रकृति वाले की पौरुष शक्ति को हीन कर देता है।

हानि-निवारणार्थ—वंसलोचन, कतीरा, बबूल का गोद, या मस्तगी का सेवन कराते है।

इसका प्रतिनिधि—गाजर-बीज, अजमोद, अजवायन, सोया या सोफ है।

दुद्धि (छोटी) (*EUPHORBIA THYMIFOLIA*)

गुडूच्यादि वर्ग एव एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके वर्षायु क्षुप बहुत छोटे छत्ता से रक्ताभ या ताम्र वर्ण के जमीन पर फैले हुए, बहुशाखायुक्त, पत्र-अभिमुख सूक्ष्म, द्विपंक्ति मे, पृष्ठ भाग हरा, ऊपरी भाग लाल, तिर्यक, आयताकार या गोल या गोल दन्तुर भी होते है, फूल और फल भी बहुत बारीक गोल टहनियो पर प्रत्येक, गाठ व पत्रो के बीच मे होते है। इसके शुष्क क्षुप या पत्रो से चाय के समान गध आती, स्वाद मे यह कुछ कसैली होती है। यूनानी मे दूधीखुर्द के नाम से यह प्रसिद्ध है।

यह भारत के प्राय सभी मैदानी एव छोटे पहाडी स्थानो पर गर्मी के दिनो मे प्रचुरता से प्राप्त होती है। उत्तर-प्रदेश, बिहार आदि मे सर्वत्र, किंतु आर्द्र स्थानो या अधिक वर्षा जहा होती है, ऐसे स्थानो मे अधिक होती है। यह भूमि पर ही छाई हुई रहती है।

यद्यपि ऐसी कई वनस्पतिया है, जिनके तोडने से दूध जैसा स्राव इससे भी अधिक परिमाण मे निकलता है, किंतु आश्चर्य है कि दुद्धि, दुधिया ये शब्द इसी एक खास बूटी के लिए रूढ हो गये है। अस्तु-इसके निम्न भेद है—

१ छोटी दुद्धि (लाल छोटी दुद्धि (Euphorbia Microphylla)—इसका क्षुप लाल (छोटी) दुद्धि जैसा ही भूमि पर फैला हुआ या खडा हुआ भी, श्वेतवर्ण का, न्यूनाधिक रोमश होता है। काड—कोमल, पत्रामय, अनेक शाखायुक्त लगभग ४-१० इच लम्बा, पत्र—छोटे, गोल-लम्बे श्वेत हरितवर्ण के, अग्रभाग पर कभी-कभी दन्तुर होते है। फूल व फल—शीतकाल के अन्त मे, छोटे-छोटे, बीज-चिकने, नीलवर्ण के होते है। यह भारत के प्राय समस्त उष्ण प्रदेशो मे विशेषत दक्षिण भारत, मध्य-भारत और बगाल मे अधिक पायी जाती है।

(आ) छोटी दुद्धि—हजारदाना दूधमोगरा (E Hypericifolia) का क्षुप कोमल, वर्षायु, एक बित्ता ऊचा होता है। पत्र—अभिमुख, लम्बगोल, अण्डाकार।

ुष्प बहुत छोटे, श्वेत गुलाबी रग के। फल—छोटे, तीन वडयुक्त, नीलाभ हरे रङ्ग के होते है। इसे कही कही दूध-मोगरा भी कहते है। इस पर रोम नही होते। यह वडी दुद्धि जैसी दिखाई देती है, किन्तु बडी-दुद्धि इससे कडी व रोमश होती है। इसमे फेनालीय द्रव्य, सुगन्धित तेल तथा क्षाराभ (Alkaloid) पाया जाता है। यह सग्राही शोथहर एव मादक है। बच्चो के उदरशूल मे—इसका पत्र-स्वरस दूध के साथ दिया जाता है। आव, अतिसार, अत्यार्त्तव, तथा श्वेत प्रदर पर इसके शुष्क पत्तो का फाट देते है। चर्म-कील पर इसका दूध लगाते है। यह भी भारत के प्राय समस्त उष्ण भागो में, तथा ४५०० की ऊचाई तक हिमालय पर पाई जाती है।

२ वडी दुद्धि-इसका वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये। यहा केवल उक्त छोटी दुद्धियो का ही वर्णन किया जाता है।

आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थो मे इसका कोई विशेष उल्लेख नही पाया जाता है।

नाम—

स०-लघु या क्षुद्र दुग्धिका, स्वादुपर्णी, विक्षीरिणी हि०—छोटी दुद्धि, दोधक, दुधियावास, निगाचूनी, राई-वूटी। म०—लहान नायटी। गु०—नहानी दुधेली। व०-केरई, रक्तकेरू, दुधिया। ले०—यूफोर्निया थाइमिफोलिया, यू० मायक्रोफिल्ला (E Microphylla), यू हायपेरिसीफोलिया (E Hypericifolia)।

रासायनिक संघटन—

इसमे क्वेरसेट्रिन (Queretrin) नामक या इसके जैसा ही एक स्फटकीय क्षार तत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पंचाग

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, तिक्त, मधुर, कटु-विपाक, उष्ण वीर्य, कफपित्तहर, वातवर्धक, अनुलोमन, मूत्रल, भेदन, उत्तेजक, रक्तशोधक, वृष्य, आर्त्तवजनन, गर्भकारक, पारदवन्धक, तथा कृमि, कास-श्वास, कुष्ठ, उदर-रोग, विवन्ध, प्रवाहिका, हृद्दौर्वल्य, उपदश, पूयमेह, रक्त-विकार, मूत्रकृच्छ्र, योनिस्राव, शुक्रतारल्य, रजोरोध, विष आदि पर प्रयुक्त की जाती है।

यूनानी मत से—यह गर्मी के विकारो, नकसीर आदि मे गुणकारी है। नेत्रविकार, रतोवी आदि मे परम लाभ-दायक है। यह वीर्य को गाढा कर शुक्रमेह को दूर करती है। इसके पचाग को छायाशुष्क कर महीन चूर्ण कर समभाग मिश्री मिला ६ माशा की मात्रा मे दूध के साथ प्रात सेवन मे जीर्ण शुक्रप्रमेह तथा अतिसार मे भी शीघ्र लाभ होता है। अथवा पचाग के उक्त चूर्ण के साथ समभाग वडा गोखरू और श्वेत जीरा का चूर्ण तथा सबके समभाग चीनी मिला, दिन मे ३ वार दूध के साथ सेवन से उसी दिन लाभ होता है।

इसका स्वरस वस्तिशोधक, रक्तविकार, कुष्ठ, कफ-विकार, कृमिरोग, जलोदर एव सुजाक नाशक है। इसके शुष्क पचाग का जौकुट चूर्ण १ भाग मे ८ या १० भाग पानी मिला, १२ घण्टे बाद भवके से अर्क खीच ले। यह अर्क रक्ताल्पता मे तथा यकृत शोथ एव जलोदर रोगी को पानी के स्थान मे पिलाते रहने से विशेष लाभ होता है। पचाङ्ग के कल्क की ५ तोले की एक टिकिया वना ५ तोले तिल-तेल मे जला लें। टिकिया के जल जाने पर तैल की मालिश से वातज सधिशूल मे शीघ्र लाभ होता है। ध्यान रहे इसका उपयोग गोली के रूप मे करने से यह आमाशय मे शोथ पैदा कर देती है। इसके चूर्ण या सत फाट क्वाथ या अर्क का ही प्रयोग निर्दोष लाभकारी होता है। इसकी जड २ मा० पान मे रखकर धीरे धीरे चवावे तथा पीक निगलते जावे, तो हकलापन मे अधिक लाभ होता है। यदि एक वर्ष तक प्रतिदिन १ तो तक इसका चूर्ण सेवन करे तो बाल श्वेत न हो। इसका दूध मधुर, गर्भ सस्थापक और वीर्यवर्धक है। इसकी जड को कान मे बाधने से तिजारा आदि बारी वाला ज्वर छूट जाता है। इससे कई धातुओ की भस्मे प्रस्तुत की हुई उत्तम गुणकारी होती है।

आधुनिक मत से—उत्तरी भारत मे यह मृदुरेचक एव उत्तेजक मानी जाती है। कोकण मे इसे दाद पर लगाते है। तामलनाड मे कृमि तथा बच्चो के उदर विकार मे इसके पत्र और बीज का उपयोग करते है। सथाल लोग इसकी जड से अल्पार्त्तव की चिकित्सा करते है।

(आर एन. चोपडा)

यह सर्व प्रकार के श्वास रोग मे हितकर है, श्वास को कम करती है। हृदय, श्वासोच्छ्वास की क्रिया तथा ज्ञानतन्तुओ के केन्द्रो पर शामक प्रभाव कर यह दमा को कम करती है। किन्तु इस वनस्पति को अत्यन्त सावधानीपूर्वक व्यवहार करना चाहिये। अन्यथा श्वासोच्छ्वास की कमी होकर मृत्यु का भय है।

(डा. वा ग देसाई)

इसके शुष्क पत्र और बीज का चूर्ण—तक्र के साथ शिशुओ के उदर विकार, कृमि व सुजाक मे दिया जाता है। रजस्राव निरोध की दशा मे स्त्री को, इसकी जड का चूर्ण २॥ से १० रत्ती की मात्रा मे दिया जाता है अथवा इसका क्वाथ २॥ तो० से ५ तो की मात्रा मे दिया जाता है। एव चर्मरोग पर इसका रस मद्य मे मिलाकर लगाने से लाभ होता है। मद्य के साथ यह रस सर्पादि विषैले जतुओ के दश पर पिलाया जाता है। तथा दशित स्थान पर लगाया भी जाता है। पलित मे (बालो के श्वेत होने मे) इसे नौसादर के साथ पीसकर लगाते है।

(डा० नाडकर्णी)

(१) अर्श पर—रक्तार्श के रक्तस्राव निरोधार्थ छोटी या बडी दुद्धि तथा बनगोभी १-१ तोला, कालीमिर्च १ माशा इनको ५ तोले पानी मे पीस छानकर, कुछ गरम कर उसमे १ तो० मिश्री या शक्कर मिला, प्रात साय पिलाने से १-२ दिन मे ही, रक्तस्राव बन्द हो जाता है। बनगोभी न मिले तो केवल दुद्धि का ही प्रयोग उक्त प्रकार से करे। इससे मूत्रकृच्छ्र या सुजाक मे भी लाभ होता है। लगभग १५ दिन तक सेवन करावे। अथवा—

ताजी दुद्धि १० तोले, रसौत ५ तोले, दोनो को पानी के साथ महीन पीस झरबेरी के समान गोलिया बनाले। दिन मे ३ बार १-१ गोली पानी से सेवन करें।

यदि वातज अर्श हो, तो—दुद्धि ताजी १० तो और शुद्ध कुचला ५ तो० दोनो को पानी के साथ महीन कूट पीसकर मिर्च जैसी गोलिया बनाले। दिन मे ३ बार १-१ गोली दूध या पानी से लेवे। अथवा—

१ पाव ताजी दुद्धि को कूटकर लुगदी बना (लुगदी का रस निचोड कर रस को फेंक दे) लुगदी के बीच मे १० तो लाल फिटकरी को रख, किसी मृत्पात्र मे बन्द कर साधारण कपडमिट्टी कर, निर्वात स्थान मे ४ सेर उपलो मे फूंक दें। शीतल होने पर निकाल लें। उसमे की काली भस्म को फेक दे। वह खराब होती है। केवल श्वेत भस्म को महीन पीस कर शीशी मे सुरक्षित रक्खे। मात्रा—२ मा तक। ग्रीष्म काल मे मक्खन के साथ तथा शीतकाल मे बताशा के साथ सेवन करे। वातार्श के लिये रामबाण है। यदि रक्तार्श हो, तो इस श्वेत-भस्म मे १ तो कहरुवा (तृणकान्तमणि) का योग कर लेवे। मात्रा—रक्तानुसार।

—हकीम दलजीतसिंह जी!

अर्शांकुरो पर मलहम—शुष्क दुद्धि ५ तो, कुचला अशुद्ध, श्वेत कत्था १ तो और तूतिया १½ मा सबको महीन पीस, रेडी-तैल ६ तो. मे मिला कर घोटें। इसे मस्सो पर लगाने रहने से वे समूल नष्ट हो जाते है।

श्री प अनन्तदेव जी दीक्षित (धन्वन्तरि से)

(२) प्रमेह पर—दुद्धी सूखी १० तो, बबूल फली १० तो और मिश्री १ पाव सबको बारीक पीस कर रखले। मात्रा—१ तो. अनुपान गोदुग्ध। सर्व विधि प्रमेह को नाश करता है। अथवा—

दुद्धिताजी, गिलोय और आमले ताजे २०-२० तो कूट पीस कर ३ सेर पानी मे भिगो २४ घटे बाद मल कर छान लें। फिर पानी नितार कर बहादें, नीचे जमे हुए सत को सुखा कर रखले। मात्रा—१-१ मा प्रात साय शहद से सेवन करें। कठिन से कठिन प्रमेह का नाश होता है।

श्री पं अ. देव जी दीक्षित

शुक्रमेह (स्वप्न-प्रमेह या स्वप्नदोष) हो, तो—ताजी दुद्धि, ब दामगिरि, शखाहुली बूटी, १-१ तो और काली मिर्च १० नग, सबको जल के साथ घोट पीस कर ठडाई बना, मिश्री मिला, प्रात साय पीवे। इससे दिल की गरमी, धातु जाना, जिरयान (शुक्रप्रमेह) भी नष्ट होता है। अथवा— (विशिष्ट योगो मे वग भस्म देखें)

दुद्धि और बनगोभी बूटी का पचाङ्ग दोनो समभाग खूब महीन पीस, छोटे बेर जैसी गोलिया बनावे। प्रात साय १-१ गोली ताजे जल से लेवे। खटाई, स्त्रीसग, गुड, लाल मिर्च, तैल की वस्तु, गर्म चीजो से परहेज करे। १ सप्ताह मे इसके गुण को देखें। यदि ४० दिन

सेवन करे तो प्रत्येक वीर्य विकार दूर होकर बलवृद्धि होती है। अथवा—दुद्धि १ तोला के साथ कालीमिर्च १० दाने घोट पीस कर नित्य पिया करे, वीर्यविकार, जिरयान तक को १ मास मे काफी फायदा करेगा।

मधुमेह मे—दुद्धि, गुड़मार बूटी, जामुन के बीज और अजवायन खुरासानी समभाग चूर्ण कर दुद्धि के ही स्वरस मे घोटकर, बेर जैसी गोलिया बना, प्रात साय ताजे जल से या अन्य योग्यानुपान से दें। शीघ्र लाभ होता है। श्री प शालिग्रामजी (धन्वन्तरि से)

(३) वस्तिबलवर्धक योग—इसके छायाशुष्क पचाङ्ग के साथ समभाग गोद कतीरा, और श्वेत मूसली महीन चूर्ण कर, समभाग मिश्री मिला ले। प्रात साय ६-६ मा गोदुग्ध से सेवन करें।

(४) पूयमेह (सूजाक)—दुद्धि सूखी १० तो, श्वेत सुरमा, कत्था, गोद बबूल, हजरुल जहूल पत्थर और गिलेअरमनी मिट्टी ५-५ तो लेकर सबको महीन पीस कर, दुद्धि स्वरस (या इसके क्वाथ) मे घोटते-घोटते सुखा दे और चूर्ण कर रक्खे। या झरबेरी जैसी गोलिया बना ले। १-१ मात्रा गोदुग्ध से लेवें। शीघ्र लाभ होता है। —श्री प अ दे. दीक्षित।

विशिष्ट योगो मे श्वेत सुरमा भस्म देखें।

अथवा—प्रात काल, ताजी दुद्धि (विशेषत हजार दानी छोटी दुद्धि) पचाङ्ग महीन , तो मिश्री मिला, छानकर पी जावे। इसके बाद टहले, लेटे, चाहे जो काम करे, किंतु बहुत धूप मे न फिरे। पथ्य मे—दूध, चावल या खिचडी (दाल मूग की छिलके सहित हो) लेवें। नमक बहुत कम लेवे। रोग यदि नवीन हो, तो केवल ३ दिन मे ही पूर्ण लाभ होता है। दिन मे १ बार वह भी प्रात दवा सेवन करना काफी है। रोग पुराना होने पर दिन मे दो बार प्रात साय ७ दिन तक सेवन करने से रोग जड से जाता रहता है। ध्यान रहे, उपरोक्त पथ्य को छोड अन्य किसी वस्तु का सेवन न करे। प्यास लगने पर ताजा पानी पीवे। दूध गाय का ही लेवे, भैस आदि का नही। रात्रि मे सोते समय लाल रग की बकरी का दूध, वह भी एक उबाल दिया हुआ पी सकते है। श्रद्धा एव विश्वासपूर्वक इसके सेवन से अवश्य लाभ होगा। भूल से अधिक मात्रा मे भी पी लेने से कोई अहित नही होता।

—श्री हकीम दलजीतसिंह जी वैद्यराज।
(यूनानी सिद्धयोग सं. मे)

(५) हृदय के विकारो पर—ताजी दुद्धि १ तो पीसकर १ पाव दूध और १० तो. पानी मिला पकावें। दूध मात्र शेष रहने पर, छान कर, थोडी मिश्री मिला सेवन करने से हृदय की धडकन और दाह दूर होती है।

हृदौर्बल्य, कम्प तथा शोथ पर दुद्धि २५ तोला को १½ सेर पानी मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर, छानकर उसमे १ सेर मिश्री मिला, शरबत की चाशनी तयार करलें। फिर इसमे इलायची छोटी, कमलगट्टा व गाजबानगोय १-१ तो महीन पीसकर डाल दें। प्रात साय २-२ तो मात्रा, गोदुग्ध के साथ सेवन करे।

(६) उपदंश—दुद्धि और हिंगुल शुद्ध १-१ तोला तथा आमला ६ माशा सबको महीन पीस १-१ मा की टिकिया बना सुखा लें।

सेवन-विधि—त्रिफला समभाग जोकुट किया हुआ १ तोला लेकर कोरी चिलम मे रख, उस पर उक्त १ टिकिया रख, सायकाल मे धूम्रपान करें, फिर दूसरी चिलम इसी प्रकार तैयार कर अर्धरात्रि मे पीवें, फिर तीसरी इसी प्रकार ब्राह्ममुहूर्त (४ बजे) मे पीवे। सारी रात्रि जागरण करे। एक ही रात्रि मे लाभ होगा तथा घाव पूरित हो जावेगे। यदि कसर रह जाय तो तीसरी रात्रि मे फिर जागरण करे और उक्त प्रकार से धूम्रपान करे तो आराम होगा।

उपदशज घावो पर मरहम—दुद्धि सूखी २ तो, मस्तगी व कत्था १-१ तो, कपूर देशी ३ मा और गेरू ६ मा सबको महीन पीसकर, गोघृत ७ तो (धुला-हुआ) मिला मरहम बना ले। इसे लगाने से व्रण शीघ्र भर कर अच्छे हो जाते है।

(श्री० प० अ० दे० दीक्षित वैद्यशास्त्री)

(७) गर्भस्थापक योग—ताजी दुद्धि का पचाग, श्वेत कटेरी की जड व शिवलिंगी बीज समभाग चूर्णकर ऋतु स्नान के बाद ३ दिन तक नित्य प्रात. सूर्योदय के

समय ३ मा चूर्ण गाय के ताजे दूध से सेवन करे, अवश्य गर्भ ठहरेगा। किसी कारण न ठहरे तो तीसरे माह भी २-३ दिन अवश्य सेवन करे, अनुभूत है।

—श्री० प० शालिग्राम जी वैद्यराज (धन्वन्तरि से)

पुत्रोत्पादक योग—दुद्धि पचाग चूर्ण ६ मा के साथ समभाग प्रवाल भस्म, मुक्ता (या मुक्ता-शुक्ति भस्म), सगयशव भस्म व जहरमोहरा खताई इन सबको खरल कर रखे। गर्भ रहने पर गर्भिणी को १½ रत्ती दवा प्रतिदिन गोदुग्ध के साथ नीहार मुंह सेवन करावे। विना नागा निरतर ८ मास तक यह सेवन क्रम चालू रखें। ईश्वर कृपा से पुत्र उत्पन्न होता। —श्री० हकीम दलजीतसिंह जी वैद्यराज (सच्चिआयुर्वेद से)

इससे नियमित होने वाले-अत्यधिक रज स्राव मे तथा नासागत रक्तपित्त (नकसीर) मे भी लाभ होता है।

(१०) कास तथा ज्वर पर—पचाग को मटकी मे भर कर कपडमिट्टी कर, गजपुट मे फूंक दे। मात्रा १ मा० अनुपान शहद के साथ सेवन करे। इससे प्रमेह प्रदर और अतिसार मे भी लाभ होता है।

(११) मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पित्तार्श और निवन्ध निवारणार्थ-पचाग १८ मा० को पासकर, ५ तो० जल मे छानकर उसमे मिश्री १ मा मिला केवल, नित्य प्रात ३ दिन तक पिलावे। इस योग से स्त्रियो को गर्भ धारणा भी होती है।

(२१) वाल शोष (सूखा रोग) पर—ताजी दुद्धि और कालीमिर्च समभाग महीन पीसकर मिर्च जैसी गोलिया बनाले। १-१ गोली प्रात साय माता के दूध व जल से देते रहे। अथवा—दुद्धि ताजी २॥ तो, छोटी इलायची २ तोला, सुहागा चौकिया भुना हुआ ३ मा और मोती भस्म ४ रत्ती लेकर सबको महीन पीसकर उसमे दुद्धि के रस की एक भावना देकर मूग जैसी गोलिया बनाले। १-१ गोली माता के दूध या पानी से देवे। आगे विशिष्ट योगो मे शोषहर तैल और 'नागार्जुनी तेल' देखे।

अथवा निम्न—ज्वर नाशक अर्क ४-४ मा की मात्रा मे मधु या मिश्री थोड़ी मिलाकर सेवन करावे। बालरोगो पर 'सुहागा भस्म' आगे विशिष्ट योगो मे देखे।

(१३) ज्वर नाशक अर्क—गिलोय, नीमछाल, और दुद्धि-ताजी प्रत्येक ½ सेर, पित्तपापडा, धनिया, सोठ, व करंजगिरी ५-५ तो लेकर सब जौकुट कर १६ सेर जल मे सायकाल भिगो, प्रात ६ बोतल अर्क खीच ले। मात्रा २ तो० तक, मिश्री या मधु के साथ प्रात साय सेवन से सर्व प्रकार का ज्वर नष्ट होता है। बालको के शोष रोग पर भी इसे देते है। आगे विशिष्ट योगो में—नागार्जुनी तेल देखे।

अथवा ज्वर पर वटी—दुद्धि ताजी ३ तो०, कालीमिर्च व छोटी पिप्पली १-१ तोला तीनो को महीन पीस दुद्धि के स्वरस मे घोट कर मिर्च जैसी गोलिया बना, १ १ गोली प्रात साय शहद से सेवन करे। सर्व ज्वरो का नाश होता है।

विषम ज्वर मे—भूतनाथ वटी—दुद्धि ५ तो०, कालीमिर्च, करजगिरी, तुलसी पत्र व कुटकी २-२ तो० सबको दुद्धि के क्वाथ मे महीन पीस कर मिर्च जैसी गोलिया बनाले। १ गोली ज्वर से दो घटा पूर्व शहद से खावे, फिर १ घटा बाद और १ गोली खाले। ज्वर शर्तिया रुक जाता हे।

(१४) कास पर—ताजी दुद्धि ५ तो. कालीमिर्च व लौग भुनी हुई १-१ तो, मुलैठी, गोंद, ववूल और कत्था २-२ तो सबको महीन पीस पानी मे चना जैसी गोलिया बनाले। दिन रात मे १० गोली (प्रत्येक वार १-१ गोली) मुख मे रखकर चूसते रहे। कसी भी खराव खासी हो नष्ट होगी। श्री प अ दे दीक्षित वैद्यशास्त्री।

(१५) नेत्र के विकारो पर—नेत्रामृत अर्क—दुद्धि और मिश्री ५-५ तोला, फिटकड़ी गुलावी ६ मा०, अर्क गुलाव ३० तोले। सबको महीन पीस अर्क मिला छान ले। दिन मे कई वार १-१ बूद डालने से दुखती आख शीघ्र आराम होती है, सुरखी, दाना खुजली, ढरका आदि रोग शात होते है।

सुरमा काला—काले सुरमा की डली ५ तोला को दुद्धि की लुगदी मे रख पुट मे फूक दे। फिर दुद्धि स्वरस मे घोट सुखा लें। फिर केले के रस की १ भावना देकर उसके साथ समुद्रफेन १ तोला भीमसेनी, कपूर १॥ मा.

मिला खूब बारीक पीसने। इसके लगाते रहने से तिमिर, जाला, मुर्खी, परवाल, धुन्ध, नजला आदि दूर होकर, नेत्र शात एव शीतल होते है। नेत्रो मे तरावट आती है।

(श्री० प० अनन्त देव जी शर्मा वैद्यशास्त्री)

रात्र्यन्ध (रतौंधी) पर—दुद्धि के पौधे को काटने पर जो दूध निकलता है, उसे सलाई के सिरे पर लगाते जाय, जब सलाई के दोनो सिरे दूध से तर हो जाय (यदि दो व्यक्ति हो तो सरलता होगी, क्योकि एक व्यक्ति सलाई के एक सिरे को तर करेगा, और दूसरा व्यक्ति दूसरे सिरे को) तब रतौंधी के रोगी की आखो मे भली भाति सलाई को फेर दे। कुछ देर बाद नेत्रो मे असह्य कष्ट एव वेदना होगी, किन्तु चिन्ता न करे, घबडावे नही। नेत्रो को जल से न धोवे और न मले, प्रत्युत धैर्य धारण करे। एक प्रहर बाद वेदना आदि दूर हो जावेगी। केवल एक बार के इस प्रयोग से आजन्म के लिये रतौंधी से मुक्ति मिल जावेगी। यह प्रयोग परीक्षित एव गुप्त योगो मे से है।

—श्री हकीम दलजीतसिंह जी वैद्याचार्य
(सचित्रायुर्वेद से)

(१६) पागल कुत्ते के काटने पर—दुद्धि पचाङ्ग २ तो पीसकर २ तो शहद मिला खिलावे। दूसरे दिन भी इसी प्रकार खिलाने से कुत्ते का काटा हुआ उसके विष से मर नही सकता। —स्व भगीरथ स्वामी जी।

अथवा—इसके पचाङ्ग २ तो को कालीमिर्च ६ दाने के साथ पीसकर थोडे जल के साथ पिलावें। दशस्थान पर भी इसी का लेप करे। ७ दिन तक। सियार, बन्दर आदि के दश पर भी यह योग लाभकारी है।

(१७) मुखपाक आदि मुख के विकारो पर—दुद्धि शुष्क के समभाग कत्था मिलाकर पीस लें। इसे मुख मे डालते रहने या लगाने से सर्वप्रकार के मुख पाक रोग दूर होते है।

मुख के छालो पर—दुद्धिताजी और अमलतास का गूदा ५-५ तो दोनो को एकत्र कूटकर उसमे गुलाबजल १५ तो. मिला, थोडी देर बाद निथार लें। इस जलको मुख मे लगावे या कुल्ला करे। शीघ्र लाभ होता है।

(श्री० प० अ० दे० शर्मा वैद्यशास्त्री)

(१८) नाडी व्रण (नासूर) पर—पचाङ्ग-कल्क २ तो० की टिकिया बना ४ तोला घृत मे पकावें। जलने न पावे। टिकिया लाल हो जाने पर नीचे उतार कर, खरल मे पीस, पुन आग पर रख, उसमे मोम ६ माशा मिलाकर रख ले। इसकी बत्ती बना ७ दिन तक नासूर मे रक्खे अवश्य लाभ होता है।

(स्व श्री प भगीरथ स्वामी जी)

(१९) खुजली, दाह, उकौत, छाजन आदि पर दुद्धि ताजी (अभाव मे पानी मे आर्द्र की हुई सूखी) २ तो महीन पीसकर इसमे १ तोला गाय का ताजा मक्खन (अभाव मे भैंस का मक्खन) पानी मे खूब धुला हुआ, मिला दे, इसे खुजली के स्थान पर प्रात-साय लेप की भाँति लगाकर, ३-४ घटे बाद किसी अच्छे साबुन से धो डाला करे। कुछ दिनो मे सर्व प्रकार की खुजली दूर होती है। परीक्षित है।

(हकीम श्री दलजीत सिंह जी वैद्यराज)

सर्व शरीर पर कण्डु हो तो इसके पत्तो को पीसकर लगावे और थोडी देर बाद स्नान करें। इस प्रकार २-३ बार करें।

दाद पर—पत्तो को या जड को पीसकर लगावे। अथवा—इसके पचाग २ तो और गधक लोनिया १ तो को महीन पीस, मिट्टी के तैल मे मिला लगाया करें। शीघ्र लाभ होता है।

उकौत या छाजन पर—इसका दूध लगाया करें।

(२०) पार्श्व पीडा पर—इसके पचाग के महीन चूर्ण को पीडा स्थान पर मर्दन करे। यह कटि पीडा, सिर पीडा पर भी उपयोगी है।

(२१) गाय या भैंस के दुग्ध वृद्धि के लिये—दुद्धि १ पाव और शतावर १० तो० दोनो को कूट पीस कर पानी मे मिला कर पिलावे या आटे की लोई मे मिला कर खिलावे। डेढ गुणा दुग्ध की वृद्धि होती है। पशुओ के अतिसार मे भी यह लाभकारक है।

-श्री प० अ० दे० शर्मा वैद्यशास्त्री

नोट-मात्रा—स्वरस १/२-१ तो०। क्वाथ-२-४ तो०। छोटी या बडी दोनों-दुद्धि फुफ्फुस के लिये अहित कर है। हानि निवारणार्थ -शहद का सेवन करावें।

छोटी के अभाव मे बडी एव बडी के अभाव मे छोटी-दुद्धि ली जाती है। ये दोनो परस्पर मे प्रतिनिधि हैं। किंतु छोटी गुण धर्म की दृष्टि से विशेष प्रशस्त है।

विशिष्ट योग—

(१) दुद्धि आदि (नागार्जुनी) तैल—ताजी दुद्धि, पीपल की लाख और पीपल की छाल २०-२० तो०, छरीला ५ तो० इनको कूट पीस कर बकरी का दूध ३¾ सेर तथा काले तिल का तैल ३¾ सेर मे मिलाकर मन्द आग पर तैल सिद्धकरलें। (बकरी के दूध के अभाव मे गोदुग्ध लेवे)। यह तैल सर्व ज्वर नाशक, बलकारी, विशेषत जीर्ण ज्वर नाशक तथा बालशोष को दूर करने वाला है। (तैल से दो गुना पानी मिलाकर तैल-सिद्ध करे)

(२) शोषहर तैल—दुद्धि स्वरस २० तो०, छोटी इलायची, जायफल, बालछड, तालीस पत्र २-२ तो इनको कूट पीस कर गोदुग्ध ½ सेर, तिल तैल ½ सेर (तथा तैल से चौगुना पानी) मिला कर मन्द आच मे तैल सिद्ध कर लें। इसकी मालिश बालक के सर्वांग मे करें। शोष रोग अतिशीघ्र नष्ट होता है।

—श्री०प०अ०दे०शर्मा वैद्यशास्त्री

दुद्धि के योग से कतिपय धातुओ की उत्तम भस्मे निर्माण की जाती है—जैसे—

(३) रजत भस्म—१ तो० चादी का दुअन्नी जैसा मोटा पत्र बनाकर दुद्धि के रस मे १४० बार बुझावे। पुन २० तो० दुद्धि की लुगदी के भीतर इस पत्र को बन्द कर अच्छी तरह लपेट कर, दीमक की मिट्टी से कपड-मिट्टी कर गजपुट अग्नि देवे। भस्म हो जावेगा। २ तो० रजत भस्म १२ तो० पारा को शोषित करेगा। नीबू के रस से घोट कर गोलिया बनावे। यदि सेवन योग्य बनाना हो, तो दोबारा दुद्धि के रस मे खरल कर गजपुट मे फूक दे। मात्रा-½ रत्ती। यह उत्तमाग बलप्रद, बल्य एव हृत्स्पन्दन-निवारक है।

(४) ताम्र भस्म—१ तो० उत्तम ताबा लेकर, रुपये से बडा पत्र बना, शुद्ध कर ले। फिर दुद्धि के पाव भर लुगदी मे रख, कपडमिट्टी कर २५ सेर उपलो की अग्नि दे। एक दो बार मे आसमानी रग की भस्म प्रस्तुत होगी। यदि न हो, तो दूसरी अग्नि मे भस्म कर ले। अवश्य भस्म उत्तम हो जावेगी। मात्रा-१-२ चावल, भर मक्खन या मलाई आदि से सेवन करे।

—श्री०हकीम दलजीत सिंह जी वैद्यराज

अथवा—शुद्ध ताम्रपत्र कटकवेधी १० तो० दुद्धि की लुगदी २५ तो० मे रख कर, गधक आवलासार १ तो० की बुरकी पत्र पर डाल कर लुगदी से बन्द कर (लुगदी उपलो पर ही रक्खे) गजपुट मे फूक दे। काली भस्म मिलेगी। पुन दुद्धि के स्वरस की भावना देकर टिकिया बना शुष्क कर, पूर्ववत् फूक दें। इस प्रकार ३ बार फूकने से उत्तम श्वेत भस्म तैयार होगी। सर्व कार्यों मे योजित करे

—श्री०प०अ०दे० शर्मा दीक्षित वैद्यशास्त्री

(५) वग भस्म—दुद्धि को छायाशुष्क कर, कूट कर साफ कपडे के ऊपर फैला दे। इस पर शोधित वग के टुकडे कर तह जमादे। फिर दुद्धि का तीन अगुल मोटा चूर्ण उस पर जमा दे। इसी प्रकार तह के ऊपर तह रख कर कपडे को भली भाति लपेट, उसपर १ सेर और साफ कपडे लपेट दे—(इसके लिये टाट आदि का मोटा कपडा ले सकते हैं)। फिर इस गोले को निर्वात स्थान मे रख, चारो ओर २-३ सेर उपले डाल कर अग्नि देवें। शीतल होने पर सावधानी से राख को हटा कर देखे। रागे के कण खिले हुए प्राप्त होगे। उन्हे खरल कर सुरक्षित रक्खे। ध्यान रहे कि वग के बहुत छोटे-छोटे टुकडे न हो, अन्यथा भस्म होकर राख मे मिल जावेंगे। मात्रा-१ रत्ती, मक्खन मे रख प्रात नीहार-मुह सेवन करे। शुक्र प्रमेह, शीघ्र-स्खलन, स्वप्नदोष एव उष्णता आदि मे बहुत गुणकारी है।

(६) अभ्रक भस्म—कृष्णाभ्रक को आग पर खूब गरम कर ७ बार गोमूत्र मे बुझा कर कूट डालें। काले चमकीले कण हो जाते है। इसे ५ तो० लेकर १० तो० दुद्धि के रस के साथ घोट कर सकोरा मे रख, ५ सेर घरेलू उपलो की आग मे फूक दे। शीतल होने पर निकाल कर पुन १० तो० दुद्धी के रस मे घोट कर सकोरे मे डाल कर, फिर ५ सेर उपलो की आच दे।

इसी प्रकार २१ अग्नि देकर सुरक्षित रखे । सर्वोत्तम भस्म प्रस्तुत होगी । यह बल्य, स्तम्भक, शुक्र प्रमेहहर एव ज्वरघ्न है । उचित अनुपान मे कास, श्वास तथा अन्यान्य रोगो का नाशक है ।

(७) श्वेत सुरमे की भस्म—श्वेत सुरमा १ तो० की समूची डली लेकर, ५ तो० दुग्धि की लुगदी मे रख, ५-सेर उपलो की आग मे फूक दे । शीतल होने पर निकाल कर महीन पीस शीशी मे रख ले । ४ रत्ती की मात्रा मे, दूध की लस्सी के साथ दिन मे ३ बार सेवन से ७ दिन मे सुजाक का पूर्णतया उन्मूलन हो जाता है ।

—श्री० हकीम दलजीत सिह जी वैद्यराज

इसी प्रकार दुग्धि के योग से और भी कई धातु, उपधातु आदि की भस्मे तैयार की जाती हैं ।

दुद्धि बड़ी (लाल) नागार्जुनी (Euphorbia Pilulifera)

इसके क्षुप वर्षायु, खडे या झुके हुए, रोमश, २ फुट तक ऊचे, काण्ड और शाखाए-प्राय. चतुष्कोणी, लाल रग की, रोमश; पत्र- काण्ड या शाखा के दोनों ओर, अभिमुख, युग्मभाव से, तीक्ष्ण दन्तुर-किनारे वाले (नीम पत्र जैसे) अण्डाकार, आयताकार $\frac{3}{4}$ से $1\frac{1}{2}$ इंच तक लम्बे, तीक्ष्ण या संकुचित अग्रवाले, मध्य शिरा के दोनो ओर छोटे-बडे खण्ड युक्त, पुष्प—प्राय गुलाबी रग के $\frac{1}{2}$ इची, कोमल रोमयुक्त, गुच्छो मे, फल या बीज कोष बाजरा जैसा गोल $\frac{1}{24}$ इंची, लोम युक्त, बीज—फीके धूसर वर्ण के, सूक्ष्मकोणी, गोल होते हैं । क्षुप मे छोटी-छोटी रस ग्रंथिया भी होती हैं । ये क्षुप प्राय बारहो मास आर्द्र भूमि मे प्राप्त होते हैं । इसके फूल व फल शीतकाल मे आते है ।

युनानी मे इसे दूधी-कला कहते है । यह भारत के समस्त उष्ण भागो मे, प्राय वर्षा के अन्त मे, नाज के खेतो मे, पडती जमीन मे, रास्तो के किनारे प्राय सब स्थानो मे देखी जाती है ।

चरक मे इसका (नागार्जुनी का) उल्लेख अर्श एव खालित्य के प्रकरण मे किया गया है । अन्य आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इसके विशेष प्रयोग नही मिलते ।

छोटी दुद्धि के प्रकरण के प्रारम्भिक वक्तव्य मे जिस हजारदाना दुद्धि (E Hypericifolia) का हमने सक्षिप्त विवरण दिया है, उसे इसी बडी दुद्धि का एक भेद माना जाता है । शायद इसी को यूनानी मे 'काजी-दस्तार' कहते है । इसका क्षुप एक बित्ता से आधा गज तक ऊचा, शाखाए मोटी, लालरग की, पत्र भी किंचित लाल वर्ण के २—३ इञ्च लम्बे व १—$1\frac{1}{2}$ इञ्च चौडे होते हैं । प्रत्येक शाखा के सिरे पर एक गुच्छा लगता है जिसमे छोटे-छोटे बीज होते हैं । पतझड के समय पत्र एव शाखाए एकदम लाल रग की हो जाती हैं ।

नाम—

स०—नागार्जुनी, पयस्विनी, दुग्धिका, स्वादुपर्णी आदि । हि०—बडीदुद्धि, दुधिया, लाल दूधी, दोधक इ० ।

म०-सोठीनायरी, गोवर्धन। गु०-नागलादुधेली, राती। बं०—बराकेरू। अं०-स्नेक वीड, अस्ट्रेलियन आरथमा वीड, कैट्सहेअर (Snake weed, Australian Astma weed, Cats hair)। ले०—यूफोर्विया पिलुलिफेरा, यू. हिर्टा (E. hair)।

रासायनिक संघठन—

इसमे एक गोद जैसी राल, कुछ क्षाराभ तत्व, गेलिक एसिड (Gallic acid), केर्सेटिन (Quercetin), फिनालीयद्रव्य (Phenolic substance), ग्लाइकोसाईड, शर्करामोम आदि पाये जाते है। औषधिकार्यार्थ क्षुप मे पुष्प एवं फल आने पर इसे सुखाकर रखते हे।

प्रयोज्याङ्ग—पचाग, पत्र, रस आदि।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके गुणधर्म व प्रयोग प्राय छोटी दुद्धि के समान है। जैसा कि छोटी दुद्धि के प्रकरण मे आधुनिक मतानुसार कह आये हैं तैसा ही हृदय एव श्वसनक्रिया पर इसका भी अवसादक प्रभाव पडता है। श्वासनलिका की सकोचविकास की विकृति के हेतु से (आक्षेप से) उत्पन्न श्वास रोग मे बडी दुद्धि उत्तम लाभदायक है। श्वास के आक्षेप या दौरे मे इससे कमी आ जाती है। श्वासनलिका प्रदाह (पुरानी खासी), फुफ्फुस का फूल जाना, वर्षाऋतु मे होने वाला श्वास का दौरा आदि मे इसके प्रयोग से बहुत लाभ होता है। किसी भी कारण से उत्पन्न श्वास एव आक्षेप (दौरे) पर यह दी जाती है। इससे श्वासोच्छ्वास मे कष्ट तथा श्वास की घबराहट (बेचैनी) दोनो दूर होते है। यह वृद्धो को भी दे सकते हैं। इससे कफ गिरने मे विशेष सहायता मिलती हो ऐसा प्रतीत नही होता। अत दौरा कम होने पर कफ को गिराने वाली औषधि (कटेरी आदि) देनी चाहिये।

—डा वा. ग. देसाई।

ध्यान रहे—इसका रस उदर मे जाने पर आमाशय के भीतर कुछ अश मे दाह होता है, जिससे जम्हाई आने लगती है। ऐसा उपद्रव न होने पावे, एतदर्थ ही इसका प्रयोग भोजन के पश्चात् अधिक जल के साथ थोडी मात्रा मे करना चाहिये। अधिक मात्रा मे उत्क्लेश, वमन आदि होकर श्वासोच्छ्वास एव हृदय की क्रिया बन्द होकर मृत्यु भी हो सकती है।

जीर्ण कफविकारो एव तमक श्वास मे इसका क्वाथ देते हैं। क्वाथ—ताजी दुद्धि २।। तो या सूखी १। तो. को ४० औस जल मे मिला अर्धावशेष क्वाथ करे। छान कर इसमे २ औस शराव मिला किंचित् गरम करे। मात्रा—५ तो तक दिन मे ३-४ बार दे। यह क्वाथ ४८ घण्टे तक बिगडता नही। इसके साथ अन्य कफनिस्सारक द्रव्य देना आवश्यक है। रक्तमिश्रित प्रवाहिका (आव) तथा उदरशूल मे इसका रस दिया जाता है। बच्चो के कृमिविकार, उदरविकार तथा कफविकारो मे इसे देते हैं। वमन रोकने के लिये इसका जड का प्रयोग किया जाता है। चर्मकील (मस्से) तथा दद्रु पर इसका दूध लगाते है।

(१) श्वास पर—ताजी दुद्धि (बडी) को पानी के साथ पीस कर रस निचोड लें। मात्रा—१ चम्मच (चाय का चम्मच) लेकर उसमे उतना ही शहद मिला पिलावे। दिन मे २–३ बार आवश्यकतानुसार देने से श्वास की सब दशाओ मे लाभ होता हे। इसका टिंचर या मद्यार्क भी देते हैं। विधि—शुष्क दुद्धि १ भाग को उत्तम देशी शराब ७ भाग मे मिला ७ दिन तक बोतल को हिलाते रहे। फिर ५ भाग मे कम हो उतनी शराव मिला ले। मात्रा—१० से २० बूद तक, ४-६ औस पानी के साथ भोजन के बाद लेवे।

—स्व प ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य जी।

(२) रक्तार्श पर—इसका पत्ररस लगभग ४ या ५ मा समभाग ताजे मक्खन (या घृत) और मिश्री के साथ ४–६ दिन तक नित्य प्रात देते रहने से दाह एव रक्तस्राव युक्त अर्श मे विशेष लाभ होता है।

(३) बच्चो को ऊपरी दूध पिलाने से जो पेट मे सुद्दे जम जाते है, तथा मल की गाठ सी बध जाती है, पेट फूलता है—इसकी जड को ताजे गोदुग्ध या मातृदुग्ध मे घिसकर पिलावें। —व गुणादर्श।

(४) विस्फोटक—शरीर पर छोटे २ जहरी फोडे होने पर—इसके रस को रेंडी-तैल मे मिलाकर दिन मे दो बार लेप करते रहने से विष शमन होकर फोडे मिट

जाते हैं।

(५) दतकृमि पर—इसकी जड को चबाकर, रस को मुह मे २–४ मिनट रखने पर कृमि नष्ट होकर वेदना शमन होती है।

(६) दाद पर—प्रथम गोबरी (कण्डे) के टुकडे से, दाद के स्थान को घिसकर इसके रस का लेप करते रहने से दाद दूर हो जाती है। —गा गी र

(७) उकलाहट (ओकनाना) पर—जड ३ मा. ता पान से रस कर चूसते रहें।

(८) काटा चुभने पर—इसे पीस कर लेप रखने से काटा सरलता से निकल जाता है।

मात्रा—स्वरस-१० से २० बूद। शुष्क चूर्ण २ से ४ रत्ती [illegible] वाली [illegible] छोटी दुद्धि के समान है।

दुधली (Taraxacum Officinale)

भृगराज कुल (Compositae) के इसके बहुवर्षायु क्षुप वनगोभी या कासनी सदृश, पत्र—चिनाल, मूल स्तभ से निकले हुए ३–८ इच लम्बे, अनियमित रूप से खडित, खड रेखाकार या त्रिभुजाकार, तीक्ष्णाग्र, दन्तुर अधोमुख, पुष्प—३–४ इची लम्बे पुष्पदण्ड पर, जिह्वाकार पीतवर्ण के पुष्प मजरी मे होता है। पुष्पों के झड जाने पर बारीक बीज प्रकट होते है। मूल—मूली जैसी गुलगुली, कुछ चिपटी सी, बाहर से ऊदे रग की, भीतर पीताभ, हल्की गधवाली तथा स्वाद मे अति तिक्त होती है। इस वनस्पति के सर्वाङ्ग से एक प्रकार का गधरहित कडुवा, श्वेत गाढे दूध जैसा चिकना पदार्थ निकलता है। इसलिये इसे दुग्धफेनी कहते हैं।

यह वनस्पति समस्त हिमालय, तिब्बत, उटकमड की पहाडी, नीलगिरि आदि स्थानो मे, तथा यूरोप और उत्तरी अमेरिका मे होती है।

प्राचीन आयुर्वेदीय ग्रन्थो मे इसका उल्लेख नही मिलता। निघण्टुओ मे केवल राजनिघण्टुकार ने गुणधर्म विषयक इस पर केवल एक श्लोक दिया है।[1]

यह सन् १९१४ के फॉर्माकोपिया (B P) मे ऑफिशल औषधि थी, तथा पाश्चात्य चिकित्सा मे इसका अधिकतर उपयोग यकृदुत्तेजनार्थ एव पित्तविसेचनार्थ किया जाता था। सम्प्रत् यह आफिशयल नही मानी जाती। तथापि यह यकृत-व्याधियो के लिये परमोपयोगी एव महत्व की औषधि है।

हिन्दी मे 'लवलब' नाम को (Hedra Helix)

दुधली (कनफूल)
TARAXACUM OFFICINALE WEBER

एक भिन्न कुल की वनौषधि को भी कही २ दुधली कहते हैं। इसका वर्णन यथास्थान 'लवलब' के प्रकरण मे देखिये।

[1] दुग्धफेनी कटुस्तिक्ता शिशिरा विषनाशिनी।
व्रणापसारिणी रुच्यायुक्त्या चैव रसायनी॥

नाम—

सं०—दुग्धफेनी, कर्णफूल। हि०—दुधली, दुधल, दुधेली, जंगली कासनी कनफूल, वरन। म०—वाथुर, उंदराचकान। अं०—डेण्डीलायन (सिंहदन्त, पत्रों के गभीर दंदाने सिंह के दांतो के समान होने से) Canbellon ले०—टेरेक्सेकम[1] आफिसिनेल, टे. डेन्सलेआनिस (T Densleonis)।

रासायनिक सगठन—

इसके दूधिया रस मे टैरेनेसिन (Taranacin) नामक एक तिक्त पदार्थ, टैरेक्सेसरीन (Taraxacerin) नामक एक स्टकीय तत्व, तथा पोटासियम, कैलशियम रालदार (Resinoid) और सरेशी (Glutinous) पदार्थ पाये जाते है। जड मे इन्युलीन (Insulin), २५% तथा पेक्टिन, शर्करा, लेव्युलिन (Levulin) और जलाने पर भस्म ५ से ७% होती है।

प्रयोज्याङ्ग—ताजी या शुष्क जड (यह जड अधिकाश बाहर यूरोप आदि से आती है। यद्यपि इस विदेशी जड से देशी जड कुछ छोटी होती है, किन्तु गुणधर्म मे श्रेष्ठ होती है।)

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य (पहले यह शीतवीर्य मानी जाती थी–राजनिघण्टुकार ने इसे शिशिरा लिखा है–किंतु विशेष प्रयोगो द्वारा ज्ञात हुआ है कि यह उष्ण है), कटु-विपाक, कफपित्तहर, दीपन, यकृदुत्तेजक, पित्तसारक, रेचन, मूत्रल, रक्तशोधक, कटु-पौष्टिक, स्वेद-आर्त्तव एव स्तन्य-जनन, ज्वरघ्न, विषघ्न, व्रणशोथहर तथा अग्निमाद्य, यकृद्विकार कामला, विबन्ध, उदररोग, कृमि, रक्तविकार, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, चर्मरोग, जीर्ण ज्वर, सामान्य दौर्बल्य आदि मे प्रसिद्ध होती है।

उत्तेजक तथा यकृद्विकार नाशक रूप मे, इसकी जड को पीस कर १० से १५ ग्रेन तक की मात्रा देते है। या इसका अर्क या क्वाथ १½ तो० से २½ तो० तक की मात्रा मे देते है, इससे पाडु, कामला, यकृद्विकार और अजीर्ण मे भी लाभ होता है।

पाश्चात्य प्रणाली से क्वाथ कल्पना इस प्रकार है–जड का जौकुट चूर्ण २॥ तो० (१ औंस) को २४ औस (१२ छटाक) जल मे १५ मिनट तक उबाल कर छान ले। फिर आवश्यकतानुसार इसमे परिस्रुत जल (२० औस तक) मिला कर क्वाथ का अभीष्ट परिमाण बनालें। आयुर्वेदिक-प्रणाली से भी इसका क्वाथ निर्माण कर सकते है। (इसकी मात्रा ५ तो० तक)–मे० मेडिका (डॉ० रामसुशीलसिंह जी कृत)।

योनि तथा गर्भाशय के शोथ पर—इसके स्वरस मे कपडा भिगोकर योनि या गर्भाशय के भीतर स्थापन करते है।

आखो की फूली पर—इसका दूध लगाते है। फूली कट जाती है।

बिच्छू, बर्र आदि जतुओ के दश पर—जड को पानी के साथ पीसकर, लेप करते है।

नोट—मात्रा-चूर्ण ५-१० रत्ती तक। क्वाथ–२॥ से ५ तो० तक। घनसत्त्व–२ रत्ती से १ मा० तक। प्रवाही घन सत्त्व आधी से १ फ्लुइड औस (१। रु० भर से २॥ रु० भर तक)। स्वरस—जड़ को कुचलकर रस निकाल लें, उसमे अल्कोहल (मद्यार्क) ६० प्रतिशत वाली मिलाकर ७ दिन तक रखा रहने देवें। फिर छानकर काम में लावे। मात्रा—१ से २ फ्लुइड ड्राम। शुष्क जड़ हो तो जौकुट कर अष्टमाश क्वाथ कर, फिर उक्त मद्यार्क मिलावें।

ध्यान रहे, अधिक मात्रा मे यह वृक्को के लिये हानिकर है। हानि निवारणार्थ–सिकजबीन देवे।

इसके अभाव मे कासनी लेवे।

दुधाली—दे०—शकाकुल मिश्री। दुधियावच—दे० —वच मे। दुपहरिया—दे०—गुल दुपहरिया। दुमकी मिर्ची (दुमदार मिर्च)—दे०—कबाब चीनी। दुर्गन्ध खर—दे०—अरिमेद। दुरालभा—दे०—धमासा। दूकू —दे०—दुकु। दूधमोगरा—दे०—वाराही कन्द मे। दूधिया कलमी—दे०—निसोथ मे नोट नं० २। दूधिया वच्छनाग—दे०—कलिहारी।

---

[1] Taraxacum शब्द, ग्रीक भाषा में Taraxis से व्युत्पन्न होना सम्भव है, जिसका अर्थ होता है नेत्राभिष्यन्द। प्राचीनकाल मे नेत्रशोथ के लिये इस बूटी का स्वरस प्रयुक्त होता था।

दूधिया लता (*OXYSTELMA ESCULENTA*)

अर्क कुल (Asclepiadaceae) की सदैव हरी-भरी रहने वाली इस दुग्ध-प्रचुरा, वहुशाखायुक्त, रोमश, वर्षायु, वृक्षारोही लता के पत्र ४-६ इञ्च लम्बे, ½ से १ इञ्च तक चौडे, वहु शिरायुक्त, बर्छी के आकार के, पतले फीके हरितवर्ण के, पत्र-वृन्त ½ इञ्ची अतिशय अवनत, पुष्प—कुछ वडे आकार के, श्वेत वर्ण, गुलावी एव वैंगनी रग की शिराविशिष्ट, बहुत सुन्दर गोल, फल—२-३ इञ्ची, लम्ब-गोल, तीक्ष्ण नोकदार, जिसमे अनेक बीज ¼ इञ्ची, डिम्वाकृति, चिपटे होते है। वर्षा के अन्त मे फूल तथा शीत के प्रारम्भ मे फल आते है। इसके किसी भी अङ्ग को तोडने से दूध जैसा रस निकलता है।

यह लता दक्षिण तथा मध्यभारत, उत्तर-पूर्व वगाल आदि के पहाडी स्थानो एव मैदान मे भी जल के किनारे पाई जाती है।

नाम—

सं०-दुग्धिका, तिक्त दुग्धा। हि०—दुधिया लता, दूधी, किरनी, धारोटे इ०। म०-दुधनी, दुधेरी। गु०-जलदूधी। व०-दूध लता। ले०-ऑक्सिस्टेलमा एस्क्युलन्टा, एस्क्लेपियास रोक्सिया (Asclepias Ro ca)।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, तिक्त, कटु, रूक्ष, उष्ण वीर्य, विवन्धकर, मूत्रल, कामोद्दीपक, कृमिनाशक, श्वित्र, वातनलिका-प्रदाह, जीर्ण प्रमेह, पूयमेह, कास, वालातिसार एव ज्वर आदि मे उपयोगी है।
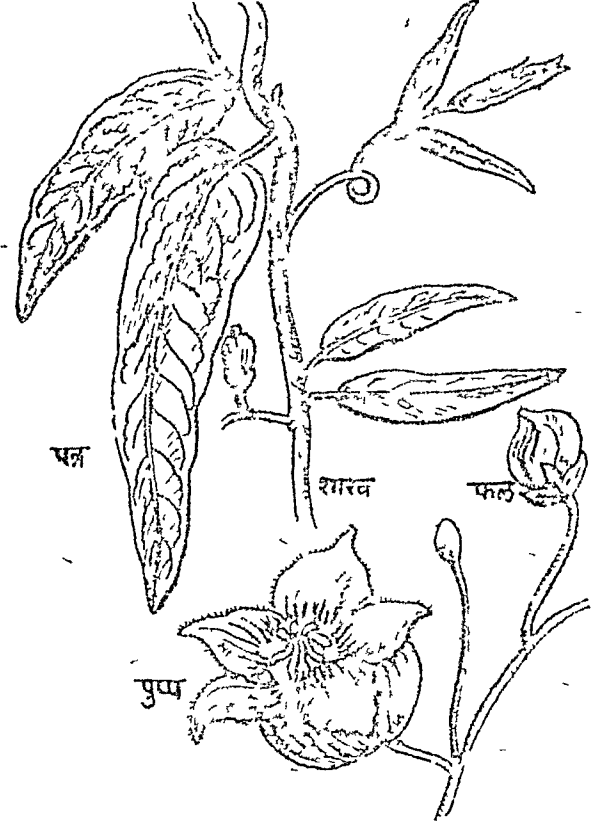
मुख के छाले एवं गले के सूक्ष्म व्रणो की शांति के लिये इसके पत्तो के क्वाथ के कुल्ले कराते है।

कण्डू-(खुजली) मे–इसके रस मे तारपीन-तैल मिलाकर लगाते है।- इसके दूधिया रस को फोडो पर प्रलेप करते हैं। इसकी ताजी जड कामला, पाडु रोग मे व्यवहृत होती है।

इसके पुष्प–तिक्त, पौष्टिक एव कफ-निस्सारक है।

धन्वन्तरि

[वनोषधि विशेषांक परिशिष्टाङ्क]

वर्ष ३९ अङ्क ३
मार्च १९६५

दूधिया हेमकन्द (*MAERUA ARENARIA*)

वरुण कुल (Capparidaceae) की इसकी लता अत्यन्त कड़ी, ऊंचे वृक्षो एव वाडो पर वहुत ऊंची चढने वाली, शाखा—श्वेताभ, पत्र—लम्ब-गोल चिकने ३½ इञ्च लम्बे, २½ इञ्च तक चौडे, फली—२-५ इञ्च लम्बी, काली मिर्च की मजरी जैसी (चार डोरी से गुंथी हुई माला जैसी), बीज—भूरे रङ्ग के, छोटे, मध्य भाग मे सकुचित से होते हैं। इस वेल की जड़ मे एक वहुत वडा कन्द निकलता है, जो वजन मे अधिक से अधिक दो सेर तक होता है, इसे ही हेमकन्द कहते है। कद की ऊपरी छाल वहुत पतली, भूरे रग की होती है, भीतर यह श्वेत होता है। गध मे पीसी हुई राई जैसाउग्र और स्वाद मे प्रथम मधुर फिर चरपरा होता है।

दूधिया हेमकन्द
MAERUA ARENARIA

इस कन्द को यदि वैसे ही लाकर रख दिया जाय तो यह शीघ्र सड जाता है। अत जगली लोग इसकी गोल-गोल पतली चकतिया काट कर, सुखाकर वाजारो मे वेचने लाते है। सग्रह करने वाले इन्हे वातरहित, शुष्क स्थान मे रखते है। इसका अर्क भी निकाल कर रख लिया जाता है। इस लता की मूल मे कई उपमूले शकरकद जैसी, उंगली से लेकर हाथ की कलाई जैसी मोटी-मोटी होती है। इनके भी टुकडे कर लिये जाते हैं।

यह लता मध्य भारत की रेतीली भूमि मे, तथा पजाव, सिन्ध, गुजरात, कच्छ आदि प्रान्तो मे खेतो की या वागो की वाडो पर तथा जंगल की झाडियों में फैली हुई देखी जाती है।

नाम—

स०--दुग्धकन्द, हेमकन्द, सुरहरी (मूर्वा) धवल-कन्द, विसर्प वैरी। इ०। हि०--दूधिया हेमकन्द। म०--विकट, काठीवोलो, हेमकन्द। गु०--दूधियो हेमकन्द, वाका, मिरीआल। अ०--अर्थ शुगर रूट (Earth sugar root) ले०--मेरुआ एरीनेरिया।

प्रयोज्याग---कन्द और फल।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, मधुर, उष्ण वीर्य (कोई शीत वीर्य मानते हैं), वेदना एव वेगशामक, रक्तशोधक, शोथघ्न, कफघ्न, विसर्प आदि चर्म-रोग नाशक है। श्वास, कास, जीर्ण-ज्वर, क्षयजन्य ज्वर एव स्वेद तथा दौर्वल्य आदि पर यह प्रयोजित है। इसके सर्वसामान्य गुणधर्म प्राय मुलहठी के समान है।
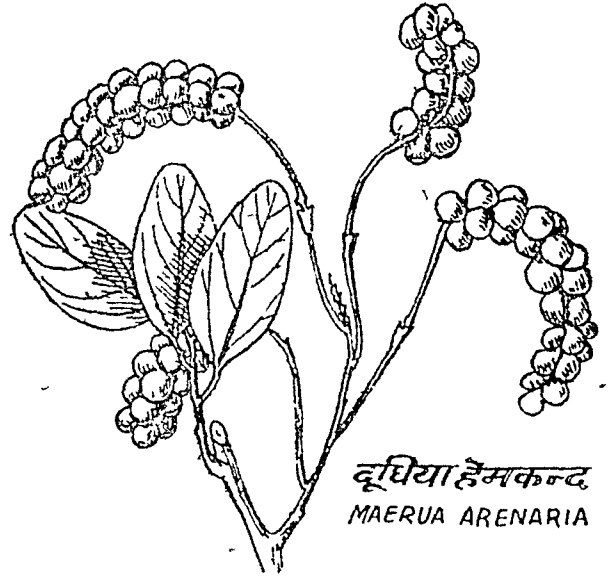
१ वालको के प्रतिश्याय मे---कन्द को दूध मे पीस-कर छाती पर लेप करते हैं। कफवृद्धि विशेष नही होने पाती। यदि ज्वर भी हो, तो दूध मे घिस पिलायें।

२ कास-श्वास पर--कन्द के चूर्ण को शक्कर के साथ देते है। कफ ढीला पडकर सरलता से निकल जाता है। कफ-प्रधान तमक श्वास मे इसका चूर्ण १½ मा० की मात्रा मे (वालको को १ मा० तक) सुखोष्ण जल के साथ, दिन मे २-३ वार पिलाते है। या इसके अर्क या टिंचर का सेवन कराते है। टिंचर या अर्क का प्रयोग नीचे योग न० ३ मे देखे।

३ रक्त-विकृति पर---यह सारसापरेला से अधिक प्रभावशाली है। इसके क्वाथ का सेवन कराते या टिंचर इस प्रकार वनाकर सेवन कराते हैं---

कन्द चूर्ण १० तो० को रेक्टीफाइड स्प्रिट या मद्यार्क लगभग ५३ तो० मे मिला, मजवूत कार्क वाली वोतल मे ७ दिन तक वन्द रखते हे। प्रतिदिन २-३ वार वोतल

को अच्छी तरह हिला देते है। फिर मसलकर, ब्लाटिंग-पेपर मे छानकर रखते हैं। इसे ४ माशा तक (१ ड्राम) की मात्रा मे दूध या शक्कर के साथ देते है।

-४ विसर्प (रतवा) पर---इसे १½ से २ मा० तक की मात्रा मे पानी मे (या गुड के पानी मे) घिसकर विसर्प के स्थान पर लेप करते हैं। उक्त टिंचर या अर्क का भी सेवन कराया जाता है। बालक को १ मा० तक की मात्रा मे दूध में घिसकर पिलाते है। शीघ्र विसर्प दूर होता है।

५ यक्ष्मा रोग (क्षय)--की दूसरी या तीसरी अवस्था मे रोगी को रात्रि के समय जो अत्यधिक पसीना आता है, उसके निवारणार्थ इसका चूर्ण १॥ से २ मा० की मात्रा में जल के साथ सेवन कराने से प्रस्वेद कम हो जाता है, तथा निर्बलता नही बढने पाती।

६. जीर्ण ज्वर पर--इसका चूर्ण १½ मा० की मात्रा में, दिन मे दो बार गिलोय-सत्व और शहद के साथ ७ दिन सेवन से ज्वर दूर हो जाता है। --गा० औ० र०।

७ बालकों के अपचन पर---दूध न पचता हो, वमन या श्वेत दस्त होते हो, तो इस लता की फली को दूध मे घिसकर पिलावे। अथवा---फली को बीज सहित जला, भस्म कर उसे दूध में मिलाकर पिलाने से अपचन शीघ्र दूर हो जाती है। मूल और फली के अभाव मे इसकी डंडी, पत्र या फूल भी व्यवहृत किये जाते है।

---गा० औ० र०

दूधी---दे०---कद्दू न०१ (लौका)। दूधी काली श्यामलता---दे०---सारिवा मे (कृष्ण सारिवा)। दूधीवेल---दे०---सारिवा मे।

दूब (Eynodon Dactylon)

गुडूच्यादिवर्ग एव यवकुल (Graminae) की जमीन पर प्रसरणशील इस लतारूपी घास के काड प्रतान एव ग्रंथियुक्त होते हैं। प्रत्येक ग्रंथि से इसकी मूल निकल कर जमीन से लगी हुई रहती है। पत्र---लगभग ¾ इच से ४ इच तक लम्बे, १/२० से १/८ इच तक विस्तृत रेखाकार, पुष्प---१ से २ इची पुष्पदण्ड पर पुष्प हरित, बेंगनी रग के, तथा बीज अत्यन्त सूक्ष्म १/२४ इची लम्बे होते हैं।

यह अमर दूब (तृण) समस्त भारत मे, सर्वत्र जमीन पर छाई रहती है। जलाशयो के किनारे तो प्रचुर परिमाण मे होती है। पददलित होती, प्रचड सूर्यताप को सहन करती, किंतु समूलनष्ट नही होती। इसमे अनन्त जीवनशक्ति है।

इसके नीली (हरी) और श्वेत ऐसे दो भेद माने जाते हैं। किंतु वास्तव मे ये दोनो एकदम भिन्न नही
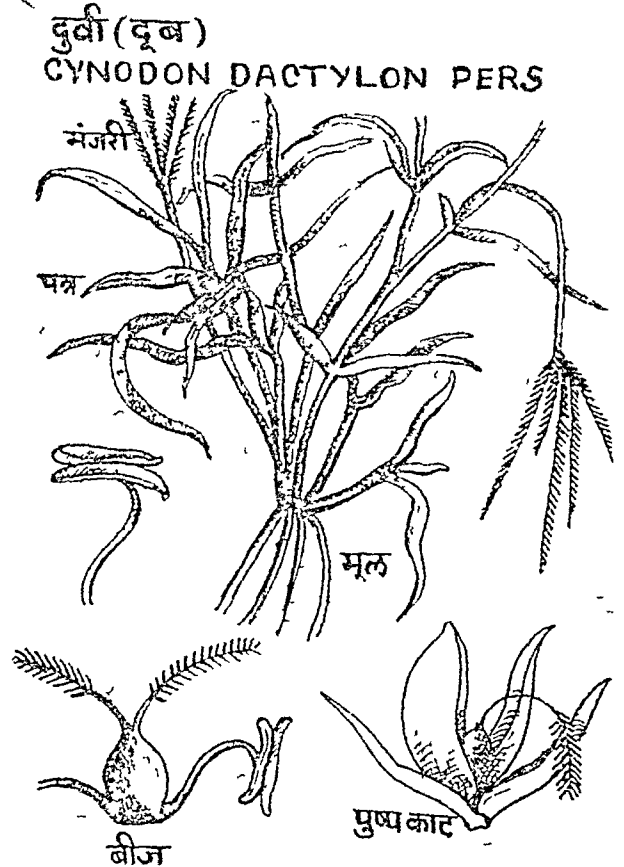
है। नीली या हरी दूब पर जब किसी कारण सूर्य की प्रत्यक्ष किरणे नही पडती,तब वही श्वेत वर्ण की हो जाती है, तथा इसका अधिक विस्तार नही हो पाता। यह अधिक दाहशामक मानी जाती है। विशेष गुणधर्म दोनो मे प्राय. समान ही है। तथापि औषधि-कार्य मे इसकी अधिक मान्यता एव प्रशस्ति है।

दूब की ही एक जाति विशेष 'गण्डदूर्वा' (गाडर दूब) है, जो सर्वसामान्य दूब से बहुत बडी, एवं कास के क्षुप जैसे २–३ फुट ऊंचे क्षुप वाली होती है। इसके काण्ड या डण्डी मोटी होती है। ग्रंथि (गाठे) भी मोटी होती है। यह जलाशयो के किनारे ही अधिक पैदा होती है। पत्र–दूर्वा पत्र से बहुत बडे होते है। यह छप्पर छाने के कार्य मे भी ली जाती है।

(२) चरक के वर्ण्य गण मे 'सिता-लता (सिता-श्वेत और लता नीली दूर्वा) नामो से,तथा-[1]प्रजास्थापन गण में शतवीर्य, सहस्रवीर्य नामो से इसकी गणना की गई है। मालूम होता है, कि लता के समान ही अधिक विस्तार होने से नीली श्याम या हरी दूर्वा को ही (दूर्वा-लता का सक्षिप्त) लता नाम दे दिया गया है। अन्यथा केवल लता शब्द से ही दूर्वा का बोध नही होता।

नाम—

स०-दूर्वा, शतपर्वा, सहस्रवीर्य, अनन्त, भार्गवी, शतवल्ली आदि नीलदूर्वा के तथा शतवीर्या, गोलोमी आदि श्वेत दूर्वा के नाम है। हि०-हरीदूब, दूबडा, सफेद दूब। म०—नीली (काली) दूर्वा, पांढरी दूर्वा। गु०—नीलाध्रो, धोलोध्रो। ब०-नीलदूर्वा, सादा दुर्वा। अं०-कौच ग्रास (Coachgrass)। क्रीपिंग साइनोडन (Creeping Cynodon)ले०-साइनोडन डैक्टिलन, पेनिकम डेक्टिलन (Panicum Dactylon)।

दूब मे व्हिटामिन 'ए' और 'सी' प्रचुर परिमाण मे होता है। ज्ञानोदय शर्मा नाम के एक सज्जन ने अपने अनुभवपूर्ण लेख मे लिखा है, कि दूर्वा मे सर्व प्रकार के व्हिटामिन होते है। इसकी परीक्षा के लिये मेरी पत्नी जो गत कई वर्षो से अस्वस्थ थी, तथा मैं भी अस्वस्थ था, मै एक बाग से अच्छी हरी २ दूब उखाड लाला और हम दोनो उसकी पत्तिया चुनकर, अच्छी तरह धोकर और काटकर टमाटर तथा प्याज के साथ मिला कर खाने लगे। हमे बडा आश्चर्य हुआ कि दूब बेस्वाद लगने के बजाय स्वादिष्ट लग रही है, और उसके खाने मे किसी प्रकार की दिक्कत नही है। फिर हम इसे दाल व तरकारियो मे भी मिलाकर खाने लगे। हम जिस किसी चीज मे दूब मिला देते वह हमे अधिक स्वादिष्ट लगती। फिर कुछ अच्छी दूर्वा हमने कपडे मे रखकर सुखा ली, तथा कूटकर बोतल मे रख लिया। इसे हम चटनी की तरह बना कर खाने के आटे मे डालकर रोटी बनाते इत्यादि अनेक प्रकार से इसका प्रयोग करते। हमारा तो ख्याल है कि कोई भी ऐसा खाद्य नही है, जिसमे यह न मिलाई जा सके और उसका स्वाद और गुण न बढाया जा सके। इस तरह ३-४ सप्ताह तक दूब का व्यवहार करते रहने के बाद मेरी स्त्री के स्वास्थ्य मे उन्नति होनी आरभ हुई। उसके पेट का दर्द व कब्ज तो करीब २ शुरु मे ही चला गया था। उसका सिरदर्द उसे एक सपना-सा लगने लगा, और धीरे-धीरे उसमे वह स्फूर्ति आई कि जो जीवन मे पहले उसे कभी प्रतीत नही हुई थी। मुझे अपना स्वास्थ्य भी निश्चित रूप से उन्नत प्रतीत हुआ। अब मै पहले की तरह शीघ्र नही थकता इत्यादि।

—आरोग्य (वर्ष १६ अक ४)से साभार सक्षिप्त उद्धरण

प्रयोज्य अग—पचाङ्ग, विशेषत मूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, मधुर, कषाय, तिक्त, मधुर, विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोषहर, विशेषत कफपित्तशामक,दाहशामक[1] तृप्तिकारक, तृषा, वमन, रक्तदोष, श्रम, मूर्छा, अरुचि, विसर्प

[1] जिस औषधि के प्रभाव से गर्भाशय के दोष दूर होकर दीर्घायु निरोगी सतति होती है, तथा गर्भस्राव आदि विकार नही हो पाते उसे प्रजास्थापन कहते है।

[1] यह दिव्य लता महान दाहनाशक एव शातिदायक होने से, वेदो में इसके स्तुति पर कई सूक्त हैं। उदाहरणार्थ यजुर्वेद का निम्न सूक्त कर्मकाण्ड मे प्रसिद्ध है।

"काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ति परुषः परुषस्परी। एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेनच॥" (हे दूर्वे! आप कठिन से कठिन स्थान पर फैलती है तथा अपने प्रत्येक काण्ड से

अतिसार प्रवाहिका, अर्श, रक्तपित्त उपदश, प्रदर, गर्भस्राव, गर्भपात, आदि योनिव्यापद्विकार, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठादित्व-ग्विकार नाशक है। यह वर्ण्य (कातिवर्धक), रक्तस्तभक, मेध्य, व्रणरोपण, जीवनीय, एव प्रजास्थापक है। श्वेत दूर्वा विशेषत वमन, विसर्प, तृषा, कफ, पित्त दाह, आमातिसार, रक्तपित्त एव कास आदि विकारो मे विशेष प्रशस्त है। कितु यह वीर्य को कम करती तथा कामशक्ति को घटा देती है।

क्षत, व्रण, अर्श, विसर्प, शीतपित्त, पैत्तिक शिरोरोग, चर्म रोग आदि मे तथा दाह की शाति के लिये इसका लेप करते है। नेत्राभिष्यन्द मे इसका स्वरस डालते तथा पलको पर पत्रो का लेप करते है। रक्तार्श मे इसे पीस कर दही के साथ सेवन करते, तथा इसके पत्तो को पीस मस्सो पर लेप करते है। विसर्प पर श्वेत

ढगती है। अत. आप सैकड़ों हजारो की तादाद मे हमारे हित के लिये संसार मे फैल जांय।)

गणेश महात्म्य मे कहा है, कि एक बार अमलासुर नामक दैत्य ने देवताओ को परास्त कर, उन्हे अत्यत त्रस्त कर दिया। उन्होंने गणेश जी से सहायता की याचना की। गणेश जी ने स्वयं उससे युद्ध किया, किंतु वह भयभीत न हुआ। तब क्रुद्ध होकर गणेश जी उसे पकड कर मोदक के समान खाकर निगल गये। परिणाम यह हुआ कि वे विकट दाह से व्याकुल होकर देवताओ और एक-हजार एक सौ आठ ऋषियो के साथ विष्णुजी की शरण मे गये। विष्णुजी ने उन्हें उक्त वेदमन्त्र की याद दिलाई। प्रत्येक ऋषि ने १०८ दूर्वा उन्हे समर्पित कर ग्रहण करने को कहा, और तत्काल ही उनका भयकर दाह शान्त हो गया। तब से उक्त मंत्र पढ़ कर गणेश पूजन मे दूर्वा समर्पित की जाती है।

यह दिव्यलता केवल दाह शामक ही नहीं, अपूर्व बल वर्धक है। स्व० वैद्यरत्न कविराज प्रताप सिह जी का कथन है-"जब हाथी जैसा जीव भी दूर्वा के सेवन से मस्त हो जाता है, घोडा इसी के खाने से बलिष्ठ एव विशेष परिश्रमी होता है, तब इस प्रकार की सुलभ प्राप्त होने वाली वनस्पति का प्रतिदिन उपयोग कर मनुष्य क्यों न बल प्राप्त करें। इसमें जीवन रक्षा की अत्यधिक शक्ति है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ समय सेवन कर इसका लाभ प्रत्यक्ष कर सकता है।"

दूर्वा के रस मे चावलो को पीस कर लेप करते हैं।

चेचक के खुरड उतारने के लिये इसे चावल और हल्दी के साथ पीस कर चमेली का तैल मिला लेप करते हैं। उष्णताजन्य शिर की पीडा पर-इसे जौ के साथ शीत जल मे पीस कर मस्तक पर लेप करते हैं। नवीनव्रण तथा त्वचा के रोगो मे इसकी पत्तियो का लेप करते है, रक्तस्राव रुक जाता है। आमातिसार मे-इसे सोठ और सौफ के साथ औटा कर पिलाते हैं। ज्वर शमनार्थ श्मशान की दूब की जड को लाकर ज्वर की कलाई पर बाधते है।

मस्तिष्क दौर्बल्य, अतिसार, पैत्तिक वमन, उदर, जलोदर, अत्यार्त्तव, गर्भपात, रक्तमेह, उन्माद, अपस्मार, तथा वेदना-प्रधान रोगो मे एव सामान्य शारीरिक दुर्बलता और विषो मे इसका स्वरस पिलाते है। उष्णताजन्य नकसीर मे इसका रस नाक मे डालते, तथा मिश्री मिला पिलाते है।

वस्तिशोथ, सोजाक, मूत्रमार्ग के दाह पर तथा त्वग्विकारो मे-इसकी जड का क्वाथ सेवन कराते हैं।

(१) पित्तज वमन पर इसे ६ मा० तक चावल के धोवन के साथ पीस छान कर मिश्री मिला पिलाते है। अथवा इसे कालीमिर्च के कुछ दानो के साथ पीस छान कर पिलाते है।

(२) हिक्का पर-इसकी जड का रस १ मा० मे शहद १ तो० मिला पिलाने से लाभ होता है।

(३) रक्त प्रदर पर-इसके स्वरस मे श्वेत चन्दन का बुरादा और मिश्री मिलाकर सेवन कराते हैं। रक्त पित्त पर-दूर्वादि घृत विशिष्ट योगो मे देखे।

४ जलोदर व शोथ मे—इसके पचाङ्ग का फाण्ट या रस के पिलाने से पेशाब अधिक होकर पेट हलका पड जाता है। फाण्ट या रस के साथ काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पिलाने से, जलोदर के साथ ही साथ सर्वाङ्ग शोथ मे भी लाभ होता है। अथवा—निम्न शोथारि रस का प्रयोग इस विधि से करे—

हिंगलोत्थ पारद को श्वेत दूर्वा के रस की भावना देकर, एक मूषा मे रख, उस पर श्वेत दूब और अजवा-

यन का चूर्ण इतना डाले कि मूषा भर जावे। फिर उस परढकना लगा कर सन्धि बन्द कर, कपडमिट्टी कर, लघुपुट मे फूक दे। फिर मूषा के स्वाग शीत होने पर, पारद को निकाल, समभाग शुद्ध गधक मिला, कज्जली बना, उसमे समभाग शुद्ध वच्छनाग का चूर्ण, ताम्र भस्म एव वग भस्म मिला खरल कर सुरक्षित रक्खे। (मात्र — $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक) जिह्वा पर रख, ५ या ८ तो० खाड के शर्बत से निगल जावे। बार-बार अधिक प्रमाण मे मूत्र विरेचन होकर शोथ दूर हो जाता हे।

—भैं० र०।

५ बल वर्द्धनार्थ—हरी दूब १ तो०, बादाम छिलके सहित १० दाने और काली मिर्च १० दाने लेकर, तीनो को सिल पर महीन पीस, रुचि अनुसार मीठा मिला, पानी मे घोल-छानकर ठडाई जैसा शर्बत बनाकर, दिन के ३-४ बजे पिया करे। शरीर को तरोताजा रखने एव बलप्राप्ति के लिये यह प्रयोग उत्तम है। मैं चिरकाल से इसका प्रयोग कर रहा हूं।

—स्व० कविराज प्रतापसिंह जी D Sc (A)

विशिष्ट योगो मे—दूर्वामलकी योग देखे।

(६) निरुद्धार्त्तव—स्त्री को अकाल मे ही मासिक बन्द हो गया हो, या साफ न आता हो, तो श्वेत दूब और अनार की कली, दोनो को, बासी पानी मे धोये हुए चावल के धोवन के साथ पीस कर, ७ दिन तक पिलावे।

—व० गुणादर्श।

७ गर्भपात की प्रारम्भिक दशा मे—जब गर्भवती को रक्तस्राव होने लगता है—हरी या श्वेत दूब के $\frac{1}{2}$ तो० स्वरस मे—स्वर्णमाक्षिक भस्म और मुक्ताशुक्ति (या साधारण सीप) भस्म १–१ रत्ती मिला (यह १ मात्रा है), २-३ बार देने से गर्भपात या गर्भस्राव नही होने पाता।

८ मूत्राघात (मूत्रावरोध), मूत्रकृच्छ्र एव मूत्र-दाह, रक्तमेह पर—श्वेत दूर्वा की जड ८ तो० जौकुट कर, दो सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, छानकर कुछ ठडा हो जाने पर शहद या चीनी मिला सेवन करने से मूत्र खुलकर हो जाता है।

साधारण मूत्रकृच्छ्र हो, तो इसकी जड ७$\frac{1}{2}$ मा० महीन पीसकर दही मे मिला चटाते है।

मूत्र-दाह या सुजाक की दशा मे जड को दूध मे पीस छान कर पिलाते हे।

रक्तमेह—मूत्र के साथ रक्त आता हो, तो इसे मिश्री के साथ पीस-छानकर पिलाते हे।

९ शुक्रमेह पर—हरी दूब की जड के साथ—मूर्वामूल, कुशा की जड़, कास की जड, मजीठ और सेमल की जड समभाग जौकुट कर, (२॥ तो० चूर्ण को ४० तो० पानी मे चतुर्थांश) क्वाथ सिद्ध कर (इसे प्रातः-साय ५-५ तो०) पिलाने से शुक्रमेह तथा रक्तमेह दोनो मे लाभ होता है। यह क्वाथ शुक्राशय दौर्बल्य तथा उष्णता शामक है—भैं० र० (पाठ मे दन्ती मूल भी है, किन्तु हम उसे इस क्वाथ मे प्रशस्त नही मानते)

१० व्रणो पर—इसका स्वरस और जल समभाग के साथ घृत चतुर्थांश (स्वरस व जल १-१ सेर तथा घृत २० तो०) मिलाकर, मदाग्नि पर पकावें। घृत-मात्र शेष रहने पर छान कर सुरक्षित रक्खे। इसे लगाने से व्रण शीघ्र ठीक हो जाते है—ग० नि०। अथवा—

इसका स्वरस और कबीले (कमीला) तथा दारु हल्दी के कल्क से यथाविधि तैल (तिल तैल) सिद्ध कर लगाने से घाव भर जाते हैं। तैल के समान ही इन्ही चीजो से घृत भी सिद्ध कर सकते है। यदि रोगी मे रक्तपित्त की प्रधानता हो, तो घृत ही प्रयुक्त करना ठीक होता है।

—भैं० र०।

उपदश व्रणो के शमनार्थ—इसकी जड का क्वाथ पिलाते तथा उक्त घृत को लगाते रहने से उपदश की द्वितीयावस्था मे सारे शरीर पर होने वाले चट्टे दूर हो जाते हे।

११ खुजली, पामा आदि चर्म-रोगो पर—इसके स्वरस मे चतुर्थांश सरसो का तैल मिलाकर तैल सिद्ध करलें। इसकी मालिश से कच्छू (तर खुजली), विचर्चिका (हाथ-पांव आदि मे अतिशय खाज, पीडा एव रूखी रेखाओ से युक्त क्षुद्र कुष्ठ) तथा पामा (छाजन, उकवत) आदि मे शीघ्र लाभ होता हे—भैं० र०।

खुजली और दाद पर दूब को हल्दी के साथ पीस कर लगाने से भी लाभ होता है।

नोट—मात्रा स्वरस पाव से १ या २ तो० तक। चूर्ण--१ से ३ मा० तक। मूल-२ से ६ मा० तक। क्वाथ ५ से १० तो० तक।

यह कफ प्रधान आमाशय के लिये हानिकारक है। हानि-निवारणार्थ—काली मिर्च, शहद या मिश्री देते हैं।

विशिष्ट योग—

१ दूर्वादि घृत (रक्तपित्त पर)—दूब, अनार का फूल, मजीठ, कमल का केसर, गूलर फल, लाख, नागरमोथा, श्वेत चन्दन, पद्माख, अडूसे के फूल, केशर, गेरू व नागकेसर १-१ तोला, सबका महीन चूर्ण कर, जल मे पीस, उसमे बकरी का घी, बकरी का दूध, पेठे का (कूष्माण्ड) स्वरस, आयापान का स्वरस और चावल भिगोया हुआ जल प्रत्येक ६४-६४ तो० मिला, मदी आच पर पकावें। घृत सिद्ध हो जाने पर, छानकर शीशी मे भर ले। मात्रा—½ से १ तो० तक, समभाग मिश्री का चूर्ण मिलाकर दे।

यह घृत मुख से रक्त आता हो तो मिश्री चूर्ण मिला पिलावे, नाक से रक्त आता हो, तो केवल घृत का नस्य दे, कान या आख से रक्तस्राव हो, तो उनमे डालें। तथा शिश्न, योनि या गुदा मे रक्त आता हो, तो उत्तर-वस्ति या अनुवासन-वस्ति से देना चाहिए।

—सिद्धयोग सग्रह (स्व० श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य।

नोट—उक्त घृत के भैषज्य रत्नावली के पाठ में—कल्क द्रव्य केवल १० ही दिये हैं—अनार फल, गूलर-फल, अडूसा-पुष्प, केशर और गेरू उसमें नहीं हैं। उनके स्थान में एलवालु, खाड (मिश्री), लाल चन्दन, तथा शेष ७ द्रव्य उक्त पाठानुसार ही हैं। सेवन-विधि भी उक्तानुसार ही है। केवल इतना विशेष है, कि-रोमकूपों से यदि रक्तपित्त-प्रवृत्त हो तो इस घृत का अभ्यग (मालिश) हितकर है।

(इस घृत को पिलाने के लिये अनुपान मे बकरी का गरम करके ठडा किया हुआ दूध मिश्री मिला कर देना और भी प्रशस्त है।)

२ दूर्वादि घृत न० २ (ज्वर, विसर्पादि पर)—दूब, वड की छाल, गूलर-छाल, जामुन-छाल, सालवृक्ष की छाल, [illegible] ([illegible]) की छाल और पीपल वृक्ष की छाल, सब समभाग मिलाकर [illegible] लेकर १२ सेर पानी मे पकावें, चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमे उक्त द्रव्यों का [illegible] १० तो० तथा घृत ६० तो० मिला घृत सिद्ध करलें। इस घृत उचित मात्रा मे यथोचित अनुपान से सेवन देने से ज्वर, दाह, पाक, विस्फोटक एवं शोथयुक्त विसर्प का नाश होता है।

—भा० भै० र०

३ दूर्वादि तैल—दूब, मुलहठी, मजीठ, लाख, श्वेत चन्दन, दोनों प्रकार की सारिवा और [illegible] २-२ तो० लेकर कल्क करें। उसमें [illegible] रस २ सेर, तिल-तैल २ सेर और दूध ८ सेर मिला, तैल सिद्ध करलें। इस तैल की मालिश से रक्तपित्त तथा वायु नष्ट होता, और सौन्दर्य की वृद्धि होती है। —व० से०

४ दूर्वामलकी योग—दूब और आमला दोनों को ताजा लेकर पानी मे धोकर, कूट कर रस निकालें, इस मे थोडा शहद मिला शीशी में भर लें। २ तो० की मात्रा मे दिन मे ३-४ बार सेवन से सर्व प्रकार के वीर्य-विकार, दाह, भ्रम, मूत्र मे जलन होना, सुजाक, रक्त-विकार आदि विकार दूर होते हैं। यह बच्चे, वृद्ध, स्त्री सबको समान रूप से लाभ करता है। सूखे बच्चे इनके सेवन से सुन्दर, स्वस्थ एव हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं।

—परीक्षित प्रयोग (जन आयुर्वेद से)

५ दूर्वारिष्ट—उत्तम शुद्ध स्थान की ५ सेर हरी दूब मूल सहित, पानी से धोकर साफ कर, काट कर कुचल लें। फिर जामुन छाल, शीशम छाल गूलर-छाल, आम की छाल ये सब ताजी छाले १-१ पाव (यदि सूखी हो, तो १०-१० तो०), खस, कुश, कास की जड़ें हरी हो तो १०-१० तो० (सूखी ५-५ तो०) इन सब को जौकुट कर, उक्त दूब के साथ १ मन २४ सेर पानी मे पकावे। १६ सेर शेष रहने पर, मलकर छान लें। इसमे ६½ सेर खाड या गुड डालकर, चिकने मिट्टी के पात्र मे भर उसमे श्वेत दूर्वा, नागरमोथा खस, छोटी इलायची के बीज, श्वेत चन्दन बुरादा, देवदारु, श्वेत जीरा, धनिया, नीलोफर, गुलाब फूल ५-५ तो० चूर्ण कर मिला दे। ११ दिन तक मुख सधान कर, छानकर बोतलो मे भर ले।

यह अगाद्य मग्रहणी को दूर करता है। यह प्रयोग भैषज्यरत्नावली का है। ... पर भी उत्तम लाभ कारी है। —मिश्र ... शर्मा वैद्यराज

रक्तपित्तादिनाशक दूर्वासव का अत्युत्तम प्रयोग तथा अन्य आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे 'वृहदासवारिष्ट संग्रह' में देखिये।

देवकाडर—दे०—जलपिप्पली या जल-पिपली मे। देवकुसुम—दे०—लवङ्ग। देवडगरी—दे०—चन्दाल।

देवदार (Cedrus Deodara)

वर्षूरादि वर्ग एवं अर्जुनादि कुल देवदारु कुल[1] (Coniferae) के उनके, बहुवर्षायु, सबसे अधिक ऊंचे (१६० से २५० फुट ऊचे) सुन्दर सम्मुख होकर लगे हुए, काण्ड—सीधे, मोटे, ३ से ३६ फुट तक के जड मे मोटे तथा क्रमश पतले पुच्छाकार, शाखाएं—चारो ओर समान रूप मे फैली हुई, सघन, नीचे की ओर झुकी हुई, ऊपर की ओर क्रमश छोटी होती जाती वृक्ष दूर से कोणाकृति मालूम देती है। छाल—मोटी, दरारो से युक्त या फटी हुई सी दिखाई देने वाली; पत्र—लम्बी टहनियो पर, एक ही स्थान से बहुत से पैनदार, त्रिकोणयुक्त, सूच्याकार, ... इंच से १½ इंच तक लम्बे, एव एक ही टहनी पर कई स्थानो से निकले हुए, तथा छोटी टहनियो पर गुच्छों मे निकले हुए, स्वाद मे कुछ अम्ल कसैले, पुष्प—गुच्छो मे, एरण्ड पुष्प जैसे, किन्तु हरिताभ पीतवर्ण के, फल—शाखाओ पर एकाकी, ४-५ इंच लम्बे, ३-४ इंच मोटे, रामफल या शरीफा के फल से मिलते जुलते, पकने पर काले पड जाने वाले, बीज—फल के प्रत्येक कोष्ठ मे एक बीज, जिस पर एक ओर से पतला पक्ष सा निकला हुआ, त्रिकोणाकार या अर्धचन्द्राकार, ½ इंच तक लम्बा होता है। फूल व फल मई जून से लेकर अक्टूबर मास तक आते हैं, तथा एक वर्ष बाद फल पकते हैं। इसके वृक्ष पश्चिमोत्तर हिमाचल प्रदेशो मे ७ से ९ हजार फीट की ऊंचाई पर होते हैं। अफगानिस्तान व उत्तर बलूचिस्तान मे भी यह होता है।

इसकी लकडी (काष्ठ सार) भारी, सुगन्धयुक्त, पीताभ बादामी रंग का, स्निग्ध चिकनी होती है। इसे स्निग्ध देवदार कहते है। इसके बुरादे को धूप मे डालते है तथा हवन-सामग्री मे भी मिलाते है यह धूप नाम से बाजारो मे बिकता है। (धूप सरल इससे भिन्न है, चीड का प्रकरण देखे) इसकी लकडी से तख्ते, किवाड तथा अन्य उपयोगी वस्तुएं बनती है। जिस मकान मे इसकी लकडी लगती है तथा अन्य उपकरण इसके बने हुए रहते है, वहा एक प्रकार की भीनी, मन मोहक सुगन्ध प्रतिदिन होती रहती है।

पश्चिम और उत्तर बगाल मे होने वाले, तथा प्राय चारो ओर भारत के शहरो मे, बाग या रास्ते के किनारे लगाए हुए वृक्षो को, (जिसकी पत्तियां उत्सव के अवसर पर तोरण द्वार पर लगाई जाती है तथा जिसका वर्णन हम अशोक-नकली के प्रकरण मे (भाग १ मे) कर आये है,) काष्ठ देवदारु कहा जाता है। तथा कई स्थानो पर उक्त स्निग्ध देवदारु के स्थान मे इसी का प्रयोग किया जाता है। किन्तु इसमे सुगन्ध और उतने उत्कृष्ट गुणधर्म नहीं पाये जाते। वास्तव मे यह देवदारु कुल का नही है।

उक्त वर्णित स्निग्ध देवदार जैसे ही उसी के कुल के प्राय एक ही स्थान मे पैदा होने वाले C Libani और C Atalantia (पहाडी केली) नाम के देवदार के वृक्ष होते हैं। इनमे गोद, कोलेस्ट्रीन (Cholesterin) और प्रभावशाली तेल होता है। इनके गुणधर्म प्रस्तुत प्रसग के देवदार जैसे ही है। ज्वर, मेदोरोग, जलोदर, आमवात, अर्श, वृक्काश्मरी एव सर्व विष पर विशेष उपयोगी है। बाजारो मे प्राय प्रस्तुत देवदार काष्ठ के साथ मे इन दोनो के काष्ठ मिश्रित रहते हैं।

एक कोका कुल (Erythroxylaceae) का देवदार होता है, जिसे कनाडी मे गधगिरी, दक्षिण मे—नट का देवदार, अंग्रेजी मे बास्टर्ड सेंडल, देवदार (Bastard

[1] इस कुल के वृक्ष सपुष्प, द्विबीज वर्ग, सयुक्त कोष, पत्र—सरस, सरल, सकडे, पतले, नोकदार होते है।

देवदारु
CEDRUS LIBANI BARREL.

Sandal, Deodar) तथा लेटिन मे एरिथ्रोभिजान मोनो गायनम (Erythrozylon Monogynum) कहते है।

इसके वृक्ष दक्षिण के पहाडी प्रान्तो मे, कर्नाटक, मद्रास तथा सीलोन मे विशेप रूप से पाये जाते है।

इसकी लकडी और छाल का शीतनिर्यास जठराग्नि को बढाने वाला, स्वेदल, व मूत्रल है। जीर्ण ज्वर व अजीर्ण रोगो मे लाभकारी है। अविराम ज्वर मे लाभकारी है। जलोदर मे अन्य औषधियो के साथ यह दिया जाता है। इसके पत्र ज्वर एव तृष्णाशामक हैं। इसके पत्तो मे उपक्षार अल्प मात्रा मे पाया जाता है।

इसमे एक प्रभावशाली तैल और कोकीन होता है। यह बल्य है।

चरक के स्तन्य शोधन, अनुवासनोपग, कटुकस्कन्ध तथा सुश्रुत के वातसशमन गणो मे देवदार की गणना की गई है। तथा अनेक रोगो के प्रयोगो मे यह लिया गया है।

नाम —

सं० देवदारु ([illegible] Deodar) [illegible]

[illegible] —

[illegible] (Alcorean) [illegible] (De tructive di til ation) [illegible]

प्रयोज्यांग — [illegible]

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, [illegible] कटु [illegible], कफ-वात शामक, दीपन, पाचन, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], वेदना स्थापन, [illegible], [illegible], [illegible], रोपण, तथा [illegible], विबंध, [illegible], आमवात, गृध्रसी, शिर शूल, [illegible], [illegible], [illegible], जलोदर, जीर्ण कास-श्वास, [illegible], प्रमेह, पूयमेह, [illegible], अश्मरी, सूतिका रोग, हृद्रोग, जीर्ण ज्वर आदि मे प्रयुक्त होता है।

सधिवात आदि शोथ के वेदनायुक्त रोगो मे एवं विविध चर्म रोगो में, इसका लेप तथा तैल लगाते है।

शोथ या कफजन्य ज्वर मे इसके प्रयोग से प्रस्वेद आकर तथा मूत्र का प्रमाण बढ कर, शोथ कम हो जाता और कफ की दुर्गन्धि दूर होकर कफ भी कम हो जाता तथा ज्वर शात हो जाता है।

श्लीपद मे—इसे सरसो के तैल के साथ या गोमूत्र के साथ पिलाते तथा चित्रक के साथ इसे गोमूत्र मे पीस कर लेप करते हैं। वातज हृद्रोग मे—इसे सोठ के साथ पीस कर पिलाते है। हृदय की अति धडकन एव शूल दूर होता है।

अण्डवृद्धि मे—इसके क्वाथ मे गोमूत्र मिला पिलाते हैं।

ऊरुस्तम्भ मे—इसे पानी के साथ पीसकर गरम कर लेप करते हैं।

वक्ष पीडा (छाती के दर्द) मे—इसका चूर्ण २ मा और गुड ५ माशे दोनो को एकत्र घोटकर (१ मात्रा है) गोली बना सेवन कराते हैं।

प्रसूता स्त्री के विकारो पर—देवदार्वादि क्वाथ उत्तम है। (विशिष्ट योगो मे देखें)

१ सिर की पीडा पर—इसके साथ तगर, बेल, खस और सोठ को एकत्र काजी मे पीसकर तथा तेल मिलाकर लेप करने से लाभ होता है। (वृ मा)

अथवा—केवल इसी को पानी मे घिस कर लेप करने से भी पीडा शात होती है।

(आगे विशिष्ट योगो मे देवदार्वादि घृत मे देखें)

२. जीर्ण-शोथ रोग पर—देवदार, पुनर्नवा और सोठ से सिद्ध किया हुआ दूध कुछ दिन सेवन करावे, अथवा इसी योग मे थोडी हरड मिला, कल्क बना गरम पानी से सेवन करावें। सर्व प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं। (यो० र०)

लेपार्थ—इसे हल्दी और गूगल के साथ पानी मे पीस गरम कर लेप करे।

३. हिक्का और श्वास पर—इसका क्वाथ पिलाते हैं।

— देवदार, खरैंटी और बालछड समभाग पानी के साथ घोट-पीसकर वत्तिया बनालें। इनको घृत मे भिगोकर धूम्रपान करने से भयङ्कर श्वास भी नष्ट होता है। (भा० प्र०)

४ प्लीहा एव यकृत विकार पर—देवदार, सेंधा-नमक, व आमलासार गधक समभाग एकत्र घोटकर, सरावसपुट कर पुट मे फूक दें। स्वाग शीत होने पर, निकाल कर खरलकर, २-३ माशे तक की मात्रा मे यथोचित अनुपान के साथ सेवन करावे। (भा भै र)

५ आध्मान तथा उदावर्त्त पर—देवदार, नागर-मोथा, मूर्वा, हल्दी व मुलैठी समभाग चूर्ण कर, ६ मा तक की मात्रा मे वर्षा जल (या वाष्प जल) के साथ सेवन करावे। (भा भै र)

६ मूत्राघात पर—उक्त चूर्ण प्रयोग मे हल्दी के स्थान पर हरड मिला (मात्रा—३-४ मा) मद्य, दूध या पानी से सेवन करावे। (व भ)

७ जलोदर—देवदार, सहजना की छाल (अथवा—तालमखाना की जड की छाल) अपामार्ग ६-६ मा एकत्र गोमूत्र मे पीसकर पिलाने से मूत्र द्वारा दूषित जल निकलकर रोगी को स्फूर्ति प्रतीत होती है। (व च)

८ कफज गलगण्ड रोग मे—देवदार और इन्द्रायण की जड को (गरम पानी मे) पीसकर लेप करना तथा, वमन विरेचन और शिरोविरेचन कराना हितकारी है। (व० से)

९ कफज कास श्वास पर—देवदार, कचूर, रास्ना, धमासा और काकडासिंगी समभाग चूर्ण कर, तेल व शहद मे मिलाकर चाटने से कफज खासी नष्ट हो जाती है। (व० से०)

अथवा—देवदार, खरैंटी, रास्ना, त्रिकटु त्रिफला, पद्माक्ष और वायविडङ्ग १-१ भाग तथा खाड या शक्कर सबके बराबर लेकर चूर्ण करे। इसे (३-४ मा की मात्रा मे) शहद से चाटने से सर्व प्रकार की खासी दूर होती है। (व० से०)

अथवा—देवदार, वच, भारङ्गी, सोठ, पोखरमूल और कायफल का क्वाथ सेवन से श्वास, कास शीघ्र नष्ट हो जाते है। (व० से०)

१० उदर व्याधि पर—देवदार, सहजने की छाल और मसूर समभाग एकत्र मिला गोमूत्र मे पीसकर पिलाने से शोथोदर एव उदर के कृमि आदि नष्ट होते हैं। (च० द०)

यदि उदर व्याधि के कारण अजीर्ण हो तो देव-दार, वच, मोथा, सोठ, अतीस और हरड का क्वाथ सेवन करावे। सर्व प्रकार के अजीर्ण दूर होते है। (व० से०)

उदर-व्याधि मे – देवदार, ढाक की छाल, आक की छाल, गजपीपल, सहेजना, छाल, और असगन्ध को गोमूत्र मे पीस पेट पर लेप करना हितकर है। (वा० भा०)

११ ज्वर पर---देवदार, कचूर, रासना और सोठ १-१ भाग तथा गिलोय दो-भाग लेकर यथाविधि क्वाथ सिद्ध कर उसमे गूगल (शुद्ध २ मा तक) मिलाकर सेवन करने से सन्निगत सतत ज्वर शमन होता है।

(भा० प्र०)

चातुर्थिक ज्वर हो तो-देवदार, हरड, आमला, शालपर्णी-(सरिवन), अडूसा और सोठ के क्वाथ मे शहद व मिश्री मिलाकर सेवन से लाभ होता है।

(वैद्य-जीवन)

१२ पाषाणगर्दभ (हनुसंधि-ठोडी की संधि-मे वात कफ जन्य, अल्पपीडा युक्त होने वाली स्थिर कडी सूजन Adenoma) पर-प्रथम वफारा देकर देवदार, मन-सिल और कूठ (एकत्रकर जल मे पीस गरम कर) का लेप करें।

(च० से०)

१३ नेत्र विकार (पटलगत विकार रतौंधी) पर-इसके चूर्ण को २१ बार बकरी के मूत्र मे घोटकर (२१ भावनाये देकर) खूब महीन-सुरमा के समान-घोटकर सुरक्षित रखे। इसे सलाई से आजते रहने से अवश्य लाभ होता है।

(भा भै र)

१४ कर्ण-शूल पर-देवदार, वच, सोठ, सोया, कूठ व सेधानमक समभाग (५ तो कल्क कर ½ सेर तेल व २ सेर बकरे का मूत्र मिला पकावे) तेल सिद्ध होने पर कान मे डाले।

(च० स०)

तेल-देवदार का तेल-चीड के तेल-तारपीन तेल-जैसा ही किंतु कुछ न्यून गुणधर्म वाला है। तथापि यह तारपीन का उत्तम प्रतिनिधि है। यह वेदनानाशक, व्रण शोधन रोपण है। इसका विशेष प्रयोग कुष्ठ, कफ, कास तथा त्वग्रोगो मे किया जाता है। कुष्ठ मे बहुत लाभदायक माना जाता है, इसे कुछ अधिक मात्रा मे देना पडता है। जीर्ण त्वचा के विकारो मे इसका आभ्यन्तर एव बाह्य प्रयोग किया जाता है। जीर्ण एव दुर्गन्धयुक्त व्रण ठीक हो जाते है। कफज कास मे इसे त्रिकटु और यवक्षार के साथ दिया जाता है। यह उत्तम कृमिघ्न है। घोडे आदि पशुओ की खुजली पर इसे लगाते हैं। यह तेल कान मे डालने से कर्णशूल शीघ्र ही नष्ट होता है।

१५ कर्ण-शूल आदि पर—तैल निष्कासन विधि-साधारणत इस प्रकार है—

देवदार की लकडी के ८-८ अगुल के लम्बे टुकडे कर सबको एकत्र बाध कर, या अलग-अलग रेशमी कपडे मे लपेट कर, तिल तेल मे अच्छी तरह तरकर उनमे एक सिरे से आग लगा दे। दूसरे सिरे को चिमटे आदि से पकडकर उल्टा लटकाये रहे। जो तेल टपके उसे काच या चीनी आदि के पात्र मे सग्रहित कर ले। इस तेल को थोडा गरम कर कान मे डालने से कर्ण पीडा दूर हो जाती है। उपरोक्त विकारो मे भी यही काम मे लावे। यह 'दीपिका तेल' विधि चक्रदत्त आदि ग्रन्थो की है। इसी विधि से वृहत् पचमूलो का तैल निकाला जाता है।

१६ पारे के विकारो पर—तेल की मात्रा १० से ४० बूद तक दूध १० या २० तोले मे मिला पिलाने से पारद के उपद्रव, रक्त विकृति एव अन्य चर्म रोगो मे लाभ होता है।

नोट—मात्रा—चूर्ण १ से माशा तक। तैल १० से ४० बूंद।

पत्र—देवदार के पत्र—शोथ और ग्रथि नाशक हैं। शोथ तथा क्षय जन्य गल ग्रथियो पर पत्तो को पानी के साथ पीसकर थोडा गरम कर लेप करते हैं।

फल—उष्ण एव वातशामक हैं। सिर और गले के समस्त विकारो के शमनार्थ—फलो का कल्क कर दो गुना तिल-तेल तथा ४ गुना घोडे की लीद के रस मे मिला मन्द आग पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इस तेल की केवल नस्य लेने से ऊर्ध्वजत्रुगत विकार दूर होते हैं।

(राजमार्त्तण्ड)

विशिष्ट योग—

(१) देव दार्वादिक्वाथ—देवदार, वच, कूठ, पीपल, सोठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनिया, हरड, गजपीपल, धमासा, गोखरू, जवासा, कटेली, अतीस, गिलोय, काकडासिगी व काला जीरा समभाग जौकुटकर रखले। प्रतिदिन २ तोले चूर्ण ३२ तोला-पानी मे अष्ट-माश क्वाथ कर, छानकर उसमे २ रत्ती हीग और १॥

माशा सेधा नमक मिला सेवन कराने से प्रसूता स्त्री का शूल, काम ज्वर, श्वास मूर्च्छा, शरीर कम्प, सिर पीडा, प्रलाप तृष्णा, दाह, तद्रा, अतिसार एव वमनयुक्त प्रसूत रोग (चाहे किसी भी दोषजन्य हो) नष्ट हो जाते है। (भा० प०)

(२) देवदार्वादिघृत, हल्दी, नागरमोथा, कचूर, पोखरमूल, इन्द्रजौ, पिप्पली, कूठ, लोध, चव्य और जवासा समभाग (किंतु देवदार का प्रमाण कुछ अधिक लेना ठीक होता है) एकत्र जौकुट कर १ सेर लेकर ८ सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर छान ले। तथा वल्कार्थ गूगल, सोठ, सेंधानमक, त्रिफला समभाग १० तोला मे पीसकर उक्त क्वाथ मे मिलावे और इसमे १ सेर मक्खन, १ सेर दूध तथा २ सेर दही मिला पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर ठडा कर उसमे (१ पाव) खाड मिला दे।

इसकी नस्य लेने से सिर दर्द, सिर के अन्य विकार, भ्रू, ललाट, भुज एव शख प्रदेश की पीडा, अर्धविभेदक तथा कर्ण रोग नष्ट होते है। (हा० स०)

(३) देवदार्वासव—कास, वातादिनाशक—देवदारु का बुरादा ५ सेर लेकर १ मन १२ सेर जल मे पकावे। १३ सेर क्वाथ जल शेष रहने पर छानकर मुख सन्धान कर पात्र मे भर कर ठडा हो जाने पर उसमे शहद १० सेर शुद्ध गुगल ८ तो, धाय पुष्पो का चूर्ण १३ छटाक तथा रास्ना, काकडासिंगी, धमासा, त्रिफला, त्रिकटु और वायविडङ्ग प्रत्येक का ४-४ तो चूर्ण मिला, एक मास तक अच्छी तरह सन्धान कर रखे। फिर छान कर बोतलो मे भर दे। मात्रा—१ से ३ तो तक, समभाग गरम जल मिला सेवन से सर्व प्रकार की खासी, श्वास, सन्धिगतवात, सतत ज्वर आदि मे लाभ होता है।

देवदार्वासव के अन्य प्रयोग हमारे वृ० आसवारिष्ट सग्रह मे देखे।

देवदाली—दे०—बदाल। देवधान्—दे०—चावल मे। देवमजरी—दे०—पोदीना मे। देशीबादाम—दे०—बादाम मे।

दोडक (Senchus Gleraceus)

भृगराजकुल (Compositae) के इसके वर्षायु, क्षुद्र कटकयुक्त छोटे-छोटे क्षुप खेतो तथा उपजाऊ भूमि मे बहुत पैदा होते हैं। इसकी पोली मोटी डडियो को तोडने से दूध जैसा रस निकलता है, जो सूखने पर भूरे रग का हो जाता है। इस पौधे पर पीले रग के बहुत फूल छोटे-छोटे आते है।

इसके क्षुप प्राय सारे भारतवर्ष मे पाये जाते है।

नाम—

हिन्दी (पजाबी) दोडक, तितालिया। म०—म्हातारा। गु०—दुधाली सोनकी। अ०—सोथिसल (Sowthistle),

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग तथा शुष्क दुग्ध।

गुणधर्म व प्रयोग—

उष्णवीर्य, बल्य, ज्वरनाशक तथा तीव्ररेचन या भेदक है। इसका शुष्क दुग्ध १ से २ रत्ती की मात्रा मे देने से तीव्र पानी जैसा रेचन होता है। यह यकृत तथा आन्त्र मे अन्तिम भाग (duodenum) पर इन्द्रायण जैसा बहुत प्रभावशाली कार्य करता है। जलोदर एव शरीर मे सचित दूषित जल को निकालने के लिये इसका महत्वपूर्ण उपयोग होता है। किन्तु यह सनाय की तरह ऐंठन और एलुए की तरह दाह या जलन पैदा करता है। इस दोष के तथा आन्त्र के श्लैष्मिक त्वचा पर होने वाले इसके तीव्र प्रभाव के निवारणार्थ इसकी योजना गजगबीन (झावुक शर्करा या यवास शर्करा), सौफ और मेगनेसिया कार्बोनेट या अन्य सौम्य उत्तेजक एव सुगधित द्रव्यो के साथ करनी चाहिये।

इसकी जड और पत्तो का फाट ज्वरनाशक तथा बल्य है। पचाग का क्वाथ या फाट उदररोग, यकृत-विकार एव पाचन-नलिका के जीर्ण विकारो मे सुगधित द्रव्यो के साथ दिया जाता है। इसकी योजना से प्रारम्भ मे रेचन तो होता है, किन्तु अन्त मे लाभ ही होता है।

दोडी—दे०—जीवन्ती न० १। दोपातीलया—दे०—विधारा मे। दोना—दे०—तुलसी मे दवना।
द्राक्षा—दे०—अगूर मे। द्रोणपुष्पी—दे—गूमा।
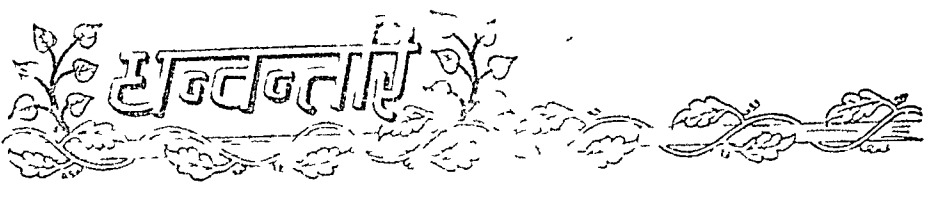
धतूरा (काला व श्वेत) (Datura Stramonium, & D Alba)

गुडूच्यादिवर्ग एव कण्टकारी कुल (Solanaceae) के इसके वर्षायु क्षुप सर्वसाधारण श्वेत धतूरा के क्षुप जैसे ही लगभग २-४ फुट ऊचे, काण्ड-हरित, जामुनी रग के या काले, पत्र—लगभग ७ इच लम्बे, अण्डाकार ५ इच चौडे, हलके हरितवर्ण के, चिकने (कोमल पत्र कुछ रोमश), लहरदार या गहरे विच्छेदो से युक्त किनारे वाले, नोकदार, उग्रगन्धी, स्वाद मे कडुवे, अरुचिकारक पुष्प—लगभग ३-६ इच लम्बे घंटाकार बेगनी आभायुक्त श्वेतभूरे, पाच विभागयुक्त, फल—अण्डाकार, लम्बे, कडे, चार खण्डवाले, ऊर्ध्वमुख, छोटे कटको से युक्त, एव बहुबीजयुक्त, बीज—कृष्णाभ भूरे रग के, वृक्काकार लगभग ३ मि मि लम्बे, २ मि मि चौडे, १ मि मि मोटे, खुरदरे, अल्पगन्धवाले, स्वाद मे कुडुवे होते हे। प्राय सर्वजाति के धतूरे के पौधे वसन्तऋतु मे अकुरित, चैत्र-वैसाख मे फूलते फलते तथा ज्येष्ठ मे इनके फल पकने पर तडकने या फूट जाते है। अन्दर के बीज नीचे बिखर जाते है।

इसके क्षुप हिमालय के मन्द कटिबन्ध मे काश्मीर से लेकर सिक्किम तक ६ हजार फुट की ऊचाई तक, तथा मध्य भारत के पहाडी प्रदेशो मे, दक्षिण मे, एव शिमला, अफगानिस्तान, ईरान आदि अन्य प्रदेशो मे भी पाये जाते हैं।

सुवर्ण वाचक सभी शब्द सस्कृत मे धतूरे के लिये प्रयुक्त होते है। उनमे से 'कनक' तो चरक मे कई स्थानो पर पाया है, किन्तु धुत्तूर, धत्तूर या धुस्तूर शब्द कही नही मिलता। तथा चरक के टीकाकारो ने 'कनक' शब्द से, उन स्थानो पर धतूरा नही लिया है (स्वर्ण, गूगल, केशर, कस्तूर आदि लिया है)। तथा विष के प्रकरण (च चि अ २३) मे भी कई स्थावर विषो के नाम, जिस प्रकार पर चिकित्सा दी गई है, उनमें धतूरे (जो एक प्रसिद्ध उपविष है) का या कनक का उल्लेख नही है। मालूम होता है कि अफीम, गाजा आदि के समान यह भी एक सर्वप्रसिद्ध उपविष होने से इसका स्पष्ट उल्लेख चरक ने नही किया है - अस्तु, प्राचीन आचार्यों में केवल 'सुश्रुत' ने ही सर्वप्रथम पागल कुत्ते के विष (अलर्क-विष) पर इसके उपयोग का स्पष्ट उल्लेख किया है।[१] हारीत सहिता के अर्श प्रकरण मे इसका वर्ति प्रयोग है "गृहधूम च सिद्धार्थं धुस्तूरकदलानिच—

(हा चि अ. १२)

निघण्टु ग्रथो मे से राजनिघण्टुकार ने इसके श्वेत, नील, कृष्ण, रक्त व पीत ऐसे ५ भेद, तथा उनमे कृष्ण पुष्प वाला अधिक गुणकारी माना है।[२] तथा उन्होने 'कनक' शब्द सामान्य एव कृष्ण दोनो धतूरो के लिये दिया हे। भावप्रकाश तथा धन्वन्तरि-निघण्टु मे इसके ४ या ५ भेदो का उल्लेख नही है।

यद्यपि श्वास (तमक श्वास) पर इसका उपयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है, तथापि आश्चर्य है कि चरक, सुश्रुत आदि प्राचीन सहिताकारो ने इस विषय का कोई स्पष्ट उल्लेख नही किया है।

पाश्चात्य चिकित्सा मे जिसका वर्णन ऊपर दिया है, उस काले धतूरे (राजधतूरे D Stramonium) का विशेष उपयोग पाया जाता है। तथा आधुनिक विद्वानो ने इसके कई भेदो का सोपत्तिक वर्णन किया है। किन्तु विस्तारभय से, तथा उनके गुणो मे विशेष अन्तर न होने से, हम उनमे से प्रमुख भेदो का सक्षिप्त वर्णन एक साथ ही प्रस्तुत प्रसग मे दे रहे है।

(अ) उक्त काले धतूरे का ही उपभेद एक डट्टूरा टेटुला (D Tatula) है। इसके क्षुप उपरोक्त के समान ही होते हैं। कोई इसे ही राजधतूरा, पिशाचफल आदि कहते हैं। भेद इतना ही है कि इसके काण्ड, पर्णवृन्त

१"श्वेता पुनर्नवां चास्य दद्याद्धत्तूरका युताम्"। तथा 'मूलस्यशरपुखाया. कर्षधतूरकाधिकम्" इत्यादि (उन्मत्तक शब्द भी यहां इसी के लिये आगे आया है)।
(सु क अ ७, श्लोक ४२, ४३, ४४)

२"सितनील कृष्ण लोहित पीत प्रसवाश्च सन्ति धत्तूरा। सामान्यगुणोपेतास्तेषु गुणाढ्यस्तु कृष्ण कुसुमः स्यात्॥"

राजधतूर (कालाधतूरा)
DATURA STRAMONIUM LINN.

तथा पत्तो की प्रधान शिराए कुछ लालिमा लिये हुए होती है। पत्र कुछ विशेप गहरे हरितवर्ण के, तथा पुष्प श्वेत, पुष्पदल-पत्र ताजी अवस्था मे बेगनी आभायुक्त नीले रग के, जो शुष्क होने पर कुछ भूरे हो जाते है। इसका फल पकने पर बराबर ४ भागो मे स्फुटित होता है। तथा उक्त काले धतूरे का फल आडा टेढा फटता है।

रासायनिक सघटन--

उक्त दोनो प्रकार के काले धतूरे के पत्तो एव पुष्प युक्त अग्रभाग मे क्षाराभ (डेटुरीन daturine नामक विपैले अल्कलॉयड alkaloid) की मात्रा—० ४७ से ०.६५% होती है, जिसमे मुख्यतया हायोसायमीन (Hyoscyamine) तथा अल्पप्रमाण मे अट्रोपीन (Atropine) और हायोसीन (Hyoscine) पाये जाते है। इसके अतिरिक्त इसमे क्लोरोजेनिक नामक क्षार (Chlorogenic acid) तथा गहरे रग का एक उडन शील तैल ०.०४५% पाया जाता है। इनके बीजो मे उक्त क्षाराभ की मात्रा लगभग ० २% तक रहती है, जिसमे उक्त हायोसायमीन अधिक एव अट्रोपीन और हायोसीन अल्प मात्रा मे रहते है। बीजो मे स्थिर तैल भी १५–२०% तक होना है।

(आ) काले या श्वेत धतूरे का ही एक भेद डटुरा फेस्टुग्रोसा (D Fastuosa) है। इसके क्षुप १–५ फुट ऊचे, काण्ड का अग्रभाग कुछ बेगनी रग का, पत्र—३-८ इच लम्बे, लट्वाकार, नोकीले, २-४ इच चौडे, किनारे लहरदार या कुछ दन्तुर, तथा मध्य शिरा के दोनो ओर के भाग असमान, पुष्प—६-७ इच लम्बे, दोहरे या तिहरे जिनका आभ्यन्तर दल का बाह्य भाग नीलाभ रक्तवर्ण का या कुछ-कुछ बेगनी रग का एव भीतरी भाग श्वेत, फल—गोल १¼ इंच व्यास के, प्राय अधोमुख, सूक्ष्म काटो या कुठित प्रवर्धनो मे आच्छादित, तथा परिपक्व होने पर स्फुटित आडाटेढा, अनियमित,

कालाधतूरा
Datura fastuosa Linn.

बीज—कुछ पीताभ भूरे रंग के, चिपटे, वृक्काकार, ४-६ मि. मि. लम्बे होते हैं। ये बीज उक्त काले या राजधतूर के बीजों जैसे काले नहीं होते। केवल काण्ड एवं पुष्पादि के रंग के कारण ही इसे काला धतूरा कहते हैं। इसके क्षुप प्रायः सब प्रान्तों में विशेषतः कूड़े कचरे या परती भूमि में अधिक पाये जाते हैं। वास्तव में यह श्वेत धतूरे डटुरा आल्बा (D Alba) का ही एक उपभेद है। श्वेत

धतूरे में और इसमें इतना ही अन्तर है कि श्वेत धतूरे के पुष्प अन्दर से नीला व बाहर से एकदम श्वेत तथा पत्र कुछ गुलगुले, नरम होते हैं।

रासायनिक संगठन—

इन काले राजधतूरे और श्वेत धतूरे के बीजों में क्षाराभ की मात्रा ०.२०% रहती है जिसमें लगभग दो भाग स्कोपोलामिन और एक भाग हायोसीन, एवं अल्पमात्रा में एट्रोपीन होता है। इन दोनों के पत्रों में ०.१% क्षाराभ होता है, जिसमें अधिकतर मात्रा केवल हायोसीन की रहती है।

श्वेत धतूरा सर्वत्र अत्यधिक प्रमाण में पाया जाता है। इसके बीज भूरे या खाकी रंग के होते हैं।

(इ) इनके अतिरिक्त एक धूमर, हरा- धतूरा और होता है। जिसे लेटिन में डटुरा मेटल (D Metal)

धतूरा (*DATURA METAL*)

कहा जाता है। यह भी काले धतूरे के अन्तर्गत है। इसका क्षुप उक्त (आ) के जैसा ही ३-५ फुट ऊंचा एवं चिकना, काण्ड—नीलाभ हरितवर्ण का, मखमल जैसा मुलायम, कुछ चमकीला, पत्र—अल्पखण्डित, पक्षकल्प (Pinnatifid), अण्डाकार या भालाकार, नोकीले, वृन्त की ओर असम, पतले, नीचे और ऊपर चिकने, अकेले या युग्म, जिसमें एक बड़ा ७–८ इंची और एक छोटा प्राय ४ इंची, एवं ३ इंच चौड़े, पुष्प—सीधे ६-७ इंच लम्बे, अन्दर से श्वेत पीताभ और बाहर से नील लोहित, पुष्प मुकुट (carolla) उन्नत गोलाकार,
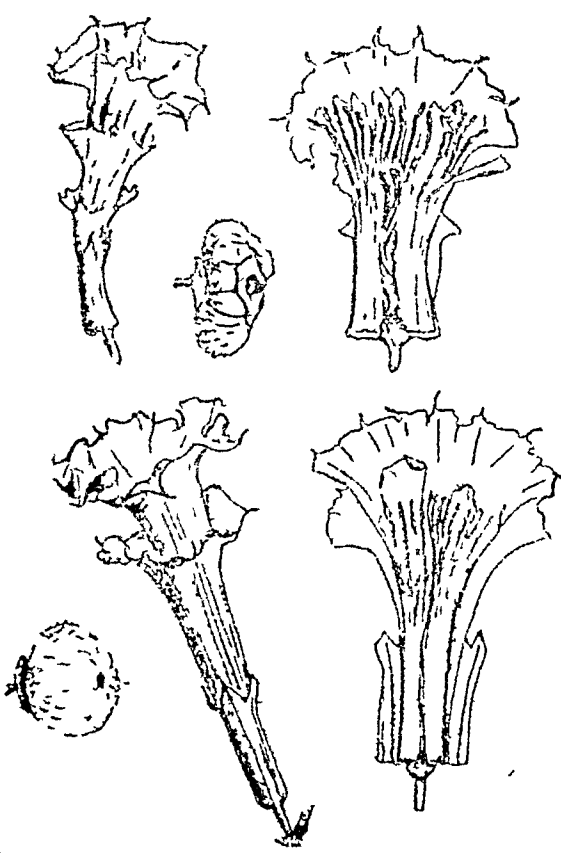
Datura Metal L defference forms
(1) Corola tribile (2) Corola Double

Datura Innoxia mill

पु केसर–मृदुलोमश, फल–गोल १½ इ व व्यास के लटकते हुए छोटे-छोटे ग्र थि सदृश अनेक काटो से युक्त, पकने पर अनियमित फूटने वाले, बीज—कर्णाकृति, चिपटे ४-५ मि मि लम्बे, ३ ४ मि मि चौडे, एव १ मि मि मोटे, किनारा लहरदार, मोटा एव ३ धारियो से युक्त, बाह्य भाग पीताभ या भूरा तथा कुछ गढेदार, गन्ध रहित एव स्वाद मे कडुवे होते हे। इसके क्षुप भी प्राय सर्वत्र परती जमीन मे पाये जाते हैं।

(ई) उक्त (इ) का ही एक भेद डट्टूरा इन्नोक्सिया (D Innoxia) है। इसके क्षुप उपरोक्तानुसार, किन्तु मृदुरोमश, पत्र–अखण्ड या अल्प विच्छेदी, पुष्प–श्वेत, पुष्पकोश ११ से० मी० लम्बा, कडा, १० कोणो से युक्त, पुष्प–मुकुट–शक्वाकार (Conical), पु केसर-मुलायम, फल–गोल, कमजोर काटो मे आच्छादित, बीज–भूरे-रग के मुलायम होते है। यह मेक्सिको का आदिवासी है, किंतु भारत मे अब बहुत पैदा होता है।
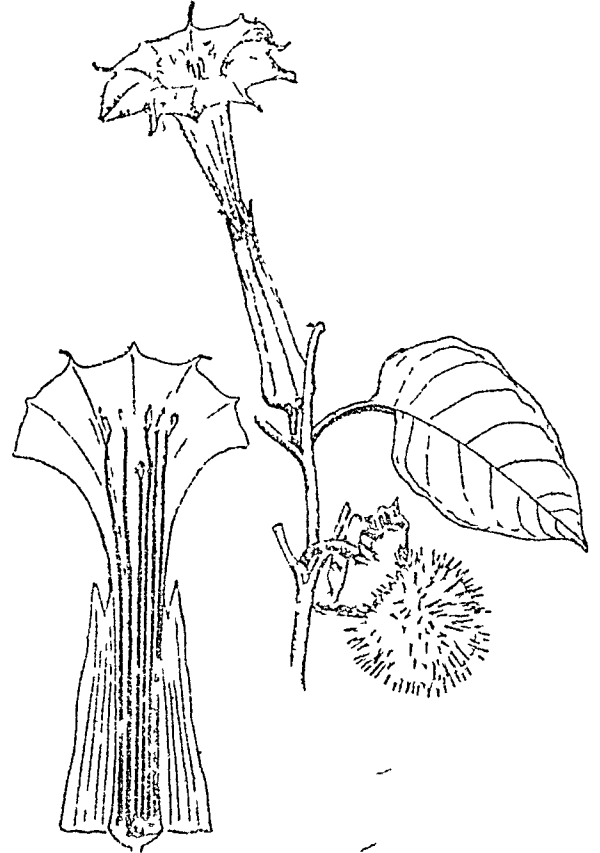
रासायनिक सघटन—

उक्त इ और ई के पत्तो मे क्षाराभ की मात्रा ० २५ से ० ५५%तक होती है, जिसमे हायोसायमीन अधिक तथा हायोसीन अल्प प्रमाण मे रहता है। 'इ' के बीजो मे हायोसीन ० २%एव अल्पमात्रा मे हायोसायमीन होता है। इसके अतिरिक्त राल व तैल भी इसमे पाया जाता है।

(उ) इनके अतिरिक्त डट्टूरा क्वेरसीफोलिया (D Quercifolia) नामक एक नूतन उपजाति का पता लगा है। यह भारत के दक्षिण प्रान्तो मे बहुत होता है। क्षुप लगभग ६० से० मि० ऊचा, शाखा—द्विधाभूत व मुलायम, पत्र—१२-१५ सें० मि० लम्बे, ०१-१३ सें०-
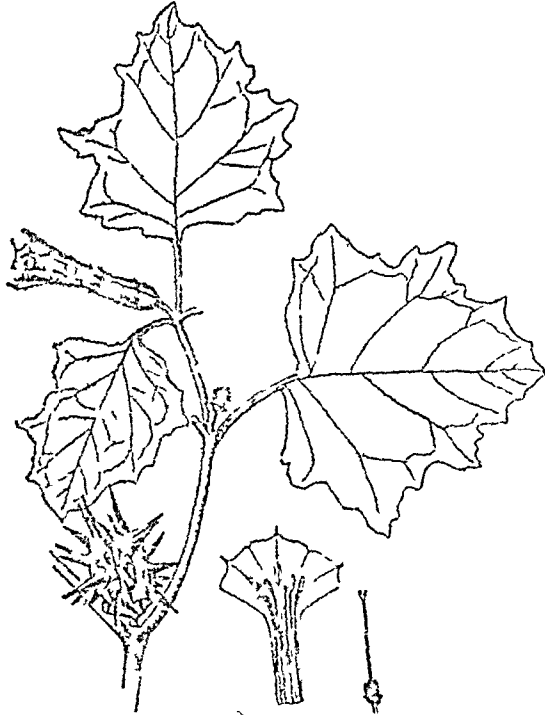
Datura Quercifolia

मि०, अण्डाकृति, साधारणत समखडित, निम्न भाग मे असमान, पर्णवृन्त १ से० मि० लम्बा, रेखाकित, पुष्प—श्वेत, पुष्पकोश २-४ सें० मि० लम्बा, साधारण सीधा धारीदार, पुष्प-मुकुट-नताग्र, फल-लम्ब गोल, लम्बे अल्प काटो से युक्त, बीज—चपटे १ ५ से २ मि० मि० के भूरे, कृष्णाभ, गाठदार होते है। इस धतूरे मे तथा उक्त न० १ के काले धतूरे मे बहुत कुछ साम्य है।

कुछ लोग स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) को पीला धतूरा कहते हैं। किन्तु स्वर्णक्षीरी उससे भिन्न कुल की है। यथास्थान सत्यानाशी का प्रकरण देखें।

नाम—

स०—धत्तूर, धूर्त, उन्मत्त, कनकाह्वय, शिवप्रिय। हि०—धतूरा। म०-धोत्रा। गु०—धतुर, धतुरो। अं०-डतुरा (Datura) थार्नेप्पल (Thornapple)। ले०—[illegible] मॉलियम, [illegible] आल्बा, [illegible] निलहुम्मातू (D Nil-Hummatu), अन्य लैटिन नाम ऊपर के नोट में देखें।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, बीज, मूल, फल और पचाङ्ग। (पुष्पित होने पर [illegible] पत्रो को तोड कर छायाशुष्क कर सुरक्षित रखना चाहिए। पत्र और बीज पुराने होने पर प्रभावहीन हो जाते है। पत्तो और बीजो की वीर्यशक्ति प्राय समान होती है।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुरु, कसैला, कडुवा, कटु विपाक, उष्णवीर्य, वातवर्धक, दीपन, मदकारक, कातिवर्धक, निद्राजनक, श्वास, कास, ज्वर, कुष्ठ, व्रण, कफ विकार, चर्मरोग, जू लीक आदि कृमि नाशक, वेदनाशामक, सकोच विकास-प्रतिबन्धक, शोथघ्न, वामक, स्तम्भक, आक्षेपहर है। इसका वातवर्धक गुण अधिक मात्रा मे सेवन से उन्माद आदिरूप मे प्रकट होता है। किंतु अल्प मात्रा मे यह वातजित है। यह स्वय एक उग्र उपविष होते हुए भी पागल कुत्ते शृगाल आदि के विष को नष्ट करने से इसे विषनाशक कहा जाता है।

इसकी क्रिया इडापिंगला की सूक्ष्म नाडियां जो उदर प्रदेश मे फैली हुई है, उन पर होती है। सज्ञावह एवं सचालन-नाडियो पर नही होती। पूर्ण मात्रा मे यह हृदय की गति को अनियमित करता तथा प्रबल प्रलाप उत्पन्न करता है। सूचीबूटी (बेलाडोना) के सदृश यह नेत्रो की कनीनिका को प्रसारित करता है। आक्षेपशामक रूप से यह यकृत मे शूल, स्वरयन्त्र मे विकृति जन्य कास बालको का धनुर्वात, वाणी की विकृति आदि पर व्यवहृत होता है। पीडितार्तव, वातशूल, अर्दित का आक्षेप और गृध्रसीवात मे आक्षेप एव वेदना-शमनार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। स्त्रियो का कामोन्माद (Nymphomania) तथा आत्महत्या की इच्छा वाली प्रसूता का उन्माद इन दोनो पर यह सफल औषधि है।

(डा० खोरी)

श्वासनलिका के सकोच विकास की विकृतिजन्य श्वास, श्वासनलिका शोथ, फुफ्फुसो की विकृति आदि मे यह बहुत उपयोगी है। उदरशूल, पित्ताश्मरीशूल एव वृक्कशूल आदि मे वेदनाहर तथा उद्वेष्टन निरोधी रूप मे इसका उपयोग किया जाता है।

अण्डशोथ, आमवात, सन्धिशोथ, आध्मान, नाडीशूल, फुफ्फुसावरणशोथ एव गृध्रसी आदि मे इसके पत्तो

का लेप, पत्र-क्वाथ मे वफारा या सेक, पत्र बन्धन या इसके सिद्ध तैल की मालिश करने से वेदना एव शोथ शमन होती है।

शोथ युक्त अर्श तथा गुदविकार मे इसका मलहम उपयोगी है। स्तनशोथ मे हल्दी के साथ इसका पुल्टिस बाधने से शोथ एव दुग्ध कम होता है। इससे सिद्ध तेल का उपयोग अनेक वातविकारो तथा चर्मरोगो मे किया जाता है।

पत्र प्रयोग—

(१) श्वास—विशेषत तमक श्वास मे उद्वेष्टन निरोधार्थ इसका बहुत प्रयोग किया जाता है। पत्र-चूर्ण २ तोले, सोफ चूर्ण १ तोले और कलमीसोरा १ तो, एकत्र चूर्ण कर रक्खे। श्वास के दौरे के समय इसकी बीडी बनाकर धूम्रपान करने से शीघ्र ही कफ सरलता से बाहर निकलकर लाभ होता है। तमाखू का व्यसनी-धत्तूर पत्र, अजवायन और धमासा समभाग चूर्ण कर ४ से ६ रत्ती चूर्ण तमाखू के साथ मिलाकर धूम्रपान कर सकता है।

अथवा—पत्तो को खूब पीसकर लेई सी बना, एक कोरे कागज के टुकडे पर लेप करले। सूख जाने पर ४-४ इंच के टुकडो को काटकर सिगरेट-बनाले, तथा आवश्यकता के समय धूम्रपान करे। कुछ ही देर मे जोर से खासी आकर अन्दर का जमा हुआ कफ निकल कर श्वास का दौरा शात हो जाता है। अथवा—

इसके पत्र, भाग पत्र और कलमीसोरा समभाग चूर्ण कर इसका १ चुटकी आग पर डालकर, धूम्रपान करें। शीघ्र ही लाभ होता है। (हकीम मौ मो अ साहब)

उक्त प्रकार से धूम्र का सेवन कर धत्तूर अर्क या कनकवटी (आगे विशिष्ट योगो मे देखे) का कुछ दिनो तक करने से यह रोग हमेशा के लिए छूट जाता है।

ध्यान रहे—इसके पत्रो का धूम्रपान करने पर १० मिनिट मे श्वास का दौरा शात न हो तो अधिक से अधिक १५ मिनट राह देख कर दूसरी बार धूम्रपान करें। यदि इससे भी कुछ लाभ न हो तो समझ लेवे कि उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। इससे सिर मे चक्कर, गले मे जलन तथा मुख मे खुश्की आने लगती है। अत वह इसका धूम्रपान न करे। जिसे यह अनुकूल हो जाय उसे भी इसका सदैव धूम्रपान नही करना चाहिये अन्यथा इसका व्यसन पडकर हानि होने की सभावना है। श्वास का वेग प्रारभ होते ही इसको बीडी या सिगरेट पीवे। इसे भी धीरे-धीरे न पीकर २-३ फूको मे ही पूरी कर दे। पहली फूक लेने के साथ ही अन्दर का चिकना कफ छटना शुरू होकर छाती हलकी पड जाती है। पत्तो की अपेक्षा इसके बीजो का असर चौगुना होता है। अत जिन्हे पत्रो से लाभ न हो, उन्हे बीजो का चूर्ण चिलम मे पिलाया जाता है।

श्वास वेग चढने के बहुत देर बाद इसके धूम्रपान से जैसा चाहिये वैसा लाभ नही होता। —व० च०।

धूए के लिये—इसकी पत्ती, कलमी सोरा, काले चाय की पत्ती, लोबेलिया एव अनीसी (सोफ) का तैल-इनसे बना हुआ मिश्रण (पल्व लोबेलिया कम्पाउण्ड) मिलता है, जिसमे से १ या २ चुटकी चूर्ण को कमरे मे जलाते हैं।

अथवा—इसके शुष्क पत्र १ तो०, कलमी सोरा और सोफ २-२ तो० चूर्ण कर, आवश्यकता के समय, कोयलो की आग पर इसकी १ चुटकी डालकर, किसी नली आदि द्वारा नाक मे धूम्र प्रविष्ट करावे। १ या २ चुटकियो से ५ मिनिट मे कफ स्राव होकर लाभ होता है। बन्द जुकाम से हुआ सिर-दर्द भी शीघ्र दूर होता है। २ चुटकियो से अधिक न डाले।

उक्त धत्तूर पत्र-धूम्रपान तीव्र आक्षेप युक्त जीर्ण शुष्क या कुक्कुर-कास मे भी लाभकारी होता है। किंतु इससे भ्रम, शैथिल्य आदि कोई अनिष्ट परिणाम हो, तो तत्काल ही इसका सेवन बन्द कर देना चाहिये।

२ शोथ पर—तीव्र वेदनायुक्त ग्रन्थि-शोथ हो तो पत्तो को गरम कर बाधने से या इसके ताजे पत्तो को थोडे जल मे पीस कर, उसमे समभाग चावल का आटा मिला, आग पर पका कर बनाई हुई पुल्टिस बाधने से, बेलाडोना प्लास्टर के समान लाभ होता है। अथवा—

पत्तो पर शिलाजीत का लेप कर शोथ पर चिपका देने से (यदि शोथ-स्थान पर बाल हो तो उन्हे पहले निकाल डालना चाहिए) लाभ होता है। आगे प्रयोग

न० २७ देखे ।

उक्त उपचार से अण्डशोथ, हड्डियो पर चोट लगने से आई हुई सूजन, घुटने की सूजन, गृध्रसी, उदर-शोथ, स्तन-शोथ, सुजाक-जन्य सन्धिशोथ, पार्श्वशूल, नेत्राभिष्यन्द जन्य नेत्र-शोथ, अर्श-शोथ आदि पर शीघ्र लाभ होता है ।

आमवातज या गठिया की शोथ हो, तो पत्र-स्वरस २ तो० मे पुनर्नवामूल का सूक्ष्म चूर्ण १ तो० और अफीम १ मा० मिला गरम कर लेप करने से लाभ होता है । अथवा—वेदनायुक्त कोई भी शोथ हो, तो पत्र-रस मे कली का चूना मिलाकर गरम कर लेप करें, या चूने की उग्रता सहन न हो, तो उस स्थान पर पत्र-रस मे गूगल पीस कर, गरम कर लेप करें ।

स्तन-शोथ पर—पत्तो को हल्दी और थोडी अफीम के साथ थोडे पानी मे पीस, कुछ गरम कर लेप करे । पीडायुक्त शोथ दूर हो जाती है । अथवा—

शोथ की प्रारम्भिक दशा मे ही कुछ पत्तो पर तिल-तैल चुपड कर, लोहे के तवे पर रख, गरम कर, साधारण गर्म-गर्म पत्ते स्तन पर रख बाध दे । बिना कष्ट के आराम हो जाता है ।

—हकीम मौलाना मो० अ० साहब ।

जिसके स्तन ढीले होकर लटक गये हो, वह यदि इसके पत्तो को गरम कर स्तनो पर कस कर बाधा करे, तो कुछ दिनो मे वे अपनी ठीक दशा मे आकर, उनमे कडापन आ जाता है ।

अण्ड ग्रन्थि-शोथ पर—पत्र को तैल मे चुपड कर, लगोट के नीचे २-३ दिन बाधने से पूर्ण लाभ होता है । लगोट के ऊपर से साधारण सेक करते रहे । जब सूजन कम होती है, तब उस स्थान पर खुजली होती है, किन्तु खुजलाना नही चाहिए । परीक्षित है—

डॉ० सत्यनारायण जी खरे, आ० आचार्य, ककवारा (झासी)

३ अलर्क विष (पागल कुत्ते के विष) पर—कुत्ता काटने पर देह के भीतर उसके विष का सचय होने लगता है । फिर लगभग ४० दिन के बाद वह व्यक्ति पागल सा होकर कुत्ते के सदृश चेष्टा करने लगता है । इस प्रकार पूर्ण विष के प्रकोप की अवस्था मे तो कोई भी औषधि लाभ नही पहुँचा सकती । अत विष की सचयावस्था मे १० से २० दिन के भीतर, या शीघ्र से शीघ्र ही रोगी को प्रथम प्रात काल ककडी के छिलके का चूर्ण १½ तो० ताजे जल मे घोल कर पिला दे, फिर ½ घटे बाद काले धत्तूर का पत्र-रस २½ तो० पिला दे । वमन होकर रस न निकलने पावे, एतदर्थ ताड का या खजूरी का रस (नीरा), या गुड का शर्बत या अन्य मधुर पेय पिलावे, तथा रोगी को खुले स्थान मे, धूप मे ४-५ घटे बाध रक्खे । ऐसा करने से धीरे-धीरे अलर्क विष प्रकुपित होकर रोगी उन्मत्त होकर पागल कुत्ते जैसी चेष्टा करने लगता है (यह पागल कुत्ते के काटने का एव उसके पूर्णतया ठीक हो जाने का स्पष्ट प्रमाण है) । फिर शाम को उसके सिर पर शीतल जल की धारा कराते रहे, या कई घडे शीत जल सिर पर डाले । रोगी जब अत्यधिक त्रस्त होकर, और खूब छटपटा कर शिथिल हो जाय, तथा जल-सिचन का क्रोध या विनय-पूर्वक विरोध करे, अर्थात् होश मे आ जाय तब जल-सिचन बन्द करे, तथा उसे थोडी विश्रान्ति देकर मिश्री मिला निवाया दूध या हलका भोजन दे । (नाडकर्णी ने नमक मे भूनी हुई मछली, बेगन, चना आदि खिलाने को लिखा है, तथा कहा है कि तब रोगी को खतरे से मुक्त समझ कर साधारण लघु भोजन देवे) पुन दूसरे दिन यही प्रयोग करे । यदि पागल कुत्तो की जैसी चेष्टा वह न करे तो प्रयोग बन्द करे, अन्यथा कुछ दिन उक्त प्रकार का उपचार करना आवश्यक है ।

विष के तीव्र प्रकोप होने पर रोगी की चिकित्सा करने के अवसर पर प्रथम उसके मस्तिष्क के अग्रभाग के बाल निकलवा कर तेज छुरे से इस प्रकार खरोच दें कि थोडा रक्त निकाल आवें । फिर उस स्थान पर काले धत्तूर-पत्र का रस या पत्रो का कल्क घिसदे, तथा उपरोक्त विधि से पत्र-रस पिलावें ।

—डा० नाडकर्णी ।

सुश्रुत के अनुसार चिकित्सा-विधि इस प्रकार है—

दश स्थान को दबाकर रक्त निकाले, फिर घी से

उस स्थान को जलावे, अगदो का लेप करे, तथा पुराना घृत पिलावे।

अर्क दुग्धयुक्त विरेचन देवें। धतूरे के साथ श्वेत अपराजिता (कोयल) तथा पुनर्नवा का सेवन करावे। तिल तैल, तिल तैल, अर्क दुग्ध तथा गुड़ का सेवन करावे।

विशेष प्रयोग–शरपुखा मूल १ तो०, धतूरा-पत्र या मूल ६ मा० दोनो का कल्क कर प्रात १ पाव चावलो के आटे मे मिला, चावलो के जल मे घोल कर रख दे। इस घोल मे थोडा सेंधा नमक और हल्दी या गुड मिला लेने से, इसके बने हुए पूए या कचौडी को रोगी सरलता से खा लेगा।

शाम को घी से चुपडे हुए धत्तूर-पत्रो पर फैला कर, आग पर एक पात्र मे जल भर, ऊपर चलनी रख उस पर इन पत्रो को रख दे, तथा ऊपर ढक्कन से ढाक दे, इस प्रकार वाष्प द्वारा पककर १०-२० मिनट मे उक्त धत्तूर पत्रो पर फैले हुए पुए फूल जाते हैं, इन्हे शाम को रोगी को खिलावे। अथवा—उपरोक्त द्रव्यो के कल्क या पिट्ठी को धत्तूर-पत्रो मे लपेट सूत से बाध कर घृत मे कचौडी की तरह पका कर खिलावे। और उसे जलरहित शीतल कमरे मे बन्द कर दे। या बाध दे। औषधि के पचने पर वह उन्मत्त कुत्ते के जैसी ही चेष्टा करने लगता है। ३-४ घण्टे वाद विष प्रकोप के शमन होने पर, दूसरे दिन प्रात स्नान करा शाली या साठी के भात को गरम दूध से भोजनार्थ देवे। तीसरे अथवा पाचवें दिन (अथवा ३ से ५ दिन तक) यही उपचार रोज शाम को अर्ध मात्रा मे करे। कुत्ते के सदृश चेष्टा बन्द होने पर उपचार बन्द कर दे। ध्यान रहे जिस रोगी के शरीर मे विष स्वय कुपित हो जाता है, वह नही बचता। अत विष स्वय कुपित हो उसके पूर्व ही (कुत्ता काटने के १० दिन वाद एव २० दिन के भीतर ही) उक्त प्रकार से उसे प्रकुपित कर देना ही ठीक होता है। ("कुप्येव स्वय विष यस्य न स जीवति मानव। तस्मात् प्रकोपयेदाशु स्वय यावत् प्रकुप्यति" सुश्रुत कल्प-स्थान अ० ७) आगे और भी उसी स्थान मे रोगी के स्नान का प्रकार, वलि मत्र एव तीक्ष्ण सशोधन के विषय मे लिखा है। पाठक वही देख ले। आगे प्रयोग न० २८ को भी देखे।

(४) मलेरिया-ज्वर पर–पत्र-रस ३ से ६ मा० तक, ४ तो० दही मे मिला, ज्वर-वेग से १ घण्टा पूर्व पिलाने से, २ या ३ पालियो के वाद तिजारी या चोथिया ज्वर दूर हो जाता है। —अ० तत्र।

अथवा—इसके १ पत्र को दो इञ्च तक चौकोर कतर खाने के पान मे रख खिला देने से भी लाभ होता है। किन्तु जब तक पाली का समय न टल जाय तब तक कुछ भी न खावे। हो सके तो उस दिन चाय पर रह जाय। —गा० औ० र०।

अथवा—इसकी ७॥ नग कोपले गुड मे लपेट कर गोली बना कर खिलावे। अवश्य ही ज्वर न होगा। अनेक वार का अनुभव किया हुआ है।

—ह० मौ० म० साहब।

अथवा—इसके पत्तो का अर्क, ज्वर आने से २ घटा पूर्व, २ बूद की मात्रा मे, मिश्री या बताशा मे डालकर खिलावे। आगे विशिष्ट योगो मे अर्क-विधि देखे।

इसके पत्र-रस २ तो खूब खरल करते-करते गोली बनाने योग्य हो जाय तो ½ रत्ती की गोलिया बनाले। ज्वर वेग के २ घटा पूर्व २ गोलिया पानी से खिलावे। यदि ज्वर आने से पूर्व १-१ घटे से १-१ गोली दी जाय तो सभव है, प्रथम ही दिन रुक जावे। अन्यथा दूसरे दिन थोडा रेचन देकर फिर गोलियो का सेवन करे।

—ह० मौ० मो० अ० साहब।

अथवा–धत्तूर पत्र २ तो के साथ कालीमिर्च–चूर्ण ८ तो मिला, गोद कतीरे के पानी से अच्छी तरह खरल कर ½ से १ रत्ती तक की गोलिया बना, छाया शुष्क कर ले। दिन मे ३ वार १-१ गोली ठडे जल से देने से पुराना विषमज्वर तथा श्वास, कास मे भी लाभ होता है।–स्वानुभूत।

अथवा—इसके पत्र और बगला पान देशी २-२ तो तथा पिप्पली-छोटी १ तो सबको खूब खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले। ज्वर वेग से ६ घटा पूर्व १-१ गोली डेढ डेढ घटे के अन्तर से पानी के साथ देने से जाडा देकर होने वाला मलेरिया ज्वर नि सदेह विन-

ष्ट होता है । पूर्ण परीक्षित है ।

—मलेरिया आयुर्वेद चिकित्सा पुस्तक से-साभार

ज्वर पर आगे-बीज, फल एव क्षार के प्रयोग देखें ।

(५) वात-विकारो पर—गठिया (आमवात) पर—पत्र रस यदि १ सेर हो, तो उसमे तिल तैल २० तो मिश्रण कर, मन्द आच पर तैल सिद्ध कर, इसकी मालिश रात्रि के समय सधियो पर कर गरम कपडा ओढाकर रोगी को सुलादे । कुछ दिनो के प्रयोग से सधियो की जकडन एव वात विकार दूर हो जाता है ।

(इस तेल को सिर पर लगाने से जुए, लीख आदि नष्ट हो जाते है ।)

अथवा-इसके पत्तो पर एरण्ड तैल चुपड कर जोडो की सूजन पर बाध कर, ऊपर से नमक की गरम पोटलियो का सेंक करने से भी विशेष लाभ होता है ।

पत्र स्वरस के साथ पुनर्नवामूल और थोडी अफीम पीस कर गरम कर लेप करने से वात-वेदना तथा हाथ पैर का शोथ नष्ट हो जाता है ।

धनुर्वात—जो विशेषत दूषित जखम के कारण हुआ हो, रोगी के जबडे बैठ जाते (Lock-Jaw) हो, तथा बार-बार आक्षेप होते हो, तथा अन्य कोई विशेष चिकित्सा अनुपलब्ध हो, ऐसी अवस्था मे प्रथम जखम या घाव को गरम-सुहाते हुए-जल से या जन्तुनाशक औषधियो से अच्छी तरह धोकर, उस पर इसके पत्तो की पुलटिस बनाकर बाध दें या केवल पत्तो को ही गरम कर बाध दें । यह क्रिया दिन मे ३-४ बार करे । तथा आभ्यन्तर प्रयोगार्थ धतूरे का अर्क या टिंचर १० से ३० बून्द तक जल के साथ दिन मे ३-४ बार पिलावें । यह मात्रा, इसके परिणामानुसार बदलते जावे । जब रोगी के नेत्रो की कनीनिकाए विस्तृत हो जाय, तथा चित्त-भ्रश, चक्कर, भ्रम आदि लक्षण होने लगें तब दवा देना बन्द कर दे । यदि इस उपचार से धनुर्वातजन्य आक्षेपो मे कुछ कमी हो, अर्थात् वे (फिट्स) बहुत देर बाद आने लगे, तथा विशेष पीडादायक न हो, और न वे बहुत देर तक टिकें, तब दवा की मात्रा कुछ कम करे, तथा कुछ देरी के अन्तर से देते रहे । यह तब तक जारी रक्खे जब तक कि आक्षेपो का दौरा एकदम बन्द न हो जाय । किन्तु दवा शुरू करने के बाद, उसका निश्चित कार्य शरीर पर (उक्तानुसार) होने पर भी आक्षेपो मे कोई लाभ न हो, तो यह उपचार शीघ्र बन्द कर दें । अन्यथा हानि होने की सम्भावना है ।

उक्त उपचार के साथ ही साथ धतूरे का [illegible] या लिनिमेन्ट (यह बेलाडोना के लिनिमेन्ट जैसा ही बनाया जाता है) की मालिश या मर्दन रोगी की रीढ की हड्डियो पर दिन मे कई बार करते रहना आवश्यक है । ध्यान रहे यह उपचार सुदक्ष चिकित्सक के द्वारा ही कराना ठीक होता है—नाडकर्णी ।

(६) पत्र रस और तिल तैल १०-१० तो मिश्रण कर कलईदार पात्र मे मन्दाग्नि पर पकावे । लगभग आधा रस जल जाने पर, ७ नग आक के पत्ते लेकर, मीठे तैल से चुपड, तथा उन पर थोडा नमक छिडक कर उक्त पकाते हुए तैल मे डाल कर जला डालें । फिर उतार, मोटे वस्त्र से छान कर सुरक्षित रखें । इसे आवश्यकता के समय सुखोष्ण कर कुछ बूदें कान मे डालने से कर्ण पीडा, कर्णस्राव आदि कर्ण विकार दूर हो जाते हैं ।

कर्ण बाधिर्य या कम सुनाई देने पर उक्त तैल की २-३ बून्दे, सुखोष्ण, कानो मे प्रतिदिन डालते रहने से कुछ दिनो मे यह विकार दूर हो जाता है, अच्छा सुनाई देता है । इस तैल के प्रयोग से कर्ण कृमि भी नष्ट हो जाते है ।

—भा०ज०बूटी

कर्णशूल पर—रस की १-२ बूदे डालने से भी बहुत लाभ होता है । कान के पीछे की सूजन मे पत्तो का गाढा लेप करते रहने से लाभ होता है ।

कर्णस्राव पर—इसके ताजे फलो को हाथो से मसल कर कान मे कुछ रस (१-२ बूद) डालकर ऊपर से थोडा सिंदूर छोडते है । अथवा—इसके ४०० ग्राम पत्र रस मे समभाग सरसो तैल, तथा ४० ग्राम हल्दी चूर्ण व ४० ग्राम गधक चूर्ण मिला, मन्द आच पर पकावे । तैल मात्र शेष रहने पर छान कर शीशी मे रखे । कर्णस्राव, कर्णपीड़ा व बाधिर्य पर विशेष लाभकारी है । कानो को साफ कर इसकी ४-५ बूदे डालते

रहे। खाड, गुड, मेम की फली आदि न खावे। शीत जल में स्नान न करें। -सुश्रुत (मासिक पत्र)

कान के नाडी व्रण (नासूर) पर—पत्र-रस मे हल्दी और गगर ४-४ तो पीसकर, इसके पत्र-रस १२८ तो. मे मिला दे और उसमे ३२ तो सरसो तैल मिला कर तैल सिद्ध कर ले। इसकी २-२ बूदें कानो मे दिन मे २ बार डालते रहने से लाभ होता है।—भा भै र

यह तैल वेदना-युक्त कर्णपाक म भी लाभदायक है।

(७) व्रण, विद्रधी गलग्रथि, नारु आदि पर—यदि किसी भी व्रण, फोडे या विद्रधि के प्रारम्भ काल मे इसके पत्तो को गरम कर बाध दिया जाय तो शीघ्र ही वह बैठ जाता है। यदि फोडा उठ आया हो, तो इसी प्रकार पत्तो को बाधने से वह शीघ्र ही पक कर फूट जाता है। तथा इन्ही को बाधने से व्रण शीघ्र ही रोपण होता है।

अथवा—ताजे पत्तो को पीस कर लगभग २० तो कल्क को १ सेर तक की चरबी मे मिला मन्द आग पर गरम करे। पतला हो जाने पर छान लें। इस मलहम के लगाने से कारबकल एव अन्य जखमो पर बडा लाभ होता है।

कखौरी (कछराली—काख या बगल मे उठने वाली ग थि) पर इसके पत्तो पर तिल तैल चुपड कर गरम कर बाध दे। पत्ते ठडे हो जाने पर और बदलते रहे। इससे पीडा उसी समय बन्द हो जाती है। यदि गाठ पिघलने योग्य हो तो वह पिघल कर दब जाती है, या फूट जाती है।

उक्त प्रयोग एडी के दर्द को (जो प्राय वृद्धो को हुआ करता है, जिससे वे चलते समय कुछ लगडाते से चलते है) भी दूर कर देता है। उन्हे रात्रि के समय उक्त प्रकार से पत्तो पर तैल चुपड कर गरम कर बाधते रहना चाहिये।

व्रण या घावो के चिन्हो को मिटाने के लिये—व्रण ठीक हो जाने पर जो भद्दे चिन्ह हो जाते हैं उन पर इसके पत्र-रस को वैसलीन या किसी उत्तम क्रीम मे मिलाकर चिन्ह के स्थान पर मालिश करते रहने से वे कुछ दिन मे मिट जाते है। —ह मी मो श्र साहब।

गलग्रथि या गलग ड पर—प्रथम जमीन को लीप कर उसपर अरण्य कडे जलाते है। कण्डे जल जाने पर वहा से सब राख हटाकर, उस तप्त भूमि पर श्वेत धतूर-पत्तो का रस डालते है। उस रस मे जल के बुलबुले से उठते हैं। तब उस रस का गलगण्ड या ग्रंथि पर गरमा-गरम लेप करते है।

नारु (नहरुवा) पर—कृष्ण धतूर पत्र-रस ६ मा तथा घृत २ तो एकत्र कर पिलावे। दिन भर कुछ खाने को न दे। सायकाल दही भात खिलावें। यदि नारु बडा होकर फोडे के रूप मे प्रकट हो, तो उसे फोडकर धत्तूर-फल को बारीक पीस, टिकिया सी बना नित्य ३ दिनो तक बाधे और नित्य पत्ता धतूरे का ढाई पान के पत्तो पर रख खिलावे। अ तत्र। इसके हरे पत्तो को गोघृत से चुपड कर, गरम कर नारु पर रख पट्टी बाध दे। इस प्रकार कुछ दिन बार-बार बाधने से कीडा निकल जाता है।

काटा को गलाकर वहाने के लिये—कठोर से कठोर काटा चाहे किसी अग मे लगा हो। धतूर-पत्र को गुड मे लपेट कर खिला देने से, काटा गलकर पानी की भाति बह जाता है। —भा ज बूटी।

बिच्छू के दश स्थान पर—पत्तो की लुगदी लगाने तथा पत्र-रस को मलने से शाति मिलती है।

(८) छाजन (उकौत-एक्झीमा) तथा श्लीपद पर—धतूरे के ताजे पत्तो का रस २० तो, धतूर-पत्र की लुगदी या कल्क १¼ तो और गौघृत ५ तो इन तीनो को मद आच पर पका घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रख ल। उकवत पर इसे, रुई के फाहे से या चिडिया के पख से दिन मे २-३ बार लगावे।

यदि उकौत मे पीली या श्वेत फुसियाँ हो गई हो, तथा उनसे चेप निकलता हो, तो प्रथम चिकनी मिट्टी से उकौत को धोकर, कपडे से पोछ लेने के बाद उक्त घृत को लगावें। शीघ्र लाभ होता है।—सिद्ध मृत्यु जय योग

श्लीपद चाहे जीर्ण एव दुस्साध्य हो गया हो तो भी उस पर—धत्तूर-पत्र, एरण्ड-मूल, सभालु के पत्ते, पुनर्नवा, सहजने की छाल और सरसो समभाग पीस कर लेप करते रहने से वह नष्ट हो जाता है। व सेन, शा स।

(९) नेत्र-विकारो पर—इसके पत्तो के स्वरस मे थोडी अफीम और रसौत घोटकर नेत्रो मे डालने से भयकर नेत्राभिष्यन्द मे आराम होता है। आराम आने पर रात्रि के समय अधिक वेदना होती हो, तो इसके पत्तो की पुल्टिस या घी लगा हुआ इसका पत्र बाधने से वेदना शात हो जाती है।

काले धत्तूर-पत्र को रगडने से जो पीला सा जल निकलता है, उसे सूर्योदय से पूर्व सलाई द्वारा आखो मे आजना दुखती आख को लाभकारी है।

पत्र-रस को थोडा गरम कर दुखती हुई आख के विपरीत कान मे (जिस ओर की आख मे पीडा हो उससे दूसरी ओर के कान मे) डालने से अवश्य आराम होगा।

—ह मो मो म साहब।

पलके झडना, परवाल आदि पर—पत्र-रस मे रुई को भिगोकर ३ बार सुखाते हैं। फिर गोघृत मे बत्ती बना, जलाकर काजल तैयार करते हैं, तथा इसमे कुछ फिटकरी का फूला और अत्यल्प मात्रा मे तुत्थ का फूला मिला कर सलाई से लगाते हैं। इससे नेत्रस्राव मे भी लाभ होता है।

(१०) उदर-कृमि, तथा उदरशूल पर—श्वेत धत्तूर पत्र-रस २ रत्ती, सत-अजवायन ½ रत्ती, शहद १ तो मे मिलाकर (यह १ मात्रा है) दिन मे ३ बार देकर, दूसरे दिन प्रात अरण्डचोली रस से विरेचन देने से सब कृमि निकल जाते हे। परीक्षित हे।

—शेख फैयाजखा विशारद (अ यो माला से)

अथवा—इसके पत्र-रस की २ से ४ बूदे, थोडे मट्ठे मे मिलाकर पिलाने से पेट के कृमि नष्ट हो जाते हे।

—अ. तन।

उदरशूल—पित्ताश्मरीजन्य हो या मूत्र पिण्डो की पीडा से हो, इसे अफीम के साथ अथवा जहा अफीम देना उपयुक्त न हो, वहा खुरासानी अजवायन के साथ इसका प्रयोग करें।

(११) प्रवाहिका, अतिसार तथा विसूचिका पर—१० या २० तो दही मे पत्र-रस या अर्क की ४ बूदें मिलाकर एक, दो या तीन बार पिलाने से शीघ्र दस्त व मरोड बन्द हो जाते है, चाहे वे कितने ही अधिक क्यो न हो। [illegible] शक्ति एव आयु के अनुसार [illegible] देना चाहिये। [illegible]

(१२) योनिशूल पर—[illegible] महीन पीस कर १ [illegible] मे [illegible] योनि मे रखने से सर्व प्रकार [illegible] नष्ट होता है।

—[illegible]

(१३) दन्त विकारो पर—[illegible] ५ तो मे सैंधा नमक ५ तो मिला कर, [illegible] कपरौटी कर, १० सेर उपलो की आग मे फूक दें। स्वांग शीतल हो जाने पर भीतर का [illegible] निकाल कर पीस कर रख ले। इसके मजन से दातो का दर्द, मैला-पन, दुर्गन्ध आदि दूर होकर दात मोती के समान हो जाते है।

—ह० मो० मा० म० साहब।

दन्त कृमि—दातो मे कृमि लगजाने से जो पीडा होती है, उसके निवारणार्थ पत्र रस डाल कर पकाये हुए तैल का फाहा रखा जाता है।

बीज—धत्तूर बीज की क्रिया, पत्र की अपेक्षा विशेष तीव्र एव प्रभावशाली होती है। इसके सशोधन की विशेष आवश्यकता है। अन्यथा विषबाधा हो जाती है। शोधन करने से इसकी उग्रता कम होकर यह मानव-शरीर के लिए अधिक सौम्य एव हितकारक हो जाता है।

बीजो को कम से कम १२ तथा अधिक से अधिक ३ दिन गो मूत्र या मट्ठे मे (गो मूत्र मे १२ घटे भिगो-रखना काफी है) भिगो रक्खें। मट्ठा प्रतिदिन बदलते रहे। चौथे दिन (गोमूत्र मे भिगोया हो तो १२ घटे बाद) पानी में धोकर कपडे पर फैला दे। कुछ शुष्क हो जाने पर, कूट कर सूप से फटक कर भुसी अलग कर दें। बीज शुद्ध हो जाते है। अथवा—आधुनिक सरल विधि तो यह है कि बीजो को कपडे की पोटली मे बाध, एक हाडी मे गोदुग्ध भर, एक प्रहर तक दोलायन्त्र से स्वेदन कर गरम पानी से सुखाकर तथा कूटकर काम मे लावें। निम्न प्रयोगो मे शुद्ध बीजो की ही योजना करनी चाहिए। तथा ध्यान रहे कि गोमूत्र, गोदुग्ध आदि द्रव्यो के गुण-

धर्मो का विचार कर तत्तच्छुद्ध बीजो को विविध प्रयोगार्थ काम मे लना उत्तम होता है। जैसे ज्वरघ्न योगो मे या कफ तथा आमानुबन्धी रोगो के प्रयोगार्थ गोमूत्र-शुद्ध बीजो को और पित्त, रक्त, शुक्र सम्बन्धी विकारो मे गोदुग्ध शुद्ध बीजो का उपयोग यशस्कर एव प्रशस्त होता है।

(१४) मलेरिया ज्वर पर—ज्वर वेग के ३ घण्टा-पूर्व बीज चूर्ण १ रत्ती को मट्ठा या दही मे मिलाकर सेवन कराते हैं। इससे कभी-कभी ज्वर की पाली टल जाती है। या ज्वर जन्य कष्टो—(शरीर मे जलन होना, अङ्गो का दुखना, सिरदर्द आदि) मे कमी हो जाती है। किंतु इससे मलेरिया जड से नही जाता। बीजो को सराव सपुट कर भस्म करले। १ से ४ रत्ती तक की मात्रा मे पानी के साथ देवे। या बीज ६ तो, रेवदचीनी ४ तो, सोठ २ तो, बबूल गोद २ तो घोटकर मूग जैसी गोलिया बना ज्वर से २ घण्टा पूर्व देवे। अन्य उत्तम प्रयोग पीछे पत्र-प्रयोगो मे या आगे फल प्रयोगो मे देखिये।

विषम तथा अन्यान्य ज्वरो पर—कनकवटी आदि विशिष्ट योगो मे देखे। मृत्यु जय रस शास्त्र मे देखे।

(१५) स्तम्भन एव वाजीकरणार्थ—इसके बीज, अकरकरा और लौंग समभाग खूब महीन खरलकर पानी के साथ मूग जैसी गोलिया बना ले। १ या २ गोली दूध के साथ लेने से वीर्य गाढा होकर वाजीकरण शक्ति बढती है। अथवा—

शुद्ध पारद और शुद्ध गधक की कज्जली कर उसमे समभाग धत्तूर बीजो का चूर्ण मिला, धत्तूर बीजो के तैल से मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बना, प्रात १ गोली शक्कर मे रख खाने से वीर्य वृद्धि होती, स्तम्भन शक्ति बढती है तथा सर्व प्रमेह दूर होते हैं। (अ० तन्त्र)—अथवा

धत्तूर बीज (काले धतूरे के हो तो उत्तम) ५ तोले पीसकर १० सेर दूध मे जोश देकर जमा दे। फिर बिलो कर मक्खन निकाल घृत तैयार करले। इस घृत को इन्द्री पर लेप करे तथा १ से २ रत्ती तक की मात्रा मे लगाकर सेवन करने से ध्वजभग दूर होकर कुछ दिनो मे ही यथेष्ट कामशक्ति की जागृति होती है। —अ यो. मा.

विशिष्ट योगो मे कामिनी दर्पघ्नरस तथा फल के प्रयोग देखिये। बीजो का तेल (पाताल यन्त्र से निकाला हुआ) पैर के तलुवो पर मालिश कर स्त्री सभोग करने से बहुत स्तभन होता है। आगे प्रयोग न० १८ देखिये।

(१६) नजला, जुकाम, कास, श्वास पर—बीज (काले धतूरे के) ६ तो०, अजवायन खुरासानी १½ तोले दोनो को ४० तोले पानी मे औटावे। दो भाग पानी जल कर शेष १ भाग रहने पर छानकर रखदे। जब गाद सी पानी की तली मे बैठ जाय तब पानी को निथार कर उसमे बीजरहित २० तो० मुनक्का मिला, मन्द आग पर पकावे। करछी से उलट-पलट करते रहे। जिसमे सब पानी मुनक्को मे ही शुष्क हो जाय तथा मुनक्के न जलने पर पावे। फिर उन्हे निकाल धूप मे सुखा ले। १-१ मुनक्का प्रात साय खाने से नजला जुकाम तो १-२ दिन मे ही तथा पुराना ६-७ दिनो मे समूल नष्ट हो जावेगा। (ह मो मो अ साहब विशिष्ट योगो मे माजून-जीवन दाता देखे)।

कास पर—इनके बीजो के समभाग छोटी पीपल लेकर दोनो का महीन चूर्ण कर उसमे बबूल के गोद का लुआब मिला खरलकर सरसो जैसी गोलिया बनाले। प्रात साय १-१ गोली खावे। खुश्की करे तो मिश्री मलाई खाना उचित है। (स्व प० भगीरथ स्वामी जी)

श्वास पर—बीजो का पाताल यन्त्र द्वारा खीचे हुए तेल की एक सीक पान के पत्ते पर लगाकर रात्रि को सोते समय खिलाते हैं। तथा रोगी को हलुवा खिलाते हैं।

(१७) उन्माद और अपस्मार पर—बीज और कालीमिर्च समभाग महीन चूर्ण कर जल के साथ खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना, मात्रा १ से २ गोली तक प्रात और रात्रि मे २-२ तो० मक्खन के साथ या दही के घोल के साथ सेवन करावे। भोजन मे लाल मिर्च आदि उत्तेजक पदार्थ न देवे। ७ दिन के सेवन से नवीन उन्माद रोग जो मानसिक आघात, शराब, गाजा, सूर्य के ताप मे भ्रमण आदि से या प्रसूतावस्था मे हुआ हो, जिसमे निद्रा न आती हो, शमन हो जाता है।

मस्तिष्क शात हो जाता है।–गा ओ र। मधुमेह मे ये गोलिया सौंफ के अर्क के साथ दी जाती है।

उन्माद की उग्र अवस्था मे शुद्ध पारद, गधक व मैनसिल समभाग तथा इन तीनो के समभाग इसके बीजो का चूर्ण लेकर वच के क्वाथ की और ब्राह्मी के रस की ७-७ भावनाये देकर रख ले। १ से ४ रत्ती तक की मात्रा मे ब्राह्मी अथवा वच के स्वरस और घृत के साथ केवल गोघृत के साथ देने से यह उन्माद गज केशरी रस-उग्र उन्माद, अपस्मार, भूतोन्माद एव उग्र विषम ज्वर को शान्त कर देता है। (भै० र०)

काले धत्तूर बीज के यथोचित मात्रा मे पित्त पापडा के रस मे घोटकर पिलाने से भी यह रोग शात होता है– (भै र आगे प्रयोग न० ३० देखे)

रोगी को शास्त्रोक्त पथ्यापथ्य का पालन कराना आवश्यक है। विशिष्ट योगो मे–उन्मत्त रस देखें।

अपस्मार (मिरगी) मे—इसके बीज के साथ केसर और मिश्री समभाग खूब महीन पीसकर, दौरे के समय रोगी की नाक मे फूकने से वेहोशी शीघ्र दूर होजाती है। दौरा रुक जाता है तथा अर्द्धाङ्गवात मे बीजो के तेल की मालिश की जाती है।

(१८) स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि पर—बीजो को चीनी मिट्टी के प्याले मे रख उस पर पोस्त का पानी इतना डाले कि बीज ठीक तरह डूबे रहे, फिर ढाक कर रख दें। सपूर्ण पानी शुष्क हो जाने पर फिर तर करे। इस प्रकार ७ भावनाये दे, शुष्क कर बीजो के समभाग बिनौले की गिरी, श्वेत जीरा व धनिया मिला पीस ले। फिर त्रिफला-क्वाथ से महीन खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले। सोते समय १ से २ गोली तक आध पाव दूध या जल के साथ निगल लिया करें। शीघ्रपतन, स्वप्नदोप, खासी, नजला के लिए अक्सीर गोलिया है।

० अथवा– बीज ५ तो०, जायफल, केशर १-१ तो० शुद्ध शिलाजीत २ तो० इन्हे एकत्र खरल करलो। फिर ३ सेर गोदुग्ध को कलईदार पात्र मे आग पर उबालो। जब दूध उबलने लगे तब उसमे उक्त कल्क को मिला, चमचा से धीरे-धीरे हिलाते रहे। पककर खोये के समान हो जाने पर उतार कर १ पाव खाड मिलादे तथा चने जैसी गोलिया बना उन पर सोने या चादी के वर्क चढा दें। मात्रा २ से ४ गोली तक दूध के साथ, सोते समय सेवन करने से वीर्य की दुर्बलता आदि उक्त विकार दूर होते है। एव कुछ ही दिनो मे अद्भुत शक्ति और स्तभन पैदा होता है। इसके अतिरिक्त मूत्राधिक्य, कमर का दर्द, खासी, नजला व जुकाम मे भी लाभ होता है। शीतकाल मे २१ दिन से अधिक सेवन न करे।

(हु० मौ० मो० अ० गाहब)

(१६) पाददारी, हाथ-पैरो का फटना तथा विपादिका कुष्ठ पर—हाथ या पैर मे फटकर दरारे पड गई हो, वेदना होती हो तो बीजो के साथ सैंधानमक पीसकर लुगदी बना लुगदी से चौगुना पानी और लुगदी के समभाग सरसो तेल मिला, मन्द आग पर पकावे। पानी के जल जाने पर तैल सहित लुगदी को फटे हुए स्थानो पर लगावे। (अ० मत्र)

विपादिका (यह एक कुष्ठ भेद विचर्चिका है, पैरो मे खाज दाह तथा वेदनायुक्त पिडिकाये होती है। इसे वैपादिक कुष्ठ (Chilblain) कहते है। पर इसके बीजो के कल्क और मानकन्द के क्षार के पानी के[1] साथ सरसो तेल को सिद्ध करे। यह तेल विपादिका का शीघ्र नाश करता है। (भै० र०) इसका नाम उन्मत्त तेल है।

कुष्ठ-हर लेप—इसके बीजो का चूर्ण तथा पारा, गन्धक और अभ्रक भस्म समभाग लेकर चौगुने सरसो-तेल मे घोटकर मलहम बना ले। इसके मर्दन से कुष्ट रोग नष्ट होता है। (अ० तन्त्र)

(२०) आधा शीशी पर—बीजो के साथ समभाग कालीमिर्च, कपूर, अफीम व सोया-बीज एकत्र बकरी के दूध मे खरल कर, सिर के अर्ध भाग पर, बार-बार गाढा लेप करने से भयकर अर्धावभेदक शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

—"स्वास्थ्य।

[1] मानकन्द की राख मे ६ गुना पानी मिला २१ बार कपडे से छाना (टपकाकर) हुआ पानी ८ सेर, सरसों तेल २ सेर और बीजों का कल्क २० तोला लेकर एकत्र पका तेल सिद्ध करले। मानकन्द यह अरई या सूरन के कुल का कन्द है। इसे कही कहीं महाराक्षस करते हैं। यथास्थान मानकन्द का प्रकरण देखिये।

फल के प्रयोग—

२१ नपुसकता पर—काले धतूरे के फलो की बोडी मे बडा छिद्र कर उसके भीतर, एक जायफल को मध्य-भाग मे छेद कर किंचित् अफीम भरकर, डाल दे और फल का छिद्र गीले आटे से बन्द कर, कण्डो की आग मे पकाये। आटा सूखकर जलने लगे, तब बाहर निकाल, आटा दूर करदे। और जायफल सहित फल की बोडी को खरल मे घोट, चने बराबर गोलिया बना ले। नित्य १ गोली खाकर ऊपर से भैस या गाय का पका हुआ दूध पीवें। इस प्रकार २१ दिन के सेवन से नपुंसकता दूर होती एव वीर्य-वृद्धि होती है। —अ० तत्र

२२ ज्वर पर—आवश्यकतानुसार फलो को लेकर, मटकी मे रख, शराव सपुट एव कपरौटी कर १०-१२ सेर उपलो की आग मे जलावे। शीतल होने पर भस्म को पीस कर शीशी मे भर ले। ज्वर-वेग के १ घटा पूर्व, २ से ६ रत्ती तक की मात्रा में, आयु के अनुसार, न्यूनाधिक पान मे रख, पान के अभाव मे पानी के घूट से खिला दे। ज्वर न आवेगा यदि पहले दिन ज्वर हो भी जावे, तो दूसरे दिन देने से लाभ होगा। पित्त-ज्वर, कफ-ज्वर, कम्प-ज्वर, तिजारा, चौथियारा के लिये यह रामबाण है। —हु० मौ० मो० अ० साहब

२३ श्वास पर—पके हुए धत्तूर-फलो को खाली कर (अन्दर के बीजो को दूर कर) उनमे काला नमक भर, ऊपर डोरा लपेट, मिट्टी के पात्र मे भरकर, कपरौटी कर अग्निदग्ध करे। जितने फल हो, उतने सेर उपलो के अनुमान से अग्नि आवश्यक है। स्वाग शीत होने पर, फलो सहित नमक की भस्म को पीसकर रख ले। शक्ति बलानुसार ४ रत्ती से १ माशा तक, पान मे देने से, भोजन को पचाकर, पुरानी खासी और यक्ष्मा मे लाभ होता है। अथवा—

फलो के कुछ बीज निकाल कर उनमे कच्ची हल्दी कूट-पीस कर भर दे। फिर कपड-मिट्टी कर अग्नि मे पुटपाक विधि से तैयार कर, पीस कर रख ले। मात्रा—१ से १½ रत्ती, शहद के साथ देने से श्वास मे विशेष लाभ होता है। दौरा तत्काल रुक जाता है। आगे प्रयोग न० ३२ मे देखे। —अ० यो० माला

अथवा—अच्छे परिपक्व फलो के बीज न निकालते हुए, और न उनमे नमक, हल्दी आदि भरते हुए, वैसे ही लगभग १ पाव (२० तो०) फलो को मटकी मे डाल कर, ढक्कन से मुह बन्द कर कपड-मिट्टी कर गजपुट मे फूक दे। एक ही पुट मे अन्तर्धूम दग्ध काली भस्म हो जावेगी। उसे कूट-पीस कपडछान कर रख ले। १ से २ रत्ती तक *साधारण दशा मे, प्रात-साय १-१ मात्रा*, एव रोग के विशेष आक्रान्त दशा मे ४ ४ रत्ती प्रति घटे पर १-१ मात्रा शहद मे मिलाकर सेवन करावे। २ रत्ती इसकी पूर्ण मात्रा है। बच्चो तथा दुर्बलो की मात्रा, वय व बलानुसार कल्पना कर देनी चाहिये।

—अनुभूत योग भाग २

२४ इन्द्रिय शैथिल्य पर—इसके १५ फलो का चूर्ण गौदुग्ध १० सेर मे मिला, दूध को जमा दे। दूसरे दिन दही को मथकर मक्खन निकाल, घृत बनाले। इस घृत की मात्रा २ रत्ती तक पान के बीडे मे लगाकर सेवन करने से, नपुसकता दूर हो जाती है।

२५ अर्श पर—विशेषत पित्तार्श मे—इसके पके फल के साथ छोटी पीपल, हरड, नेत्रवाला (सुगधवाला) और गुड समभाग चूर्ण कर, ८ रत्ती तक की मात्रा मे, नित्य रात्रि के समय, मिश्री, शहद और घृत ११-११ तो० मे मिलाकर सेवन कराते है।

२६ कर्णशूल पर—इसके ½ सेर फल के छोटे-छोटे टुकडे कर १ सेर तिल-तैल मे मिला कर मन्द आच पर पकाते हैं। तथा जब फल के टुकडो का रग बादामी हो जाता है, तब तैल को छानकर उसमे १ तो० अफीम को घोट कर मिला देते हैं। यह कान की पीडा पर लाभकारी है।

२७ ग्रन्थि-शोथ पर—इसके १ फल के साथ, कुचला-बीज १ नग, तथा काला जीरे का चूर्ण, एलुवा (मुसब्बर) व मोचरस १-१ तो० एकत्र सेहुण्ड के दूध मे खूब खरल कर, बत्ती बनाने योग्य गाढा हो जाने पर ३-३ माशे की बत्तिया बनाले। इस बत्ती को साफ पत्थर पर जल के साथ घिसकर लेप करने से शीघ्र ही भयकर ग्रन्थि-शोथ मिट जाता है। दिन मे २-३ बार इसका

लेप करना चाहिए। इसे 'ग्रन्थि-शोथहर-वर्तिका' कहते है ।

२८ पागल कुत्ते के काटने पर—इसके फल को शहद मे भलीभाति खरल कर, काटे हुए स्थान पर लेप कर देने से, कुत्ते के काटे के लेप से, विष का प्रभाव दूर होकर पागल होने की सम्भावना न रहेगी ।

—हृ० मो० मो० अ० साहब ।

मूल—

२९ उपदंश पर—धतूरे की जड को छायाशुष्क कर, महीन चूर्ण करलो, शीशी सुरक्षित रक्खे । आवश्यकता के समय इसमे से ½ रत्ती (२ चावल) की मात्रा मे, पान मे रख कर खिलाया करे । कुछ मात्राओ के सेवन से रोग समूल नष्ट हो जावेगा ।

३० उन्माद पर—श्वेत धतूरे की उत्तर दिशा को गई हुई जड की छाल (लगभग १२ रत्ती) का चूर्ण आध सेर जल मे घोलकर, इसमे ५ तो० पुराने चावलो को पकावे । फिर उसमे १ सेर गोदुग्ध तथा आध पाव गुड (गुड के स्थान मे मिश्री लेना ठीक होगा) एव २॥ तो० गोघृत मिला, खीर तैयार कर सेवन करने से समस्त दोषज उन्मादो की शाति होती है ।

——चक्रदत्त ।

३१ शूल (शारीरिक पीडा)—इसकी एक बित्ते की जड, अगुली की तरह मोटी लेकर, उसके चारो ओर १। तो० लालमिर्च को डोरे से बाध दे । फिर धुला कपडा चोथाई गज, एक तख्ते पर फैला कर उसके ऊपर ३ मा० सखिये का चूर्ण छिडक दे, और उसी कपडे मे मिर्चा लिपटी हुई उक्त जड को लपेट कर एक पलीते की तरह बनालो । कपडे को होशियारी से इस प्रकार लपेटना चाहिये, जिससे उसके ऊपर छिडका हुआ सखिया-चूर्ण इधर-उधर न हो जाय । उस पलीते को, १० तो० कडुए तैल (सरसो तैल) मे अच्छी तरह चुपड कर चिमटे से पकड आग लगादें । उसमे से जो तैल टपके, उसे एक कटोरी मे इकट्ठा करते जाय । तैल टपकना बन्द हो जाने, एव पलीता तैल के बिना बुझ जाने पर, कटोरी मे इकट्ठा किया हुआ तैल शीशी मे रख ले । ध्यान रहे यह तैल जहरीला है, अत. इसके धुए से आखो को बचाना, तथा तैल बना लेने या व्यवहार कर लेने के बाद हाथो को गोबर या मिट्टी से अच्छी तरह मलकर साफ कर लेना आवश्यक है ।

दर्द वाली जगह पर इस तैल की मालिश कर सेकना चाहिये । ज्यादा कष्ट की दशा मे, दिन-रात मे ३-४ बार इसका मर्दन किया जा सकता है । दर्द मे शीघ्र लाभ होता है । (अनुभूत योग भा० २)

३२ श्वास पर शर्बत—जड की छाल ५ तो० जौकुट कर ४० तो० जल मे पकावे । १० तो० जल शेष रहने पर, छानकर उसमे आधा सेर शक्कर या चीनी मिलाकर शर्बत की चाशनी तैयार करलें । मात्रा—६ मा० तक, एक से तीन बार तक श्वास रोगी को देने से विशेष लाभ होता है । आगे प्रयोग न० ३८ देखे ।

३३ गर्भनिरोधार्थ तथा गर्भ-रक्षार्थ और स्वप्न-दोष पर—इसकी जड पुष्य-नक्षत्र मे (कृष्णपक्ष की १४ तिथि को) उखाडी हुई, स्त्री अपनी कमर मे बाधकर सभोग करे तो गर्भ नही रहता । राड वैश्यादि स्त्रिया प्राय ऐसा ही करती हैं।[1]

यही योग गर्भ-रक्षक भी है । गर्भावस्था मे इसकी जड को कमर मे बाध लेने से गर्भ-पतन नही होता । पूर्ण समय व्यतीत होने के बाद बच्चा पैदा होने पर या गर्भ की अवधि पूर्ण होने पर जड को खोल देना चाहिए ।

स्वप्न दोष पर भी यही योग काम देता है । लगभग ३ या ६ मा० का, काले धतूरे की जड का टुकडा कमर मे बाधे रहने से वीर्यस्राव नही होने पाता ।

(३४) सिध्म कुष्ठ (सेहुआ, सफेद छीप (Pityriasis Versicolor)—काले धतूरे की जड का चूर्ण और शुद्ध आमलासार गधक समभाग एकत्र खरल कर, जम्बीरी नीबू के रस मे घोटकर लेप करने से सिध्म दूर हो जाता है ।

—रसेन्द्रसारसग्रह ।

(३५) नेत्रान्ध्य की दशा मे—धूर्त लोग पैसा कमाने की दृष्टि से, अन्धे की आखो मे, इसकी जड को पानी मे घिस कर सलाई से लगा देते है । तत्काल आख

[1] "धत्तूर-मूलिका पुष्ये गृहीता कटिसस्थिता । गर्भनिवारयत्येव रण्डा-वेश्यादि योषिताम् ।" —यो० त०

की पुतली फैलकर क्षण भर के लिये अन्धे को धुंधला सा दीखने लगता है। किन्तु जब दवा का प्रभाव जाता रहता है, तो अन्धे की दशा पूर्ववत् हो जाती है। ऐसे धूर्तों से सावधान रहना चाहिये। नेत्र जैसे कोमल अंग मे इसका इस प्रकार का प्रयोग उचित नही है।

ह मौ मो. अ साहब।

(३६) शोथ पर—जड के साथ तना व पत्तो को जल मे पीस किंचित उष्ण कर शोथ से पीडित स्थान पर लेप करने से शोथ नष्ट होती है। यदि फोडा भी उठ रहा हो, तो प्रारंभिक अवस्था मे दब जाता है। परीक्षित है। यह योग पशुओ के शोथ पर भी लाभकारी है। श्री डॉ सत्यनारायण खरे आयुर्वेदाचार्य ककवारा (झासी)

फूल--

(३७) वीर्यस्तम्भनार्थ—धत्तूर-पुष्पो के भीतर का जीरा लेकर, छाया मे सुखा लें और सम्भोग करने के १ घण्टा पूर्व (२ चावल की मात्रा मे) हलुवा मे रख कर (या पान मे रखकर) खिलावे। अत्यधिक स्तंभन होता है। ह मौ मो. अ. साहब।

(३७) गर्भधारणार्थ—जिन स्त्रियो को गर्भ न रहता हो, उनकी मासिक धर्म की विकृति को प्रथम उचित उपचार से ठीक कर, छायाशुष्क धत्तूर पुष्पो का चूर्ण १ रत्ती को घृत और शहद ६-६ मा मे मिला, ऋतुस्नान के पश्चात् ७ दिन तक देवे। —अ यो माला।

श्वास आदि पर—विशिष्ट योगो मे धत्तूर-पुष्पासव देखे।

पचाङ्ग—

(३९) कास, श्वास और हिक्का पर—धतूरे के पूरे पौधे के पंचाग को पीसकर लुगदी बना उसमे देशी अजवायन और काला नमक २-२ तो मिला हाडी के भीतर रख, कपरौटी कर १० सेर उपलो की आच मे फूक दे। बिल्कुल शीतल हो जाने पर अन्दर की भस्म निकाल ले। १ रत्ती की मात्रा मे पान मे रख कर खिलाया करे। कफजन्य कास के लिये अत्यन्त अचूक एव प्रभावकारी औषधि है। पहली मात्रा मे ही रोगी को लाभ होता है। —ह मौ मो अ. साहब।

काले धतूरे के छाया शुष्क पंचाग का चूर्ण चिलम मे रख या उसकी बीडी बना पिलाने से भी कास, श्वास मे विशेष लाभ होता है। इससे कफ छूट कर छाती हलकी होती, बहुत कफ निकलता है। किन्तु थोडी देर मे चक्कर आने लगते, जी मिचलाता तथा नशा आता है, कभी २ वमन भी होती है। जिसे ऐसे विकार हो तथा जिस व्यक्ति के मुख एव नेत्रो के आसपास सूजन हो उसे यह प्रयोग कदापि नही कराना चाहिये।

हिक्का या हिचकी मे भी चूर्ण की बीडी या सिगरेट बनाकर धूम्रपान कराने से शीघ्र ही हिचकी बन्द हो जाता है। चिलम या हुक्का मे भी इसे रख कर पिलाया जा सकता है, किंतु मात्रा बहुत कम होनी चाहिये, अन्यथा हानि की सभावना है।

श्वास मे इसका प्रयोग इस प्रकार विशेष लाभकारी है। पंचाङ्ग के महीन चूर्ण को कलमी सोरा के पानी से भावित कर सुखाकर तथा उसमे थोडा अडूसा-पत्र चूर्ण मिलाकर रख ले। ६ रत्ती चूर्ण की बीडिया बना धूम्रपान करने से दमा का वेग तत्काल बैठ जाता है तथा कफ बाहर निकलता है। —स्वानुभूत।

दमे का सिगरेट इस प्रकार बनाते है—काले धतूरे का पचाङ्ग ५ तो के साथ भाग ५ तो. मिला कर, कूट कर तार की चलनी से छान ले। फिर इसे तामचीनी, काठ या पत्थर के किसी पात्र मे रख, कलमी सोरे के जल के छींटे मार कर अच्छा मुलायम करलें। सिगरेट बनाने के कागज मे थोडा चूर्ण रख लेई या अरारोट के जल से उसे साट दे। इसके व्यवहार से दम का दौरा रुक जाता है और रोगी को नीद आ जाती है। ध्यान रहे, जिस समय दमे का दौरा हो एव वह जोर पकड रहा हो, उस समय एक सिगरेट पीकर ऊपर से पाव आध पाव गाय का गुनगुना दूध पीने से इस धूम्रपान की खुश्की या गरमी के कारण रोगी बेचैन नही होने पाता।

—अनुभूत योग भा २।

उक्त धूम्रपान की गरमी दूर करने के लिये रोगी को प्रतिदिन मक्खन या घृत तथा मिश्री, १-१ तो मे १ मा. काली मिर्च का चूर्ण मिला कर सेवन करना हितकर है।

(४०) वात पीडा पर---इसके पचाङ्ग के रस मे समभाग सरसो तैल मिलाकर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर शीशी मे भर रखें। इसकी मालिश कर ऊपर रेंडी-पत्र वाध देने से पीडा दूर हो जाती है। इस तैल से सूखी खाज भी मिट जाती हे। –अथवा

उक्त रस मे—तिल तैल सिद्ध कर मालिश करे और धतूर पत्र वाध देने से भी लाभ होता है।

(४१) मलेरिया ज्वर पर—पचाग का क्षार, क्षार विधि से निकाल कर शीशी मे सुरक्षित रखे (विशिष्ट योगो मे धत्तूर क्षार देखे) आवश्यकता के समय रोगी को केवल १ रत्ती से २ रत्ती तक खाड मे रख कर खिलावें। कुनैन की वेजोड की औषधि है।

—ह मौ. मो अ साहव।

(४२) पामा-खुजली पर—विशेषत हाथो की उंगलियो पर पूयमय पीले फोडे हो, जिसमे बहुत खुजली चलती हे उस पर इसके पचाग को जलाने पर, धुआ निकल जाने पर किसी पात्र से ढक दें। काली राख हो जाती है, उसे घृत मे मिलाकर लगाने से लाभ होता है। इसकी काली राख ही लेनी चाहिये श्वेत राख नही।

—गा. औ र.

(४३) अफीम का प्रतिनिधि—इसके पचाङ्ग का जौकूट चूर्ण १ सेर लेकर, १० सेर पानी मे भिगो दे, तथा आक के १ सेर फूल किसी अलग पात्र मे १० सेर पानी मे भिगोकर ४८ घटे वाद दोनो जलो को एक कढाई मे पकावें। केवल २ सेर पानी शेष रहने पर, उतार कर, ठडा होने पर मसलकर छान लें। और इस पानी को पुन पकावें। अफीमची को अफीम के चतुराश के वरावर खिलावें। पूरा नशा देगी। फिर धीरे २ कम करते जावें और छोड दें। अफीमची की अफीम छूट जावेगी। दूध घी खूव खिलावे जिससे कोई हानि न पहुचे। यदि इस योग मे आक के फूल न मिलावे और उक्त विधि से तैयार कर लें, तो वह धतूरे का घनरस होगा, जो कि वहुत ही काम की वस्तु हे। वैद्य इससे सहस्रो लाभ उठा सकते है। ह मौ मो अ. साहव

नोट—मात्रा—पत्र-चूर्ण $\frac{1}{3}$ से $1\frac{1}{3}$ रत्ती। धूम्रपानार्थ पत्र-चूर्ण ५ से १५ रत्ती। वीजचूर्ण $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती। सत्त्व $\frac{1}{4}$ ग्रेन। बीजो का टिंक्चर ५ से १५ बूंद। पत्र-स्वरस ५ वूद से ३ मा. तक, किन्तु पागल कुत्ते या सियार के काटने पर अधिक मात्रा $\frac{1}{2}$ तो से १ तो. तक दी जा सकती है।

जिस रोगी के वृक्क (मूत्रपिण्ड) सदोष होने से नेत्र के चारो ओर शोथ हो, या जिसे हृदय की कोई व्याधि हो, उसे इसका धूम्रपान आदि किसी प्रकार का भी सेवन कराना हितकारी नही है। यदि उसे धत्तूर प्रधान कोई औषधि देनी हो, तो अति कम मात्रा मे तथा सम्हाल पूर्वक देवें। ध्यान रहे क्षत या व्रणो पर इसकी पुल्टिस वाधने से या इसके रस के मसलने से, उसका असर रक्त मे हो जाता है, जो अधिक होने पर नशा ला देता है।

गा औ र।

अधिक मात्रा मे यह पलाप और उन्माद पैदा करता है। इसके निवारणार्थ-दूध, मक्खन, घृत, कालीमिर्च और सौफ का सेवन कराते है।

धतूरे से जो डेट्यूरिन नामक उपक्षार प्राप्त किया जाता है, उसकी मात्रा—$\frac{1}{60}$ ग्रेन से $\frac{1}{20}$ ग्रेन तक है। सब प्रकार के धतूरो मे प्राय उक्त प्रमुख विषघटक एक समान होता है। किन्तु वीजो मे अधिक होता है। पत्र, फूल, फल व मूल इनमे प्रात काल विष की अधिकता होती है। अत इन्हे प्रात लाकर उपयोग मे लाना ठीक होता है। तथा ये अङ्ग ताजी गीली अवस्था मे ही श्रेष्ठ होते हैं। किंतु गीले, ताजे वीजों की अपेक्षा शुष्क वीज अधिक विषाक्त होते हैं।

प्रतिनिधि—धतूरे का प्रतिनिधि-खुरासानी अजवायन, वेलाडोना या अफीम है।

घातक मात्रा—वीज ५ रत्ती, सत $2\frac{1}{4}$ से ५ रत्ती तक तथा पत्र-रस २ तो घातक मात्रा है। वीजो का या पत्तियो और डालियो का क्वाथ भी इसी परिमाण मे घातक हो सकता है। इससे कम मात्रा होने पर केवल वेहोशी होगी। प्राय प्रतिशत २ से ४ तक मृत्यु होती है। शेष उपचार करने पर अच्छे हो जाते हे।

वगाल और पजाव की ओर के धतूरे मे विष अधिक होता है। वहा प्रतिशत २० मनुष्य इसके नशे से मर जाते है।

धतूरे के लगभग १०० बीजो का वजन १० रत्ती या २० ग्रेन होता है।

विषाक्त प्रभाव तथा उपचार—अधिक मात्रा मे या अशुद्ध बीजो का प्रभाव वेलाडोना जैसा ही उन्मादकारी होता है। विशेषता यही है कि इसका प्रभाव श्वास-नलिका पर अधिक होता है। श्वासनलिकाये शिथिल हो जाती है। इसका विष किसी भी प्रकार से उदर मे पहुचने पर प्रायः १० मिनट से ३० मिनट के भीतर ही बेहोशी होने लगती है, गला सूखता, प्यास खूब लगती, गले मे सूजन, सिर मे चक्कर आना, मुखमण्डल उष्ण एव लाल हो जाना, स्वर मे विकृति, नेत्रो की पुतलिया फैल जाना, नाडी तीव्र चलती, किन्तु कुछ समय वाद दुर्बल या मन्द हो जाती है। शरीर की त्वचा सूख जाती, तापक्रम बढते जाना १०२ से १०७ डिग्री तक बढ जाता है। प्रलाप करता, कभी हसता, कभी रोता, कल्पित वस्तुओ को पकडने के लिये दौडता, हाथो को इधर उधर वार-वार चलाता (यह इसके विष का मुख्य लक्षण है) है। पूर्ण पागल जैसा वर्त्ताव करने लगता है। फिर गले का सूखना यहा तक बढ जाता है कि वह कोई वस्तु निगल नही सकता। कुछ समय वाद निश्चेष्ट हो जाता, तापक्रम साधारण से भी कम हो जाता, त्वचा शीतल कुछ स्वेदयुक्त हो जाती, नाडी अतिमन्द हो जाती है। किसी २ के सारे शरीर मे ऐठन एव आक्षेप होने लगता है। ऐसी अवस्था होने पर भी उचित उपचार से कोई अच्छे हो जाते है। मृत्यु प्राय हृदय श्वास-क्रिया के अवरोध से होती है। दीपक के प्रकाश मे इसका विष और अधिक जोर पकडता है।

उपचार—इसके विष से सहसा मृत्यु नही होती, उचित उपचार से प्राण रक्षा हो सकती है। विष से आक्रान्त व्यक्ति को प्रारभ मे ही तुरन्त वमन या उदर प्रक्षालन द्वारा आमाशय साफ करें। वमनार्थ रीठा फल की छाल का घोल, या सेधानमक का गर्म पानी का घोल, राई चूर्ण का घोल, या नीम-पत्र का क्वाथ, या जिंक सल्फास का घोल या इपीकेकुआना का गरम पानी मे घोल या एपोमार्फीन $\frac{1}{20}$ रत्ती को वाष्पोदक मे घोलकर इ जेक्शन लगावे। और पोटाशियम परमेगनेट के घोल से उदर पम्प द्वारा प्रक्षालन करे।

यदि देरी हो जाने से विष का प्रभाव पाकस्थली तक पहुँच गया हो, तो उक्त वमन एव उदर प्रक्षालन की क्रिया के कुछ देर बाद ही विरेचन करावे। खुश्की अत्यधिक बढ जाने के कारण साधारण विरेचक औषधिया इसमे काम नही करती। या विरेचन की क्रिया ठीक प्रकार से नही हो पाती। अत शुद्ध एरण्ड तैल ५ तो से २० तो तक पिलाया जा सकता है, इससे विरेचन के साथ ही साथ खुश्की भी दूर होगी।

फिर इसके विष प्रभाव के नाशार्थ तुरन्त ही—

(अ) बिनौनी की मीगी २ से ४ तो तक १० या २० तो जल मे घोट छानकर उसमे सुहागा की खील २ मा. मिलाकर पिलावे। यह इस विष का सर्वोत्कृष्ट अगद है।

धतूरा और कपास के पौधो मे गुण की दृष्टि से प्राकृतिक वैपरीत्य देखा जाता है। धतूरा के प्रत्येक अङ्ग के विष प्रतिकार की सामर्थ्य कपास के प्रत्येक अङ्ग मे है, जैसे धत्तूर-बीज के विष-प्रतिकारार्थ कपास बीज की मीगी लगभग ४ तो पानी मे घोट छान कर पिलाने से, धत्तूर पत्र विष के नाशार्थ कपास पत्र पीस कर पिलाने से, धत्तूर-मूल के विष पर कपास की जड, फूलो का विष दूर करने को कपास के फूल, फल का विष हो तो कपास के बौंड (कच्चे फल) पीस कर पिलाने से लाभ होता है। यदि निश्चय न हो, कि धतूरे के किस अंग का विष-प्रयोग किया गया है, तो कपास के पौधे का पचाग पीस कर पिलावे।—अथवा—

(आ) शंखाहूली (शख पुष्पी) की जड को घोट छान कर मिश्री मिला कर पिलावे। या गौदुग्ध १ सेर तक लेकर उसमे ४ तो गौघृत और ८ तो मिश्री मिलाकर पिलावे। या पेठे के २० तो रस मे कुछ गुड मिलाकर पिलावें।

(इ) पाश्चात्य वैद्यक के अनुसार-फाइसोस्टिग्मीन या पाइलोकार्पीन ($\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ ग्रेन) का इ जेक्शन प्रयोग बहुत सावधानीपूर्वक किया जा सकता है। यदि पीडा अधिक हो तो मार्फिया का इ जेक्शन लगाते है। उत्तेजनार्थ-कार्डियागोल या मकरध्वज देते है। शरीर की

उष्णता के रक्षार्थ उष्णोदक से भरी बोतलो का सेक करे। श्वासावरोध की अवस्था मे कृत्रिम श्वास क्रिया करावे।

विशिष्ट योग—

(१) धत्तूरार्क—बीजो का अर्क निकालने के लिए—राजधत्तूर (काला या श्वेत धत्तूर) बीजो का चूर्ण ५-औंस, ऊंची शराब या स्पिरिट ४० औंस इन दोनो को मिला, काच की बोतल मे काग लगाकर ८ दिनो तक रख छोडें। उसे बीच २ मे हिला दिया करें। फिर छान कर बीजो को दबा कर सब अर्क निकाल ले। (पर्कोलेशन यत्र द्वारा अर्क टपकाले)। तथा ४० औंस भरे तब तक उसमे शराब डाल कर ४० औंस तक पूरा कर दे। बोतल कुछ खाली रहे। मात्रा ५ बूद से क्रमश १० से १५ बूद तक दे सकते है। इस अर्क की १० बूदे, आधी रत्ती अफीम के समान कार्यकारी होती है। यह अवसादक और मादक है। अफीम के सत्वार्क या मार्फिया के स्थान मे इसका उपयोग हो सकता है।

धत्तूर-पत्रो का स्थायी सत्वार्क निर्माणार्थ—छाया-शुष्क ताजे पत्र २० भाग, १०० गुना देशी शराब मे ८ दिन रख छोडे। बीच बीच मे बोतल को खूब हिला दिया करे। पश्चात् छानकर या पर्कोलेशन यत्र द्वारा अर्क निकाल कर उसमे १०० गुना पूर्ण होने तक और भी शराब मिला, बोतल मे भर रखे। मात्रा-५ बूद से १५ बूद तक आवश्यकतानुसार देवें।

(२) सत्व (घन) धतूरा—४० भाग धतूरे के बीजो के चूर्ण को ६० भाग अलकोहल मे मिलाकर (या १२½ तो बीज चूर्ण को शराब (७०%) ५० तो मे मिला-कर) पर्कोलेशन यत्र द्वारा दबाकर सत्व निकाल लें, तथा छान कर सुखाकर गाढा कर लें। इसकी मात्रा १ चावल से ४ चावल तक है।

(३) धत्तूर—टिंक्चर और आसव—इसके छाया शुष्क २० पत्तो के चूर्ण को १० तो० अल्कोहल मे भिगोकर पर्कोलेशन विधि मे टिंचर तैयार किया जाता है। इसकी मात्रा-५ से १५ बूद तक है।

बीजासव—इसके बीज ८ तो० मोटा चूर्ण कर उसमे ऊंची शराब (७० से ९०%) ५० तो. मिला, बोतल मे मजबूत कार्क लगा कर ८ दिन तक रहने देवें। प्रतिदिन कम से कम एक बार हिला दिया करे। पश्चात् फलालेन द्वारा छानकर सब अर्क निचोड़ लें। यदि ५० तो. से कम उतरे तो और भी उक्त शराब मिला ले। यह उक्त न० १ का धत्तूरार्क ही है। मात्रा १५ बूंद तक। यह शीघ्र वेदनाशामक, ज्वरघ्न और मादक है। स्नायु का शिथिल करना तथा श्वासमार्ग के विकारो (कास, श्वासादि) पर अत्यत लाभदायक है। इसे अंग्रेजी मे टिंक्चर स्ट्रामोनियम कहते है। इसे यदि अहिफेनासव और विजयासव के साथ दिया जाय तो श्वास का दौरा तत्काल कम हो जाता है। अनेक प्रकार के शूल, अनिद्रा, ग्रहणी, अतिसार, उन्माद, अपस्मार एव नपुसकत्व आदि मे भी इसकी योजना विशेष लाभदायक होती है।

इसके आसव के अन्य प्रयोग (कनकासव आदि) हमारे वृहत् आसवारिष्ट सग्रह मे देखिये। कनकासव का सरल प्रयोग इस प्रकार है—इसके पचाङ्ग को तथा अडूसे की जड के छिलके को कूट कर १६-१६ तो, मुलैठी, पिप्पली, छोटी कटेरी, नागकेशर, सोठ, भारगी, तालीस पत्र ८-८ तो, धाय के फूल ६४ तो, द्राक्षा १ सेर, जल १ मन ११ सेर, खाड ५ सेर, मधु २½ सेर, इन्हे मिश्रित कर, सधान पात्र मे बन्द कर १ मास तक रहने दे। आसव तैयार होने पर छान कर, मात्रा ½ से २ तो तक मे समभाग जल मिला, भोजन के बाद दोनो समय, सेवन से श्वास, कास, यक्ष्मा, क्षतक्षय, जीर्णज्वर, रक्त-पित्त, उर क्षत आदि रोग नष्ट होते हैं। —(भै०र०)

फुफ्फुस विकृतिजन्य श्वसनकज्वर (ब्राकोनिमोनिया) ग्रस्त-बालक को, चाहे ज्वर १०१ से १०३ तक भी हो तो भी इस आसव की मात्रा-१ चाय के चम्मच भर मे १० बूद मधु और थोड़ा जल मिलाकर देने से लाभ होता है। —डा० नाडकर्णी।

(४) धत्तूर पुष्पासव (इन्जेकशनार्थ)—काले धत्तूर के पुष्प १ तो को काच या चीनी के शुद्ध खरल मे खूब घोट कर १ औस मद्यार्क या रेक्टिफाईड स्प्रिट

मे मिला, शीशी मे वन्द कर ७ दिन वन्द रक्खा रहने दे। पश्चात् फिल्टर-पेपर द्वारा छान कर शीशी मे पुन ५ औंस उत्तम सुरा या मद्यार्क मिला कर शीशी मे अच्छी तरह सुरक्षित रक्खे। मात्रा २ से ५ बूंद। इसका बाहुमूल मे हायपोडर्मिक इ जेक्शन दिया जाता है। इसका विशेष प्रभाव श्वासनलिका, फुफ्फुस, वातसस्थान-नाडी मडल पर होता है। सुषुम्ना तथा मस्तिष्क पर भी यह प्रभाव करता है। इसके प्रयोग से श्वास, कास, क्षयकास, कफवृद्धि, कठ मे घुर-घुर या साय-साय शब्द होना पूर्णरूप से दूर होता है। शीतकाल मे इसका इ जेक्शन ४ थे दिन तथा उष्णकाल मे प्रति सप्ताह दिया जाता है। विषाक्त होने के कारण इससे दुर्गुण होने पर ठडे जल से स्नान कराना, दूध पिलाना, तथा विनौला (Cotton seeds) का इ जेक्शन देने से सब अहितकर प्रभाव दूर हो जाता है। पथ्य मे केवल दूध, साबूदाना, सेव, अनार आदि देवे।

५ धत्तूर-क्षार—इसके पचाङ्ग को छायाशुष्क कर, जला कर राख हो जाने पर उसे एक मिट्टी के कूंडे मे डाल, आठ गुना पानी मिला, दिन मे ३-४ बार धतूरे की लकडी से हिला दिया करे। २० दिन के बाद, ऊपर का साफ निथरा हुआ पानी लेकर पकावे। सब पानी जल जाने पर इसका जो श्वेत क्षार प्राप्त होगा, उसे शीशी मे सुरक्षित रक्खे।

मात्रा—१ रत्ती, मक्खन या मलाई मे रखकर देते रहने से आधाशीशी, ज्वर, शीघ्रपतन, इन्द्रिय-शैथिल्य, गठिया, आमाशय की दुर्बलता तथा खासी के लिये विशेप लाभदायक है। यह मलेरिया-ज्वर नाशार्थ कुनैन का प्रतिनिधि है, केवल १ से २ रत्ती तक खाड मे रखकर खिलावे। —ह० मौ० मो० अ० साहब।

६ धत्तूर-तैल—इसका पचाग का जौकुट चूर्ण २ सेर को १६ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश क्वाथ शेप रहने पर, छानकर उसमे १ सेर सरसो-तैल और ६ तो० ८ मा० धतूरे का कल्क मिलाकर पुन पकावे। तैल सिद्ध हो जाने पर छानकर रख ले। यह तैल मर्दन एव नस्य द्वारा आवश्यकतानुसार प्रयुक्त करने पर सन्निपात ज्वर, कफज-शोथ, शिर शूल, दाह, कर्णरोग तथा अस्थि-सधिग्रह (सधियो की जकडन) को दूर करता है। इसके लगाने से जू, लीक आदि भी नष्ट हो जाते है। —मै० र०

७ कनक वटी—धत्तूर-बीज (काले धतूरे के हो तो उत्तम या साधारण भी ले सकते है) १२ भाग, रेवन्दचीनी ८ भाग, सोठ (वगैर रेशे की) ७ भाग, फिटकरी की खील, सुहागा खील और गोद-बबूल, ६-६ भाग, सबका चूर्ण कर, धत्तूर पत्र स्वरस की भावना देकर उडद या चने जैसी गोलिया बनाले।

दिन मे केवल १ वार, रोगी के बलानुसार १ से २ गोली तक, ज्वर-वेग के २ घण्टे पूर्व, जल के साथ देने से ज्वर रुक जाता है। कभी कभी सदैव के लिये नष्ट हो जाता है। वात-श्लेष्मिक ज्वर (इन्फलुएन्जा) मे भी इसका अच्छा प्रभाव होता है। वहा इसका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस प्रयोग मे रेवन्दचीनी के स्थान पर रेवन्द खताई का योग करने से इसमे सरलतापूर्वक विरेचन शक्ति भी आ जाती है। यह वात-कफ-प्रधान रोग प्रतिश्याय, मन्यास्तम्भ आदि की अद्वितीय प्रभावजनक अव्यर्थ महौषध है। सहस्रश अनुभूत है। —अनुभूत योगवर्चा भाग १

अथवा—उक्त धत्तूर-बीज १ तो०, रेवन्दचीनी ४ तो०, बिना रेशे की सोठ २ तो० इनका महीन चूर्ण कर बबूल-गोद मिला पानी या शहद के मिश्रण से काली मिर्च जैसी गोलिया बनाले। १ से २ गोली तक पानी के साथ रात्रि के समय लेने से मासिक धर्म की अनियमितता, कास, श्वास, ज्वर आदि मे लाभ होता है। आधाशीशी दर्द प्रारम्भ होने से २ घटा पूर्व २ गोलिया और फिर १ घटा बाद २ गोली देने से शीघ्र लाभ होता है। —ह० मो० म० अ० साहब।

कनक वटी न० २—पका हुआ धतूरे का डोडा (फल) लेकर ऊपर-ऊपर मे ४ फाक कर, उसके बीच मे लोहे की कील से कुचले, तथा उस डोडे के समान वजन मे लौग लेकर जितने लौंग उसमे समा जावें, उतने भर कर, ऊपर धत्तूर-पत्र लपेट सूत से बाध दें। ऊपर

मिट्टी का लेप कर, बाटी की तरह (कण्डो की आंच पर) सेक लेवे। मिट्टी लाल हो जाने पर, डोडे को निकाल कर, पहले जो लौंग भरने के समय बच गये हो, वे भी मिलाकर ३ घण्टे तक धत्तूर-पत्र रस मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बनाले। प्रात-साय दिन मे दो बार जल के साथ १ से २ गोली तक देने से जीर्ण-ज्वर, जीर्ण कास, कफ-प्रधान श्वास रोग और निद्रानाश पर लाभ होता है। —गा० औ० र०।

८ वातपचग वटी—धतूरे के पके हुए डोडे २ सेर, सोठ के टुकडे १ सेर और अजवायन ½ सेर लेकर, प्रथम एक मिट्टी के घडे मे कुचले हुए डोडे १ सेर बिछाकर, ऊपर सोठ तथा उस पर अजवायन फैला, सब पर शेप १ सेर डोडे कुचल कर बिछा दे। फिर ४ अगुल ऊपर रहे उतना जल भर कर ढक्कन ढक, चूल्हे पर चढा मद-मद अग्नि देवे। लगभग ६ घण्टे बाद जल सूख जाने पर, सोठ को निकाल छायाशुष्क कर महीन चूर्ण कर ले। इस चूर्ण मे २ तो० शुद्ध हिंगुल व १ तो० कपूर मिला, पोदोने के रस मे ६ घटे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बनालें। १ से २ गोली दिन मे २ बार जल के साथ सेवन से अफारा, अग्निमाद्य, उदावर्त्त एवं उदर-वात दूर होती है। आमाशय और अन्त्र की उग्रता शात होती है। नये व पुराने रोगो मे भी तत्काल प्रभाव होता है। —रस तन्त्रसार भा० २

९ कामिनी दर्पघ्न रस—शुद्ध पारद, गधक १-१ तो० मिलाकर, १ दिन (१२ घटे) धत्तूर-बीजो के तैल मे घोटकर सुरक्षित रखे। मात्रा—½ रत्ती, खाड के साथ (या मिश्री युक्त दूध के साथ) सेवन करने से समस्त प्रमेह नष्ट होते, वीर्य पुष्ट होता, कामेच्छा उत्तेजित होती व वीर्य स्तम्भन होता है। यह उत्तम स्त्री-द्रावक है। —भै० र०

इसे ग्रन्थान्तरो मे 'मानिनी मानमर्दन रस' व विलासिनीवल्लभ रस आदि कहा गया है।

नोट—धतूरे के योग से-ताम्र, बग, हरताल, हिंगुल, मल्ल, अभ्रक आदि की भस्में भी निर्माण की जाती है। तथा रसशास्त्र में-मृत्युञ्जय रस, सन्निपात भैरव, कनकसुन्दर रस, अगस्तसूतराज, उन्मत्त रस, खेचरी गुटिका आदि कई प्रयोगो मे धतूरे की योजना कीगई है। जो सब विस्तार-भय से हम यहा नहीं लिख सकते।

धनवहेडा—दे०—अमलतास। धनमरवा—दे०—सर्पगन्धा। धन्वन—दे०—धामिन।

धनियां (Coriandrum Sativum)

हरीतक्यादि वर्ग एव शतपुष्पाकुल (Umbelliferae) के इस वर्षायु, अनेक कोमल शाखा प्रशाखायुक्त, सुगंधित १ से २ फुट तक ऊंचे क्षुप के पत्र—विषमवर्ती, जड के निकट के पत्ते गोलाकार ३-४ या ५ भागो मे विभक्त, प्रत्येक भाग कटे किनारे एव कगूरेदार, तथा शाखाओं के पत्र कुछ लम्बे से, सोआ या सौंफ के पत्र जैसे, फूल—कुछ नीलाभ श्वेत वर्ण के, छत्तेदार, फल—दो कोष्ठयुक्त, गोलाकार, रग मे पीताभ भूरे या [illegible], गुच्छो मे छत्ताकार होते है। फलो को ही धनिया कहते है। हरी-ताजी दशा मे पत्र, फूल फलादि को कोथमीर कहते है। [illegible] चटनी आदि तथा सूखी (धनिया) मसाले आदि के काम मे आती है। इससे मिर्च की तेजी कम हो जाती है।
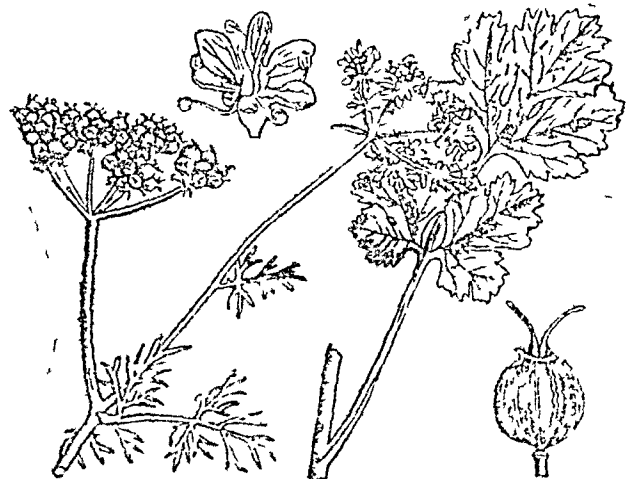
यह प्राय समस्त भारतवर्प मे, रबी की फसल, चना गेहू आदि धान्यो के साथ बोई जाती है, तथा उन्ही धान्यो के साथ यह भी पक कर तैयार हो जाने पर काट ली जाती है, इसी से या इसके बीज क्षुद्र धान्य सदृश होने से या धान काटने के बाद उसी क्षेत्र मे बोई जाने से धान्यक, धानक या धनिया कही जाती है।

नोट–(१) चरक के तृषानिग्रहण तथा शीतप्रशमन एव सुश्रुत के गुडूच्यादि गणो मे इसकी गणना की गई है।

(२) एक वन्य या वनधनिया होती है, जिसे जल-

देवकाडर (जलधनियां)
Ranunculus scelenatus linn.
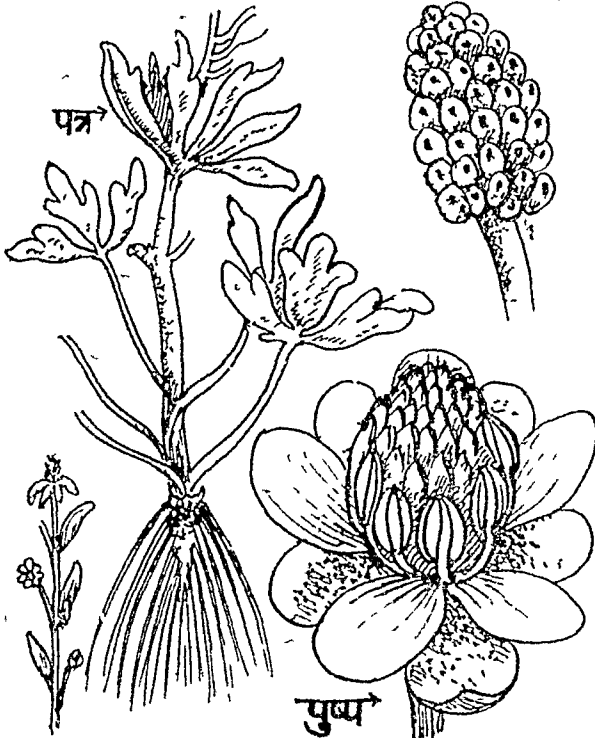
धनिया कहते है। इसका वर्णन जलधनिया के प्रकरण मे देखिये। प्रस्तुत प्रसग की धनिया से मिलती जुलती एक और वनधनिया होती है जिसे मरेठी मे 'परिपाठ' कहते है। इसके पौधे लगभग १ हाथ ऊचे, वर्षाकाल मे नैसर्गिक खेतो मे या नदी आदि जलाशयो के किनारे, दक्षिण के महाराष्ट्र प्रातो मे बहुत देखे जाते है। पत्र–धनिया के पत्र जैसे ही किंतु कुछ बारीक व लम्बे से तथा फल–धनिया जैसे ही गोल होते है। यह सूखने पर काली पड जाती है। यह शीतवीर्य, ज्वर एव दाहशामक, कटु-पौष्टिक तथा किंचित् स्तभन गुण विशिष्ट है। पित्त पापडा के स्थान मे इसका उपयोग किया जाता है। पित्त एव वातप्रधान ज्वरो मे यह दी जाती है। कण्ठ तथा श्वास-नलिका के शोथ पर इसका शुष्क चूर्ण चिलम मे रख कर धूम्रपान करने से लाभ होता है। यकृत् के विकारो पर इसके पचाङ्ग का क्वाथ उपयोगी है। हाथ पैरो की जलन पर इसके स्वरस का मर्दन करते है। खुजली मे इसकी काली राख नारियल तेल मे मिलाकर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।[१]

---

[१] एक वनधनिया और होती है, जो प्राय इसी नाम से बिहार उत्तर, प्रदेश आदि स्थानों मे बारहो मास मिलती है, किंतु ग्रीष्मकाल में अधिक देखने मे आती है। इस तृणजातीय वनौषधि के पौधे हाथ डेढ़ हाथ ऊचे, जगल, झाड़ी, वाग, वगीचे एव सड़कों के किनारे पाये जाते है।

पत्र–१ या १॥ इ च लम्बे, अण्डाकार व कगूरेदार, प्रत्येक गाठ पर प्राय ३-३ पत्र शाखाओं के चारों ओर लगे रहते हैं। गाठों के ही चारो ओर छोटी-छोटी सींके निकलती हैं, जिन पर नन्हे नन्हे श्वेत वर्ण के पुष्प आते हैं। पुष्प-दल के गिर जाने पर धनियें के आकार के फल लगते हैं।

इसके पत्र, फल व पंचाग औषधि-कार्य में आते है। यह शीतल, मधुर तथा तृषा व क्षुधानाशक हैं।

धूप से व्याकुल तृषित व्यक्ति यदि इसकी २-४ पत्तिया मुख मे डालकर चूस लेवें तो तुरन्त प्यास शात हो जाती व मुख मीठा हो चित्त प्रसन्न हो जाता है। उसे कफ-प्रकोप या प्रतिश्याय आदि (जो कि उक्त अवस्था में शीत जल के पी लेने से होता है) नहीं होने पाता। क्षुधा-नाशार्थ-इसकी १ पाव पत्तियों को या पचाग को इच्छानुसार सिल पर महीन पीस, लुगदी बनाकर खालेने से ३ तक क्षुधा नहीं सताती है। शुक्रमेह तथा अर्श पर–फलो को पान के वीडे के साथ सेवन करने के शुक्रमेह मे लाभ होता है तथा जड के काली मिर्च के साथ सेवन से अर्श का नाश होता है–वनस्पति-विशेषज्ञ–स्व श्री रूपलाल जी वैश्य के 'अभिनव बूटी दर्पण' से साभार।

नाम—

सं०—धान्यक, धानक, छत्रा (छत्राकार पुष्प एवं फलों के गुच्छे होने से) कुस्तुम्बुरु (कुत्सित रोग समूहं तुम्बति अर्दयतीति-रोग समूह नष्ट करने वाली होने से), वितुन्नक (विगत तुन्ना दु:खमस्मात्-जिसके सेवन से रोग दूर होते हैं)। हि०—धनिया कोथमीर। म०—धणे, कोथिंबीर। गु०—धाणा, कोथमीर। ब०—धने। अ०—कॉरिअन्डर (Coriander) ल०—कोरिएण्ड्रम सेटिवम्, किरिएण्ड्री-फ्रुक्टस (Coriandri Fructus)

रासायनिक संघटन—

हरी धनिया के पत्रों मे ८७ ९%पानी, ११ ७ खनिज पदार्थ, ३ ३% प्रोटीन, ० ६%वसा, ६ ५%कार्बोहाइड्रेट, ० १४ कैलशियम, ० ०६%फासफोरस, १० मिलीग्राम%ग्राम लोहा, तथा कुछ प्रमाण मे 'विटामिन ए, और बी (काफी प्रमाण मे) तथा सी भी पाया जाता है।

फलो मे—एक उडनशील तेल १%तक, जिसमे कोरिएन्ड्राल (Coriandrol) तथा कुछ अन्य पदार्थ रहते हैं। इसके अतिरिक्त स्थिर तेल १३%, वसीय पदार्थ १३ %, पिच्छिल द्रव्य, टेनिन, मेलिक एसिड, तथा क्षार ५ % पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—फल, पचाग तथा तेल को आर्द्रता रहित ठण्डे स्थान मे रखना चाहिए। अन्यथा यह खराब हो जाता है। इसके चूर्ण को भी ठण्डे स्थान मे अच्छी तरह डाट बन्द शीशी मे रक्खे, जिससे उसका उडनशील तैल उडने न पावे।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, कषाय, तिक्त, मधुर, कटु, मधुर-विपाक, उष्णवीर्य (यह शीत भी है, इसके मूत्रल गुण के कारण मूत्र द्वारा शारीरिक उष्णता बाहर निकल जाने पर इसका शीत वीर्य प्रकट होता है। अन्य दीपन-पाचन द्रव्यों के साथ इसका मेल होने पर यह उष्ण हो जाती है। यूनानी मत से भी यह उष्ण और शीत है। खाने पर मूत्रातिसरण के कारण, मेदे मे पहुंचने-पहुंचते शारीरिक गर्मी इसकी गर्मी को नष्ट कर देती है, जिससे इसका शीत गुण प्रकट होता है। किन्तु इसके बाहरी लेप से गर्मी की तासीर मालूम होती है, क्योंकि शारीरिक बाह्य उष्णता इसकी उष्णता को नष्ट नहीं कर सकती। इसके पत्तो मे अल्पांश उष्णता तथा अधिकाश शैत्य होता है। जब तक यह हरी-भरी रहती है, तब तक इसमे शीतलता अधिक रहती है। सूखने पर कम हो जाती है) यह त्रिदोषहर, दीपन, पाचन, रोचन, ग्राही (कुछ रेचन), तृष्णानिग्रहण, यकृदुत्तेजक, कृमिघ्न, मूत्रल, मूत्र-विरजनीय (मूत्र के रग को सुधारने वाली), कफघ्न, शुक्र धातु क्षीणकरक, मस्तिष्क के लिये बल्य, मल को गाढा करने वाली, ज्वरघ्न व स्रोतो को शुद्ध करने वाली है। तथा अरुचि, वमन, अग्निमाद्य, अजीर्ण, अतिसार, प्रवाहिका, उदरशूल, अर्श, कास, श्वास, मूत्रकृच्छ्र, पैत्तिक प्रमेह, कामोन्माद, पैत्तिक-शोथ, विसर्प, गण्डमाला व भल्लातक जन्य शोथ आदि पर इसकी योजना की जाती है।

पाश्चात्य वैद्यक मे इसका प्रयोग विशेषत इसके सौगधिक गुण एव वातानुलोमन होने के कारण किया जाता है। रेचक औषधियो के साथ इसे ऐंठन आदि उपद्रवो को कम करने के लिए पिलाते हैं।

तीनो दोषो के विकृति-नाशक गुण की इसमे विशेषता है। अर्थात् अपथ्य या दूषित आहार के कारण रसोत्पत्ति के समय आमाशय या पक्वाशय मे वात-विकृति जन्य शूल आदि हो तो इसका तैल उन्हे दूर कर देता है। यदि दाहक आहार से पित्तज विकृति मिचलाहट, वमन आदि हो तो यह अपने मधुर तथा शीत गुण से उन्हे शात कर देती है।

हरी धनिया, विविध भोजन—सामग्री मे मिलाने पर उसे स्वादु, सुगन्धयुक्त एव हृद्य बना देती है। यह मधुर रसयुक्त शीत गुण प्रधान होने से, विशेषत पित्तशामक एव दाह-प्रशमन है। शेष गुण उक्तानुसार ही हैं।

शिर शूल, पैत्तिक शोथ, विसर्प, गण्डमाला, भिलावे के शोथ, दाह आदि पर हरी धनिया का लेप किया जाता है। सिर-दर्द मे सूखी का भी लेप करते है। मुख-पाक तथा गले के रोगो मे हरी धनिया के रस से कुल्ले कराते है। रक्तपित्त मे विशेषत नासा से रक्तस्राव (नक्सीर) होने

की दशा मे इसके रस का नस्य कराते तथा पत्तो को पीसकर मस्तिष्क पर लेप करते है ।

शुष्क धनिया—मसाले के रूप मे तथा अनेक औषधियो को सुगन्धित करने के लिये और विरेचक औषधियो (सनाय, रेवन्दचीनी आदि) मे मरोड न हो एतदर्थ काम मे लायी जाती है । प्याज खाने से होने वाली मुख की दुर्गन्ध, इसके चबा लेने से दूर हो जाती है । आमाजीर्ण-शूल मे एव वस्ति-शोधनार्थ—धनिया और सोठ का क्वाथ या फाण्ट देने से लाभ होता है (व० से०) । कफ-प्रधान श्लीपद रोग मे हरी या सूखी धनिया को पीस कर गाढा लेप करने से लाभ होता है (वाग्भट) । निद्रानाश या मानसिक चिन्ता के कारण अन्न-पाचन न होता हो, तो इसकी गिरी चबायी जाती है । इसकी गिरी की प्रक्रिया वि० योगो मे देखें । ज्वर-कृमि पर—धनिया का सेवन लाभकारी है । हिक्का (हिचकी) मे—मिट्टी की कोरी चिलम मे इसे भर कर, हुक्का पर रख कर धूम्रपान कराते है । उद्गार बाहुल्य मे—(डकारें बहुत आती हो तो) इसके साथ जौ का आटा व चन्दन का बुरादा जल के साथ महीन पीस कर आमाशय पर लेप करते हैं । छीकें अत्यधिक आती हो, तो हरी धनिया का रस सुघाते या नस्य देते हैं । कण्ठ या गले के दर्द मे इसकी गिरी को चबाते है । कडी सूजन या जहरवात पर—इसके ताजे पत्तो को पीस, उसमे चने का आटा और गुलरोगन मिला कर लगाते हैं । शीतपित्त पर—इसके पत्र-रस मे गुलरोगन और शहद मिलाकर लगाते, तथा पत्र-रस मे उन्नाव का क्वाथ व शक्कर मिलाकर पिलाते हैं । आम-पाचनार्थ—धनिया व सोठ के क्वाथ मे एरण्ड-मूल-चूर्ण मिलाकर सेवन कराते हैं ।

(१) तृष्णा-निग्रहणार्थ—ज्वर की गरमी से या साधारण अवस्था मे बढी हुई प्यास की शाति के लिये—शुष्क धनिया २ तो० कूटकर मिट्टी के पात्र मे, ½ सेर जल मे भिगो कर, प्रात स्वच्छ कपडे से छान, रोगी को थोडा-थोडा पिलाते है । यदि साधारण अवस्था मे अत्यधिक तृष्णा हो तो उक्त हिम मे थोडी शक्कर और शहद मिला कर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है ।

(२) अरुचि पर—इसके साथ जीरा, काली मिर्च, पोदीना, सेंधा नमक व किसमिस मिला, नीबू के रस मे पीस, चटनी बना ले । इसे भोजन के साथ लेने से भोजन मे रुचि उत्पन्न होती है। वि० योगो मे धनिया की गिरी देखे ।

अथवा—धनिया, इलायची और काली मिर्च के चूर्ण को घृत और शक्कर के साथ बार-बार चटावे ।

(३) दाह पर—धनिया और जीरा १-१ तो० जौकुट कर रात्रि के समय २० या ३० तो० जल मे भिगो, प्रात मसलते हुए छानकर शक्कर मिला पिलावे । इस प्रकार ४-६ दिन पिलाने से कोष्ठ-दाह शमन हो जाता है । हाथ-पैरो की जलन भी इससे दूर होती है । अथवा केवल धनिया को ही भिगोकर प्रात छानकर खाड मिलाकर पीने से भी अत्यन्त-प्रवृद्ध अन्तर्दाह तुरन्त शान्त होता है—(भा० प्र०) ।

कफयुक्त पित्तज्वर मे दाह-शाति के लिये—धनिया और परवल के पत्तो के क्वाथ-सेवन से लाभ होता है ।

अथवा—धनिया, अडूसा, आमला, काली दाख और पित्तपापडा इनको साधारण कूटकर, २ तो० चूर्ण को मटकी मे, रात्रि के समय पानी २० तो० मे डाल कर रख दे । दूसरे दिन छानकर इस पानी को थोडा-थोडा पिलाने से दाह तथा तृषा दूर हो जाती है—

इस धान्यकादि हिम के सेवन से दाहयुक्त पित्तज ज्वर, रक्तपित्त तथा शोष रोग मे भी लाभ होता है । —(भा० प्र०)

ज्वरो पर—सर्व प्रकार के ज्वरो की प्रथमावस्था मे आम के पाचनार्थ धनिया मिश्रित अमृतादि क्वाथ (गिलोय मे देखे) या कटकार्यादि क्वाथ (कटेरी के प्रकरण मे देखे) दिया जाता है । अथवा धनिया और सौफ का क्वाथ देने से आम-पाचन हो दाह, तृषा, मूत्र-जलन व बेचैनी दूर होती तथा पसीना आकर ज्वर उतर जाता है । यदि आम-प्रकोप के कारण ज्वर कम न होता हो, तो धनिया व मिश्री १-१ तो० मिला ५ तो जल मे ३ घण्टे तक भिगो, फिर मसल-छानकर पिला देने से ज्वर प्रथम २ डिग्री लगभग बढकर, फिर २ घटे बाद स्वेद आकर कम हो जाता है । यह हिम बालक प्रसूता और वृद्धो को भी दिया जा सकता है— (गा औ र)

अथवा—सर्व-ज्वर नाशक धान्य पटोल क्वाथ—धनिया और परवल के पत्र १-१ तोला कूटकर ३२ तोला जल मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर सुखोष्ण पिलाने से अग्निदीप्ति, कफनाश, वात एव पित्त का अनुलोमन, आन्त्रो मे मल के अध प्रेरणार्थ तरग-वत् गति, तथा पित्त का आहार-पाकार्थ निःसरण, ज्वर-नाश, आमदोष एव आमरस का परिपाक हो मल-बन्ध का नाश होता है। यह क्वाथ सर्व ज्वरो मे दिया जा सकता है। यह तृष्णा को भी कम करता है।

(भैं० र०)

अथवा सर्वज्वरनाशक 'धान्यकाद्यरिष्ट' का योग आगे विशिष्ट योगो में देखिये।

पित्त ज्वर—सूखी धनिया को गिलोय के स्वरस (या क्वाथ) मे ७ वार फुला-फुला कर शुष्क कर चूर्ण कर रक्खे। गरमी के बुखार मे यह चूर्ण ६ मा मुनक्का ६ मा तथा अदरख ३ मा एकत्र ५ तो पानी मे पीस छान कर कुछ गरम कर, १ तो मिश्री मिला, प्रात साय पिलाने से ज्वर दूर होता है। इस ज्वर मे भोजन नहीं करना चाहिये। (भा गृह चिकित्सा)

पित्तज्वर के प्रवृद्ध अन्तर्दाह की शाति के लिये अध-कुटा धनिया २ तो को १२ तो जल मे मिला, मिट्टी के पात्र मे रात्रि भर रक्खे। प्रात इसे छानकर ३ मा खाड मिला पिलाने से विशेष लाभ होता है। यह धान्यशर्करा योग अत्यन्त प्यास और कब्ज होने पर दिया जात है। (भैं र) अथवा—'धान्यकादि हिम' विशिष्ट योगो मे देखे। अथवा—

धनिया और चावलो को पानी मे भिगो कर दूसरे दिन प्रात उसी पानी मे मदाग्नि पर पकाकर पतली पेया वना, ठडी कर पिलावें। (व गु)

तरुणज्वर (ज्वर की प्रथमावस्था) मे—धनिया, लौंग और सोठ का समभाग मिश्रित चूर्ण (मात्रा—२-३ मा) मन्दोष्ण जल के साथ सेवन करने से विशेष लाभ होता है। इन्ही तीनो द्रव्यो का क्वाथ अग्निमाद्य, श्वास, अजीर्ण, विषम-ज्वर और वात-प्रकोप-नाशक है।

(वृ नि र)

कफज्वर मे—धनिया ३, सोठ २, अदरक या सोठ १, चिरायता १ तथा मिश्री ३ भाग का एकत्र चूर्ण ३ मा की मात्रा मे प्रात साय शहद मे चटाते है।

वातपित्त ज्वर मे—धनिया, मुलैठी, गारना, हरड, दाख, सौफ, गिलोय, पित्तपापडा और सनाय समभाग १-१ तो० एकत्र जौकुट कर ६४ तोला जल मे, अष्टमाश क्वाथ सिद्धकर छानकर इसमे १ तोला गुड मिला, बला-बलानुसार सेवन करने से घोर वातपित्तज्वर नष्ट होजाता है। (भैं० र०)

वातकफ ज्वर या इन्फ्युएन्जा मे—धनिया और सोंठ १-१ तोला कूटकर विधिवत् क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराने से लाभ होता है। इससे शूल और अतिसार भी नष्ट होता है। (भैं० र०) यह क्वाथ पाचनशक्तिवृद्धिकारक है। धनिया, सोठ, वेलगिरी, मोथा व नेत्रवाला का क्वाथ दीपन, पाचन, ग्राही एव आमशूल-नाशक है। यह प्राय. ज्वरातिसार मे दिया जाता है।

आतपज्वर या लू तथा पित्त-प्रकोप के प्रतिकारार्थ लगभग १ तो० धनिया को साधारण कूट कर लगभग २० तो० जल मे १ या ½ घटा भिगो, खूब ममलते हुए छानकर उसमे शक्कर मिला थोडा थोडा वार वार पिलावे। किसी भी तीव्र दाहकारी औषध के सेवन से उत्पन्न दाह पर भी यह पानक व उपयोगी है। इसमे थोडा शहद मिलाकर देने से शुष्क-कास पर उत्तम लाभ होता है। पित्तप्रकोप की शान्ति के लिए धनिया को महीन पीस कर उसमे उचित प्रमाण मे चीनी का शर्बत मिला, तथा कपूर आदि सुगधित शीतल द्रव्यो से सुगधित कर नूतन मिट्टी के पात्र मे रख दे। इच्छानुसार पीने से यह यह पित्त को अत्यन्त नष्ट करता है। (भा प निघण्टु)

(५) अग्निमाद्य एवं अजीर्ण पर—नित्य प्रात ६ मा धनिया को उबाल (फाट या चाय के रूप मे) थोडी शक्कर और दूध मिलाकर सेवन करते रहने से जठराग्नि तीव्र हो जाती व पाचन-शक्ति मे सुधार होता है। कोई कोई इसमे पोदीना और सोठ भी मिला लेते हैं—

(गा औ र)

अथवा—धनिया ५ तो०, काली मिर्च व सेधा नमक २-२ तो एकत्र महीन चूर्णकर, ३-३ मा की मात्रा मे भोजन के बाद लेते रहने से मदाग्नि दूर होती है।
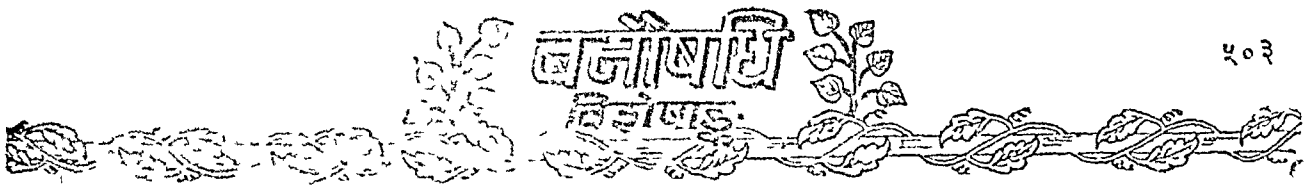
आहार ठीक-ठीक पचकर समय पर टट्टी होती है।

अजीर्ण पर—तुष रहित धनिया (इसे थोडे पानी से आर्द्र कर ओखली मे मूसल से कूटने से तुष अलग हो जाता है) १ सेर को १६ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर क्वाथ जल को छान उसमे १ सेर घृत और ७ तो. धनिया का कल्क मिला घृत सिद्ध करले। यह धान्य-घृत उचित मात्रा मे सेवन से त्रिदोषज अजीर्ण नष्ट हो जाता है। (व० से०)

धानाचूर्ण—धनिया, लोग, निसोथ और सोठ मे सम-भाग महीन चूर्ण (मात्रा २ मा) को उष्णजल से सेवन करने से अग्निमाद्य अजीर्ण मे तो लाभ होता ही है, साथ ही यह चूर्ण श्वास रोग और विषमज्वर मे भी लाभ-कारी है।

भूख कम लगती हो, तो इसके हरे पत्रो का रस १ से २ तोला तक ३-४ दिन पिलावे।

(६) अतिसार तथा सग्रहणी पर—बार बार अप-चन होने से आमाशय एव आत्र निर्बल होकर पतले दस्त होते रहते हैं। मल मे आम भी जाता है। ऐसी अवस्था मे धनिया मे १-१ तोले का फाट दिन मे २ बार देने से आम का पाचन होकर मल बध जाता तथा उसकी दुर्गन्ध दूर होती है। यदि मल का रग श्वेत हो, उसमे आम एव दुर्गन्ध भी हो, तो उक्त क्वाथ मे ६-६ माशा सोठ भी मिला दी जाती है। आमाजीर्ण तथा शूल के लिए भी यह उत्तम प्रयोग है। इससे मूत्र शुद्धि भी हो जाती है। यह क्वाथ बालको के शूल, आम, अपचन एव अतिसार मे भी दिया जाता है। (गा औ र) ऊपर प्रयोग न० ४ के वातकफज्वर मे दिया हुआ धनिया-सोठ क्वाथ का प्रयोग देखे। अथवा—

धनिया को गरम रेत मे भूनकर महीन चूर्ण कर ६ माशे की मात्रा मे दही, छाछ या पानी के साथ दिन मे २-३ बार देने से अतिसार शीघ्र बन्द हो जाता है।

कभी कभी भोजन के पश्चात् तुरन्त ही दस्त की शिकायत हो जाती है एतदर्थ धनिया और काला नमक का चूर्ण २ मा की मात्रा मे भोजन के बाद लिया करे।

रक्तातिसार पित्तातिसार-हो तो—धनिया १ तो को जल के साथ पीस छानकर मिश्री मिला पिलावें। शीघ्र लाभ होता है। अथवा—धनिया, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, बेलगिरी और सौंठ के क्वाथ के सेवन से पुराना अतिसार, रक्तातिसार, आमशूल और ज्वर नष्ट होता है। यह क्वाथ पाचन भी है। (यो र)

तृष्णा और दाहयुक्त अतिसार मे धनिया और सुगधवाला का हिम पिलावें तथा धनिया, सुगन्धवाला और पाठा के पानी से आहार बना कर देना चाहिए। यहा समान भाग मिली हुई औषधे १। तो पानी २ सेर, तथा शेष क्वाथ १ सेर लेवे। (भा भै र)

पीडायुक्त पित्तातिसार मे—धान्यकघृत—धनिये का कल्क १० तो, गोघृत १ सेर तथा जल ४ सेर एकत्र मिला घृतसिद्ध करले। मात्रा—१ तो गौदुग्ध के साथ लेवें। यह घृत दीपन, पाचन है। (व से.)

आमातिसार या प्रवाहिका पर धनिया का मोटा चूर्ण २ तो को ६४ तो. पानी मे पकावें। ८ तो शेष रहने पर प्रात साय सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है।

वातज सग्रहणी पर—धनिया, बेलगिरी, खरैटी, सौंठ और सरिवन (शालपर्णी) सबका एकत्र चूर्ण १। तो पानी २ सेर मे पकावे। १ सेर क्वाथ जल शेष रहने पर, इसके साथ आहार पकाकर रोगी को देवे तथा प्यास लगने पर यही क्वाथ जल पिलावे। (ग नि)

विशिष्ट योगो मे—धान्यपचक एव धान्यचतुष्क और धान्यकासव देखिये।

(७) मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात पर—मूत्राशय मे दाह होकर मूत्रावरोध होने तथा दाह सह थोडा थोडा मूत्र-स्राव होने पर धनिये के हिम का सेवन अति हितकारक है। यदि आमाशय का पित्त अधिक अम्ल होगया हो, तो चावल, मट्ठा व दही का सेवन नही करना चाहिए। यदि यकृत निर्बल होने पर भी अधिक घृत का सेवन होता रहेगा तो मूत्र रचना दूषित होकर मूत्राशय की मूत्र रोकने की शक्ति कम हो जाती है। इनमे से जो कारण हो उसे भी दूर करना चाहिए। आमाशय के पित्त की अम्लता को भी धनिया कम करती है। ऐसी अवस्था मे

(उक्त हिम मे) थोडी शक्कर मिला दी जाती है ।

(गा औ र)

धनिया ६ मा पानी मे घोटकर छान ले, और उसमे मिश्री तथा बकरी का दूध मिला पेट भर पिलादे । दिन मे दो बार पिलाने से २-३ दिन मे ही पेशाब की जलन, दाह दूर हो जायगी । (मौ ह मु ग्र साहब)

उत्तम शास्त्रीय प्रयोग 'धान्य-गोक्षुर घृत' का इस प्रकार है—

धनिया तथा गोखरू १-१ सेर कूटकर १६ सेर जल मे पकावे । ४ सेर क्वाथ शेष रहने पर छान कर उसमे १ सेर घृत (गोघृत हो तो उत्तम) तथा धनिया व गोखरू का समभाग मिश्रित कल्क ६ तो० ८ माशा मिला घृत सिद्ध करले । (मात्रा ६ माशे से १ तोले तक दूध के साथ प्रात साय, इसे सेवन करने से मूत्राघात, मूत्र कृच्छ्र तथा भयकर शुक्रदोष नष्ट हो जाते है—भा प्र । (यह प्रयोग—मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह और अश्मरी इन ४ प्रकार के मूत्रदोषो के लिए उत्तम लाभकारी है) यदि उक्त घृत सिद्ध न कर सको तो धनिया गोखरू के क्वाथ मे घृत मिला पीवे ।

विशिष्ट योगो मे—'धान्यकासव' देखें ।

(८) स्त्री रोग तथा वमन पर—अत्यार्त्तव (मासिक धर्म का रक्त अत्यधिक आने पर)—कुटी हुई धनिया ६ मा को आध सेर जल मे, कलईदार पात्र मे पकावें । आधा शेष रहने पर छानकर, मिश्री १ या २ तो मिला, सुखोष्ण पिलावे । इस प्रकार ३-४ दिन पिलाने से लाभ हो जाता है ।—अथवा

धनिया का चूर्ण ३ मा० और शक्कर १ तो० दोनो को चावलो के धोवन मे घोट छानकर थोडा थोडा बार-बार पिलावे । इससे सगर्भा स्त्री के प्रात काल होने वाले वमन आदि (Morning Sickness) विकारो मे भी लाभ होता है । वमन के साथ थोडा रक्त भी आता हो, तो भी इससे लाभ होता है। यह हृद्य भी है। (व० गु०)

सगर्भा के तीव्र वमन विकार पर—धनिया, नागरमोथा व मिश्री २-२ तो० तथा सोठ ६ माशा इनको आध सेर पानी मे पका, आधा शेष रहने पर दिन मे ४ बार पिलाने से थोडे दिनो मे ही वमन की निवृत्ति हो जाती है ।

(गा० औ० र०)

सगर्भा स्त्री के आठवें मास मे गर्भवेदना उपस्थित होने पर धनिये को पीसकर चावल के धोवन (या तण्डुलोदक की विधि चावल के प्रकरण मे देखे) के साथ सेवन कराने से गर्भशूल नष्ट होता एव गर्भ स्थिर होता है। मात्रा २ मा० ।

(भै० र०)

गर्भवती को सन्तानोत्पत्ति के समय अत्यन्त कष्ट होता हो, तो प्रसव-पीडा के समय उसकी जाघ पर धनिया के हरे पत्तो को या उसकी जड को बाध देने से से बालक आसानी से पैदा होता है ।

वमन— साधारण वमन विकार चाहे किसी को भी हो, और किसी उपाय से बन्द न हो तो, धनिया का हिम थोडे थोडे अन्तर से १-१ घूट पिलावें । अथवा— १ तोला धनिया को पानी के साथ पीस छानकर मिश्री मिला घूट घूट पिलाने से शीघ्र ही लाभ होता है ।

(हकीम मौ मु अ साहब)

(९) बाल-रोगो पर तथा कास पर—शूल, आध्मान और अजीर्ण के निवारणार्थ धनिया व सोठ का क्वाथ, थोडा थोडा पिलावे । केवल उदर शूल हो, तो १ मा धनिया को पानी मे पीस छानकर पिलावे । बालक को वमन और अतिसार हो, तो—धनिया, अतीस, काकडासिंगी और बडी पीपल (गजपीपल) के समभाग मिश्रित महीन चूर्ण को (१ से २ मा नक) शहद के साथ चटाने से लाभ होता है ।

(व से)

शुष्ककास और श्वास पर— धनिया १ मा चावलो के धोवन मे पीस, थोडी मिश्री, मिला थोडा बार बार पिलावे ।

(व० से०)

शुष्क कास बडो या छोटो को मुद्दतीज्वर दीर्घकाल तक स्थायी रहने से उष्ण औषधियो से तथा मिर्च, सोठ, चाय, तमाखू आदि के अधिक सेवन से होती है । योग्य-उपचार न करने पर यह जीर्ण दु खदायी बन जाती है, और वेगपूर्वक बार-बार आती रहती है । किसी-किसी को अधिक निर्बलता आ जाती एव थोडे परिश्रम से श्वास भर जाता है । ऐसे रोगियो के श्वसन यन्त्र की उष्णता तथा शुष्कता को दूर करने एव कास वेग को शमन करने के लिये कुछ दिनो तक धनिया और मुलैठी

का क्वाथ दिन मे ३ बार देते रहने से रोग–निवृत्ति हो जाती हैं। (गा औ र)

अथवा–धनिया की गिरी और चावलो को खूब महीन पीसकर रखले। इसमे से ३ से १३ मा तक ६मा. शहद के साथ चटाते रहने से गरमी से उठने वाली खासी दूर हो जाती है। (हकीम मो. मु अ साहब)

बालक के मुख मे छाले हो, मुखपाक हो तो धनिया के महीन चूर्ण, को बार बार छिडकने से लाभ होता है।

नेत्राभिष्यन्द मे—धनिया की पोटली बनाकर तथा पानी मे भिगोकर नेत्रो पर बार बार फिराते रहे। तथा धनियां को कूट कर पानी मे उबाल कर उस पानी को कपडे से छान कर नेत्रो मे टपकाने से विशेष लाभ होता है। ध्यान रहे-नेत्राभिष्यन्द की प्रारंभिक अवस्था मे प्रथम १ बूद स्वच्छ रेडी का तैल आखो मे डाल देने से आखो का गदला पानी, कीच आदि बाहर निकल जाता तथा जलन व किरकिरी कम हो जाती है। तत्पश्चात् उक्त धनिया का पानी(धनिया के साथ थोडी हल्दी और मिश्री मिलाकर उबाला हुआ पानी और भी श्रेष्ठ लाभकारी है) डाले। यदि पलको पर बहुत सूजन हो, तो रसौत को दूध या पानी मे मिला कर लेप लगाना चाहिये। आगे प्रयोग न० १० देखे।

चेचक की अवस्था मे—धनियां के उक्त पानी को (हरा धनिया हो तो उसके रस को) आखो मे टपकाते रहने से चेचक का दाना आखो मे नही निकलता, निकला भी हो, तो सरलता से शमन हो जाता व आखे सुरक्षित रहती हैं।

चेचक निकल आने के बाद, शारीरिक उष्णता की शाति के लिये रात्रि के समय धनिया और जीरे को चौगुने जल मे भिगोकर, प्रात मसल छान कर मिश्री मिला पिलाते रहने से कोष्ठान्तर्गत उष्णता दूर हो जाती है। ४-५ दिन देना चाहिये।

(१०) नेत्र–विकारो पर–नेत्रो से जल अश्रु या पूय का स्राव होता हो व लाली, दाह और वेदना हो, या आंख आने पर ये सब विकार हो, तो-धनिया के फाट की बूदें डालते रहने से लाभ होता है। साथ साथ-धान्यकावलेह (देखें विशिष्ट योगो मे) का सेवन कराते रहे, पुराना अभिष्यन्द, तथा उक्त विकार दूर होकर नेत्र-ज्योति सबल बनती है–(गा०औ०र०)। केवल हरी धनिया का पत्र-रस हफ्ते मे २-३ बार नेत्रो मे डालते रहने से-नेत्रो की रक्षा होती है।

नेत्र-शूल पर—यह शूल या पीडा गरमी के कारण हो, (अर्थात् ग्रीष्म काल मे पीडा हो, तथा कोई स्राव न होता हो, नेत्रो मे गरमी या जलन हो) तो धनिया १ तो०, कपूर १ मा० दोनो को महीन पीस, मलमल के स्वच्छ कपडे मे पोटली बाधकर अर्क गुलाब या पानी मे डुबोकर नेत्रो पर फेरते रहे। इसकी बूदे नेत्रो के अन्दर जाने से ठीक ही होता है, नेत्रो मे शीतलता आ जाती है। –अथवा—

हरी धनिया का रस और स्त्री का दूध समभाग मिला कर नेत्रो मे डालने से भी पीडा शीघ्र दूर होती है।

नेत्रो के आगे अधेरा छाजाने पर–गरमी या मस्तिष्क-दौर्बल्यादि कारणो से नेत्रो के आगे अधेरा सा छा जाता हो। कभी काले या पीले रग का पर्दा सा तन जाता हो। तो ऐसी अवस्था मे-धनिया १ तो कूट छानकर मिश्री मिला पकावें। जब गाढा हो जाय तब उतार कर, प्रतिदिन ७ मा० की मात्रा मे चटाया करे।

–हकीम मो०मु०अ० साहब।

सिर की पीडा और गज पर–गरम वस्तुओ के सेवन या धूप मे चलने फिरने या आग के पास अधिक बैठने से होने वाले पित्त प्रकोप जन्य सिर-दर्द के लिये-यदि हरी धनिया मिले तो पत्तो का रस निकाल कुछ बूदे कान व नासिका मे डाले व पत्तो को पीसकर मस्तक एव कनपटियो पर लेप करे। इसके साथ ही साथ धनिया ६ मा०और आवला ३ मा० दोनो को कूट कर रात को मिट्टी के पात्र मे १ पाव पानी मे भिगो, प्रात रगड कर छान कर मिश्री मिला पिलावे। लेप के लिये हरी धनिया न मिले तो शुष्क को ही पानी के साथ पीस कर लेप कर सकते है।—अथवा–

धनिया और किसमिस २-२ तो मोटा-मोटा कूट

कर ४० तो. जल मे भिगो, १ घटे बाद मसल छान, मिश्री मिला पिला देवे । यह योग आधाशीशी पर भी लाभकारी है । (गा औ०र०)

विशिष्ट योगो मे तैल-धनिया देखें ।

सिर के गज पर—धनिया को महीन पीसकर प्रतिदिन लप करे, या हरी धनिया का रस सिर पर लगाया करे ।

(१२) चक्कर (भ्रम) और निद्रानाश पर—धनिया, खसखस और बिनौला की गिरी १-१ भाग चूर्ण कर उसमे दो भाग खाड मिला (३ से ६ मा० की मात्रा मे) गुलाबजल से दिन मे दो बार पिलाने से चक्कर मे शीघ्र लाभ होता है (इलाजुल गुर्बा)

अथवा—हरी धनिया का रस प्रतिदिन ३ तो० तक मिश्री मिला पिलावे । हरी के अभाव मे शुष्क को ६मा लेकर ठडाई की तरह पीस छान कर मिश्री मिला पिलावे ।

निद्रानाश पर शर्बत—हरी धनिया के रस मे सम-भाग मिश्री या खाड मिला पकावे । शर्बत की चाशनी कर शीशी मे भर रक्खे । प्रतिदिन (२ से ४ तो०, तक) पानी मे मिलाकर पिलाते रहे । कुछ दिनो के सेवन से अच्छी नीद आने लगती है ।—हकीम मौ मु अ साहब

(१३) रक्तार्श पर—यदि रक्त काले रग का हो तो उसे बन्द करने का प्रयत्न न करे । जब लाल रग का रक्त निकलने लगे तो-६ तो धनिया को १० तो जल मे घोट-छान कर उसमें ३ तो मिश्री और २० तो बकरी का दूध मिला, आग पर औटा कर, ठडा कर पिलावे । शीघ्र लाभ होता है । —हकीम साहब ।

अर्श के मस्सो की पीडायुक्त शोथ के शमनार्थ -हरी धनिया को पीस कर गरमकर पोटली में बाध कर मस्सो पर थोडा-थोडा सेक करने से आराम होता है ।

(१४) रक्तपित्त पर—धनिया, दाख (या किसमिस) और बीहदाना समभाग एकत्र कूट कर रात के समय पानी में भिगो रखें । प्रात इस हिम मे शक्कर मिला दिन मे ३ बार देते रहने से शीघ्र ही सब प्रकार के रक्त-पित्त मे लाभ होता है । यह प्रयोग दा.गक, शीतल एव स्निग्धताकारक है । इसमे विटामिन 'सी' विशेष परि-माण में है । (गा औ र)

यदि केवल नकसीर या नाक से रक्तस्राव होता हो, तो हरे पत्तो के रस को नाक मे टपकाने से और सिर पर लेप करने से शीघ्र लाभ होता है । इसमे यदि थोडा कपूर मिला लिया जाय तो विशेष फायदा होता है ।

(१५) कट-पीडा और कठमाला पर—धनिया की गिरी चबाने से गले का दर्द दूर होता है ।

कठमाला के लिये—धनिया और जौ का आटा सम-भाग एकत्र पानी मे अच्छी तरह पीस कर ऊपर लेप करते है । सदैव इस प्रकार लेप करने से आराम हो जाता है । अथवा—

इसके ताजे पत्ते पीसकर चने का आटा और गुलाब जल मिला लेप, प्रति दिन करते रहने से भी कठमाला को आराम होजाता है । —हकीम मौ मु अ साहब ।

(१६) हृद्रोग पर—धनिया के चूर्ण मे समभाग मिश्री चूर्ण मिला, प्रतिदिन ७ मा की मात्रा मे ताजे जल से सेवन करने से अथवा धनिये का फाट शक्कर और दूध मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से हृदय की दुर्बलता, धडकन, बेचैनी आदि दूर होती है ।

(१७) वीर्य-विकार तथा स्वप्नदोष पर—उक्त धनियां व मिश्री के समभाग चूर्ण को ६ मा की मात्रा मे प्रात ताजे जल से सेवन करने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता व वीर्यस्राव बन्द हो जाता है । गरम वस्तुओ से परहेज रखना तथा सयम पूर्वक रहना आवश्यक हैं ।

मन मे अश्लील विचार न उठने पावे ऐसे सयम-पूर्वक रहने के लिये—धनिया १ तो , देशी कपूर व बबूल का गोद २-२ मा इनको महीन पीसकर, थोडे जल मे खरल कर चने जैसी गोलिया बना ले । ३ से ४ गोली तक, प्रात साय, खाकर ऊपर से १ तो. धनिया, ठडाई की भाति पीसकर मिश्री मिला कर पिया करें । ८-१० दिन के प्रयोग से मन मे गन्दे विचार आना बिलकुल बन्द हो स्वप्नदोष नहीं होने पाता ।

—हकीम. मौ मु. अ. साहब ।

पित्तप्रकोप जन्य शीघ्रपतन मे—धनिया शुष्क ५ मा ,इसबगोल ७ मा और खुरफा बीज १०॥ मा सबका महीन चूर्ण ४½ मा की मात्रा मे प्रात सेवन करे ।

(यूनानी योग)

(१८) अम्लपित्त पर—आमाशय मे पित्त खट्टा होकर दूषित खट्टी डकारे आती हो, उवाक (जी मिचलाना, हृल्लास) होती हो, तथा तृषा अधिक लगती हो, तो धनिया और मिश्री का क्वाथ कर, दिन मे ३ बार देते रहने से २-४ दिन मे ही नया अम्लपित्त शमन हो जाता है। (गा. औ र)

अथवा—धनिया, श्वेत चन्दन, नागरमोथा और इन्द्रजौ के समभाग मिश्रित चूर्ण को (१ से ३ मा. तक की मात्रा मे दिन मे २-३ बार) शहद के साथ चटाने से अम्लपित्त, अरुचि और ज्वर नष्ट होता है। (भ भै र)

(१९) शोथ, जखम के रक्तस्राव और मुख-रोग पर—शरीर के किसी अग पर या शरीर पर सूजन आ गई हो, जिसमे जलन सी पडती हो, तो शरीर के विशिष्ट स्थान पर ध ा को सिरके मे बारीक पीसकर लेप करते रहने से शीघ्र ही सूजन दूर हो जाती है। शरीर की उक्त प्रकार की सूजन पर धनिया के रस मे कपडा तर कर शोथ-स्थान पर रख दें और जब सूख जावे तो और रस या धनिये का पानी डालकर तर कर दें। अत्यन्त लाभदायक है।

जखम के रक्तस्राव को बन्द करने के लिये इसके बीजो को आग पर सेंक कर, पीसकर बुरकने से, या धनिया को खूब महीन पीस कर लगा देने से रक्त शीघ्र ही बन्द हो जाता है।

मुख-रोग पर—मुख मे छाले पड जाना, जलन होना, राल निकलते रहना आदि विकार जो आमाशय की उष्णता या पित्तज्वर के कारण होते है, उनके निवारणार्थ धनिया के महीन चूर्ण को मुख के अन्दर लगाने से अत्यन्त लाभ होता है। अथवा—

१ तो. धनिया कूटकर ½ सेर पानी मे उबाल, १० तो. पानी शेष रहने पर, छान कर, शीतल होने पर, उससे कुल्ले करे। अथवा—

हरी धनिया के रस को दिन मे कई बार छालो पर लगाया करें। अत्यन्त लाभप्रद है।

रोगी को गरम खाद्य पदार्थो व गरिष्ठ-भोजन से परहेज रख दूध, चावल आदि सुपाच्य भोजन करना चाहिये। —हकीम मौ. मु म साहब।

(२०) जमालगोटा (जैपाल) के विकारो पर—प्राय अशुद्ध या अधिक मात्रा मे जमालगोटा के खाने से पेट मे जलन, दस्त तथा वमन, ऐठन, घबडाहट आदि उपद्रव होने लगते है, ऐसी अवस्था मे शीघ्र ही धनिया २ तो खूब महीन पानी के साथ पीसकर, उसमे ५ तो पानी मिला छानकर, २० तो दही और ५ तो मिश्री मिला, दो बार मे पिला दे। यदि इतने से शान्ति न हो, तो और इतना ही पिलावे। दस्त, वमन, जलन आदि शान्त हो जावेंगे। पीछे जमालगोटे का प्रकरण देखें।

उक्त प्रयोग को दो बार मे या एक ही बार मे, आवश्यकतानुसार १-१ घटे पर ४—६ बार पिलाने तथा मुख मे बर्फ के टुकडे रखने से विष-शमन हो जाता है। यदि दही न प्राप्त हो, तो गाढी छाछ के साथ भी इसे दे सकते हैं।

(२१) बर्र (ततैया) के काटने पर—धनिया के कुछ दाने ठडे जल से चबाने से शीघ्र शाति होती है। यदि शाति न हो, तो हरी धनिया का रस, सिरके मे मिलाकर लगाते हैं।

धनिया का तैल—(Oil Coriander) यह उडनशील रगहीन या हलके पीतवर्ण का, स्वाद व गध मे धनिया जैसा ही तैल, धनिया के शुष्क एव पके हुए फलो से परिस्रवण-क्रिया (डिस्टिलेशन) द्वारा प्राप्त किया जाता है। यह ३ भाग अलकोहल (७०%) मे विलेय होता है। इसे अच्छी तरह डाटबन्द शीशियो मे, ठण्डे प्रकाशहीन स्थानो मे रखा जाता है। प्रकाश मे रखने से या पुराना होने पर यह बेस्वाद एव प्रभावहीन हो जाता है।

यह तैल आध्मानयुक्त उदरशूल, गठिया (सधिवात) तथा मज्जातन्तु की व्यथा (Neuralgia) व उदरकृमि आदि पर विशेष लाभकारी है। मात्रा—१ से ३ या ४ बूद तक, शक्कर या शर्बत के साथ।

उदरकृमि मे—इसे मिश्री शक्कर या अन्य औषधो के साथ थोडे दिन देते रहने से कृमि नष्ट हो जाते हैं। यकृत सबल होता, तथा कृमियो की उत्पत्ति फिर नहीं होने पाती। बच्चो के आध्मान-युक्त शूल पर भी यह इसी प्रकार दिया जाता है।

पाश्चात्य वैद्यक के—एक्स्ट्रैक्ट सेन्नी लिक्विडम् (Extr Sennae Liquidum), एलिक्सिर कास्करा सगरेडा (Elixir casa Sagr) आदि आफिशल योगों मे यह मिलाया जाता है ।

नोट-मात्रा-पत्र या हरी धनिया ३॥ तो तक । शुष्क-बीज१ तो० तक । चूर्ण-३-६ मा० । हिम २-४ तो । पचाङ्ग स्वरस १-२ तो० । तैल १-४ बूंद तक । श्वासरोगी के लिये बीजों का या पत्तों का अधिक मात्रा मे प्रयोग अहित कर है । इससे स्त्री का मासिक धर्म रुक जाता तथा मनुष्य की इन्द्रियशक्ति (कामशक्ति) कम हो वीर्य कम उत्पन्न होता है । हानिनिवारणार्थ-शहद दालचीनी और अण्डे की जर्दी दें ।

हरी धनिया—अधिक मात्रा मे शिरोभ्रमणकारक एव विस्मृतिजनक है । हानिनिवारक—सिकजबीन, विहीदाना और शहद । प्रतिनिधि—काहू और पोस्त का पत्र-स्वरस । शुष्कबीज—अधिक मात्रा मे—शुक्र-नाशक है । हानिनिवारणार्थ—बीजो को भून कर उपयोग मे लावें, अथवा—सिकजबीन और विहीदाना का सेवन करें । प्रतिनिधि—पोस्त के दाने (खसखस) या काहू के बीज ।

विशिष्ट योग—

(१) धान्यकादिहिम—धनिया, आमला, अडूसा, दाख (मुनक्का) और पित्तपापडा समभाग जौकुट कर २ तो चूर्ण को, १२ तो पानी मे रात को मिट्टी के पात्र मे भिगो कर, प्रात छानकर ४ तो तक की मात्रा मे सेवन करने से रक्तपित्त (ऊर्ध्वग), पैत्तिकज्वर, दाह, तृष्णा और शोथ रोग (धातु शोथ जन्य क्षय) दूर होता है । (भै र)

(२) धान्य पचक और धान्यचतुष्क—धनिया, सोठ, नागरमोथा, खस और बेलगिरी समभाग, जौकुट कर, २ तो की मात्रा मे ३२ तो जल मे पकावें । चतुर्थांश शेष रहने पर दिन मे २ बार सेवन से आम एव शूलयुक्त अतिसार (दूषित डकारो का आना, वमन, गात्रदौर्बल्य, आध्मान) अपचन दूर होते है यह उत्तमपाचन-दीपन एव ग्राही है । सर्व प्रकार के अतिसार मे यह दिया जा सकता है । किंतु पित्तातिसार व रक्तातिसार मे देना हो, तो इसमे से सोठ निकाल देते हैं, तब यह योग धान्यचतुष्क कहलाता है।

सोठ के स्थान मे सौंफ डालकर इसका प्रयोग पित्तातिसार मे सफलतापूर्वक कर सकते है । इस क्वाथ का अकेले या गर्भाशयक योग आदि के अनुपान रूप में प्रयोग करें । (भै र तथा सिद्ध योग संग्रह)

(३) धान्यकावलेह—धनिये को मशीन मे कूट कर, ऊपर के छिलके दूर कर, भीतर का मगज २४ तो और छोटी इलायची के दाने २ तो दोनों का कपड़छान महीन चूर्ण करे । फिर उसमे १ तो. चांदी के वर्क मिला, खरल करे । पश्चात् ४० तो गुलकन्द मिला, अच्छी तरह मर्दन कर अमृतवान (चीनीमिट्टी के पात्र) मे भर रखें ।

मात्रा—१ से २ या ३ तो तक, रात्रि मे शयन के १ घटे पहले खिलाते रहे । यह नेत्र-रोगी के लिये अति हितकारी है । थोडे ही दिनो मे नेत्रो की लाली, बार-बार आसो का आना (नेत्राभिष्यन्द), जलस्राव होता रहना, दाह, भारीपन कुकूणक (क्षीर दोषजन्य बाल वर्त्मगत विकार (OPhthalmia in children) आदि दूर हो जाते है । इसके सेवन से आमविष नष्ट होता, पाचनक्रिया सुधरती एव उदरशुद्धि होती रहती है । फिर उष्णता शमन होती, नेत्रज्योति सबल बनती तथा मस्तिष्क शात होता है । यह प्रयोग प्राय हर प्रकृतिवालो को अनुकूल रहता है । किन्तु मद्यपान, सिगरेट, बीडी आदि का धूम्र-पान, सूर्य के ताप मे अधिक भ्रमण, गरम-गरम चाय, अधिक मिर्च और दाहक पदार्थो का सेवन, जो मस्तिष्क मे उष्णता पहुँचाते है, उनसे यथाशक्ति दूर रहना आवश्यक है । (रस तन्त्रसार से साभार)

(४) धनानी दाल—धनियें को लगभग १२ घटे पानी मे भिगोकर सूर्यताप मे शुष्क कर, लकडी के मूसल से कूट तथा सूप मे फटककर ऊपर का भूसा दूर कर दे । फिर नीबू के रस मे सेंधानमक और हल्दी—चूर्ण मिला, उसमे उक्त दाल या गिरी को १२ घटे भिगो दे, तथा भुनी हीग, कालीमिर्च, अजवायन, पीपल, दालचीनी, लौंग आदि मसाला किंचित् प्रमाण मे मिला कर, उसे कपडे पर फैला दे । थोडा सूखने पर मिट्टी के पात्र मे, मद आंच पर थोडा सेक ले । इसे अच्छी डाट वाली शीशी मे भर रखे । यह स्वादिष्ट दाल पाचक, दीपक, तथा क्षुधावर्धनीय है । निद्रानाश, मानसिक, चिन्ता के कारण अन्नपाचन न होता हो, तो यह गिरी चबाई जाती है । (गा औ र) इसे साग, दाल आदि मे भी डालते है । इसे

भोजन के वाद या अन्य समय मे खाने मे मुख का फीका पन दूर होता, रुचि उत्पन्न होती तथा आहार सरलता से पच जाता हे।

(५) धान्यक घृत—तुषरहित स्वच्छ धनिये का भीतर की गिरी लगभग ३½ सेर, जौकुट कर १३ सेर पानी मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर, छान कर उसमे १ सेर घृत और ३२ तो जीरे का कल्क मिला मदाग्नि पर घृत सिद्ध करले। यह घृत अग्निवर्धक, हृद्य, कफनाशक, तथा आमशूल, गुदशूल, वक्षणशूल, योनिशूल, आमवात, उदावर्त्त, अर्श एव वातपित्त-नाशक है। (मात्रा ६ मा. से १ तो तक)। (व से)

(६) अतरी-फल कशनीजी—हरड (पीली, कावुली या वडी व काली हरड), गुठली निकाला हुआ आमला, बहेडे का वकला तथा शुष्क धनिया ५ ५ तो एकत्र महीन चूर्ण कर, ५ तो वादाम के तैल मे मर्दन कर, तिगुने शहद मे मिला कर काच या चीनी के पात्र मे सुरक्षित रक्खे। मात्रा ७ मा अर्क गावजवान १२ तो के साथ (या पानी के साथ) रात को सोते समय लेवे। यह आमाशय से ऊपर को उठने वाले दूषित वातजन्य बाष्प के लिये विशेष गुणकारी है। तथा उसके उपद्रव रूप सिर, कान, नेत्रो के शूलो पर लाभकारी है। नेत्राभिष्यद मे भी विशेष हितकर है तथा मस्तिष्क व नेत्रो को बलदायक, कोष्ठबद्धतानाशक, प्रतिश्याय और अर्श मे भी लाभप्रद हैं। (यूनानी योग सग्रह)

(७) तैल-धनिया—हरी धनिया का रस ½ सेर मे समभाग तिल-तैल मिला, कलईदार पात्र मे, तैल सिद्ध करले। इसमें, तैलो मे मिलाये जाने वाला कोई भी सुगधित रग इच्छानुसार मिलाया जा सकता है। इसे सिर पर लगाने से मस्तिष्क शात रहता है। सिर दर्द या जलन, हाथ पैर की हथेलियो या तलुओ की जलन इसकी मालिश से शात हो जाती है। लू लग जाने पर जो शरीर में ज्वर, दाह या जलन होती है वह भी इससे शीघ्र ही दूर ज्वर उतर जाता है।

(हकीम मी मु अ साहव।)

(८) धान्यकासव—सूजाक पर—हरे धनिये का स्वरस १० तो०, (हरी धनिया के अभाव मे ५ तो. सूखी धनिया को रात के समय ३० तो पानी मे भिगो कर प्रात पकाकर १० तो शेष रहने पर उतार कर छान ले) ब्राडी या शुद्ध मद्य २ तो और चन्दन का तैल ६ मा तीनो को शीशी मे भर, मुख वन्द कर, ७ दिन वाद छान कर काम मे लावे। मात्रा—१ तो तक, दिन मे ३ वार सेवन से पेशाव की जलन, मवाद, पीव या खून आना वन्द होता है। सूजाक के लिये अति हितकारी है। मिश्र जी ने इस यूनानी प्रयोग को आसव का रूप दे दिया हे। वास्तव मे इसे ७ दिन तक रखने की भी आवश्यकता नही है। उक्त द्रव्यो के मिश्रण से ही अर्क सूजाक नामक यूनानी योग तैयार हो जाता है। यह केवल दिन मे २ वार प्रात साय दिया जाता है।

(मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज)

धान्यकाद्यासव—अतिसार, सग्रहणी आदि नाशक। धनिया २ सेर, अलसी, वेलगिरी तथा महुये के फूल १-१ सेर, जौकुट कर, १३ सेर जल मे भिगो, शुद्ध चिकने मटके मे भर, उसमे मिश्री ४ सेर, धाय के फूल १३ छटाक और शहद १० सेर मिला, अच्छी-तरह मुख-मुद्रा कर १५ दिन तक सुरक्षित रक्खे। पश्चात् छानकर बोतलो मे भर कर रक्खें।

बच्चो को २ मा से १ तो तक और वडो को ४ तो तक, दिन मे ४-५ बार दे। बच्चो के गरमी से होने वाले बार-बार दस्तो की शाति होती है। वडो की सग्रहणी और अतिसार व्याधियो पर भी यह लाभदायक है।

शेष इसके आसवारिष्ट के प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह ग्रन्थ में देखिये।

धमगजरा—दे०—पित्तपापडा।

धमासा (Fagonia Arabica

गुडूच्यादिवर्ग एवं गोक्षुरकुल (Zygophyllaceae) के इस फीके हरितवर्ण के वहुशाखायुक्त १-३ फुट ऊचे

क्षुप के पत्र–सनाय के पत्र जैसे अखड, रेखाकार १–१½ इ च लम्बे, प्रत्येक पत्र के पास दो तीक्ष्ण काटे; पुष्प—शरद ऋतु मे, हलके लाल रग के, पत्र-कोण से निकले हुए, फल–पच कोष्ठयुक्त एव ऊपर एक लम्बा तीक्ष्ण काटा होता है। इस क्षुप की शाखाओ मे दो पत्र ४ काटे तथा एक पुष्प या फल, स्थान-स्थान पर चक्राकार होते हैं।मूल—दूर तक जमीन मे घुसी हुई, ताम्रवर्ण की होती है, अत इसे ताम्रमूली भी कहते है। इसके काटे शरीर में चुभने से बहुत पीडा होती है।

यह अफगानिस्तान, खुरासान एव अरब प्रदेश का मूलनिवासी है। यह भारत के दक्षिण प्रदेशो के खेतो में तथा सिंध, पजाब, कच्छ, राजपूताना के रेतीले मदानो मे बहुत होता हे। बाजार मे इसके बारीक टुकडे कुछ हरे रग के मिलते हैं, स्वाद मे लुआबदार, तथा जल में डालने पर चिपचिपे हो जाते है।

यह जवासा की ही एक जाति विशेष, किन्तु उससे भिन्न कुल एव भिन्न उपरोक्त स्वरूप की है। इसे मरुस्थल का जवासा कहा जाता है। गुणधर्म में दोनो बहुत कुछ समान होने से, कोई २ इसे ही जवासा मान लेते हैं। किंतु वास्तविक जवासा इससे भिन्न हे। इसके धन्वयास दुरालभा, समुद्रान्ता, गान्धारी आदि नाम भी इसकी भिन्नता प्रकट करते हैं। पीछे जवासा का प्रकरण देखिये।

चरक के तृष्णानिग्रहण तथा अर्शोघ्न गणो मे इसका उल्लेख है।

नाम —

स०-धन्वयास(मरुभूमिज यवास), दुरालभा (कठिनता से प्राप्त होने वाला), समुद्रान्ता-(समुद्र पार या समुद्र-समीप पाया जाने वाला), गान्धारी (कदहार-गाधार-अफगानिस्तान में अधिक होने वाला), कच्छुरा (कांटों से पूर्ण), अनन्ता (मूल जमीन में गहरी जाने से), हरि विग्रहा (प्रत्येक ग्र थि पर ४ कांटों से युक्त चतुर्भुज हरि-विष्णु के समान), दुस्पर्शा आदि। हि०-धमासा, धमाह, दमहत, हिंगुणा, उस्तरखार इ। म०-धमासा। गु०-धमासो। बं०-दुरालभा। अ०खुरासान थार्न (Khorasan thorn) ले०-फैगोनिया अरबिका, फै० मैसोरन्सिस(F Mysorensis) फै० केटिका (F.Cretica) फै०ब्र गुहरी (F Bruguieri)

धमासा
FAGONIA CRETICA LINN.
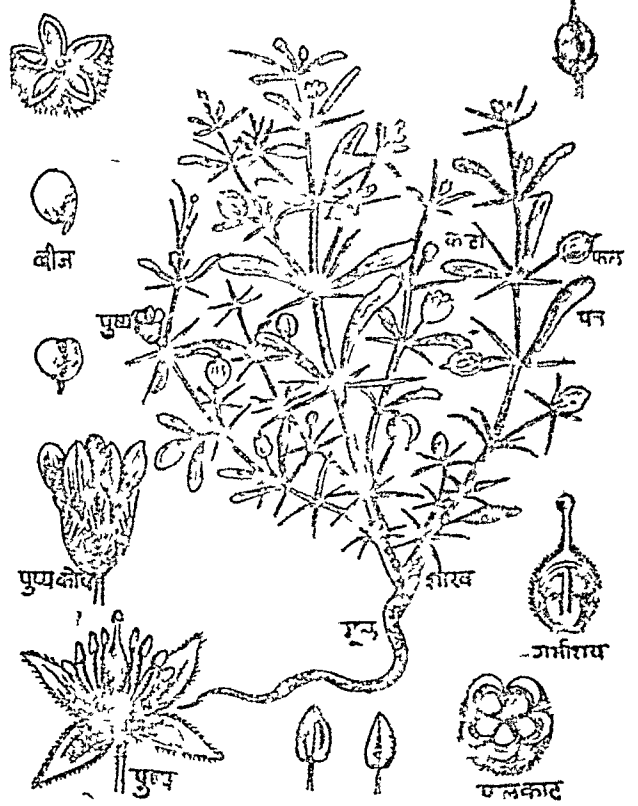
प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग तथा मूल।

गुणधर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर, तिक्त, कटु विपाक, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, स्तभन, दाहप्रशमन, किंचित्सारक, कोथप्रशमन, व्रणरोपण, मस्तिष्क के लिये वल्य, रक्त-स्तंभक, रक्तप्रसादन, कफनि सारक, तृषाशामक, मूत्रल, त्वग्दोषहर, कटुपौष्टिक, तथा भ्रम मूर्च्छा, वमन, प्रमेह, विसर्प, अर्श, रक्तपित्त, वातरक्त, प्रतिश्याय, कास, श्वास, प्रलाप, फुफ्फुसशोथ, जलोदर, मूत्रकृच्छ्र, मसूरिका, गुल्म, कुष्ठ, विषमज्वर आदि नाशक है। सामान्य दौर्बल्य विशेषत अतिसार के बाद हुई दुर्बलता को दूर करता है।

पित्तजन्य विकारो पर विशेष लाभकारी है। दाह, ज्वर, कण्डू आदि मे फाण्ट या क्वाथ का सेवन तथा अङ्गो का परिषेक करते है। यह शोधनीय (एन्टीसेप्टिक) होने से किसी भा विकार मे इसके क्वाथ की योजना की

जा सकती है। मुखपाक या गले के विकारों मे इसके क्वाथ का गण्डूष (कुल्ले) हितकर है। व्रणो को क्वाथ से धोते हैं, जिससे राध, सडान, कृमि आदि नहीं हो पाते। श्वास मे इसका धूम्रपान करते है। ज्वरो मे यह अधिक प्रयुक्त होता है।

अदिष्ट व्रण या कारवकल की सूजन पर इसे दूध मे पका कर लेप करते है। गले की सूजन पर-इसका फाण्ट, गरम-गरम, थोडा २ पिलाते है। इसका क्वाथ, शीतपित्त, मूत्राघात, हरताल के विप पर भी दिया जाता है। हिक्का पर-इसके क्वाथ मे शहद मिलाकर पिलाते है। कठमाला पर—इसे पीस कर लेप करते है।

अर्श, दाह, वमन, भ्रम, प्रलाप, विपमज्वर और रक्तपित्त मे इसके हिम का प्रयोग किया जाता है। यह हिम मसूरिका का प्रतिवन्धक है।

गले और फुप्फुस के विकारो पर—इसके रस (या क्वाथ) को ईख के रस के साथ पकाकर, अवलेह बना सेवन कराते हैं।

अन्तर्विद्रधि मे—इसकी जड को चावल के धोवन मे पीस, शहद मिला पिलाते हैं।

(१) विवन्ध (मल व मूत्र के अवरोध), जलन एव वेदनायुक्त मूत्रकृच्छ्र पर—इसके साथ हरड़, अमलतास की गिरी, गोखुरु, और पापाण भेद समभाग का यथा विधि चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, ४ तो की मात्रा मे, शहद ६ मा मिला सेवन कराने से लाभ होता है। (शार्ङ्गधर)

अश्मरीयुक्त मूत्रकृच्छ्र हो, तो- इसके साथ दशमूल, और कास-मूल मिला, क्वाथ सिद्ध कर शहद मिला पिलावें।

मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात आदि पर विशिष्ट योगो मे 'दुरालभादि-कषाय' का प्रयोग देखे। मूत्रावरोधजन्य उदावर्त्त मे-इसके स्वरस मे थोड़ा सेंधानमक मिला पिलावे। (व०से०)

(२) ज्वरो पर-धमासा, सुगन्धवाला, कुटकी, नागरमोथा और सोंठ के जौ कुट चूर्ण २ तो मे ३२ तो. जल मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, ४ तो. प्रात, एव ४ तो. साय पीने से समस्त प्रकार के ज्वर दूर होते तथा जठराग्नि की वृद्धि होती है। क्वाथ को कुछ उष्ण, सुहाता हुआ सेवन करे (ग०नि०) तथा केवल धमासे के क्वाथ का वफारा देवें। वात पित्तज्वर हो, तो-उक्त क्वाथ मे सोठ के स्थान पर—गिलोय मिला क्वाथ बना सेवन करावे।

वातज्वर हो, तो-धमासा और गिलोय का क्वाथ-सेवन करावे। (ग०नि)

पित्त ज्वर तथा लू लगने पर—इसके ½ से १ तो० तक चूर्ण का हिम पिलावे, और इसी प्रकार हिम अधिक प्रमाण में बनाकर उससे रोगी के शरीर का प्रक्षालन करे। इससे प्यास कम होकर शरीर की जलन तथा कण्डू भी दूर होती है। ज्वर के साथ अतिसार हो, तो मुनक्का के साथ इसका क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावे।

(३) भ्रम, मूर्च्छा पर—इसके क्वाथ १· तो मे गौघृत (गौघृत के अभाव मे सामान्य घृत) १ तो मिला पिलाने से लाभ होता है। (व०से०)

(४) कास पर—विशेषत वातज कास मे—धमासा, कचूर, छोटी पीपल, मुलैठी, और खाड या शक्कर समभाग चूर्ण कर शहद के साथ २-३ मा. की मात्रा मे चटाने से लाभ होता है। (व०नि०)

चरक तथा वाग्भट मे-धमासा, सोठ, कचूर, मुनक्का, काकडासिंगी और मिश्री के समभाग चूर्ण को तैल मे मिला कर चाटने के लिये लिखा है।—अथवा—

धमासा, मुलैठी, अडूसा और मिश्री का क्वाथ सेवन करावे। इसके पचाग का धूम्रपान भी कास पर लाभप्रद है।

(५) मसूरिका तथा अन्य विस्फोटक रोगो पर—पित्त कफज मसूरिका मे धमासा, पित्तपापडा, पटोल-पत्र और कुटकी का क्वाथ सेवन करावे। (व० से०)

उक्त क्वाथ मे कालीमिर्च और शुद्ध गूगल (१० तो क्वाथ में १-१ मा० मिर्च चूर्ण और गूगल मिलावें) मिला कर सेवन कराने से विस्फोटक रोग (Bullous errup-tions or Pemphigus) नष्ट होता है। (व से)

(६) तृष्णा और विसर्प रोग पर—धमासा, पित्त-पापडा, गिलोय और सोठ (६-६ मा. लेकर) जौकुट कर

रात्रि को पानी (१२ तो) मे मिट्टी के पात्र मे भिगो, प्रात मसल छान कर पिलाने से ये दोनो रोग नष्ट होते है। (यो. र)

(७) कठ और हृदय की दाह, मूर्छा, कफ व अम्ल-पित्त पर—धमासा, हरड, छोटी पीपल, दाख और मिश्री इनके चूर्ण का शहद के साथ लेह बनाकर चाटने से लाभ होता है। (यो र)

(८) गिलायु वृद्धि (टासिल्स) पर—इस गिलायु नामक रोग मे कफ एव रक्त दोप जनित आवले की गुठली वरावर स्थिर, अल्प-पीडाकारक एक गाठ भी पैदा होती है। यह प्राय शस्त्रसाध्य होती हे। इस विकार मे धमासे का क्वाथ शहद मिलाकर थोडा-थोडा पिलाने से वहुत कुछ लाभ होता है

(९) सामान्य दौर्वल्य पर—इसके जौकुट किये हुए चूर्ण १ भाग मे १६ भाग पानी मिला १२ घटे रख कर मसल छानकर ५ तोला से १० तोला तक की मात्रा मे दानो समय सेवन कराते है।

नोट—मात्रा—चूर्ण ½ से १ तो अनुपान मे जल, मधु, गन्ने का रस इ । चूर्ण प्राय हिम के रूप मे दिया जाता है। मूल का चूर्ण—१ से २ माशा। फाण्ट-४ से ८ तो, क्वाथ २-६ तो०।

विशिष्ट योग—

(१) दुरालभादि क्वाथ या कपाय—(तृष्णा, रक्त-पित्तादिनाशक) धमासा, पित्तपापडा, फूलप्रियगु, चिरायता, अडूसा, और कुटकी का (एकत्र जौकुट चूर्ण २ या २॥ तो० मे ३२ तोले पानी मिला) क्वाथ (चतुर्थांश) सिद्ध कर खाड या शर्करा (२ तो तक) मिलाकर सेवन करने से तृष्णा, रक्तपित्त, दाहयुक्त पित्तज्वर, तथा साधारण वढा हुआ दाह शात होता है। (भै र)

क्वाथ न० २—धमासा, सोठ, चिरायता, पाठा, कचूर, अडूसा और रेडी की जड का क्वाथ विधिपूर्वक वना सेवन करने से शूलयुक्त वातज ज्वर, कास और श्वास नष्ट होता है। (वृ नि र)

कपाय न ३ (मूत्रकृच्छ्रादि नाशक) धमासा, पाषाणभेद, हरड, कटेरी (छोटी), मुलैठी और धनिया इनके क्वाथ मे मिश्री मिलाकर सेवन से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राव-राध, मूत्र की दाह और शूल अतिशीघ्र नष्ट हो जाते है—(द्रव्यो का एकत्र चूर्ण २ तो पाकार्थ जल ३२ तो शेष क्वाथ मे मिश्री १ या २ तो० मिलादे) (भै र)

(२) दुरालभादिक्षार—(वल, वर्ण, अग्निवर्धक)॥ धमासा, दोनो करज (वृक्ष करज व लताकरज) की छाल, सतौने की छाल, कुडाछाल, वच, मैनफल, मूर्वा-मूल, पाठा और अमलतास की छाल समभाग चूर्ण कर, सबके वजन के बरावर गोमूत्र मिला, मटकी मे वन्द कर, कपड-मिट्टी कर, उपलो की आग मे अन्तर्धूम भस्म या क्षार करले। (मात्रा—४ रत्ती से १ मा० तक, घृत या तक्र के अनुपान से) इस क्षार के सेवन से वल, वर्ण व अग्नि की वृद्धि होती है। यह ग्रहणी के वल को वढाता है। (च० स० चि० अ० १५)

(३) दुरालभादि घृत—(ज्वर, दाहादि नाशक)—क्वाथ—धमासा, गोखुरू, शालपर्णी (सरिवन), पृश्नि-पर्णी (पिठवन), मुगवन (मुद्गपर्णी), वन उडद (माष-पर्णी), खरेटी की मूल-छाल, और पित्तपापडा ४-४ तो

इनका जौकुट चूर्ण ४ सेर पानी मे पकावें। ३२ तोले जल शेप रहने पर छान ले।

कल्कार्थ—कचूर, पोहकरमूल, पिप्पली, त्रायमाण भुईआमला, चिरायता, कटुपरवल, इद्रजौ, और सारिवा (अनन्तमूल) १-१ तो० सवको जल के साथ पीसले। फिर घृत ६४ तो (या १ सेर) दूध २ सेर और जल २ सेर तथा उक्त क्वाथ व कल्क एकत्र मिला, यथाविधि घृत सिद्ध करले। मात्रा ½ तो से २ तो० तक, सेवन से ज्वर, दाह, भ्रम, कास, कन्धो की पीडा, पसली का दर्द, शिर शूल, तृष्णा, वमन और अतिसार दूर होता है। (च० स० चि० अ० ८)

(४) दुरालभासव (सग्रहणी, पाडु आदि नाशक) धमासा १ सेर १० छटाक, आमला १३ छटाक, चित्रक मूल और दन्ती ८-८ तो० तथा उत्तम वजनदार १०० हरड, जौकुट कर १ मन १२ सेर जल मे पकावे। १३ सेर शेप रहने पर छानकर, ठडा हो जाने पर आसव पात्र मे भर उसमे गुड १० सेर तथा शहद, फूल प्रियगु,

पिप्पली, व वायविडङ्ग चूर्ण प्रत्येक १६-१६ तोले मिला पात्र का मुख सन्धान कर १५ दिन रक्खे । फिर छानकर रखें । मात्रा–१-१ तोले तक सेवन से सग्रहणी, पाडु, अर्श, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, रक्तपित्त, एव कफ का नाश होता है । स्वर, वर्ण (काति) का सुधार होता हे ।

(चरक)

शेप इसके आसवारिष्ट प्रयोग हमारे वृ आसवारिष्ट सग्रह ग थ में देखे ।

धव (Anogeissus Latifolia)

वटादिवर्ग एव हरीतकी कुल (Combretaceae) के इस बडे सुदृढ ८० फुट तक ऊचे वृक्ष की छाल–हरिताभ-श्वेत, बाह्यकाष्ठ-पीताभ, भीतरी काष्ठ-श्वेत, पत्र-अमरूद या शरीफा के पत्र जैसे-१½ से ४ इच तक लम्बे १ से २½ इच तक चौडे, चिकने, पतले, पुष्पो के आने पर प्राय झड जाने वाले, पुष्प-ग्रीष्म या वर्षाकाल मे, छोटे-छोटे ½ इच व्यास के, गुच्छो मे, फल-शीतकाल मे नन्हे-नन्हे जवाकार, गोल, पकने पर चमकीले व चिकने होते हैं । इस वृक्ष से एक स्वच्छ, श्वेत निर्यास (गोद) निकलता है, जो बहुत उपयोगी होता है । इसकी लकडी मजबूत व कुछ लचीली होने से इसके गाडी के धुरे बनाये जाते हैं ।भारत मे प्राय यह सर्वत्र पहाडी प्रदेशोमे पाया जाता है ।

नोट—कोई-कोई इसी को धाय, धायटी मानते है । किंतु धाय इससे भिन्न है । आगे धाय का प्रकरण देखिये।

सुश्रुत के सालसारादि, मुष्ककादि गणो मे तथा वाग्भट ने असनादि और मुष्ककादि गणो मे इसकी गणना की है ।

नाम—

स०--धव, गौर, नदितरु, धुरधर, दृढतरु इ० । हि०-धव, धो, धाकड़ा, धाकली इ० । म०–धावड़ा, धापोडा । गु०–धावडो । बं०--गोंआ । अ०--घाटी गम (Ghati-gum), बट्टन ट्री (Button tree) । ले०- एनोजीसस लैटिफोलिया ।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, पुष्प, निर्यास (गोद) ।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर, कटु-विपाक, शीतवीर्य, कफपित्त शामक, दीपन, स्तभन, शोणितास्थापन, मूत्र-सग्रहणीय, रक्तरोधक, व्रणरोपण, शोथहर, कुष्ठघ्न, रसायन, विषघ्न, तथा अतिसार प्रवाहिका, प्रमेह, पाडु, रक्तार्श, रक्तविकार, दौर्बल्य नाशक है ।

पुष्प—मलरोधक हैं । फल—किंचित् मधुर, शीतल, रूक्ष, विबन्धकारक, धातुवर्धक एव कफपित्तनाशक है ।

गोद—पौष्टिक, कामोद्दीपक है ।

क्षत, व्रण और शोथ मे इसकी छाल को पानी मे पीस कर लेप करते है, तथा इसके क्वाथ से प्रक्षालन करते हैं ।

व्रण पूरणार्थ—छाल के वस्त्रपूत महीन चूर्ण को घोडे के मूत्र मे मिला लेप करते है ।

अर्श, अति रज स्राव व गुदभ्र श मे–रोगी को छाल के क्वाथ मे बैठाते हैं ।

प्रमेह मे–काडसार का क्वाथ देते हैं ।

रात्रि को पानी (१२ तो) मे मिट्टी के पात्र मे भिगो, प्रात मसल छान कर पिलाने से ये दोनो रोग नष्ट होते है। (यो र)

(७) कठ और हृदय की दाह, मूर्छा, कफ व अम्ल-पित्त पर—धमासा, हरड, छोटी पीपल, दाख और मिश्री। इनके चूर्ण का शहद के साथ लेह बनाकर चाटने से लाभ होता है। (यो र)

(८) गिलायु वृद्धि (टासिल्स) पर—इस गिलायु नामक रोग मे कफ एव रक्त दोष जनित आवले की गुठली बराबर स्थिर, अल्प-पीडाकारक एक गाठ भी पैदा होती है। यह प्राय शस्त्रसाध्य होती है। इस विकार मे धमासे का क्वाथ शहद मिलाकर थोडा-थोडा पिलाने से बहुत कुछ लाभ होता है

(९) सामान्य दौर्बल्य पर—इसके जौकुट किये हुए चूर्ण १ भाग मे १६ भाग पानी मिला १२ घटे रख कर मसल छानकर ५ तोला से १० तोला तक की मात्रा मे दानो समय सेवन कराते है।

नोट—मात्रा—चूर्ण ½ से १ तो अनुपान मे जल, मधु, गन्ने का रस इ । चूर्ण प्राय हिम के रूप मे दिया जाता है। मूल का चूर्ण—१ से २ माशा। फाण्ट-४ से ८ तो, क्वाथ २-६ तो०।

विशिष्ट योग—

(१) दुरालभादि क्वाथ या कषाय—(तृष्णा, रक्त-पित्तादिनाशक) धमासा, पित्तपापडा, फूलप्रियगु, चिरायता, अडूसा, और कुटकी का (एकत्र जौकुट चूर्ण २ या २॥ तो० मे ३२ तोले पानी मिला) क्वाथ (चतुर्थांश) सिद्ध कर खाड या शर्करा (२ तो तक) मिलाकर सेवन करने से तृष्णा, रक्तपित्त, दाहयुक्त पित्तज्वर, तथा साधारण बढा हुआ दाह शात होता है। (भै र)

क्वाथ न० २—धमासा, सोठ, चिरायता, पाठा, कचूर, अडूसा और रेंडी की जड का क्वाथ विधिपूर्वक बना सेवन करने से शूलयुक्त वातज ज्वर, कास और श्वास नष्ट होता है। (वृ नि र)

कषाय न ३ (मूत्रकृच्छ्रादि नाशक) धमासा, पाषाणभेद, हरड, कटेरी (छोटी), मुलैठी और धनिया इनके क्वाथ मे मिश्री मिलाकर सेवन से मूत्रकृच्छ्र, मूत्रावरोध, मूत्र की दाह और शूल अतिशीघ्र नष्ट हो जाते है—(द्रव्यो का एकत्र चूर्ण २ तो पाकार्थ जल ३२ तो शेष क्वाथ मे मिश्री १ या २ तो० मिलादे) (भै र)

(२) दुरालभादिक्षार—(बल, वर्ण, अग्निवर्धक) धमासा, दोनो करज (वृक्ष करज व लताकरज) की छाल, सतौने की छाल, कुडाछाल, वच, मैनफल, मूर्वा-मूल, पाठा और अमलतास की छाल समभाग चूर्णकर, सबके वजन के बराबर गोमूत्र मिला, मटकी मे बन्दकर, कपड-मिट्टी कर, उपलो की आग मे अन्तर्धूम भस्म या क्षार करले। (मात्रा—४ रत्ती से १ मा० तक, घृत या तक्र के अनुपान से) इस क्षार के सेवन से बल, वर्ण व अग्नि की वृद्धि होती है। यह ग्रहणी के बल को बढाता है। (च० स० चि० अ० १५)

(३) दुरालभादि घृत—(ज्वर, दाहादि नाशक)—क्वाथ—धमासा, गोखुरू, शालपर्णी (सरिवन), पृश्नि-पर्णी (पिठवन), मुगवन (मुद्गपर्णी), वन उडद (माष-पर्णी), खरेटी की मूल-छाल, और पित्तपापडा ४-४ तो

इनका जौकुट चूर्ण ४ सेर पानी मे पकावे। ३२ तोले जल शेष रहने पर छान ले।

कल्कार्थ—कचूर, पोहकरमूल, पिप्पली, त्रायमाण भुईआमला, चिरायता, कटुपरवल, इद्रजौ, और सारिवा (अनन्तमूल) १-१ तो० सबको जल के साथ पीसले। फिर घृत ६४ तो (या १ सेर) दूध २ सेर और जल २ सेर तथा उक्त क्वाथ व कल्क एकत्र मिला, यथाविधि घृत सिद्ध करले। मात्रा ½ तो से २ तो० तक, सेवन से ज्वर, दाह, भ्रम, कास, कन्धो की पीडा, पसली का दर्द, शिर शूल, तृष्णा, वमन और अतिसार दूर होता है। (च० स० चि० अ० ८)

(४) दुरालभासव (सग्रहणी, पाडु आदि नाशक) धमासा १ सेर १० छटाक, आमला १३ छटाक, चित्रक मूल और दन्ती ८-८ तो० तथा उत्तम वजनदार १०० हरड, जौकुट कर १ मन १२ सेर जल मे पकावे। १३ सेर शेष रहने पर छानकर, ठडा हो जाने पर आसव पात्र मे भर उसमे गुड १० सेर तथा शहद, फूल प्रियगु,

पिप्पली, व वायविडङ्ग चूर्ण प्रत्येक १६-१६ तोले मिला पात्र का मुख सन्धान कर १५ दिन रक्खे। फिर छानकर रखे। मात्रा—१-१ तोले तक सेवन से ग्रहणी, पाडु, अर्श, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, रक्तपित्त, एव कफ का नाश होता है। स्वर, वर्ण (कान्ति) का सुधार होता है। (चरक)

शेष इनके आसवारिष्ट प्रयोग हमारे वृ आसवारिष्ट सग्रह ग्रथ मे देखें।

धव (Anogeissus Latifolia)

हरीतक्यादि कुल (Combretaceae) के इस बड़े वृक्ष ८० फुट तक ऊँचे वृक्ष की छाल-हरिताभ-श्वेत, सारकाष्ठ-पीताभ, भीतरी काष्ठ-श्वेत, पत्र-अमरूद या सरीफा के पत्र जैसे-१½ से ४ इंच तक लम्बे १ से २½ इंच तक चौड़े, चिकने, पतले, पुष्पो के आने पर प्राय झड़ जाने वाले, पुष्प-ग्रीष्म या वर्षाकाल मे, छोटे-छोटे हरिताभ पीत वर्ण के, गुच्छो मे, फल-शीतकाल मे नन्हे नन्हे चक्राकार, गोल, पकने पर चमकीले व चिकने होते हैं। इस वृक्ष से एक स्वच्छ, श्वेत निर्यास (गोंद) निकलता है, जो बहुत उपयोगी होता है। इसकी लकडी मजबूत व कुछ लचीली होने से इसके गाड़ी के धुरे बनाये जाते हैं। भारत मे प्राय यह सर्वत्र पहाड़ी प्रदेशोमे पाया जाता है।

नोट—कोई-कोई इसी को धाय, धायटी मानते है। किन्तु धाय इससे भिन्न है। आगे धाय का प्रकरण देखिये।

सुश्रुत के सालसारादि, मुष्ककादि गणो मे तथा वाग्भट ने असनादि और मुष्ककादि गणो मे इसकी गणना की है।

नाम—

स०—धव, गौर, नन्दितरु, धुरधर, दृढतरु इ०। हि०—धव, धौ, धाकड़ा, धाकली इ०। म०—धावडा, धावोडा। गु०—धावडो। ब०—डाग्रांया। अ०—घाटी गम (Ghati-Gum), बटन ट्री (Button tree)। ले०—एनोजीसस लैटिफोलिया।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, पुष्प, निर्यास (गोंद)।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, मधुर, कटु-विपाक, शीतवीर्य, कफपित्त शामक, दीपन, स्तभन, शोणितास्थापन, मूत्रसग्रहणीय, रक्तरोधक, व्रणरोपण, शोथहर, कुष्ठघ्न, रसायन, विषघ्न, तथा अतिसार प्रवाहिका, प्रमेह, पाडु, रक्तार्श, रक्तविकार, दौर्बल्य नाशक है।

पुष्प—मलरोधक हैं। फल—किंचित् मधुर, शीतल, रूक्ष, विबन्धकारक, धातुवर्धक एव कफपित्तनाशक है।

गोंद—पौष्टिक, कामोद्दीपक है।

क्षत, व्रण और शोथ मे इसकी छाल को पानी मे पीस कर लेप करते है, तथा इसके क्वाथ से प्रक्षालन करते है।

व्रण पूरणार्थ—छाल के वस्त्रपूत महीन चूर्ण को घोडे के मूत्र मे मिला लेप करते है।

अर्श, अति रज स्राव व गुदभ्रंश मे—रोगी को छाल के क्वाथ मे बैठाते है।

प्रमेह मे—काडसार का क्वाथ देते हैं।

उदरविकृति, अतिसार मे—पुष्पों को जायफल और मिश्री के साथ सेवन कराते हैं।

रक्तार्श मे रक्तस्राव निवारणार्थ—लगभग २ तो० फूलो को पानी मे भिगोकर मलछान कर, २ तो० तक मिश्री मिला पिलाते है।

अग्निदग्ध पर— फूलो को जलाकर, सरसो तेल मे मिला लगाने से शाति प्राप्त होती है।

पुष्टि के लिये इसके गोंद को बबूल गोद के साथ घृत मे भून कर चूर्ण कर मिश्री या शक्कर के साथ मोदक बना सेवन करते है।

बिच्छू या सर्प के विष पर—गोंद का लेप करते है।

नोट—मात्रा—क्वाथ—५-१० तोले। गोंद—५ से १० रत्ती।

विशिष्ट योग—

धवादि क्वाथ—धव, अर्जुन, कदम्ब, सिरस और बेरी की छाल का क्वाथ पीने से आम और विसूचिका का शूल दूर होता है। (हा० स०)

हारीत संहिता मे इसके क्वाथ के और भी प्रयोग है, किंतु उनमे कई द्रव्य होने से विस्तार भय से यहा नहीं दिये जा सकते।

धवई—दे०—धाय। धवलढाक—दे०—फरहद। धवलपेड—दे०—पिंडार। धवलनकुआ—दे०—सर्पगन्धा। धातुपुष्पी—दे०—धाय। धान—दे०—चावल मे।

धामन (*GREWIA TILIAEFOLIA*)

वटादि वर्ग एव परुषक (फालसा) कुल (Tiliaceae) के इस मध्यमाकार के २०-४० फुट ऊंचे वृक्ष का काण्ड-गोल २-५ फुट व्यासका, शाखा साधारण गोल, छाल-आधा इंच मोटी खुरदरी फटीसी, बाहर से हरिताभ भीतर से श्वेत, पत्र—एकान्तर, रोमश फालसा के पत्र जैसे किंतु छोटे, या बेर के पत्र जैसे किंतु बडे रोमश लगभग २-५ इंच लम्बे, १-२ इंच चौडे, नुकीले, बारीक कंगूरेदार, पुष्प—गुच्छो मे पखुडीयुक्त छोटे-छोटे ऊपर से श्वेत भीतर पीताभ, फल-मासल, मटर जैसे, पकने पर काले रग के, मूल-साधारण, ग्रंथियुक्त मोटी होती हैं।

ये वृक्ष शुष्क, उष्ण प्रदेशो के जगलो मे पश्चिम भारत, वर्मा, सीलोन आदि स्थानो मे पाये जाते है।

नोट—एक श्वेत वामन वृक्ष होता है, जिसे खटखटी कहते हैं।

चरक के अम्ल स्कन्ध, आसवयोनि फलगणो मे इसका उल्लेख है।

धामन
GREWIA TILIAEFOLIA VAHL.

नाम—

स०—धन्वन, धन्वग, धनुर्वृक्ष (शाखाय दृढ होने से उनका धनुष बनाने मे उपयोग होता है) गात्र वृक्ष इ०। हि०—धामन, धामिन। म०—गु०—धामण। बं०—धमनागाछ। ले०—ग्रीविया टिलिफोलिया।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, पत्र, फल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, पिच्छिल, कषाय, मधुर, कटु-विपाक, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, कफनिसारक, वत्य, बृंहण (रस रक्तादि वर्धक) रक्तस्तभन, कण्डूघ्न, सधानीय व व्रणरोपण है तथा रक्तातिसार, रक्तपित्त, दाह, शोथ

कठरोग, हृद्रोग आदि मे प्रयोजित है।

छाल-स्तम्भन है। काष्ठ-चूर्ण-वामक है।

फल—मधुर, कषाय, कफवातशामक है।

रक्तातिसार मे—छाल का रस १ मे २ तो० की मात्रा मे पिलाते हैं।

प्रवाहिका मे—छाल को पानी मे भिगोकर मसलने से जो लुआब उत्पन्न होता है, उसे देते हैं।

दौर्बल्य तथा कृशता मे—उक्त लुआब मे—मिश्री मिला कर सेवन कराते है।

व्रण और क्षतो मे—इसका पत्र स्वरस लगाते है या छाल को पीसकर लेप करते हे।

कोच (कपिकच्छू) के शरीर मे लगने से जो दाह एव खुजली होती है, उसके शमनार्थ छाल को पानी मे घिसकर लगाते है।

अफीम के विष पर—इसकी लकडी के चूर्ण को या उसके कोयलो के चूर्ण को पानी के साथ पिलाते है। वमन होकर विष निकल जाता है।

धाय (Woodfordia Floribunda)

हरीतक्यदिवर्ग एव मदयन्तिका (मेहदी) कुल (Latheraceae) के इस गुल्मजातीय, अनेक लम्बी, विस्तृत, सघन, झुकी हुई शाखायुक्त ५ से १२ फुट तक ऊचे क्षुप के पत्र–अभिमुख, (कही कही ३-३ पत्र एक साथ) अनार-पत्र जैसे किन्तु कुछ पीताभ खुरदरे २-४ इच लम्बे, ऊपरी भाग मे कुछ काले बिन्दु युक्त, वृन्त-रहित, निम्नभाग सूक्ष्म रोमश, स्वाद कुछ अम्ल, पुष्प—४-६ इच लम्बी सीको पर, पुष्प प्रत्येक सीक पर ५-१५ सख्या मे, लौग के आकार के, नलिकाकार, गुच्छो मे, पुष्प का बाह्य पुट लगभग ½ इच लम्बा, लाल तथा कुछ टेढ़ा, आभ्यन्तरपुट बाह्य पुट के भीतर श्वेत ६ दल-पत्रो से युक्त; बीज-कोष (फल)—छोटा, हरिताभ भूरा चिकना ¼–½ इच लम्बा अनेक बीजो से युक्त, बीज-धूसरवर्ण के चपटे लम्बे पीताभ, चिकने होते हैं। पुष्प-शीतकाल मे माघ मास से चैत्र तक तथा फल वर्षा मे आते हैं। इसके क्षुप से एक प्रकार का गोद निकलता है, जो प्राय रगने के काम मे आता है। फूलो से रेशम रगने के लिये एक लाल रग निकालते हैं।

इसके क्षुप प्राय समस्त भारत के पहाडी प्रदेशो मे होते है। बिहार, छोटा नागपुर, उत्तर बगाल मे विशेष पाये जाते है।

नोट—चरक के पुरीषसग्रहणीय, मूत्रविरजनीय, संधानीय एव आमदर्गोनि तथा सुश्रुत के प्रियग्वादि, अम्बष्ठादि गणों में इसका उल्लेख है।

इसके पुष्पो का प्रयोग प्राय ६०% आसवारिष्टो के सधान कार्य मे किया जाता हे। इसके योग से सधान क्रिया ठीक होती, रग भी ठीक उतरता, तथा वे खट्टे नही होने पाते।
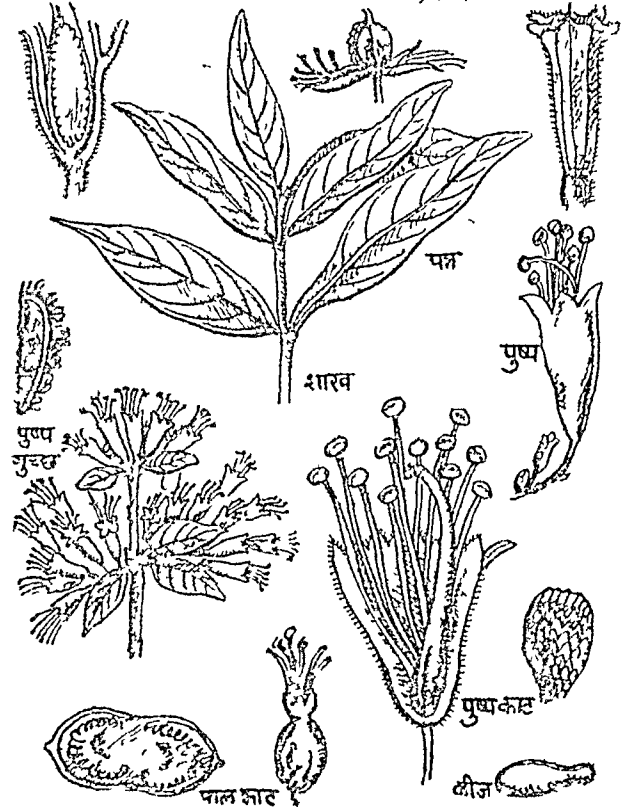
स.—धातकी, धातुपुष्पी, वन्हिज्वाला (पुष्परक्तवर्ण आग की लपट जेसे होने से), ताम्रपुष्पी इ०। हि०—धाय, धाई, धावी, धावा इ०। म०—धायटी धावस। गु०—धावडी व०धाई फूल। अ'०—डाउनी ग्रिस्ली (Downy Grislea)। ले०—वुडफोर्डिया फ्लोरिबण्डा, वुड फ्रुटिकोजा (Wood fordia Fruticosa), लिथ्रम फ्रुटिकोजम (Lythrum Fruticosum), ग्रिस्ली टोमेण्टोसा (Grislea Tomentosa)

रासायनिक संगठन--

पुष्पो मे टैनिन २०% होता है।

प्रयोज्याङ्ग–पुष्प तथा पत्र।

गुण-धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, कफपित्तशामक, स्तंभन, सधानीय, संग्राहक, उत्तेजक, मदकर, दाहप्रशमन, रक्तस्रावरोधक, मूढ़कारक मूत्रविरेचनीय (पित्तप्रकोपजन्य मूत्रगत पीत, रक्तादि विविधवर्णो को दूर करने वाला), गर्भस्थापक, विषघ्न, व्रणशोधक एव रोपक है। अतिसार, प्रवाहिका, रक्तातिसार, ज्वरातिसार, संग्रहणी, रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, रक्तपित्त, पैत्तिकप्रमेह, पैत्तिकज्वर, अर्श, यकृद्विकार, विसर्प तथा अन्य चर्मरोगों पर प्रयुक्त होता है।

दाह, रक्तस्राव और व्रणों मे पुष्पो का अवचूर्णन या प्रदेह करते है। दुर्गन्धयुक्त व्रणो एव विस्फोटो पर-स्राव को कम करने के लिये तथा व्रण-पूरणार्थ पुष्पचूर्ण को बुरकते है। तथा पुष्पो के क्वाथ मे प्रक्षालन करते है।

रक्तार्श तथा श्वेतप्रदर या रक्तप्रदर मे–फूलो का शर्बत सेवन कराते है।

(१) अतिरज स्राव, रक्तार्श और गुदभ्रंश मे–रोगी को पुष्पो के क्वाथ मे बैठाते व पुष्पचूर्ण सेवन कराते हैं। गुदभ्रंश मे पुष्पचूर्ण को गुदस्थान पर बुरककर लगोट कस देते हैं।

(२) अतिसार, प्रवाहिका पर–फूलो का चूर्ण ७३ तो. तक की मात्रा मे तक्र के साथ या शहद के साथ देवे। अथवा–इसके पुष्प और राल १-१ भाग तथा शक्कर २ भाग, सबका महीन चूर्णकर १ से २ मा की मात्रा मे, २-३ बार जल के साथ देवे। अथवा–

इसके पुष्प, बेलगिरी, लोध की छाल, सुगन्धवाला, और गजपीपल समभाग जौकुट चूर्ण २ तो का ३२ तो पानी में चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, उसमे शहद (२ तोला) मिला कर पिलावे या उक्त द्रव्यो के चूर्ण को शहद मिलाकर चटाने से अतिसार [illegible] बालकों का सर्व-प्रकार का अतिसार दूर होता है। (शार्ङ्गधर)

विशिष्ट योगों मे जातीफलादि चूर्ण देते।

यदि प्रवाहिका (पेचिश) विशेष जोर पर हो, तो इसके फूल, वेरी के पत्र और लोध के कल्क को कैथ के स्वरस और शहद मे मिला, दही के साथ सेवन करावे। (व से)

अफीम खाने वालो के अतिसार पर–इसके पुष्प और राल दोनो समभाग महीन चूर्ण कर ३ मा से १ तो. तक की मात्रा मे गर्म किये हुए लोहे से बुझाई हुई छाछ के अनुपान से देवे। (यूनानी योग)

गर्भवती के अतिसार पर–इसके पुष्प, मोचरस और इन्द्रजौ का समभाग चूर्ण मात्रा २ मा जल के साथ देवे। अथवा–पुष्प-चूर्ण को शक्कर व शहद के साथ देवें और ऊपर से चावलो का धोवन पिलावे। यदि रक्तातिसार हो तो इसके पुष्प १ तो और खस ६ मा एकत्र मिला क्वाथ कर शहद और शक्कर मिला सेवन कराने से ३ दिन मे लाभ होता है। प्रसूता के लिये भी यह प्रयोग लाभकारी है। (गा औ र)

ज्वरातिसार पर–इसके फूल, बेलगिरी, धनिया, लोध इन्द्रजौ और सुगधवाला के समभाग मिश्रित चूर्ण को (½ से १ मा तक दिन मे ३-४ बार) शहद मिला चटावे। इससे बालको का ज्वरातिसार और वमन भी दूर होता है। (भै र)

शूलयुक्त ज्वरातिसार हो, तो इसके पुष्पो के क्वाथ मे सोठ के कल्क से बनी हुई पेया मे अनार का रस मिला-पिलावें –(व०से०)।

(३) प्रदर पर—इसके तथा सुपारी के फूलो का क्वाथ, ३ दिन तक पिलाने से प्रदर अवश्य नष्ट होता है। (यो० र०)

अथवा—इसके पुष्प चूर्ण ६ माशा मे समभाग शक्कर मिला, प्रात साय दूध के साथ १७ दिन तक देवे, तीव्र पीड़ा युक्त प्रदर हो, तो मात्रा १ तो सेवन करावे।

इससे अनियमित मासिक धर्म मे भी लाभ होता है। केवल श्वेत प्रदर हो तो पुष्प चूर्ण युक्त मात्रा मे शहद के साथ या चावल के धोवन के साथ देते हैं।

अथवा–इसके पुष्प के साथ सुपारी-पुष्प, मोचरस, व मोलश्री का गोद प्रत्येक ६-६ मा० खाड २ तो० सबका चूर्ण मात्रा–६ माशा जल से देवे।

योनिविकारो पर–विशिष्ट योगो मे-वातक्षयादि तेल

देखे ।

(४) गर्भधारणार्थ—इसके पुष्प और नील कमल के साथ मिश्रित चूर्ण को, ऋतुकाल मे शहद के साथ सेवन करनेसे स्त्री शीघ्र ही स्त्री गर्भ धारण कर लेती है । (ग० नि०)

(५) ज्वर पर—विशेषत पित्तज्वर पर दक्षिण महाराष्ट्र के वैद्य ज्वरी के मुख मे तिल तेल धारण करा, सिर पर इसके पत्र-रस का लेप करते हैं । इससे मुखस्थ तेल पीतवर्ण का हो जाता है, तब उसे थुकवाकर, दूसरी बार तेल मुख मे धारण कराते हैं, तथा सिर पर पत्र-रस का लेप करते है । इस प्रकार २-३ वार कराने से पित्त निकल जाने से फिर तेल पीले रग का नही होता, तथा ज्वर शात हो जाता है । पैत्तिक शिर शूल मे—भी यह उपचार लाभकारी होता है ।

वातपित्त ज्वर मे—इसके पत्र और सोठ का क्वाथ शक्कर मिलाकर पिलाते हैं ।

विषमज्वर पर—इसके पुष्प, गिलोय और आमले के क्वाथ मे शहद मिला सेवन करावे । (वैद्यजीवन)

(६) बालक के दतोद्गम के विकारशमनार्थ—बालक के दांत जब निकल रहे हो, तब इसके पुष्प और पिप्पली के सनभाग मिश्रित चूर्ण को आमले के रस मे या शहद में मिला उसके मसूढो पर मलने से दात शीघ्र निकल आते है, तथा कोई विकार नही होता । (यो र)

(७) अग्निदग्ध पर—पुष्प चूर्ण को अलसी या तिल तेल मे घोटकर लगाने से दाह शात होती तथा अन्य कोई उपद्रव नही हो पाते ।

यही प्रयोग विसर्प, कीटव्रण, लूताव्रण एव दुष्ट नाडीव्रण या नासूर पर भी लाभकारी होता है । नासूर पर उक्त मिश्रण मे ¼ उत्तम शहद मिला कर लगाने से और भी उत्तम एव शीघ्र लाभ होता है ।

नोट—मात्रा—पुष्प चूर्ण—अवस्थानुसार १ से ८ माशे तक । अति मात्रा मे यह कृमिजक है । निवारक अनार का रस ।

विशिष्ट योग—

(१) धातक्यादि चूर्ण (अतिसार नाशक) धाय-पुष्प, बेलगिरी, मोचरस, नागरमोथा, लोध, इन्द्रजौ, और सोठ समभाग महीन चूर्ण करले । इसे १।।२ मा० तक की मात्रा मे गुड मिश्रित तक्र के साथ सेवन करने से प्रबल अतिसार नष्ट होता है । (वृ० नि० र०)

(२) धातक्यादि तेल—(योनिव्यापन्नाशक)—धाय-पुष्प, आमला के पत्र, जलवेत (वेद), मुलैठी, नीलकमल, जामुन व आम की गुठली की गिरी, कसीस (हीराकसीस) लोध, कायफल, तेंदु की छाल, सोरठी मिट्टी या फिटकरी अनार छाल, गूलर छाल (या कच्चे गूलर) और बेल-गिरी १-१ तो० लेकर सबको पानी के साथ पीस कल्क बना ले । फिर तैल १२८ तो० तेल से दोगुना बकरी का मूत्र तथा उतना ही बकरी का दूध तथा उक्त कल्क एकत्र मिला पकावे । तेल मात्र शेष रहने पर छान ले ।

इस तेल की योनि मे उत्तरवस्ति देवे इसका पिचु (फाया तेल मे भिगोकर) योनि मे रखने, तथा कमर, पीठ व त्रिकसधि पर मालिश करने और गुदा मे स्नेहवस्ति देने से चिपचिपी, स्रावयुक्त, विप्लुता, उत्ताना (ऊर्ध्वमुखी या अन्तर्मुखी, उन्नता) उन्नता (ऊची उठी हुई या सूची मुखी), सूजी हुई, तथा जिसमे विस्फोट (फोडे या छाले हो) और शूल होता हो एसी योनिया शीघ्र विकार रहित हो जाती है । (च० चि० अ० ३०)

योनि-शैथिल्य पर—इसके पुष्प तथा त्रिफला के महीन चूर्ण को जामुन के रस मे पीस, योनि मे लेप करने से योनि सकुचित एव दृढ़ी होती है ।

(३) धातक्यासव—(प्रमेह नाशक)—इसके पुष्प १ सेर, कूट कर ३२ सेर जल मे, चतुर्थांश क्वाथ कर छान कर सन्धान पात्र मे भर कर, ठडा होने पर उसमें शहद ३ सेर, दालचीनी, छोटी इलायची, और तेजपत्र का चूर्ण ५-५ तो० हल्दी-चूर्ण १२ तो०, तथा शिलाजीत २० तो० मिला । पात्र का मुख सन्धान कर १५ दिन सुरक्षित रखें । पश्चात् छान कर शीशियो मे भर ले । मात्रा १ से २½ तो० तक, थोडे जल के साथ सेवन से सर्व प्रकार के प्रमेह दूर होते हैं ।-(बृहदासदारिष्ट सग्रह)

इसका प्रदर-नाशक आसव उक्त सग्रह ग्रथ मे देखें ।

धारा कदम्ब—दे०—कदम्ब मे । धाराफल—दे०—कमरख । धार—दे०—उस्तोखुद्दूस । धीपेन (धीवेन)—दे०—आमगुल । धूपवृक्ष —दे०—साल हुरा । धूप सरल—

देo—चीड। धूलिकदम—देo—हल्दु । धूलियागर्जन—देo—गरजन मे।

धोल

(*LINDENBERGIA URTICAEFOLIA*)

तिक्ता (कुटकी)-कुल (Scrophulariaceae) के इस वर्षायु, प्राय सर्वाङ्ग रोमश, ४ से १० इच लम्बे क्षुप के पत्र १-१½ इच लम्बे,-गूमा के-पत्रजैसे, बहुसिरा-युक्त, किनारे कगूरेदार, काण्ड के दोनो ओर एकान्तर या अभिमुख, पुष्प–काण्ड की प्रत्येक गाठ पर १-१ फूल, छोटा, गोल, चमकीला पीतवर्ण का, फल (बीज कोष) --रोमश, छोटी-छोटी कलियो के रूप मे होते हैं।

वर्षा से शीतकाल तक प्राय हर समय इसके पुष्प व फल देखे जाते है।

धोल

LINDENBERGIA URTICAEFOLIA LEHM

इसके क्षुप प्राय समस्त भारतवर्ष मे वर्षा के अन्त मे पुरानी दीवारो, देवालयो तथा नदी, नाले व तालावो के किनारे बहुतायत से होते हैं। उत्तर भारत मे कहीं-कहीं पैदा होते है।

नाम-

हिo—धोल। मo ढोल, धौक, गजधर। गुo-पथरच-टी, भींत चट्टी,। फामर बेल। बंo-गाजदार, ज्लदेव-सन्त। लेo—लिंडन बर्गिया अर्टिसीफोलिया।

गुणधर्म व प्रयोग—

साधारण तिक्त, सुगधित, कफ, कास, चर्मरोग-नाशक, व विपघ्न है।

इसका पत्र-रस पुरानी खासी, फेफडो की सूजन (ब्राकायटिस) मे उपयोगी है। कृमी, दाद, खुजली आदि चर्मरोगो पर—इसके रस मे हरी धनिये का रस, मिलाकर लगाते या इसके बीजो को पीस कर लगाते हैं। ज्वर रोगी को इसके पत्तो को पानी मे उबालकर बफारा देते है। विषैले कीटक-दश पर—पत्र-रस लगाते है।

धौर—देo—भिविया।

धौरा (*ZIZYPHUS RUGOSA*)

बदर (बेर) कुल (Rhamnaceae) के इस करोदा वृक्ष जैसे वृक्ष के पत्र बेर-जैसे, पुष्प- गुच्छो मे छोटे-छोटे श्वेत-वर्ण के, फल-बेर जैसे, पकने पर पीताभ, व खाने मे स्वादिष्ट होते हैं। मार्च से मई माय तक फलो की भरमार रहती है। दक्षिण के पश्चिमी घाट के निवासीयो के जीवन-निर्वाह का यह एक साधन है।

नाम—

हिo धौरा, चूरन, बेरझाड। मo—तोरन, चूरन। बंo-शियाकुल। लेo—झिझिफस रुगोसा, झिoग्लेब्रा(Z,Glabra)

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, अम्ल, दीपक, उष्णवीर्य, पित्तकारक, व ग्राही है। पके फल—मधुर, कषाय, स्निग्ध, कफ वात नाशक है।

(१) श्वेत प्रदर या अतिरज-स्राव पर—इसके फलो के समभाग नागरवेल (खाने के) पानो के डेठ और इन दोनो का वजन १ तोo हो तो ३ माo चूना मिला खरल कर चने जैसी गोलिया बना श्वेत प्रदर मे शीत जलसे, तथा रक्तप्रदर या अतिरज स्राव मे घृत से प्रात साय १-१ गोली देते है।

(२) मुख-रोग, जीभ मे छाले हो जाने पर-फलो को खाने मे लाभ होता है। कठ या गले में कफ भर जाने पर इसके पत्ता को चबाते हुए धीरे-धीरे रस के निगलने से गला साफ हो जाता है।

(३) चेचक की प्रारभिक दशा मे-पत्तो को भैंस के ताजे दूध मे पीस कर पिलाने से चेचक की तीव्रता कम हो जाती है।

(४) व्रण-रोपणार्थ—पत्र-क्वाथ से प्रक्षालन करने से शीघ्र व्रणरोपण होता है। इससे त्वचा के चट्टे भी दूर होते हैं। —(वoगुo)

नोट—इसके वृक्ष पूर्वीय हिमाचल प्रदेश, दक्षिण भारत, पश्चिम घाट तथा सीलोन मे बहुत होते हैं।

वनौषधि-विशेषांक (तृतीय भाग)

की

सन्दर्भ-सूची

(अकारादि क्रमानुसार)

नोट—विस्तार भय से कई वनौषधियो के अन्य भाषा के नाम तथा कई रोग-प्रयोगो की सूची नही दी जा सकी है।

अ

आ

च

थ--द

INDEX

LATIN AND ENGLISH NAMES

A-B

C

D-E

संस्थापित १८६८

धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ़ (अलीगढ़)
की

प्रामाणिक आयुर्वेदिक औषधियां
एवं
चिरपरीक्षित सफल पेटेन्ट औषधियां
(केवल रजिस्टर्ड चिकित्सको के लिए)

हम गत ६६ वर्षों से शास्त्रोक्त-विधि से अत्युत्तम द्रव्यो द्वारा योग्य एव अनुभवी व्यक्तियो की देख-रेख मे पूर्ण प्रभावशाली आयुर्वेदिक औषधियो का निर्माण कर भारत के प्रतिष्ठित चिकित्सको को उचित मूल्य पर सप्लाई करते हैं। हम अपनी औषधियो का अन्य फार्मेसियो की तरह धुआधार प्रचार नही करते, लेकिन हमारी औषधिया अपने गुणो के कारण उत्तरोत्तर अधिकाधिक प्रचार प्राप्त करती हैं। आपसे भी साग्रह निवेदन है कि हमारी औषधियो को एक बार व्यवहार करके उनकी परीक्षा अवश्य करें।

आवश्यक निवेदन

इस समय हर प्रकार की वस्तुओ की उत्तरोत्तर महगाई के कारण विवशत हमको औषधियो के भाव बढाने पडे हैं तथा आगे भी कब बढाने पड जाय, नही कहा जा सकता। अस्तु जब जैसा भाव होगा उसी के अनुसार औषधिया भेजी जायेंगी।

—नियम—

१—कमीशन

अ १५.०० से कम मूल्य की दवा मगाने पर कोई कमीशन नही दिया जायगा।

आ ३५.०० तक की दवा मगाने पर १२॥ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

इ ३५.०० से अधिक मूल्य की दवा मगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

ई १००.०० से अधिक मूल्य की दवा मगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा तथा मालगाडी का किराया कार्यालय देगा।

उ ५०.०० से अधिक नैट-मूल्य (कमीशन कम करके) की केवल रस-रसायन मूल्यवान् औषधिया मगाने पर पोस्ट-व्यय कार्यालय देगा।

२—आर्डर देते समय—

अ आदेशपत्र मे औषधियो का नाम, उनका नम्बर, तोल पैंकिंग की तोल तथा मूल्य सभी बाते स्पष्ट लिखे। नीचे मूल्य का जोड लगावे तथा उपयुक्त नियमानुसार जो कमीशन बनता हो उसको भी लिखे। यदि आप एजेट है तो एजेसी—नम्बर भी लिखें।

आ हर पत्र मे अपना पूरा पता तथा पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखे।

इ पार्सल पोस्ट से भेजी जाय या रेल से, सवारीगाडी से भेजी जाय या मालगाडी से यह विवरण अवश्य लिखना चाहिये।

ई आर्डर देते समय चौथाई मूल्य अथवा कम से कम ५.०० एडवास मनियार्डर से अवश्य भेजे तथा आदेशपत्र में मनियार्डर का नम्बर व तारीख दे।

३—दवा भेजते समय पैंकिंग करने मे पूर्ण सावधानी रखी जाती है और प्राय टूट-फूट नही होती। किन्तु अगर किसी कारण कोई टूट-फूट हो जाती है तो उसका जिम्मेदार कार्यालय नही है।

४—पार्सल मगाकर वी० पी० लौटाना अनुचित है। एक बार वी० पी० वापस आने पर कार्यालय पुन उस ग्राहक को वी पी न भेजेगा तथा खर्चा लेने का हकदार होगा। यदि बिल में कोई भूल है तो वी पी छुडाकर पत्र डालकर उसका सुधार करालें।

५—हमारे यहा उधार का लेना-देना नही है। बीजक का रुपया बैंक या वी पी से लिया जाता है।

६—उत्तर प्रदेश से बाहर के ग्राहको को अन्तर्प्रान्तीय विक्रीकर १० प्रतिशत देना होगा। सी—फार्म आर्डर के साथ (बाद में नही) मिलने पर २ प्रतिशत टैक्स लगाया जायगा।

७—ग्राहको को पार्सल का बारदाना, पैंकिंग व्यय, पोस्ट-व्यय, स्टेशन पहुँचाई आदि सभी खर्च पृथक देने होते है।

८—धन्वन्तरि कार्यालय के किसी भी विभाग का कोई भी झगडा अलीगढ की अदालत में तय होगा।

९—नियमो में अथवा औषधियो के भावो में किसी भी समय सूचना दिये बिना, परिवर्तन करने का कार्यालय को पूरा अधिकार है।

अन्तर्प्रान्तीय विक्रीकर

यह अन्तर्प्रान्तीय विक्रीकर उत्तरप्रदेश से बाहर के सभी ग्राहको, एजेन्टो से १० प्रतिशत अवश्य लिया जायगा। सी-फार्म आर्डर के साथ भेजने पर ही २ प्रतिशत सेलटैक्स लिया जाता है। अतएव सी-फार्म न भेजकर सेलटैक्स की छूट करने के लिये कृपया आग्रह न करे। सी-फार्म न मिलने पर १० प्रतिशत विक्रीकर अवश्य लगाया जायगा। बिल पहुचने पर यदि आप सी-फार्म भेजते है तो हम ८ प्रतिशत विक्रीकर आपको वापस कर देंगे। उत्तर प्रदेश के ग्राहको से २ प्रतिशत सेलटैक्स ही लिया जायगा।

६६ वर्ष पुराना विश्वस्त व विशाल कारखाना

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़

द्वारा निर्मित

औषधियां

कूपीपक्व रसायन

	१० ग्राम	३ ग्राम	१ ग्राम
सिद्ध मकरध्वज नं० १	५१ ००	१५ ३५	५ १५
,, ,, नं० २	३४.००	१० २५	३ ४५
,, ,, नं० ३	२५ ००	७ ५५	२ ५५
,, ,, नं० ४	३० ००	९ ०५	३ ०५
,, ,, नं० ५	२१ ००	६ ३५	२ १५
,, ,, न० ६	१५ ००	४ ५५	१ ५५
सिद्ध चन्द्रोदय न० १	८५ ००	२५ ५५	८.५५
अनुपान मकरध्वज	७ ००	२ १५	० ७५
रस सिन्दूर नं० १	१३ ००	४ ००	१ ३५
रस सिन्दूर नं० २	१० ५०	३ २५	१ १०
रस सिन्दूर नं० ३	८ ००	२ ४५	० ८५
मल्ल चन्द्रोदय	५१ ००	१५ ३५	५.१५
मल्ल सिन्दूर	९.००	२ ७५	० ९५
ताल सिन्दूर	९·००	२ ७५	० ९५
ताल सिन्दूर	९ ००	२ ७५	० ९५
ताम्र सिन्दूर	९ ००	२ ७५	० ९५
शिला सिन्दूर	९ ००	२ ७५	० ९५
स्वर्णावग भस्म	३ ५०	१ १०	० ४०
मृत सजीवनी रस	४ ५०	१ ४०	० ५०
रस कर्पूर	१० ५०	३ २५	१ १०
रस माणिक्य	३ ५०	१ १०	० ४०
समीरपन्नग रस नं० १	३०.००	९ ०५	३ ०५
समीरपन्नग रस न० २	९ ००	२ ७५	० ९५
पञ्चसूत रस	९.००	२ ७५	० ९५
स्वर्णभूपति रस	३० ००	९ ०५	३ ०५
व्याधिहरण रस	१५ ००	४ ५५	१ ५५

भस्में

अभ्रक भस्म न० १	×	४४ ००	१३ ३५
		१ ग्राम	४.५०

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
अभ्रक भस्म न० २	१६ ५०	३ ५०	१ १०
अभ्रक भस्म न० ३	८ २५	१ ७५	०.६०
अकीक भस्म	१६ ५०	३ ५०	१ १०
कपर्द भस्म	२ ००	० ४५	० २०
कान्त लौह भस्म	१० ००	२ ०५	० ६५
कुक्कुटाण्डत्वक भस्म	४ ००	० ८५	० ३०
गोदन्तीहरताल भस्म	२ ००	० ४५	० २०
जहरमोहरा भस्म	१३ ५०	२ ७५	० ९०
तबकी हरताल भस्म	×	९ ००	२ ७५
ताम्र भस्म न० १	×	७ ००	२ १५
ताम्र भस्म न० २	१७ २५	३ ५०	१ १०
ताम्र भस्म नं० ३	१० ००	२ ०५	० ६५
नाग भस्म न० १	१५ ००	३ ०५	० ९५
नाग भस्म न० २	६ ००	१ ४५	० ५०
प्रवाल भस्म न० १	३० ००	६ ०५	१ ९०
प्रवाल भस्म न० २	१० ००	२ ०५	० ६५
प्रवाल भस्म न० ३	१० ००	२ ०५	० ६५
प्रवाल भस्म न० ४	९ ००	१ ८५	० ६०
प्रवाल भस्म [चन्द्रपुटी]	९ ००	१ ८५	० ६०
वङ्ग भस्म न० १	१५ ००	३ ०५	० ९५
वङ्ग भस्म न० २	१० ००	२ ०५	० ६०
वैक्रान्त भस्म	×	७ २५	२ २५
मल्ल भस्म	×	६ ००	१ ८५
मृगशृङ्ग भस्म	२ ७५	० ६०	० २५
माणिक्य भस्म	×	१५ ००	४ ५५
माण्डूर भस्म न० १	३ ७५	० ८०	० ३०
माण्डूर भस्म न० २	२ ७५	० ६०	० २५
मुक्ता भस्म न० १	×	×	३६ ००
मुक्ता भस्म नं० २	×	×	२७ ००

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
यशद भस्म	८ ५०	१ ७५	० ५५
रौप्य भस्म नं० १	×	१२ ००	३.६५
रौप्य भस्म नं० २	×	६.००	२ ७५
लौह भस्म नं० १	४० ००	८.००	२.४५
लौह भस्म न० २	८.००	१ ७०	० ५५
लौह भस्म न० ३	४ ५०	१ ००	०.३०
स्वर्ण भस्म	×	×	७५ ००
स्वर्णमाक्षिक भस्म	११ ००	२ ३०	० ७५
शख भस्म	१ ७५	० ४०	० १५
शकर लौह भस्म	×	४ ५०	१ ४०
शुक्ति (मोती सीप) भस्म	२.२५	० ५०	०.२०
सगजराहत भस्म	३ ७५	० ८०	० ३०
त्रिवङ्ग भस्म न० १	२२ ५०	४ ५०	१.४०
त्रिवङ्ग भस्म न० २	४ ५०	१ ००	० ३५

पिष्टी

	५० ग्राम	१० ग्राम	३ ग्राम
प्रवाल पिष्टी	६ ००	२ ००	० ६५
मुक्ता पिष्टी न० १	×	११० ००	३३ ००
मुक्ता पिष्टी न० २	×	८० ००	२४ ०५
अकीक पिष्टी	१० ००	२ ३०	० ७५
जहरमोहरा पिष्टी	१० ००	२ ३०	०.७५
कहरवा पिष्टी	४६ ००	१० ००	३ २५
मुक्ताशुक्ति पिष्टी	३.२५	० ७०	० २५
माणिक्य पिष्टी	२८ ००	६ ००	१.८५
वैक्रान्त पिष्टी	२८ ००	६ ००	१ ८५

पर्पटी

	१० ग्राम	१ ग्राम
ताम्र पर्पटी न १	८ ००	० ८५
ताम्र पर्पटी न० २	४ ००	० ४५
पचामृत पर्पटी न० १	८ ००	० ८५
पचामृत पर्पटी न० २	४ ००	० ४५
विजय पर्पटी (स्वर्ण मुक्ताघटित)	३५ ००	३ ५५
वोल पर्पटी न० १	८ ००	० ८५
वोल पर्पटी न० २	४ ००	० ४५
रस पर्पटी न० १	७ ००	० ७५
रस पर्पटी न० २	३ ५०	० ४०
लोह पर्पटी न० १	८.००	० ८५
लोह पर्पटी न० २	४.००	० ४५
श्वेत पर्पटी	० ४५	०.१५
स्वर्ण पर्पटी न० १	३५.००	३.५५
स्वर्ण पर्पटी न० २	२१ ००	२.१५

शोधित द्रव्य

	१०० ग्राम	१० गाम
कज्जली न० १	२०.००	२ १०
शुद्ध गंधक आमलासार	४ ००	०.५०
शुद्ध वच्छनाग	६.००	०.६५
शुद्ध विषवीज (वस्त्रपूत)	७.००	० ७५
शुद्ध जयपाल	७ ००	० ७५
शुद्ध ताल (हरताल)	१२.००	१.२५
शुद्ध भल्लातक	५ ००	०.५५
शुद्ध शिला (मसिल)	१२.००	१.२५
शुद्ध हिंगुल (हसपदी)	२० ००	२.१०
शुद्ध पारद हिंगुलोत्थ	३४ ००	३.५०
शुद्ध पारद विशेष	×	७ ००
पारद संस्कारित	×	२१ ००
शुद्ध ताम्र चूर्ण	१ किलोग्राम	१६ ००
शुद्ध लोह (फौलाद चूर्ण)	,,	७ ००
शुद्ध धान्याभ्रक (शुद्ध वज्राभ्रक)	,,	६ ००
शुद्ध मण्डूर	,,	२ ००

बहुमूल्य रस रसायन गुटिका

	१० ग्राम	१ ग्राम
आमवातेश्वर रस	१६.००	१ ७०
वृ० कस्तूरी भैरव रस (भैष०)	२४.००	२.४५
कस्तूरी भैरव रस	२०.००	२ ०५
कस्तूरी भूषण रस	२१ ००	२.१५
वृ० कामचूडामणि रस (भैष०)	१५.००	१ ५५
कामदुघा रस (मौक्तिकयुक्त)	१२ ००	१.२५
कामिनीविद्रावण रस	१४.००	१.४५
कुमार कल्याण रस	४५ ००	४ ५५
कृष्ण चतुर्मुख रस	१८ ००	१ ८५
चतुर्मुख चिन्तामणि रस	२४ ००	२ ४५

	१० ग्राम	१ ग्राम
जयमगल रस (स्वर्णयुक्त)	३६.००	३ ६५
प्रवाल पचामृत रस	१४.००	१.४५
पुटपक्व विषमज्वरातक लोह	१८ ००	१ ८५
वृ० पूर्णचन्द्र रस	२४ ००	२.४५
वसन्त कुसमाकर रस	३५ ००	३.५५
वृ० वातचिन्तामणि रस	३५ ००	३ ५५
ब्राह्मीवटी न १ (स्वर्ण मुक्ता युक्त)	४० ००	४ ०५
मृगाक पोटली रस	६६ ००	६ ६५
मधुमेहान्तक रस	१० गोली	३ ००
मधुरान्तकवटी	१२.००	१ २५
महाराज नृपति वल्लभ रस	१०.००	१.०५
महालक्ष्मी विलास रस	१२ ००	१.२५
महाराज वग भस्म	१२ ००	१.२५
योगेन्द्र रस	४८ ००	४ ८५
रसराज रस	३२ ००	३ २५
राजमृगाक रस	३५ ००	३.५५
वृ० लोकनाथ रस	५ ००	०.५५
श्वास चिन्तामणि रस	२०.००	२ ०५
स्वर्ण वसन्त मालती न० १	३५.००	३ ५५
स्वर्ण वसन्त मालती न० २	२१ ००	२ १५
सर्वांग सुन्दर रस	२८ ००	२ ८५
सग्रहणी कपाट रस न० १	४० ००	४ ०५
सूतशेखर रस न० १ (स्वर्णयुक्त)	१७ ००	१ ७५
हिरण्यगर्भ पोटली रस	३६ ००	३ ६५
हेमगर्भ रस	४० ००	४ ०५

रस रसायन गुटिका

	५० ग्राम	१० ग्राम
अग्निकुमार रस	३ २५	०.७०
अजीर्ण कण्टक रस	३ ७५	० ८०
अर्शान्तक वटी	७ ००	१ ४५
अग्नितुडीवटी	३ ७५	० ८०
आनन्द भैरव रस [लाल]	५ ००	१ ०५
आनन्दोदय रस	९ ००	१ ८५
आदित्य रस	६ २५	१ ३०
आमलकी रसायन	५ ५०	१ १५
आरोग्यवर्द्धिनी वटी	४ २५	० ९०
इच्छाभेदीरस	४ २५	० ९०
इच्छाभेदा वटी	५ ००	१ ०५
उपदशकुठार रस	३.७५	० ८०
एकागवीर रस	२४ ००	५ ००
एलादि वटी	२ २५	० ५०
एलुआदिवटी	२ २५	० ५०
कर्पूर रस	२८ ००	५ ७०
कनक सुन्दर रस	३ ७५	० ८०
कफ कुठार रस	६.५०	१.३५
कफकेतु रस	४ २५	०.९०
करजादिवटी	१० गोली	१.००
कामधेनु रस	१२ ००	२.५०
कामदुधा रस न० २	१०.००	२.१०
काकायन गुटिका	२.२५	० ५०
कीटमर्द रस	२ ७५	० ६०
क्रव्यादि रस	२० ००	४.५०
क्रमिकुठार रस	५ ५०	१ १५
खैरसार वटी	२ २५	० ५०
गङ्गाधर रस	१० ००	२ ०५
गधक वटी	२ २५	० ५०
गधक रसायन	९ ००	१ ८५
गर्भविनोद रस	४ २५	० ९०
गर्भपाल रस	१० ००	२ ०५
गर्भ चिन्तामणि रस	१७.००	३ ५०
गुल्मकुठार रस	६ ५०	१.३५
गुल्मकालानल रस	६ ५०	१ ३५
गुड पिप्पली	२ ७५	०.६०
गुडमारवटी	२.२५	०.५०
ग्रहणी गजेन्द्र रस	१४ ००	३ ००
ग्रहणीकपाट रस-न २	७-००	१ ५०
ग्रहणीकपाट रस [लाल]	१४.००	३ ००
घोडा चोली रस	३ ७५	०.८०
चन्द्रप्रभावटी	४ २५	० ९०
चन्द्रोदय वर्त्ति	३ ५०	० ७५
चन्द्रकला रस	६ ००	१ २५
चन्द्राशु रस	५ ५०	१ १५

	५० ग्राम	१० ग्राम
चन्द्रामृत रस	५ ००	१ ०५
चित्रकादि वटी	२ ००	० ४५
ज्वरांकुश रस [महा]	४ २५	०.९०
जयवटी	८ ००	१ ७५
जलोदरादि वटी	४ ५०	१ ००
जातीफल रस	७ ००	१ ५०
तक्र वटी	५ ५०	१.१५
दुर्जलजेता रस	४ २५	० ९०
दुग्ध वटी न १	२८ ००	६ ००
दुग्ध वटी न २	४.२५	०.९०
नव ज्वर हर वटी	३ ५०	० ७५
नष्ट पुष्पान्तक रस	१७ ००	३ ५०
नृपतिवल्लभ रस	७ ००	१ ५०
नाराच रस	४ २५	० ९०
नित्यानन्द रस	५ ५०	१ १५
प्रताप लकेश्वर रस	४ २५	० ९०
प्रदरारि रस	४.२५	० ९०
प्रदरातक रस	८.००	१ ७०
प्लीहारि रस	४ २५	० ९०
प्राणेश्वर रस	१४ ००	३ ००
प्राणदा गुटिका	३.२५	० ७०
पचामृत रस न० १ [नासारोग]	३ ५०	० ७५
पचामृत रस न २ [शोथ रोग]	४ ५०	१ ००
पाशुपत रस	५.००	१ ०५
पीपल ६४ पहरा	१७ ००	३ ५०
वृ० शखवटी	४ २५	० ९०
वृ० नायकादि रस	२ ७५	० ६०
वहुमूत्रांतक रस	२०.००	४ १०
वाहुशाल गुड	२ ७५	० ६०
वालामृत रस [वटी]	२२ ००	४ ५०
व्राह्मीवटी न० २	१० ००	२ ०५
वात गजाकुश रस	८ ७५	१ ८०
विषमुष्टिका वटी	४ २५	० ९०
वेताल रस	१४ ००	३ ००
व्योषादि वटी	२ २५	० ५०
महामृत्युञ्जय रस[कृष्ण]	५ ५०	१ १५
महामृत्युञ्जय रस [लाल]	५ ५०	१.१५

	५० ग्राम	१० ग्राम
मकरध्वज वटी	५०० गोली	३६ ००
महागधक रस	५ ५०	१ १५
मरिच्यादि वटी	२ ५०	० ५५
महा शूलहर रस	७.००	१.५०
महा वातविध्वस रस	१५ ००	३ ०५
मार्कण्डेय रस	४ २५	० ९०
मूत्रकृच्छ्रातक रस	१७ ००	३ ५०
मेहमुद्गर रस	५ ००	१.१०
रज.प्रवर्तक वटी	७ ००	१,५०
रक्तपित्तातक रस	५ ५०	१.१५
रस पिप्पली	१५.००	३.०५
रामवाण रस	४.२५	०.९०
लवगादि वटी	४ २५	० ९०
लशुनादि वटी	२ ५०	० ५५
लघु मालती वसन्त	१५ ००	३ ०५
लक्ष्मी विलास रस [नारदीय]	८ ५०	१ ७५
लक्ष्मी नारायण रस	१५ ००	३-०५
लाई (रस) चूर्ण	४ २५	० ९०
लीलावती गुटिका	३ ७५	० ८०
लीला विलास रस	७ ००	१ ५०
लोकनाथ रस	८ ००	१.७०
श्वासकुठार रस	४ २५	० ९०
शखवटी	२ २५	०.५०
संगमनी वटी	६.००	१ २५
शिरोवज्र रस	५ ००	१ १०
शिलाजीत वटी	५ ००	१ १०
शीतभजी रस (वटी)	१० ००	२ ०५
शूलवज्रिणी वटी	४ २५	० ९०
समीर गजकेशरी	२४.००	४ ९०
शृङ्गाराभ्रक रस	१०.००	२ ०५
स्मृतिसागर रस	१८ ००	३ ६५
सन्निपातभैरव रस	७ ००	१.५०
सजीवनी वटी	३ ००	० ६५
सर्पगधा वटी	६ ५०	१ ४०
समीरगजकेशरी	२५ ००	५ ०५
सिद्ध प्राणेश्वर रस	५ ५०	१ १५
सूतशेखर रस	१५ ००	३ ०५

	५० ग्राम	१० ग्राम
सूरण मोदक बृहद्	२.२५	०.५०
सौभाग्य वटी	४ २५	०.९०
हिंग्वादि वटी	२.२५	०.५०
हृदयार्णव रस	१४ ००	२ ९०
त्रिपुर भैरव रस	५ ५०	१ १५
त्रिभुवन कीर्ति रस	५ ५०	१ १५
त्रिविक्रम रस	१५ ००	३ ०५

लौह मांडूर

	५० ग्राम	१० ग्राम
अम्लपित्तान्तक लौह	७ ००	१ ५०
चन्दनादि लौह (ज्वर)	७ ००	१ ५०
चन्दनादि लौह (प्रमेह)	८.७५	१.८०
ताप्यादि लौह	१७ ५०	३ ५५
धात्री लौह	६ ००	१ २५
नवायस लौह	४ ००	० ८५
प्रदरारि लौह	७ ५०	१ ६०
प्रदरान्तक लौह	९.००	१ ९०
पुनर्नवादि माडूर	४ ००	० ८५
बिडङ्गादि लौह	५ ००	१ ०५
विषमज्वरातक लौह	७ ५०	१ ६०
यकृतहर लौह	६ ५०	१ ३५
शोथोदरारि लौह	९ ००	१.९०
सर्वज्वरहर लौह	६ ५०	१ ३५
सप्तामृत लौह	६ ५०	१ ३५
त्र्यूषणादि लौह	६ ००	१ २५

गुग्गुल

	५० ग्राम	१० ग्राम
अमृतादि गुग्गुल	२ २५	० ५०
काचनार गुग्गुल	२ ००	० ४५
किशोर गुग्गुल	२ ००	० ४५
गोक्षुरादि गुग्गुल	२.००	० ४५
पुनर्नवादि गुग्गुल	२ ००	०.४५
वृ० योगराज गुग्गुल	६.७५	१ ४०
योगराज गुग्गुल	२ ००	०.४५
रसाभ्र गुग्गुल	६.००	१.२५

	५० ग्राम	१० ग्राम
रास्नादि गुग्गुल	२.००	० ४५
सिंहनाद गुग्गुल	२ २५	० ५०
त्रयोदशाग गुग्गुल	२.२५	० ५०
त्रिफलादि गुग्गुल	२ ००	०.४५

क्वाथ

	१ किलो ग्राम	१०० ग्राम
दशमूल क्वाथ	१.७५	० २५
२० ग्राम की १०० पुडिया		५ ५०
दार्व्यादि क्वाथ	४ ००	० ५५
देवदार्व्यादि क्वाथ	३.७५	० ५०
द्राक्षादि क्वाथ	२ ७५	०.४०
बलादि क्वाथ	२.२५	० ३५
महामजिष्ठादि क्वाथ	४ ००	०.५५
महारास्नादि क्वाथ	४ ००	० ५५
त्रिफलादि क्वाथ	३ ००	० ४५

चूर्ण

	१ किलोग्राम	५० ग्राम
अग्निमुख चूर्ण	१२ ५०	० ८०
अविपत्तिकर चूर्ण	१२ ५०	० ८०
अजीर्णपानक चूर्ण	१५ ००	० ९५
अग्निवल्लभ क्षार	२२.००	१ ४०
उदरभास्कर चूर्ण	१६ ००	१ ००
एलादि चूर्ण	२० ००	१ ३०
कपित्थाष्टक चूर्ण	१२ ५०	० ८०
कामदेव चूर्ण	१६.००	१.००
गगाधर चूर्ण	१२.५०	०.८०
चन्दनादि चूर्ण	१२ ५०	०.८०
ज्वरभैरव चूर्ण	१२ ५०	० ८०
जातीफलादि चूर्ण	२५ ००	१ ५०
तालीसादि चूर्ण	२० ००	१ ३०
दशनसंस्कार चूर्ण	१६ ००	१ ००
शक्तिदा (धातुस्रावहर) चूर्ण	२४.००	१ ५०
नारायण चूर्ण	१२ ५०	०.८०
निम्बादि चूर्ण	१२ ५०	० ८०
प्रदरातक चूर्ण	१२.५०	० ८०

	४५५मि लि. (१ पौंड)	११४मि.लि. (४ औंस)	५७मि लि. (२ औंस)
किरातादि तैल	८ ००	२ १०	१ ०५
कुमारी तैल	८ २५	२.१५	१ १०
ग्रहणी मिहिर तैल	८ २५	२.१५	१ १०
गुडूच्यादि तैल	८.२५	२ १५	१.१०
महा चन्दनादि तैल	८ ५०	२ २०	१ १५
चन्दनबलालाक्षादि तैल	६ ००	२ ३०	१.२०
जात्यादि तैल	६ ००	२.३०	१ २०
दशमूल तैल	६ ००	२ ३०	१.२०
दार्व्यादि तैल	१० ००	२ ६०	१ ३५
महानारायण तैल	६ ००	२ ३०	१ २०
पिप्पल्यादि तैल	६ ००	२ ३०	१ २०
पिंड तैल	११ ००	२ ८०	१ ५०
पुनर्नवादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
ब्राह्मी तैल	८.२५	२ १५	१ १०
बिल्व तैल	११ ००	२ ८०	१.५०
विषगर्भ तैल	८ २५	२ १५	१ १०
भृङ्गराज तैल	६ ००	२ ३०	१ २०
महाविषगर्भ तैल	६ ००	२ ३०	१ २०
बैरोजा का तैल	११ ००	२ ८०	१ ५०
महामरिच्यादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
महा माष तैल	८ २५	२ १५	१ १०
मोम का तैल	१६ ००	४ ०५	२ १०
राल का तैल	१५ ००	३ ८०	१ ६५
लाक्षादि तैल	६ ००	२ ३०	१ २०
शुष्कमूलादि तैल	८ २५	२ १५	१ १०
षड्बिन्दु तैल	८ २५	२.१५	१ १०
हिमसागर तैल	६ ००	२ ३०	१ २०
क्षार तैल	१५ ००	३ ८०	१ ६५

घृत

	४५५मि लि (१ पौंड)	११४मि लि (४ औंस)	५७मि लि. (२ औंस)
अर्जुन घृत	१० ००	२ ६०	१ ३५
अशोक घृत	१०.००	२ ६०	१ ३५
अग्नि घृत	१० ००	२ ६०	१ ३५
कदली घृत	११ ००	२ ८०	१.५०
कामदेव घृत	१२ ००	३ ००	१ ६०
दूर्वादि घृत	६.००	२ ३०	१ २०
धात्री घृत	६ ००	२ ३०	१ २०
पंचतिक्त घृत	६ ००	२ ३०	१ २०
फल घृत	१० ००	२ ६०	१ ३५
ब्राह्मी घृत	११ ००	२ ८०	१ ५०
महा बिन्दु घृत	११ ००	२ ८०	१ ५०
महात्रिफलादि घृत	११ ००	२ ८०	१ ५०
शृङ्गीगुड घृत	८ २५	२ १५	१ १०
सारस्वत घृत	६ ००	२ ३०	१ २०

क्षार सत्व द्राव

	१०० ग्राम	१० ग्राम
वज्र क्षार	३ ००	० ३५
अपामार्ग क्षार	३ ००	० ३५
इमली क्षार	३ ००	० ३५
वासा क्षार	४ ००	० ४५
कटेरी क्षार	४ ००	० ४५
कदली क्षार	३ ५०	० ४०
तिल क्षार	४ ००	० ४५
मूली क्षार	४ ००	४५
ढाक क्षार	३ ००	० ३५
आक क्षार	३ ००	० ३५
केतकी क्षार	३ ००	० ३५
चना (चणक) क्षार	४ ००	० ४५
यव क्षार	×	० २५
गिलोय सत्व	४ ००	० ४५
भीमसैनी कपूर	×	५ ४०
नाडी क्षार	४ ००	० ४५

नेत्र बिन्दु २२७ मि लि (८ औंस) ११ ००
,, १४ मि लि (आध औंस) ० ८७
शखद्राव ११४ मि लि (४ औंस) ८ ५०
,, २८ मि लि (१ औंस) २ ००

अवलेह पाक

	१ किलोग्राम	४५० ग्राम
च्यवनप्राश अवलेह	७ ००	३ ५०

२५० ग्राम २.००

	१ किलोग्राम	२५० ग्राम
कुटजावलेह	९.००	२ ४०
कण्टकारी अवलेह	८ ००	२ २५
कुशावलेह	९ ००	२ ५०
वासावलेह	९ ००	२ ५०
ब्राह्म रसायन	११ ५०	३ ००
आर्द्रक खण्ड	९ ००	२ ५०
विषमुष्टिकावलेह	५० ग्राम	९ ७५
मधुकासवलेह	१७५ ग्राम (१५ तोला)	३ ५०
कन्दर्प सुन्दर पाक	१२ ००	१२५ ग्राम १ ७५
बादाम पाक	१५ ००	४ ००
मूसली पाक	१५ ००	४ ००
सुपारीपाक	१२ ००	३ ७५
सौभाग्य शुण्ठी पाक	१२ ००	३ ७५

मलहम

	८ औंस	४ औंस
जात्यादि मलहम	४ ५०	२.४०
पारदादि मलहम	५ ००	२ ६०
निम्बादि मलहम	६ ००	३ १०
दशांग लेप	४ ५०	२ ४०
अग्निदग्ध व्रणहर मलहम	४ ००	२ १०

बहुमूल्य द्रव्य

	१० ग्राम
कस्तूरी न० १ [सर्वोत्तम]	१०० ००
कस्तूरी काश्मीरी उत्तम	६० ००
केशर काश्मीरी मोगरा	१८ ००
केशर चूरा	८ ००
अम्बर	३६ ००
गोरोचन	४० ००
चांदी के वर्क	६ ००

नोट—यह भाव नैट हैं। इन भावो पर किसी को भी किसी प्रकार का कमीशनादि नही दिया जायगा। भावो मे घट बढ होना भी सम्भव है। आर्डर सप्लाई के समय जो भाव होगा वह लगाया जायगा।

हमारे सफल सैट

श्री रोगहर सैट—[illegible] १ किलो [illegible] २५०, १ शीशी २०० ग्राम [illegible]

हिस्टीरियाहर सैट [illegible] मूल्य १ ०० रु०

निर्बलताहर सैट [illegible] पोटली [illegible] मूल्य ८ ०० रु०

[illegible] सैट [illegible] १ शीशी २ ०० रु०

[illegible] पोटली—[illegible] मूल्य २.०० रु०

श्वेतकुष्टहर सैट—इसमे [illegible] वटी व घृत तीन औषधियां है। इन तीनों औषधियों के विधिवत् प्रतिदिन सेवन करने से श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है। मूल्य १५ दिन की तीनों औषधियों का ७ ०० रु०

रक्तदोषहर सैट—इसमें [illegible] सालसा परेला, तालकेश्वर रस, [illegible]—ये तीन औषधियां हैं। इनके सेवन से सभी प्रकार के रक्त विकार जनित विकार तथा चर्मरोग नष्ट होकर शरीर सुडौल बनता है। मूल्य १५ दिन की तीन दवाओं का ८ ००, पोष्ट व्यय ४ ०० रु०

अर्शान्तक सैट—इसमें वटी, मलहम तथा चूर्ण तीन औषधियां हैं। इनके प्रयोग से दोनों प्रकार के अर्श नष्ट होते हैं। अर्श से आने वाला रक्त २-१ दिन मे बन्द हो जाता है। मूल्य १५ दिन की तीनो दवाओ का ५ ००

वातरोगहर सैट—इसमे वातरोगहर तैल, रस एव अवलेह-ये तीन औषधिया हैं। इन तीनों औषधियो के व्यवहार से जोडो का दर्द, सूजन, अङ्ग विशेष की पीडा, पक्षाघात आदि समस्त वात-व्याधियो मे लाभ होता है। १५ दिन सेवन-योग्य तीनो औषधियो का मूल्य १०,००

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिए—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा निर्मित

अनुभूत एवं सफल पेटेण्ट दवायें

हमारी ये पेटेन्ट औषधिया ६५ वर्ष से भारत भर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध वैद्यराजो और धर्मार्थ औषधालयो द्वारा व्यवहार की जा रही है। अत इनकी उत्तमता के विषय मे किसी प्रकार का सदेह नही करना चाहिये।

मकरध्वज वटी

(अर्थात् निराशबंधु)

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति मे सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं आयुफलप्रद महौपधि सिद्ध मकरध्वज न० १ अर्थात् चन्द्रोदय है। इसी अनुपम रसायन द्वारा इन गोलियो का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त अन्य मूल्यवान एव प्रभावशाली द्रव्यो को भी इसमे डाला जाता है। ये गोलिया भोजन को पचाकर रस, रक्त आदि सप्त धातुओ को क्रमश सुधारती हुई शुद्ध वीर्य का निर्माण करती और शरीर मे नव-जीवन व नव-स्फूर्ति भर देती है। जो व्यक्ति चन्द्रोदय के गुणो को जानते हैं, वे इसके प्रभाव मे सन्देह नही कर सकते। वीर्य-विकार के साथ होने वाली खासी, जुकाम, सर्दी, कमर का दर्द, मन्दाग्नि, स्मरण-शक्ति का नाश आदि व्याधिया भी दूर होती हैं। क्षुधा बढती व शरीर हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनता है। जो व्यक्ति अनेक औषधिया सेवन कर निराश हो गये है उन निराश पुरुषो को यह औषधि बन्धु तुल्य सुख देती है। इसीलिये इसका दूसरा नाम 'निराश बन्धु' है।

४० वर्ष की आयु के बाद मनुष्य को अपने मे एक प्रकार की कमी और शिथिलता का अनुभव होता है। ऐसा रोग प्रतिरोधक शक्ति मे कमी आ जाने के फलस्वरूप होता है। मकरध्वज वटी इस शक्ति को पुन उत्तेजित करती और मनुष्य को सबल व स्वस्थ बनाये रखती है। मूल्य—१ शीशी (४१ गोलियो की) ३ ००, छोटी शीशी (२१ गोलियो की) १ ६०, १२ शीशी (४१ गोलियो वाली) का २५ ०० रु० नैट।

कुमारकल्याण घुटी

(बालकों के लिये सर्वोत्तम मीठी घुटी)

हमने बडे परिश्रम से आयुर्वेद मे वर्णित बालको की रक्षा करने वाली दिव्य औषधियो से यह घुटी तैयार की है। इसके सेवन करने वाले बालक कभी बीमार नही होते किंतु पुष्ट हो जाते हैं। यह बालको को बलवान बनाने की बडी उत्तम औषधि है। रोगी बालक के लिये तो सजीवनी है। इसके सेवन से बालको के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे-पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त मे कीडे पड जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी, कफ-खासी, पसली चलना, सोते मे चोक पडना, दात निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते है। शरीर मोटा-ताजा और बलवान हो जाता है। पीने मे मीठी होने से बच्चे आसानी से पी लेते हैं। मूल्य—एक शीशी आध औस (१४ मि लि) ३१ न पै, ४ आस (११४ मि लि) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स मे २ ००, २ औस (५० मि लि) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स मे १ १० रु०

कुमार रक्षक तैल—इसको बच्चे के सम्पूर्ण शरीर पर धीरे-धीरे रोजाना मालिश करे। आध घण्टे बाद स्नान करायें। बच्चे मे स्फूर्ति बढ़ेगी, मासपेशिया सुदृढ हो जायगी, हड्डियो मे ताकत पहुँचेगी। यह तैल इसी अभिप्राय से सर्वोत्तम निर्माण किया गया है। मूल्य १ शीशी ४ औंस (११४ मि लि) २ ००, छोटी शीशी २ औंस (५७ मि लि) १.१० रु०

ज्वरारि—कुनीनरहित विशुद्ध आयुर्वेदिक, ज्वर-जूडी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एव सर्वोत्तम महौपधि है। जूडी और उसके उपद्रवो को नष्ट करती है। मूल्य—१० मात्रा की शीशी १ २५, २० मात्रा की बडी शीशी २ ००, ५० मात्रा की पूरी बोतल ४ ०० रु०

कासारि—हर प्रकार की खासी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशसित अद्वितीय औपधि है। यह बासा-पत्र-क्वाथ एव पिप्पली आदि कासनाशक आयुर्वेदिक द्रव्यो से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियों के साथ इसको अनुपान रूप मे देना भी उपयोगी है। सूखी व तर दोनो प्रकार

की खासी को नष्ट करने वाली सस्ती दवा है। मूल्य—२० मात्रा की शीशी १ २५, ५ मात्रा की शीशी ·५० न पै., १ पौंड (४५५ मि लि) ४ २५ रु०

कामिनीरक्षक—वार-वार गर्भस्राव हो जाना, बच्चो का छोटी आयु मे ही मर जाना, इन भयङ्कर व्याधियो से अनेक सुकुमार स्त्रियां आजकल पीडित हैं। यदि कामिनीरक्षक को गर्भ के प्रथम माह से नवम माह तक सेवन करावे तो न गर्भस्राव होगा और न गर्भपात। बच्चा स्वस्थ सुन्दर और सुडौल उत्पन्न होगा। मूल्य—२ औस (५७ मि लि) की १ शीशी २ ०० रु०

शिरोविरेचनीय सुरमा—जिनको वार-वार जुखाम हो जाता हो या पुराना सिर-दर्द हो, जुखाम रुकने से उत्पन्न सिर मे दर्द हो तो इस सुरमा को सलाई से हल्का-हल्का नेत्रो मे आजे। थोडी देर मे आख व नाक से वलगम निकलना प्रारम्भ हो जायगा और सभी कष्ट दूर होगे। पुराने सिर दर्द मे पथ्यादि क्वाथ व शिरोवज्र रस भी साथ मे सेवन कराने से शीघ्र लाभ होगा। मूल्य—१ मासे (१ ग्राम) की शीशी ५० न. पै

वातारि वटी—वातरोगनाशक सफल और सस्ती दवा है। २-१ गोली प्रात-साय गरम जल या रास्नादि क्वाथ के साथ लेने से सभी प्रकार की वात व्याधिया नष्ट होती हैं। मूल्य—१ शीशी (५० गोली) २ ०० रु०

करंजादिवटी—करज मलेरिया के लिये सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके सयोग से वनी ये गोलिया प्राकृतिक ज्वर (मलेरिया) के लिये उत्तम प्रमाणित हुई हैं। १ शीशी (५० गोली) १ ०० रु०

कासहरवटी—हर प्रकार की खासी के लिये सस्ती व उत्तम गोलिया है। दिन मे ५-७ वार अथवा जिस समय खासी अधिक आ रही हो १-१ गोली मुंह मे डाल रस चूसे, गला व श्वास-नली साफ होती है। कफ वन्द हो जाता है। मूल्य—१ शीशी १ तोला (११ ६६ ग्राम) ४० न पै

निम्बादि मलहम—नीम रक्तशोधक व चर्म-रोग-नाशक है। इसीके प्रयोग से वना यह मलहम फोडा फुन्सी व घावो के लिये अत्युत्तम है। निम्ब क्वाथ से घाव या फोडो को साफ कर इस मलहम को लगाने से वे शीघ्र ही भरते हैं। नासूर तक को भरने की इसमे शक्ति है। मूल्य—१ शीशी आध औंस ४० न पै, २० तोले (२३४ ग्राम) का १ पैक ६.०० रु०

वल्लभ रसायन—किसी भी रोग से किसी भी प्रकार का रक्तस्राव होता हो तो यह विशेष लाभ करता है। रक्त को वन्द करने के लिये अव्यर्थ औषधि है। मूल्य १ शीशी २ औस की १.५० रु०

रक्तवल्लभ रसायन—इससे ज्वर के साथ होने वाला रक्तस्राव वन्द होता है। ज्वर को दूर करने और रक्त को वन्द करने के लिये अव्यर्थ है। १ शीशी आध औंस (१४ मि. लि) १.५० रु०

सरलभेदी वटी—कब्ज रोग आजकल इतना फैला हुआ है कि प्रत्येक घर मे छोटे वच्चो, जवानो, बूढो सभी को शिकायत वनी रहती है कि दस्त साफ नही होता, जिसके कारण भूख नही लगती, तवियत भी उदास रहती है। कब्ज रहते-रहते फिर अनेक रोग आदमी को आ घेरते हैं। वास्तव मे रोगो का घर पेट नित्य साफ न होना ही है। जिस मनुष्य को नित्य प्रात. दस्त साफ हो जाता है उसे कोई रोग नही हो पाता। हमने यह दवा उन लोगो के लिये वनाई है जिनको नित्य ही कब्ज की शिकायत रहती हो और कई-कई वार दस्त जाना पडता हो। इसको रात्रि मे सेवन करने से नित्य प्रात दस्त साफ होता तथा तवियत साफ हो जाती है, तथा कार्य करने मे उत्साह वढता है, मूल्य १ शीशी (३१ गोली) १ २५ रु

गोपाल चूर्ण—जिनकी प्रकृति पित्त की हो उन्हे इसके सेवन से दस्त साफ होता है। जिनको मलावरोध हो उन्हे इसमे से तीन मासे रात को सोते समय गुनगुने जल के साथ या गरम दूध के साथ फका देने से सुबह दस्त हो जाता है। १ शीशी (१ औस) ७५ न पै

मृदुविरेचन चूर्ण—यह मृदु विरेचक है। जिन्हे मलावरोध रहता हो और अनेक औषधियो से न गया हो, भोजनोपरात तीन-तीन मासे गुनगुने पानी से फकायें। यदि पेट मे खुरचन सी मालूम पडे तो थोड़ी सौफ चवा ले। इसके १५ दिन के सेवन से मलावरोध नष्ट हो जाता है। मूल्य १ शीशी ७५ न पै०

आंवनिस्सारक वटी—प्रात.काल गुनगुने जल

के साथ तीन गोली तक सेवन कराने से गुदा के द्वारा श्राव निकलने लगती है। श्राव निकालने के लिये यह एक ही वस्तु है। यदि पेट मे दर्द ऐंठा करे तब चिन्ता नही करें। क्योकि श्राव निकलते समय प्राय ऐसा होता है। मूल्य १ शीशी १ तोला (११:६६ गाम) १ ०० रु०

मुह के छालो की दवा—गर्मी, मलावरोध अथवा किसी भी कारण से मुह मे छाले हो जाय तो इसको छालो पर बुरक कर मुंह नीचे करदें, लार गिरने लगेगी, दिन रात मे छाले नष्ट हो जायगे। मू. १ शीशी (आध औस) ० ७५ रु०

कर्णामृत तैल—कान मे साय-साय का शब्द होना, दर्द होना, कान से मवाद वहना आदि कर्ण-रोगो के लिये उत्तम तैल है। १ शीशी आध औस (१४ मि० लि०) ०.७५ रु०

बालोपकारक वटी—वालक वेहोश हो जाता है, हाथ पैर ऐंठ जाते है, मुख से लार (झाग) देने लगता है, दाती वन्द हो जाती है। वालक की ऐसी हालत मे यह दवा अक्सीर प्रमाणित होती है। १ शीशी (३१ गोली) २ ५० रु०

मधुरौल—मधुमेह की यह प्रभावशाली उत्तम महौषधि है, वहुमूत्र व सोमरोग मे भी यह लाभप्रद है। वैद्यो व मधुमेह रोगियो से अनुरोध है कि वे इसका व्यवहार अवश्य करायें व करे। मूल्य १० गोली २ २५ रु०

पायरिया मंजन—आजकल पायरिया रोग बहुत प्रचलित है। इस मजन के नित्य व्यवहार करने से दात चमकीले होते है और दातो से खून जाना, मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना आदि दूर होते है। मू १ शीशी १ ०० रु०

नयनामृत सुरमा-नेत्र-रोगो के लिये उपयोगी सुरमा है। चादी या काच की सलाई से दिन मे एक वार लगाने से धुधला दीखना, पानी निकलना, खुजली नष्ट होते है। मूल्य ३ माशे (२ ९३ ग्राम) की १ शीशी ७५ न पै०

अग्निसंदीपन चूर्ण—अग्नि को उत्तेजित करने वाला मीठा व स्वादिष्ट चूर्ण है। भोजन के वाद ३-३ माशे लेने से कब्ज दूर हो रुचि वढेगी। १ शीशी (२ औस) ०.७५

मनोरम चूर्ण—स्वादिष्ट, शीतल व पाचक चूर्ण। एक वार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेगे। गुण और स्वाद दोनो मे लाजबाब है। १ शीशी (२ औस) ० ७५, छोटी शीशी (१ औस) ० ४५ रु०

अग्निवल्लभ क्षार—इसके सेवन से अग्नि प्रज्वलित होती व खाना हजम होता है। भूख न लगना, दस्त साफ न होना खट्टी डकारो का आना, पेट मे दर्द तथा भारीपन होना, तवियत मचलाना, अपान वायु का विगड़ना इत्यादि सामयिक शिकायते दूर होती है। परदेश मे रहकर सेवन करने वालो को जल-दोष नही सताता। गृहस्थो के लिए सग्रह करने योग्य महौषधि है। क्योकि जब किसी तरह की शिकायत हुई चट अग्निबल्लभ क्षार सेवन करने से उसी समय तवियत साफ हो जाती है। १ शीशी (२ औस) का मूल्य १ २५

ग्रहणी रिपु—हमने इसे वडे परिश्रम से वनाया है। यह ग्रहणी रोग के लिये अव्यर्थ है। १ शी २ औ ३ ५० रु.

खाजरिपु—गीली तथा सूखी दोनो प्रकार की खाज के लिए यह अक्सीर प्रमाणित हुआ है। मूल्य १ शीशी १ ००, छोटी शीशी ० ५६ रु०

दाद की दवा—यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी मोटे वस्त्र से खुजलाकर दवा की मालिश करें। स्नान करने के वाद रोजाना वस्त्र से अच्छी प्रकार पोंछ लिया करें। १ शीशी ७५ न पै०

स्वादिष्ट चटनी—अति स्वादिष्ट और पाचक चटनी है। यह सडे गले द्रव्यो से निर्मित वाजारू सस्ते गीले चूर्ण के समान नही। सर्वोत्तम और शीघ्र प्रभावकारी द्रव्यो द्वारा निर्मित है। एक वार परीक्षा करने पर ही इसके गुणो से आप परिचित हो सकेगे। मूल्य १ शीशी (१ औंस) १ ०० रु०

नेत्रबिन्दु—दुखती आखो के लिए अत्युपयोगी प्रसिद्ध महौषधि। मूल्य आधा औंस (१४ मि लि) ० ८८, १।४ औस (७ मि लि) ० ५० रु०

स्तम्भन वटी—३२ गोली की १ शीशी २ ००
स्वप्न-प्रमेह हर वटी—३० गोली की १ शीशी २ ५०
स्वप्न-प्रमेह हर चूर्ण—१ औंस की शीशी २ ५०
रज प्रवर्तक वटी—३० गोली की शीशी १ ५०

धन्वन्तरि के महत्वपूर्ण विशाल विशेषांक

शिशु रोगांक—इस विशेषांक मे बाल-रोगो का विस्तार से वर्णन, उनकी सरल-चिकित्सा-विधि एवं अनुभूत प्रयोगो का उपयोगी संग्रह प्रकाशित किया गया है। इसमे ११३ विद्वानो के अनुभवपूर्ण लेख प्रकाशित किये गये हैं। १३६ सुन्दर चित्रो द्वारा विषय को स्पष्ट समझाया है। राजसंस्करण का मू० ८.५०

कायचिकित्सांक (राजसंस्करण)—आचार्य श्री प० रघुवीरप्रसाद जी त्रिवेदी के सफल सम्पादकत्व मे प्रकाशित यह अनमोल विशेषांक है। ५४८ पृष्ठ मे १२५ चित्रो सहित विभिन्न रोगो की सफल-चिकित्सा-विधि, उनके विषय मे आयुर्वेद के सिद्धान्त एवं चिकित्सासूत्र बडी सुन्दरता से वर्णित हे। राजसंस्करण मू० ८.५०

माधव निदानांक—इसमे सम्पूर्ण माधव निदान सरल हिन्दी टीका सहित प्रकाशित है। प्रत्येक अध्याय के अन्त मे तत्सम्बन्धी एलोपेथिक समन्वयात्मक विवेचन दिया है। अनेक विशेष वक्तव्य एवं चित्र दिये है। पृष्ठ-संख्या ६४४, चित्र १५५, मू० केवल ८.५०

यूनानी चिकित्सांक—इसका सम्पादन श्री वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह जी ने किया हे तथा आयुर्वेद-चिकित्सको के लिये सरल हिन्दी भाषा मे साहित्य निर्माण किया हैं। प्रत्येक रोग की सरल यूनानी-चिकित्सा दी है। इसमे लगभग ५६४ पृष्ठ तथा १७६ चित्र है तथा अन्त मे यूनानी शब्दकोष तथा यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान भी दिये हैं। मू० ८.५०

गुप्तसिद्ध प्रयोगांक (चतुर्थ भाग)—इसमे २५१ अनुभवी वैद्यो के १३०८ उत्तमोत्तम, सरल, पूर्ण परीक्षित प्रयोगो का संग्रह है। २४१ चिकित्सको के हृदय मे छिपे हुये प्रयोग रत्न बडे आग्रह से प्राप्त कर प्रकाशित किये गये हैं। मू० ८.५०

संक्रामक रोगांक—संक्रामक रोगो से बचने के उपाय, रोगी की सफल-चिकित्सा-विधि, शास्त्रीय-विवेचन सभी कुछ दिया है। मू० ६.००

कल्प एवं पंचकर्म चिकित्सांक—पृष्ठ संख्या ३०४। सम्पादक कविराज उपेन्द्रनाथदास जी। इस विशेषांक मे अनुभवी व्यक्तियो द्वारा वर्णन किया गया हे। श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी B A आयुर्वेदाचार्य का ६० पृष्ठो का 'पंचकर्म' शीर्षक लेख अत्यधिक मननीय है। २२० पृष्ठो मे विविध कल्पो का विस्तृत वर्णन है। मूल्य ४.००

चिकित्सा समन्वयांक (प्रथमभाग)—इसके सम्पादक श्री प० ताराशंकर जी मिश्र आयुर्वेदाचार्य हैं। इसमे आयुर्वेद एलोपैथी का समन्वय किस प्रकार हो सकता है, उससे लाभ क्या है और हानि क्या है—यह सभी विषय अधिकारी लेखको के द्वारा वर्णित हैं। इसके पश्चात् अनेक रोगो की आयुर्वेद एवं एलोपैथी मिश्रित चिकित्सा वर्णित हैं। इस विशेषांक के निर्माण मे डा० प्राणजीवन मेहता, पूज्य यादव जी महाराज, प० शिवशर्मा जी, कविराज सतीन्द्रनाथ वसु, कविराज हरिनारायण शर्मा, श्री अत्रिदेव गुप्त आयुर्वेदालंकार आदि ५५ विद्वानो ने सहयोग दिया है। पृष्ठ ३६४, अनेको रंगीन एवं सादे चित्र मूल्य ४.००

चिकित्सा समन्वयांक (द्वितीय भाग)—२.००

वनौषधि विशेषांक (प्रथम भाग)—समाप्त हो गया हे पुन. छपाने की व्यवस्था कर रहे है। छपने पर इसका मूल्य १०.०० होगा। इस प्रथम भाग मे 'अ' से 'औ' तक की वनस्पतियो का सचित्र वर्णन है।

द्वितीय भाग—इसमे 'क' वर्ग की २३१ वनस्पतियो का वर्णन, विभिन्न रोगो पर उनके सरल-सफल प्रयोगो का अत्युपयोगी संग्रह तथा १७५ चित्र हैं। विशेषांक सभी विद्वानो द्वारा प्रशंसित है। मू० ८.५०

तृतीय भाग—आपके हाथ मे हे।

लघु विशेषांक

प्रत्येक वर्ष प्रकाशित होने वाले लघु विशेषांक भी अति महत्वपूर्ण साहित्य से लबालब हे। 'गागर मे सागर' है। जो भी अङ्क आपके पास न हो तुरन्त मंगाले।

मधुमेह अङ्क	१.००
श्वास अङ्क	१.००
श्वास अङ्क (थीसिस)	१.५०
कास रोगांक	१.००
पायरिया अङ्क	१.००
पंचकर्म विज्ञानांक	१.००
सूखा रोगांक	१.००
शूल रोगांक	१.००

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ द्वारा प्रकाशित

❀ आयुर्वेदिक पुस्तकें ❀

नृ. पाक संग्रह—लेखक श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी ए आयुर्वेदाचार्य । इस पुस्तक मे ४०० से अधिक पाकों का सग्रह प्रकाशित है । हर पाक की निर्माण विधि, मात्रा, सेवन-विधि आदि दिये है । प्राय सभी रोगो पर २-४ प्रयोग इस पुस्तक मे आपको मिलेगे । पुस्तक हर प्रकार से उपयोगी है । मूल्य सजिल्द ३ ५०

सूर्यरश्मि-चिकित्सा (नवीन सस्करण)—सूर्यरश्मि चिकित्सा को अ ग्रेजी मे क्रोमोपैथी (Ghromopathy) कहते हैं । इस पुस्तक मे सूर्य की किरणो से ही समस्त रोग दूर करने का विधान है । पुस्तक बडे परिश्रम से लिखी गई है । इसको पढकर पाठक देखेंगे कि सूर्य कितना शक्तिशाली है । उसकी किरण शरीर को कितनी लाभ-दायक है और उसके द्वारा रोग किस प्रकार बात की बात मे दूर किये जा सकते है । अनेक रगीन चित्र हैं । मूल्य ० ७५ ।

उपदंश विज्ञान (द्वितीय संस्करण)—लेखक—श्री कविराज प बालकराम जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य । इस पुस्तक मे गरमी, (चादी) रोग के वैज्ञानिक कारण, निदान, लक्षण तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है। पुस्तक के कुछ शीर्षक ये हैं—उपदश परिचय, प्राच्य पाश्चात्य का साम्यवाद, सक्रमण निदान, सिफलिस के भेद, उपदश प्राथमिक कील, लिगार्श, औपसर्गिक सकल रोग, उपदशज विकृतिया, मस्तिष्क-विकार, फिरङ्ग चिकित्सा मे पारद-प्रयोग, पथ्यापथ्य आदि उपदश सम्बन्धी सभी विषय वर्णित हैं । मूल्य १.००

प्रयोग-पुष्पावली—ये प्रयोग बहुत समय से परीक्षित है और सफल प्रमाणित हो चुके है । अनेक उद्योग धधो का सकेत इसमे मिलेगा जिससे पाठक बहुत लाभ उठा सकते हैं । समष्टि रूप मे पुस्तक बेकार मनुष्यो को व्यवसाय की ओर झुकाने वाली है । पहिले दो संस्करण शीघ्र समाप्त हो जाना इसकी उत्तमता का प्रमाण है । पृष्ठ सख्या ११२ मूल्य १ २५

रसायन सहिता (भाषा टीका सहित)—इसमे अनेक अव्यर्थ प्रयोग, सत्व प्रस्तुत विधि, उपधातु का शोधन मारण प्रभृति अनेक विषय दिये गये है । मूल्य १ ००

कुचिमार तन्त्र (भाषाटीका)—यह श्रीमद्कुचिमार मुनि प्रणीत है। इसमे इन्द्रिय वृद्धि स्थूलीकरण, कामोद्दीपन लेप, वाजीकरण, द्रावण, स्तम्भन, सकोचन व केशपात, गर्भाधान, सहज प्रसव आदि पर अनेक योग भलीभाति बताये गये हैं । इस नवीन सस्करण मे प्रमेह, नपु सकता, मधुमेह आदि रोगो पर स्वानुभूत प्रयोगो का एक छोटा सा सग्रह भी दिया है । मूल्य ०.५०

दशमूल (सचित्र)—ले० लाला रूपलाल जी वैश्य, बूटी विशेषज्ञ । इस पुस्तक मे दशमूल की दशो औषधियो का सचित्र वर्णन है । साथ ही उनके पर्याय नाम, गुण और प्रयोग भी बतलाये गये है तथा दशमूल पचमूल से बनने वाले अनेक योगो की विधिया भी गई है । मूल्य ० ५०

दन्त-विज्ञान (द्वितीय संस्करण)—ले० स्वर्गीय श्री गोपीनाथ जी गुप्त । इसमे दातो की रचना, आन्तरिक दशा, रक्षा के उपाय, अनेक दन्तरोगो के भेद, वर्णन और सरल चमत्कारिक उपचार दिये गये हैं । चार चित्र युक्त मूल्य ० ३७

न्यूमोनिया प्रकाश (द्वितीय संस्करण)—आयुर्वेद मनीषी स्वर्गीय पडित देवकरण जी वाजपेयी की यह वही उत्तम रचना है जिस पर धन्वन्तरि-पदक मिला था और जो निखिल भारतीय वैद्य-सम्मेलन से सम्मान और पदक प्राप्त कर चुकी है। न्यूमोनिया की शास्त्रीय व्युत्पत्ति, कारण, निदान, परिणाम, चिकित्सा आदि सभी बाते भलीभाति वर्णित हे। मूल्य ० ३७

प्राकृतिक ज्वर—लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज । मलेरिया (फसली बुखार) का पूर्ण विवेचन है । आयुर्वेदीय मत से मलेरिया कैसा होता हे । उसके दूर करने के लिये आयुर्वेदीय प्रयोग, क्विनाइन से हानिया आदि विषयो पर पूर्ण प्रकाश डाला है । मूल्य ० २५

वैद्यराज जी की जीवनी—स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी की जीवनी बडी ओजस्वी भाषा मे लिखी है । इसके पढने से आलसी पुरुष भी उद्योगी और परिश्रमी बनने की इच्छा करता है । मूल्य ० १९

वेदों मे वैद्यक ज्ञान—लेखक स्वर्गीय लाला राधा-

वल्लभ जी वैद्यराज। वेद के मन्त्र जिनमे आयुर्वेदीय विषयो का वर्णन है तथा जिनसे आयुर्वेद की प्राचीनता प्रमाणित होती है, शब्दार्थ सहित दिये है। मूल्य ० १६

कूपीपक्व रसायन—लेखक वैद्य देवीशरण जी गर्ग, प्रधान सम्पादक 'धन्वन्तरि'। धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्माण होने वाले कूपीपक्व रसायनो के गुण, मात्रा, अनुपान, सेवन-विधि आदि विस्तृत रूप से वर्णित है। मूल्य प्रचारार्थ केवल ० ६

चन्द्रोदय मकरध्वज (तृतीय सस्करण)—लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज। इस पुस्तक मे पारद-शुद्धि, गधक-शुद्धि, पारद के सस्कार, मकरध्वज बनाने की विधि, भाट्टी बनाने की विधि, मकरध्वज के गुण तथा भिन्न-भिन्न रोगो मे अनुभव सभी बाते स्वानुभव के आधार पर वर्णित है। मूल्य ० २५

भस्म पर्पटी—लेखक देवीशरण जी गर्ग प्र० सम्पादक-धन्वन्तरि—इसमे धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्माण होने वाली भस्मो और पर्पटियो का विस्तृत रूप से वर्णन है। रोग-लक्षणानुसार औषधियो को किस प्रकार सफलता के साथ व्यवहार किया जा सकता है यह आप इस पुस्तक से जान सकेगे। मूल्य ६ न० पै०

रस रसायन गुटिका गूगल—धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक एव अनुभवी चिकित्सक वैद्य देवीशरण जी गर्ग ने इस पुस्तक मे धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्मित रस-रसायन गुटिका गूगल के गुण, मात्रा, अनुपान, व्यवहार-विधि बडे ही उपयोगी ढङ्ग से लिखी हैं। मूल्य २५ न० पै० मात्र।

रक्त (Blood)—श्री वैद्यराज राधावल्लभ जी ने रक्त की बनावट, उपयोगिता एव रक्त सम्बन्धित सभी मोटी-मोटी बाते आयुर्वेद एव एलोपैथी उभय-पद्धतियो से सरल हिन्दी भाषा मे समझाकर लिखी है। नवीन सस्करण मू० २५ न० पै०

इन्फ्लुएन्ज़ा (फ्लु)—लेखक श्री प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। इसमे इन्फ्लुएन्ज़ा रोग का विस्तृत विवेचन तथा सफल-चिकित्सा-विधि वर्णित है। फ्लु और इसके सभी उपद्रवो की आयुर्वेदीय-चिकित्सा है। मूल्य ५० न० पै०

अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

आयुर्वेदीय ग्रन्थ-रत्न

अष्टागहृदय (सम्पूर्ण)—विद्योतनी भाषा टीका, वक्तव्य, परिशिष्ट एव विस्तृत भूमिका सहित। टीकाकार श्री अत्रिदेव, मूल्य १५ ००, कृष्णलाल भारतीय २० ००।

अष्टांग सग्रह (सूत्रस्थान)—हिन्दी टीका, व्याख्याकार गोवर्धन शर्मा छागाणी। मूल्य ८ ००

काश्यप सहिता—टीकाकार श्री सत्यपाल भिषगाचार्य, विद्योतनी भाषा टीका विस्तृत सस्कृत हिन्दी उपोद्घात सहित। ग्रन्थ का मुख्य विषय 'कौमारभृत्य' अष्टाङ्गायुर्वेद का अपरिहार्य अङ्ग है। यह विषय पूर्ण विस्तृत और प्रामाणिक रूप से इस पुस्तक मे वर्णित है। मूल्य १६ ००

कौमारभृत्य (नव्य बालरोग सहित)—बाल रोगो पर प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा-विज्ञान के आधार पर श्री प रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी A. M- S द्वारा लिखित विशाल ग्रन्थ। मूल्य ८ ००

गगयति निदान—लेखक जैन यति गगाराम जी, अनुवादकर्त्ता आयुर्वेदाचार्य श्री नरेन्द्रनाथ जी शास्त्री। मूल्य ६ ००

चरक सहिता (सपूर्ण)—श्री जयदेव विद्यालकार द्वारा सरल सुविस्तृत भाषा टीका युक्त, दो जिल्दो मे, (छठा सस्करण) मूल्य ३० ००

चरक सहिता—हिन्दी व्याख्या 'विमर्श' परिशिष्ट सहित दो भागो मे। अत्युपयोगी नवीन विस्तृत टीका। मूल्य ३६ ००

चरक सहिता (सम्पूर्ण)—तीनो भागो मे टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। मू० २४.००

चक्रदत्त—भावार्थ संदीपनी विस्तृत भाषा टीका तथा विशद टिप्पणी सहित। परिशिष्ट मे पचलक्षणी निदान, डाक्टरी मूत्र परीक्षा, पथ्यापथ्य सहित। मूल्य १०.००

द्रव्य गुण विज्ञान (पूर्वार्ध)—छात्रोपयोगी सस्करण। लेखक आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य। द्रव्य गुण, रसवीर्य, विपाक, प्रभाव, कर्म का विज्ञानात्मक विवेचन। मूल्य ४ ५०, प्रियव्रत शर्मा लिखित प्रथम भाग ५ ५०, द्वितीय तृतीय भाग १२ ००

भावप्रकाश (सम्पूर्ण)—भाषा टीका सहित। दो जिल्दों मे शारीरिक भाग पर प्राच्य पाश्चात्य मतों का समन्वयात्मक वर्णन, निघण्टु भाग पर विशिष्ट विवरण तथा चिकित्सा-प्रकरण मे प्रत्येक रोग पर प्राच्य पाश्चात्य मतो का (समन्वयात्मक) वर्णन विशेप टिप्पणी से सुशोभित है। मूल्य २६ ००, श्री लालचन्द्रकृत १६ ००, कान्तिनारायण मिश्र २० ००

भावप्रकाश निघण्टु—भाषा टीका एवं बृहद् परिशिष्ट सहित। लेखक पडित गगासहाय मू ६ ००, हरीतक्यादि वर्ग लेखक विश्वनाथ द्विवेदी ७ ००

माधव निदान (भाषा टीकायुक्त)—पूर्वार्द्ध-मधुकोशसस्कृत टीका विद्योतनी भाषा टीका तथा वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणीयुक्त। यह माधव निदान बडा उपयोगी बन गया है। दो भाग मूल्य १४.००

माधव निदान—मूलपाठ, मूलपाठ की सरल हिन्दी व्याख्या, मधुकोश सस्कृत व्याख्या और उसका सरल अनुवाद। वक्तव्य एव टिप्पणीयुक्त। यह ग्रन्थ विद्यार्थियो तथा चिकित्सको के लिये अवश्य पठनीय है। पं पूर्णानन्द शास्त्रीकृत टीका पृष्ठ १०१८, दो भागो मे मूल्य १२ ००, माधव निदान परिशिष्ट (परीक्षा प्रश्नोत्तरी) विद्यार्थियो के लिये अत्युपयोगी ६ ००

माधव निदान—सर्वाङ्ग सुन्दरी भाषा टीका ४ ५०

माधव निदान—टीकाकार ब्रह्मशकर शास्त्री, मधुकोश, सस्कृत व्याख्या तथा मनोरमा हिन्दी टीका सहित। पृष्ठ सख्या ४१२ मूल्य ६ ००

रसायनसार—श्री प श्यामसुन्दराचार्य के बीसियो वर्षो के परिश्रम से प्राप्त प्रत्यक्षानुभव के आधार पर लिखित अपूर्व रसग्रन्थ। मूल्य ८ ००

रसेन्द्रसार सग्रह—वैज्ञानिक रस चन्द्रिका भाषा टीका परिशिष्ट मे नवीन रोगो पर रसो का प्रभाव मानपरिभाषा, मूषा पुटप्रकरण, अनुपान-विधि तथा औषधि बनाने के नियमादि। मूल्य ६.००

रसेन्द्रसार सग्रह [तीन भागो में]—आयुर्वेद बृहस्पति प घनानन्द जी पन्त द्वारा सस्कृत टीका और हिन्दी भाषा सहित वैद्यो, विद्यार्थियो के लिये उपयोगी है। पृष्ठसख्या ११५०। मूल्य ११ ००

रसरत्न समुच्चय—नवीन सुरत्नोज्ज्वला विस्तृत भाषा टीका एव परिशिष्ट सहित मूल्य १० ०० श्री प० धर्मानन्द कृत तत्व बोधिनी हिन्दी टीका १० ००

रसतरंगिणी चतुर्थ संस्करण—भाषाटीका सहित रस निर्माण, धातु उपधातुओ का शोधन मारणयुक्त यह अनुपम ग्रन्थ है। मूल्य १० ००

रसराज महोदधि [पाच भाग]—वस्तुत यह आयुर्वेदीय रसो का सागर ही है। प्राचीन तथा सरल भाषा मे लिखा उपयोगी रस ग्रन्थ है, नवीन सजिल्दसस्करण। मू १० ००

योगरत्नाकर—काय चिकित्सा विषयक उपलब्ध ग्रन्थों मे यह सर्वोत्कृष्ट रचना है। चिकित्सको के लिए ज्ञातव्य सभी आवश्यक विषयो का सग्रह किया गया है। माधवोक्त क्रम से सभी रोगो के निदान व चिकित्सा का वर्णन है। मू १८ ००

सौश्रुती—लेखक रमानाथ द्विवेदी। अष्टाग आयुर्वेद के शल्यतन्त्र पर लिखित प्राच्यपाश्चात्य समन्वय से युक्त। मू ८ ५०

शारंगधर संहिता—वैज्ञानिक विमर्शोपेत सुबोधिनी हिन्दी टीका, लक्ष्मी नामक टिप्पणी, पथ्यापथ्य एव विविध परिशिष्ट सहित मू ६ ००

सुश्रुत सहिता सम्पूर्ण—सरल हिन्दी टीका सहित टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। विद्यार्थियो के लिये पठनीय है। पक्के कपडे की जिल्द मू १५ ००, कविराज अम्बिकादत्त कृत सम्पूर्ण २४ ००

सुश्रुत संहिता-सूत्र-स्थान—टीकाकार श्रीयुत घाणेकर। अब तक की सभी टीकाओ मे उत्कृष्ट टीका मू० ६ ००, शारीर स्थान मू० ८ ००, डा० जे डी शर्मा (शारीर स्थान) ५ ००

हारीत संहिता—ऋषि प्रणीत प्राचीन सहिता। भाषा टीका सहित, टीकाकार शिवसहाय जी सूद, पृष्ठ

५१५ मूल्य ८ ५०

हरिहर संहिता---वैद्यराज हरिनाथ साख्याचार्य नवीन औपधियो का भी समावेश है। सरल भाषा टीका सहित मूल्य ८ ००

वैद्य सहचर---लेखक प० विश्वनाथ द्विवेदी आयुर्वेदाचार्य। चतुर्थ सस्करण। इसे वैद्यो का सहचर ही समझे। इसमे लेखक ने अपने जीवन का सम्पूर्ण चिकित्सानुभव रख दिया है। मू० ३ ००

चिकित्सा रत्न--ले रामरतन गगेले। एक चिकित्सक के लिये सब प्रकार की सक्षिप्त उपयोगी सामग्री से युक्त सजिल्द मू० ६ ००

चिकित्सातत्व प्रदीप---एक चिकित्सक के लिए अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ। प्रथम भाग ९ ००, द्वितीय भाग ८ ०० सजिल्द ९ ५०

वनोषधि चन्द्रोदय [१० भाग]---प्रत्येक वनस्पति के पर्याय, परिचय, गुणकर्मादि-विवेचन युक्त श्री चन्द्रराज भडारी कृत मू० ४० ००, प्रत्येक भाग ५ ००

चिकित्सा चन्द्रोदय (सात भाग)

हिन्दी ससार मे अपूर्व और पहला ग्रन्थ बिना गुरु के वैद्यक सिखाने वाला, जो सस्कृत जरा भी नही जानते वे भी इस ग्रन्थ को बिना गुरु के पढकर वैद्य बन सकते हैं। जिन्हे शक हो वे केवल चौथा भाग मगा कर दिल का वहम मिटा ले।

चिकित्सा चन्द्रोदय	१ ला भाग	४.५०
,, ,,	२ रा भाग	८.००
,, ,,	३ रा भाग	६ ००
,, ,,	४ था भाग	८ ००
,, ,,	५ वा भाग	८ ००
,, ,,	६ ठा भाग	५ ००
,, ,,	७ वा भाग	१३ ००
		५२ ५०

नोट--एक साथ ७ भाग खरीदने वाले को किताबें रेल पार्सल से मगानी चाहिये। एक पूरा सैट लेने वालों को ४७ ५० रु० देने पडते हैं।

स्वास्थ्य रक्षा---गृहस्थो के घर की यह रामायण है। हर घर मे इसका रहना जरूरी है। इसका नाम ही स्वास्थ्य रक्षा उर्फ तन्दुरुस्ती का बीमा है। तन्दुरुस्ती नही तो दुनिया मे रहा ही क्या? मू० ५ ००

आयुर्वेद प्रकाश---श्री गुलराज शर्मा मिश्र---यह ग्रन्थ माधवोपाध्याय द्वारा रचित रसशास्त्र का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है जिसको जी मिश्र जी ने व्याख्या कर और भी अधिक उपयोगी बना दिया है। टीका मे अनेक विषयो का स्पष्टीकरण किया हैं मूल्य १२ ५०

काय चिकित्सा (प्रथम भाग)---श्री रामरक्ष पाठकजी की किसी भी पुस्तक को जिसने पढा है वह भली प्रकार इस पुस्तक की उपयोगिता जान सकता है। इस पुस्तक मे आयुर्वेदीय सिद्धान्तो का विशद रूप मे विवेचन किया गया गया है। पुस्तक विद्यार्थियो एव अध्यापको सभी के लिये अत्युपयोगी है। लगभग ५५० पृष्ठ, क्राउन साइज, छपाई सुन्दर, कपडे की जिल्द मूल्य १२ ५०

भैषज्य सार सग्रह---लेखक कविराज हरस्वरूप शर्मा, इसमें सभी प्रचलित आयुर्वेदिक औषधियो की निर्माण विधि, मात्रा, अनुपान, गुण एव विशेष विवेचन दिया गया है। उत्तम ग्लेज कागज पर सुन्दर सजिल्द ८८६ पृष्ठ की पुस्तक चिकित्सको, औषधि-निर्माताओ के लिये अत्युपयोगी हे। मूल्य १५ ००

बृ० रसराज सुन्दर---श्रीदत्तराम चौबे द्वारा सकलित अत्युपयोगी रसग्रन्थ भाषाटीका सहित। सजिल्द मूल्य १०.००

शार्ङ्गधर संहिता---भाषाटीका सहित। टीकाकार प० केशवदेव शास्त्री साहित्याचार्य। सजिल्द ८ ००

निदान चिकित्सा हस्तामलक---लेखक वैद्य रणजीतराय देसाई, विद्वान् चिकित्सको के लिये पठनीय उत्तम पुस्तक सजिल्द। लगभग ७०० पृष्ठ ५ ५०

व्याधि मूल विज्ञान---(पूर्वार्ध) ले० स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य। पुस्तक अपने ढङ्ग की उत्तम तथा पठनीय है। १२ ००

औषधि गुण-धर्म विवेचन---कालेडा-बोगला से प्रकाशित अपने विषय की उत्तम पुस्तक पृष्ठ ३०६ मूल्य ३ ०० मात्र।

भिषक्कर्म सिद्धि---आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् श्री रमानाथ द्विवेदी द्वारा लिखित यह अनुपम ग्रन्थ है। चिकित्सक के लिए जानने योग्य सभी विषयो का इसमे सग्रह किया गया है। ग्रन्थ के ५ खण्ड किये गये है--प्रथम खण्ड मे निदान पचक, द्वितीय खण्ड में पचकर्म,

तृतीय मे चिकित्सा के आधारभूत सिद्धान्त, चतुर्थ खण्ड मे ३३ अध्यायो मे रोगानुसार आयुर्वेदीय सफल-चिकित्सा तथा अन्त में पचम खण्ड में परिशिष्टाध्याय मे आवश्यक जानकारी दी गई हैं। पुस्तक चिकित्सको, अध्यापको एव विद्यार्थियो के लिये अद्वितीय है। सुन्दर छपाई, पक्के कपडे की जिल्द ७२५ पृष्ठ। मूल्य २० ००

काय चिकित्सा—श्री गगासहाय पाण्डेय—इस पुस्तक में चिकित्सा के सैद्धान्तिक पक्ष का स्पष्टीकरण एव चिकित्सा के विभिन्न उपक्रमो का व्यावहारिक स्वरूप देने के अतिरिक्त व्याधि की विभिन्न अवस्थाओ के उपचार-क्रम का विशद विवेचन किया गया है। प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा का समन्वयात्मक निर्देश भी किया गया है। अन्त मे विशिष्ट सक्रामक व्याधियो का विस्तृत परिचर्यादि एव चिकित्सा-क्रम है। लगभग १००० पृष्ठ, सुन्दर छपाई, क्राउन साइज सजिल्द मूल्य २५ ००

इन्द्र निदान—इसमे सस्कृत माधव-निदान की अनेक प्रकार के छन्दो मे बड़ी सरल और सरस हिन्दी भाषा मे टीका की गई है तथा आधुनिक रोगो का परिशिष्ट मे कथन कर दिया है। इसके टीकाकार श्री इन्द्रमणि जैन अलीगढ हैं। सुन्दर पक्की बढिया जिल्द ३०० पृष्ठ। मूल्य केवल ६ ००

वात्स्यायन कामसूत्र—कविराज डा० रामसुशीलसिंह शास्त्री एम० ए०, ए० एम० एस०, इसमे कामशास्त्र का साङ्गोपाङ्ग नातिसक्षेप विस्तरेण वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इसमे पुरुष तथा स्त्री जननेन्द्रियो के शारीर तथा क्रिया-विज्ञान का सक्षिप्त परिचय, तथा वीर्य सम्बन्धी प्रायश. होने वाले प्रमुख रोगो पर भी प्रकाश डाला गया है। यथावश्यक चित्र भी दिये है। मूल्य ५ ५०

महर्षि वात्स्यायन कामसूत्र—अनुवादक श्री उमेन्द्र वर्मा—बहुत सरल एव सरस भाषा मे पुस्तक लिखी गई है। बहुत सुन्दर कागज एव छपाई। मूल्य केवल २ ००

चिकित्सादर्श—आयुर्वेद के प्रकाण्ड विद्वान् श्री राजेश्वरदत्त जी शास्त्री द्वारा लिखित यह अपूर्व ग्रन्थ चिकित्सा-सूत्रो का एकत्र सग्रह है। नुस्खा नवीसी की तो यह अपूर्व पुस्तक है। द्वितीय एव तृतीय भाग मे रोगों का विशिष्ट वर्णन दिया है। मूल्य प्रथम भाग ३ ५०, द्वितीय भाग ७ ००, तृतीय भाग ७ ००

आयुर्वेद मलेरिया-चिकित्सा—मलेरिया के विषय मे सम्पूर्ण जानकारी देने वाली पुस्तक है। लेखक श्री डा० परमानन्द तिवारी एव कवि डा० राधाकृष्ण पाराशर है। मूल्य २ ००

यकृत्-चिकित्सा—डा० दयाशकर पाण्डेय—० ७५

मोटापा दूर करने के साधन—डा० युगलकिशोर चौधरी—१ ००

शेखावाटी की जडी बूटियां—आचार्य नित्यानन्द एव कवि० कैलाशचन्द्र शर्मा—१.५०

मधुमेह, जिगर, गुरदों एव मसाने के रोग—डा० युगलकिशोर चौधरी—१ ५०

हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग की १९६५ की उपवैद्य, वैद्य-विशारद, आयुर्वेदरत्न, तथा समस्तरीय परीक्षाओ के लिए विशेष उपयोगी पुस्तकें—

अशोक उपवैद्य गाइड—(शिवकुमार व्यास) सम्पूर्ण छ पत्रो की परीक्षोपयोगी सामग्री प्रश्नोत्तर रूप मे गत परीक्षाओ के प्रश्न-पत्र के आधार पर दी है। ५ ००

अशोक वैद्य विशारद गाइड—(प्रथम खण्ड) लेखक—आचार्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, द्वितीय सस्करण ६ ००

अशोक वैद्य विशारद गाइड—(द्वि० खण्ड)लेखक—आचार्य ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, द्वितीय सस्करण ८ ००

अशोक आयुर्वेदरत्न गाइड—(प्रथम खण्ड) लेखक—शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य (B I M S) १५.००

अशोक आयुर्वेदरत्न गाइड—(द्वि० खण्ड) लेखक—शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य (B I M S) १५ ००

इन गाइडो मे निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार परीक्षोपयोगी शैली मे मैटर दिया गया है।

एलोपैथिक पुस्तकें हिन्दी में

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—ले० हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ नवीन मतानुसार शवच्छेदन (Dissection) विषयक विशाल ग्रन्थ है। विषय का स्पष्ट ज्ञान करने के लिये अनेक चित्र साथ मे दिये गये हैं। मू० १५ ००

अभिनव विकृति विज्ञान—रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A. M. S—विकृति-विज्ञान (Pathology) विषय का

हिन्दी भाषा मे विशाल ग्रन्थ । अनेक चित्र साथ में दिये गये है । प्रत्येक रोग का विकास किस प्रकार होता है एव उस समय शरीर के किस अग मे क्या क्या परिवर्तन होते है स्पष्ट रूप से समझाया गया है । अन्त मे हिन्दी एव इङ्गलिश शब्दो की विशाल सूची दी गई है । विद्यार्थियों के लिये उपादेय है । मूल्य २२ ००

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा—लेखक डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय । अकारादि क्रमानुसार प्रत्येक रोग पर प्रयोग की जाने वाली पेटेन्ट औषधिया दी है तथा वह पेटेन्ट औषधि किस-किस रोग पर प्रयुक्त हो सकती हैं यह भी दिया गया है । मूल्य २ ००

अभिनव नेत्र चिकित्सा विज्ञान—लेखक पं विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री B A आयुर्वेदाचार्य । प्राच्य एव पाश्चात्य दोनो का समन्वय करते हुए नेत्र-चिकित्सा पर हिन्दी मे विशाल ग्रन्थ । मूल्य १० ००

शल्य प्रदीपिका—लेखक डा० मुकन्दस्वरूप वर्मा । शल्य (सर्जरी) विषयक हिन्दी मे लिखा हुई है । प्रत्येक प्रकार के शल्य कर्म को विस्तार से लिखा है । अनेक चित्र दिए है । मूल्य १२ ५०

बाल रोग चिकित्सा—लेखक डा रमानाथ द्विवेदी एम ए, ए एम एस । प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का विस्तार से समन्वय करते हुए विशद वर्णन युक्त । मूल्य ५ ००

अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—लेखक प्रियव्रत शर्मा । यह पुस्तक हिन्दी मे अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक हे । मूल्य ७.५०

धात्री-विज्ञान—डा० शिवदयाल गुप्ता A M S प्रारम्भ मे नारी जननेन्द्रिय रचना एव क्रिया शारीर, गर्भिणी परिचर्या, नवजात शिशु-परिचर्या एव बाल्यकालीन रोगो का सक्षेप मे वर्णन किया है । अनेक सम्बन्धित चित्र भी दिये है । मूल्य २ ५०

गर्भस्थ शिशु की कहानी—लेखक डा. लक्ष्मीशङ्कर गुरु । प्रसूत विषयक हिन्दी मे उत्तम एव सक्षिप्त पुस्तक। सम्बन्धित चित्र भी है। मूल्य २ ००

जन्म-निरोध—लेखक ए० ए० खा M Sc. । पुस्तक मे जन्मनिरोध के लिये अनेक प्रकार की भौतिक, रासायनिक, यान्त्रिक एव शस्त्रकर्मीय विधिया दी गई है । पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मूल्य ६ ००

सामान्य शल्य विज्ञान [सचित्र]—लेखक डाक्टर शिवदयाल गुप्त A, M. S । शल्य (सर्जरी) विषयक हिन्दी भाषा मे विशाल ग्रन्थ । प्रत्येक विषय को आवश्यकीय चित्रो द्वारा समझाया गया है । पुस्तक अध्यापको, विद्यार्थियो एव चिकित्सको—सभी के लिये अत्यन्त उपादेय है । मूल्य १२ ००

आदर्श एलोपैथी मेटेरिया मेडिका—एलोपैथी विज्ञान के अनुसार प्रत्येक औषधि की प्रकृति, गुणधर्म, उपयोग, मात्रा, रोग, निदान के अनुसार वर्णित हैं। मूल्य ११.००

हिन्दी माडर्न मेडिकल ट्रीटमेंट—(आधुनिक चिकित्सा) लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री एम एल. गुजराल M B M R. C, P. (लन्दन) द्वारा लिखित एलोपैथिक चिकित्सा का सर्वोत्तम प्रामाणिक ग्रन्थ है । चिकित्सको के लिये अत्युपयोगी है । मूल्य २० ००

पेटेण्ट प्रेस्क्राइबर या पेटेण्ट चिकित्सा—प्रत्येक रोग पर व्यवहार होने वाली एलोपैथिक पेटेंट औषधियो का तथा इन्जेक्शनो का विवरण सुन्दर ढग से दिया है । मूल्य ७.००

आधुनिक चिकित्सा-विज्ञान (दो भाग)—श्री डा० आशानन्द पचरत्न M B B S आयुर्वेदाचार्य । यह चिकित्सा-विज्ञान की सुन्दर रचना है। इसमे १६ अध्यायो मे रोगो का वर्णन तथा उनकी सफल एलोपैथिक एव आयुर्वेदिक चिकित्सा बडी खूबी के साथ दी हैं । इसकी वर्णन-शैली तुलनात्मक दृष्टि से भी महत्व की नही वरन् सफल चिकित्सा की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ चिकित्सको को उपादेय है । कपडे की सुन्दर जिल्द मूल्य प्रथम भाग १० ०० द्वितीय भाग (समाप्त)

आयुर्वेद एण्ड एलोपैथिक गाइड—लेखक आयुर्वेदाचार्य प० रामकुमार द्विवेदी । हिन्दी मे प्राच्य-पाश्चात्य विज्ञान का विस्तृत ज्ञान देने वाली बेजोड पुस्तक हे । मू० १२ ००

वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—डा० वर्मा जी की कृति । इसमे १००० से अधिक पेटेन्ट तथा साधारण औषधियो के वर्णन के अतिरिक्त सैकडो नुस्खे तथा अन्य उपयोगी बाते दी है । मूल्य १२ ००

एलोपैथिक गाइड—लेखक डा० रामनाथ वर्मा एलोपैथी की ज्ञातव्य बाते सरल हिन्दी मे बताने वाली सुप्रसिद्ध पुस्तक, छठा सस्करण । मूल्य १२ ००

एलोपैथिक योगरत्नाकर—श्री वर्मा जी की उपयोगी पुस्तक। एलोपैथिक मिक्चर तथा प्रयोगो का विशाल संग्रह। पृष्ठ ७४१, मूल्य १३.००

एलोपैथिक-चिकित्सा (चौथा संस्करण)—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। इसमे प्राय. सभी रोगो के लक्षण, निदान आदि संक्षेप मे वर्णन करके उन रोगो की चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। योग आधुनिकतम अनुसन्धानो को समझकर और अनुभव सिद्ध लिखे गये हैं। ८२५ पृष्ठ विशाल सजिल्द ग्रन्थ का मूल्य १२ ००

एलोपैथिक पाकेट गाइड—एलोपैथिक चिकित्सा का सूक्ष्म रूप यह पाकेट गाइड है। इसे आप जेब मे रखकर चिकित्सार्थ जा सकते हैं जो आपका हर समय साथी का काम देती है। मूल्य ३ ००

एलोपैथिक पेटेन्ट मेडीशन—लेखक डा० अयोध्यानाथ पाण्डेय। कौन पेटेन्ट औषधि किस कम्पनी की तथा किन-किन द्रव्यो से निर्मित हुई है किस रोग मे प्रयुक्त होती है, लिखा गया है। दूसरे अध्याय मे रोगानुसार औषधियो का चुनाव किया है। मू० ४ ५०

एलोपैथिक मेटेरिया मैडिका—(पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान) लेखक कविराज रामसुशीलसिंह शास्त्री A M.S। यह पुस्तक अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। लेखक ने विषय को आयुर्वेद चिकित्सको तथा विद्यालयो के लिये विशेष उपयोगी ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। मू० प्रथम भाग समाप्त, द्वितीय भाग ३० ००

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका—लेखक डाक्टर शिवदयाल जी गुप्ता ए एम एस.। इस पुस्तक मे अब तक की सम्पूर्ण औषधिया जो एलोपैथी मे समाविष्ट हो चुकी हैं सभी दी हैं। सफल सुबोध भाषा, वैज्ञानिक क्रम से विषय का स्पष्टीकरण, औषधियो के सम्बन्ध मे आधुनिक सूचना, भिन्न-भिन्न औषधियो से सम्बन्धित तथा चिकित्सा मे प्रयुक्त योगो का निर्देश पुस्तक की विशेषता है। हिन्दी मे सबसे महान् और विशाल अद्वितीय पुस्तक जिसमे १३०० पृष्ठ है। मू० १२.००

एलोपैथिक सफल औषधिया—एलोपैथी की नवीनतम अत्यन्त प्रसिद्ध खास-खास औषधियो का गुणधर्म विवेचन जो आजकल बाजार मे वरदान सिद्ध हो रही है। सभी सल्फाग्रुप आदि औषधियो के वर्णन सहित। मू० ३ ५०

नेत्र रोग विज्ञान—कृष्णगोपाल धर्मार्थ औषधालय द्वारा प्रकाशित अपने विषय की हिन्दी मे सर्वश्रेष्ठ पुस्तक सैकडो चित्रो सहित। मूल्य १५ ००

सचित्र नेत्र-विज्ञान—लेखक डा० शिवदयाल गुप्त, पृष्ठ सख्या ५९४, चित्र सख्या १३ मूल्य ८ ००

मलमूत्ररक्तादि परीक्षा—लेखक डा० शिवदयाल गुप्त, अपने विषय की सर्वाङ्ग पूर्ण सचित्र और वैद्यो के बडे काम की पुस्तक है। मूल्य ३ ००

मिक्चर (छठा सस्करण)—प्रथम २६ पृष्ठो मे मिक्चर बनाने के नियम, औषधियो की तोल-नाप, व्यवस्थापत्रो मे लिखे जाने वाले सकेतो की व्याख्या आदि ज्ञातव्य बातें दी हैं। बाद मे उपयोगी इन्जेक्शनो का भी सकेत किया है। अन्त मे देशी दवाओ के अंग्रेजी नाम दिये है। २१७ पृष्ठ की यह पुस्तक चिकित्सको के लिए अत्युपयोगी है। मूल्य २ ५०

एनीमा और कैथीटर	० ३७
एनीमा टीचर	० २५
कम्पाउन्डरी शिक्षा	२ ५०

सफल कम्पाउण्डर कैसे बने—डा० रामचन्द्र सक्सैना। हिन्दी मे अब तक ऐसी पुस्तक की कमी थी जिससे कम्पाउण्डर बनने की प्रारम्भिक आवश्यकताओ, शिक्षण, छोटे-मोटे नुस्खे, नर्सिंग शिक्षा, फर्स्टएड आदि का ज्ञान हो सके। प्रस्तुत पुस्तक से यह कमी दूर होती है। सुन्दर छपाई, सजिल्द मू० ३ ००

नव्य चिकित्सा-विज्ञान (सक्रामक रोग) भाग १—डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा। व्यस्त चिकित्सको के लिये आधुनिक चिकित्सा विषयक अति उत्तम पुस्तक है। मू० केवल ८ ००, द्वितीय भाग ८.००

बीसवी शताब्दी की औषधिया—इसमे नवाविष्कृत सभी औषधियो के गुणधर्म आदि नातिसक्षेपविस्तरेण दिये गये है। हिन्दी भाषा मे अपने विषय की उत्तम कृति है। मू० ८ ००

रोग निवारण—प्रस्तुत पुस्तक मे आधुनिक-चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगो की चिकित्सा के विस्तारपूर्वक वर्णन के साथ-साथ सक्षेप मे आयुर्वेदिक-चिकित्सा का भी वर्णन किया है। इसके लेखक प्रसिद्धि प्राप्त डा० शिवनाथ खन्ना है। ८४८ पृष्ठ, १८४ पृष्ठ की परिशिष्ट, मू० १४.००

गर्भरक्षा तथा शिशु परिपालन—श्री डा० मुकुन्द-स्वरूप वर्मा द्वारा लिखित अपने विषय की सरल हिन्दी मे उत्कृष्ट पुस्तक है। यथास्थान चित्र भी दिये गये है। मू० ४ ५० मात्र

शालाक्य तन्त्र (निमि तन्त्र)—अष्टाङ्ग आयुर्वेद के महत्वपूर्ण अङ्ग शालाक्य पर यह एक उत्तम ग्रन्थ है। आधुनिक एव प्राच्य दोनो दृष्टिकोण से पूर्ण विवेचन किया गया है। इसके रचियता आयुर्वेद-वृहस्पति श्री रमानाथ जी द्विवेदो ए एम एस है। मू० ६ ००

सकटकालीन प्राथमिक चिकित्सा—डा० प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई हिन्दी मे अपने विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। विषय को स्पष्टत समझाने के लिए पुस्तक मे ८२ चित्र दिए गए है। मू० केवल ४ ७५

नासा-गला एव कर्ण-रोग चिकित्सा—डा० प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई इस पुस्तक मे समस्त रोगो का विशद रूप से परिचय कराया गया है। आजकल की पेटेन्ट औषधियो का भी उत्तम रूप से परिचय है। यथास्थान चित्र भी दिये हैं। मू० केवल ३ ५०

जीवतिक्ति विमर्श या विटामिन तत्व—लेखक डा० पद्मदेव नारायणसिंह। विटामिन विषयक अत्युपयोगी सचित्र पुस्तक ५ ००

प्रसूति तन्त्र—लेखक डा० रामदयाल कपूर। पुस्तक मे श्रोणि-रचना, काम-विज्ञान, गर्भ-विज्ञान, गर्भावस्था और उसकी चर्या, प्रसव-विधि, प्रसवोत्तर कर्म, गर्भावस्था के विकार, प्रसव के विकार, प्रसूतिकालिक विकार, नवजात शिशु के विकार, प्रसूतिका शल्य-कर्म आदि सभी विषय अच्छी तरह समझाकर लिखे गये है। मू० ५ ७५

ऐलोपैथिक सग्रह—भाग प्रथम, मेटीरिया मैडिका ऐलोपैथिक तथा डिस्पैसिग गाइड—जिसमे सभी ऐलोपैथिक औषधियों का व्यौरा विस्तार पूर्वक दिया गया है सभी औषधियो के देशी प्रचलित नाम, मात्रा एव लाभ सभी नवीन औषधिया, कई एक फार्माकोपिया की सभी औषधिया इसमे सम्मिलित है। मू० १२ ००

ऐलोपैथिक सग्रह—भाग पाचवा—नर्सिग, मिडवाइफरी तथा स्त्री रोग चिकित्सा—मू० ७ ५०

ऐलोपैथिक सग्रह—भाग छठा—यह सर्जीकल तथा मकैनीकल दन्दानसाजी पर पहली सम्पूर्ण हिन्दी पुस्तक है जिसमे सर्जीकल दन्त चिकित्सा, दातो के सैट बनाने का पूर्ण कोर्स है। दर्जनो फोटो है मू० १५ ००

बाल रोग चिकित्सा—इसमे बालको के समस्त रोगो का व्यौरा दिया गया है। मूल्य २ ५०

दिक सिल तथा रुदन्ती—इस पुस्तक मे दिक रोग का नवीन उपचार रुदन्ती द्वारा, कई ऐक्सरे फोटो दे कर समझाया गया है। मूल्य ३ ००

एक्सपर्ट फार्मासिस्ट तथा कम्पाउन्डरी शिक्षा—अमरनाथ भाटिया—२ ५०

डिस्पैन्सर गाइड तथा डाक्टरी नुस्खे—इस पुस्तक मे वह समस्त जानकारी दी गई है जो एक डिस्पैसर तथा फार्मासिस्ट के लिए आवश्यक है। मूल्य २ ५०

होम्योपैथिक सग्रह—भाग प्रथम—इसमे पूर्ण होम्योपैथिक विधान (Organon), मैटीरिया मैडीका, रेपर्टरी तथा नुस्खे दिए गए हैं। मू० १० ००

होम्योपैथिक सग्रह—भाग दूसरा—इसमे मैडिका होम्यो विस्तारपूर्वक दिया गया है। औषधियो के हिन्दी प्रचलित नाम, मदर टिंक्चर तथा डाइलूशन बनाने की विधि, औषधि चिन्ह कच्चे रूप मे इसका प्रयोग, होम्योपैथिक प्रूविंग तथा औषधियो के सम्बन्ध पूर्ण रूप से दिये गए है। ऐसा सम्पूर्ण मैटीरिया मैडीका आज तक हिन्दी भाषा मे नही छापा गया। १५ ००

एलोपैथक पाकेट प्रेस्क्राइबर—श्री डा० शिवनाथ खन्ना—प्रत्येक रोग पर सफल पेटेन्ट औषधिया तथा मिक्चर आपको इस पुस्तक मे मिलेगे पृष्ठ ३१२ सजिल्द ५ ००

सफल आधुनिक औषधियां—श्री डा० पद्मदेव-नारायणसिह एम० बी० बी० एस०—इसमे नवीन आविष्कृत एव चमत्कारिक अचूक औषधियो का वर्णन है। विटामिन्स, टानिक्स, सल्फा ग्रुप की तथा एण्टीबायोटिक्स की समस्त औषधियो के साथ-साथ टी० बी०, डायबिटीज, गठिया, कृमि, कुष्ठ, हाईब्लड प्रेशर आदि का विशेष विवेचन दिया हैं। पृष्ठ ३६२, सजिल्द ४ ५०

एलोपैथिक नुस्खा—पुस्तक मे अनेको सफल नुस्खे दिये है। मूल्य २ ००

एलोपैथिक नुस्खा	२ ००
आपरेशन अथवा चीरफाड	० ५०
कपिङ्ग ग्लास मैन्युअल	० ६०
मलेरिया (एलोपैथिक)	२.२५

कैथीटर गाइड	० २५
तापमान (थर्मामीटर)	० २५
थर्मामीटर मास्टर	० २५
स्टेथिस्कोप तथा नाडी परीक्षा	० ७५
स्टेथिस्कोप शिक्षक	१ ००
स्टेथिस्कोप विज्ञान	१ ३७
एलोपैथिक मिक्चर	२ ००
एलोपैथिक सार सग्रह	७ ००
एनाटोमी (शरीर ज्ञान सग्रह)	५ ००
मलेरिया कालाजार	१ ७५
मैडीमन (चिकित्सा ज्ञान सग्रह)	५ ००

इंजेक्शन विषयक पुस्तकें

इंजेक्शन—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा—अपने विषय की हिन्दी मे सचित्र सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। थोडे समय मे ही ६ सस्करण हो जाना ही इसकी उत्कृष्टता का प्रमाण है। इसके आरम्भ मे सिरिंज के प्रकार, इंजेक्शन लगाने के प्रकार तथा उनके लगाने की विधि रगीन एव सादे चित्रो सहित पूरी तरह समझाई गई है। बाद मे प्रत्येक इंजेक्शन का वर्णन उसकी मात्रा, उसके गुण, प्रयोग करने मे क्या सावधानी वर्तनी चाहिए आदि सभी बाते विस्तार से लिखी गई है। अन्त मे अकारादि क्रम मे समस्त इंजेक्शनो की सूची तथा पृष्ठ संख्या दी गई है। चिकित्सको के लिये पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। सजिल्द मू १० ००

सचित्र इंजेक्शन—डा शिवनाथ खन्ना—प्रस्तुत पुस्तक इंजेक्शन अर्थात सूचीवेधन नामक विषय पर विस्तार-पूर्वक, सरल, जनप्रचलित भाषा मे समझाकर लिखी गई है। चार खण्ड हैं जिसमे प्रथम खण्ड मे इंजेक्शन की विधिया तथा इंजेक्शन के भेद, द्वितीय खण्ड मे विभिन्न इंजेक्शनो के गुण कर्मादि, तृतीय खण्ड मे प्रधान रोगो के लक्षण तथा उनमे दिये जाने वाले इंजेक्शन और चतुर्थ खण्ड मे अन्य आवश्यक जानकारी दी है। पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम है। मू १० ००

इन्जेक्शन तत्व प्रदीप—लेखक डा गणपति सिंह वर्मा। सभी इंजेक्शनो का वर्णन है तथा उनके भेद और लगाने की विधि सरलतया दी है। मू ५ ००

सूचीवेध विज्ञान—लेखक डॉ रमेशचन्द्र वर्मा डी आई एम एस। यह पुस्तक भी एलोपैथी इंजेक्शनो की उपयोगी विस्तृत-सामग्री से पूर्ण है। पैनसिलीन विटामिन आदि का भी विस्तृत वर्णन है। पक्की जिल्द मू ७ ५०

सूचीवेध विज्ञान—लेखक श्री राजकुमार द्विवेदी। इस छोटी पुस्तिका मे आपको बहुत कुछ सामग्री मिलेगी। गागर मे सागर भर दिया है। मू १ ५०

होमियो इन्जेक्शन चिकित्सा—आरम्भ मे इंजेक्शनो के भेद तथा उनके लगाने की विधि आदि का सचित्र वर्णन दिया है। तत्पश्चात् होमियोपैथिक औषधियो के गुणादि का वर्णन दिया है। मू. १ ७५

आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध (इन्जेक्शन)—ले वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन। इस पुस्तक मे आयुर्वेदिक द्रव्यो एव जडी बूटियो के इंजेक्शनो का विस्तृत वर्णन किया है। स्वानुभव के आधार पर लिखी अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का मूल्य ५ ००

इन्जेक्शन गाइड—श्री महेन्द्रप्रताप शर्मा एव प्रमोद बिहारी सक्सेना—इस पुस्तक मे एलोपैथिक प्रणाली की विशद विवेचना के साथ साथ होमियोपैथी एव आयुर्वेदिक प्रणाली द्वारा इंजेक्शन क्रिया का यथेष्ट वर्णन किया गया है। सजिल्द मू ६ ००

यूनानी पुस्तकें

जर्राही प्रकाश (चारों भाग)—इसमे घाव और व्रण से सम्बन्धित जर्राही के लिए उर्दू, सस्कृत व डाक्टरी आदि अनेक ग्रथो का सार भाग सग्रह किया गया है। पृष्ठ संख्या २१८ मू ३ ५०

यूनानी चिकित्सा सार—इसमे यूनानी मत से सब रोगो का निदान व चिकित्सादि दी गई है। वैद्यराज रणजीतसिंह जी ने यह ग्रथ वैद्यो के लिए हिन्दी भाषा मे लिखा है जिसमे यूनानी चिकित्सा पद्धति का सभी कुछ दे दिया गया है। यह ग्रन्थ अनेक अरबी फारसी ग्रथो का साररूप है। छपाई सुन्दर है। मूल्य ४ ५०

यूनानी चिकित्सा विधि—इसके लेखक श्री मसाराम जी शुक्ल हकीम वाइस प्रिन्सिपल यूनानी तिब्बिया कालेज दिल्ली है। इसमे दिल्ली के प्रसिद्ध यूनानी खानदानी हकीमो के अनुभूत प्रयोगो का निचोड़ है जिसके कारण

यूनानी हकीमो की चिकित्सा दिल्ली मे खूब चमकी और आज तक नाम है। कपडे की पक्की जिल्द मू ५ ००

यूनानी चिकित्सा सागर—श्री मसाराम जी शुक्ल द्वारा लिखा हुआ हिन्दी भाषा मे यूनानी का विशाल ग्रन्थ है जो 'रसतन्त्रसार' के ढङ्ग पर लिखा गया है। इसमे पुराने व आधुनिक सभी हकीमो के १००० अनुभूत प्रयोग हैं। औषधियो के नाम हिन्दी मे अनुवाद करके दिये गये है। जिनके नाम नही मिले हैं ऐसी २५० औषधियो का वर्णन परिशिष्ट मे दिया है। ५१६ पृष्ठ। पक्की सुन्दर कपडे की जिल्द मू १० ००

यूनानी चिकित्सा विज्ञान—यूनानी चिकित्सा-विज्ञान का हिन्दी मे अनुपम ग्रन्थ। इस पुस्तक के दो भाग किए गये हैं। प्रस्तुत भाग मे यूनानी चिकित्सा और निदान के मूलभूत सिद्धान्तो का विशद विवेचन है। इसमे रोग के लक्षण निदान भेद तथा परीक्षा की सामान्य विधिया हैं। ६९६ पृष्ठो के इस ग्रन्थ का मूल्य ८ ४०

यूनानी सिद्ध योग सग्रह—यह यूनानी सिद्ध योगो का सग्रह है। सभी योग सफल परीक्षित और सहज मे बनने वाले है, हरेक वैद्य के काम की चीज है। इसके सग्रहकार हैं वैद्यराज दलजीतसिंह जी आयुर्वेद बृहस्पति। मूल्य २ ५०

यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धान्त—(कुल्लियात) श्री बाबू दलजीतसिंह जी व उनके भाई रामसुशीलसिंह जी ने इस छोटे से ग्रन्थ मे इस बात को दिखाने का प्रयत्न किया है कि आयुर्वेद और यूनानी-चिकित्सा-पद्धतियो मे कितना सादृश्य तथा कितना असादृश्य है। इसका निर्माण, दोनो का समन्वय हो सकता है इस आधार पर किया गया है। मूल्य १ २५

मखजनउल मुफरदात [निघण्टु विज्ञान]—लेखक प० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा। मूल्य २ ००

कराबादीन सिफाई—यूनानी प्रयोग संग्रह—लेखक पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा मूल्य २ ००

करीबादीन कादरी—लेखक जगन्नाथ प्रसाद हैड मुदर्रिस। चार भाग मूल्य ८ ००

यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान—हकीम डा दलजीतसिंह ने पूर्वार्ध मे द्रव्य गुण कर्म आदि का विवेचन किया है। उत्तरार्ध मे ५३० यूनानी द्रव्यो के पर्याय, उत्पत्तिस्थान, वर्णन, रासायनिक संगठन, प्रकृति और गुण का पूर्ण विवेचन दिया गया है। मूल्य २२ ००

यूनानी शब्दकोष—यूनानी दवाओ के हिन्दी पर्याय इसमे मिलेंगे। इससे दवा लेने मे बडी सहूलियत होगी। मूल्य ० ३७

सरल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तकें

अनुभूत योग प्रकाश—ले० डा० गणपतिसिंह वर्मा। प्राय सभी रोगो पर आपको सरल सफल प्रयोग इस स्तक मे मिलेंगे। पृष्ठ मूल्य ६ २५

अनुभूति—ले० डाक्टर नरेन्द्रसिंह नेगी इसमे भिन्न-भिन्न रोगो पर अनुभूत योगो का वर्णन है। मू २ ५०

गुप्त सिद्ध प्रयोगांक [चतुर्थ भाग]—सन् '५८ का धन्वन्तरि का विशेषाक है। १६२८ प्रयोगो के सग्रह है। उत्तम ग्लेज कागज पर जिल्द बधा हुआ। मूल्य ८ ५०

पैसे पैसे के चुटकुले—सस्ते तथा सफल प्रयोगो का सग्रह मूल्य ३ ००

महात्मा जी के १२५१ नुस्खे—इस पुस्तक मे जनता के लाभार्थ महात्मा जी ने अपने स्वानुभूत प्रयोगो द्वारा गागर मे सागर भर दिया है। प्रत्येक प्रयोग से पुस्तक का मूल्य वसूल समझे। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ३ ००

सिद्ध मृत्युञ्जय योग—इस पुस्तक मे ५३ सफल प्रयोगो का वर्णन है। प्रयोग, मात्रा, सेवन-विधि, गुण आदि देकर यह स्पष्ट लिख दिया है कि प्रयोग किस प्रकार प्राप्त हुआ तथा कहा सफलता के साथ व्यवहृत हुआ है। मूल्य १.००

औषध स्वावलम्बन—कवि विद्यानारायण शास्त्री। तुलसी, पान आर्द्रक आदि सुगमता से प्राप्य औषधियो का प्रारम्भ मे सक्षिप्त वर्णन देते हुए बाद मे यह समझाया गया है कि वह औषधि किन-किन रोगो पर किस प्रकार कार्य कर सकती है। मूल्य २ ००

सिद्ध योग [दो भाग]—प० विश्वेश्वर दयाल वैद्यराज। इस पुस्तक मे अनेक सिद्ध योगो का रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए संग्रह किया है। मूल्य प्रथम भाग १ ००, द्वितीय भाग ०.८०

वैद्य जीवनम्—श्री लोलम्बराज कृत सस्कृत मे प्रयोगो का सग्रह है। सरल हिन्दी टीका की गई है।

टाकाकार प किशोरी दत्तशास्त्री मूल्य ० ७५, पं कालीचरण पाडेय एम ए कृत १.२५, केशवदास जी १.००

वैद्य बाबा का बस्ता—जैसा कि नाम से ही प्रगट है, श्री बसरीलाल जी साहनी द्वारा रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए लगभग ६५० प्रयोगो का सग्रह हे। पुरतक का आकार डायरी के समान है इससे पुस्तक की उपादेयता और बढ गई है। सजिल्द १ २५

नित्योपयोगी चूर्ण संग्रह—नित्य उपयोग मे आने वाले १३१ चूर्णो का सग्रह विभिन्न ग्रन्थो से किया गया है। उसके बनाने की विधि, मात्रा, अनुपान एवं गुणो का वर्णन किया है। मूल्य १.२५

नित्योपयोगी क्वाथ संग्रह—क्वाथ चिकित्सा, आयुर्वेद की प्राचीन, अल्प व्यय साध्य एवं आशुफलप्रद चिकित्सा है - इस पुस्तक मे १६ क्वाथो का सग्रह प्रकाशित किया गया है। म् १.२५

नित्योपयोगी गुटिका संग्रह—३२३ बूटियो (गुटिकाओ) का उपयोगी सग्रह। मूल्य २ ००

अनुभूतयोग चिन्तामणि—डाक्टर गणपतिसिंह वर्मा राजवैद्य। वर्गानुसार रोगो का वर्णन कर तत्पश्चात् उपयोगी नुस्खे दिये गये है जो कि सस्ते, सरल एव आशुफलप्रद है। अल्प काल मे पाच सस्करण हो जाना ही इसकी उत्तमता का प्रमाण है। मूल्य प्रथम भाग ४ २५, द्वितीय भाग ४ ००

सिद्ध भैषज्य संग्रह—चूर्ण, वटी, तैल अवलेह आदि वर्गानुसार अनेक सिद्ध औषधियो का विवेचन किया गया है। अन्त मे ज्वर, अतिसार आदि रोगो पर प्रयुक्त की जाने वाली औषधियो की सूची विस्तृत रूप से दी गई है। सजिल्द मूल्य ८ ००

देहाती अनुभूत योग संग्रह—(दो भाग) अनुवादक अमोलकचन्द शुक्ल–देहाती वस्तुओ से उत्तमोत्तम प्रयोगो को बनाने की विधिया वर्णन की गई है। दोनो भागो को मिलाकर लगभग ६५० प्रयोग दिये है। सजिल्द मूल्य प्रथम भाग ६ ००, द्वितीय भाग ७ ००

डाक्टरी नुस्खे—डाक्टर राधावल्लभ पाठक-अनेक अचूक डाक्टरी नुस्खो का सग्रह इस छोटी सी पुस्तक मे किया गया है। सजिल्द मूल्य ५ ००

अनुभूत योग चर्चा—लेखक बसरीलाल साहनी- प्रथम भाग मे २०७ प्रयोगो तथा द्वितीय भाग मे ४३३ प्रयोगो का सग्रह है। इस पुस्तक मे अति सरल प्रयोग वर्णित हैं। पुस्तक हर चिकित्सक के लिये अवश्य पठनीय वडे काम की बन गई है। सभी को अवश्य मंगानी चाहिये मूल्य प्रथम भाग २ ५०, द्वितीय भाग ३ ५०

अनुभूत योग—दो भाग मे लगभग १५० प्रयोगो की निर्माण विधि, मात्रा, अनुपान एव उनके गुणो का विस्तृत विवेचन किया है। मूल्य प्रत्येक भाग का १ ००

सिद्ध योग सग्रह—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव त्रिक्रम जी आचार्य के द्वारा अनुभूत सफल प्रयोगो का सग्रह। हर चिकित्सक के लिये उपयोगी पुस्तक है। इसके सभी प्रयोग पूर्ण परीक्षित और सद्य लाभदायक है। मूल्य २ ७५

रसतन्त्रसार व सिद्ध प्रयोग सग्रह—सशोधित अष्टम सस्करण। इस ग्रन्थ मे रस रसायन, गुटिका, आसव, अरिष्ट पाक, अवलेह, लेप-सेक मलहम अजनादि सभी प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियो के सहस्रश अनुभूत एव शास्त्रीय प्रयोग तथा विस्तृत गुणधर्म विवेचन है। प्रथम भाग ६.०० सजिल्द १२ ०० द्वितीय भाग ६ ००, सजिल्द ७ ५०

एलोपैथिक नुस्खा	२ ००
होमियोपैथिक नुस्खा	१२२५

होमियो बायोकैमिक पुस्तकें

आर्गेनन—यह होमियोपैथी की मूल पुस्तक है जिसमे इस पैथी के मूल प्रवर्तक महात्मा सैमुएल हैनिमैन के २६१ सूत्र है। इस पुस्तक मे इन्ही पर डा० सुरेशप्रसाद शर्मा ने व्याख्या इतनी सुन्दर और सरल की है कि हिन्दी जानने वाले इन सूत्रो का मन्तव्य भलीभाति समझ सकते हैं। बिना इस पुस्तक के होम्योपैथी को जानना दुराशा मात्र है ३८८ पृष्ठ सजिल्द मू ४ ४०

इन्जेक्शन चिकित्सा होमियो—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा इसमे होम्योपैथी इन्जेक्शनो का वर्णन है साथ ही होमियोपैथी औषधियो मे इन्जेक्शन बनाना आदि भलीभाति बताया है। १ ७५

ज्वर चिकित्सा—उत्तर प्रदेशीय सरकार से पुरस्कार

प्रात इसमे सभी प्रकार के ज्वरो की एलोपैथिक आयुर्वेदिक एव यूनानी मत से चिकित्सा वर्णित है। मू २००

पशु चिकित्सा होमियो—यह आयुर्वेदिक तथा होम्योपैथिक दोनो से सम्वन्धित पशु-चिकित्सा पर वहुत उपयोगी साहित्य है मू २ १२

प्रिंस मेटेरिया मैडिक (कम्परेटिव)—डा० सुरेशप्रसाद शर्मा प्रिंस होम्योपैथिक कालेज के प्रिंसिपल द्वारा प्रणीत यह होम्योपैथिक मेटेरिया मेडिका है। औरो से इसमे वहुत कुछ विशेषता है। थेराप्युटिक ही नही इसमे फार्माकोपिया भी सम्मिलित की गई है। प्रत्येक प्रत्येक औषधियो के मूलद्रव्य, प्रस्तुत विधि, वृद्धि, उपशय, प्रमुख एव साधारण लक्षणो आदि सभी विषयो का वर्णन किया गया है। १३७२ पृष्ठो वाले इस विशाल ग्रथ का मू० केवल ६ ००

किंगहोमियो मिक्श्चर्स—श्री० शकरलाल गुप्ता। यह पुस्तक होमियोपैथिक डाक्टरो के दैनिक व्यवहार के लिये अत्युपयोगी है। मूल्य २ ५०

किंग होमियो मिक्श्चर्स एवं पेटेन्ट मैडीसन गाइड—श्री डा० शकरलाल गुप्ता। इसमे होमियोपैथिक दृष्टि से रोग का परिचय, कारण, लक्षण रोग की चिकित्सा आदि पर उत्तम प्रकाश डाला गया है। मू० ७ ५०

होमियो मेटेरि या मेडिका (रेपर्टरी सहित)—डा० विलियम वोरिक—अव तक यह पुस्तक अग्रेजी भाषा मे थी जिसका यह सरल हिन्दी भाषा मे अनुवाद है। मेटेरिया मेडिका अध्याय के वाद रेपर्टरी अध्याय लिखा गया है। लगभग १८०० पृष्ठ मूल्य १५ ००

होमियोपैथिक लेडी डाक्टर (छठा संस्करण)—इस पुस्तक मे स्त्री रोगो की सरल होमियोपैथिक चिकित्सा दी गई है। पाच सस्करण शीघ्र ही समाप्त हो जाना इस पुस्तक की उपादेयता का द्योतक है। मूल्य केवल १ ६२

होमियोपैथिक नुस्खा—डा० श्यामसुन्दर शर्मा—इस पुस्तक मे अनेक उपयोगी होमियोपैथी नुस्खे दिये गए हैं। मूल्य १ २५

भैषज्यसार—होम्योपैथी का पाकेट गुटिका। सभी रोगो मे दवाओ के प्रयोग व मात्राये दी है। मू २ ००

भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेन्ट मैडिसन डा० सुरेशप्रसाद ने इस पुस्तक मे उन औषधियो को लिया है जो भारतीय औषधियो मे तैयार होती है। साथ ही वाद मे कुछ होम्योपैथिक पेटेण्ट औषधियो को, वह किस रोग मे दी जाती है, दिया है। मू० १ ५०

रिलेशन शिप—नित्य व्यावहारिक औषधियो का सहायक अनुसरणीय प्रतिषेधक तथा विपरीत औषधियो का सग्रह किया गया है। मू० २ ००

सरल होमियो चिकित्सा—इसमे सभी स्त्री पुरुष के स्वास्थ्य नियमो को वताया है तथा उनसे विपरीत होने वाले सभी रोगो की होमियोपैथी चिकित्सा दी गई है। रोग वर्णन तथा चिकित्सा दोनो ही अत्यन्त सरल और समझाकर लिखे गये हैं। मू० ४ ५०

रोग निदान चिकित्सा—इस छोटी पुस्तक मे १०० पृष्ठो मे रोगी की परीक्षा विधि व ५० पृष्ठो मे होमियोपैथी एव आयुर्वेदिक चिकित्सा है। मूल्य २ ००

स्त्री रोग चिकित्सा—डा० सुरेशप्रसाद शर्मा लिखित स्त्री-जननेन्द्रिय के समस्त रोग, गर्भाधान, प्रसव के रोग तथा स्त्रियो को होने वाले अन्य सभी रोगो का निदान व चिकित्सा दी है। मू० ४ ५०

होमियोपैथिक मेटेरिया मैडिका—जिन्हे मोटे-मोटे ग्रन्थ पढने का समय नही है उनके लिए यह मेटेरिया मेडिका वहुत उपयुक्त है। सजिल्द ४०० पृष्ठ मू० ३ ७५

होमियो मेटेरिया मैडिका—डा० श्यामसहाय भार्गव द्वारा रचित। सभी आवश्यक विषय है कोई छूटने नही पाया है। किसी मेटेरिया मैडिका से कम महत्व की नही है। ५६१ पृष्ठो की सजिल्द पुस्तक मू० ५ ००

होमियो चिकित्सा विज्ञान—(Practice of medicines)—ले० डा० श्यामसुन्दर शर्मा। प्रत्येक रोग को खण्ड खण्ड रूप मे परिचय, कारण, शारीरिक विकृति, उपद्रव, परिणाम और आनुषङ्गिक चिकित्सा के साथ आरोग्य चिकित्सा का वर्णन है। सजिल्द मू० ३ ५०

कालराया हैजा—इस भयङ्कर महाव्याधि पर सुन्दर सामग्री प्रस्तुत है। प्रत्येक अवस्था पर औषधियो का सग्रह मू ३ ००

वायोकैमिक चिकित्सा—वायोकैमिक चिकित्सा सिद्धान्त के सम्वन्ध मे आवश्यक वाते तथा वारहो औषधियो के वृहद् मुख्य लक्षण और किन-किन रोगो मे उनका व्यवहार होता है, सरल ढग से समझाया गया है। पृ० ४३६ मूल्य ४ ००

वायोकैमिक रहस्य—(नवम् सस्करण) वायोकैमिक

क्या है, इस विषय पर पुस्तक सभी आवश्यक अङ्गो की जानकारी देती है तथा बारहो दवाओ का भिन्न भिन्न रोगो पर सफल वर्णन किया गया है। सजिल्द मू० ३ ००, कैलाशभूषण लिखित १.५०

बायोकैमिक मिक्चर—बारहो क्षारो का विभिन्न रोगो मे मिक्श्चर रूप व्यवहार करना यह पुस्तक बताती है। मूल्य ० ७५

होमियो पारिवारिक चिकित्सा—लेखक डा० सुरेश प्रसाद शर्मा। प्रत्येक रोग के लक्षण एव उनकी होमियोपैथिक चिकित्सा विस्तृत रूप से दी गई है। आधुनिक वैज्ञानिक विवेचन भी साथ मे दिया गया है। पृष्ठ लगभग १६००। मूल्य ६ ००

बारह तन्तु औषधियाँ	डा विलियम बोरिक	७ ००
घाव की चिकित्सा	श्यामसुन्दर शर्मा	१ ००
निमोनिया चिकित्सा	डा० बी एन टडन	० ७५
,, ,,	डा० सुरेशप्रसाद	० ७५
होमियो थाइसिस चिकित्सा	,,	० ७५
होमियोटाइफाइड चिकित्सा	डा० सुरेप्रसाद	० ७५
		१ ००
होमियो पाकेट गाइड	,, ,,	२ २५
गृह चिकित्सा	,, ,, डा० बी एन टडन	१ ५०
,, सरल होमियो पारिवारिक चिकित्सा	डा० श्योसहाय भार्गव	५ ००
होमियो फार्माकोपिया	डा० बी एन टडन	२ ००

प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तके

रोगों की सरल चिकित्सा—तीसरा परिवर्तित सस्करण)—लेखक श्री विठ्ठलदास मोदी। १०,००० से अधिक रोगियो पर किये गये अनुभव के आधार पर लिखी गई हिन्दी की यह प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक है, अब तक इसकी पन्द्रह हजार प्रतिया बिक चुकी हैं। पृष्ठ सख्या ३५०, बढिया पक्की जिल्द मूल्य ४ ००

बच्चों का स्वास्थ्य और उनके रोग—बच्चो के पालन पोषण की विधि के साथ-साथ उनके रोगी होने पर उन्हे रोगमुक्त करने की विधि इस पुस्तक मे विस्तार से दी गई है। मूल्य केवल ३ ००

रोगों की नई चिकित्सा—ले० लूईकूने। यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा का बहुत पहले आविर्भाव हो चुका था पर हिन्दुस्तान मे प्राकृतिक चिकित्सा कूने की पुस्तक 'न्यू साइन्स आफ हीलिंग' के साथ ही आई। कूने का इस पुस्तक का ही 'रोगी की नई चिकित्सा' भावात्मक अनुवाद है। पृष्ठ २६०, बढिया छपाई मूल्य २.००

प्राकृतिक जीवन की ओर—मिट्टी, पानी, धूप, हवा और भोजन की सहायता से नये पुराने सब रोगो को दूर करने वाली तथा स्वास्थ्य बढिया बनाने की विधि सिखाने वाली जर्मन पुस्तिका का अनुवाद मूल्य २ ५०

जीने की कला—यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढ़ायेगी, चिन्ताओ से मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सारे रहस्य खोलकर रख देगा जिसके कारण मनुष्य स्वस्थ बनता है। मूल्य १ २५

स्वास्थ्य कैसे पाया ?—इस पुस्तक मे स्वास्थ्य को उन्नत बनाने और लोगो की रोगो से मुक्ति पाने की आत्मकथाये पढकर स्वस्थ रहने का सही तरीका जाने। मूल्य १ ५०

उपवास के लाभ—उपवास की महिमा, उपवास करने की विधि और रोगो के निवारण मे उपवास का स्थान बताने वाली पुस्तक मूल्य १ ५०

उठो ?—इस पुस्तक को पढे और और दु ख, परेशानी और मुसीबतो से छुटकारा पाकर जीवन को सरल बनाये, मूल्य १ ००

आदर्श आहार—भोजन से स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है और भोजन द्वारा रोग का निवारण कैसे किया जा सकता है बताने वाला एक ज्ञानकोष मूल्य १ ००

आहार चिकित्सा—आहार द्वारा रोग निवारण की शास्त्रीय विधि इस पुस्तक मे सरल भाषा मे समझाई है। इसके लेखक श्री विठ्ठलदास मोदी है। मूल्य १ ५०

सर्दी जुखाम खांसी—इन रोगो के कारण, उनको दूर करने की सरल घरेलू विधि और उनसे बचने का रास्ता बताने वाली एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। मूल्य ० ७५

योगासन—लेखक आत्मानन्द। योगासन हिन्दुस्तान के ऋषियो द्वारा सस्कृत प्राचीनतम प्रणाली है। योगासन की विधिया और योगासनो द्वारा रोग-निवारण की कला की जानकारी प्राप्त कीजिये। मू० केवल २ ००

दुग्धकल्प—दूध मे क्या गुण है। इससे इलाज किस प्रकार किया जाता है दूध से बनी विभिन्न वस्तुओं का हमारे स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पडता है आदि वर्णन इस पुस्तक मे पढिये। मू० ४ ००

स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारियां (चतुर्थ संस्करण) शाक-तरकारिया जो हम रोजाना खाते हैं इनका मनुष्य के स्वास्थ्य और सौन्दर्य से क्या सम्बन्ध है, कौन-कौन सी शाक-तरकारिया कब और कैसे खानी चाहिये आदि सभी बाते इस छोटी सी पुस्तक मे दी हैं। मू० २ ००

स्वास्थ्य और जल चिकित्सा (छठा सस्करण)—लेखक केदारनाथ गुप्ता एम० ए०। इसमे जल-चिकित्सा के सारे सिद्धान्तो का बड़ी सरल भाषा में प्रतिपादन किया गया है। पानी के द्वारा समस्त रोगो की चिकित्सा कैसे करें। यह इस पुस्तक मे पढिये। मू० २ ००

दैनन्दिनी रोगों की प्राकृतिक-चिकित्सा—लेखक कुलरजन मुखर्जी। इस पुस्तक मे ज्वर, प्रतिश्याय, अतिसार, प्रवाहिका, फोडा, फुन्सा, घाव, सिर-दर्द, हैजा, चेचक रोगो की प्राकृतिक-चिकित्सा दी गई है। मू० ४ ०० मात्र।

पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा—लेखक डा० कुलरजन मुखर्जी। इस पुस्तक मे अजीर्ण, सग्रहणी, श्वास, यक्ष्मा, कैंसर, मधुमेह, दाद, उन्माद, रक्तचाप, अश्मरी, नपुसकता, अण्डवृद्धि आदि सभी जीर्ण रोगो की प्राकृतिक-चिकित्सा दी गई है। ४ ००

प्राकृतिक शिशु-चिकित्सा—लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा। शिशुओ के विभिन्न रोग किस कारण से होते हैं। तथा उनका नाम-मात्र व्यय मे किस प्रकार उपचार किया जाय। बच्चो को निरोग रखने के उपाय एव विविध प्रकार के स्नान इस पुस्तक मे हैं। मू० २ ००

देहाती प्राकृतिक-चिकित्सा—इस पुस्तक मे नेत्र, कर्ण, नासिका, दन्तरोग, मुख तथा कठरोग, श्वास,-कास, अजीर्ण, विशूचिका, प्रवाहिका, अतिसार, सग्रहणी, वृक्कशूल, मूत्रावरोध, दाद, श्वित्र, नपुसकता आदि रोगो के उपयोगी प्रयोग दिये गये हैं। मूल्य सजिल्द ५ ००

आरोग्य साधन—महात्मा गाधी द्वारा गुजराती भाषा मे लिखित पुस्तक का यह हिन्दी अनुवाद है। आरोग्य का सच्चा अर्थ बताने वाली ऐसी दूसरी पुस्तक शायद ही मिले। मू० केवल ० ८७

आकृति निदान—आकृति निदान का मूल ग्रन्थ जर्मनी भाषा की एक पुस्तक है जिसका हिन्दी अनुवाद किया गया है। अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। अन्त मे ५२ फोटो चित्रो द्वारा विभिन्न-आकृतियों का ज्ञान कराया गया है। हार्दीपन का इलाज बहुत विस्तृत रूप से दिया गया है। सजिल्द मूल्य २.५०

जल चिकित्सा—श्री [illegible] चट्टोपाध्याय बी० एल०। अनुवादक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा। इस पुस्तक के तीन भाग है। तृतीय भाग मे सब तरह के स्त्री-रोगो का इलाज दिया गया है। मू० प्रथम भाग व द्वितीय भाग समाप्त, तृतीय भाग १ ५०

स्वास्थ्य-साधन	श्री रामदास गौड़ सजिल्द	४.००
दमा-श्वासखासी का इलाज	डा० युगलकिशोर चौधरी	० ५०
नवीन चिकित्सा-पद्धति	,, ,,	१.२५
सूर्योदय	,, ,,	१ ००
व्यायाम काया कल्प	,, ,,	२ ००
चिकित्सा-सागर	,, ,,	०.७०
मै नीरोग हू या रोगी	,, ,,	०.६२
कपडा और तन्दुरुस्ती	,, ,,	० ५६
घरेलू कुदरती इलाज	केदारनाथ गुप्ता	१ ००
जल-चिकित्सा (पानी का इलाज)	डा० युगलकिशोर चौधरी	१.००
दुग्धकल्प व दुग्ध-चिकित्सा	डा० युगलकिशोर चौधरी	१.२५
नेत्र-रक्षा व नेत्र-रोगो की प्राकृतिक-चिकित्सा	,, ,,	० ७५
प्राकृतिक-चिकित्सा पथप्रदर्शक	,, ,,	० ३७
,, ,, प्रश्नोत्तरी	,, ,,	० ५०
,, ,, सागर	,, ,,	०.७५
प्राकृतिक-चिकित्सा	प० चन्द्रशेखर	१ ००
बच्चो का पालन और चिकित्सा	युगलकिशोर चौधरी	०.७५
मलेरिया मोतीझरा न्यूमोनिया	,, ,,	० ७५
भिन्न-भिन्न रोगो की प्राकृतिक-चिकित्सा	,, ,,	० ५०
स्त्री-रोग चिकित्सा	,, ,,	० ७५
सूर्य रश्मि चिकित्सा	वैद्य बाकेलाल गुप्ता	०.७५

चिकित्सोपयोगी नवीन उपकरण

एक सफल चिकित्सक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह रोगी का सही निदान करे तथा उसकी चिकित्सा मे औषधि-प्रयोग के साथ आधुनिकतम यन्त्र-शस्त्रो का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार करे। इन आधुनिक यत्र शस्त्रों के प्रयोग मे आपको तो अपनी चिकित्सा मे सफलता मिलती ही है साथ ही रोगी पर भी आपके प्रति बहुत अनुकूल प्रभाव पडता है। हमने अपने स्टोर्स मे नवीन-नवीन यत्रशस्त्रो का विक्रयार्थ विशाल सग्रह किया है। चिकित्सको को चाहिये कि वे आवश्यकतानुसार इन वस्तुओ को मगाकर रखे तथा अपने चिकित्सा-कार्य मे सफलता एव यश प्राप्त करें।

डाइग्नोस्टिक सैट—इस सैट द्वारा नाक कान तथा गले को अन्दर से देखते है। उसमे एक टार्च होती है जिसमे २ सैल डाले जाते हैं। उस टार्च के ऊपर कान देखने का आला, नासिका प्रेक्षण यन्त्र तथा गले व जबान देखने की जीबी तीनो मे से कोई सा एक फिट हो जाता है। इसमे प्रकाश की व्यवस्था होने से बहुत सुविधा रहती है। साथ ही रोगी पर प्रभाव भी पडता है। इसका प्रत्येक चिकित्सक के पास होना अत्यन्त आवश्यक है। सैल सहित पूरे सैट का मूल्य केवल २४ ००

चिपकने वाली पट्टी (Adhesive Plaster)—पीठ, पेट, छाती या किसी अन्य ऐसे स्थान पर घाव हो जहा पर पट्टी बाधने मे असुविधा हो तो आप इसका प्रयोग करे। यह उसी स्थान पर काट कर चिपका दी जाती है। मूल्य (१ इच × ५ गज) २ ००

आमाशय प्रक्षालिनी नलिका (Stomach wash tube)—यह प्रत्येक चिकित्सक के लिये अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। किसी विष के खा लेने पर तुरन्त ही प्रक्षालन की आवश्यकता होती है जो कि इसी नलिका की सहायता से किया जाता है। मूल्य—७.००

नमक का पानी चढ़ाने का यंत्र (saline Apparatus)—हैजा मे नमक का पानी चढाना चिकित्सक के लिए अत्यन्त आवश्यक है जो कि इसी यन्त्र की सहायता से चढाया जाता है। मूल्य १२ ५०

आख धोने का ग्लास—किसी वस्तु का कण या उडता हुआ कोई छोटा सा कीडा आख मे पड़ जाने पर निकलना कठिन हो जाता है और यह बडा कष्ट देता है। इस ग्लास मे जल भर कर आख मे लगा देने पर आसानी से निकल जाता है। मूल्य १.००

शर्करामापक यन्त्र—मधुमेह रोग मे चिकित्सक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे मूत्र मे जाने वाली शर्करा की प्रतिशत मात्रा ज्ञात हो। बिना प्रतिशत मात्रा ज्ञात हुए अनुमान द्वारा Insuline का प्रयोग कभी-कभी रोगी को घातक सिद्ध होता है। रोगी स्वास्थ्यलाभ कर रहा है या नही यह भी आप इसी यन्त्र द्वारा निश्चयपूर्वक कह सकते है। मूल्य केवल ५ ००

रक्तचापमापक यन्त्र—अनेक रोगो मे रोगी का

रक्तचाप (Blood Pressure) जानना आवश्यक है। शल्य कर्म के पश्चात् तो इसका प्रयोग रोगी की स्थिति ज्ञात रखने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार के आधुनिक यन्त्रो का प्रभाव भी रोगी पर बहुत अच्छा होता है तथा इससे चिकित्सको को अपनी चिकित्सा मे सुविधा भी रहती है। प्रत्येक वैद्य को यह यन्त्र अवश्य मगाकर रखना चाहिए। मू० ९८ ००
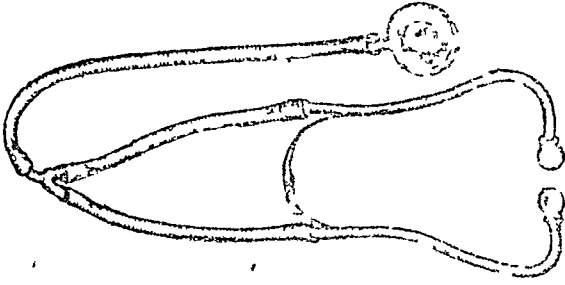
स्टेथिस्कोप (वक्ष परीक्षा यन्त्र)—इस यन्त्र से सुविधा रहती है। साथ ही आजकल के जमाने मे चिकित्सक का सम्मान भी इसी मे है कि वे इस प्रकार के यन्त्रो को व्यवहार मे लाते हुए रोगियो पर अपनी धाक जमाये। मूल्य भारतीय उत्तम ८ ००, एक चैस्ट पीस वाला जापानी वढिया सर्वोत्तम ३० ००, केवल चैस्ट पीस (भारतीय) ४ ००

मोतीझला देखने का शीशा-मोतीझला (Typhoid) के दाने बहुत सूक्ष्म होने कारण देखने मे नही आते इसलिए कभी-कभी निदान करने मे बडी भूल हो जाती है। इस शीशा के द्वारा वे दाने बडे-बडे दीख पडते है तथा आसानी से पहिचान सकते है। प्लास्टिक का हेडिल छोटा मू० २ ५०, वढिया बडा ३,००, धातु का हेडिल (जापानी) सर्वोत्तम ४ २५, जापानी बडा ५ ५०

मलहम मिलाने की छुरी—स्पेचुला (Spetula) लकडी का हैडिल मूल्य १ २५, धातु का हैडिल १ ७५

मलहम मिलाने की प्लेट (चीनी की)—साइज ४×४ इच मूल्य १ ००, ६×६ इच १ २५, ८×८ इच ३ ००

सतति निरोध (Birth control) के लिए—पुरुषो को फ्रेंच लैदर साधारण ० ५० (१ दर्जन ५ ००), वढिया ० ७५ (१ दर्जन ७ ५०), क्रोकोडायल फ्रेंच लैदर सर्वोत्तम-एक ओर चिकना तथा दूसरी ओर खुरदरा १ ०० (१ दर्जन १० ००)

स्त्रियों को चैकपैसरी—जापानी ० ८७ (१ दर्जन ८ ५०) डाइफ्राम (डच) पैसरी वढिया २ ५० (१ दर्जन २५ ००)

नोट—उपर्युक्त कोई भी सामान एक दर्जन से कम मंगाने पर एक नग का जो मूल्य लिखा है वह ही लगाया जायगा, दर्जन वाला मूल्य नहीं। डाइफ्राम (डच) पैसरी ६ नग मगाने पर १२.५० लगाये जायेंगे।

रिंगपैसरी रवड की—१ पैसरी का मूल्य ० ७५, हौज पैसरी (Hodge Passery)—मूल्य ० ८७

किडनी ट्रे (Kidney tray)—कान धोने के समय लगाने के लिए ६ इची २ २५, ८ इन्ची २ ७५, १० इन्ची ३ २५, ८ इन्ची नाइलोन की (न टूटने वाली सुन्दर) ३ २५

स्टेथिस्कोप रखने का थैला—स्टेथिस्कोप की रवट (नली) नमी आदि से गल जाती है। हमने वढिया चमडे के स्टेथिस्कोप रखने के बहुत सुन्दर बेग बनवाये हैं। इसमे एक ओर आप स्टेथिस्कोप रख सकते है तथा वाहर नाम का कार्ड लगाने का स्थान है, हाथ मे लटकाया जा सकता है। दो जेबो का मू० ५ ५०

जिप (जजीर) लगा एक जेब का चमडे का साधारण (इसमे नाम का कार्ड नही लगाया जा सकता है, एक जेब है) मूल्य ४ ५०

सस्पेन्सरी बेन्डेज—यह वडे हुए अण्डकोषो को सभालने के काम आती है। यह पेटी (Belt) की भाति कमर मे कस जाती है तथा एक ज़ाली का बना थैला इस प्रकार लगा रहता है कि अ डकोप उसमे रख जाते है। लगोट वाधने से अ डकोप लटके तो नही रहते लेकिन उन पर कसाव पडता है जो कि अवाछनीय है लेकिन इस वेन्डेज मे ऐसा नही होता है। इलास्टिक लगी हुई है। मूल्य केवल १ ५०

हीमोग्लोबिन स्केल बुक (Haemoglobin scale book)—विना किसी यन्त्र की सहायता के हीमोग्लोविन की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करे। मूल्य केवल २ ००

पैन टार्च—यह टार्च जेब मे पेन की तरह लगाई जाती है। इसमे बहुत पतले दो सैल पडते है। चिकित्सको के लिये गले, नाक आदि की परीक्षा करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। यह टार्च मोटे पैन के बराबर बडी होती है। मूल्य दो सैल सहित केवल ६ ००

इसी टार्च पर गले, जबान देखने कान तथा नाक

देखने की काच की टोन नली फिट हो जाती हैं जिनसे इन अङ्कों को आसानी से देखा जा सकता है। ताला सहित एक बक्स में रखे पूरे सेट का मूल्य केवल २४.००
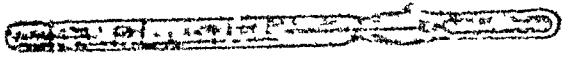
थर्मामीटर (तापमापक यन्त्र जापानी)—२.७५

थर्मामीटर केस—धातु के निकिल किये क्लिप सहित १.५०

आटोमाइजर (Automizer)—गले में, नाक-कान के अन्दर तक कोई दवा पहुंचानी है तो वह दवा इस यन्त्र से भरकर पहुंचाई जाती है। बहुत से चिकित्सक कागज की बत्ती बनाकर उसमें औषधि को रखकर फूंक मार कर यह कार्य करते हैं लेकिन इस प्रकार से ठीक प्रकार से औषधि नहीं पहुंचती, कभी-कभी उल्टी चिकित्सक के मुख में औषधि पहुंच जाती है और काफी औषधि व्यर्थ जाती है। इस यन्त्र को मंगाने पर आपको यह असुविधाएं न रहेंगी। एक यन्त्र मंगाकर अपने चिकित्सालय में अवश्य रखें। मूल्य ८.५०

धमनी संदंश (Artery Forceps)—शल्य कर्म करते समय रक्तस्राव करती हुई धमनी को इससे पकड कर रक्तस्राव रोका जाता है। छोटे तथा बड़े प्रत्येक प्रकार के शल्य कर्म में इसकी आवश्यकता पडती है। मूल्य ५ इंची ४ ००, ६ इंची ५.००, स्टेनलैस स्टील की ५ इंची ६ २५, ६ इंची ७ ००

सूचिका संदंश (Needle Holder)—शल्य कर्म में मांस तन्तु आदि एवं त्वचा को सीते समय सुई को इसीसे पकडा जाता है। इसके बिना सीवन कर्म सम्भव नहीं। मू० ८ ००, कैंची की तरह का ४ ५०

सूचिका (Needles)—सीवन कर्म के लिये ६ सुई का पैकिट (इंग्लैंड की) ४ ००

शीशे पर लिखने की पेन्सिल—इस पैन्सिल से आप शीशा, प्लास्टिक तथा धातु के बर्तन आदि पर लिख सकते हैं। इसका उपयोग स्लाइड पर लिखने के, या अन्य कार्यों में भी किया जाता है। साधारण पैन्सिल पेन आदि से आप शीशे आदि पर नहीं लिख सकते। मूल्य केवल ०.७५

मसूढे चीरने का चाकू—सीधा १ ३७, फोल्डिंग २ २५

परवाल उखाड़ने की चमटी (Cilia Forceps)—आंख में परवाल पड जाने पर उनका उखाडा जाना आवश्यक है। साधारण चीमटी की पकड में यह बाल (Cilia) नहीं आते। उपरोक्त चीमटी विशेषत परवाल उखाडने को ही बनाई है। प्रत्येक चिकित्सक को एक चीमटी अपने पास अवश्य रखनी चाहिए। मूल्य २ ५०

तोलने की मशीन—रोगी को मशीन पर खडा कीजिये वजन ज्ञात हो जायगा। इनसे आप २८० पौंड तक का वजन ज्ञात कर सकते हैं। मूल्य केवल १२५ ०० (यह रेल से ही भेजी जा सकेगी अत आर्डर के साथ रेलवे स्टेशन लिखे)
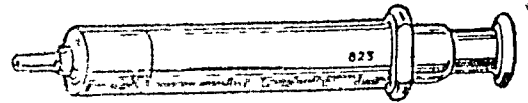
इन्जेक्शन सिरिंज [कम्पलीट]—सम्पूर्ण काच की २ c. c की २ ७५, ५ c c की ४ ००, १० c. c की ६ ००, २० c c की ९ ००, ३० c c की १२ ५०, ५० c c की १७ ००, रेकार्ड सिरिंज २ c c की ८ ००, ५ c c की १२ ५०

नाइलौन की सिरिंज—२ सी सी. २.७५, ५ सी. सी ४ ००, १० सी सी ५ ५०

इन्जेक्शन की सुई [नीडिल]–१ नग ० ५०
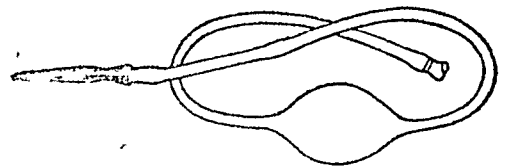
एनीमा सिरिंज [वस्ति यन्त्र]—इस यन्त्र से जल या औषधि-द्रव्य गुदा में आसानी से चढाया जा सकता है। मूल्य रबड का जर्मनी १४ ०० भारतीय उत्तम ५ ००

घाव में डालने की सलाई (Probe)–आयुर्वेद में यह एषणी शलाका के नाम से प्रसिद्ध है। घाव की गहराई उसकी दिशा जानने तथा किसी नाड़ी व्रण में अन्दर गौज भरने के लिये इसका पास में होना अत्यन्त आवश्यक है। मूल्य ० ३५

दवा नापने का ग्लास (Meassuring Glass)—

कम्पाउण्डर अनुमान से दवा देकर कभी-कभी बडा अनर्थ कर डालते है। अतएव हर चिकित्सक को इन ग्लासो को अवश्य मगाकर रखना चाहिए। गलती कभी न होगी। मूल्य २ ड्राम का (बूंद नापने के काम आता है) ० ७० १ औंस का ० ६०, २ औंस का १ ००, ४ औंस का १.२५

गरम पानी की थैली—ज्वर, पीडा, शोथ या अन्य आवश्यक स्थानो पर इस थैली मे गरम पानी भर कर सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मूल्य ५ ००

वरफ की थैली—तेज बुखार, प्रलापावस्था, शिर की पीडा या अन्य व्याधियो मे चिकित्सक सिर पर वरफ रखवाते है। इस थैली मे वरफ भर कर रखने से सुविधा रहती है, रोगी को इसकी ठडक पहुचती है किन्तु उससे वह भीगता नही है। मूल्य २ ५०

गले व जबान देखने की जीभी—(Tongue Depressure)—गला देखने के लिए जब रोगी मुह खोलता है तब जीभ (जिह्वा) का उठाव गले को ढक लेता है और गले मे क्या बाधा है चिकित्सक नही देख पाता। इस यन्त्र से जीभ दवा कर गला तथा अन्दर की जीभ स्पष्ट दीखती है। मूल्य साधारण सीधी १ २५ फोल्डिङ्ग २ ००
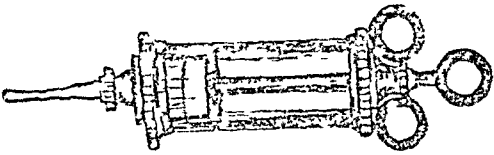
कान धोने की पिचकारी—धातु की १ औंस ५ ००, २ औंस की ६ ००, ४ औंस ७ ५०

विस्चूरी—इसका फलक पतला तथा तिरछा होता है। इसके द्वारा भेदन-कार्य किया जाता है। सीधी का मूल्य १.२५, फोल्डिङ्ग २ २५

चीमटी—चीमटी ४ इंची ० ८७, ५ इंची १ ०० दातो मे दवा लगाने की चीमटी २ ००

चाकू—चाकू सीधा ५ इंची १ २५, फोल्डिङ्ग २.२५

आपरेशन करने का चाकू—इसमे हैंडिल प्रथक होता है तथा काटने वाला ब्लेड प्रथक होता है जो कि खराब होने पर बदला जा सकता है। मूल्य १ ब्लेड सहित ३ ५० ६ ब्लेडो सहित ५ ५०
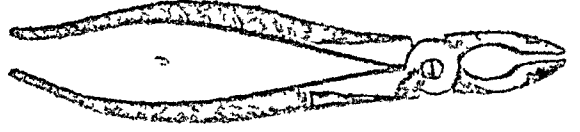
दांत निकालने का जमूडा (Tooth forceps universal) इससे दात मजबूती से पकडकर उखाडा जा सकता है। मूल्य ६ ००

आंख में दवा डालने की पिचकारी—१ दर्जन ० ४०
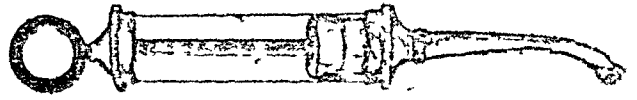
ग्लेसरीन की पिचकारी (प्लास्टिक की)—गुदा मे ग्लेसरीन चढाने के लिये प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी। मूल्य १ औंस २ ५०, २ औंस ८.००
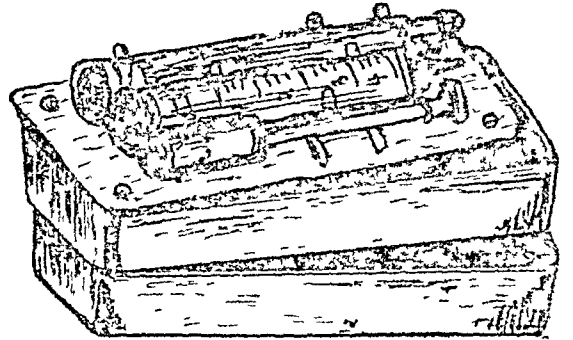
सिरिज केस निकिल के—सिरिंज सुरक्षित रखने के लिए। १ केस २ c c की सिरिंज के लिए २.००, ५ c. c. की सिरिज के लिए ३ ००, १० c c की सिरिज के लिए ५ ००
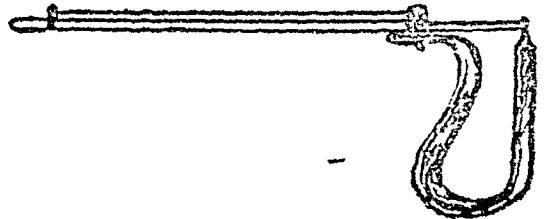
कान मे से दाना निकालने का यन्त्र—कान मे यदि कोई अनाज का दाना आदि पड गया है तो उसे किसी साधारण चीमटी से निकालने का प्रयत्न कदापि न करे नही तो वह आगे सरक जायगा। यह यन्त्र दाने आदि को सुगमता से खीचकर लाता है। मूल्य २ ००

आमाशय में दूध चढ़ाने की नली--जब रोगी की अवस्था इस प्रकार की हो कि वह मुंह द्वारा अपना आहार ग्रहण न कर सके यथा बेहोशी मे, पक्षाघात मे, किसी दौरे आदि मे--तो आप इस नली द्वारा दूध या अन्य पोष्य द्रव पदार्थ आमाशय मे पहुँचा सकते है। ३.००
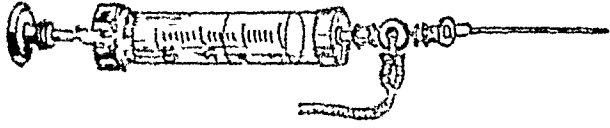
तीन मार्ग वाला यन्त्र (Three way Canula)—किसी रोगी के द्रव पदार्थ अधिक मात्रा मे चढाना है तथा आप के पास सिरिंज उससे छोटी है तो आप इसका प्रयोग करें अथवा जो चिकित्सक बड़ी सिरिंज द्वारा ठीक प्रकार इजेक्शन नहीं लगा पाते वे इसका प्रयोग करे। प्रत्येक के लिए आवश्यक यन्त्र है। ऊपर चित्र मे यह यन्त्र सिरिज मे लगा है। मूल्य ८ ००
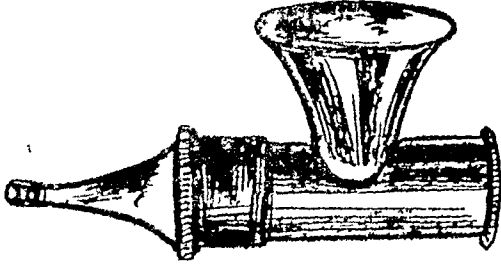
कान देखने का आला--कान मे फुन्सी है, सूजन है या किसी अनाज का दाना पड गया है और वह फूलकर कष्ट दे रहा है तो उसे देखना कठिन हो जाता है। इस यन्त्र (आले) से कान के अ दर का दृश्य स्पष्ट दीख पडता है। कपडे से मढे एक सु दर लकडी के डिब्बे मे रखा। दो अतिरिक्त ईअरपीस सहित। मू० १२ ००
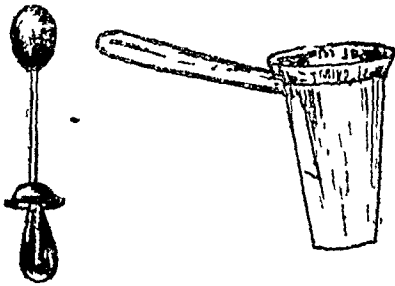
गुदा परीक्षण यन्त्र (Proctoscope)—गुदा की अन्दर से परीक्षा करने के लिए यह एक आवश्यक यन्त्र हैं। अर्श अथवा अन्य गुद-रोगो के शल्य कर्म, क्षार कर्म अग्निकर्म मे इसका होना अत्यन्त आवश्यक है। इससे गुदा के अन्दर की स्थिति देखी जाती है। मू. १२ ००

स्तनों से दूध निकालने का यन्त्र—स्त्री के स्तन मे पकाव या फोडा हो जाने पर अथवा नवजात शिशु की मृत्यु हो जाने पर स्तनो मे भरा हुआ दूध बडा परेशान करता है। इस यन्त्र द्वारा आसानी से दूध निकाला जाता है। मूल्य २ २५

मूत्र कराने की नली (कैथीटर)—मूल्य रबड का ० ७५, स्त्रियो के लिए धातु का १ २५, पुरुषो के लिए धातु का २.७५

ट्रनीकेट—नस का इ जेक्शन लगाने के लिए आवश्यक मू० ७५

जलोदर में उदर से पानी निकालने का यन्त्र—जलोदर रोग मे उदर गह्वर से एव अ डवृद्धि मे अ डकोषो से पानी निकालने लिये इस यन्त्र का प्रयोग होता है। पानी निकाल देने से रोगी जल्दी स्वास्थ्य लाभ करता है तथा उस पर प्रभाव भी अच्छा पडता है। मू० ३ ७५

आख टैस्ट करने का चार्ट—साधारण तौर से आप इन चार्टों को रोगी से पढवा कर दृष्टि-परीक्षा कर सकते है। मूल्य ०.६० प्रति चार्ट

मलहम लगाने का यन्त्र—(Ointment introducer) अर्श रोगी को गुदा मे मलहम लगाने के लिए उपयोगी। मूल्य २ ५०

आपेक्षिक घनत्वमापक यन्त्र—(Urinometer) मूत्र अथवा अन्य द्रव का आपेक्षिक घनत्व इस यन्त्र द्वारा मालूम किया जाता है। मू १ ५०, बडा (१००० से २००० तक चिह्न वाला) २ ००

कैंची—५ इ ची साधारण २ ००, कैंची, मुडी हुई ४ इ ची २ १२, ५ इ ची २ २५, कैंची एक ओर को मुडी हुई ४ इ ची २ ५०, ५ इ ची ३ ००, कैंची सीधी ४ इ ची बढिया २ ००

रबड़ के दस्ताने—चीड फाड करते समय सक्रमण से रोगी को और अपने को बचाने के लिए चिकित्सक इन दस्तानो को हाथ मे पहनते हैं। मू० १ जोडी ३.५०

कांटे-(Scales) अग्रेजी वैलेंस की तरह की कीमती दवाओ को सही व आसानी से तोलने के लिये व्यवहार मे लाने चाहिए। निकिल पालिश, लकडी के वक्स के अन्दर रखे हैं। मूल्य बाटो सहित पीतल का निकिल किया हुआ १२ ५०

डूस-इससे फोडा आदि धोने मे वडी सुविधा रहती है। इससे एनीमा लगाया जाता है। मू० रवड की टोटनी आदि से पूर्ण २ पिंट की ५ ००, ४ पिंट का ७ ५०, २ पिन्ट का नाइलोन का सुन्दर पात्र रवड टोटनी सहित ७ ५०

स्प्रिट लैम्प--थोडी दवा गरम करनी हो अथवा सूखी दवा से इजेक्शन के लिए दवा तैयार करनी हो तव इस लैम्प की सहायता लेनी पडती है। मूल्य काच की २ ००, धातु की दो औंस की ३ ५०, ४ औंस की ४ ००
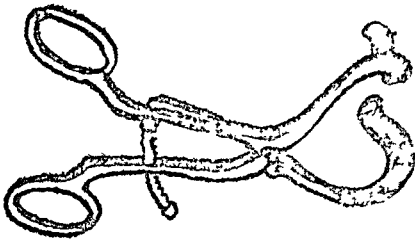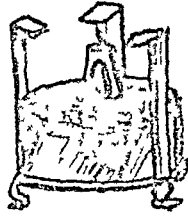
मुख--विस्फारक (Mouth gag)—मुख के अन्दर परीक्षा करते समय, या कोई दवा लगाते समय या कोई शल्य कर्म करते समय, किसी विष के विष के खा लेने पर आमाशय प्रक्षालनी-नलिका के प्रयोग मे रोगी के मुख का खुला रहना आवश्यक है जो इसी यन्त्र की सहायता से खुला रखा जाता है। मूल्य १० ००

दन्त उन्नामक (Dental Elivetor)—दात यदि कम हिलता है तथा किसी रोग के कारण उखाडा जाना आवश्यक है तो इस यन्त्र की सहायता से दात को उकसाया जाता है। वैसे तो वाजार मे अलग-अलग दातो के लिये प्रथक्-प्रथक् उन्नामक आते हैं लेकिन हमने इस प्रकार का उन्नामक तैयार करवाया है जो कि प्रत्येक दात के लिए एक वही काम करेगा। मूल्य ९ ००

नासिका प्रेक्षण यन्त्र--नाक मे सूजन है, फुन्सी है या किसी और कारण से कष्ट है तो उसे ठीक प्रकार से देखा नही जा सकता। यह यन्त्र नाक मे डालकर चौड़ा दिया जाता है जिससे नाक चौड़ जाती है और फिर आप नाक के अन्दर के सभी अवयव स्पष्टत. देख सकते है। मू० ५ ००

अगुली के रवड के दस्ताने (Finger stalls)—यह अगुली पर चढा लिया जाता है तथा फिर योनि, गुदा आदि अङ्गो की परीक्षा की जाती है। यह सस्ते रहते हैं। मूल्य ३० न० पै०, १ दर्जन ३ ००

मूत्र पात्र (Urinal pot)—जव रोगी की स्थिति इस प्रकार की होती है कि वह विस्तर से न उठ सके तो उसे पेशाव विस्तर पर इसी पात्र मे करना पडता है। तामचीनी का मूल्य ६ २५, नाइलोन का वढ़िया ७ ५०

कपिग ग्लास—उदरशूल तथा अन्य अनेक रोगों मे इन ग्लासो का प्रयोग किया जाता है। आयुर्वेद-शास्त्र मे इनका प्रयोग अलावू यन्त्र के नाम से किया जाता है। तीन ग्लासो के १ सैट का मूल्य ४ ००

सुरमा लगाने की सलाई—(काच की) १ दर्जन ३० न० पै०।

डाक्टर्स इमर्जेंसी वैग--इसमे आवश्यकता के समय चिकित्सक अपना आवश्यक सामान रखकर रोगी की परीक्षार्थ जा सकता है। मूल्य १० इची सम्पूर्ण चमड़े का जिप (जजीर) लगा सुन्दर १५ ००

थूकने का पात्र—जव रोगी चारपाई से न उठ सके, तो उसकी चारपाई के पास इस पात्र को रख दिया जाता है जिसमे वह थूकता रहता है। तामचीनी (इनामिल) का पात्र ४ ००

आई शेड (Eye shade)—आख दुखने आने पर यह वाधे जाते है जिससे कि आख पर रोशनी सीधी न पडे, एक आख पर वाधने वाले का मूल्य ० ३७, दोनो आखो पर वाधने वाले का मू० ० ५०